सौन्द्रान्तिकी

संपादक

डॉ॰ माला मिश्र

प्रोफेसर, अदिति महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ॰ एस. लिंगमूर्ति

असिस्टेंट प्रोफेसर, कर्नाटक केन्द्रीय विश्वविद्यालय, कलबुर्गी

अलका पब्लिकेशन्स

220, पॉकेट-5, मयूर विहार, फेज-I, दिल्ली-110091

वर्ष : 18 अंक : 3 ❑ जुलाई–सितम्बर, 2025

सैद्धान्तिकी

संपादकीय सम्पर्क:

220, पॉकेट–5, मयूर विहार, फेज–1,
दिल्ली–110091
फोन : 011–40564514, 011–22753916, 8510050610
e-mail : saidhantiki.journal@gmail.com

शाखा कार्यालय:

502, सरस्वती टॉवर, कुसुमपुरम, पटना–801503
फोन : 6201418851

सम्पादकीय

भारत ब्रिक्स का उपयोग सुधारों को आगे बढ़ाने के लिए कर रहा है - अमेरिका को चुनौती देने के लिए नहीं

भारत लंबे समय से संयुक्त राष्ट्र, आईएमएफ और विश्व बैंक जैसी संस्थाओं में सुधार लाने की मांग करता रहा है, क्योंकि उसका मानना है कि ये पश्चिमी प्रभुत्व वाली संस्थाएं हैं और वर्तमान वैश्विक वास्तविकताओं को प्रतिबिंबित नहीं करती हैं।

ब्रिक्स शिखर सम्मेलन का नवीनतम संस्करण इसलिए महत्वपूर्ण रहा क्योंकि इसमें सभी 10 सदस्य देशों ने भाग लिया। इसमें ईरान, मिस्र, इथियोपिया और संयुक्त अरब अमीरात शामिल थे, जो रूस में 2024 के शिखर सम्मेलन में पहली बार सदस्य देशों के रूप में शामिल हुए, और इंडोनेशिया, जो 2025 की शुरुआत में इस समूह में पहला दक्षिण-पूर्व एशियाई देश बनकर शामिल हुआ। अपने विस्तार के साथ, इस समूह को अब ब्रिक्स प्लस के नाम से जाना जाता हैख़यह शब्द पहली बार 2024 के शिखर सम्मेलन में इस्तेमाल किया गया था।

हालाँकि सहयोग को बढ़ावा देने के लिए देशों के समूह बनाना वैश्विक स्तर पर आम बात है, ब्रिक्स एक पारंपरिक समूह से कहीं बढ़कर है। यह विकसित शक्तियों, खासकर अमेरिका और यूरोपीय देशों के प्रभाव को चुनौती देने वाले देशों का एक समूह है। 2010 में, पहले पाँच सदस्यों - ब्राजील, रूस, भारत, चीन और दक्षिण अफ्रीका - का वैश्विक सकल घरेलू उत्पाद में 18 प्रतिशत योगदान था। 2025 में उनकी सामूहिक हिस्सेदारी बढ़कर 26.5 प्रतिशत हो गई है।

ये देश अब पश्चिमी प्रभुत्व को चुनौती दे रहे हैं। व्यापार और वित्त में अमेरिकी डॉलर पर निर्भरता कम करने के लिए डी-डॉलरीकरण की माँगें जोर पकड़ रही हैं, जिससे अमेरिका के वित्तीय और भू-राजनीतिक प्रभुत्व को खघ्तरा पैदा हो रहा है। इससे चीन और रूस (और भारत को भी) विश्व मंच पर अपनी आवाज बुलंद करने का मौका मिलता है। यह डॉलर और पश्चिमी संस्थानों से दूर वैश्विक आर्थिक पुनर्गठन को बढ़ावा देता है, जो एक बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था की ओर इशारा करता है - जिसका अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प समर्थन नहीं करते।

ब्रिक्स को लेकर ट्रंप की चिंताएं

ब्रिक्स के हालिया विस्तार, जिसमें पाँच नए सदस्य शामिल हुए हैं, ने पश्चिमी देशों, खासकर अमेरिका, की चिंताएँ बढ़ा दी हैं। और ट्रंप ने बिना किसी लाग-लपेट के ब्रिक्स में हो रहे घटनाक्रम पर अपनी नाखुशी जाहिर करना शुरू कर दिया है।

ट्रम्प द्वारा ब्रिक्स का विरोध करने के प्रमुख कारण इस प्रकार हैं:

इसका मुख्य कारण यह है कि मूल सदस्य (ब्राजील, रूस, भारत, चीन, दक्षिण अफ्रीका) और सऊदी अरब, संयुक्त अरब अमीरात, मिस्र, ईरान और इथियोपिया जैसे नए सदस्य, दोनों ही व्यापार और वित्त में अमेरिकी डॉलर पर निर्भरता कम करने पर खुलकर चर्चा कर रहे हैं। ट्रंप का दीर्घकालिक 'अमेरिका फस्ट' रुख़, डॉलर से दूर जाने के किसी भी कदम को अमेरिकी आर्थिक प्रभाव और प्रतिबंधों को लागू करने की उसकी क्षमता के लिए सीधी चुनौती बना देता है। ट्रंप को परेशान करने वाला दूसरा मुद्दा ब्रिक्स का पश्चिम के प्रति भू-राजनीतिक विरोध है। ब्रिक्स खुद को जी-7, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष (आईएमएफ) और विश्व बैंक जैसी पश्चिमी संस्थाओं के प्रतिकार के रूप में स्थापित कर रहा है। ब्रिक्स के भीतर चीन और रूस के बीच बढ़ते संबंधों को व्यापक पश्चिम-विरोधी रुख के रूप में देखा जा रहा है।

तीसरा, ट्रंप ने व्यापार युद्धों, टैरिफ, तकनीक और निवेश प्रतिबंधों आदि के जरिए चीन के प्रति लगातार कड़ा रुख अपनाया है। ब्रिक्स द्वारा चीन को वैश्विक मंच पर अमेरिका को चुनौती देने के लिए एक नेतृत्वकारी मंच प्रदान करना उन्हें परेशान करता है। वह ब्रिक्स को बहुध्रुवीयता की आड़ में चीन के वैश्विक विस्तार का एक माध्यम मानते हैं। चौथा, सऊदी अरब और ईरान के शामिल होने से ब्रिक्स को वैश्विक ऊर्जा बाजारों पर प्रभाव मिलेगा। तेल व्यापार के गैर-डॉलर मुद्राओं (जैसे, युआन या ब्रिक्स मुद्रा) में संचालित होने की संभावना बढ़ रही है, जिससे पेट्रो-डॉलर प्रणाली कमजोर होगीख़जो अमेरिकी वैश्विक आर्थिक शक्ति का एक महत्वपूर्ण स्तंभ है। पाँचवाँ, ट्रंप ब्रिक्स के विस्तार को इस बात का संकेत मानते हैं कि 'ग्लोबल साउथ' पश्चिमी प्रभाव से दूर जा रहा है और अपना स्वतंत्र गुट बना रहा है। यह ट्रंप के ष्ताकत सेष् बातचीत करने के दृष्टिकोण के विपरीत है, जहाँ अमेरिकी प्रभुत्व निर्विवाद है। छठा, ट्रंप वैश्विक प्रभाव को शून्य-योग के संदर्भ में देखते हैं। अमेरिका को छोड़कर किसी भी गैर-पश्चिमी समूह के उदय को व्यक्तिगत और राष्ट्रीय अपमान के रूप में देखा जाता

है। ब्रिक्स शिखर सम्मेलन, जो अमेरिका की भागीदारी के बिना विश्व व्यवस्था के लिए वैकल्पिक दृष्टिकोण प्रस्तावित करते हैं, उन्हें 'अमेरिकी प्रतिष्ठा' के लिए खतरा माना जाता है – जिसे ट्रंप बहुत महत्व देते हैं। उन्होंने ब्रिक्स का साथ देने वाले देशों पर और भी ज्यादा टैरिफ लगाने की धमकी दी है। उन्होंने ब्राजील पर 50 प्रतिशत टैरिफ लगाने की घोषणा पहले ही कर दी है।

भारत का व्यावहारिक दृष्टिकोण

हालाँकि भारत ब्रिक्स का सदस्य है, फिर भी इसका दृष्टिकोण अन्य सदस्यों की तुलना में अधिक सूक्ष्म, संतुलित और व्यावहारिक है। भारत का रुख उसके राष्ट्रीय हितों, रणनीतिक स्वायत्तता और बढ़ती वैश्विक महत्वाकांक्षाओं से प्रभावित है। हालाँकि भारत अंतर्राष्ट्रीय व्यापार और रुपये में निपटान को बढ़ावा देकर अपने आर्थिक हितों को बढ़ावा देने की कोशिश कर रहा है–जिससे डॉलर पर निर्भरता कम हो रही है–लेकिन भारत डॉलर विरोधी नहीं है। यह वैश्विक वित्तीय प्रणाली में विविध ता लाने, एकल मुद्रा पर निर्भरता कम करने और एक बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था को बढ़ावा देने के व्यापक प्रयास का समर्थन करता है। भारत ने अपने विदेशी मुद्रा प्रवाह को कम करने के लिए रूस, संयुक्त अरब अमीरात, श्रीलंका और मॉरीशस जैसे देशों के साथ रुपये में द्विपक्षीय व्यापार शुरू किया है। अब तक, 20 से ज्यादा देशों ने घरेलू मुद्राओं में व्यापार निपटान को सुगम बनाने के लिए वोस्ट्रो खाते खोले हैं। भारत ब्रिक्स देशों द्वारा वैकल्पिक भुगतान तंत्र बनाने का समर्थन करता है, जैसे स्थानीय मुद्राओं का उपयोग करना या किसी संभावित ब्रिक्स मुद्रा पर चर्चा करना, लेकिन उनकी व्यावहारिकता को लेकर सतर्क है।

भारत वैश्विक व्यापार और वित्त में डॉलर के प्रभुत्व को समझता है और उसने इसके पूर्ण प्रतिस्थापन (या डी–डॉलरीकरण) की माँग नहीं की है। इसके बजाय, वह कई आरक्षित मुद्राओं (जैसे यूरो, युआन और रुपया) के सह–अस्तित्व का पक्षधर है।

भारत ब्रिक्स को अमेरिका–विरोधी गुट के रूप में नहीं देखता। वह इस समूह को वैश्विक संस्थाओं में सुधार के लिए एक मंच मानता है, न कि टकराव के लिए। भारत एक ऐसे विश्व का समर्थन करता है जहाँ बहु–शक्ति केंद्र हों, जहाँ उभरती अर्थव्यवस्थाओं की आवाजों का बेहतर प्रतिनिधित्व हो।

भारत लंबे समय से संयुक्त राष्ट्र, अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक जैसी संस्थाओं में सुधार की मांग करता रहा है, क्योंकि उसका मानना है कि ये संस्थाएँ पश्चिम के प्रभुत्व वाली हैं और वर्तमान वैश्विक वास्तविकताओं को प्रतिबिंबित नहीं करतीं। इसी संदर्भ में, भारत की जी–20 अध्यक्षता में, वैश्विक वित्तीय संस्थानों में सुधारों पर एक रिपोर्ट तैयार करने के लिए एक विशेषज्ञ समूह का गठन किया गया था। इस समूह के सह–संचालक अर्थशास्त्री लैरी समर्स और एन.के. सिंह थे। उनकी रिपोर्ट बहुपक्षीय विकास बैंकों (एमडीबी) को मजबूत करने पर केंद्रित थी।

अपने उद्देश्यों से प्रेरित होकर, भारत ब्रिक्स का उपयोग प्रौद्योगिकी, वित्त, बुनियादी ढांचे और सतत विकास में सहयोग को बढ़ावा देने के लिए करता है।

यदि अमेरिका ब्रिक्स में चीनी प्रभुत्व से चिढ़ता है, तो भारत भी इस समूह में चीन के प्रभाव से चिंतित है और ऐसे किसी भी व्यवहार को अस्वीकार करता है जो उसकी संप्रभुता को कमजोर करता हो या चीनी हितों के साथ बहुत अधिक निकटता रखता हो।

वैश्विक स्तर पर, भारत का संतुलित दृष्टिकोण अपने राष्ट्रीय उद्देश्यों की पूर्ति और अपनी राष्ट्रीय संप्रभुता की रक्षा के लक्ष्यों को प्राप्त करना है। भारतीय मुद्रा में अंतर्राष्ट्रीय निपटान को बढ़ावा देकर, डॉलर पर निर्भरता कम करके, वह डॉलर के विह्रास को रोकने का भी प्रयास कर रहा है।

भारत 'आत्मनिर्भर भारत' के माध्यम से आत्मनिर्भरता को बढ़ावा दे रहा है और वैश्विक मूल्य श्रृंखलाओं को हथियार बनाने के अन्य देशों (पश्चिमी देशों और चीन दोनों) के प्रयासों को हतोत्साहित कर रहा है। डिजिटल रुपया भुगतान को बढ़ावा देकर, भारत भुगतान प्रणालियों को हथियार–मुक्त करने का भी प्रयास कर रहा है। ये प्रयास दूसरों को भारत पर हावी होने से रोककर हमारे अपने राष्ट्रीय हितों की रक्षा करते हैं। अतीत में, भारत रूस और ईरान से तेल खरीदकर, डिजिटल भुगतान को बढ़ावा देकर और अंतरराष्ट्रीय मंचों पर वैश्विक संस्थाओं में सुधारों को आगे बढ़ाकर अपनी ताकत का प्रदर्शन कर चुका है। यह दिलचस्प है कि अमेरिका ने इन कदमों पर कोई आपत्ति नहीं जताई है–शायद वह भारत को चीन समेत अन्य देशों के प्रभुत्व को संतुलित करने वाली एक ताकत के रूप में देख रहा है।

– सम्पादक

Contents

मानसिक स्वास्थ्य पर सोशल मीडिया का प्रभाव–डॉ० अल्पना कुमारी 7
समन्वित ग्रामीण विकास योजनाओं का प्रभाव: अरवल जिले में सरकारी योजनाओं की भूमिका का अध्ययन–पूजा कुमारी 10
"बौद्ध धर्म और भारतीय संस्कृति: परस्पर संबंधों का विश्लेषण"–अजय बड़सीवाल; प्रो० रेनू शुक्ला 15
नई शिक्षा नीति-2020: भारतीय उच्च शिक्षा का भविष्य–रवीन्द्र कुमार 21
डिजिटल युग में महिलाओं का व्यवहारिक परिवर्तन: एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन–डॉ० रीता कुमारी 24
आरक्षण बनाम स्किल डेवलपमेंट: युवाओं का सशक्तिकरण आत्मनिर्भर भारत बनाने की दिशा में एक कदम
–श्री संतोष आनंद 29
"मन्नू भंडारी के कथा साहित्य में व्याप्त सामाजिक समस्याओं के विविध रूप: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन"–डॉ० बबलू सिंह 40
बिहार में सुशासन के परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक एवं प्रशासनिक अध्ययन (2010-2020)–डॉ० ममता कुमारी 45
जनजातीय समुदायों के लिए शैक्षिक चुनौतियाँ और अवसर: बिहार राज्य के सीमांचल क्षेत्र के संदर्भ में
–मुकेश कुमार सिन्हा; डॉ० योगेश्वर प्रसाद शर्मा 51
उत्तर प्रदेश की दलीय और दलित राजनीति–राज कुमार 56
मौर्योत्तर काल में उद्योग-धंधों का विकास–डॉ० मुकेश कुमार; रोशनी कुमारी 59
साहित्यिक सिनेमा और डिजिटल प्लेटफॉर्म: नई सम्भावनाएं–संजीव कुमार; डॉ० शशांक शुक्ल 62
वर्तमान सन्दर्भ में समकालीन अमूर्तकला की सामाजिक अवधारणा–डॉ० गुरदीप कौर; जेबा बानो 66
प्राचीन ज्ञान परम्परा: कला एवं संस्कृति–डॉ० वाणीश्री बुग्गी 71
उत्तर आधुनिकता और मनोहर श्याम जोशी के उपन्यास–आशुतोष तिवारी; प्रो० इंदु यादव 74
योजना आयोग और नीति आयोग के कार्यो का तुलनात्मक अध्ययन–मुकेश पासवान 77
बिहार में सुशासन में कानून एवं कार्यक्रम: एक अवलोकन–स्वीटी गुप्ता 82
ऐतिहासिक सन्दर्भ में नारी साहित्य लेखन का अध्ययन–डॉ० रितु रानी 90
संस्कृतसाहित्ये नारी–डॉ० प्रवीण कुमार झाडी 97
भारतीय हिंदी साहित्य में नवजागरण और स्वाधीनता आन्दोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि–डॉ० रीना देवी 100
अमूर्त चित्रकला में संरचनात्मकता: एक विवेचनात्मक अध्ययन–डॉ० अर्चना त्यागी; नीतू 104
भारत, बांग्लादेश और श्रीलंका पर चीन के बढ़ते प्रभाव का रणनीतिक विश्लेषण–महेन्द्र प्रताप यादव 108
आदिवासी स्वर और उनका साहित्य–डॉ० सुनील यशवंत व्यवहारे 113
गृह विज्ञान की शिक्षा में डिजिटल प्लेटफॉर्म्स/टूल्स का प्रयोग और उपयोगिता–डॉ० नीलिमा दुबे 116
भारतीय भाषाओं की आवश्यकता और उपयोग: एक अवलोकन–डॉ० सीमा सिंह 122
"भारतीय लोकतंत्र: संवैधानिक आदर्श, संस्थागत विकास और समकालीन चुनौतियाँ"–डॉ० अजीत सिंह 128
भारतीय संस्कृति के उत्थान में अकबर और उसके नवरत्नों का योगदान–डॉ० अर्चना सिंह 132
ग्रामीण विकास का महत्व–डॉ० राम कृष्ण साहू 136
महिला सशक्तिकरण की अवधारणा, समस्या एवं समाधान–नेहा मंडावी 138
ग्राम पंचायत और ग्राम सभा का अध्ययन–डॉ० प्रदीप जाम्बुलकर 142
बिहार में उच्च शिक्षा की दशा एवं दिशा–डॉ० उमाकर ठाकुर 145
किशोरावस्था के दौरान पोषण की कमी के प्रभाव और सप्लीमेंटेशन की जरूरत: एक समीक्षा–रागनी यादव; डॉ० संध्या श्रीवास्तव 150
भारत की अर्थव्यवस्था के लिए विनिर्माण और खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों की भविष्य की संभावनाएं–डॉ० सोहित राम 154
वैदिकदर्शन में अन्तर्निहित माया शब्द का अर्थानुशीलन–प्रमोद कुमार 159
हिन्दू पुनरूत्थान और राष्ट्रीय जागरण -भारतीय ज्ञान परम्परा की अवरिल धारा–डॉ० बरुण कुमार 165
अंग्रेजी साम्राज्य में नीलहा आंदोलन और महात्मा गांधी का स्वतंत्रता संग्राम में प्रवेश–डॉ० संजय कुमार सिंह 169
भारतीय ज्ञान परंपरा में सामाजिक एवं जीवन कौशल: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–सरोज शर्मा; डॉ० प्रीति शर्मा 173
भारत में दलित उत्पीड़न के सामाजिक एवं राजनीतिक परिप्रेक्ष्य: समीक्षात्मक विश्लेषण–डॉ० मनोज गुप्ता; चन्द्रभान 176
मालविकाग्निमित्रम् नाट्य में कालिदास की संगीत योजना–डॉ० हरेराम कुमार उपाध्याय 181
ऋग्वेद में वर्णित व्रत विमर्श–डॉ० राजीव कुमार 183
तुलसीदास के पदों का सांगीतिक विश्लेषण–अमृता प्रियंवदा 186
कृषि पद्धति में हो रहे परिवर्तनों का कृषि उत्पादन पर प्रभाव: नालंदा जिला का एक भौगोलिक अध्ययन
–सोनू कुमार; प्रो० (डॉ०) विभा सिंह 190
भारत छोड़ो आन्दोलन में बिहार के छात्रों का योगदान–राजेश पासवान; डॉ० अमित कुमार सांतकर 197
जलवायु परिवर्तन से आधुनिक कृषि पर प्रभाव: नालंदा जिला का एक भौगोलिक अध्ययन–चंदन कुमार; प्रो० (डॉ०) विभा सिंह 201
गीता के स्वधर्म का गाँधीवादी दृष्टिकोण–सचिन पाण्डेय 206
भारत-चीन सम्बंध के बदलते आयाम: मृदु शक्ति के रूप में भारतीय दृष्टीकोण के सन्दर्भ में–जया कुमारी 212
भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में उत्तरी बिहार की महिलाओं की भूमिका: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–आलोक कुमार; हिमांशु सिंह 218
21वीं सदी में वैश्विक शक्ति-संतुलन और परिवर्तित विश्व व्यवस्था में चीन की उपस्थिति: एक अवलोकन–डॉ० कुमार रश्मि रंजन 221
भारत में राष्ट्रीय सुरक्षा एवं शासकीय रणनीति: एक अवलोकन–डॉ० धनंजय यादव 227
20वीं शताब्दी में बिहार में किसानों का अंग्रेजों के खिलाफ प्रतिरोध–डॉ० सुभाष चन्द्र सिंह 233
ग्रामीण महिलाओं में कृषि के लिए प्रौढ शिक्षा: आवश्यकता और रणनीतियाँ–साधना त्रिपाठी; पी० पी० गोस्वामी 236
भारत-रूस द्विपक्षीय व्यापार: वर्तमान प्रवृत्तियाँ और भावी संभावनाएँ–प्रो० मनोज कुमार अग्रवाल 240
आत्महत्या एक सामाजिक तथ्य–डॉ० मो० इरशादुल हक 244
रोजगार सृजन में पर्यटन उद्योग का योगदान–डॉ० गिरजा शंकर गुप्ता; उमा गुप्ता 248
भारत में मतदान व्यवहार के निर्धारक: एक अध्ययन–अमित कुमार 252
मृणाल पाण्डे के साहित्य में नारी चेतना की अभिव्यक्ति–कु० जया पाण्डेय 258
रीतिकाल की प्रमुख प्रवृतियां–डॉ० अभिनय कुमार 261
रेणु की आंचलिकता: यथार्थ, कल्पना और लोक का सृजनात्मक समन्वय–डॉ० प्रभात शर्मा 264

एस आर हरनोट का कथा साहित्य: पर्यावरण संरक्षण का दस्तावेज–डॉ० राजन तनवर 270
सशस्त्र बल (विशेष शक्तियां) अधिनियम (AFSPA) और पूर्वोत्तर भारत में मानवाधिकार: बदलते परिदृश्य एवं वैकल्पिक सुरक्षा मॉडलों का विश्लेषण–सुशील कुमार 276
आदी जनजाती की लोककथाओं में कबाङ का महत्व–डॉ० उसुम जोङके 279
भारत छोड़ो आंदोलन (1942) में हाजीपुर सब-डिवीजन के किसानों की भूमिका: एक ऐतिहासिक अध्ययन–नागेश्वर कुमार 283
आदी जनजाति की लोकगाथाओं में निहित लोक विश्वास व आस्थाएँ–अकिन बोको 287
रक्षा उद्योग में सहयोग और तकनीकी हस्तांतरण: नवोत्पाद और वैश्विक सुरक्षा को बेहतर बनाने वाले कारक –डॉ० राजेश कुमार सारस्वत 294
भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में राष्ट्रवादी मुस्लिम नेताओं की भूमिका: विशेषत: मौलाना हसरत मोहानी और ख़ान अब्दुल गफ्फार ख़ान के संदर्भ में–गौरव यादव 301
दलित राजनीति और डॉ. अम्बेडकर: एक व्यापक विश्लेषणात्मक अध्ययन–डॉ० गोरख नाथ सिंह 307
अमेरिका और ईरान के बीच जारी संघर्ष: कारण, प्रभाव और भविष्य–डॉ० अंजू कुमारी 314
"डिजिटल युग में इंटरएक्टिव विज्ञापन: उपभोक्ता की खरीद मंशा पर एक अध्ययन"–सोमेश कुमार 320
पं0 दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद का ऐतिहासिक अध्ययन–डॉ० राकेश कुमार 327
मराठा राजस्व प्रशासनिक प्रणाली का विश्लेषणात्मक अध्ययन–दीपेन्द्र कुमार; अनूप कुमार 332
भारत के नियमित बाजारों में कृषि विपणन की संरचना–डॉ० प्रमोद कुमार यादव 334
डिजिटल भारत में महिलाओं की भूमिका: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन–डॉ० रजनीता कुमारी 338
"अमृतलाल नागर के उपन्यास-साहित्य में मध्यम वर्गीय आर्थिक चेतना और सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रश्न"–मांडवी जायसवाल; डॉ० उर्मिला शिरीष शर्मा; डॉ० सुधीर कुमार शर्मा 344
उबिहार की ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास में मौजूद बाधाएँ: एक विश्लेषण–रजनीश कुमार; डॉ. शारदा नन्द सहनी 350
प्राचीन भारत की राजनीतिक स्थिति: एक ऐतिहासिक अध्ययन–डॉ० रोहित कुमार सिंह 356
डॉ० रामविलास शर्मा और हिन्दी भाषा के विकास में उनका योगदान–डॉ० तानाबाई पाटिल 359
योग दर्शन और मानव व्यक्तित्व- एक अनुशीलन–डॉ० स्नेहलता 363
डॉ. ब्रह्मानन्द के नाटकों में मूल्य-दृष्टि और नैतिक चेतना का विश्लेषण–शान देवी; डॉ० संजीव कुमार 369
स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी का विकास: यथार्थ, संवेदना और शिल्प की बदलती दिशाएँ–अंशु कुमारी 374
समकालीन जनवादी हिन्दी कहानी के विविध सरोकार और उसकी साहित्यिक उपलब्धियाँ–दीपक कुमार 381
बिहार में बाल श्रम: सामाजिक-आर्थिक प्रगति के बीच की चुनौती–प्रीति कुमारी 384
विभाजन की त्रासदी और 'तमस' : सांप्रदायिकता, मानवीय पीड़ा और सामाजिक यथार्थ का आलोचनात्मक अध्ययन–सोनाली कुमारी; डॉ० अखिलेश कुमार 389
"India's Role in Reducing West Asian Crisis and Securing its Interests"—Chandra Bhan Singh 1
Teacher as Social Entrepreneur: A Paradigm Change to Teacher Training in Indian—Dr. Seema Singh 10
Dynamics of India's Foreign Policy and Emerging Dimensions of Global Engagement: An Analysis —Dr. Purnima Singh 19
Feminism and Its Importance in the Field of Economic Development: An analysis—Manjari Nath 31
Impact of Social Media on Indian Elections—Geeta Rani 36
A Critical Review of Amitav Ghosh's Selected Works—Pratibha Panday 41
Economic Status of India During Ancient Times: An Empirical Analysis—Dr. Anil Kumar: Dr. Savita Sharma 46
Health Management through Ashtangyoga in the Context of Technological Era–Dr. Vinay Kumar Bharati 52
Jagirdari System and Revenue Crises in the Subah of Delhi Under the Later Mughals (1707-1757) –Aayushi Sharma; Dr. Hawaldar Bharti 61
Evolution of Girls' Schooling in Haryana (1966–2025): Drivers and Barriers–Anita; Dr. Hawaldar Bharti 66
Impact of Tsunami on Sociey and People–Ruby 79
India's Foreign Trade Policy 2023: Objectives and Impacts–Dr. Vandana 84
Effect of Long Term Husbands Migration on Psychological Well-Being Of Rural Left-Behind Wives: An Evidence From Rural Siwan, India–Kumari Muskan Ray 90
Adjustment Patterns of Adolescent Students in Relation to Academic Stress–Vimlesh Kumar 95
The Role of Employment Status and Emotional Intelligence on Women–Rinki Kumari; Prof. Sheo Kumar Prasad 100
Participation of Woman in Panchayati Raj Institutions in Bihar: A Symbol of Woman Empowerment or Political Fallacy–Ajeet Kumar Ranjan 106
Role and Importance of Guru Tegh Bhadaur Ji in Sikhism–Dr. Gurdeep Singh 112
An Introdution of Jap Parmarth Pothi–Beant Singh 116
Guru Tegh Bahadur: Martyrdom and Political Ideology–Dr. Ravinder Singh Rekhi 119
A Study of Scientific Aptitude in Urban and Rural School-going Adolescents in Relation to Family Income and Parental Education–Sarita Sharma; Dr. Abhaya R. Joglekar 122
Good and Smart Governance in Chhattisgarh State: An Appraisal–Dr. Shyam Lal Nirala 128
Inside the Natyashastra: Poetics in Motion–Dilsher Bir Singh 137
Indian Banks' Stance on NPA Management Issue—Sonalika Garg 140
Contemporary Challenges to India's Foreign Policy—Dr. Virpal Singh 146
Truth Against Trope: Tribal Conditions and Narrative Realism in Jai Bhim and Joram—Dr Aditi Kalra 150
Comparative Study on Motivations of Gen Z Employees Entering Public Service vs. Private Sector —Dr. Rajesh Singh 150
Advanced Architectures for Hybrid Renewable Energy Control Systems on Chip: A Comprehensive Analysis of Heterogeneous Integration, AI-Driven Optimization, and Cyber-Physical Resilience—Mrinal Kaushik 161
From Crisis to Action: Climate Governance and Global Justice in Kim Stanley Robinson's The Ministry for the Future —Dr. Baljeet Singh 170
Environmental Change, Livelihood Transformations, and Social Dynamics in Himalayan Communities: A Sociological Review of Vulnerability, Adaptation, and Resilience—Prof. Prashant Kumar Singh: Shivani Parmar 179
A Comparative Study of Sleep Deprivation and Academic Performance among Rural and Urban College Students —Devika Chundawat; Dr. Venus Vyas 186
Governance, Geography, and School Education in Aspirational Districts: Lessons from Narmada and Mamit —Sr. Prof. Rekha Saxena; Dr. Sanjeev Kumar 189
The Forecasting Power of the Volatility Index in Indian Stock Market—Prakash Kumar Singh 198
Agro-Based Industries in Bihar: An Overview—Dr. Md. Ajmat Raza 206

मानसिक स्वास्थ्य पर सोशल मीडिया का प्रभाव

डॉ० अल्पना कुमारी

सहायक प्राध्यापिका, मनोविज्ञान विभाग, महारानी रामेश्वरी महिला महाविद्यालय, दरभंगा, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

सारांशः-

यह लेख सामाजिक मीडिया के उपयोग के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभावों का अध्ययन करता है। सामाजिक मीडिया प्लेटफार्म व्यक्तियों को भौगोलिक दूरी के बावजूद दोस्तों और परिवार के साथ संबंध बनाए रखने की अनुमति देते हैं। यह संबंध भावनात्मक समर्थन प्रदान कर सकते हैं और अलगाव की भावनाओं को कम कर सकते हैं, जो मानसिक स्वास्थ्य के लिए लाभकारी है। सामाजिक मीडिया प्लेटफार्मों की व्यापक लोकप्रियता और पहुंच के साथ, यह महत्वपूर्ण है कि हम यह जांचें कि ये डिजिटल वातावरण व्यक्तियों की मनोवैज्ञानिक भलाई को कैसे प्रभावित करते हैं।

मुख्य शब्दः- सामाजिक मीडिया, साइबर बुलिंग, मानसिक स्वास्थ्य।

परिचयः-

सोशल मीडिया हमारे दैनिक जीवन के ताने-बाने में गहराई से समाहित हो चुका है, जिसने हमारे संबंध बनाने, संवाद करने और जानकारी फैलाने के तरीके को मौलिक रूप से बदल दिया है। इसके व्यापक उपयोग के साथ, मानसिक स्वास्थ्य पर इसके संभावित प्रभावों को लेकर चिंताएँ उत्पन्न हुई हैं। फिर भी, सोशल मीडिया ने मानसिक स्वास्थ्य मुद्दों के प्रति कलंक को कम करने और जागरूकता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।[1] यह व्यक्तियों के लिए अपने व्यक्तिगत अनुभव साझा करने और आवश्यक संसाधनों तक पहुँचने का एक मंच प्रदान करता है, जिससे मानसिक स्वास्थ्य चुनौतियों का सामना कर रहे लोगों को सशक्त बनाया जा रहा है। यह लेख सोशल मीडिया और मानसिक कल्याण के बीच जटिल संबंध की पड़ताल करता है, इसके सकारात्मक और नकारात्मक परिणामों पर प्रकाश डालता है। एक ओर, कुछ विद्वान यह तर्क करते हैं कि सोशल मीडिया और स्मार्टफोन का उपयोग कार्य प्रदर्शन को बढ़ा सकता है।[2]

सोशल मीडिया कई व्यक्तियों के जीवन में एक महत्वपूर्ण तत्व बन गया है, जो मानसिक बीमारी की चुनौतियों का सामना कर रहे हैं। सोशल मीडिया का तात्पर्य उन वेब और मोबाइल प्लेटफार्मों से है जो व्यक्तियों को एक आभासी नेटवर्क में दूसरों के साथ जुड़ने की अनुमति देते हैं (जैसे फेसबुक, ट्विटर, इंस्टाग्राम, स्नैपचैट, या लिंक्डइन), जहां वे विभिन्न प्रकार की डिजिटल सामग्री, जैसे जानकारी, संदेश, फोटो या वीडियो साझा, सह-निर्माण या आदान-प्रदान कर सकते हैं। अध्ययनों से पता चला है कि विभिन्न मानसिक विकारों, जैसे अवसाद, मनोवैज्ञानिक विकारों, या अन्य गंभीर मानसिक बीमारियों से ग्रस्त व्यक्ति, सामान्य जनसंख्या के समान दरों पर सोशल मीडिया प्लेटफार्मों का उपयोग करते हैं, जिसमें मध्य आयु और वृद्ध व्यक्तियों में लगभग 70 प्रतिशत से लेकर युवा व्यक्तियों में 97 प्रतिशत से अधिक उपयोग शामिल है।3 अन्य अन्वेषणात्मक अध्ययनों ने पाया है कि मानसिक बीमारी से ग्रस्त कई व्यक्ति अपने व्यक्तिगत अनुभव साझा करने, मानसिक स्वास्थ्य और उपचार विकल्पों के बारे में जानकारी प्राप्त करने, और समान मानसिक स्वास्थ्य चुनौतियों का सामना कर रहे अन्य लोगों से समर्थन देने और प्राप्त करने के लिए सोशल मीडिया की ओर रुख करते हैं।[4]

सोशल मीडिया का विकास अद्वितीय रहा है। इसने न केवल हमारे संवाद और बातचीत के तरीके को पुनः आकार दिया है, बल्कि राजनीतिक विमर्श, उपभोक्ता व्यवहार, और व्यवसायों तथा व्यक्तियों के अपने दर्शकों के साथ जुड़ने के तरीके पर भी गहरा प्रभाव डाला है। ऑनलाइन फोरम के प्रारंभिक दिनों से लेकर फेसबुक, ट्विटर और इंस्टाग्राम जैसे समकालीन प्लेटफार्मों की प्रमुखता तक, सोशल मीडिया ने समाज के परिदृश्य को गहराई से बदल दिया है। सोशल मीडिया का इतिहास इंटरनेट के प्रारंभिक दिनों से शुरू होता है, जहाँ ऑनलाइन फोरम और बुलेटिन बोर्ड ने विभिन्न विषयों पर चर्चा के लिए प्रारंभिक मंच प्रदान किया।[5] ये प्रारंभिक डिजिटल क्षेत्र पाठ-आधारित संवाद और जानकारी के आदान-प्रदान को सुविधाजनक बनाते थे, जो आज के लगातार विकसित हो रहे सोशल मीडिया परिदृश्य की नींव रखता है।

कई अध्ययनों ने यह स्पष्ट किया है कि सोशल मीडिया के अत्यधिक उपयोग और अवसाद, चिंता, एकाकीपन, आत्म-हानि, और यहां तक कि आत्महत्या के विचारों के प्रति संवेदनशीलता के बीच एक मजबूत संबंध है। अनुसंधान से पता चलता है कि सोशल मीडिया से कुछ दिनों का ब्रेक लेने से समग्र कल्याण में महत्वपूर्ण सुधार हो सकता है, जिससे अवसाद और चिंता के लक्षणों में कमी आती है।

सोशल मीडिया प्लेटफार्मों पर आदर्श आत्म-प्रस्तुति की प्रचलित प्रवृत्ति अक्सर अधिक बार और बढ़ी हुई सामाजिक तुलना को प्रेरित करती है। उपयोगकर्ता आमतौर पर अपने आदर्श संस्करणों को सावधानीपूर्वक तैयार करते हैं और उन्हें प्रदर्शित करते हैं, समाज के मानकों के अनुसार ढलते हैं, और नकारात्मक सामग्री की तुलना में सकारात्मक सामग्री साझा करने की प्रवृत्ति रखते हैं। प्रयोगात्मक अनुसंधानों ने यह दर्शाया है कि सोशल मीडिया के संपर्क में आने वाले प्रतिभागियों में नियंत्रण समूहों की तुलना में चिंता और अवसाद के स्तर में वृद्धि होती है। हालांकि, कुछ दीर्घकालिक अध्ययनों ने सोशल मीडिया के उपयोग और मानसिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभावों के बीच एक निश्चित संबंध स्थापित करने में असफलता दिखाई है।[6]

सोशल मीडिया का मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभावः-

1. सामाजिक तुलना और आत्म-सम्मान

मनुष्यों में दूसरों की तुलना करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है, जैसा कि फेस्टिंगर ने 1954 में अपनी सामाजिक तुलना सिद्धांत में प्रस्तावित किया था। यह स्वाभाविक प्रवृत्ति हमारे सटीक आत्म-मूल्यांकन की इच्छा से उत्पन्न होती है। हाल के अध्ययनों से पता चला है कि बच्चों और युवा किशोरों के बीच अत्यधिक सोशल मीडिया उपयोग सकारात्मक आत्म-मूल्य में कमी और नकारात्मक आत्म-मूल्य में वृद्धि का कारण बन सकता है।[7] इसके अतिरिक्त, निरंतर निष्कर्ष बताते हैं कि ऊपर की ओर सामाजिक तुलना, जहां व्यक्ति उन लोगों की तुलना करते हैं जिन्हें वे श्रेष्ठ मानते हैं, विभिन्न जीवन क्षेत्रों में व्यक्तिपरक कल्याण पर नकारात्मक प्रभाव डाल सकती है। मैककंब के शोध ने मानसिक स्वास्थ्य, आत्म-सम्मान, व्यक्तिपरक कल्याण और शरीर छवि पर सोशल मीडिया तुलना के हानिकारक प्रभावों को उजागर किया है।[8]

पूर्व के शोधों ने सोशल मीडिया के उपयोग के विभिन्न परिणामों की जांच की है, जिसमें शरीर छवि, व्यक्तिपरक कल्याण, मनोवैज्ञानिक कल्याण, आत्म-सम्मान और ईर्ष्या की भावनाओं पर इसके प्रभाव शामिल हैं। शरीर छवि के सामाजिक-सांस्कृतिक मॉडल सुझाव देते हैं कि जो व्यक्ति अपनी शारीरिक उपस्थिति की बार-बार तुलना करते हैं, वे शरीर छवि की समस्याओं, जैसे कि शरीर असंतोष और विकृत खाने की आदतों, के विकास के लिए अधिक जोखिम में होते हैं। डिजिटल उपकरणों की व्यापक उपलब्धता, जिसमें फिल्टर और फोटो संपादन सॉफ्टवेयर शामिल हैं, ने सामग्री हेरफेर और अवास्तविक और अप्राप्य सौंदर्य मानकों के प्रचार की समस्या को और बढ़ा दिया है।

2. साइबरबुलिंग

साइबरबुलिंग एक विशेष प्रकार की बुलिंग है, जो एक अपेक्षाकृत हालिया घटना के रूप में उभरी है। इसे अन्यायपूर्ण और विचलित करने वाले व्यवहार के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसमें साइबरबुलिंग करने वाले व्यक्ति सामाजिक मानदंडों और अंतरव्यक्तिगत आचार संहिता का उल्लंघन करते हैं, अपने शिकार के व्यक्तिगत अधिकारों पर आक्रमण करते हैं।[9] ये शिकार, जिनका कोई दोष नहीं होता, गंभीर परिणामों का सामना करते हैं जो उनके मानसिक स्वास्थ्य और शैक्षणिक प्रगति को खतरे में डालते हैं। इसलिए, साइबरबुलिंग का न्याय-मानसिकता के दृष्टिकोण से अध्ययन करना और इसे एक न्यायपूर्ण विष्व में विश्वास के अंतर-व्यक्तिगत भिन्नताओं के माध्यम से स्पष्ट करना महत्वपूर्ण हो जाता है।

अनुसंधान से पता चला है कि साइबरबुलिंग उच्च शिक्षा में युवा लोगों के बीच सबसे अधिक प्रचलित है। इसके अतिरिक्त, साइबरबुलिंग के अनुभवों में उल्लेखनीय स्थिरता होती है, जो तब भी बनी रहती है जब युवा व्यक्ति स्कूल से विश्वविद्यालय में संक्रमण करते हैं। साइबरबुलिंग की विशिष्टता इसकी पुनरावृत्ति में निहित है, जो डिजिटल संदेशों, वीडियो, मीम्स या चित्रों के आसानी से प्रसार, ऑफलाइन संग्रहण और बाद में पुनः देखने की क्षमता से प्रेरित होती है। इसके अलावा, ये सामग्री अक्सर ऑनलाइन बनी रहती है और हटाने के प्रति प्रतिरोधी होती है, एक बार अपलोड होने के बाद इसके प्रभाव को स्थायी बनाती है।

3. चूकने का डर (FOMO)

चूकने का डर (FOMO) एक भावनात्मक प्रतिक्रिया है, जो इस धारणा पर आधारित है कि अन्य लोग अधिक संतोषजनक जीवन जी रहे हैं या महत्वपूर्ण अवसर हाथ से निकल रहे हैं। यह बेचैनी, असंतोष, अवसाद और तनाव की भावनाओं को जन्म दे सकता है। पिछले दशक में सूचना और संचार प्रौद्योगिकियों (ICT) का तेजी से प्रसार वैष्विक सामाजिक और संचार मानदंडों को पुनः आकारित कर चुका है, जिससे विद्वानों ने इस परिवर्तन के प्रतिकूल परिणामों की जांच करने की आवश्यकता महसूस की है। ट्यूरल एट अल. (2019) इस घटना को ''डिजिटलीकरण का अंधेरा पक्ष'' के रूप में वर्णित करते हैं, यह तर्क करते हुए कि इसने व्यक्तियों के सामाजिक, व्यक्तिगत और पेशेवर क्षेत्रों के बीच की सीमाओं को धुंधला कर दिया है।[10] परिणामस्वरूप, विद्वानों ने यह अध्ययन करने में बढ़ती रुचि दिखाई है कि ये प्रौद्योगिकियाँ कर्मचारियों के व्यवहार को कैसे प्रभावित करती हैं, विशेष रूप से सोशल मीडिया के अंधेरे पहलुओं से संबंधित घटनाओं, जैसे कि चूकने के डर के संदर्भ में।

निष्कर्षः-

सोशल मीडिया का मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव बहुआयामी है, जिसमें सकारात्मक और नकारात्मक दोनों परिणाम शामिल हैं। यह एक प्रकार का संबंध और समर्थन प्रदान कर सकता है, लेकिन यह नकारात्मक सामाजिक तुलना, साइबरबुलिंग और FOMO के माध्यम से मानसिक कल्याण के लिए जोखिम भी उत्पन्न करता है। व्यक्तियों के लिए यह आवश्यक है कि वे सोशल मीडिया का उपयोग सावधानीपूर्वक करें, सीमाएँ निर्धारित करें, और आवश्यकता पड़ने पर सहायता प्राप्त करें ताकि वे अपने ऑनलाइन और ऑफलाइन जीवन के बीच एक स्वस्थ संतुलन बनाए रख सकें। इसके अतिरिक्त, समाज और सोशल मीडिया प्लेटफार्मों को एक सुरक्षित और अधिक सहायक ऑनलाइन वातावरण बनाने की दिशा में काम करना चाहिए।

संदर्भः-

1. काओ, एक्स., गुओ, एक्स., वोगेल, डी., - झांग, एक्स. (2016). कर्मचारियों के कार्य प्रदर्शन पर सोशल मीडिया के प्रभाव की खोज। इंटरनेट रिसर्च, 26(2), 529-545।
2. चू, टी. एच. (2020). सोशल मीडिया उपयोग और कर्मचारी परिणामों के बीच संबंध का मेटा-विश्लेषणात्मक समीक्षा। टेलीमैटिक्स और सूचना विज्ञान, 50, 101379।
3. गोंजालेस, ए. एल., - हैंकॉक, जे. टी. (2011). मेरे फेसबुक दीवार पर दर्पण, दर्पणः फेसबुक के संपर्क का आत्म-सम्मान पर प्रभाव। साइबर मनोविज्ञान, व्यवहार और सामाजिक नेटवर्किंग।
4. हाफरकंप, एन., ईमलर, एस., पापादाकिस, ए., - क्रुक, जे. (2012). पुरुष मंगल से हैं, महिलाएं शुक्र से? सोशल नेटवर्किंग साइट्स पर आत्म-प्रस्तुति में लिंग भिन्नताओं की जांच। साइबर मनोविज्ञान, व्यवहार और सामाजिक नेटवर्किंग, 15(2), 91-98।
5. फैन, एक्स., डेंग, एन., डोंग, एक्स., लिन, वाई., - वांग, जे. (2019). क्या दूसरों की आत्म-प्रस्तुति सोशल मीडिया पर व्यक्तिगत विषयपअम कल्याण को प्रभावित करती है? एक मध्यस्थता मॉडल। टेलीमैटिक्स और सूचना विज्ञान, 41, 86-102।
6. Coyne, S., Rogers, A.Z, urcher, J., Stockdale, L., & Booth, M. (2020). क्या सोशल मीडिया का उपयोग करने में बिताया गया समय मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव डालता है?: एक आठ वर्षीय दीर्घकालिक अध्ययन। कंप्यूटर इन ह्यूमन बिहेवियर, 104, 106160।
7. Schemer, C., Masur, P., Gei,, S., Müller, P., & SchDrfer, S. (2020). इंटरनेट और सोशल मीडिया के उपयोग का कल्याण पर प्रभावरू नौ वर्षों में किशोरों का एक दीर्घकालिक विश्लेषण। जर्नल ऑफ कंप्यूटर-मीडिएटेड कम्युनिकेशन, 26(1), 1-21।
8. Festinger, L. (1954). सामाजिक तुलना प्रक्रियाओं का एक सिद्धांत। मानव संबंध, 7(2), 117-140।
9. Vartanian, L., & Dey, S. (2013). आत्म-धारणा की स्पष्टता, पतले आदर्श का आंतरिककरण, और रूप-सम्बंधित सामाजिक तुलना के रूप में शरीर की असंतोष की भविष्यवाणी करने वाले कारक। बॉडी इमेज, 10(4), 495-500।
10. Lerner, M.J. (1980). एक न्यायपूर्ण विष्व में विष्वासः एक मौलिक भ्रांति। सामाजिक मनोविज्ञान में दृष्टिकोण। प्लेनम प्रेस।

समन्वित ग्रामीण विकास योजनाओं का प्रभाव: अरवल जिले में सरकारी योजनाओं की भूमिका का अध्ययन

पूजा कुमारी

शोधार्थी, भूगोल विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया

सारांश

अरवल, एक कृषि आधारित और सामाजिक-आर्थिक रूप से पिछड़ा जिला, विभिन्न सरकारी योजनाओं जैसे MGNREGA, PMAY-G, NRLM, PMGSY, और SBM-G के कार्यान्वयन से लाभान्वित हुआ है। इन योजनाओं ने ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन, आवास, स्वच्छता, बुनियादी ढांचे, और महिलाओं के सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। डेटा और तालिकाओं के माध्यम से, लेख दर्शाता है कि MGNREG। ने रोजगार के अवसर बढ़ाए, PMAY-G ने पक्के मकानों की संख्या में वृद्धि की, NRLM ने स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त किया, PMGSY ने सड़क संपर्क को बेहतर बनाया, और SBM-G ने स्वच्छता को बढ़ावा दिया। हालांकि, समन्वय की कमी, अपर्याप्त निधि, और निगरानी की कमियों जैसी चुनौतियां बनी हुई हैं। स्थानीय भागीदारी और पारदर्शिता बढ़ाकर इन योजनाओं का प्रभाव और मजबूत किया जा सकता है। यह अध्ययन अरवल जैसे पिछड़े क्षेत्रों में ग्रामीण विकास के लिए समन्वित दृष्टिकोण की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

सूचक शब्द: समन्वित ग्रामीण विकास, सामाजिक-आर्थिक विकास, ग्रामीण ढ़ांचा, सरकारी योजना।

परिचय

ग्रामीण विकास किसी भी राष्ट्र के समग्र विकास का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, विशेष रूप से भारत जैसे देश में, जहां जनसंख्या का एक बड़ा हिस्सा ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करता है। भारत सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक, आर्थिक और भौतिक विकास को बढ़ावा देने के लिए कई योजनाएं और कार्यक्रम शुरू किए हैं। ये योजनाएं समन्वित ग्रामीण विकास (Integrated Rural Development) के सिद्धांत पर आधारित हैं, जो ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी उन्मूलन, रोजगार सृजन, बुनियादी ढांचे का विकास और सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देने का लक्ष्य रखती हैं। यह लेख बिहार के अरवल जिले में समन्वित ग्रामीण विकास योजनाओं के प्रभाव का विश्लेषण करता है, विशेष रूप से सरकारी योजनाओं की भूमिका पर ध्यान केंद्रित करते हुए। यह अध्ययन भौगोलिक दृष्टिकोण से अरवल जिले की सामाजिक-आर्थिक स्थिति, इन योजनाओं के कार्यान्वयन और उनके प्रभावों का मूल्यांकन करता है।[1]

अरवल जिले का भौगोलिक और सामाजिक-आर्थिक परिदृश्य

अरवल जिला, बिहार का एक अपेक्षाकृत नया जिला है, जिसे 2001 में मगध प्रमंडल के अंतर्गत गया जिले से अलग कर बनाया गया था। यह जिला बिहार के दक्षिण-पश्चिमी भाग में स्थित है और इसका क्षेत्रफल लगभग 483 वर्ग किलोमीटर है। जिले की जनसंख्या 2011 की जनगणना के अनुसार लगभग 7,00,843 थी, जिसमें ग्रामीण जनसंख्या का हिस्सा 92% से अधिक है। यह जिला मुख्य रूप से कृषि पर निर्भर है, और इसकी अर्थव्यवस्था में धान, गेहूं, मक्का और दालें प्रमुख फसलें हैं।

अरवल जिले की भौगोलिक स्थिति इसे बिहार के अन्य हिस्सों से जोड़ती है, लेकिन इसकी सड़क और रेल कनेक्टिविटी सीमित है। जिले में सोन नदी और उसकी सहायक नदियां जल संसाधनों का प्रमुख स्रोत हैं, जो सिंचाई के लिए महत्वपूर्ण हैं। हालांकि, बाढ़ और सूखे जैसी प्राकृतिक आपदाएं जिले की कृषि और अर्थव्यवस्था को प्रभावित करती हैं। सामाजिक-आर्थिक दृष्टिकोण से, अरवल बिहार के सबसे पिछड़े जिलों में से एक है। यहां साक्षरता दर 55.2 प्रतिशत (2011 की जनगणना) है, जो राष्ट्रीय औसत से काफी कम है। गरीबी रेखा से नीचे रहने वाली जनसंख्या का अनुपात भी उच्च है, जो ग्रामीण विकास योजनाओं की आवश्यकता को रेखांकित करता है।[2]

समन्वित ग्रामीण विकास योजनाओं का अवलोकन

समन्वित ग्रामीण विकास योजनाएं (Integrated Rural Development Programmes - IRDP) ग्रामीण क्षेत्रों में बहुआयामी विकास को बढ़ावा देने के लिए डिजाइन की गई हैं। इन योजनाओं का उद्देश्य विभिन्न क्षेत्रों जैसे कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास, बुनियादी ढांचा, और रोजगार सृजन में समन्वित प्रयासों के माध्यम से ग्रामीण समुदायों के जीवन स्तर को बेहतर बनाना है। भारत सरकार ने इस दिशा में कई योजनाएं शुरू की हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख योजनाएं निम्नलिखित हैं:

1. महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम: यह योजना ग्रामीण क्षेत्रों में प्रत्येक परिवार को एक वित्तीय वर्ष में कम से कम 100 दिन का गारंटीकृत रोजगार प्रदान करती है। इसका उद्देश्य ग्रामीण गरीबों को आर्थिक सुरक्षा प्रदान करना और बुनियादी ढांचे का विकास करना है।
2. प्रधानमंत्री आवास योजना - ग्रामीण: इस योजना का लक्ष्य 2022 तक सभी पात्र ग्रामीण परिवारों को पक्के घर उपलब्ध कराना था। यह योजना गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों को वित्तीय सहायता प्रदान करती है।
3. राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन - आजीविका: यह योजना स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से ग्रामीण गरीबों, विशेष रूप से महिलाओं, को सशक्त बनाने और उनकी आजीविका को बढ़ाने पर केंद्रित है।
4. प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना: यह योजना ग्रामीण क्षेत्रों में सड़क संपर्क को बेहतर बनाने के लिए शुरू की गई थी, जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था को बढ़ावा मिले।
5. दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल्य योजना: यह योजना ग्रामीण युवाओं को कौशल प्रशिक्षण प्रदान करके उनकी रोजगार क्षमता को बढ़ाने पर केंद्रित है।
6. स्वच्छ भारत मिशन - ग्रामीण: इस मिशन का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में स्वच्छता को बढ़ावा देना और खुले में शौच से मुक्ति प्राप्त करना है।

ये योजनाएं अरवल जिले में भी लागू की गई हैं और इनका प्रभाव विभिन्न सामाजिक-आर्थिक और भौगोलिक मापदंडों पर देखा जा सकता है।[3]

अरवल जिले में सरकारी योजनाओं का कार्यान्वयन

अरवल जिले में उपरोक्त योजनाओं का कार्यान्वयन विभिन्न स्तरों पर किया गया है। जिला प्रशासन, पंचायती राज संस्थाएं, और गैर-सरकारी संगठन (NGOs) इन योजनाओं को लागू करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। निम्नलिखित अनुभागों में प्रत्येक योजना के कार्यान्वयन और प्रभाव का विश्लेषण किया गया है।

1. महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (MGNREGA)

MGNREGA अरवल जिले में ग्रामीण रोजगार सृजन का एक प्रमुख साधन रहा है। इस योजना के तहत ग्रामीण परिवारों को सड़क निर्माण, तालाब खोदने, और जल संरक्षण जैसे कार्यों में रोजगार प्रदान किया जाता है। 2018-19 में, अरवल जिले में MGNREGA के तहत 69,809 करोड़ रुपये का खर्च दर्ज किया गया, जो इस योजना के शुरू होने के बाद सबसे अधिक था।

MGNREGA के तहत अरवल जिले में रोजगार सृजन (2018-2022)

वर्ष	पंजीकृत परिवार	रोजगार प्राप्त परिवार	कुल कार्य दिवस (लाख में)	औसत मजदूरी (रुपये/दिन)
2018–19	45230	38450	12.5	178
2019–20	46780	40120	13.8	190
2020–21	48900	42300	15.2	202
2021–22	50120	43780	16	210

MGNREGA के तहत अरवल जिले में रोजगार प्राप्त करने वाले परिवारों की संख्या और कुल कार्यदिवसों में वृद्धि हुई है। हालांकि, कई अध्ययनों के अनुसार, सूखाग्रस्त क्षेत्रों में इस योजना का प्रभाव सीमित रहा है, क्योंकि कार्यों का चयन हमेशा स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं होता।[4]

2. प्रधानमंत्री आवास योजना - ग्रामीण (PMAY-G)

PMAY-G के तहत अरवल जिले में गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों को पक्के मकान बनाने के लिए वित्तीय सहायता प्रदान की गई है। मैदानी क्षेत्रों में प्रत्येक लाभार्थी को 1.20 लाख रुपये और पहाड़ीध्कठिन क्षेत्रों में 1.30 लाख रुपये की सहायता दी जाती है। इसके अतिरिक्त, स्वच्छ भारत मिशन के तहत शौचालय निर्माण के लिए 12,000 रुपये की अतिरिक्त सहायता प्रदान की जाती है।

च्ड।ल्ळ के तहत अरवल जिले में मकान निर्माण (2016-2022)

वर्ष	लक्षित मकान	पूर्ण मकान	स्वीकृत राशि (करोड़ रुपये में)	शौचालय निर्माण
2016–17	5000	3800	456	3200
2017–18	6500	5200	624	4800
2018–19	7800	6100	732	5900
2019–20	8200	6500	780	6200
2020–21	9000	7000	840	6800
2021–22	10000	7470	896	7200

PMAY-G ने अरवल जिले में ग्रामीण आवास की स्थिति में सुधार किया है, लेकिन लक्षित मकानों की तुलना में पूर्ण मकानों की संख्या में कमी देखी गई है। बिहार में PMAY-G के तहत कुल लक्षित एक करोड़ मकानों में से 7.47 लाख मकान अभी भी पूर्ण होने बाकी हैं, जिनमें से 26 प्रतिशत अरवल और पड़ोसी जिलों में हैं।[5]

3. राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM) - आजीविका

छत्स्ड का उद्देश्य स्वयं सहायता समूहों (SHGs) के माध्यम से ग्रामीण महिलाओं को सशक्त बनाना है। अरवल जिले में SHGs ने महिलाओं को सूक्ष्म-वित्त और कौशल प्रशिक्षण प्रदान करके उनकी आय में वृद्धि की है। 2021 में, अरवल जिले में लगभग 56 करोड़ रुपये का रिवॉल्विंग फंड और कम्युनिटी इनवेस्टमेंट फंड SHGs को जारी किया गया, जो पिछले वर्ष की तुलना में 75 प्रतिशत अधिक था।

NRLM के तहत अरवल जिले में SHGs का प्रदर्शन (2018-2022)

वर्ष	लक्षित मकान	पूर्ण मकान	स्वीकृत राशि (करोड़ रुपये में)	शौचालय निर्माण
2016–17	5000	3800	456	3200
2017–18	6500	5200	624	4800
2018–19	7800	6100	732	5900
2019–20	8200	6500	780	6200
2020–21	9000	7000	840	6800
2021–22	10000	7470	896	7200

NRLM ने अरवल जिले में ग्रामीण महिलाओं के आर्थिक सशक्तिकरण में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। SHGs के माध्यम से महिलाओं को वित्तीय स्वतंत्रता और कौशल विकास के अवसर प्राप्त हुए हैं, जिससे उनकी सामाजिक स्थिति में सुधार हुआ है।[6]

4. प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना (PMGSY)

PMGSY के तहत अरवल जिले में ग्रामीण सड़कों का निर्माण किया गया है, जिससे बाजारों और शहरी केंद्रों तक पहुंच में सुधार हुआ है। 2014-2022 के बीच, अरवल जिले में 500 किलोमीटर से अधिक ग्रामीण सड़कों का निर्माण किया गया है।

PMGSY के तहत अरवल जिले में सड़क निर्माण (2014-2022)

वर्ष	निर्मित सड़क (किमी)	स्वीकृत राशि (करोड़ रुपये में)	लाभान्वित गांव
2014–15	80	120	25
2015–16	95	140	30
2016–17	110	165	35
2017–18	125	180	40
2018–19	140	200	45
2019–20	150	220	50

PMGSY ने अरवल जिले में ग्रामीण कनेक्टिविटी को बेहतर बनाया है, जिससे कृषि उत्पादों के परिवहन और बाजार तक पहुंच में सुधार हुआ है। हालांकि, सड़कों की गुणवत्ता और रखरखाव एक चुनौती बनी हुई है।[7]

5. स्वच्छ भारत मिशन - ग्रामीण (SBM-G)

SBM-G ने अरवल जिले में स्वच्छता और शौचालय निर्माण को बढ़ावा दिया है। 2019 तक, अरवल जिला खुले में शौच से मुक्त (ODF) घोषित किया गया था।

SBM-G के तहत अरवल जिले में शौचालय निर्माण (2014-2019)

वर्ष	निर्मित शौचालय	स्वीकृत राशि (करोड़ रुपये में)	ODF गांव
2014–15	5,000	6	10
2015–16	8,000	9.6	20
2016–17	12,000	14.4	35
2017–18	15,000	18	50
2018–19	18,000	21.6	75

SBM-G ने अरवल जिले में स्वच्छता की स्थिति में सुधार किया है, लेकिन शौचालयों के उपयोग और रखरखाव में अभी भी सुधार की आवश्यकता है।[8]

समन्वित ग्रामीण विकास योजनाओं का प्रभाव

अरवल जिले में समन्वित ग्रामीण विकास योजनाओं का प्रभाव निम्नलिखित क्षेत्रों में देखा जा सकता है:

1. आर्थिक विकास: MGNREGA और NRLM ने ग्रामीण परिवारों की आय में वृद्धि की है। विशेष रूप से, SHGs ने महिलाओं को सूक्ष्म-उद्यम शुरू करने के लिए प्रोत्साहित किया है, जिससे उनकी आर्थिक स्वतंत्रता बढ़ी है।
2. बुनियादी ढांचा विकास: PMGSY और PMAY-G ने ग्रामीण सड़कों और आवास की स्थिति में सुधार किया है। सड़क कनेक्टिविटी ने ग्रामीण उत्पादों के लिए बाजार पहुंच को आसान बनाया है।
3. स्वच्छता और स्वास्थ्य: SBM-G ने स्वच्छता के स्तर को बेहतर बनाया है, जिससे स्वास्थ्य समस्याओं में कमी आई है। हालांकि, जागरूकता और व्यवहार परिवर्तन में अभी और प्रयास की आवश्यकता है।
4. सामाजिक सशक्तिकरण: NRLM और MGNREGA ने महिलाओं और अन्य कमजोर वर्गों को सशक्त बनाया है। SHGs ने ग्रामीण महिलाओं को सामाजिक और आर्थिक रूप से मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

5. शिक्षा और कौशल विकास: DDU-GKY ने ग्रामीण युवाओं को कौशल प्रशिक्षण प्रदान करके उनकी रोजगार क्षमता को c<k k gS ft l s' kgjh {ks esa çokl d h nj esa d eh v kbZ gS

चुनौतियां और कमियां

हालांकि समन्वित ग्रामीण विकास योजनाओं ने अरवल जिले में कई सकारात्मक परिणाम दिए हैं, फिर भी कुछ चुनौतियां बनी हुई हैं:

1. समन्वय की कमी: विभिन्न विभागों के बीच समन्वय की कमी के कारण योजनाओं का प्रभाव सीमित हो जाता है।
2. अपर्याप्त निधि: कई योजनाओं को पर्याप्त वित्तीय संसाधनों की कमी का सामना करना पड़ता है, जिससे परियोजनाएं समय पर पूरी नहीं हो पातीं।
3. खराब लक्ष्यीकरण: लाभार्थियों का चयन हमेशा सटीक नहीं होता, जिसके कारण कुछ पात्र परिवार योजनाओं से वंचित रह जाते हैं।
4. निगरानी और मूल्यांकन: योजनाओं की निगरानी और मूल्यांकन प्रणाली में सुधार की आवश्यकता है ताकि उनके प्रभाव को बेहतर ढंग से मापा जा सके।
5. स्थानीय भागीदारी की कमी: कई योजनाओं में स्थानीय समुदाय की भागीदारी कम होती है, जिससे योजनाओं की स्थिरता प्रभावित होती है।[10]

निष्कर्ष

अरवल जिले में समन्वित ग्रामीण विकास योजनाओं ने सामाजिक-आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। MGNREGA, PMAY-G, NRLM, PMGSY, और SBM-G जैसी योजनाओं ने ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार, आवास, स्वच्छता, और बुनियादी ढांचे के क्षेत्र में सुधार किया है। हालांकि, समन्वय की कमी, अपर्याप्त निधि, और निगरानी की कमियों जैसे मुद्दों को संबोधित करने की आवश्यकता है। भविष्य में, स्थानीय भागीदारी को बढ़ाने, निगरानी तंत्र को मजबूत करने, और योजनाओं के कार्यान्वयन में पारदर्शिता सुनिश्चित करने से इन योजनाओं का प्रभाव और बढ़ाया जा सकता है। अरवल जिले जैसे पिछड़े क्षेत्रों में समन्वित ग्रामीण विकास योजनाएं ग्रामीण भारत के समग्र विकास के लिए एक मजबूत आधार प्रदान करती हैं।

संदर्भ

1. सिंह, के. (2015). भारत में ग्रामीण विकास: नीतियां और कार्यक्रम. सेज प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. चौधरी, ए. (2017). भारत में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम: चुनौतियां और अवसर. ग्रामीण विकास जर्नल, 36(2)।
3. वही
4. बिहार सरकार. (2019). MGNREG। कार्यान्वयन पर वार्षिक रिपोर्ट. ग्रामीण विकास विभाग, पटना।
5. कुमार, एस., और शर्मा, आर. (2019). भारत में ग्रामीण आवास योजनाएं: पीएमएवाई-जी का मूल्यांकन. ग्रामीण अध्ययन जर्नल, 45(4)।
6. शर्मा, पी. (2022). स्वयं सहायता समूहों के माध्यम से महिला सशक्तिकरण: छत्स्ड से साक्ष्य. जेंडर अध्ययन जर्नल, 31(2), 201-215।
7. गुप्ता, ए. (2021). बुनियादी ढांचा विकास और ग्रामीण कनेक्टिविटी: च्डळैल् का केस अध्ययन. भारतीय लोक प्रशासन जर्नल, 67(3), 321-335।
8. कुमार, आर. (2018). स्वच्छ भारत मिशन का ग्रामीण स्वच्छता पर प्रभाव. आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, 53(12)।
9. बिहार सरकार. (2021). छत्स्ड प्रगति रिपोर्ट: अरवल जिला. ग्रामीण विकास विभाग, पटना।
10. ग्रामीण विकास मंत्रालय. (2020). PMGSY और PMAY-G वार्षिक रिपोर्ट. भारत सरकार, नई दिल्ली।

"बौद्ध धर्म और भारतीय संस्कृतिः परस्पर संबंधों का विश्लेषण"

अजय बड़सीवाल

शोधार्थी, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, गुरुकुल काँगड़ी सम-विश्वविद्यालय, हरिद्वार उत्तराखंड

प्रो० रेनू शुक्ला

प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग (कन्या गुरुकुल परिसर देहरादून) गुरुकुल काँगड़ी सम-विश्वविद्यालय, हरिद्वार उत्तराखंड

भारतीय संस्कृति का इतिहास विभिन्न धार्मिक परंपराओं, दार्शनिक प्रवृत्तियों और सामाजिक आंदोलनों के सतत संवाद की गाथा है। वैदिक युग से लेकर जैन, बौद्ध और आगे चलकर भक्ति परंपराओं तक ख्र प्रत्येक धारा ने भारतीय समाज की जीवन-दृष्टि और सांस्कृतिक मूल्यबोध को गहराई से प्रभावित किया। छठी शताब्दी ईसा पूर्व का काल भारतीय इतिहास में संक्रमण-काल माना जाता है।भारतीय संस्कृति सदियों से अनेक धर्मों, दर्शन और परंपराओं का संगम रही है। वैदिक धर्म से लेकर जैन, बौद्ध और भक्ति परंपराएँ ख्र सभी ने भारतीय समाज के जीवन-मूल्यों को प्रभावित किया है। छठी शताब्दी ईसा पूर्व में जब सामाजिक और धार्मिक जीवन यज्ञ-कर्मकांड और वर्ण-व्यवस्था से बँधा हुआ था[1], उसी समय महात्मा बुद्ध ने करुणा, अहिंसा और समानता पर आधारित धर्म का संदेश दिया। बौद्ध धर्म और भारतीय संस्कृति के बीच का यह संबंध केवल धार्मिक नहीं बल्कि सामाजिक, दार्शनिक, राजनीतिक और कलात्मक भी है[2] महात्मा बुद्ध का जीवन और उनके विचार भारतीय संस्कृति के मूल्यों ख्र जैसे करुणा, सहिष्णुता और धर्मनिरपेक्षता को गहराई से समृद्ध करते हैं। वहीं भारतीय संस्कृति ने बौद्ध धर्म को फलने-फूलने के लिए एक उपजाऊ भूमि प्रदान की, जिसके परिणामस्वरूप वह न केवल भारत में बल्कि पूरे एशिया में फैल सका।[3]

बौद्ध धर्म का उदय एक विशेष ऐतिहासिक संदर्भ में हुआ। छठी शताब्दी ईसा पूर्व में भारत सामाजिक और धार्मिक उथल-पुथल से गुजर रहा था। वैदिक धर्म अत्यधिक यज्ञप्रधान और ब्राह्मणवादी हो गया था, जिसमें साधारण जन की पहुँच सीमित थी। वर्ण व्यवस्था ने समाज को कठोर वर्गों में बाँट दिया था। इसी के प्रतिकार स्वरूप, विभिन्न श्रमण परंपराएँ उभर रही थीं जिनमें बौद्ध धर्म सबसे प्रभावशाली साबित हुआ।[4]

महात्मा बुद्ध ने जीवन की समस्याओं को समझने के लिए चार आर्य सत्य और अष्टांगिक मार्ग प्रस्तुत किया। ये न केवल धार्मिक सुधार थे बल्कि भारतीय संस्कृति के नैतिक और दार्शनिक आधार को पुनः परिभाषित करने वाले विचार थे।[5] बौद्ध धर्म और भारतीय दर्शन भारतीय दर्शन परंपरा बहुस्तरीय और बहुविध रही है। वैदिक और उपनिषदों की दार्शनिक परंपरा जहाँ आत्मा और ब्रह्म के अद्वैत संबंध को महत्व देती थी, वहीं बौद्ध धर्म ने "अनात्मवाद" और "प्रतित्यसमुत्पाद" का प्रतिपादन कर भारतीय दर्शन को एक नई दिशा प्रदान की। महात्मा बुद्ध ने आत्मा या आत्मन के अस्तित्व को नकारते हुए यह प्रतिपादित किया कि संसार में सब कुछ नश्वर है और दुख का मूल कारण तृष्णा है।[6] बौद्ध धर्म के चार आर्य सत्य और अष्टांगिक मार्ग न केवल आचार और नैतिकता पर आधारित हैं, बल्कि वे दार्शनिक दृष्टिकोण से भी भारतीय चिंतन को गहराई देते हैं। जहाँ उपनिषदों में मुक्ति आत्मज्ञान से मानी गई है, वहीं बौद्ध धर्म में निर्वाण को तृष्णा-क्षय की परिणति बताया गया है।[7] नागार्जुन का शून्यवाद भारतीय दर्शन की परंपरा में सबसे महत्वपूर्ण योगदानों में से एक है। इस सिद्धांत के अनुसार वस्तुओं का कोई स्थायी स्वरूप नहीं है; वे केवल परस्पर निर्भरता से अस्तित्व में हैं। यह विचार वेदांत के "माया" और "ब्रह्म" के विचार से तुलनात्मक रूप से समझा जा सकता है।[8] इसके अतिरिक्त योगाचार संप्रदाय ने "विज्ञानवाद" का प्रतिपादन किया, जिसमें यह कहा गया कि बाह्य जगत का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है; वह केवल चित्त-विज्ञान की प्रक्रिया है। यह विचार सांख्य और वेदांत दर्शन के साथ संवाद करता हुआ दिखाई देता है।[9] इस प्रकार बौद्ध धर्म भारतीय दर्शन का अंग होते हुए भी उससे अलग अपना विशिष्ट स्थान निर्मित करता है।

भारतीय कला और स्थापत्य में बौद्ध प्रभाव

भारतीय संस्कृति और कला का विकास सदैव धार्मिक एवं दार्शनिक धाराओं से गहराई से जुड़ा रहा है। छठी शताब्दी ईसा पूर्व से प्रारंभ हुआ बौद्ध धर्म का प्रसार केवल धार्मिक आंदोलन नहीं था, बल्कि इसने भारतीय कला और स्थापत्य को नई दिशा प्रदान की। प्रारंभिक बौद्ध परंपरा में बुद्ध के प्रत्यक्ष रूपांकन से परहेज किया गया और प्रतीकात्मक रूपों – जैसे अशोक चक्र, कमल, धर्मचक्र, पदचिह्न और स्तूप ख़ का प्रयोग किया गया। किंतु बुद्ध के निर्वाण के पश्चात उनकी स्मृति को चिरस्थायी बनाने हेतु स्तूपों, विहारों और चौत्यगृहों का निर्माण व्यापक रूप से हुआ। सांची, भरहुत और अमरावती जैसे स्तूप भारतीय स्थापत्य के उत्कर्ष के उदाहरण है जो सांची स्तूप और अमरावती के तोरण बौद्ध कला की उत्कृष्टता को दर्शाते हैं [10]। सांची स्तूप की तोरणों पर उत्कीर्ण जातक कथाएँ बौद्ध नैतिकता और लोककथाओं के कलात्मक रूपांतरण का सुंदर उदाहरण हैं।[11] बौद्ध धर्म ने भारतीय गुफा–परंपरा को भी नई ऊँचाइयों तक पहुँचाया। अजंता और एलोरा की गुफाएँ चित्रकला और भित्ति–चित्रों की विश्व–प्रसिद्ध धरोहर हैं, ये गुफाएँ भारतीय भित्तिचित्रकला की शिखर उपलब्धि हैं।[12] इन चित्रों में बुद्ध के जीवन और जातक कथाओं का यथार्थ और भावपूर्ण चित्रण मिलता है।[13] बौद्ध धर्म के प्रसार के समय भारत में विदेशी प्रभावों का संगम भी हुआ। गांधार कला में ग्रीक–रोमन शैली और भारतीय आध्यात्मिकता का अद्‌भुत संगम है।[14] यहाँ बुद्ध की प्रतिमाएँ ग्रीक–रोमन शैली में बनीं, जबकि मथुरा कला में उन्हें अधिक भारतीय स्वरूप मिला। इन दोनों शैलियों ने आगे चलकर सम्पूर्ण एशिया की बौद्ध कला को प्रभावित किया।[15] बौद्ध भिक्षुओं के लिए निर्मित विहार और चौत्यगृह शिक्षा, ध्यान और धार्मिक क्रियाओं के केंद्र बने। नासिक, कार्ले और अजंता की गुफाएँ इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। इन स्थापत्य संरचनाओं ने भारतीय वास्तुकला के विकास में दीर्घकालीन योगदान दिया।[16] इस प्रकार बौद्ध धर्म ने भारतीय कला और स्थापत्य को आध्यात्मिक गहराई और वैश्विक पहचान दिलाई।

सामाजिक–सांस्कृतिक सुधार

बौद्ध धर्म के उदय का सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव भारतीय समाज की संरचना और मूल्यों पर पड़ा। महात्मा बुद्ध ने अपने समय की अन्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्थाओं को चुनौती दी और समानता, करुणा तथा अहिंसा पर आधारित जीवन का आदर्श प्रस्तुत किया। बुद्ध ने जाति व्यवस्था का विरोध कर कर्म और आचरण को श्रेष्ठता का आधार माना।[17] अम्बट्ठ सुत्त और वासेट्ठ सुत्त में बुद्ध ने स्पष्ट कहा कि ब्राह्मण जन्म से नहीं बल्कि आचरण से होता है।[18] इस दृष्टिकोण ने भारतीय समाज में व्याप्त जातिगत भेदभाव को चुनौती दी और समानता के मूल्य को स्थापित किया।[19] स्त्रियों की स्थिति और भिक्षुणी संघ बौद्ध धर्म ने स्त्रियों को भी धार्मिक जीवन में प्रवेश का अवसर दिया। महाप्रजापति गौतमी के आग्रह पर बुद्ध ने भिक्षुणी संघ की स्थापना की। भिक्षुणी संघ की स्थापना से महिलाओं को धार्मिक और सामाजिक स्वतंत्रता मिली,[20] इससे महिलाओं को शिक्षा, आत्मनिर्भरता और आध्यात्मिक विकास का मार्ग मिला।[21] नैतिकता और करुणा का प्रसार बुद्ध का उपदेश सामाजिक नैतिकता पर केंद्रित था। उन्होंने पंचशील और अष्टांगिक मार्ग द्वारा हिंसा, चोरी, असत्य और मद्यपान से दूर रहने का आग्रह किया। पंचशील और अष्टांगिक मार्ग सामाजिक नैतिकता के लिए मार्गदर्शक सिद्ध हुए।[22] यह नैतिकता केवल व्यक्तिगत नहीं बल्कि सामाजिक जीवन को भी शांति और करुणा से भरने वाली थी।[23] लोकजीवन और सामाजिक सुधार बौद्ध संघ केवल धार्मिक ही नहीं, बल्कि सामाजिक संस्थाएँ भी थे। ये शिक्षा, चिकित्सा और दान के केंद्र बने। इससे भारतीय समाज में सेवा, सहयोग और करुणा की संस्कृति का विकास हुआ।[24] इस प्रकार बौद्ध धर्म ने जाति, लिंग और सामाजिक असमानताओं को चुनौती देते हुए भारतीय संस्कृति को अधिक मानवीय और समतामूलक दिशा दी।

राजनीति और बौद्ध धर्म

बौद्ध धर्म का भारतीय राजनीति पर प्रभाव गहरा और दूरगामी रहा है। विशेषकर मौर्य सम्राट अशोक के शासनकाल में यह प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। कलिंग युद्ध (261 ईसा पूर्व) के बाद अशोक ने हिंसा का त्याग कर बौद्ध धर्म को अपनाया। उसके पश्चात् उसने "धम्म" को राज्य की नीति बना दिया। अशोक ने धम्म को शासन की नीति बनाकर राजनीति को करुणा और अहिंसा से जोड़ा।[25] धम्म का अर्थ धार्मिक कट्टरता नहीं बल्कि नैतिक आचरण, सहिष्णुता और करुणा था। अशोक के शिलालेखों में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि उसने प्रजा के हित के लिए धर्म प्रचारकों को नियुक्त किया और प्राणियों के प्रति दया एवं अहिंसा का संदेश फैलाया।[26] उसके शिलालेखों में प्राणीमात्र के प्रति दया का स्पष्ट उल्लेख है।[27] अशोक ने धर्म को राजनीति का सहायक बनाया। उसने कहा कि राजा का कर्तव्य केवल शासन करना नहीं, बल्कि प्रजा के नैतिक उत्थान का

भी है। अशोक के "धम्म महामात्र" धार्मिक और सामाजिक समरसता के लिए कार्य करते थे।[28] यह राजधर्म भारतीय परंपरा में पहली बार व्यावहारिक रूप से लागू हुआ। अशोक ने बौद्ध धर्म को केवल भारत तक सीमित नहीं रखा। उसने अपने पुत्र महेंद्र और पुत्री संघमित्रा को श्रीलंका भेजा, जहाँ बौद्ध धर्म गहराई से स्थापित हुआ। इसके अतिरिक्त बौद्ध धर्म का प्रसार मध्य एशिया, बर्मा, चीन, तिब्बत और जापान तक हुआ।[29] इस प्रकार बौद्ध धर्म भारत की "सांस्कृतिक विदेश नीति" का माध्यम बना।नालंदा और विक्रमशिला विश्वविद्यालयों ने बौद्ध शिक्षा को वैश्विक स्तर पर पहुँचाया।[30]

इस प्रकार बौद्ध धर्म ने भारतीय राजनीति को अहिंसा, करुणा और नैतिकता से जोड़ा और भारत को एक सांस्कृतिक महासत्ता बनाने में योगदान दिया। बौद्ध धर्म का यह राजनीतिक रूपांतरण भारतीय इतिहास में अनूठा उदाहरण है, जहाँ धर्म ने न केवल आंतरिक शासन बल्कि अंतरराष्ट्रीय सांस्कृतिक आदान-प्रदान को भी प्रभावित किया। गुप्त काल में बौद्ध धर्म को राजकीय संरक्षण कम मिला, लेकिन पाल और सेन वंशों के शासन में यह पुनः राजनीतिक शक्ति से जुड़ा । पाल शासकों ने नालंदा और विक्रमशिला जैसे विश्वविख्यात बौद्ध विश्वविद्यालयों की स्थापना कर बौद्ध शिक्षा को वैश्विक स्तर पर प्रसारित किया। इन विश्वविद्यालयों ने न केवल भारतीय उपमहाद्वीप के भीतर विद्या और तर्क की परंपरा को समृद्ध किया, बल्कि तिब्बत, चीन, जापान, कोरिया और दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों से आए विद्यार्थियों और विद्वानों को आकर्षित कर बौद्ध विचारधारा के अंतरराष्ट्रीय प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस प्रकार, पाल और सेन वंशों के काल में बौद्ध धर्म एक बार फिर भारतीय राजनीति, शिक्षा और संस्कृति का अभिन्न अंग बन गया और भारत को एक वैश्विक सांस्कृतिक केंद्र के रूप में प्रतिष्ठित किया।

साहित्य और भाषा पर प्रभाव

बौद्ध धर्म ने भारतीय साहित्य और भाषाओं पर गहरा प्रभाव डाला। इसकी शिक्षाओं के प्रसार के लिए न केवल संस्कृत और प्राकृत, बल्कि पाली और अपभ्रंश जैसी जनभाषाओं का प्रयोग हुआ। इससे भारतीय साहित्य की विविधता और समृद्धि में वृद्धि हुई। पाली साहित्य और त्रिपिटक बौद्ध धर्म का सबसे प्राचीन साहित्य पाली त्रिपिटक है, जिसमें सुत्त पिटक, विनय पिटक और अभिधम्म पिटक शामिल हैं। पाली त्रिपिटक बौद्ध साहित्य का मूल आधार है जिसमें बुद्ध के उपदेश और संघ अनुशासन संकलित हैं।[31] सुत्त पिटक में बुद्ध के उपदेश, विनय पिटक में संघ की अनुशासन व्यवस्था और अभिधम्म पिटक में बौद्ध दर्शन का व्यवस्थित प्रतिपादन मिलता है।[32] संस्कृत बौद्ध साहित्य महायान बौद्ध परंपरा में संस्कृत ग्रंथों का विकास हुआ। अश्वघोष की बुद्धचरित संस्कृत काव्य परंपरा की अमूल्य निधि है।[33] ललितविस्तर, महावस्तु, और सद्धर्मपुण्डरीक सूत्र इस परंपरा के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। ये ग्रंथ बौद्ध धर्म के दार्शनिक और आचारिक पहलुओं को साहित्यिक रूप में प्रस्तुत करते हैं।[34] बौद्ध कवि और दार्शनिक बौद्ध साहित्य में अश्वघोष का विशेष स्थान है। उनकी रचना बुद्धचरित संस्कृत काव्य की अमूल्य निधि है। नागार्जुन ने मूलमाध्यमककारिका द्वारा शून्यवाद का दार्शनिक प्रतिपादन किया, जबकि दिग्नाग और धर्मकीर्ति ने बौद्ध तर्कशास्त्र को विकसित किया।[35] लोकभाषाओं और साहित्य पर प्रभाव पाली और प्राकृत भाषाओं में बौद्ध ग्रंथों की रचना होने से जनसाधारण तक बौद्ध धर्म पहुँचा। जातक कथाएँ लोककथाओं, नाटकों और कविताओं का आधार बनीं। जातक कथाएँ भारतीय लोकसाहित्य और पंचतंत्र तक को प्रभावित करती हैं।[36] इनसे भक्ति साहित्य और मध्यकालीन संत साहित्य ने भी प्रेरणा ली।[37] इस प्रकार बौद्ध धर्म ने भारतीय साहित्य को न केवल धार्मिक और दार्शनिक आयाम दिए, बल्कि भाषायी और सांस्कृतिक विविधता को भी समृद्ध किया।

लोकजीवन और उत्सव में बौद्ध धर्म का प्रभाव

भारतीय संस्कृति में लोकधर्म और जनजीवन का गहरा संबंध है। बौद्ध धर्म ने न केवल उच्च वर्ग और दार्शनिक परंपरा को प्रभावित किया, बल्कि सामान्य जनता के जीवन, आचार, उत्सवों और कथाओं में भी अपनी छाप छोड़ी। बौद्ध धर्म का सबसे लोकप्रिय साहित्य जातक कथाएँ हैं, जिनमें बुद्ध के पूर्वजन्मों की कथाएँ वर्णित हैं। ये कहानियाँ नैतिक शिक्षा, करुणा और दानशीलता पर आधारित थीं और भारतीय लोककथाओं तथा नाटकों पर भी इनका प्रभाव दिखाई देता है।[38]बौद्ध धर्म से जुड़े कई पर्व आज भी भारतीय समाज और एशियाई देशों में मनाए जाते हैं। वैशाख पूर्णिमा बुद्ध के जन्म, ज्ञान प्राप्ति और निर्वाण की स्मृति में मनाई जाती है। कठिना चिवर दान उत्सव में भिक्षुओं को वस्त्र दान किए जाते हैं। वैशाख पूर्णिमा और कठिना चिवर दान जैसे उत्सव भारतीय लोकजीवन में करुणा और दान की भावना जगाते हैं।[39] इन उत्सवों ने भारतीय समाज में दान, करुणा और सहयोग की भावना को गहराई दी।[40] बौद्ध धर्म ने लोकभाषाओं को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। पाली और

प्राकृत में लिखे गए ग्रंथ साधारण जनता तक पहुँचे और इससे लोकसंस्कृति में नैतिकता और आचार का प्रसार हुआ।[41] बौद्ध धर्म की करुणा, अहिंसा और दानशीलता की धारणाएँ धीरे-धीरे लोकधर्म का हिस्सा बन गई। भारतीय समाज के लोकाचार जैसे अतिथि-सत्कार, दान-पुण्य और सह-अस्तित्व की भावना बौद्ध धर्म से गहराई से जुड़ी।[42] इस प्रकार बौद्ध धर्म ने भारतीय लोकजीवन और सांस्कृतिक परंपराओं को समरसता, नैतिकता और मानवीय संवेदनाओं से परिपूर्ण किया।

भारतीय संस्कृति पर दीर्घकालिक प्रभाव

बौद्ध धर्म केवल प्राचीन भारत तक सीमित नहीं रहा, बल्कि इसके सिद्धांतों ने मध्यकाल और आधुनिक काल की भारतीय संस्कृति को भी गहराई से प्रभावित किया। बौद्ध धर्म की करुणा, समानता और जनभाषा में धार्मिक शिक्षा देने की परंपरा ने भक्ति आंदोलन को प्रेरित किया। भक्ति आंदोलन में लोकभाषाओं का प्रयोग और करुणा पर बल बौद्ध परंपरा से प्रेरित था।[43] संत कवि जैसे कबीर और तुलसीदास की रचनाओं में करुणा, अहिंसा और लोकभाषा का प्रयोग बौद्ध परंपरा की छाया में विकसित हुआ।[44] बौद्ध धर्म ने जाति-व्यवस्था का विरोध किया और सभी मनुष्यों की समानता पर बल दिया। यह विचार आधुनिक भारतीय समाज सुधार आंदोलनों में पुनर्जीवित हुआ। विशेषकर उन्नीसवीं और बीसवीं सदी में यह विचार औपनिवेशिक भारत में सामाजिक समानता और स्वतंत्रता की लड़ाई का हिस्सा बना।[45] महात्मा गांधी ने अपने अहिंसा के सिद्धांत की प्रेरणा आंशिक रूप से बौद्ध धर्म से भी ली।[46] यद्यपि उन्होंने इसे जैन धर्म और गीता की शिक्षाओं से जोड़ा, लेकिन बुद्ध की करुणा और शांति के आदर्श उनके सामाजिक-राजनीतिक दर्शन का अभिन्न अंग बने।[47]

भीमराव अंबेडकर और नव-बौद्ध आंदोलन

बीसवीं सदी में अंबेडकर ने बौद्ध धर्म को सामाजिक न्याय और समानता का आधार बनाया।[48] 1956 में उनके नेतृत्व में लाखों लोगों ने बौद्ध धर्म ग्रहण किया।1956 का यह नव-बौद्ध आंदोलन भारतीय समाज में सामाजिक समानता का नया अध्याय था।[49] अंबेडकर का मानना था कि बौद्ध धर्म भारतीय समाज को समानता, न्याय और भाईचारे की ओर ले जा सकता है।[50] आज भी बौद्ध धर्म भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। बिहार में बोधगया, सारनाथ, और महाराष्ट्र में दीक्षा भूमि जैसे स्थल भारतीय सांस्कृतिक और धार्मिक विरासत के केंद्र हैं। बौद्ध धर्म की करुणा और अहिंसा की शिक्षाएँ आज की वैश्विक मानवतावादी चेतना में भी प्रासंगिक बनी हुई हैं।[51]

बौद्ध धर्म और भारतीय संस्कृति का संबंध परस्पर संवाद और सहजीवन का उदाहरण है। भारत में छठी शताब्दी ईसा पूर्व में उदित बौद्ध धर्म ने न केवल दार्शनिक और धार्मिक विचारों को नया आयाम दिया, बल्कि कला, साहित्य, सामाजिक जीवन, राजनीति और लोकसंस्कृति तक में अपनी गहरी छाप छोड़ी।

दार्शनिक दृष्टि से बौद्ध धर्म ने कर्म, अनित्यता, करुणा और शून्यता जैसी अवधारणाओं के माध्यम से भारतीय चिंतन को समृद्ध किया। वेदांत और अन्य दर्शनों ने बौद्ध विचारों के साथ संवाद करते हुए अपनी परंपराओं को नए ढंग से परिभाषित किया। कलात्मक दृष्टि से बौद्ध धर्म ने भारतीय मूर्तिकला, चित्रकला और स्थापत्य कला को वैश्विक पहचान दी। अजंता-एलोरा, सांची, अमरावती और बोधगया जैसे केंद्र आज भी भारत की सांस्कृतिक धरोहर का प्रतीक हैं। सामाजिक-सांस्कृतिक दृष्टि से बौद्ध धर्म ने करुणा, समानता और अहिंसा पर आधारित जीवन-मूल्यों को प्रचलित किया। जातिगत भेदभाव को चुनौती देकर समाज में समरसता और नैतिकता के आदर्श स्थापित किए। साहित्यिक दृष्टि से पाली त्रिपिटक, संस्कृत महायान ग्रंथों और जातक कथाओं ने न केवल धार्मिक शिक्षा प्रदान की, बल्कि भारतीय लोकसाहित्य और मध्यकालीन भक्ति आंदोलन को भी प्रभावित किया। राजनीतिक दृष्टि से अशोक जैसे सम्राटों ने बौद्ध धर्म को राज्यनीति का अंग बनाकर भारत की अंतर्राष्ट्रीय छवि को अहिंसा और शांति का वाहक बनाया। आधुनिक काल में गांधी के अहिंसा दर्शन और अंबेडकर के नव-बौद्ध आंदोलन के रूप में बौद्ध धर्म भारतीय समाज में पुनर्जीवित हुआ। इसने स्वतंत्रता संग्राम और सामाजिक न्याय आंदोलनों में भी अपनी छाप छोड़ी।

अत: कहा जा सकता है कि बौद्ध धर्म और भारतीय संस्कृति का संबंध केवल ऐतिहासिक नहीं, बल्कि जीवंत और सतत है। यह संबंध भारत की सांस्कृतिक पहचान, सामाजिक चेतना और मानवीय संवेदनाओं को आकार देने में आज भी सक्रिय भूमिका निभाता है।

Keywords: बौद्ध धर्म, भारतीय संस्कृति, दर्शन, कला, राजनीति, साहित्य, सामाजिक सुधार

संदर्भ

1 राहुल सांकृत्यायन, दर्शन-दिग्दर्शन, भारतीय ज्ञानपीठ, 1949, पृ. 55

2 Basham, A.L. The Wonder That Was India. London: Sidgwick & Jackson, 1954. p. 240., Thapar, Romila. Aœoka and the Decline of the Mauryas. Oxford University Press, 1961. p. 12.

3 Kosambi, D.D. Culture and Civilisation of Ancient India. Routledge, 1965. p. 112., Ambedkar, B.R. The Buddha and His Dhamma. Bombay: Siddharth College Publications, 1957. p. 34.

4 Rhys Davids, T.W. Buddhism: Its History and Literature. London: Williams & Norgate, 1896. p. 85., Jaini, Padmanabh. The Jaina Path of Purification. University of California Press, 1979. p. 50.

5 Hiriyanna, M. Outlines of Indian Philosophy. Motilal Banarsidass, 1993. p. 199., Gokhale, B.G. The Indian Thought. Popular Prakashan, 1961. p. 144.

6 Hiriyanna, M. Outlines of Indian Philosophy. Motilal Banarsidass, 1993. p. 201., Rhys Davids, T.W. Buddhism: Its History and Literature. London: Williams & Norgate, 1896. p. 102.

7 Radhakrishnan, S. Indian Philosophy, Vol. 1. London: George Allen & Unwin, 1929. p. 352.

8 Murti, T.R.V. The Central Philosophy of Buddhism. London: George Allen & Unwin, 1955. p. 67., Dasgupta, S.N. A History of Indian Philosophy, Vol. 1. Cambridge University Press, 1922. p. 88.

9 Conze, Edward. *Buddhist Thought in India*. London: George Allen & Unwin, 1962. p. 145.

10 देवदत्त भट्टाचार्य, भारतीय कला और बौद्ध प्रभाव, संस्कृत साहित्य परिषद, 1968, पृ. 95

11 Marshall, John. The Monuments of Sanchi. London: Probsthain, 1940. p. 56., Coomaraswamy, Ananda. History of Indian and Indonesian Art. New York: Dover Publications, 1956. p. 112.

12 राहुल सांकृत्यायन, सिद्धार्थ से बुद्ध तक, भारतीय ज्ञानपीठ, 1952, पृ. 201

13 Yazdani, Ghulam. Ajanta: Monochrome Reproductions of the Ajanta Frescoes. London: Oxford University Press, 1955. p. 78., Huntington, Susan. The Art of Ancient India: Buddhist, Hindu, Jain. New York: Weatherhill, 1985. p. 202.

14 जगदीश कश्यप, बौद्ध धर्म का इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास, 1971, पृ. 256

15 Rowland, Benjamin. The Art and Architecture of India: Buddhist, Hindu, Jain. Penguin, 1972. p. 89., Zwalf, Wladimir. A Catalogue of the Gandhara Sculpture in the British Museum. British Museum Press, 1996. p. 130.

16 Fergusson, James. History of Indian and Eastern Architecture. London: John Murray, 1891. p. 165.

17 हजारी प्रसाद द्विवेदी, बौद्ध धर्म और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, 1956, पृ. 119

18 Rhys Davids, T.W., & Carpenter, J.E. The Dialogues of the Buddha, Vol. 1. London: Pali Text Society, 1890. p. 112.

19 Ambedkar, B.R. The Buddha and His Dhamma. Bombay: Siddharth College Publications, 1957. p. 66.

20 राहुल सांकृत्यायन, दर्शन-दिग्दर्शन, भारतीय ज्ञानपीठ, 1949, पृ. 141

21 Oldenberg, Hermann. Buddha: His Life, His Doctrine, His Order. London: Williams and Norgate, 1881. p. 245., Falk, Nancy. "Gender and Religion: The Emergence of the Bhikkhuni Sangha." In Women in Religion, 2001. p. 78.

22 अंबेडकर, बुद्ध और उनका धम्म, भारतीय ज्ञानपीठ, 1957, पृ. 175

23 Gokhale, B.G. The Indian Thought. Popular Prakashan, 1961. p. 150.
Harvey, Peter. An Introduction to Buddhism: Teachings, History and Practices. Cambridge University Press, 1990. p. 45.

24 Hazra, Kanai Lal. Buddhism in India as Described by the Chinese Pilgrims. Delhi: Munshiram Manoharlal, 1983. p. 101., Jaini, Padmanabh. The Jaina Path of Purification. Berkeley: University of California Press, 1979. p. 55

25 जगदीश कश्यप, बौद्ध धर्म का इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास, 1971, पृ. 301

26 Thapar, Romila. Aœoka and the Decline of the Mauryas. Oxford University Press, 1961. p. 122., Hultzsch, E. Inscriptions of Asoka. Oxford: Clarendon Press, 1925. p. 34.

27 शिवप्रसाद सिंह, भारतीय संस्कृति और बौद्ध दर्शन, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, 1962, पृ. 16

28 Gombrich, Richard. Theravâda Buddhism: A Social History from Ancient Benares to Modern Colombo. Routledge, 1988. p. 49.

29 Hazra, Kanai Lal. Buddhism in India as Described by the Chinese Pilgrims. Delhi: Munshiram Manoharlal, 1983. p. 118., Narain, A.K. The Indo-Greeks. Oxford: Clarendon Press, 1957. p. 215.

30 देवदत्त भट्टाचार्य, भारतीय कला और बौद्ध प्रभाव, संस्कृत साहित्य परिषद, 1968, पृ. 212

31 जगदीश कश्यप, बौद्ध धर्म का इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास, 1971, पृ. 59

32 Rhys Davids, T.W. Buddhist India. London: T. Fisher Unwin, 1903. p. 95., Gethin, Rupert. The Foundations of Buddhism. Oxford University Press, 1998. p. 45.

33 हजारी प्रसाद द्विवेदी, बौद्ध धर्म और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, 1956, पृ. 204

34 Jones, J.J. The Lalitavistara Sutra. London: Royal Asiatic Society, 1949. p. 133., Conze, Edward. Buddhist Scriptures. Penguin Books, 1951. p. 27.

35 Murti, T.R.V. The Central Philosophy of Buddhism. London: George Allen & Unwin, 1955. p. 72., Dasgupta, S.N. A History of Indian Philosophy, Vol. 1. Cambridge University Press, 1922. p. 145.

36 राहुल सांकृत्यायन, सिद्धार्थ से बुद्ध तक, भारतीय ज्ञानपीठ, 1952, पृ. 98

37 Winternitz, Maurice. A History of Indian Literature, Vol. 2. Calcutta University Press, 1933. p. 255., Warder, A.K. Indian Buddhism. Delhi: Motilal Banarsidass, 1970. p. 211.

38 Cowell, E.B. (ed.). The Jataka or Stories of the Buddha's Former Births, Vol. 1. Cambridge University Press, 1895. p. 12., Winternitz, Maurice. A History of Indian Literature, Vol. 2. Calcutta University Press, 1933. p. 263.

39 शिवप्रसाद सिंह, भारतीय संस्कृति और बौद्ध दर्शन, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, 1962, पृ. 192

40 Strong, John S. The Legend of King Aœoka. Princeton University Press, 1983. p. 89., Dutt, Nalinaksha. Early Buddhist Monachism. Delhi: Motilal Banarsidass, 1988. p. 117.

41 Warder, A.K. Indian Buddhism. Delhi: Motilal Banarsidass, 1970. p. 233., Hazra, Kanai Lal. Buddhism in India as Described by the Chinese Pilgrims. Delhi: Munshiram Manoharlal, 1983. p. 125.

42 Basham, A.L. The Wonder That Was India. London: Sidgwick & Jackson, 1954. p. 247., Gombrich, Richard. Theravâda Buddhism. Routledge, 1988. p. 52.

43 हजारी प्रसाद द्विवेदी, बौद्ध धर्म और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, 1956, पृ. 221

44 Lorenzen, David. Bhakti Religion in North India. SUNY Press, 1995. p. 83., Sharma, Arvind. The Philosophy of Religion and Advaita Vedanta. Penn State University Press, 1968. p. 142.

45 Omvedt, Gail. Buddhism in India: Challenging Brahmanism and Caste. Sage, 2003. p. 71., Zelliot, Eleanor. From Untouchable to Dalit: Essays on the Ambedkar Movement. Manohar, 1992. p. 119.

46 राहुल सांकृत्यायन, दर्शन-दिग्दर्शन, भारतीय ज्ञानपीठ, 1949, पृ. 178

47 Parekh, Bhikhu. Gandhi: A Very Short Introduction. Oxford University Press, 1997. p. 65., Chatterjee, Margaret. Gandhi's Religious Thought. University of Notre Dame Press, 1983. p. 201.

48 अंबेडकर, बुद्ध और उनका धम्म, भारतीय ज्ञानपीठ, 1957, पृ. 310

49 जगदीश कश्यप, बौद्ध धर्म का इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास, 1971, पृ. 355

50 Ambedkar, B.R. The Buddha and His Dhamma. Bombay: Siddharth College Publications, 1957. p. 33., Jaffrelot, Christophe. Dr. Ambedkar and Untouchability: Fighting the Indian Caste System. Columbia University Press, 2005. p. 189.

51 Keenan, John. The Lotus Sutra: A Contemporary Translation of a Buddhist Classic. Columbia University Press, 2000. p. 211., Lopez, Donald. The Story of Buddhism: A Concise Guide to Its History & Teachings. HarperCollins, 2002. p. 97.

नई शिक्षा नीति-2020: भारतीय उच्च शिक्षा का भविष्य

रवीन्द्र कुमार

सहायक प्राध्यापक, श्रीराम संस्थान, काशीपुर, उत्तराखण्ड़

यह सर्वविदित है कि एक दूरदर्शी एंव गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रणाली किसी भी देश का भविष्य सुनिश्चित किया करती है। शिक्षा आर्थिक एंव सामाजिक प्रगति का प्रमुख पक्ष है। अपनी सभ्यता एंव संस्कृति का बोध करते हुए प्रत्येक देश विभिन्न प्रकार की शिक्षा प्रणालियों को अपनाया करते है। हाल ही में भारत सरकार ने भी अपनी शिक्षा प्रणाली को नवीनता प्रदान करते हुए नई शिक्षा नीति 2020 की घोषणा की है, जिसका उद्देश्य शिक्षा को श्रेष्ठता प्रदान करना है। यह स्वागत योग्य कदम है, जो भारतीय शिक्षा प्रणाली के लिए एक आदर्श परिवर्तन सिद्ध हो सकता है। जिससे आधुनिक, प्रगतिशील, न्यायसंगत श्रेष्ठ भारत का स्वपन संजोया जा सकता है। यह वैचारिक आलेख नई शिक्षा नीति पर आधारित है जिसमे नई शिक्षा नीति का उच्च शिक्षा पर पड़ने वाले प्रभाव का मंथन करने का प्रयास किया गया है तथा साथ ही नीति के उदभ्व एंव क्रियान्वयन पर भी चर्चा करेगे।

प्रस्तावना-

पूर्ण मानव झमता एंव मानव के विकास में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा का महत्वपूर्ण योगदान है जो कि समाज को न्यायपूर्ण बनाती है एंव राष्ट्रीय विकास को गति भी प्रदान करती है। जिससे समानता,वैश्विकता,नैतिकता,राष्ट्रीय एकता एंव संस्कृति संरक्षण भी आसान हो जाता है। वर्तमान युग परिवर्तन का युग है। इस परिदृश्य में एक ऐसी शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता है जो शिक्षार्थी को ज्ञान, तर्क, धैर्य, समाजिकता, दया एंव नैतिकता से परिपूर्ण करते हुए रोजगार के अवसर भी उपलब्ध कराये। लेकिन तत्कालीन शिक्षा प्रणाली से सकारात्मक परिणाम नहीं निकल पा रहे थे। उच्च शिक्षा जिसका उद्देश्य शिक्षार्थी में चिन्तन शक्ति का विकास कर उसे आत्मनिर्भर बनाना होता है, वह उसे बेरोजगारी की तरफ ले जा रही थी। हम अपनी विकास दर को तेजी से बढाना चाहते है और हम प्रयत्नशील भी है परन्तु जब तक हम अपनी शिक्षा प्रणाली को बेहतर नहीं बना पाते तब तक इसे पाना कठिन कार्य होगा। इसी आकांक्षात्मक लक्ष्य से भारत सरकार ने शिक्षा प्रणाली में संशोधन कर राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 की परिकल्पना की जो राष्ट्र को बदलने में सीधे योग कर सकती है। 21वीं सदी की इस नीति में समस्त भरतीयों को उच्च गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान कर उनमें चिन्तन शक्ति का विकास कर भारत की शैक्षिक पृष्ठभूमि को सुदृढ़ करना है, जिससे भारत विकास के पथ पर तेजी से अग्रसर हो सके। इस नीति में शिक्षार्थी के संज्ञानात्मक पक्ष, रचनात्मक पक्ष, सामाजिक पक्ष, नैतिक पक्ष, भावनात्मक पक्ष एंव व्यवसायिक पक्ष का भी घ्यान रखा गया है। इस नीति की एक खास बात यह भी है कि इसमे प्राचीन भारतीय ज्ञान की समृद्ध विरासत एंव भारतीय दर्शन का भी प्रयोग किया गया है, जो कि बेहद प्रशंसनीय है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 का उदय - भारत में प्रथम शिक्षा नीति 1986 में लागू की गई थी। लगभग 34 वर्षों के बड़े अन्तराल के बाद भारत सरकार द्वारा नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 पेश की गई है। यह नीति भारतीय शिक्षा प्रणाली के लिए एक मील का पत्थर सिद्ध हो सकती है, जो कि निश्चित रूप से भारत को दुनिया भर में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में एक नया आयाम दिला सकती है। भारत सरकार के द्वारा इसकी पहल 2015 मे की गई थी। टी0एस0 सुब्रमण्यम की रिर्पोट के आधार पर एक सीमिति का चयन किया गया जिसके अध्यक्ष डॉ0 के0 कस्तूरीरंजन पूर्व अध्यक्ष भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संगठन को नियुक्त किया गया। 2017 में सीमिति के द्वारा एक मसौदा तैयार कर मंत्रालय को प्रस्तुत किया गया तत्पश्चात अपेक्षित परामर्श एंव संशोधन की जटिल प्रक्रिया के उपरान्त 29 जुलाई 2020 को भारतीय केंद्रीय मंत्रीमंडल द्वारा इसका अनुमोदन किया गया।

भारतीय उच्च शिक्षा का भविष्य- राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 का उद्देश्य शिक्षार्थी को केन्द्र मानकर उच्च शिक्षा को रूपांतरित कर इसमें महत्वकांक्षी और क्रांतिकारी परिवर्तन लाना है। इसमें ग्रामीण और शहरी प्रत्येक वर्ग को अपेक्षित उच्च शिक्षा प्रदान करने की पूरी व्यवस्था की गई है। नवीन नीति में नामांकन संख्या को वढ़ाने के साथ-साथ विषय चयन,

बहु-विषयक प्रर्किया को भी लचीला करने के प्रयास किये गये है। विद्यार्थी के इच्छित क्षेत्र में कौशलों का विकास कर उसे आत्मनिर्भर बनाने का ध्यान रखा गया है। समग्र पाठ्यक्रम, मूल्यांकन एंव परीक्षा प्रारूप में भी परिवर्तन करने का प्रयास किया गया है। नई शिक्षा नीति अन्तर्राष्ट्रीयकरण को बढावा देते हुए भारतीय उच्च शिक्षा को वैश्विक शिक्षा केन्द्र के रूप में स्थापित कर सकती है। जिससे हम भारतीय अपनी वसुधैव कुटुम्बकम की परम्परा को भी जारी रख पायेगें। विश्वविख्यात विदेशी विश्वविद्यालयों के परिसर/संस्थान भारत में खोलने की अनुमति भी दी जायेगी। जिससे शिक्षार्थी को अपने ही देश में वैश्विक गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा का अनुभव मिल सकेगा। अनुसंधान कार्यक्रमों को प्राथमिकता दी जाएगी जो नवाचार और रचनात्मक विचारों के लिए स्वर्णिम सिद्ध हो पायेगा, जिससे युवाओं को उचित मार्गदर्शन भी प्राप्त हो सकेगा। उच्च शिक्ष की नवीन संरचना विशिष्ट प्रकार की होगी जिसमें प्रशासनिक तंत्र, प्रत्यायन तंत्र, वित्तपोषण तंत्र और शैक्षणिक तंत्र अपना कार्य अलग-अलग करेगा इन चारों के पास स्वयत्ता एंव स्वतंत्रता पूर्ण कार्य करने के समस्त अधिकार प्राप्त होगें।

इस प्रकार नए गुणवत्तापूर्ण शिक्षण संस्थानों को स्थापित करना भी आसान हो जाएगा। जिससे उच्चतर शिक्षण संस्थानों का भी विस्तार होगा एंव छात्रों की संख्या में भी बढ़ोत्तरी होगी। नियंत्रण एंव संतुलन से युक्त तंत्र, उच्चतर शिक्षा के व्यवसायीकरण की भी रोक पाएंगे। आम जनता शिकायत-निवारण तंत्र का भी प्राबधान रहेगा, शिकायत मिलने पर पूरी जांच की जायेगी। परोपकार एंव जन हितैशी मंशा रखने वाले निजी उच्चतर शिक्षण संस्थानों को फीस निर्धारण पर भी शासन के माध्यम से प्रोत्साहन प्रदान किया जायेगा। परन्तु यह भी विचारनीय बिन्दु है कि जब राष्ट्रीय शिक्षा नीति में महत्वपूर्ण बदलाव के उपरान्त उच्च शिक्षा के समस्त विभाग एक निकाय के रूप में कार्य करेंगे तब तत्कालीन यूजीसी और एम0एच0आर0डी0 का क्या होगा? उच्च शिक्षा की गुणवत्ता में बढ़ोत्तरी हेतु इस नवीन स्वरूप की मांग शिक्षाविद्ों के द्वारा बहुत समय से की जा रही थी। अगर उच्च शिक्षा नियामक प्रणाली के चारों नवीन स्वरूप स्वतंत्र रूप से कार्य करेंगे तो निश्चित रूप से युवा शिक्षार्थी को इसका लाभ अवश्य मिल पायेगा। उच्च शिक्षा के लिए अलग नियामक निकाय की स्थापना की जायेगी।एकाधिकार प्रवेश और निकास कार्यक्रम जिससे पाठ्यक्रम को बीच में छोड़ने और प्रवेश लेने पर शिक्षार्थीयों को अकादमिक स्कोर दिया जायेगा। प्रौढ़ शिक्षा के लिए तकनीकी एंव प्रौद्योगिकी आधारित विकल्पों का प्रयोग किया जायेगा। क्षेत्रीय भाषाओं में ई-पाठ्यक्रम की वयवस्था की जायेगी। शीर्ष 100 विदेशी विश्वविद्याालयों के परिसर भारत में स्थापित किये जायेगे। उच्च शिक्षा में प्रवेश के लिए राष्ट्रीय प्रवेश परीक्षा का आयोजन होगा जो पूर्णत: वैकल्पिक होगाी। उच्च शिक्षा को विनियमित करने के लिए भारतीय उच्च शिक्षा परिषद की स्थापना की जायेगी जो निम्न प्रकार कार्य करेगा -

अ राष्ट्रीय उच्च शिक्षा विनियामक परिषद

ब राष्ट्रीय प्रत्यायन परिषद

स उच्च शिक्षा अनुदान परिषद

द सामान्य शिक्षा परिषद

निष्कर्ष

शिक्षा नीति 2020 परविर्तनों की एक श्रृंखला प्रस्तुत करती है जो भविष्य में एक प्रगतिशील दस्तावेज के रूप में जानी जायेगी। इस नीति के सफल क्रियान्वयन से हम शिक्षार्थियों की एक नई पीढ़ी तैयार कर पायेगें जिससे उच्च शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य पूरा हो पायेगा। यह नीति भविष्य को ध्यान में रखकर तैयार की गई है जिसमें डिजिटलीकरण और अभौतिकीकरण को पूरा स्थान दिया गया है। जिससे भारत के भविष्य को तैयार करने की कोशिश की गयी है। इसीलिए इसमें कृषि से लेकर विज्ञान, तकनीक, कला, कौशल एंव आर्टिफिशियल इंटेलिजेंसी तक का जिक्र किया गया है। जिससे युवाओं को आगे बढ़ने का मार्ग प्रशस्त होगा। यह शिक्षा नीति प्रशंसनीय पहल है लेकिन यह भी देखना होगा कि सरकार एंव प्रशासनिक तंत्र इसके क्रियान्वयन को लेकर कितने सजग हैं। नीति का क्रियान्वयन एक महत्वपूर्ण बिन्दु है जो इसकी सफलता को निश्चित रूप से प्रभावित करेगा। प्रभावी एंव समयबद्ध क्रियान्वयन के आधार पर निश्चित रूप से यह उच्च शिक्षा के लिए पथ-प्रदर्शक एंव उल्लेखनीय उपलब्धि होगी। उच्च शिक्षा में नई शिक्षा नीति 2020 के माध्यम से अन्य अनेक सुधार करने की कोशिश की गई है जिन सभी का विश्लेशण इस आलेख में कर पाना अत्यंत मुश्किल कार्य था, परन्तु मुख्य बिन्दुओं को

छूने की कोशिश अवश्य की गयी है। निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि नई शिक्षा नीति–2020 भरतीय उच्चशिक्षा के भविष्य को उज्जवल बनाने की पूरी सम्भावनाओं से परिपूर्ण है।

धन्यवाद

सन्दर्भ श्रोत –

Nandini, ed. (29 July 2020). "New Education Policy 2020 Highlights: School and higher education to see major changes". Hindustan Times.

Jebaraj, Priscilla (2 August 2020). "The Hindu Explains | What has the National Education Policy 2020 proposed?". The Hindu. ISSN 0971-751X

Chopra, Ritika (2 August 2020). "Explained: Reading the new National Education Policy 2020". The Indian Express.

Rohatgi, Anubha, ed. (7 August 2020). "Highlights | NEP will play role in reducing gap between research and education in India: PM Modi". Hindustan Times.

Krishna, Atul (29 July 2020). "NEP 2020 Highlights: School And Higher Education". NDTV. Naidu, M. Venkaiah (8 August 2020). "The New Education Policy 2020 is set to be a landmark in India's history of education". Times of India Blog.

LINKS-

https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_final_HINDI_0.pdf

https://www.hindustantimes.com/india-news/pm-modi-s-address-at-conclave-on-transformational-reforms-in-higher-education-under-national-education-policy-highlights/story-dehOW8q8ZRrONbbFSRjg0H.html

https://timesofindia.indiatimes.com/readersblog/theaitics/implications-of-the-national-education-policy-2020-on-higher-education-in-india-2-24729/

http://bweducation.businessworld.in/article/NEP-2020-Impact-On-Higher-Education-/07-08-2020-305999/

https://www.highereducationdigest.com/the-impact-of-national-education-policy-2020-on-professional-education/

डिजिटल युग में महिलाओं का व्यवहारिक परिवर्तनः एक मनोवैज्ञानिक अध्ययन

डॉ० रीता कुमारी

सहायक प्राध्यापक, मनोविज्ञान विभाग, शिवदेनी राम अयोध्या प्रसाद महाविद्यालय, बाराचकिया, बाबा साहब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

प्रस्तावनाः

इक्कीसवीं सदी को तकनीकी और डिजिटल विकास का युग माना जाता है। विज्ञान और तकनीक के अभूतपूर्व विकास ने न केवल हमारे कार्य करने के तरीके को बदला है, बल्कि सोचने, समझने और जीने के तरीके को भी पूरी तरह से परिवर्तित कर दिया है। मोबाइल फोन, इंटरनेट, सोशल मीडिया, ऑनलाइन शिक्षा, डिजिटल बैंकिंग, और वर्चुअल कार्य प्रणाली जैसे साधनों ने मानव जीवन में गहरा प्रवेश किया है। इस परिवर्तन ने पुरुषों के साथ-साथ महिलाओं के जीवन को भी व्यापक रूप से प्रभावित किया है।

जहाँ पहले महिलाएं समाज की पारंपरिक भूमिकाओं में सीमित रहती थीं, वहीं अब वे डिजिटल प्लेटफॉर्म के माध्यम से शिक्षा, व्यवसाय, सामाजिक नेटवर्किंग, स्वास्थ्य सेवाओं और मनोरंजन के विभिन्न आयामों में भागीदारी कर रही हैं। यह तकनीकी पहुँच महिलाओं को सशक्त बनाने, आत्मनिर्भर बनने और निर्णय लेने की क्षमता बढ़ाने में सहायक सिद्ध हो रही है। लेकिन यह परिवर्तन केवल सकारात्मक नहीं है; इसके साथ कई मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी जुड़ गए हैं, जो धीरे-धीरे महिलाओं के व्यवहार में झलकने लगे हैं।

डिजिटल युग की सुविधाएं जितनी तेजी से जीवन को आसान बना रही हैं, उतनी ही तेजी से मानसिक स्वास्थ्य पर दबाव भी बढ़ा रही हैं। सोशल मीडिया पर लगातार सक्रिय रहना, दूसरों से तुलना करना, डिजिटल आभासी जीवन में अधिक समय बिताना, नींद की कमी, समय प्रबंधन की चुनौती, और सतत ऑनलाइन उपलब्ध रहने का दबाव महिलाओं के भीतर तनाव, चिंता, आत्म-छवि में बदलाव, और अकेलेपन की भावना को जन्म दे रहा है। यह विशेष रूप से युवा और मध्यवय की महिलाओं में अधिक देखने को मिल रहा है।

इसके अतिरिक्त, शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं में डिजिटल संसाधनों की उपलब्धता, उपयोग की मात्रा और उसके प्रभावों में भी अंतर पाया जाता है। शहरी महिलाएं अपेक्षाकृत अधिक डिजिटल रूप से जुड़ी होती हैं, जबकि ग्रामीण महिलाओं में यह जुड़ाव धीरे-धीरे बढ़ रहा है। यह अंतर उनके व्यवहार और मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाओं को भी अलग बनाता है।

इस शोध का उद्देश्य यही है कि डिजिटल युग के इस व्यापक प्रभाव का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाए, और यह जाना जाए कि कैसे यह युग महिलाओं के जीवन, सोच, व्यवहार और मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित कर रहा है। साथ ही, यह शोध यह भी स्पष्ट करेगा कि डिजिटल साधनों का उपयोग महिलाओं को सशक्त बना रहा है या कहीं न कहीं उनके मानसिक संतुलन को चुनौती दे रहा है।

मुख्य शब्दः डिजिटल युग, मनोवैज्ञानिक परिवर्तन, मानसिक तनाव, सोशल मीडिया, डिजिटल आदतें

साहित्य समीक्षा :

Gupta, R. & Rathi, M. (2020) ने International Journal of Digital Media में एक अध्ययन प्रकाशित किया, जिसमें शहरी महिलाओं के डिजिटल उपयोग का विश्लेषण किया गया। अध्ययन के अनुसार, 75% शहरी महिलाएं प्रतिदिन कम से कम 4 घंटे डिजिटल उपकरणों का उपयोग करती हैं। यह अध्ययन यह दर्शाता है कि महिलाएं इन उपकरणों का इस्तेमाल मुख्य रूप से शिक्षा, सामाजिक संपर्क और मनोरंजन के लिए करती हैं। हालांकि, डिजिटल उपकरणों के अत्यधिक उपयोग ने उनके मानसिक स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव डाला है, जिसके परिणामस्वरूप तनाव और चिंता जैसी समस्याएं उभरी हैं।

Smith, A. (2018) ने श्रवनतदंस वि डमदजंस भ्मंसजी में 1000 महिलाओं पर डिजिटल मीडिया के प्रभाव का अध्ययन किया। परिणामस्वरूप, यह पाया गया कि डिजिटल मीडिया का अत्यधिक उपयोग महिलाओं में मानसिक तनाव, चिंता और अवसाद का कारण बन सकता है। विशेष रूप से, देर रात तक स्क्रीन के सामने रहना नींद और मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करता है।

Jain, P., & Sharma, R. (2017) ने Journal of Rural and Urban Studies में शहरी और ग्रामीण महिलाओं के डिजिटल उपयोग का तुलनात्मक अध्ययन किया। अध्ययन में पाया गया कि शहरी महिलाएं डिजिटल उपकरणों का अधिक उपयोग करती हैं, जबकि ग्रामीण महिलाएं डिजिटल साक्षरता की कमी के कारण कम डिजिटल साधनों का उपयोग करती हैं। हालांकि, ग्रामीण महिलाओं में भी डिजिटल साक्षरता में सुधार हो रहा है।

Yadav,A.,& Singh,V. (2019) ने Journal of Psychological Research में 500 महिलाओं के डिजिटल उपयोग और मानसिक स्वास्थ्य पर विचार किया। अध्ययन में यह पाया गया कि महिलाओं का अत्यधिक डिजिटल उपयोग चिंता, अवसाद और तनाव का कारण बन सकता है। सोशल मीडिया पर व्यस्त रहने से मानसिक थकान, समय की बर्बादी और उत्पादकता में कमी का अनुभव हुआ है।

Chopra,N.(2021) us Indian Journal of Social Sciences में 300 ग्रामीण महिलाओं का अध्ययन किया, जो डिजिटल उपकरणों का उपयोग करती हैं। अध्ययन में पाया गया कि डिजिटल तकनीक ने महिलाओं को सशक्त बनाया है, क्योंकि वे अब अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हैं और समाज में अपनी भूमिका को बेहतर तरीके से निभा पा रही हैं।

Kumar, S., & Verma, L. (2022) ने Journal of Digital Behavior में 500 महिलाओं पर डिजिटल लत और मानसिक स्वास्थ्य के प्रभावों का अध्ययन किया। अध्ययन में यह पाया गया कि डिजिटल लत से महिलाओं के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है, जैसे तनाव, चिंता और अकेलेपन की भावना।

Yadav, A., & Singh, V. (2019) ने Journal of Psychological Research में 500 महिलाओं के डिजिटल उपयोग और मानसिक स्वास्थ्य पर विचार किया। अध्ययन में यह पाया गया कि महिलाओं का अत्यधिक डिजिटल उपयोग चिंता, अवसाद और तनाव का कारण बन सकता है। सोशल मीडिया पर व्यस्त रहने से मानसिक थकान, समय की बर्बादी और उत्पादकता में कमी का अनुभव हुआ है।

Chopra, N. (2021) ने Indian Journal of Social Sciences में 300 ग्रामीण महिलाओं का अध्ययन किया, जो डिजिटल उपकरणों का उपयोग करती हैं। अध्ययन में पाया गया कि डिजिटल तकनीक ने महिलाओं को सशक्त बनाया है, क्योंकि वे अब अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हैं और समाज में अपनी भूमिका को बेहतर तरीके से निभा पा रही हैं।

उद्देश्यः

महिलाओं के डिजिटल उपयोग की आदतों को जानना।

यह समझना कि डिजिटल युग ने महिलाओं की सोच, आत्म-छवि और तनाव के स्तर को कैसे प्रभावित किया है।

शहरी और ग्रामीण महिलाओं में अंतर को देखना।

शोध पद्धतिः

इस शोध में डिजिटल युग में महिलाओं के व्यवहारिक परिवर्तन को समझने के लिए एक मिश्रित अनुसंधान डिजाइन का उपयोग किया गया है। इसमें क्वांटिटेटिव और क्वालिटेटिव दोनों प्रकार की विधियों का समावेश किया गया है। इस अध्याय में अध्ययन के उद्देश्य, नमूने का चयन, डेटा संग्रहण विधियाँ, विश्लेषण विधियाँ, और नैतिकता से संबंधित जानकारी दी गई है।

जनसंख्या और नमूनाः

अध्ययन में 18 से 40 वर्ष की आयु वर्ग की महिलाओं को चुना गया है, जो शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों से संबंधित हैं। कुल 100 महिलाओं का चयन किया गया है। इन महिलाओं का चयन सुविधाजनक नमूना (ब्वदअमदपमदबम ैंउचसपदह) पद्धति द्वारा किया गया।

डेटा तालिका :

क्षेत्र	*नमूना आकार (Sample Size)*	*आयु वर्ग*	*कुल नमूने की संख्या*
शहरी महिलाएं	50	18-40 वर्ष	50
ग्रामीण महिलाएं	50	18-40 वर्ष	50
कुल	100	18-40 वर्ष	100

डेटा विश्लेषण:

1. क्वांटिटेटिव डेटा विश्लेषण (Quantitative Data Analysis):

क्वांटिटेटिव डेटा का विश्लेषण SPSS सॉफ्टवेयर से किया गया। निम्नलिखित सांख्यिकीय तकनीकों का उपयोग किया गया:फ्रीक्वेंसी वितरण (Frequency Distribution): डेटा की आवृत्ति (frequency) दर्शाने के लिए।माध्य (Mean): डेटा का औसत मान निकालने के लिए।माध्यिका (Median): डेटा के मध्य बिंदु का पता लगाने के लिए।मानक विचलन (Standard Deviation): डेटा में विचलन और विविधता को मापने के लिए। t&test: शहरी और ग्रामीण महिलाओं के बीच अंतर की जांच करने के लिए।

2. क्वालिटेटिव डेटा विश्लेषण (Qualitative Data Analysis):

क्वालिटेटिव डेटा का विश्लेषण थीमेटिक विश्लेषण से किया गया, जिसमें प्रमुख थीम्स की पहचान की गई:डिजिटल उपकरणों का उपयोग: महिलाओं ने डिजिटल उपकरणों के उपयोग के लाभ और हानियों पर चर्चा की।मानसिक स्वास्थ्य: डिजिटल उपकरणों के उपयोग से तनाव और चिंता की समस्या का सामना किया गया। आत्म-छवि: सोशल मीडिया के दबाव ने महिलाओं की आत्म-छवि को प्रभावित किया।

डेटा तालिका :

क्षेत्र	*शहरी महिलाएं (%)*	*ग्रामीण महिलाएं (%)*	*कुल (%)*
रोजाना डिजिटल उपकरणों का उपयोग (4 घंटे से अधिक)	75	55	65
सोशल मीडिया पर समय व्यतीत (1-2 घंटे)	80	60	70
डिजिटल उपकरणों का उपयोग शिक्षा के लिए	85	70	77.5
मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव (तनाव और चिंता)	65	50	57.5
आत्म-छवि पर प्रभाव (नकारात्मक)	55	45	50

परिणाम एवं विवेचना:

इस अध्ययन में डिजिटल युग के प्रभावों को 100 महिलाओं (आयु 18 से 40 वर्ष) पर केंद्रित किया गया, जिनमें से 50 महिलाएं शहरी क्षेत्र से और 50 महिलाएं ग्रामीण क्षेत्र से थीं। सर्वेक्षण और साक्षात्कार के माध्यम से प्राप्त आंकड़ों का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट रूप से सामने आया कि महिलाओं का डिजिटल उपकरणों के प्रति झुकाव अत्यधिक बढ़ा है। अधिकांश महिलाएं प्रतिदिन तीन से चार घंटे से अधिक समय तक मोबाइल फोन, इंटरनेट और सोशल मीडिया का उपयोग करती हैं। शहरी महिलाओं में यह अनुपात अधिक देखा गया, जो यह दर्शाता है कि उन्हें तकनीकी संसाधनों और डिजिटल साक्षरता की बेहतर सुविधा प्राप्त है।

अध्ययन में यह पाया गया कि महिलाएं डिजिटल माध्यमों का उपयोग मुख्यत: शिक्षा, सूचना प्राप्ति, सामाजिक जुड़ाव, ऑनलाइन शॉपिंग, बैंकिंग और मनोरंजन जैसे उद्देश्यों के लिए करती हैं। इसके साथ ही कई महिलाएं डिजिटल प्लेटफॉर्म्स का उपयोग कर नई स्किल्स सीख रही हैं, जिससे उनमें आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास की भावना बढ़ी है। कुछ महिलाओं ने ऑनलाइन ट्यूशन, कुकिंग चौनल, डिजिटल मार्केटिंग और पार्ट टाइम ऑनलाइन जॉब्स की ओर भी कदम बढ़ाया है, जो सकारात्मक व्यवहारिक परिवर्तन की ओर संकेत करता है।

हालाँकि, यह परिवर्तन केवल लाभकारी नहीं रहा। अध्ययन से यह भी ज्ञात हुआ कि अत्यधिक डिजिटल उपयोग से मानसिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। कई महिलाओं ने बताया कि वे तनाव, चिंता, नींद की कमी और एकाग्रता में गिरावट का अनुभव कर रही हैं। विशेष रूप से युवा और सामाजिक मीडिया पर अधिक सक्रिय महिलाएं भावनात्मक असंतुलन और आत्म-तुलना के कारण आत्म-संतुष्टि में कमी की स्थिति से गुजर रही हैं। यह संकेत करता है कि तकनीक के उपयोग में संतुलन बनाए रखना आवश्यक है।

शहरी और ग्रामीण महिलाओं के बीच तुलना करने पर यह सामने आया कि डिजिटल उपयोग की मात्रा, उद्देश्यों और प्रभावों में अंतर स्पष्ट है। शहरी महिलाएं जहाँ अधिक आत्मविश्वास और तकनीकी दक्षता के साथ डिजिटल माध्यमों का प्रयोग कर रही हैं, वहीं ग्रामीण महिलाएं अब धीरे-धीरे इस ओर अग्रसर हो रही हैं, परंतु संसाधनों की सीमितता और डिजिटल साक्षरता की कमी के कारण उन्हें अभी भी कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि डिजिटल युग ने महिलाओं के व्यवहार, सोच, जीवनशैली और आत्म-निर्भरता में व्यापक परिवर्तन लाया है। यह परिवर्तन सकारात्मक भी है और नकारात्मक भी, जो इस बात पर निर्भर करता है कि डिजिटल उपकरणों का उपयोग किस प्रकार और किस हद तक किया जा रहा है। इस शोध से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि डिजिटल युग में महिलाओं को तकनीकी रूप से सशक्त बनाने के साथ-साथ मानसिक स्वास्थ्य और समय प्रबंधन के प्रति भी जागरूक किए जाने की आवश्यकता है, ताकि डिजिटल विकास का प्रभाव संतुलित और सकारात्मक बना रहे।

निष्कर्ष:

यह अध्ययन स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि डिजिटल युग ने महिलाओं के जीवन में गहरे व्यवहारिक परिवर्तन लाए हैं। जहां एक ओर डिजिटल तकनीक ने महिलाओं को शिक्षा, जानकारी, रोजगार और सामाजिक जुड़ाव के नए अवसर प्रदान किए हैं, वहीं दूसरी ओर इसका अत्यधिक उपयोग मानसिक तनाव, सामाजिक अलगाव और आत्म-छवि से संबंधित समस्याओं का कारण भी बन रहा है।शहरी महिलाएं डिजिटल प्लेटफार्म का अधिक उपयोग करती हैं, जिससे उनमें डिजिटल साक्षरता और आत्मनिर्भरता बढ़ी है, लेकिन इसके साथ ही तनाव और अकेलेपन की शिकायतें भी देखी गई। वहीं ग्रामीण महिलाएं धीरे-धीरे डिजिटल दुनिया से जुड़ रही हैं, परंतु उन्हें तकनीकी प्रशिक्षण और संसाधनों की अधिक आवश्यकता है।समग्र रूप से, यह निष्कर्ष निकलता है कि डिजिटल युग में महिलाओं के व्यवहार में आए परिवर्तन समय की माँग और तकनीकी विकास का परिणामहैं। इन परिवर्तनों का सकारात्मक लाभ उठाने के लिए जरूरी है कि महिलाओं को डिजिटल शिक्षा, मानसिक स्वास्थ्य जागरूकता, और संतुलित उपयोग की दिशा में मार्गदर्शन दिया जाए, ताकि वे तकनीक का उपयोग आत्मविकास और सशक्तिकरण के लिए कर सकें।शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों की महिलाओं के अनुभवों के विश्लेषण से यह पाया गया कि शहरी महिलाएं डिजिटल तकनीकों का अधिक उपयोग करती हैं, विशेषत: शिक्षा, कार्य, सूचना प्राप्ति और सामाजिक मीडिया के माध्यम से संपर्क बनाए रखने के लिए। इसका सकारात्मक प्रभाव यह देखा गया कि महिलाएं अब अधिक आत्मनिर्भर, जागरूक और आत्मविश्वासी हुई हैं। कई महिलाओं ने बताया कि ऑनलाइन प्लेटफार्म के जरिए उन्हें स्वरोजगार के अवसर प्राप्त हुए, जिससे उनका सामाजिक और आर्थिक सशक्तिकरण हुआ।इसके विपरीत कई नकारात्मक प्रभाव भी सामने आए हैं। डिजिटल प्लेटफार्म के अत्यधिक प्रयोग से मानसिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है, जैसे तनाव, चिंता, अकेलापन और आत्म-छवि को लेकर असंतोष। महिलाएं खुद को सोशल मीडिया पर दूसरों से तुलना करने लगी हैं, जिससे आत्म-संतोष में कमी आई है। साथ ही, व्यक्तिगत संबंधों में दूरी और समय प्रबंधन की समस्याएं भी उत्पन्न हुई हैं। ग्रामीण महिलाओं में डिजिटल साक्षरता की स्थिति अपेक्षाकृत कमजोर है, लेकिन उनमें डिजिटल उपकरणों के प्रति रुचि और सीखने की ललक देखी गई। उन्हें डिजिटल दुनिया से जोड़ने के लिए विशेष प्रशिक्षण और संसाधनों की आवश्यकता है।मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से, यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि डिजिटल युग ने महिलाओं की जीवनशैली, सामाजिक व्यवहार, मानसिक अवस्था और आत्म-छवि को नई दिशा दी है। यह दिशा सकारात्मक भी हो सकती है यदि महिलाओं को सही मार्गदर्शन, संतुलन और मानसिक स्वास्थ्य से संबंधित जानकारी समय पर उपलब्ध हो। अत:, यह अनिवार्य है कि भविष्य में डिजिटल उपयोग के साथ-साथ डिजिटल संतुलन, मनोवैज्ञानिक जागरूकता, और सशक्तिकरण की नीतिअपनाई जाए, जिससे महिलाएं इस तकनीकी युग का लाभ उठाते हुए एक संतुलित, सफल और मानसिक रूप से स्वस्थ जीवन जी सकें।

संदर्भ :

1. Gupta, R. & Rathi, M. (2020). Effect of Digital Usage on Women's Mental Health. International Journal of Digital Media, 5(2), 45-52.
2. Sharma, P. (2019). Impact of Social Media on Women's Lifestyle. Journal of Women's Studies, 14(1), 60-68.
3. Verma, S. & Singh, N. (2021). Digital Literacy among Rural and Urban Women. Indian Journal of Social Psychology, 28(3), 120-129.
4. Das, M. (2022). Behavioral Changes in Women Due to Smartphone Addiction. Psychology Today India, 9(4), 33-39.
5. Kaur, H. (2020). Women Empowerment in the Digital Age. Global Journal of Gender Studies, 6(1), 75-82.
6. Mishra, A. & Patel, S. (2021). Digital Divide and Female Participation in Technology. Journal of Digital Society, 3(2), 50-58.
7. National Sample Survey Office (NSSO). (2020). Digital Device Usage in India: Gender-wise Statistics.Government of India Report.
8. Singh, R. (2018). Mental Health and Online Engagement of Women. Indian Psychological Review, 22(2), 95-101.
9. Choudhary, N. (2023). Changing Communication Patterns of Women in the Internet Era. Women & Media Research Journal, 7(3), 110-117.
10. World Health Organization (WHO). (2021). Digital Media Use and Mental Well-being: Gender Perspective.Geneva: WHO Publications.
11. Joshi, M. & Tiwari, A. (2020). Social Media Impact on Emotional Well-being of Women. Journal of Digital Psychology, 4(1), 22-30.
12. Kapoor, R. (2019). Role of Internet in Transforming Women's Role in Society. International Journal of Sociology and Gender Studies, 10(2), 89-95.
13. Ramesh, K. (2021). Psychological Challenges Faced by Women in the Digital Age. Indian Journal of Mental Health, 16(3), 58-64.
14. Mehta, D. & Sinha, R. (2022). Effect of Digital Media on Women's Decision Making and Self-Esteem. Women Development Review, 5(2), 40-47.
15. Ahmad, S. (2020). Digital Empowerment and its Psychological Impact on Women in India. Indian Journal of Digital Studies, 8(1), 100-107.
16. Bhatt, P. (2021). Digital Behavior and Online Safety Awareness Among Women. International Journal of Cyber Psychology, 3(3), 55-62.
17. Jain, S. & Malhotra, N. (2018). Women's Participation in the Digital Economy: A Behavioral Study. Journal of Modern Social Research, 6(4), 78-86.
18. Government of India. (2021). Digital India Programme: Gender Inclusive Initiatives. Ministry of Electronics and Information Technology.
19. UNICEF India. (2022). Digital Engagement and Safety among Adolescent Girls. New Delhi: UNICEF Publications.
20. UNESCO. (2020). Gender and ICTs: Mapping the Behavioral Shift in Women. Paris: UNESCO Reports.
21. Nanda, P. & Sethi, R. (2022). Psychological Impact of Online Lifestyle on Women. Journal of Applied Psychology and Behavioral Science, 12(1), 90-97.
22. Roy, B. & Khatri, M. (2019). Women, Internet, and Identity Formation. Indian Journal of Media Studies, 7(2), 45-54.
23. Thomas, L. (2021). Mental Health and Digital Engagement Among Urban Women in India. South Asian Psychology Journal, 10(3), 66-73.
24. Bhargava, R. (2020). Changing Roles of Women in the Digital Era. Journal of Contemporary Gender Studies, 3(1), 33-41.
25. Saxena, M. & Iyer, V. (2023). Internet Usage Patterns and Behavioral Shifts in Indian Women. Journal of Behavioural Research, 11(2), 112-120.

आरक्षण बनाम स्किल डेवलपमेंट: युवाओं का सशक्तिकरण आत्मनिर्भर भारत बनाने की दिशा में एक कदम

श्री संतोष आनंद

(शोधार्थी), सहायक प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष, राजनीति विज्ञान विभाग, एस.आर.ए.पी. महाविद्यालय, बड़ा चकिया, पूर्वी चंपारण

सार संक्षेप:

भारतीय समाज में आरक्षण एक सामाजिक न्याय का औजार रहा है, जिसका उद्देश्य ऐतिहासिक रूप से वंचित समुदायों को शिक्षा, रोजगार और राजनीतिक प्रतिनिधित्व में समावेश देना रहा है। किंतु बदलते वैश्विक परिदृश्य में जब आर्थिक विकास, तकनीकी प्रगति और उद्यमशीलता को प्राथमिकता दी जा रही है, तब केवल आरक्षण के भरोसे युवाओं का भविष्य सुरक्षित करना पर्याप्त नहीं प्रतीत होता। इसी संदर्भ में कौशल विकास (Skill Development) एक प्रभावी विकल्प के रूप में उभरता है, जो युवाओं को प्रतिस्पर्धी बाजार के अनुरूप तैयार कर आत्मनिर्भरता की ओर ले जाता है।

भारत की युवा जनसंख्या दुनिया में सबसे अधिक है, किंतु रोजगार और कौशल के बीच असमानता एक बड़ी चुनौती बनकर खड़ी है। प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (PMKVY), स्टार्टअप इंडिया, अटल नवाचार मिशन आदि योजनाएँ युवाओं को न केवल प्रशिक्षित कर रही हैं, बल्कि उन्हें स्वरोजगार हेतु प्रोत्साहित भी कर रही हैं। यह परिप्रेक्ष्य आत्मनिर्भर भारत की परिकल्पना को साकार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है।

हालांकि, यह विमर्श 'आरक्षण बनाम कौशल विकास' न होकर 'आरक्षण और कौशल विकास' होना चाहिए। आरक्षण सामाजिक समावेशन को सुनिश्चित करता है, जबकि कौशल विकास आर्थिक सशक्तिकरण को गति देता है। दोनों मिलकर ही समावेशी विकास की अवधारणा को साकार कर सकते हैं।

इस आलेख का उद्देश्य है – इस द्वंद्व को समझना, युवाओं के भविष्य के लिए नीतिगत दिशा सुझाना, और भारत को आत्मनिर्भर बनाने की प्रक्रिया में एक संतुलित दृष्टिकोण प्रस्तुत करना।

कुंजी शब्द (Keywords): आरक्षण, कौशल विकास, आत्मनिर्भर भारत, युवा सशक्तिकरण, सामाजिक न्याय, रोजगार शिक्षा नीति, प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना, उद्यमिता, समावेशी विकास नीति निर्माण, आर्थिक स्वतंत्रता

भूमिका:- भारत एक युवा राष्ट्र है जहाँ 65% जनसंख्या 35 वर्ष से कम उम्र की है। यह जनसांख्यिकीय लाभांश यदि सही दिशा में लगाया जाए, तो भारत को न केवल आत्मनिर्भर बनाया जा सकता है, बल्कि यह वैश्विक आर्थिक महाशक्ति भी बन सकता है। इसके लिए आवश्यक है कि युवाओं को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण एवं रोजगारोन्मुख कौशल प्रदान किया जाए। इस संदर्भ में आरक्षण और स्किल डेवलपमेंट दो महत्वपूर्ण तत्व हैं। जबकि आरक्षण ऐतिहासिक सामाजिक अन्याय को संतुलित करने का प्रयास है, वहीं कौशल विकास आर्थिक स्वतंत्रता की कुंजी है।

1. आरक्षण:-

सामाजिक न्याय की ऐतिहासिक नींव आरक्षण, भारतीय संविधान की धारा 15(4), 16(4), और 46 के अंतर्गत अनुसूचित जाति, जनजाति, और अन्य पिछड़ा वर्ग के लिए शिक्षा और रोजगार में अवसर सुनिश्चित करता है। यह नीति उस सामाजिक संरचना को चुनौती देने के लिए बनाई गई थी जिसने सदियों तक वंचित वर्गों को मुख्यधारा से अलग रखा।

भारतीय संविधान में सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों को समान अवसर प्रदान करने हेतु आरक्षण व्यवस्था लागू की गई है। इसका उद्देश्य समाज के हाशिए पर खड़े वर्गों को मुख्यधारा में लाना है। आरक्षण एक ऐसा विषय है, जो समय-समय पर विवाद का कारण बनता रहा है, परंतु इसके पीछे की मूल भावना सामाजिक न्याय और समानता है।

आरक्षण की आवश्यकता :-

भारत एक विविधतापूर्ण देश है, जहां जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र आदि के आधार पर समाज में गहरी असमानताएं हैं। ऐतिहासिक रूप से कुछ जातियों को शिक्षा, रोजगार और समाज में बराबरी का अवसर नहीं मिला। इसलिए, संविधान निर्माताओं ने यह सुनिश्चित किया कि इन वर्गों को आरक्षण के माध्यम से आगे बढ़ने का अवसर मिले।

आरक्षण के प्रकार:-

भारत में मुख्यत: अनुसूचित जाति (SC), अनुसूचित जनजाति (ST) और अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC) को आरक्षण प्राप्त है। यह आरक्षण शिक्षा, सरकारी नौकरियों और राजनीतिक प्रतिनिधित्व में दिया जाता है। हाल ही में आर्थिक रूप से कमजोर सामान्य वर्ग (EWS) के लिए भी 10% आरक्षण लागू किया गया है।

आरक्षण के लाभ:

1. सामाजिक न्याय की स्थापना होती है।
2. वंचित वर्गों को आत्मनिर्भर बनने का अवसर मिलता है।
3. सरकारी तंत्र में विविधता आती है, जिससे नीति निर्माण में सभी वर्गों की भागीदारी सुनिश्चित होती है।

आरक्षण की चुनौतियाँ:-

1. कुछ लोग इसका अनुचित लाभ उठाते हैं जबकि वास्तव में जरूरतमंद पीछे रह जाते हैं।
2. आरक्षण के कारण कभी-कभी योग्यता को नजरअंदाज किया जाता है।
3. यह समाज में नई प्रकार की असमानता और तनाव भी उत्पन्न कर सकता है। आरक्षण एक सामाजिक सुधार का उपकरण है, जिसका उद्देश्य समावेशी समाज की स्थापना करना है। हालांकि, इसके दुरुपयोग को रोकना और इसकी समय-समय पर समीक्षा करना आवश्यक है। यदि इसे न्यायसंगत तरीके से लागू किया जाए तो यह देश की सामाजिक एकता और विकास के लिए एक मजबूत आधार बन सकता है।

2. आरक्षण की सीमाएँ और आधुनिक चुनौती:-

हालांकि आरक्षण ने अनेक वंचितों को ऊपर उठने का अवसर दिया है, लेकिन समय के साथ इसकी सीमाएँ भी स्पष्ट हुई हैं:

- जातिगत पहचान का सशक्तिकरण जबकि सामाजिक समरसता का क्षरण।
- योग्यता और प्रतिस्पर्धा की अवधारणाओं पर असर।
- राजनीतिक लाभ के लिए आरक्षण का विस्तार।
- आर्थिक रूप से पिछड़े लेकिन जातिगत रूप से श्सवर्णश माने जाने वाले वर्गों की उपेक्षा।

भारतीय संविधान में आरक्षण व्यवस्था का उद्देश्य सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों को मुख्यधारा में लाना था। यह एक सकारात्मक भेदभाव (Positive Discrimination) का प्रयास था, जिससे ऐतिहासिक अन्याय की भरपाई हो सके। परंतु बदलते समय के साथ-साथ आरक्षण की प्रभावशीलता, सीमाएँ और इससे जुड़ी आधुनिक चुनौतियाँ भी सामने आई हैं।

आरक्षण की सीमाएँ:

1. योग्यता का ह्रास: कई बार योग्य अभ्यर्थियों को अवसर से वंचित कर दिया जाता है, जिससे प्रतिस्पर्धा और गुणवत्ता प्रभावित होती है।
2. क्रीमीलेयर का लाभ: पिछड़े वर्गों में भी संपन्न और शिक्षित वर्ग ही बार-बार आरक्षण का लाभ उठा लेते हैं, जबकि वास्तव में जरूरतमंद वर्ग पीछे रह जाता है।
3. स्थायी समाधान नहीं: आरक्षण केवल अवसर देता है, लेकिन गरीबी, शिक्षा की कमी और सामाजिक भेदभाव जैसी समस्याओं का स्थायी समाधान नहीं कर सकता है।

आधुनिक चुनौतियाँ:

1. आर्थिक आधार पर आरक्षण की मांग: आज आर्थिक पिछड़ेपन को भी समान अवसर न मिलने का कारण माना जा रहा है। इसलिए सामान्य वर्ग में आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों (EWS) को भी आरक्षण देना पड़ा।
2. राजनीतिक दवाब और वोट बैंक की राजनीति: कई बार आरक्षण का निर्णय सामाजिक सुधार से अधिक राजनीतिक लाभ के लिए लिया जाता है, जिससे असंतोष और असंतुलन पैदा होता है।
3. शहरी और ग्रामीण अंतर: शहरों में रहने वाले लाभार्थी आरक्षण के अधिक अवसरों का फायदा उठाते हैं, जबकि ग्रामीण इलाकों में रहने वाले लोग सूचनाओं और संसाधनों के अभाव में पीछे रह जाते हैं।
4. नवीन सामाजिक वर्गों की मांग: गुर्जर, मराठा, पाटीदार आदि समुदायों द्वारा आरक्षण की मांग ने यह दिखाया कि सामाजिक असंतुलन केवल अनुसूचित जातियों तक सीमित नहीं रहा।
5. समाधान और सुझाव:
    - आरक्षण की समय-समय पर समीक्षा की जानी चाहिए।
    - आर्थिक और शैक्षिक पिछड़ेपन को भी आरक्षण का आधार बनाया जाए।
    - शिक्षा और कौशल विकास पर अधिक ध्यान देकर आरक्षण की आवश्यकता को धीरे-धीरे कम किया जाए।
    - आरक्षण के साथ-साथ सामाजिक जागरूकता, संवेदनशीलता और बराबरी का माहौल भी जरूरी है।
    - आरक्षण एक सामाजिक न्याय का माध्यम है, लेकिन यह कोई अंतिम समाधान नहीं। जब तक समाज में समान अवसर, शिक्षा और सम्मान नहीं होगा, तब तक आरक्षण की आवश्यकता बनी रहेगी। अब समय आ गया है कि हम आरक्षण व्यवस्था को न्यायसंगत, पारदर्शी और आधुनिक सामाजिक वास्तविकताओं के अनुरूप ढालें।

3. स्किल डेवलपमेंट:-

समकालीन समाधान प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (PMKVY), स्किल इंडिया मिशन, और राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP) जैसे कार्यक्रम युवाओं को व्यावसायिक प्रशिक्षण देकर उन्हें रोजगार के लिए तैयार करते हैं।

भारत एक युवा देश है, जहाँ बड़ी संख्या में जनसंख्या कार्यक्षमता की उम्र में है। ऐसे में उन्हें अवसर देना और सक्षम बनाना राष्ट्रीय विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है। दो प्रमुख रास्ते ख्र आरक्षण और कौशल विकास -समाज के वंचित वर्गों को ऊपर उठाने के प्रयास हैं। परंतु यह प्रश्न अक्सर उठता है कि देश को आगे बढ़ाने में किसका योगदान अधिक प्रभावी है - आरक्षण या कौशल विकास?

आरक्षण: सामाजिक न्याय की नींव:-

आरक्षण एक संवैधानिक प्रावधान है जिसका उद्देश्य सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों को शिक्षा, रोजगार और राजनीति में समान अवसर देना है। यह उन समुदायों को आगे लाने का प्रयास है जो ऐतिहासिक रूप से शोषित रहे हैं।

कौशल विकास: प्रतिस्पर्धा में आगे बढ़ने की कुंजी

कौशल विकास से आशय है व्यक्ति को व्यावसायिक, तकनीकी और व्यवहारिक ज्ञान से सशक्त बनाना, ताकि वह किसी भी क्षेत्र में योग्य बन सके। यह व्यवस्था योग्यता आधारित है, जहाँ जाति या वर्ग नहीं बल्कि क्षमता पर ध्यान दिया जाता है।

आरक्षण बनाम कौशल विकास ख्र तुलनात्मक विश्लेषण:

1. लाभ की स्थायित्वता: आरक्षण से तात्कालिक लाभ मिलता है, जबकि कौशल विकास दीर्घकालिक आत्मनिर्भरता सुनिश्चित करता है।
2. समानता बनाम योग्यता: आरक्षण समान अवसर दिलाने का माध्यम है, परंतु कौशल विकास से व्यक्ति अपनी योग्यता से समाज में स्थान बनाता है।
3. सामाजिक संतुलन: आरक्षण सामाजिक असमानता को दूर करने का प्रयास है, वहीं स्किल डेवलपमेंट आर्थिक आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देता है।

4. राजनीतिक हस्तक्षेप: आरक्षण अक्सर राजनीति से प्रभावित होता है, जबकि कौशल विकास एक व्यावसायिक, तटस्थ और व्यावहारिक दृष्टिकोण है।

वास्तविक समाधान:

देश की प्रगति के लिए केवल आरक्षण पर्याप्त नहीं। आज की वैश्विक प्रतिस्पर्धा में टिके रहने के लिए जरूरी है कि हर व्यक्ति के पास उचित कौशल हो। सरकार को चाहिए कि आरक्षण के साथ-साथ नि:शुल्क और सुलभ कौशल प्रशिक्षण की भी व्यवस्था करे, ताकि समाज के वंचित वर्ग वास्तव में सक्षम और आत्मनिर्भर बन सकें।

आरक्षण और कौशल विकास दोनों का उद्देश्य समान है ख्र समाज में समानता और विकास। परंतु आरक्षण एक सीढ़ी है, और कौशल विकास वह ताकत है जो उस सीढ़ी पर टिके रहने की क्षमता देता है। अत: अब जरूरत है कि हम आरक्षण के साथ-साथ स्किल डेवलपमेंट को भी प्राथमिकता दें, ताकि देश में योग्यता, न्याय और समानता एक साथ स्थापित हो सके।

4. आत्मनिर्भर भारत और कौशल आधारित अर्थव्यवस्था:-

कोविड-19 के पश्चात सरकार ने ष्आत्मनिर्भर भारतष अभियान शुरू किया जिसका एक प्रमुख स्तंभ है स्किल डेवलपमेंट। इसका उद्देश्य है:

- स्थानीय उद्योगों का प्रोत्साहन
- आयात पर निर्भरता में कमी
- स्वरोजगार और स्टार्टअप संस्कृति को बढ़ावा देना

ष्आत्मनिर्भर भारतष केवल एक नारा नहीं, बल्कि एक संकल्प है-एक ऐसा दृष्टिकोण जो भारत को न केवल वैश्विक मंच पर मजबूती से खड़ा करता है, बल्कि हर नागरिक को स्वावलंबी बनाने की दिशा में प्रेरित करता है। इस संकल्प की जड़ें ष्कौशल आधारित अर्थव्यवस्थाष में गहराई से जुड़ी हैं। जब देश का प्रत्येक नागरिक कुशल होगा, तभी भारत आत्मनिर्भर बन सकेगा।

आत्मनिर्भर भारत का अर्थ:

प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी द्वारा आरंभ की गई ''आत्मनिर्भर भारत अभियान'' की मूल भावना है कि भारत अपनी आवश्यकताओं को स्वयं पूरा करे, आयात पर निर्भरता घटे और घरेलू उत्पादनों को बढ़ावा मिले। यह पहल पांच स्तंभों पर आधारित है-अर्थव्यवस्था, अवसंरचना, व्यवस्था, जनसांख्यिकी और मांग।

कौशल आधारित अर्थव्यवस्था क्या है?

कौशल आधारित अर्थव्यवस्था वह होती है जिसमें आर्थिक विकास का आधार मानव संसाधन की कुशलता, नवाचार और तकनीकी दक्षता हो। इसमें शिक्षा केवल प्रमाण पत्र तक सीमित नहीं होती, बल्कि व्यवहारिक ज्ञान और कार्यकुशलता को अधिक महत्व दिया जाता है।

आत्मनिर्भर भारत और कौशल का परस्पर संबंध:

1. रोजगार सृजन: कौशल विकास से युवा नौकरी खोजने वाले नहीं, नौकरी देने वाले बनते हैं। इससे स्टार्टअप और उद्यमिता को बढ़ावा मिलता है।
2. मेक इन इंडिया को बल: कुशल श्रमिकों और तकनीकी विशेषज्ञों के माध्यम से भारत में विश्वस्तरीय उत्पादन संभव है, जिससे भारत निर्यात केंद्र बन सकता है।
3. विनिर्माण और सेवा क्षेत्र में प्रगति: स्वास्थ्य, कृषि, डिजिटल सेवा, निर्माण और पर्यटन जैसे क्षेत्रों में कुशल जनशक्ति से उत्पादकता और गुणवत्ता दोनों बढ़ती हैं।
4. वैश्विक प्रतिस्पर्धा: आज की वैश्विक अर्थव्यवस्था में केवल संसाधनों से नहीं, बल्कि कौशल और नवाचार से प्रतिस्पर्धा होती है। आत्मनिर्भर भारत इसी सोच की मांग करता है।

सरकारी प्रयास:

भारत सरकार ने "Skill India Mission", "Pradhan Mantri Kaushal Vikas Yojana (PMKVY)", "Digital India", और "Startup India" जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से देश में कौशल विकास और नवाचार को बढ़ावा दिया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भी व्यावसायिक शिक्षा और कौशल विकास को मुख्यधारा में लाने की पहल की गई है।

चुनौतियाँ:

- ग्रामीण क्षेत्रों में कौशल प्रशिक्षण की सीमित पहुंच
- प्रशिक्षण की गुणवत्ता और उद्योगों की मांग के बीच अंतर
- डिजिटल साक्षरता की कमी
- मानसिकता में बदलाव की आवश्यकता - कौशल को शिक्षा के समकक्ष सम्मान देना

समाधान:

- कौशल प्रशिक्षण को स्कूल स्तर से जोड़ना
- प्रशिक्षण कार्यक्रमों को उद्योगों से जोड़ना
- स्थानीय जरूरतों के अनुसार पाठ्यक्रम बनाना
- महिलाओं और दिव्यांगों के लिए विशेष कौशल योजनाएँ लागू करना

आत्मनिर्भर भारत का सपना तभी साकार होगा जब हर नागरिक शिक्षित होने के साथ-साथ कुशल भी होगा। कौशल आधारित अर्थव्यवस्था केवल आर्थिक विकास नहीं, बल्कि सामाजिक सशक्तिकरण का भी मार्ग है। भारत को वैश्विक स्तर पर आत्म निर्भर बनाना है, इसलिए आज की आवश्यकता है-'हर हाथ को हुनर', ताकि भारत आत्मनिर्भर ही नहीं, विश्वगुरु भी बन सके। नेतृत्व की ओर ले जाने वाली असली शक्ति उसके जनसांख्यिकीय लाभांश और उस लाभांश का कुशल उपयोग है।

- भारत में कौशल विकास और रोजगार:- भारत में लगभग 15% कार्यबल ही औपचारिक प्रशिक्षण प्राप्त करता है (PMKVY रिपोर्ट, 2020)
- राष्ट्रीय कौशल विकास मिशन के तहत अब तक 10 करोड़ से अधिक युवाओं को प्रशिक्षित किया जा चुका है।
- आरक्षण के तहत लाभार्थी:- 2011 की जनगणना के अनुसार, भारतीय समाज में अनुसूचित जाति (SC), अनुसूचित जनजाति (ST), और अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC) की कुल जनसंख्या 50% से अधिक है।
- 2020 में, OBC श्रेणी में 27% आरक्षण लागू किया गया था, और SC/ST को 15% और 7.5% आरक्षण दिया गया है।
- आत्मनिर्भर भारत और रोजगार:- प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (PMKVY) के अंतर्गत, 2020 में लगभग 1.5 मिलियन युवाओं को कौशल प्रशिक्षण दिया गया।
- आत्मनिर्भर भारत अभियान के तहत 3 लाख से अधिक MSMEs को प्रोत्साहन मिला और 5 करोड़ नए रोजगार सृजित करने का लक्ष्य रखा गया।

5. आरक्षण बनाम स्किल डेवलपमेंट: द्वंद्व या समन्वय:-

यह प्रश्न अब भी प्रासंगिक है कि क्या आरक्षण और स्किल डेवलपमेंट एक-दूसरे के विरोध में हैं या पूरक? आदर्श स्थिति में ये दोनों रणनीतियाँ मिलकर ही युवाओं के सर्वांगीण विकास को संभव बना सकती हैं। आरक्षण सामाजिक समावेशन सुनिश्चित करता है, जबकि स्किल डेवलपमेंट व्यक्ति को आत्मनिर्भरता की ओर ले जाता है।

भारतीय समाज में सामाजिक न्याय और आर्थिक प्रगति, दोनों की आवश्यकता लंबे समय से महसूस की जाती रही है। एक ओर आरक्षण सामाजिक असमानता को दूर करने का एक प्रयास है, वहीं दूसरी ओर कौशल विकास (Skill Development) व्यक्ति की योग्यता और आत्मनिर्भरता को बढ़ाने का माध्यम है। इन दोनों विषयों को प्राय: विरोधाभासी या प्रतिस्पर्धी दृष्टि से देखा जाता है, परंतु क्या वास्तव में यह द्वंद है, या इनमें समन्वय संभव है?

आरक्षण: सामाजिक न्याय की ओर एक कदम

आरक्षण एक संवैधानिक व्यवस्था है, जिसका उद्देश्य ऐतिहासिक रूप से वंचित वर्गों को शिक्षा, रोजगार और राजनीतिक प्रतिनिधित्व में समान अवसर प्रदान करना है। यह एक सामाजिक सुधार का माध्यम है, जो बराबरी का माहौल बनाने का प्रयास करता है।

कौशल विकास: आत्मनिर्भरता की कुंजी

कौशल विकास से आशय है व्यक्ति को तकनीकी, व्यवसायिक और व्यवहारिक ज्ञान देना, जिससे वह आत्मनिर्भर बन सके। यह व्यवस्था योग्यता आधारित है, जहाँ जाति, वर्ग या पृष्ठभूमि की बजाय प्रतिभा और क्षमता को महत्व दिया जाता है।

द्वंद की धारणा: कुछ विचारक मानते हैं कि आरक्षण योग्य उम्मीदवारों को अवसर से वंचित कर देता है, जबकि कौशल विकास सभी को समान आधार पर प्रतिस्पर्धा की अनुमति देता है। वहीं कुछ लोग कहते हैं कि यदि आरक्षण है, तो कौशल की आवश्यकता कम हो जाती है। इस सोच के कारण दोनों उपायों को एक-दूसरे के विरोध में देखा जाता है।

लेकिन वास्तव में यह द्वंद नहीं, समन्वय है:

1. आरक्षण अवसर देता है, कौशल उसे सफल बनाता है।

यदि किसी को आरक्षण के माध्यम से नौकरी या दाखिला मिल भी जाए, तो सफलता तभी संभव है जब उसमें आवश्यक कौशल हो।

2. आरक्षण सामाजिक बाधाएं हटाता है, स्किल डेवलपमेंट आत्मबल देता है।

वंचित वर्गों को केवल अवसर नहीं, सक्षम बनने का अवसर चाहिए। कौशल विकास उन्हें आत्मविश्वास और प्रतिस्पर्धा की क्षमता प्रदान करता है।

3. दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं।

आरक्षण बिना कौशल के अधूरा है, और कौशल विकास तब तक पूर्ण व्याप्त नहीं हो सकता जब तक वंचित वर्गों को अवसर ही न मिले।

सरकारी प्रयास और नीति: भारत सरकार ने "Skill India Mission", "Stand Up India", "Startup India" जैसी योजनाओं के साथ-साथ आरक्षण व्यवस्था को भी बनाए रखा है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में व्यावसायिक शिक्षा को मुख्यधारा से जोड़ा गया है, जिससे सामाजिक न्याय और योग्यता-दोनों साथ आगे बढ़ सकें।

आरक्षण और कौशल विकास को द्वंद की दृष्टि से नहीं, बल्कि सहयोगी उपकरण के रूप में देखा जाना चाहिए। दोनों का समन्वय ही उस भारत की नींव रख सकता है, जो सामाजिक रूप से न्यायपूर्ण और आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो। जब एक ओर समाज में समान अवसर होगा और दूसरी ओर हर नागरिक के पास उपयुक्त कौशल होगा, तब ही सच्चे अर्थों में समृद्ध और सबल भारत का निर्माण संभव होगा।

6 रोजगार और प्रतिस्पर्धा के परिप्रेक्ष्य में दोनों की उपयोगिता:-

- आरक्षण से सरकारी नौकरियों में नियोजन की सुविधा मिलती है।
- परंतु आज की अर्थव्यवस्था में निजी क्षेत्र, स्टार्टअप और उद्यमिता में कौशल की अधिक माँग है।
- वैश्विक स्तर पर प्रतिस्पर्धा के लिए केवल आरक्षण पर्याप्त नहीं है, कौशल का होना आवश्यक है।

वर्तमान समय में रोजगार पाना न केवल आवश्यक है, बल्कि कठिन प्रतिस्पर्धा का विषय भी बन गया है। भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश में युवाओं के लिए अवसरों की कमी और असमानता की स्थिति को देखते हुए आरक्षण और कौशल विकास दो ऐसे उपाय हैं जो समाज के वंचित वर्गों को आगे लाने में सहायक सिद्ध हुए हैं। लेकिन इन दोनों की उपयोगिता केवल सामाजिक दृष्टिकोण से ही नहीं, बल्कि रोजगार और प्रतिस्पर्धा की कसौटी पर भी मूल्यांकन योग्य है।

आरक्षण की उपयोगिता (रोजगार में): आरक्षण एक ऐसा सामाजिक औजार है, जिससे वंचित समुदायों को सरकारी नौकरियों, शिक्षण संस्थानों और अन्य क्षेत्रों में प्रवेश का अवसर मिलता है।

- समान अवसर की प्राप्ति: आरक्षण से ऐसे लोग जो पारंपरिक रूप से शिक्षा या नौकरी के अवसरों से वंचित रहे हैं, उन्हें मंच मिलता है।

- प्रतिनिधित्व में सुधार: इससे विभिन्न समुदायों का सरकारी तंत्र में प्रतिनिधित्व बढ़ता है।
- सशक्तिकरण: आर्थिक और सामाजिक रूप से पिछड़े वर्गों को मुख्यधारा से जोड़ा जाता है।

कौशल विकास की उपयोगिता (रोजगार में):

रोजगार के बदलते स्वरूप में केवल डिग्री पर्याप्त नहीं रह गई है। तकनीकी, डिजिटल और व्यवहारिक कौशल आज की अर्थव्यवस्था की अनिवार्यता बन चुके हैं।

- प्रतिस्पर्धा में आगे रहने का माध्यम: स्किल्ड व्यक्ति किसी भी चयन प्रक्रिया में अधिक सक्षम होता है।
- स्वरोजगार और स्टार्टअप की संभावना: कुशल व्यक्ति नौकरी ढूँढने वाला नहीं, नौकरी देने वाला बन सकता है।
- वैश्विक रोजगार अवसर: वैश्विक कंपनियाँ भी कौशल आधारित चयन को प्राथमिकता देती हैं।

दोनों की संयुक्त उपयोगिता:

- आरक्षण + कौशल = समावेशी सफलता

आरक्षण द्वारा अवसर प्राप्त करने वाला व्यक्ति यदि कौशल में दक्ष हो, तो वह न केवल नौकरी पाएगा, बल्कि उसमें टिकेगा और आगे बढ़ेगा भी।

- संतुलन और न्याय: कौशल के बिना आरक्षण अधूरा है, और आरक्षण के बिना कौशल का लाभ केवल सशक्त वर्गों तक सीमित रह सकता है।

प्रतिस्पर्धा के युग में संतुलन आवश्यक:

आज का दौर 'मेधावी बनाम वंचित' का नहीं, बल्कि 'समावेशी योग्यता' का है। प्रतिस्पर्धा केवल मेरिट पर आधारित नहीं हो सकती, जब तक कि समाज के सभी वर्गों को समान मंच और साधन न मिले। इसलिए,

- आरक्षण अवसर देता है,
- कौशल सफलता दिलाता है।

सरकारी पहल:

'प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (PMKVY)"] "Skill India"] "Digital India"] "Start-up India" जैसी योजनाएँ कौशल विकास को बढ़ावा दे रही हैं। वहीं, संवैधानिक आरक्षण व्यवस्था अब आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग (EWS) तक भी विस्तृत हो चुकी है।

रोजगार और प्रतिस्पर्धा के वर्तमान परिदृश्य में न तो आरक्षण को नजरअंदाज किया जा सकता है, और न ही कौशल विकास को। दोनों मिलकर ही एक ऐसे भारत की नींव रख सकते हैं, जो समानता, योग्यता और आत्मनिर्भरता का प्रतीक हो। अत: आवश्यकता है कि आरक्षण और कौशल विकास को विकल्प नहीं, पूरक के रूप में देखा जाए।

7. शिक्षा प्रणाली और प्रशिक्षण संस्थानों की भूमिका:-

- ITI, पॉलिटेक्निक, स्किल डेवलपमेंट सेंटर्स को सशक्त किया जाना चाहिए।
- डिजिटल शिक्षा, ऑनलाइन प्रशिक्षण, और एप्रेंटिसशिप मॉडल को बढ़ावा देना होगा।
- छम्ब् 2020 इस दिशा में एक सकारात्मक पहल है, जिसमें स्कूली शिक्षा से ही कौशल शिक्षा को जोड़ा गया है।
- स्वरोजगार और स्टार्टअप:- भारत में 2020 में लगभग 50,000 नए स्टार्टअप पंजीकृत हुए, और इनमें से अधिकांश ने रोजगार सृजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।
- 2020 के आंकड़ों के अनुसार, भारत में स्वरोजगार के आंकड़े 12% से बढ़कर 18% तक पहुंच गए हैं, जिससे छोटे उद्योगों और स्थानीय व्यापारों को बढ़ावा मिला है।

आरक्षण और कौशल विकास ख्र दोनों भारत की सामाजिक-आर्थिक संरचना को संतुलित करने के महत्वपूर्ण स्तंभ हैं। परंतु इन दोनों प्रयासों को जमीन पर प्रभावशाली रूप से लागू करने में सबसे अहम भूमिका निभाती है शिक्षा प्रणाली और शैक्षणिक संस्थान । यही वे स्थान हैं जहाँ आरक्षण का व्यावहारिक लाभ मिलता है और कौशल विकास की नींव रखी जाती है।

1. शिक्षा प्रणाली में आरक्षण की भूमिका:

- प्रवेश में समानता: स्कूलों, कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में आरक्षण नीति वंचित वर्गों के छात्रों को उच्च शिक्षा में प्रवेश का अवसर देती है।
- प्रतिनिधित्व बढ़ाना: आरक्षण के कारण अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़ा वर्ग और आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग (EWS) के छात्र शिक्षा के माध्यम से समाज में अपना स्थान बना पाते हैं।
- शैक्षिक न्याय: आरक्षण उन छात्रों को मंच देता है जिन्हें सामाजिक व आर्थिक असमानता ने पिछड़ा बना रखा है।

2. कौशल विकास में शिक्षा संस्थानों की भूमिका:

- व्यावसायिक पाठ्यक्रमों का समावेश: आज के शिक्षण संस्थानों में केवल शैक्षणिक ज्ञान नहीं, बल्कि तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा की आवश्यकता है, जो छात्रों को उद्योगों के लिए तैयार करे।
- इंटर्नशिप और ट्रेनिंग: कॉलेज-स्तर पर कौशल विकास के कार्यक्रम, लैब्स, कार्यशालाएँ और उद्योगों से जुड़ी इंटर्नशिप छात्रों को व्यवहारिक अनुभव प्रदान करती हैं।
- NEP 2020 का योगदान: नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में स्कूली स्तर पर कौशल शिक्षा को शामिल किया गया है, जिससे छात्र बचपन से ही हुनर सीख सकें।

3. समन्वय की आवश्यकता:

- आरक्षण + गुणवत्ता: शिक्षण संस्थानों को यह सुनिश्चित करना होगा कि आरक्षण के माध्यम से आने वाले छात्रों को गुणवत्ता शिक्षा, अतिरिक्त सहयोग (remedial teaching), मेंटरशिप और आत्मविश्वास मिले।
- कौशल + समावेशिता: कौशल प्रशिक्षण केवल चुनिंदा छात्रों तक सीमित न रहकर सभी के लिए सुलभ हो, खासकर- ग्रामीण, आदिवासी, और पिछड़े वर्गों के लिए।

4. शिक्षकों की भूमिका:

- शिक्षकों को सामाजिक संवेदनशीलता के साथ पढ़ाना चाहिए, ताकि आरक्षण से आए छात्रों को भेदभाव का सामना न करना पड़े।
- उन्हें छात्रों को केवल परीक्षा के लिए नहीं, बल्कि जीवन और करियर के लिए सक्षम बनाना चाहिए।

शिक्षा प्रणाली और शैक्षणिक संस्थान केवल ज्ञान का माध्यम नहीं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन के साधन हैं। यदि ये संस्थान आरक्षण और कौशल विकास दोनों को साथ लेकर चलें, तो समाज में समानता, आत्मनिर्भरता और उत्पादकता को एक साथ बढ़ावा दिया जा सकता है। अत: शिक्षा को केवल डिग्री नहीं, सशक्तिकरण का माध्यम बनाया जाना चाहिए।

8. सामाजिक समावेशन और आर्थिक सशक्तिकरण के मध्य संतुलन:-

- आरक्षण सामाजिक न्याय है, लेकिन यदि यह आर्थिक स्वतंत्रता में रूपांतरित न हो तो इसका उद्देश्य अधूरा रह जाता है।
- अत: एकीकृत नीति बनानी होगी जो आरक्षण और कौशल विकास दोनों को जोड़ती हो।

भारत जैसे विविधतापूर्ण देश में जहां जाति, वर्ग, लिंग, भाषा और क्षेत्रीय असमानता विद्यमान है, वहाँ सामाजिक समावेशन और आर्थिक सशक्तिकरण दो ऐसे महत्वपूर्ण स्तंभ हैं जो समग्र और संतुलित विकास के लिए अनिवार्य हैं। सामाजिक समावेशन का आशय है समाज के हर वर्ग को बराबरी का स्थान और सम्मान देना, जबकि आर्थिक सशक्तिकरण का मतलब है लोगों को आत्मनिर्भर और आर्थिक रूप से सक्षम बनाना। इन दोनों के बीच संतुलन ही सच्चे विकास का मार्ग प्रशस्त करता है।

सामाजिक समावेशन का महत्व:

- यह सुनिश्चित करता है कि कोई भी वर्ग सामाजिक ताने-बाने से बाहर न रह जाए।
- इससे वंचित वर्गों को शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार और न्याय जैसी मूलभूत सुविधाओं तक पहुँच मिलती है।
- यह सामाजिक एकता, सद्भाव और लोकतांत्रिक मजबूती का आधार है।

आर्थिक सशक्तिकरण का महत्व:

- व्यक्ति को आत्मनिर्भर बनाता है जिससे वह समाज में सम्मान के साथ जीवन जी सके।
- रोजगार, उद्यमिता, वित्तीय शिक्षा और संसाधनों की उपलब्धता इसके मुख्य घटक हैं।
- इससे गरीबी में कमी आती है और समृद्धि की ओर देश अग्रसर होता है।

दोनों के बीच संतुलन क्यों आवश्यक है?

1. केवल समावेशन पर्याप्त नहीं: यदि समाज में समावेशन हो लेकिन आर्थिक संसाधनों तक पहुँच न हो, तो वह व्यक्ति आत्मनिर्भर नहीं बन पाता।
2. केवल आर्थिक सशक्तिकरण अधूरा: यदि किसी को आर्थिक अवसर मिल भी जाए, लेकिन सामाजिक भेदभाव और अस्वीकार्यता बनी रहे, तो वह विकास अधूरा रहेगा।
3. दोनो एक-दूसरे के पूरक: सामाजिक समावेशन बिना आर्थिक आधार के खोखला होता है, और आर्थिक सशक्तिकरण बिना सामाजिक स्वीकार्यता के अस्थिर होता है।

उदाहरण: - महिलाओं का सशक्तिकरण: केवल रोजगार देने से नहीं, बल्कि उन्हें निर्णय लेने का अधिकार, सम्मान और समान अवसर देने से ही वास्तविक परिवर्तन आता है।

- आरक्षण और स्किल डेवलपमेंट: वंचित वर्गों को आरक्षण से अवसर मिले और स्किल डेवलपमेंट से क्षमता, तभी सशक्तिकरण पूर्ण होता है।
- स्वयं सहायता समूह (SHG): ग्रामीण महिलाओं को सामाजिक पहचान और आर्थिक स्वतंत्रता दोनों मिलती हैं।

सरकारी प्रयास:

- जन धन योजना, मुद्रा योजना, स्टार्टअप इंडिया जैसी योजनाएँ आर्थिक सशक्तिकरण की दिशा में काम कर रही हैं।
- स्वच्छ भारत, बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ, शिक्षा का अधिकार जैसी योजनाएँ सामाजिक समावेशन को बढ़ावा देती हैं।
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में शिक्षा को समावेशी और कौशल उन्मुख बनाया गया है।

देश की प्रगति केवल आर्थिक आँकड़ों से नहीं मापी जा सकती, जब तक समाज का हर व्यक्ति उसमें सहभागी न हो। सामाजिक समावेशन और आर्थिक सशक्तिकरण को अलग-अलग नहीं, बल्कि एक संयुक्त प्रक्रिया के रूप में देखा जाना चाहिए। यही संतुलन भारत को सशक्त, समावेशी और आत्मनिर्भर राष्ट्र बनने की दिशा में अग्रसर करेगा।

9. सुझाव और नीतिगत दिशा:-

- EWS आरक्षण की तरह स्किल आधारित आरक्षण मॉडल पर विचार किया जा सकता है।
- ग्रामीण क्षेत्रों में मोबाइल स्किल वैन और डिजिटल लर्निंग हब की स्थापना।
- स्किल मैपिंग के माध्यम से युवाओं की रुचि और क्षमतानुसार प्रशिक्षण।

भारत जैसे विविधतापूर्ण और जनसंख्या-प्रधान देश में आरक्षण और कौशल विकास दो ऐसे महत्त्वपूर्ण साधन हैं, जो सामाजिक न्याय और आर्थिक विकास के बीच संतुलन स्थापित करते हैं। जहाँ आरक्षण ऐतिहासिक असमानताओं को सुधारने का एक प्रयास है, वहीं कौशल विकास देश के मानव संसाधन को उत्पादक और आत्मनिर्भर बनाने की प्रक्रिया है। लेकिन इन दोनों की प्रभावशीलता नीतियों की गुणवत्ता और उनके क्रियान्वयन पर निर्भर करती है।

आरक्षण व्यवस्था: उद्देश्य और वर्तमान संदर्भ

- आरक्षण का मूल उद्देश्य सामाजिक रूप से वंचित वर्गों को शिक्षा, रोजगार और राजनीतिक भागीदारी में समान अवसर देना है।
- आज आरक्षण केवल जातिगत नहीं, बल्कि आर्थिक (EWS) आधार पर भी विस्तारित हो चुका है, जिससे इसकी व्यापकता बढ़ी है।
- हालांकि, कई बार आरक्षण को 'सिर्फ अवसर' तक सीमित समझा जाता है, जबकि क्षमता निर्माण का पहलू उपेक्षित रह जाता है।

कौशल विकासः बदलती आर्थिक जरूरतों के अनुरूप एक कदम

- कौशल विकास का उद्देश्य युवाओं को उद्योगों, सेवा क्षेत्रों और नवाचार के लिए तैयार करना है।
- भारत में "Skill India Mission", "PMKVY", "NSDC" जैसे कार्यक्रमों ने इस दिशा में कई कदम उठाए हैं, लेकिन चुनौती है गुणवत्ता और व्यवसायों की आवश्यकताओं के अनुरूप प्रशिक्षण।
- ग्रामीण क्षेत्रों, महिलाओं, और वंचित समुदायों तक इस प्रशिक्षण की पहुँच अभी भी सीमित है।

प्रमुख सुझाव (नीतिगत दिशा):

1. आरक्षण को समर्थन + सशक्तिकरण में बदलना:

- आरक्षण के साथ-साथ वंचित वर्गों के छात्रों के लिए bridging courses, मेंटरशिप, और रोजगारोन्मुखी प्रशिक्षण अनिवार्य बनाया जाए।
- आरक्षण की समय-सीमा और प्रभावशीलता की निरंतर समीक्षा होनी चाहिए।

2. कौशल विकास को शिक्षा से जोड़ना:

- स्कूली पाठ्यक्रम में कक्षा 6 से ही व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा को शामिल किया जाए।
- राज्य स्तर पर जिला कौशल केंद्र खोले जाएँ, जो स्थानीय उद्योगों के अनुसार प्रशिक्षण दें।

3. आरक्षण से लाभान्वित वर्ग को स्किल्ड बनाना:

- आरक्षण के तहत चयनित छात्रों को अनिवार्य रूप से communication, digital literacy और soft skills में प्रशिक्षित किया जाए।
- SC/ST/OBC छात्रों के लिए अतिरिक्त स्किल फेलोशिप योजनाएँ चलाई जाएँ।

4. रोजगार और उद्योग से तालमेलः

- शिक्षण संस्थानों, ITI, और कौशल केंद्रों को उद्योगों के साथ जोड़ा जाए, जिससे प्रशिक्षण सीधे नौकरी से जुड़ सके।
- "Skill + Placement" मॉडल को प्राथमिकता दी जाए।

5. सामाजिक जागरूकता और मानसिकता परिवर्तनः

- समाज में यह धारणा फैलानी होगी कि आरक्षण योग्यता का विरोध नहीं करता, बल्कि समान मंच का निर्माण करता है।
- कौशल आधारित शिक्षा को सम्मान और मान्यता दी जाए, ताकि युवा केवल डिग्री नहीं, योग्यता प्राप्त करने की ओर आकर्षित हो।

10. निष्कर्षः-

आरक्षण और स्किल डेवलपमेंट को एक-दूसरे के विकल्प नहीं, बल्कि पूरक रूप में देखा जाना चाहिए। आरक्षण समान अवसर प्रदान करता है, और स्किल डेवलपमेंट उन अवसरों का उपयोग कर आत्मनिर्भरता की ओर मार्ग प्रशस्त करता है। आत्मनिर्भर भारत की संकल्पना को मूर्त रूप देने के लिए यह अनिवार्य है कि हम इन दोनों विमर्शों को संतुलित दृष्टि से अपनाएँ।

आरक्षण और कौशल विकास को एक-दूसरे के पूरक के रूप में नीतियों में समाहित किया जाना चाहिए। केवल अवसर देना पर्याप्त नहीं; उन अवसरों का लाभ लेने के लिए लोगों को सक्षम बनाना अनिवार्य है। जब नीति नियोजन में समावेशन और उत्पादकता दोनों को समान प्राथमिकता मिलेगी, तभी भारत सशक्त, समान और आत्मनिर्भर राष्ट्र के रूप में आगे बढ़ सकेगा।

संदर्भ सूचीः-

1. सर्वाधिकारी, प्रयास (2020), "आरक्षण और मेरिटः भ्रान्ति या वास्तविकता"?!, नभ प्रकाशन, अमरावती.
2. भारत सरकार, (2019), संविधान (103वाँ संशोधन) अधिनियम- 2019, विधि और न्याय मंत्रालय, https://legislative.gov.in

3. शिक्षा मंत्रालय, (2020), राष्ट्रीय शिक्षा नीति- 2020, भारत सरकार, https://www.education.gov.in
4. कौशल विकास और उद्यमिता मंत्रालय, प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (PMKVY), भारत सरकार, https://www.pmkvyofficial.org
5. राष्ट्रीय कौशल विकास निगम,(2023), वार्षिक प्रतिवेदन- 2022-23, https://nsdcindia.org
6. नीति आयोग, (2018), न्यू इंडिया /75 के लिए रणनीति, भारत सरकार, https://www.niti.gov.in/writereaddata/files/Strategy_for_New_India.pdf
7. अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन, (2023), भारत श्रम बाजार अद्यतन – ILO, कंट्री ऑफिस फॉर इंडिया, https://www.ilo.org
8. राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग, (2021), वार्षिक प्रतिवेदन 2020-21, भारत सरकार, https://ncsc.nic.in
9. राष्ट्रीय अनुसूचित जनजाति आयोग, (2021), वार्षिक प्रतिवेदन 2020-21, भारत सरकार। https://ncst.gov.in
10. यूनिसेफ भारत, (2022), भारत में कौशल विकास और युवा सशक्तिकरण, https://www.unicef.org/india
11. यूनेस्को (2021), समावेशी विकास, हरित नैकारियों और डिजिटल युग के लिए शिक्षा एवं कौशल, https://unesdoc.unesco.org
12. गैलेंटर, एम. (1984), "प्रतिस्पर्धी समानताएँ: भारत में कानून और पिछड़े वर्ग" यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस.
13. कुमार, एस. (2020), "आरक्षण, युवा और रोजगार का भविष्य", आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, 55(7), पेज-15-20.
14. द हिंदू संपादकीय (2021), "भारत को कौशलयुक्त बनाना: प्रतीकात्मकता से आधुनिकता"
15. गैलेंटर, एम. (1984), "प्रतिस्पर्धी समानताएँ: भारत में कानून और पिछड़े वर्ग" यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस।
16. बसु, दुर्गा दास, (2001) "भारतीय संविधान एक परिचय", वाधवा एण्ड कम्पनी, नागपुर, अनुच्छेद 15(4), 16(4), 46.
17. देशपांडे, एस. (2011), "सामाजिक न्याय और भारत में उच्च शिक्षा", आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, खंड 46, अंक 20.
18. जाफरलोट, सी. (2003), "भारत की मूक क्रांति: उत्तर भारत में निचली जातियों का उदय", परमानेंट ब्लैक, रानीखेत.
19. कुमार, एस. (2020), "आरक्षण, युवा और रोजगार का भविष्य", आर्थिक और राजनीतिक साप्ताहिक, 55(7), 15-20।
20. सिंह, वाई (2000), "भारतीय परंपरा का आधुनिकीकरण", रावत पब्लिकेशंस, जयपुर
21. वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय, (2021), मेक इन इंडिया प्रगति रिपोर्ट
22. नीति आयोग, (2021), भारत की स्टार्ट-अप पारिस्थितिकी तंत्र: प्रगति और अवसर.
23. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (2020), शिक्षा मंत्रालय "विद्यालयों में व्यावसायिक शिक्षा".
24. विश्व आर्थिक मंच, (2021), भविष्य की नौकरियों पर रिपोर्ट.
25. फिक्की और नैसकॉम, (2020) "भारतीय कार्यबल में कौशल अंतराल".
26. योजना आयोग (2014), "सामाजिक समावेशन और कौशल विकास पर रिपोर्ट".
27. जोशी, एम. (2018) "व्यावसायिक प्रशिक्षण के माध्यम से आर्थिक समावेशन", इंडियन जर्नल ऑफ इकनॉमिक्स
28. ग्रामीण विकास मंत्रालय (2021), "दीन दयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल योजना" - वार्षिक रिपोर्ट
29. ए इंडिया स्किल्स रिपोर्ट- 2022, Wheebox, CII, Taggd।
30. भारतीय उद्योग परिसंघ, (CII)-2019, "युवा रोजगारयोग्यता और कौशल मूल्यांकन रिपोर्ट"
31. राष्ट्रीय सैंपल सर्वे कार्याल- 2019, श्रम बल सांख्यिकी.
32. अजीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, (2020) "भारत में कार्य की स्थिति रिपोर्ट"
33. इंडिया ब्रांड इक्विटी फाउंडेशन (IBEF)-2021, "भारत में रोजगार और कौशल विकास क्षेत्र.
34. इलेक्ट्रॉनिक्स और आईटी मंत्रालय रिपोर्ट-2022, "युवा प्रशिक्षण के लिए डिजिटल इंडिया पहल"
35. उद्योग और आंतरिक व्यापार संवर्धन विभाग-2022, स्टार्ट-अप स्थिति पर वार्षिक रिपोर्ट.
36. लोकसभा सचिवालय(2021), कौशल विकास पर संसदीय स्थायी समिति की रिपोर्ट।
37. सिंह, आर. (2021), "कोविड के बाद भारत में नई शिक्षा और रोजगार चुनौतियाँ", यूनिवर्सिटी जर्नल ऑफ सोशल साइंसेज।
38. ओईसीडी (2020), "विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में शिक्षा और कौशल नीति".
39. शिक्षा मंत्रालय (2022), "व्यावसायिक और तकनीकी प्रशिक्षण पर वार्षिक रिपोर्ट".
40. विश्व बैंक (2019) "दक्षिण एशिया में कौशल विकास: रणनीतियाँ और चुनौतियाँ"
41. द इकोनॉमिक टाइम्स, (2022), संपादकीय: "रोजगार और कौशल पारिस्थितिकी तंत्र में सुधार".
42. द्रेज, जे. और सेन, अ. (2013), "एक अनिश्चित गौरव: भारत और इसकी विरोधाभास" प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस।
43. भारत सरकार (2020), स्किल इंडिया मिशन - डैशबोर्ड डेटा प्रेस सूचना ब्यूरो (2020), आत्मनिर्भर भारत अभियान - मुख्य विशेषताएँ।
44. सर्वाधिकारी, प्रयास (2020), "आरक्षण और मेरिट: भ्रान्ति या वास्तविकता"?!, नभ प्रकाशन, अमरावती.

"मन्नू भंडारी के कथा साहित्य में व्याप्त सामाजिक समस्याओं के विविध रूपः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन"

डॉ० बबलू सिंह

एसो. प्रोफेसर हिन्दी विभाग, जे. एस. हिन्दू पी०जी० कालेज, अमरोहा, सम्बद्ध-एम० जे० पी० रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली

सारांश

मन्नू भंडारी का कथा साहित्य एक ऐसे जीवंत लेखन के रूप में सामने आता है जिसमें समाज की गहराइयों में छिपी हुई पीड़ाएँ, अंतर्विरोध, विषमताएँ और संघर्ष बड़ी ही संवेदनशीलता के साथ उकेरे गए हैं। उनका लेखन न केवल समय की धड़कनों को सुनता है, बल्कि उन धड़कनों के भीतर बहती सामाजिक बेचैनी को भी पकड़ता है। सामाजिक समस्याएँ, जिनका संबंध धर्म, अर्थ, राजनीति, शिक्षा और स्त्री-पुरुष संबंधों जैसी विविध सामाजिक संस्थाओं से है, मन्नू भंडारी की कहानियों में केवल पृष्ठभूमि भर नहीं हैं, बल्कि वे कथानक के मूल में स्थित होकर पात्रों की चेतना, उनके निर्णय और उनके जीवन के अभावों को गढ़ती हैं।

प्रत्येक युग की अपनी विशेष सामाजिक समस्याएँ होती हैं और मन्नू भंडारी ने स्वतंत्रोत्तर भारत के बदलते सामाजिक परिदृश्य को अपने लेखन का आधार बनाकर उसमें स्त्री की स्थिति, मध्यवर्गीय आकांक्षाएँ, नैतिक मूल्यों का क्षरण, पारिवारिक विघटन और व्यक्ति की सामाजिक-मानसिक पीड़ा को एक अत्यंत प्रभावशाली संवेदना के साथ व्यक्त किया है। यह तथ्य स्वतः स्पष्ट होता है कि उनके लेखन का सरोकार केवल कहानी कहने तक सीमित नहीं है, वरन् वह समाज के अंतर्विरोधों को उद्घाटित करके पाठक को आत्ममंथन के लिए विवश करता है।

डा. तारिणीचरणदास ने साहित्य को "प्राणीमात्र के प्रति संवेदना और समवेदना तथा परिवेश के प्रति प्रतिक्रिया" कहा है - यह परिभाषा मन्नू भंडारी के साहित्य पर पूर्णतया चरितार्थ होती है। उनके लेखन में समाज के प्रति न केवल गहरी सहानुभूति दिखाई देती है, बल्कि वह लेखन एक सजग हस्तक्षेप भी करता है। वे अपने कथा-चरित्रों के माध्यम से समाज की उस पीड़ा को उजागर करती हैं जिसे समाज स्वयं स्वीकार करने से कतराता है। चाहे वह 'एक इंच मुस्कान' की आत्मनिर्भर नायिका हो या 'यही सच है' का भावनात्मक द्वंद्व से जूझता व्यक्ति ख़ हर पात्र समाज की किसी न किसी गुत्थी से उलझा हुआ दिखता है।

वर्तमान युग में साहित्य की भूमिका केवल जीवन के प्रतिबिंब की नहीं रह गई है, वह अब परिवर्तन का माध्यम बन चुका है। डॉ. जैनेंद्र कुमार के अनुसार, "साहित्य अब प्रेरक भी है... वह झलकाता ही नहीं, अब वह चलाता भी है।" मन्नू भंडारी का साहित्य इस प्रेरक भूमिका को निष्ठा और संवेदना के साथ निभाता है। उनके कथा-संसार में सामाजिक समस्याओं का चित्रण किसी आरोपण की तरह नहीं, बल्कि सहज यथार्थ की तरह उपस्थित होता है, जो न तो उपदेशात्मक होता है और न ही अति-संवेदनात्मक, बल्कि यथार्थ और करुणा के संतुलन के साथ लिखा गया होता है।

यह अध्ययन मन्नू भंडारी के कथा साहित्य में चित्रित सामाजिक समस्याओं के उन विविध रूपों की पहचान करेगा जो न केवल तत्कालीन समाज का सच्चा चित्रण हैं, बल्कि आज भी अपनी प्रासंगिकता बनाए हुए हैं। साथ ही यह भी स्पष्ट करेगा कि किस प्रकार उनका साहित्य स्त्री विमर्श, वर्ग-संघर्ष, पारिवारिक विघटन और सामाजिक संक्रमण जैसे गहन विषयों को छूते हुए साहित्य को सामाजिक परिवर्तन का सशक्त माध्यम बनाता है। इस विश्लेषण के माध्यम से यह समझने का प्रयास किया जाएगा कि मन्नू भंडारी की कहानियाँ कैसे समाज के अनकहे पक्षों को सामने लाकर सामाजिक चेतना का विस्तार करती हैं और पाठक को केवल पाठक नहीं, बल्कि एक सजग विचारक भी बनाती हैं।

Keywords (मुख्य शब्द): मन्नू भंडारी, सामाजिक समस्याएँ, स्त्री विमर्श, मध्यवर्ग, मूल्य विघटन, परिवार, आधुनिकता, कथा साहित्य, यथार्थवाद, मानसिक तनाव, स्वातंत्र्योत्तर भारत।

परिचय (Introduction)

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य ने यथार्थ के धरातल पर जीवन की जटिलताओं और सामाजिक विसंगतियों को जिस गहराई से उद्घाटित किया है, वह साहित्य की परिवर्तनशील भूमिका का प्रमाण है। मन्नू भंडारी, नई कहानी आंदोलन की प्रमुख हस्ताक्षर, उन्हीं साहित्यकारों में से हैं जिन्होंने समाज में व्याप्त अंतर्विरोधों, वर्गीय तनावों, स्त्री-पुरुष संबंधों की जटिलता, मध्यवर्गीय मानसिकता और जीवन-मूल्यों के क्षरण को अपनी कहानियों और उपन्यासों में मार्मिकता के साथ चित्रित किया है।

उनकी रचनाएँ केवल साहित्यिक सौंदर्य का विस्तार नहीं, बल्कि सामाजिक यथार्थ का जीवंत दस्तावेज बनकर उभरती हैं। मन्नू भंडारी का कथा साहित्य मानवीय संबंधों की टूटन, स्त्रियों की अस्मिता की खोज, घरेलू हिंसा, दांपत्य विघटन, वैचारिक संकीर्णता और मानसिक क्लेशों की ऐसी स्पष्ट झाँकी प्रस्तुत करता है, जो न केवल पाठक को झकझोरती है, बल्कि समाज को आत्ममंथन के लिए भी विवश करती है।

मूल्य विघटन, भौतिकतावाद और आधुनिकता के संक्रमणशील दौर में उत्पन्न सामाजिक समस्याओं की पड़ताल मन्नू भंडारी ने जिस संवेदनशीलता और निष्पक्ष दृष्टि से की है, वह उन्हें समकालीन कथाकारों में विशिष्ट स्थान प्रदान करती है। उनका कथा साहित्य समस्याओं का चित्रण मात्र नहीं करता, अपितु उन समस्याओं के कारणों और उनके समाधान की संभावनाओं की ओर भी संकेत करता है।

यह शोध-पत्र मन्नू भंडारी के कथा-साहित्य में प्रतिफलित विविध सामाजिक समस्याओं का विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है, जिसमें समाज के विभिन्न वर्गों की वास्तविकता, स्त्री की संघर्षशील चेतना, पारिवारिक विघटन और मूल्य-संकट जैसे तत्वों की विवेचना की जाएगी। इस अध्ययन के माध्यम से मन्नू भंडारी की रचनात्मक दृष्टि, सामाजिक प्रतिबद्धता और साहित्यिक योगदान को सम्यक रूप में समझने का प्रयास किया गया है।

मन्नू भंडारी के कथा साहित्य में नारीगत समस्याएं

मन्नू भंडारी हिन्दी कथा-साहित्य की एक ऐसी सशक्त हस्ताक्षर हैं, जिनके लेखन में सामाजिक यथार्थ की गहरी पकड़ है। उनके साहित्य में नारी-संबंधी समस्याएं केवल विमर्श का विषय नहीं, अपितु गहरे आत्मानुभव और स्त्री की संवेदनात्मक चेतना की उपज हैं। मन्नू भंडारी ने भारतीय समाज की उस स्त्री को चित्रित किया है जो न केवल सामाजिक संरचना की शिकार है, बल्कि पितृसत्ता की जड़ों से जूझते हुए भी अपने अस्तित्व और आत्मसम्मान की रक्षा के लिए संघर्षरत है। मन्नू भंडारी ने 'एक इंच मुस्कान' उपन्यास में तथा 'जीती बाजी की हार' कहानी में विवाह को निरर्थक बंधन मानकर उसे झुठलाने तथा नकारने से निर्मित समस्याओं का अंकन किया है।

'एक इंच मुस्कान' उपन्यास में अमला परित्यक्ता नारी है जो विवाह को कमजोर, निरर्थक बंधन मानती है। विवाह बंधन की निरर्थकता तथा खोखलेपन से वह परिचित हो चुकी है। अतएव विवाह-बंधन से मुक्त रहकर मुक्त आसंग में मुक्ति तलाशने लगती है। पिता जब उसे पुनर्विवाह का परामर्श देते हैं तब वह कहती है,- "मैं किसी से विवाह करना नहीं चाहती, किसी से भी नहीं। मैं इतनी निर्बल और निरीह नहीं हूँ कि जीवन बिताने के लिए कोई सहारा चाहिए।"

दहेज, सौंदर्य, चारित्रिक दोष, उच्च-शिक्षा, परिवार के लोगों की उपयोगितावादी वृत्ति, युवतियों की अतिरिक्त व्यक्तित्व-विकास की कामना, अति-महत्त्वाकांक्षा, उच्चतर अपेक्षाएँ आदि कई कारणों से लड़कियों का विवाह समस्या का रूप धारण करता है। जिनके प्रति मन्नू जी संवेदित रही हैं। उन्होंने अनुभूत किया है कि, अगर विवाह योग्य आयु में न हो जाय तो अनेक समस्याएँ निर्मित होती हैं। भले ही वे पहले व्यक्तिगत स्तर की हों पर बाद में समाज-जीवन को कम-अधिक मात्रा में क्षति पहुँचाने में बराबर क्रियाशील रहती हैं।

भंडारी ने अपने साहित्य में इन सभी समस्या- निर्माण के तत्त्वों और उनके परिणामों को अत्यधिक संवेदनशीलता से उठाया है।

स्त्री और पुरुष समाज-निर्माण के दो अभिन्न और पूरक तत्त्व हैं। भारतीय परंपरा में यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है कि सृष्टि की रचना दोनों के संयुक्त प्रयास से ही संभव है। फिर भी भारतीय सामाजिक संरचना में नारी को हमेशा दूसरे दर्जे का नागरिक माना गया, उसके व्यक्तित्व, आकांक्षाओं और अधिकारों को बार-बार अनदेखा किया गया। मन्नू भंडारी ने अपने कथा साहित्य में इसी सामाजिक असमानता और स्त्री की त्रासदी को अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है।

उनकी कहानियों और उपन्यासों में स्त्री का पारंपरिक रूप-पतिव्रता, त्यागमयी, समर्पित गृहिणी-एक नए बोध के साथ उभरता है, जहाँ वह अपनी अस्मिता के लिए जूझती है। 'आपका बंटी' जैसे उपन्यास में यह नारीगत चेतना स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। शालू का पात्र उस स्त्री का प्रतीक है जो अपने अधिकारों, अपनी इच्छा और अपने पुत्र के भविष्य के लिए संघर्ष करती है। पति से अलगाव, सामाजिक दृष्टि में 'विवाहेतर संबंध' की भ्रांति, और अपनी संतान की कस्टडी को लेकर उसका द्वंद्व इस बात का द्योतक है कि नारी केवल भावनाओं की नहीं, विवेक और निर्णय की भी इकाई है।

मन्नू भंडारी ने नारी-जीवन की विडंबनाओं को केवल एक सामाजिक दायरे में नहीं, बल्कि मनोवैज्ञानिक गहराइयों में भी उतारा है। स्त्री की आंतरिक कुंठाएं, उपेक्षा की पीड़ा, सामाजिक अस्वीकार्यता, और पारिवारिक असंवेदनशीलता उनके लेखन में मुखर होती है। 'यही सच है' जैसी कहानी में मन्नू बंधारी उस मानसिक स्थिति को उजागर करती हैं जिसमें एक स्त्री अपनी पहली मोहब्बत के सामने खड़ी होकर अपने वर्तमान को स्वीकार करती हैख़साहसपूर्वक, बिना अपराधबोध के। यह साहस और आत्मबोध भारतीय नारी-साहित्य की प्रगतिशील पहचान है।

मन्नू भंडारी की नायिकाएं आमतौर पर मध्यमवर्गीय समाज से आती हैं, जहाँ स्त्री को पढ़ाया तो जाता है, लेकिन उसके आत्मनिर्णयों को स्वीकार नहीं किया जाता। विवाह, संतान, करियर, समाजिक छवि, सब पर पुरुष-प्रधान दृष्टिकोण हावी होता है। 'खाने आकाश नाई...' कहानी में गौरा के विवाह में उसकी शिक्षा रोड़ा अटकाती है। अम्मा कहती है, "बड़ी को छठा दर्जा पास कराकर ब्याह दिया, तो आज अपना घर-बार लेकर सुखी है। पर इसके लिए तो एम्. ए. पास लड़का चाहिए कि नहीं?" उनके कथा-साहित्य में नारी इन परंपरागत दायरों को तोड़ती तो है, पर वह केवल विद्रोही नहीं, वह संवेदनशील, जिम्मेदार, आत्मविश्लेषणशील और जीवन को नई दिशा देनेवाली शक्ति भी है।

मन्नू भंडारी के लेखन में नारी के विविध रूपख़माँ, पत्नी, प्रेमिका, शिक्षिका, कर्मचारी-के माध्यम से यह बताया गया है कि स्त्री केवल रिश्तों की परिभाषा नहीं, बल्कि एक स्वतंत्र सत्ता है, जिसकी अनुभूतियाँ, विचार और निर्णय स्वयं में पूर्ण हैं। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि स्त्री की समस्याएं केवल बाह्य नहीं होतीं, वे उसकी चेतना, स्वाभिमान, और आत्मीय संबंधों से भी जुड़ी होती हैं। इसलिए उनके पात्रों के संघर्ष केवल सामाजिक प्रतिरोध नहीं, आत्म-मंथन और आत्मनिर्णय की परिणति हैं।

मन्नू भंडारी ने यह भी दिखाया है कि स्त्री-समस्याएं केवल पुरुष-शोषण तक सीमित नहीं हैं, बल्कि स्त्रियों का एक वर्ग भी इस पितृसत्तात्मक सोच को पोषित करता है। पारंपरिक सासें, माता-पिता की रूढ़िवादी सोच, बहनों की ईर्ष्या आदि भी स्त्री की स्वाधीनता में बाधा बनती हैं।

वर्तमान समय में जहाँ एक ओर दहेज उन्मूलन की बातें की जा रही हैं, वहीं दूसरी ओर दहेज की माँगे निरंतर बढ़ती जा रही हैं। तीव्र नारों एवं विरोधी स्वरों में अंतर मात्र इतना है कि अब लेन-देन के ढंग बदल गए हैं।

मन्नू भंडारी ने इस समस्या को बहुत कम स्थलों पर उठाया है। क्योंकि उनकी अधिकतम नायिकाएँ अर्थार्जन करनेवाली हैं। उनके 'स्वामी' उपन्यास तथा 'शायद', 'एखाने आकाश नाई...' कहानियों में इस समस्या का अंकन इतनी स्पष्टता से हुआ है कि समस्या के सभी पहलू उसमें सन्निहित हुए हैं।

दहेज प्रथा ने मध्यवर्गीय परिवार की सुखद-शांति को मिटा दिया है। सारे परिवार में जहरीला धुआं फैला दिया है, जिसमें हरएक का दम घुट रहा है। इसका सशक्त उदाहरण 'स्वामी' उपन्यास है।

नारी को लेकर मन्नू भंडारी की दृष्टि केवल सहानुभूतिपूर्ण नहीं, आलोचनात्मक भी है। वे स्त्री को दया का पात्र नहीं, चेतना का वाहक बनाती हैं। उन्होंने साहित्य के माध्यम से यह स्थापित किया कि स्त्री की मुक्ति केवल सामाजिक कानूनों से नहीं, आत्मचेतना, शिक्षा और आत्मनिर्भरता से संभव है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि मन्नू भंडारी का कथा-साहित्य नारी-संवेदना की एक सशक्त अभिव्यक्ति है। उनके लेखन ने हिन्दी साहित्य को एक नई दृष्टि प्रदान की, जिसमें नारी की व्यथा, संघर्ष, साहस और आत्मनिर्णय सब कुछ शामिल हैं। उन्होंने नारी को केवल भावुकता का प्रतीक नहीं, बल्कि बुद्धि, विवेक, और निर्णय-क्षमता का प्रतिनिधित्व करनेवाली मानवी सत्ता के रूप में प्रस्तुत किया। उनके साहित्य में नारीगत समस्याएं न केवल उजागर होती हैं, बल्कि उनका समाधान भी यथार्थ और मानवीय दृष्टि से प्रस्तावित किया गया है।

मन्नू भंडारी का कथा साहित्य और सामाजिक समस्याओं के विविध रूप

मन्नू भंडारी का कथा साहित्य सामाजिक जीवन के यथार्थ चित्रण का सशक्त दस्तावेज है। उन्होंने मध्यवर्गीय परिवारों की समस्याओं को, विशेषत: पारिवारिक संबंधों में आ रहे बदलाव, विघटन, तनाव और स्वार्थपरकता को जिस गहराई से उकेरा है, वह उन्हें अपने समय की सर्वाधिक संवेदनशील रचनाकार बनाता है। उनके साहित्य में पारिवारिक मूल्यों के क्षरण, संबंधों की टूटन और व्यक्ति की अस्मिता के संघर्ष की स्पष्ट झलक मिलती है।

संयुक्त परिवार की प्रणाली, जो भारतीय समाज की प्रमुख विशेषता रही है, आज उसके विघटन और उसके भीतर व्याप्त अंतर्विरोधों की सच्चाई को मन्नू भंडारी ने अत्यंत प्रभावशाली ढंग से चित्रित किया है। उनकी प्रसिद्ध कहानी 'एखाने आकाश नाई...' में लेखा के भरे-पूरे संयुक्त परिवार में व्याप्त तनाव, दूरी और घुटन को बहुत मार्मिकता से प्रस्तुत किया गया है। कहानी में लेखा के सास-ससुर, जेठ-जिठानी, अविवाहित देवर और ननद के रहते हुए भी पारिवारिक आत्मीयता का अभाव है। सहभोज और सहनिवास के बावजूद सभी लोग एक-दूसरे से कटे-कटे हैं, जहां सभी अपनी-अपनी समस्याओं में घिरे हुए हैं और सबके संबंधों में अनकहा तनाव व्याप्त है। अम्मा जी का एकाधिकार, सब पर हावी है, जिससे सास-बहू, देवरानी-जिठानी, जेठ-जिठानी जैसे सभी रिश्ते दरकने लगते हैं।

इसी प्रकार उपन्यास 'एक इंच मुस्कान' में बहू-ससुर के संबंधों को केंद्र में रखकर लेखिका ने पारिवारिक संबंधों में आए मूल्यों के क्षरण को रेखांकित किया है। जहाँ पहले ससुर को पिता के समान और बहू को पुत्री के समान माना जाता था, वहीं अब ये संबंध औपचारिकता और स्वार्थपरकता से ग्रस्त हो गए हैं। यह उपन्यास यह दर्शाता है कि कैसे सास-ससुर, विशेषकर ससुर, आज की बहुओं के व्यवहार से उपेक्षित और पीड़ित महसूस करते हैं, जिससे वृद्धाश्रमों की आवश्यकता तक समाज को आ घेरती है।

कहानी 'संख्या के पार' में लेखिका ने पारिवारिक शासन में एक व्यक्ति (बाबा) के एकाधिकार के कारण उत्पन्न मानसिक संत्रास और संवेदनहीनता को दर्शाया है। प्रमीला अपने नाना-नानी के साथ रहती है, जहाँ बाबा के कठोर अनुशासन और हठी निर्णयों के कारण न केवल वह अपनी माँ से मिलने से वंचित रहती है, बल्कि मानसिक द्वंद्व, भय और गहन असुरक्षा की स्थिति से भी गुजरती है। यह कहानी इस तथ्य को उद्घाटित करती है कि पारिवारिक संरचना यदि संवाद, सहमति और सह-अस्तित्व के सिद्धांतों पर आधारित न हो, तो वह संबंधों के लिए जेलखाना बन जाती है।

दांपत्य संबंधों की जटिलता, आर्थिक संकट और भावनात्मक दूरी का यथार्थ चित्रण मन्नू भंडारी की कहानी 'तीसरा हिस्सा' में अत्यंत मार्मिकता से किया गया है। इस कहानी में पति शेरा बाबू आर्थिक संकट से जूझते हैं, लेकिन पत्नी उनका साथ देने के बजाय उन्हें मानसिक रूप से और तोड़ देती है। एक समय था जब पत्नी उनके प्रेम और धन-दौलत पर मोहित थी, परंतु जब संकट आया, तो उसका व्यवहार बदल गया। आर्थिक दुर्बलता ने पति-पत्नी के संबंधों में दरार, संवादहीनता और उपेक्षा पैदा कर दी। कहानी यह दर्शाती है कि आर्थिक परिस्थितियाँ केवल जीवनशैली ही नहीं, बल्कि संबंधों की आत्मा को भी प्रभावित करती हैं।

इसके अतिरिक्त कहानी 'सजा', 'छत बनाने वाले', और 'इनकम टैक्स और नींद' में भी संयुक्त परिवारों में संबंधों की टकराहट, पीढ़ियों के बीच वैचारिक भिन्नता, स्त्री की अस्मिता का संघर्ष और पारिवारिक दमन के यथार्थ चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। इन रचनाओं में लेखिका ने पारंपरिक परिवार व्यवस्था के भीतर व्याप्त संकीर्णताओं, रूढ़ियों और स्त्री-विरोधी मानसिकता को न केवल उजागर किया है, बल्कि पाठकों को सोचने पर भी विवश किया है।

मन्नू भंडारी का समग्र कथा साहित्य सामाजिक यथार्थ का अत्यंत संवेदनशील, सघन और जीवन्त चित्रण है। उन्होंने अपने पात्रों के माध्यम से समाज में बदलते मूल्यों, संबंधों के विघटन और स्त्री-पुरुष के बीच असंतुलन को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। उनके कथा-संसार में न केवल समस्या है, बल्कि उसके पीछे की मानसिकता, समाज व्यवस्था और मनोवैज्ञानिक द्वंद्व का भी गंभीर विश्लेषण है, जिससे उनका साहित्य विशुद्ध रचनात्मकता की श्रेणी में आता है।

निष्कर्ष

मन्नू भंडारी का कथा साहित्य वस्तुत: समाज के आईने की तरह है, जिसमें पारिवारिक, सामाजिक और वैयक्तिक जीवन की विविध समस्याएँ संपूर्ण यथार्थता और गहन संवेदना के साथ प्रतिबिंबित होती हैं। उन्होंने जिस सामाजिक यथार्थ को अपनी

कहानियों और उपन्यासों में चित्रित किया है, वह मात्र घटनाओं का विवरण नहीं, बल्कि गहरे समाजशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से युक्त अनुभवसिद्ध लेखन है।

'एखाने आकाश नाई' जैसी कहानियों में जहाँ संयुक्त परिवार की विघटनशीलता, संबंधों की औपचारिकता और आत्मीयता का अभाव उजागर होता है, वहीं 'तीसरा हिस्सा' और 'एक इंच मुस्कान' जैसे उपन्यासों में दांपत्य जीवन में आर्थिक संकट, संवादहीनता और आत्मसम्मान के संघर्ष को अत्यंत मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। कहानी 'संख्या के पार' पारिवारिक अधिनायकवाद और स्त्री-शोषण के खामोश ताने-बाने को उजागर करती है, तो 'सजा', 'छत बनाने वाले', तथा 'इनकम टैक्स और नींद' जैसी रचनाएँ संबंधों की टूटन, वैचारिक द्वंद्व और सामाजिक जड़ताओं के विरुद्ध लेखिका की सजग दृष्टि को प्रमाणित करती हैं।

मन्नू भंडारी की विशेषता यह है कि वे किसी भी सामाजिक समस्या को सतही रूप में नहीं प्रस्तुत करतीं, बल्कि उसकी जड़ों तक जाकर, पात्रों के अंतरसंघर्ष के माध्यम से उसे उजागर करती हैं। उनका साहित्य नारी अस्मिता, पीढ़ियों के टकराव, पारिवारिक विघटन, आर्थिक असमानता, आत्मसम्मान, तथा प्रेम और अधिकार के बीच झूलते संबंधों की सूक्ष्म व्याख्या करता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि मन्नू भंडारी का कथा साहित्य केवल कहानी कहने का माध्यम नहीं, अपितु सामाजिक चेतना को झकझोरने वाली रचनात्मक अभिव्यक्ति है, जो मध्यवर्गीय समाज के भीतर पल रही विसंगतियों को मुखर स्वर देती है। उनके कथा-संसार में व्याप्त सामाजिक समस्याएँ आज भी उतनी ही प्रासंगिक और विचारणीय हैं, जितनी उस समय थीं जब वे लिखी गई थीं। अत: यह अध्ययन यह सिद्ध करता है कि मन्नू भंडारी का साहित्य समकालीन सामाजिक यथार्थ का न केवल प्रतिबिंब है, बल्कि उसमें हस्तक्षेप की प्रेरणा भी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. भंडारी, मन्नू। मैं हार गई। अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली। 'अक्षर' संस्करण - 1980।
2. भंडारी, मन्नू। तीन निगाहों की एक तस्वीर। श्रमजीवी प्रकाशन, इलाहाबाद। संस्करण - अनुल्लिखित।
3. भंडारी, मन्नू। यही सच है और अन्य कहानियाँ। अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली। पाँचवाँ संस्करण - 1984।
4. भंडारी, मन्नू। एक प्लेट सैलाब। अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली। संस्करण - 1983।
5. भंडारी, मन्नू। त्रिशंकु और अन्य कहानियाँ। अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली। द्वितीय संस्करण - 1981।
6. भंडारी, मन्नू। मेरी प्रिय कहानियाँ। राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली। प्रथम संस्करण - 1973।
7. भंडारी, मन्नू। श्रेष्ठ कहानियाँ। राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली। प्रथम संस्करण - 1991।
8. भंडारी, मन्नू एवं यादव, राजेंद्र। एक इंच मुस्कान। राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली। संस्करण - 1997।
9. भंडारी, मन्नू। आपका बंटी। अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली। पाँचवाँ संस्करण - 1980।
10. भंडारी, मन्नू। महाभोज। राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली। सोलहवाँ संस्करण - 1992।
11. जैन, नेमिचंद्र। अधूरे साक्षात्कार। वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली। द्वितीय संस्करण - 1989।
12. जैनेंद्रकुमार। साहित्य का श्रेय और प्रेय। पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली। संस्करण - 1991।
13. चिदानंद, (डा.) तारिणीचरणदास। साहित्य तथा उसकी विविध विधाओं का अध्ययन। ग्रंथायन, अलीगढ़। प्रथम संस्करण - 1981।
14. तिवारी, (डा.) यतींद्र। काव्यशास्त्र। सरस्वती प्रकाशन, कानपुर। प्रथम संस्करण - 1992।
15. तिवारी, (डा.) रमेश। हिंदी उपन्यास - साहित्य का सांस्कृतिक अध्ययन। रचना प्रकाशन, इलाहाबाद। प्रथम संस्करण - 1972।
16. तिवारी, (डा.) वल्लभदास। हिंदी काव्य में नारी। जवाहर पुस्तकालय, मथुरा। प्रथम संस्करण - 1974।
17. तोमर, रामबिहारी सिंह। हिंदू विवाह एवं परिवार की समस्याएँ। मेहरा एण्ड कंपनी, आगरा। संस्करण - अनुल्लिखित।
18. त्रिगुणायत, गोविंद। शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत (भाग - 1)। भारती साहित्य मंदिर, दिल्ली। द्वितीय संस्करण - 1970।

बिहार में सुशासन के परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक एवं प्रशासनिक अध्ययन (2010-2020)

डॉ० ममता कुमारी

राजनीति विज्ञान विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (भोजपुर)

सारांश

बिहार की राजनीति में सुशासन का विचार ऐतिहासिक और समकालीन परिप्रेक्ष्य को समाहित करता है। प्राचीन मगध साम्राज्य और पाटलिपुत्र, जो चाणक्य और मौर्य साम्राज्य के सुशासन का केंद्र थे, भारतीय प्रशासन और राजनीति की आधारशिला माने जाते हैं। पाटलिपुत्र ने अपने समय में न केवल राजनीतिक और प्रशासनिक उत्कृष्टता का प्रदर्शन किया, बल्कि न्याय, पारदर्शिता और लोक कल्याण पर आधारित शासन प्रणाली की नींव भी रखी। आज के बिहार में, सुशासन की अवधारणा ने एक बार फिर महत्वपूर्ण प्राप्ति की है। विशेष रूप से नीतीश कुमार के नेतृत्व में बिहार ने कानून-व्यवस्था, महिला सशक्तिकरण, शिक्षा और बुनियादी ढांचे के विकास में उल्लेखनीय सुधार किया है। हालाँकि, जाति आधारित राजनीति, सामाजिक असमानता और भ्रष्टाचार जैसी चुनौतियाँ अभी भी सुशासन की राह में बाधा हैं। यह शोध पत्र प्राचीन मगध और पाटलिपुत्र के सुशासन के सिद्धांतों और उनकी आधुनिक प्रासंगिकता का विश्लेषण करता है। सार्थक रूप से, यह बिहार के राजनीतिक और प्रशासनिक ढांचे में उनकी पुनर्प्रासंगिकता पर चर्चा करता है। सुशासन के लिए प्राचीन विरासत और आधुनिक दृष्टिकोण के बीच सामंजस्य स्थापित करना बिहार को एक नई दिशा प्रदान कर सकता है।

मुख्य शब्द- सुशासन, मगध, पाटलिपुत्र, विरासत, सामाजिक असमानता।

प्रस्तावना

विगत वर्षों में बिहार में एक नारा खूब प्रचलित रहा, जिसे पटना की सड़कों पर लगे बड़े-बड़े होर्डिंग में खूब चर्चा किया गया। सत्तापक्ष के राजनेताओं एवं मीडिया घरानों ने खूब बोला एवं लिखा और तो और गरीब गुरबों के बीच भी खूब उछाला गया वह और कुछ नहीं सुषासन यानी गुड गवर्नेंस ही तो है। वैसे जब भी लोकतंत्र में हम शासन प्रणाली की बात करते हैं तो उसकी इच्छा एवं तमन्ना गुड गवर्नेंस की ही होती है और होनी भी चाहिए। अगर यह स्थापित नहीं किया गया एवं इसके स्थापना के लिए प्रयत्न नहीं किए जाते हैं तो जनता वोट द्वारा शासन परिवर्तन करने में सक्षम रही है।[1] पंद्रह वर्ष के लंबे लालू-राबड़ी शासन को रद्दोबदल करके आम आवाम ने इस बात को स्थापित भी किया।

गौरतलब है कि सुषासन यानी गुड गवर्नेंस की शब्दावली को सर्वप्रथम परिभाषित किए जाने की आवष्यकता है जो इसका सैद्धान्तिक पहलू है। बिना व्यवहार सिद्धांत अधूरा है। अतएव नीतीष कुमार के सुशासन संबंधी दावों की व्यवहारिक आईने में पड़ताल करने का प्रयास किया गया है। महत्वपूर्ण है कि सुशासन यानी गुड गवर्नेंस को दो नजरिए से देखा गया है-पाश्चात्य और भारतीय। दोनों ही दृष्टिकोण की अपने-अपने दावे, एजेंडे एवं मसौदे हैं। सुशासन को देखने का अपना अलग-अलग नजरिया भी।

सुशासन यानी गुड गवर्नेंस संबंधी पाश्चात्य दृष्टिकोण के साथ-साथ भारतीय नजरिया है। सुशासन संबंधी भारतीय समझ-बूझ के आधार में कौटिल्य, गाँधी, लोहिया एवं जयप्रकाश नारायण के विचारों व चिंतन को समाहित करना महत्वपूर्ण है। सुशासन की अवधारणा एक मजबूत एवं सक्षम राज्य के साथ-साथ कुशल प्रशासनिक नीति पर निर्भर करता है। कौटिल्य का दर्शन प्रशासन, राजकला एवं कूटनीति संबंधी आधारभूत विषयों के लिए आरंभिक प्रमाणित स्रोत हैं।[2] कौटिल्य रचित अर्थशास्त्र, राजनीति को सीखने-परखने की सबसे उत्कृष्ट कृति है; जैसे पहला, इस ग्रंथ में पूर्वगामी सभी ग्रंथों का सार दिया हुआ है, दूसरा, यह ग्रंथ यथार्थवादी है तथा इन समस्याओं पर विचार करता है, जिनका सामना मनुष्य को इसी लोक में करना होता है, तीसरा, अर्थशास्त्र ने राजनीति को धर्म से पृथक करके देखा। चौथा, इसके रचयिता ने भारत को एक सुदृढ़ और केन्द्रीकृत शासन दिया।

नीतीश कुमारः नया बिहार

दशकों से कभी संकटग्रस्त राज्य कहे जानेवाले बिहार में नीतीश कुमार के सत्तारूढ़ होने के उपरांत सुशासन के साथ-साथ एक और शब्द को खूब प्रचारित किया गया है वह है 'नया बिहार'।[3] किसी मूल शब्द में इस प्रकार के उपसर्ग जोड़ने से मूल शब्द का पूरा कलेवर बदल जाता है। वह अधिक मानवीय एवं मूल्य परक हो जाता है, मसलन नया लोक प्रशासन, नव सामाजिक आंदोलन, इसी श्रृंखला में बिहार के लिए 'नया बिहार' की शब्दावली को इजाद करते हुए शासन प्रणाली को अत्यधिक विकेंद्रीकृत व जन अभिमुखी बनाने का प्रयास किया गया है। नीतीश कुमार के सुशासन युक्त नव बिहार की प्रमुख विशेषताएँ निम्न हैः-

- जनता का दरबार
- महादलित आयोग
- नालंदा विश्वविद्यालय का पुनरूत्थान
- शिक्षक बहाली
- पंचायती राज में आरक्षण

सफल होती सरकारी योजनाएँ

नीतीश सरकार के द्वारा योजनाएँ भी बहुत सी शुरू की गई जिसमें 'मुख्यमंत्री कन्या सुरक्षा योजना', 'मुख्यमंत्री आक्षर आँचल योजना एवं 'हुनर' महत्वपूर्ण है। योजनाओं को केन्द्र सरकार तथा केरल सहित कुछ राज्य सरकारों ने भी अपनाया है। मुख्यमंत्री कन्या सुरक्षा योजना का मुख्य उद्देश्य युवा लड़कियों तथा जरूरतमंद महिलाओं को लक्षित किया गया है। इस योजना के तहत 250 स्कूलों को विकास शिक्षा प्रदान करने का लक्ष्य रखा गया है। साथ-साथ विधवाओं को लक्ष्मी बाई पेंशन प्लान के तहत 300 रूपए प्रति माह दिया जाता है।

राज्य सरकार द्वारा 52.6 करोड़ की मुख्यमंत्री अक्षर आँचल योजना की शुरूआत की गई है। इसका उद्देश्य 15-35 वर्ष की लगभग 40 लाख निरक्षर महिलाओं को साक्षर बनाना है।

'हुनर' बिहार सरकार द्वारा मुसलिम महिलाओं को आत्मनिर्भर करने संबंधी महत्वपूर्ण योजना है, जिसे पूरे बिहार में सराहा जा रहा है। इसकी शुरूआत जाँच के तौर पर किया गया जिसमें महिलाओं को कताई, बुनाई, कम्प्यूटर के प्रयोग, बच्चों की देखरेख, मातृत्व मामले के लिए परीक्षण किया गया।

हुनर कार्यक्रम की छतरी तले ही बिहार सरकार ने मुसलिम महिलाओं के सशक्तिकरण हेतु 'औजार' कार्यक्रम भी शुरू किया है जिसका लक्ष्य 2010 तक तकरीब 50000 महिलाओं को सशक्तिकरण करना है, उसमें 25000 मुसलिम महिला होंगी, वहीं शेष में महादलित और अन्य पिछड़े वर्ग से ताल्लुकात रखनेवाली महिलाओं को स्थान दिया गया है।[4]

सड़क व पुल का संजाल

कल तक जरूर हास-परिहास में बिहार की सड़कों की तुलना ओम पुरी के गालों से की जाती थी, परन्तु अब परिदृश्य बदला है। खराब रोड व्यवस्था बिहार के पिछड़ेपन की तस्वीर पेश करती थी परन्तु स्वर्ण चतुर्भुज योजना तथा प्रधानमंत्री सड़क योजना संबंधी लक्ष्यों को बिहार सरकार अमलीजामा पहनाने के लिए कृत संकल्प है। 11वीं पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत बिहार के 1600 किलोमीटर के सड़कों को चार लेन व दो लेन में तब्दील करने एवं सभी महत्वपूर्ण सड़कों को मरम्मत करन का लक्ष्य रखा गया है।

भूमि सुधार

भूमि सुधार का मुद्दा बिहार जैसे प्रांत के लिए अहम है। नीतीश कुमार ने सत्ता में आते ही डी. बंधोपाध्याय की अध्यक्षता वाली भूमि सुधर आयोग का गठन किया। समिति ने माना कि बिहार के जमींदार बहुत ताकतवर हैं, यही कारण है कि यहाँ पचास वर्षों में भी भूमि सुधार नहीं हो पाया। नीतीश कुमार सरकार की सबने तारीफ भी की। बिहार में अगर भूमि सुधार कानून

लागू होता तो गरीब की आर्थिक और सामाजिक स्थिति में बदलाव आता है नक्सलवाद की समस्या खत्म हो जाती। परन्तु बड़े-बड़े भू-स्वामियों के दबाव के कारण नीतीश कुमार ने इस रपट को रद्दी की टोकरी में डाल दिया।[5] नीतीश कुमार के सुशासन की सबसे बड़ी विफलता यही है।

सुशासन का प्रशासनिक परिप्रेक्ष्य

जंगलराज और न जाने क्या-क्या बड़ा अजीव लगता था कि क्या किसी राज्य की कानून व्यवस्था इतनी खराब हो सकती है कि उसे जंगलराज के उपनाम से पुकारा जाए या फिर यूँ कहें कि उसे ये नाम ही दे दिया जाए।

लेकिन कहते हैं कि हर रात के बाद सुबह होती है, वैसे ही बिहार में भी हुआ। सुबह हुई और सुबह के सूरज की सुनहरी किरण जब जंगराज उपनाम के कारण छअपटा रहे और अपनी बेबसी पर आंसू बहा रहे राज्य पर पड़ी तो मानों लोगों में जीवन का नया संचार हो गया। हालांकि ऐसा नहीं था कि बिहार की कानून व्यवस्था एकदम से ही खराब हो गई थी। बरसों से धीरे-धीरे यहाँ कि कानून व्यवस्था को पंगु बना दिया गया था। आलम ये हो गया था अन्य राज्यों के लोग बिहार के कानून व्यवस्था के बारे में तरह-तरह के सवाल पूछते थे और उसका मजाक उड़ाते थे तथा वहाँ जाने तक से डरते थे। लेकिन राज्य में नीतीश सरकार के शासन संभालने के बाद वहाँ की स्थिति में सुधार होना शुरू हुआ और अभी वास्तविकता यह है कि लोग अब वहाँ की कानून व्यवस्था और शनैः शनैः ही सही पर वहाँ हो रहे सुधारों के बारे में पूछते हैं।[6]

हालांकि ऐसा नहीं है कि बिहार में सब कुछ एकदम से ठीक हो गया है। लेकिन इतना जरूरत है कि वहाँ अपराध की घटनाओं में कमी आई है। आज लोग देर रात तक परिवार के साथ निकलकर छुट्टी का आनंद उठा सकते हैं। ये विश्वास मौजूदा राज्य सरकार की देन है और ऐसा कहने में किसी को कोई गुरेज नहीं होना चाहिए। बिहार में अभी भी छिटपुट पैमाने पर अपहरण और हत्याएँ हो रही हैं, लेकिन फर्क सिर्फ इतना है कि अपराधी कुछ ही दिनों में जेल के सलाखों के पीछे नजर आते हैं। राज्य सरकार ने अदालतों में लंबित पड़े मामलों की त्वरित सुनवाई के लिए करीब डेढ़ दशक से रिक्त पड़े न्यायिक पदों पर भर्ती की प्रक्रिया शुरू की। इसके तहत 2011 में ढाई सौ से अधिक अपर जिला न्यायाधीशों को सीधी भर्ती के तहत नियुक्त किया गया और उनकी विभिन्न जिलों में तैनाती हुई। इससे राज्य की अदालातें में लंबित पड़े हजारों मामलों की सुनवाई में सहूलियत होगी और बिहार की जनता को इधर राज्य पुलिस की बदली हुई कार्यशैली से यहाँ अपराध पर लगा अंकुश धीरे-धीरे प्रभावी नजर आ रहा है। पुलिस बिना किसी राजनीतिक दबाव या फिर अन्य दबावों के अपराधियों के खिलाफ कार्यवाही कर रही है।

कहते हैं कि अपराध में कमी किसी राज्य में सब कुछ ठीक होने का अहसास दिलाता है और यह बात दुनिया के किसी भी मुल्क पर लागू होता है। बरसों से अपराध और अपराधियों से निकलने को छअपटा रही बिहार की जनता को जैसे ही मौका मिला, इससे निपटने के लिए सामने आ गई। इसका सबसे बड़ा उदाहरण तो लोकसभा के चुनाव रहे। राज्य में विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा खड़े किए आपराधिक छवि के ज्यादातार उम्मीदवार चुनाव हार गए।[7]

ऐसा नहीं है कि ये सब अचानक हुआ, बल्कि इसकी पृष्ठभूमि तो काफी पहले से ही तैयार हो रही थी। बिहार में लोकप्रिय जननेता लालू यादव कभी कहा करते थे कि विकास के नाम पर वोट नहीं मिलता। लेकिन 2009 के लोकसभा चुनाव में विकास एक मुद्दा था। यहाँ तक लालूजी भी विकास का ढोल पीटते नजर आ रहे थे। बिहार के नजरिए से यह बहुत बड़ा बदलाव था। यहाँ तक कि नोबल पुरस्कार विजेता महान अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन और दुनिया के सबसे अमीर व्यक्ति बिल गेट्स भी राज्य में हो रहे बदलावों की तारीफ कर चुके हैं।

नीतीश कुमार के शासनकाल में बिहार कितना बदल रहा है यह जटिल सवाल है। क्योंकि यहाँ स्पष्ट करना होगा कि बदलाव की दिशा सकारात्मक है या नकारात्मक। ऐसा लगता है कि नीतीश चाहते हैं बिहार का सकारात्मक बदलाव हो। एक नया बिहार प्रगतिशीलता के नए पैमाने तय करे। पिछले सरकार के शासनकाल में जो संस्थाएँ मरणासन्न हो गई थीं, उसको फिर से सुचारू करने की दिशा में नीतीश लगातार काम कर रहे हैं। डी. बंधोपाध्याय के नेतृत्व में गठित भूमि सुधार आयोग का गठन जैसे पहल को इसी दिशा में देखा जा सकता है।[8]

सुशासन का राजनीतिक परिप्रेक्ष्य

जब नीतीश सरकार ने सुशासन की बागडोर थामी थी तब सूबे के 38 में से महज 18 जिले ही नक्सल उग्रवाद से प्रभावित थे। लेकिन अब सुरत बदल चुकी है। राज्य के 38 में से कुल 31 जिले नक्सलियों की चहलकदमी से कांप रहे हैं। हाल यह

है कि रात के अंधेरे की बात छोड़िए, दिन के उजाले में भी अर्द्धसैनिक बलों, स्पेशल टास्क फोर्स और सेना से रिटायर जवानों को लेकर राज्य सरकार द्वारा गठित 'सैप' के जवानों को उनके प्रभाववाले इलाकों में गश्ती की छूट नहीं है। कई बार उन्होंने अगर उनके प्रभाव वाले इलाकों में चहलकदमी की भूल कर दी तो इसके गंभीर परिणाम आए। घात लगाए नक्सलियों ने पुलिस दल पर हमला कर न सिर्फ जवानों को मौत की नींद सुला दी, बल्कि उनके अत्याधुनिक हथियार भी लूट लिए।

राज्य सरकार ने नक्सलियों को उनके ही सिद्धांत के साथ तीन तरफ से घेरना शुरू किया। इसके तहत पहली घेराबंदी नक्सली संगठन के बड़े नेताओं की गिरफ्तारी और धर-पकड़ की थी। इस घेराबंदी में राज्य सरकार को बहुत हद तक सफलता भी मिली और राज्य के अधिकतर बड़े नक्सली नेता इन दिनों या तो जेलों में बंद हैं या फिर भूमिगत हो चुके हैं। दूसरी घेराबंदी नक्सलियों को उन्हीं की भाषा में जवाब देने की थी, यानी सीधी कारवाई। हालांकि जवाबी कार्रवाई में बिहार पुलिस को कोई ऐसी बड़ी सफलता अब तक नहीं मिली है जिसका जिक्र तक किया जाए।[9] हकीकत तो यह है कि उल्टे नक्सलियों ने गुरिल्लों की तरह घात लगाकर पुलिस के जवानों को अपना शिकार बनाया और उनके हथियार तक लूट लिए।

राज्य सरकार ने चौथा रास्ता नक्सलियों की समाज की मुख्यधारा में वापस लौट आने के लिए अपनी नई आत्मसमर्पण नीति भी बनाई। लेकिन इन नीति का कोई खास असर नहीं दिखा। इस मामले में राज्य के पुलिस महानिदेशक आनंद शंकर कहते हैं कि हमने भी समर्पण नीति की कुछ खामियों के प्रति राज्य सरकार का ध्यान आकृष्ट किया है और इसमें कुछ आवश्यक बदलाव लाने का एक प्रस्ताव भी सरकार को सौंपा है। दरअसल, राज्य सरकार ने नक्सलियों के आत्मसमर्पण की जो नीति बनाई है उसमें सिर्फ हथियार के साथ समर्पण करनेवाले नक्सलियों को ही नक्सली माना गया है जबकि हकीकत यह है कि किसी भी नक्सली के पास कोई अपना हथियार नहीं होता। साफ है कि सरकार की इस नीति को कोई असर नहीं दिखा।[10]

जनवरी 2011 में मुख्यमंत्री के रूप में नीतीश कुमार के साथ बिहार सरकार के विभिन्न स्तरों पर भ्रष्टाचार से निपटने की अपनी मंशा के सटीक संकेत प्रदान किए थे। उस दिशा में उठाए गए एक कदम के रूप में राज्य सरकार ने सार्वजनिक वितरण प्रणाली को दुरूस्त किए जाने संबंधी पहल की थी। महत्वपूर्ण रूप से, बिहार ऐसा सर्वप्रथम (2011) राज्य था जिसके द्वारा सभी राज्य कर्मचारियों, जिनका संबंध विभिन्न श्रेणियों से था, के द्वारा वार्षिक आधार पर अपनी संपत्तियों तथा बैंक खातों के विवरणों को दाखिल किया जाना अनिवार्य बना दिया गया था। आगे, किसी भी अन्य राज्य ने विधानसभा के सदस्यों तथा विधान परिषद के सदस्यों के लिए उस स्थानीय क्षेत्र विकास निधि को समाप्त नहीं किया था जो दुरूपयोग किए जाने के कारण गंभीर आलोचनाओं से घिर चुकी थी।

साहित्य-समीक्षा

सुरेन्द्र मुन्शी, ब्रिज पॉल अब्राहम तथा सोम चौधरी द्वारा लिखित पुस्तक "The Intelligent Person"s Guide to Good Governance, में सुशासन के लिए राज्य की भूमिका का विस्तार से वर्णन किया गया है। पुस्तक में नागरिक समाज तथा प्रजातंत्र से सम्बंधित विभिन्न विषयों को भी विस्तार से स्पष्ट किया गया है।

जी एन वाजपेई द्वारा लिखित पुस्तक 'The Essential Book of Corporate Governance' में कॉर्पोरेट गवर्नेन्स का विस्तार से वर्णन किया है। इस पुस्तक में विभिन्न विषयों को चार्ट्स के माध्यम से विस्तार से व्याख्या की गई है।

विनोद राय द्वारा लिखित पुस्तक "Rethinking Good Governance" में सुशासन के लिए धारणीय आर्थिक विकास (Sustainable Economic Development) की आवश्यकता पर जोर दिया गया है तथा बताया गया है कि सुशासन के लिए जनता तथा सरकार के मध्य विश्वास का सम्बन्ध होना चाहिए।

एन भास्कर राव द्वारा लिखित पुस्तक 'Good Governance'%'Delivering Corruption Free Public Service' में सुशासन के लिए भ्रष्टाचार रहित लोक सेवाओं की आवश्यकता पर जोर दिया है तथा सुशासन के लिए सुझाव प्रस्तुत किये है।

बी सी स्मिथ द्वारा लिखित पुस्तक "Good Governance and Development" में विकसित एवं विकासशील देशों में सुशासन की अवधारणा को स्पष्ट किया गया है।

वेनुनंदन एताकुला द्वारा लिखित पुस्तक "Good Governance n` Institutions in India" में सुशासन के विभिन्न मुद्दों एवं व्यूह रचना पर चर्चा की गई है। इस पुस्तक में लोक सेवाओ के संपादन में आने वाली समस्यओं के बारे में विस्तार से व्याख्या की गई है तथा लोक सेवाओं को प्रभावशाली तरीके से निष्पादन से सम्बंधित विभिन्न आयामों का वर्णन किया गया है।

अध्ययन का महत्व

समानता एक सर्वव्यापी अवधारणा है। यह हर मानव की प्राचीनतम मांग है। आर्थिक समानता, सामाजिक समानता और राजनीतिक समानता सभी को जाति, वर्ग, धर्म, क्षेत्र या लिंग के भेद के बिना न्याय प्रदान करती हैं। भारत का संविधान सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न मौलिक अधिकारों और निदेशात्मक सिद्धांतों का प्रावधान करता है।

स्वतंत्रता के समय से भारतीय समाज स्थिर, रूढ़िवादी और अशिक्षित रहा है। भारतीयों के सामने विकास की चुनौती है, जिसमें असमानता को समाप्त करना शामिल है। समानता सुनिश्चित करने के लिए अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लिए विशेष योजनाएँ जैसे आरक्षण प्रदान की गई हैं। भारतीय संविधान के कार्यान्वयन के सत्तर वर्षों के बाद, यह देखा गया है कि सुरक्षात्मक भेदभाव और सकारात्मक कार्रवाई कार्यक्रमों ने आरक्षित वर्गों को सशक्त बनाने और उनके सामाजिक स्थिति में सुधार करने में मदद की है। वर्तमान अध्ययन बिहार में सुशासन के परिप्रेक्ष्य में राजनीतिक एवं प्रशासनिक अध्ययन (2010-2020) के माध्यम से बिहार में सुशासन के परिप्रेक्ष्य को समझने के लिए महत्वपूर्ण है।

अध्ययन के उद्देश्य

- इस अध्ययन के माध्यम से बिहार राज्य में सुशासन की स्थापना के लिए हमें इसके सिद्धांतों को राजनैतिक एवं प्रशासनिक नेतृत्व द्वारा लागू किया जायेगा।
- इस अध्ययन के माध्यम से बिहार राज्य में सुशासन की विभिन्न विशेषताओ का विस्तार से वर्णन किया जायेगा।
- इस अध्ययन के माध्यम से बिहार राज्य में सुशासन की विशेषताओ के आधार पर यहाँ के राज्यों का कार्मिक मंत्रालय द्वारा निर्धारित सूचकांक द्वारा किये गए वर्गीकरण का विश्लेषण किया जायेगा। इसी प्रकार विश्व बैंक द्वारा जारी WGi~ सर्वे के आधार पर किये गए वर्गीकरण की व्याख्या की जायेगी।
- इस अध्ययन के माध्यम से बिहार में सुशासन के लिए किये गए सर्वे के आधार पर मूल्यांकन किया गया जायेगा तथा परिणामों को भारित औसत मध्य तथा काई वर्ग रीति के आधार पर परीक्षण जायेगा।

परिकल्पना

यह अध्ययन इस परिकल्पना पर आधारित है कि:

- बिहार में सुशासन स्थापित करने के लिए स्वतंत्र चुनाव व्यवस्था, वंचित वर्गों का संवर्धन, सत्ता का विकेंद्रीकरण तथा विधि का शासन विधमान नहीं है।
- बिहार में सुशासन स्थापित करने के लिए सरकारी संस्थाओं की जवाबदेही, पारदर्शिता एवं खुलापन, सामाजिक आर्थिक सेवा की समयबद्ध उपलब्धता, प्रशासन में नैतिकता का समावेश विधमान नही है।
- बिहार में सुशासन स्थापित करने के लिए कार्य कुशलता, मितव्ययिता एवं सुदृढ़ वित्तीय प्रबंधन, प्रशासन में नैतिकता, पर्यावरण सुरक्षा के प्रति संवेदनशीलता विधमान नहीं है।
- बिहार में सुशासन स्थापित करने के लिए समानता, सामाजिक समावेशन, मानवाधिकार संरक्षण, क्षमता, योग्यता, प्रभावशालिता, नवीनता एवं परिवर्तन की स्वीकारोक्ति विधमान नही है।

शोध-विधि

वर्तमान अध्ययन के लिए वैधानिक दृष्टिकोण अपनाया जायेगा। पुस्तकें, पत्रिकाएँ, कानूनी मामले, रिपोर्टें जैसे द्वितीयक स्रोतों ने शोधकर्ता को विषय को समझने में सहायता करेंगी।

वैधानिक विधि का उपयोग मुख्य रूप से किया जायेगा। इसलिए, यह शोध कार्य पूरी तरह से पुस्तकालयों, अभिलेखागारों, ऑनलाइन डेटाबेस और विभिन्न ई-लर्निंग संसाधनों से प्राप्त सामग्री पर आधारित होंगी। जैसा कि फिलिप केनी ने कहा है, वैधानिक या शुद्ध कानूनी शोध के मामले में किसी विशेष विधि की आवश्यकता नहीं होती, जो सामाजिक विज्ञान या वैज्ञानिक शोध के विपरीत है। प्रस्तावित शोध निम्नलिखित तीन कानूनी शोध विधियों का संयोजन है, जहाँ भी प्रासंगिक हो- वर्णात्मक विधि, ऐतिहासिक और तुलनात्मक विधि, और विश्लेषणात्मक विधि। मूलत: यह शोध गुणात्मक है।

संदर्भ-सूची

1. आर. रामाचंद्रन, इंडियन सिटीज: सेलेकटेड कैरेकटराईजेशन अरबनाइजेशन एंड अरबन सिस्टम इन इंडिया, न्यू दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ० 342-347
2. एस.एन. मिश्रा, पॉलिटिक्स एंड लिडरशिप इन म्यूनिसिपल गवर्नमेंट इंटर इंडिया पब्लिकेशन, 1979, पृ० 48
3. सुकांत (2010), 'शराब घोटाले पर घिरती सरकार', दैनिक भाष्कर, 26 फरवरी, पृ० 7
4. चक्रपाणि हिमांशु (2010), 'सुशासन के चार साल: बिहार बेहाल', इंडिया न्यूज, 2-8 जनवरी, पृ० 27
5. दिनेश कुमार मिश्रा, 'लीविंग विद् फ्लड्स', इकोनोमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, जुलाई 21, 2001, पृ० 75-76
6. पीटर रोनाल्ड डिसूजा (2000), 'पेरोकियल वर्सेज सयूनिवर्स', सेमिनार, पृ० 593
7. तरूण विजय, 'कम्युनिस्ट आतंकवाद', सुरूचि प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ० 46-48
8. कल्याण मुखर्जी एवं राजेंद्र सिंह यादव, भोजपुर बिहार में नक्सली आंदोलन, नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृ०-1
9. बी. जोसेफ (1996) 'गवर्नमेंट, सिस्टम एंड रिजिम' पॉलिटिक्स, पालग्रेव फाउंडेशन, पृ० 6
10. नरेश बनर्जी, गया एंड बोधगया: ए प्रोफाइल इंटर इंडिया पब्लिकेशन, न्यू दिल्ली, पृ०-11

जनजातीय समुदायों के लिए शैक्षिक चुनौतियाँ और अवसरः बिहार राज्य के सीमांचल क्षेत्र के संदर्भ में

मुकेश कुमार सिन्हा

शोध छात्र, श्री वेकेंटेश्वरा विश्वविद्यालय, गजरौला, उत्तर प्रदेश

डॉ० योगेश्वर प्रसाद शर्मा

श्री वेकेंटेश्वरा विश्वविद्यालय, गजरौला, उत्तर प्रदेश

सारांश

सीमांचल क्षेत्र बिहार, भारत के उत्तर-पूर्वी कोने का एक बहुत महत्वपूर्ण क्षेत्र है, जिसमें चार जिले शामिल हैं; पूर्णिया, कटिहार, अररिया, और किशनगंज और पश्चिम बंगाल का उत्तर दिनाजपुर जिला। नेपाल और बांग्लादेश के साथ अंतरराष्ट्रीय सीमाओं को साझा करते हुए, यह क्षेत्र रणनीतिक महत्व रखता है। सीमांचल क्षेत्र में एक विविध जनसंख्या निवास करती है, जिसमें एक महत्वपूर्ण संख्या में जनजातीय समुदाय शामिल हैं। सड़क और परिवहन, स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं, और शैक्षिक सुविधाओं जैसी बुनियादी सुविधाओं की कमी इन समुदायों द्वारा सामना की जाने वाली चुनौतियों को बढ़ा देती है। इन समुदायों में साक्षरता दर राज्य और राष्ट्रीय औसत से कम है। वर्तमान अध्ययन के माध्यम से, शोधकर्ता गरीबी, भौगोलिक अलगाव, भाषा विविधता, और अपर्याप्त बुनियादी ढांचे के कारण शैक्षिक प्राप्ति में मौजूद बाधाओं की पहचान और जांच करने का प्रयास करता है। वर्तमान पत्र सीमांचल में जनजातीय समुदायों द्वारा सामना की जाने वाली शैक्षिक चुनौतियों पर भी प्रकाश डालता है। इसके अलावा, यह शैक्षिक परिणामों में सुधार के लिए संभावित अवसरों और संभावित समाधानों की पहचान करने का प्रयास भी करता है। यह माना जाता है कि इस पत्र के माध्यम से, शोधकर्ता अंतर्दृष्टि प्रदान करेगा और हितधारकों को एक ऐसा पाठ्यक्रम डिजाइन करने में मदद करेगा जो न केवल शैक्षिक पहुंच को बढ़ाएगा, बल्कि इन हाशिए पर रहने वाले समुदायों के लिए गुणवत्ता भी प्रदान करने का लक्ष्य रखेगा। यह शोध इन हाशिए पर रहने वाले समुदायों के लिए शैक्षिक परिणामों में सुधार के प्रयासों में नीति निर्माताओं, शिक्षकों और हितधारकों को मार्गदर्शन करने के लिए अंतर्दृष्टि और व्यावहारिक समाधान प्रदान करने का लक्ष्य रखता है।

कीवर्डः जनजातीय शिक्षा, जनजातीय समुदाय, सीमांचल क्षेत्र, बिहार, शैक्षिक चुनौतियाँ, अवसर

परिचय

सीमांचल क्षेत्र बिहार, भारत के उत्तर-पूर्वी कोने का एक बहुत महत्वपूर्ण क्षेत्र है, जिसमें चार जिले शामिल हैं; पूर्णिया, कटिहार, अररिया, और किशनगंज और पश्चिम बंगाल का उत्तर दिनाजपुर जिला। नेपाल और बांग्लादेश के साथ अंतरराष्ट्रीय सीमाओं को साझा करते हुए, यह क्षेत्र सामरिक महत्व रखता है। इस क्षेत्र की जनसंख्या में मुस्लिम और हिंदू समुदायों का वर्चस्व है, जहाँ छठ पूजा, ईद, दुर्गा पूजा, और सरस्वती पूजा प्रमुख त्योहार हैं। हिंदी, उर्दू, मैथिली, और सूरजपुरी जैसी प्रमुख भाषाएँ इस क्षेत्र की भाषाई संरचना में योगदान करती हैं। कृषि इस क्षेत्र के लोगों के लिए मुख्य पेशा है, जहाँ वे सामान्यतः चावल, मक्का, और जूट जैसी प्रमुख फसलों की खेती करते हैं। साथ ही, यह चाय बागानों का बढ़ता केंद्र भी बनता जा रहा है।

हालांकि मुसलमान सीमांचल की जनसंख्या का अधिकांश हिस्सा बनाते हैं, यहां विभिन्न जनजातीय समुदाय भी निवास करते हैं, प्रत्येक की अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक धरोहर और परंपराएं हैं। भारत की जनगणना 2011 के अनुसार, बिहार में जनजातीय जनसंख्या लगभग 1.3 मिलियन है, जिसमें से एक महत्वपूर्ण हिस्सा सीमांचल क्षेत्र में निवास करता है जैसे कि संथाल, ओरांव, मुंडा और अन्य, प्रत्येक की अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक और भाषाई पहचान है। संथाल जनजाति, जो भारत की सबसे बड़ी

जनजातीय समुदाय भी है, सीमांचल क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण उपस्थिति रखती है। अन्य महत्वपूर्ण जनजातीय समुदायों में मुंडा जनजाति, ओरांव जनजाति, खरवार जनजाति और भुइया जनजाति शामिल हैं। क्षेत्र में इतनी महत्वपूर्ण उपस्थिति होने के बावजूद, जनजातीय लोग कई सामाजिक-आर्थिक चुनौतियों का सामना कर रहे हैं।[1] आदिवासी समुदाय का एक बड़ा हिस्सा खेती पर निर्भर करता है, जिसमें आधुनिक कृषि उपकरणों, प्रौद्योगिकियों और बाजार संबंधों की पहुंच बहुत कम है। इसके अलावा, कृषि के बाहर रोजगार के अवसरों की कमी उच्च स्तर की गरीबी और अधेड़ रोजगार को जन्म देती है। सड़क और परिवहन, स्वास्थ्य देखभाल सुविधाओं, और शैक्षिक सुविधाओं जैसी बुनियादी सुविधाओं की कमी इन समुदायों द्वारा सामना की जाने वाली चुनौतियों को और बढ़ा देती है। इन समुदायों में साक्षरता दर राज्य और राष्ट्रीय औसत से कम है। बिहार की कुल औसत साक्षरता 63% है, जबकि इन समुदायों की औसत साक्षरता दर काफी कम (लगभग 50%) देखी गई है। शिक्षा में लिंग असमानता भी स्पष्ट है, जिसमें महिला साक्षरता दर और भी पीछे है। अररिया और किशनगंज जैसे जिलों में, जहां आदिवासी जनसंख्या केंद्रित है, शैक्षिक उपलब्धि के स्तर विशेष रूप से चिंताजनक हैं। वर्तमान पत्र सीमांचल क्षेत्र के आदिवासी समुदायों द्वारा सामना की जाने वाली शैक्षिक चुनौतियों में गहराई से जाने का प्रयास करता है। साथ ही, यह शैक्षिक परिणामों में सुधार के लिए निहित अवसरों और संभावित समाधानों की पहचान करने की कोशिश भी करता है। ऐसा माना जाता है कि इस पत्र के माध्यम से, शोधकर्ता अंतर्दृष्टि प्रदान करेगा और हितधारकों को एक ऐसा पाठ्यक्रम तैयार करने में मदद करेगा जो न केवल शैक्षिक पहुंच को बढ़ाएगा, बल्कि इन हाशिए पर रहने वाले समुदायों के लिए गुणवत्ता भी प्रदान करेगा।[2] यह शोध नीति निर्माताओं, शिक्षकों और हितधारकों को आदिवासी लोगों के लिए शैक्षिक परिणामों में सुधार के प्रयासों में मार्गदर्शन करने के लिए अंतर्दृष्टि और व्यावहारिक समाधान प्रदान करने का लक्ष्य रखता है।

साहित्य समीक्षा

विनु[3] (2021) ने 'जनजातीय शिक्षा और जीवन की गुणवत्ता: मुद्दे और चुनौतियाँ' पर अपने अध्ययन में बताया कि भारत में जनजातियों को कई प्रकार की समस्याओं और मुद्दों का सामना करना पड़ा। वे एक चुनौतीपूर्ण जीवन जीते हैं और अपने निवास, अर्थव्यवस्था, परिवहन, बुनियादी सुविधाओं की कमी, ऋण, बेरोजगारी और शैक्षिक समस्याओं से संबंधित समस्याओं का सामना करते हैं। शोधकर्ता ने सुझाव दिया कि शिक्षा इन सभी समस्याओं को हल करने की मूल कुंजी है।

गौरंग रामि[4] (2012) का लेख गुजरात के डांग जनजातीय जिले में प्राथमिक शिक्षा की स्थिति का अध्ययन करता है। जिले में लगभग 412 प्राथमिक विद्यालय हैं, जिनमें से 378 जिला पंचायत द्वारा संचालित हैं। स्कूल भवन होने के बावजूद, ये संस्थान महिलाओं के छात्रों को आकर्षित करने में असफल हैं, क्योंकि यहां अलग शौचालय और पेयजल सुविधाओं जैसी आवश्यकताओं की कमी है। इसके परिणामस्वरूप, कई जनजातीय लड़कियां 5वीं कक्षा के बाद पढ़ाई छोड़ देती हैं। उचित बुनियादी ढांचे की कमी जनजातीय समुदायों में शिक्षा को बढ़ावा देने में एक महत्वपूर्ण चुनौती बनी हुई है।

गंगेले[5] (2019) ने जनजातीय शिक्षा, उनकी साक्षरता दर और शिक्षा प्राप्त करने में उनके द्वारा सामना की जाने वाली समस्याओं पर एक अध्ययन किया। शोधकर्ता ने 2011 तक अनुसूचित जनजातियों और अन्य सामाजिक श्रेणियों के बीच के अंतर का अध्ययन करने का प्रयास भी किया, जिसमें भारत में सकल नामांकन अनुपात, ड्रॉपआउट दरें और लिंग समानता सूचकांक शामिल थे। शोधकर्ता द्वारा यह स्पष्ट किया गया कि जनजातीय समुदाय, चाहे वह ग्रामीण या शहरी क्षेत्रों से हो, शैक्षणिक संस्थानों में भाग लेने में विभिन्न सामाजिक और मनोवैज्ञानिक समस्याओं का सामना कर रहा है, और जनजातियों और गैर-जनजातियों के बीच शिक्षा के स्तर में काफी अंतर देखा गया। इस पत्र ने भारत में जनजातीय शिक्षा और संबंधित चुनौतियों से संबंधित एक वैचारिक ढांचा और समझ प्रदान की।

बंदानी[6] (2021) ने शिक्षा की स्थिति का अध्ययन किया और यह भी कि उच्च विद्यालय छोड़ने की दर, अनुपस्थिति और कम नामांकन के प्रमुख कारण क्या हैं। शोधकर्ता ने ओडिशा के कोरापुट जिले के आदिवासियों के बीच साक्षरता में लिंग अंतर के पीछे के कारणों का पता लगाने की कोशिश की। कोरापुट जिले में शैक्षिक स्थिति का पता लगाने के लिए 467 घरों में एक सर्वेक्षण किया गया, जिसमें 1830 ग्रामीण शामिल थे। वर्तमान जांच में रिपोर्ट किया गया कि क्षेत्र में साक्षरता दर बहुत कम थी (लगभग 32.4%)। स्कूल छोड़ने और अनुपस्थिति के प्रमुख कारणों में गरीब आर्थिक स्थिति, घरेलू काम, अध्ययन में रुचि की कमी, परिवार के कमाने वाले सदस्य, लिंग भेदभाव, स्कूल का बुनियादी ढांचा और उनकी बड़ी दूरी, और शिक्षण भाषा की समस्याएं पाई गई।

साहू[7] (2014) द्वारा किए गए एक अध्ययन ने भारत में जनजातीय शिक्षा का विश्लेषण किया, जिसमें साक्षरता दर, सकल नामांकन अनुपात, ड्रॉपआउट दर और लिंग समानता सूचकांक पर ध्यान केंद्रित किया गया। इस शोध में भारत की 2011 की

जनगणना से द्वितीयक डेटा का उपयोग किया गया। उल्लेखनीय है कि जनजातियों में साक्षरता दर 1961 में केवल 8.54 प्रतिशत से बढ़कर 2011 में 63.1 प्रतिशत हो गई। अनुसूचित जनजाति (ST) के लड़कों और लड़कियों के लिए कक्षाएँ I से V में सकल नामांकन अनुपात क्रमशः 137.2 और 136.7 के साथ अधिक था।

आदिवासी समुदायों के लिए शैक्षिक चुनौतियाँ

यह देखा जा रहा है कि आदिवासी वर्ग का एक बड़ा हिस्सा गरीबी रेखा के नीचे जीवन यापन कर रहा है, जिससे उनके लिए शैक्षिक खर्चों को उठाना कठिन हो रहा है।

आधिकारिक रूप से, वे अनौपचारिक शिक्षा प्रणालियों पर निर्भर करते हैं, जहाँ ज्ञान और कौशल पीढ़ियों से मौखिक रूप से और व्यावहारिक अनुभवों के माध्यम से हस्तांतरित होते हैं।

1. भौगोलिक अलगाव और अवसंरचना की चुनौतियाँ

पहुँच की कमी: सीमांचल क्षेत्र की जनजातीय समुदायों की मुख्य जनसंख्या भौगोलिक रूप से दूरदराज के क्षेत्रों में निवास करती है। परिवहन अवसंरचना की कमी के कारण बच्चों के लिए नियमित रूप से कक्षाओं में जाना और भाग लेना कठिन हो जाता है। जो गुणवत्ता वाली शिक्षा तक पहुँच को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है।

खराब बुनियादी ढांचा: यह अक्सर देखा जाता है कि ऐसे क्षेत्रों में स्थित स्कूलों में उचित बुनियादी ढांचे की कमी होती है, चाहे वह सही भवन, कक्षाएं, पुस्तकालय, स्वच्छता सुविधाएं और अन्य हों।

योग्य और सक्षम शिक्षकों की कमी: स्थानीयता की दूरियों के कारण, कई शैक्षणिक संस्थानों को योग्य और सक्षम शिक्षकों को आकर्षित करने और बनाए रखने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, जिससे शिक्षा की गुणवत्ता प्रभावित होती है।

2. सामाजिक-आर्थिक बाधाएँ

गरीबी और आर्थिक कठिनाई: गरीबी इन जनजातियों के लिए औपचारिक शिक्षा प्राप्त करने में सबसे प्रमुख चुनौती साबित होती है, जहाँ परिवार स्कूल की फीस, वर्दी और अध्ययन सामग्री के लिए भुगतान करने में असमर्थ होते हैं।

जीविका प्राथमिकताएँ: यह अक्सर देखा जाता है कि वित्तीय संकट के कारण, ये जनजातियाँ अपने बच्चों को आजीविका कमाने में संलग्न करती हैं, विशेष रूप से कृषि क्षेत्र में। बाल श्रम एक बहुत सामान्य प्रथा है जो समाज में विद्यमान है।

शोषण: गैर-जनजातीय व्यापारी, बड़े किसान और पैसे उधार देने वाले जनजातियों का शोषण करते हैं। ऋणग्रस्तता लगभग सार्वभौमिक, पुनरावृत्त और लगभग अनिवार्य है। ऋणदाताओं द्वारा ऋणग्रस्तों का शोषण, हालांकि आर्थिक लेन-देन के संदर्भ में उत्पन्न होता है, फिर भी यह एक सामाजिक समस्या का एक विशिष्ट उदाहरण है। ऋणग्रस्तता अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के लिए एक स्थायी स्थिति बन जाती है क्योंकि यह पिता से पुत्र को भी हस्तांतरित होती है। यह स्थिति आर्थिक कारकों और बड़े पैमाने पर शोषण के कारण है।[8]

अभिभावकों की शिक्षा के महत्व के प्रति जागरूकता की कमी: अधिकांश अभिभावक शिक्षित नहीं हैं, जिसके कारण वे शिक्षा की कीमत को नहीं समझते और अपने बच्चों को स्कूल भेजने में हिचकिचाते हैं। उन्हें विश्वास है कि अगर उनके बच्चे स्कूल जाएंगे तो वे बिगड़ जाएंगे।

लिंग भेदभाव: लिंग भेदभाव एक और कारक है जो लड़की के लिए शिक्षा के अवसरों को सीमित करता है। जल्दी विवाह, घरेलू जिम्मेदारियाँ, और सामाजिक मानदंड अक्सर उनकी शिक्षा के अवसरों को सीमित कर देते हैं।

3. सांस्कृतिक और सामाजिक कारक

सांस्कृतिक और सामाजिक कारक: पारंपरिक विश्वास और प्रथाएँ औपचारिक शिक्षा प्राप्त करने में एक बड़ी बाधा प्रतीत होती हैं। माता-पिता या बुजुर्ग लोग मानते हैं कि अपनी बेटियों को विशेष रूप से शैक्षणिक संस्थानों में भेजना युवा पीढ़ी को भटका देगा और उनके सांस्कृतिक मानदंडों और लिंग भूमिकाओं को बाधित करेगा।[9]

भाषाई बाधाएँ: अधिकांश स्कूल हिंदी या अंग्रेजी को माध्यम के रूप में अपनाते हैं, विशेष रूप से उच्च कक्षाओं में, जिसमें अधिकांश बच्चे सहज नहीं हो सकते हैं। भाषाई बाधाएँ समझ और सीखने में रुकावट डाल सकती हैं, जिससे उच्च ड्रॉपआउट दरें हो सकती हैं।

आदिवासी संस्कृति और आवश्यकताओं के लिए पाठ्यक्रम की प्रासंगिकता: पाठ्यक्रम अक्सर स्थानीय संदर्भ और आदिवासी छात्रों की आवश्यकताओं को दर्शाने में विफल रहता है, जिससे शिक्षा कम प्रासंगिक और आकर्षक हो जाती है।[10] पारंपरिक शिक्षण विधियाँ छात्रों को प्रभावी ढंग से संलग्न नहीं कर सकती हैं, जिससे खराब सीखने के परिणाम उत्पन्न होते हैं।

सुझाव

सीमांचल क्षेत्र, बिहार के आदिवासी समुदायों में जो महत्वपूर्ण चुनौतियाँ बाधा बनीं, उन्हें पहचानने के बाद, समस्या के समाधान और अंतर को पाटने के लिए निम्नलिखित संभावित कदम उठाए जा सकते हैं:

1. भौगोलिक अलगाव और अवसंरचना की चुनौतियाँ

- परिवहन सुविधाओं का उन्नयन: सरकार को यह सुनिश्चित करने के लिए कदम उठाने चाहिए कि दूरदराज के क्षेत्रों में रहने वाले बच्चों के लिए सरकारी सब्सिडी वाली परिवहन सेवाएँ जैसे कि स्कूल बसें या साइकिलें उपलब्ध कराई जाएँ, ताकि नियमित उपस्थिति सुनिश्चित हो सके। सुरक्षित और विश्वसनीय परिवहन नेटवर्क प्रदान करने से नियमित उपस्थिति में सहायता मिलेगी।
- अवसंरचना विकास: जनजातीय क्षेत्रों में स्कूल की अवसंरचना में सुधार के लिए पर्याप्त धन आवंटित किया जाना चाहिए। इसमें उचित कक्षाएँ, पुस्तकालय, स्वच्छता सुविधाएँ और पीने का साफ पानी शामिल होना चाहिए।
- उपग्रह विद्यालय: दूरदराज के क्षेत्रों के लिए उपग्रह विद्यालयों का प्रस्ताव किया जाना चाहिए, जो छात्रों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए यात्रा करने की लंबी दूरी की समस्या का समाधान करेंगे।
- सामुदायिक भागीदारी: स्थानीय समुदायों को स्कूल निर्माण और रखरखाव में भागीदार बनाया जा सकता है। इससे शैक्षिक बुनियादी ढांचे के प्रति स्वामित्व और जिम्मेदारी की भावना को बढ़ावा मिलेगा।
- शिक्षक प्रोत्साहन: योग्य शिक्षकों को दूरदराज के क्षेत्रों में आकर्षित करने के लिए आकर्षक प्रोत्साहन और भत्ते दिए जाने चाहिए, जिसमें आवास लाभ, सुरक्षा, बेहतर वेतन भत्ते, और करियर प्रगति के अवसर शामिल हो सकते हैं।
- शिक्षक प्रशिक्षण: मौजूदा शिक्षकों को नियमित रूप से उचित प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए ताकि उन्हें गुणवत्ता शिक्षा प्रदान करने के लिए आवश्यक अद्यतन कौशल और ज्ञान से लैस किया जा सके।

2. सामाजिक-आर्थिक बाधाएँ:

छात्रवृत्ति कार्यक्रम: हालांकि सरकार जनजातियों को छात्रवृत्तियाँ प्रदान कर रही है, ऐसे कार्यक्रमों का और विस्तार करने और जरूरत के आधार पर वित्तीय सहायता प्रदान करने की आवश्यकता है, जो वंचित जनजातीय छात्रों के लिए स्कूल की फीस, वर्दी और अध्ययन सामग्री को कवर कर सके।

आजीविका के विकल्प: जनजातीय समुदायों में वैकल्पिक आय उत्पन्न करने वाली गतिविधियों को प्रोत्साहित किया जा सकता है, जो उन्हें बाल श्रम पर निर्भरता कम करने में मदद कर सकती हैं और शैक्षिक गतिविधियों के लिए अवसर प्रदान कर सकती हैं।

मध्याह्न भोजन योजनाएँ: सरकार को राज्य और स्थानीय निकाय के सहयोग से मध्याह्न भोजन योजनाओं का विस्तार और सुधार करने पर अधिक ध्यान केंद्रित करना चाहिए, जो उनके स्कूल में उपस्थिति को प्रोत्साहित करने में मदद कर सकती हैं।

कौशल आधारित शिक्षा: पाठ्यक्रम को इस तरह से तैयार किया जाना चाहिए कि यह छात्रों में कौशल विकसित करे, जो भविष्य में उन्हें अधिक आय के संसाधन उत्पन्न करने में मदद कर सके।

सामुदायिक जागरूकता अभियान: जनजातीय समुदायों में जागरूकता बढ़ाने के लिए उपयुक्त जागरूकता कार्यक्रम आयोजित किए जाने चाहिए और उन्हें शैक्षिक गतिविधियों में अधिक संलग्न होने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इस संदर्भ में जनजातीय नेताओं और सामुदायिक शिक्षकों को शामिल करना चमत्कार कर सकता है।

लड़कियों की शिक्षा पहलों: सरकार को स्थानीय स्तर के अधिकारियों के साथ मिलकर ऐसे विशेष कार्यक्रमों का निर्माण और कार्यान्वयन करना चाहिए जो समुदाय में लड़की के बच्चे की शिक्षा की आवश्यकता के प्रति जागरूकता बढ़ाएं, इस प्रकार शिक्षा में लिंग असमानता को कम करें। इसमें स्कूलों में लड़कियों के लिए स्वच्छता सुविधाएं प्रदान करना, विशेष रूप से लड़कियों के लिए छात्रवृत्तियां देना, और समुदाय में लड़कियों की शिक्षा के लिए रोल मॉडल को बढ़ावा देना शामिल हो सकता है।

3. सांस्कृतिक और सामाजिक कारक:

- सांस्कृतिक रूप से उत्तरदायी पाठ्यक्रम: शैक्षिक सामग्री विकसित करते समय जनजातीय संस्कृति और जातीयता से संबंधित नैतिकता और मूल्यों को शामिल करने पर ध्यान दिया जाना चाहिए, जिससे शिक्षा अधिक प्रासंगिक और आकर्षक बन सके।
- बहुभाषी शिक्षा: NEP 2020 द्वारा दी गई सिफारिश के अनुसार, प्रारंभिक कक्षाओं में मातृभाषा या स्थानीय भाषा की शिक्षा को शामिल करना और धीरे-धीरे हिंदी या अंग्रेजी की ओर संक्रमण करना चाहिए, जबकि दोनों भाषाओं में मजबूत कौशल सुनिश्चित किया जाना चाहिए।
- प्रौद्योगिकी का एकीकरण: डिजिटल प्रौद्योगिकी की मांग को संबोधित करते हुए, मौजूदा पाठ्यक्रम को शिक्षा में उपयुक्त प्रौद्योगिकी को एकीकृत करके नवीनीकरण किया जाना चाहिए, जैसे कि डिजिटल शिक्षण संसाधन या ऑनलाइन शैक्षिक प्लेटफार्मों की उपलब्धता। कक्षा में शिक्षण में प्रौद्योगिकियों का उपयोग और समावेश करने के नए तरीकों की खोज पर ध्यान केंद्रित किया जाना चाहिए। इससे ज्ञान तक पहुंच को बढ़ावा मिलेगा और पारंपरिक शिक्षण विधियों को पूरक बनाया जाएगा, विशेष रूप से दूरदराज के क्षेत्रों में।
- निगरानी और मूल्यांकन: लागू किए गए कार्यक्रमों की प्रभावशीलता की नियमित रूप से निगरानी करें और उनका मूल्यांकन करें तथा आवश्यकतानुसार समायोजन करें ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि वे इच्छित परिणाम प्राप्त कर रहे हैं।

निष्कर्ष

बिहार का सीमांचल क्षेत्र, विशेष रूप से आदिवासी क्षेत्र, बहुआयामी चुनौतियों का सामना कर रहा है। कई कारक जैसे, भौगोलिक अलगाव, अपर्याप्त बुनियादी ढांचा, सामाजिक-आर्थिक बाधाएँ, और सांस्कृतिक तथा सामाजिक कारक इस आदिवासी समुदाय की आजीविका और शिक्षा पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं। हालांकि, लक्षित और सांस्कृतिक रूप से संवेदनशील हस्तक्षेपों के माध्यम से अंतर्निहित समस्याओं और चुनौतियों को सफलतापूर्वक संबोधित और सुधारित किया जा सकता है, जिससे शैक्षिक अंतर को काफी हद तक कम किया जा सके। पर्याप्त अवसर प्रदान करके, सीमांचल के आदिवासी समुदायों के लिए एक अधिक समावेशी और समान शैक्षिक वातावरण बनाया जा सकता है। बेहतर बुनियादी ढांचे को सुविधाजनक बनाना, सुलभ परिवहन प्रदान करना, और योग्य शिक्षकों की भर्ती करना दूरदराज के क्षेत्रों में शैक्षिक अवसरों को बढ़ाएगा। आर्थिक सहायता, आजीविका के विकल्प, और माता-पिता के जागरूकता अभियानों के माध्यम से सामाजिक-आर्थिक बाधाओं को पार करना भी उतना ही महत्वपूर्ण है।

संदर्भ

1. अनबुसेल्वी जी., जॉन पाठ (2015). भारत में जनजातीय बच्चों की शिक्षा : एक केस अध्ययन, अंतर्राष्ट्रीय उन्नत और नवाचार अनुसंधान पत्रिका, खंड-4, अंक-3।
2. बेनिवाल ए. (2020). भारतीय जनजातियाँ: समस्याएँ और उनके समाधान, कला और सामाजिक विज्ञान का एक अंतर्राष्ट्रीय शोध पत्रिका। 5(2), 45ख53
3. बिंदहानी, बी. के. (2021). ओडिशा के कोरापुट जिले में जनजातियों के बीच शैक्षिक परिदृश्य की स्थिति और समस्याएँ, ओरिएंटल एंथ्रोपोलॉजिस्ट: मानव विज्ञान का द्विवार्षिक अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका, 21(1),158-163।
4. Brahmanandam, T., & Babu, T. B. (2016). अनुसूचित जनजातियों के बीच शैक्षणिक स्थिति: मुद्दे और चुनौतियाँ, छम्भ्न जर्नल, 14(2), 69-85।
5. गौतम वी. (2003). भारत में जनजातीय बच्चों की शिक्षा और माध्यम की समस्या।
6. गिरसे डी. (2016). वर्तमान परिदृश्य में भारतीय जनजातीय समुदायों की समस्याएँ, अंतर्राष्ट्रीय विकास अनुसंधान पत्रिका, खंड 66, अंक 05, पृष्ठ 7924-7927।
7. घुर्ये जी.एस. (1963). अनुसूचित जनजातियाँ, लोकप्रिय प्रकाशन, मुंबई, तीसरा संस्करण।
8. मंडल पी. (2024). भारतीय जनजातियों द्वारा सामना की जाने वाली मुख्य समस्याएँ।
9. साहू के.के. (2014). भारत में जनजातीय शिक्षा की चुनौतीपूर्ण समस्या, अर्थशास्त्र और वित्त की पत्रिका, खंड-3, अंक-2, पृष्ठ-48-52।
10. विनु (2021). जनजातीय शिक्षा और जीवन की गुणवत्ता: मुद्दे और चुनौतियाँ, अंतर्राष्ट्रीय भारतीय मनोविज्ञान पत्रिका, 9(1), 603-610।

उत्तर प्रदेश की दलीय और दलित राजनीति

राज कुमार

शोध छात्र, राजनीति विज्ञान, समाज विज्ञान विद्या शाखा, उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन, मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

सारांशः-

राजनीतिक रूप से प्रदेश ही नहीं वरन् पूरे देश में दलित समुदाय बहुत महत्वपूर्ण भूमिका में है। वर्तमान में ज्यादातर राजनीतिक दल विभिन्न तरीकों से दलित वोट बैंक में लगे रहते हैं। खासकर उत्तर प्रदेश में सभी दलों का यह एक एजेण्डा बन गया है कि वे दलित वोट बैंक को साधने के लिए प्रयारस रहते हैं। दलितों के उत्थान के लिए विभिन्न नेताओं व दलों के द्वारा अनेक आन्दोलन चलाये गये वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक भी हुए हैं।

परिचयः-

भारत की राजनीति में दलित समुदाय एक निर्णायक शक्ति के रूप में उभरा है, विशेष रूप से उत्तर प्रदेश जैसे राज्य में जहाँ दलित आबादी लगभग 21 प्रतिशत है। उत्तर प्रदेश में दलित मतदाता लम्बे समय तक हाशिए पर रहने के बाद राजनीतिक चेतना से लैस होकर सत्ता के केन्द्र में आये। 1990 के पश्चात उत्तर प्रदेश में दलित जाति की राजनीति बहुत महत्वपूर्ण हो गयी। 1950 से लेकर 1990 तक के काल में दलित राजनीति में कई उतार-चढ़ाव आये। इस दौरान भूमि सुधार कानून लागू हुआ, आरक्षण से दलितों को काफी लाभ पहुँचा तथा विभिन्न कल्याणकारी कार्यक्रमों द्वारा उन्हें विशेष लाभ प्राप्त हुआ।

उत्तर प्रदेश में दलितों को ''अनुसूचित जातियाँ'' कहा जाता है जिसमें प्रमुख जातियाँ चमार, धोबी, पासी, धेकर, कोरी, बाल्मीकि आदि हैं। दलित जाति से आशय ऐसे जातियों से है जो शैक्षणिक, सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक तथा धार्मिक रूप से पीछे रह गयीं या उनको आगे बढ़ने का अवसर अथवा दशा नहीं मिल सकी। सर्वप्रथम भारत शासन अधिनियम 1935 के माध्यम से दलित जातियों को अनुसूचित जाति कहा गया।

उत्तर प्रदेश की राजनीति में दलित जातियों की भागीदारी कम हो रही है। स्वतंत्रता के प्रयास में डॉ0 भीमराव अम्बेडकर द्वारा दलितों में राजनीतिक चेतना के विकास, उनकी शिक्षा के लिए विशेष प्रयास किया गया। इसी उद्देश्य को पूरा करने के लिए रिपब्लिकन पार्टी द्वारा भी प्रयास किया गया। उत्तर प्रदेश की राजनीति में कांशीराम के आगमन के पश्चात दलित राजनीति में काफी परिवर्तन आया। इन्हीं के समय में ही उत्तर प्रदेश में दलित ध्रुवीकरण शुरू हुआ। कांशीराम जी द्वारा बहुजन समाज पार्टी की स्थापना की गयी। उत्तर प्रदेश में बहुजन समाज पार्टी की सरकार बनने से दलित राजनीति में काफी बदलाव आया। दलित समुदाय का झुकाव हिन्दू धर्म की तरफ न होकर बौद्ध धर्म की तरफ रहा। 1980 से दलित आन्दोलन राजनीतिक रूप से ज्यादा सक्रिय हो गया। इस आन्दोलन को आगे बढ़ाने में प्रमुख भूमिका बहुजन समाज पार्टी और रिपब्लिकन पार्टी आफ इण्डिया की रही। इसमें बहुजन समाज पार्टी राजनीतिक रूप से ज्यादा सक्रिय दिखी। उत्तर प्रदेश के दलित समाज में राजनीतिक चेतना का विकास बहुत देर से हुआ। इसका मुख्य कारण यहॉ के सामाजिक ढाँचे में लचीलेपन की कमी होना। उत्तर प्रदेश में उपनिवेशवाद का विरोध शुरू हुआ जिसके नेतृत्वकर्ता महात्मा गॉधी थे वहीं महाराष्ट्र में भी उपनिवेशवाद का विरोध किया गया। संयुक्त प्रान्त में विभिन्न प्रकार के आन्दोलन चलाये गये। जैसे लगान आन्दोलन जिसमें मजदूरों तथा किसानों ने बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया। 1920-21 में किसान सभा आन्दोलन हुआ जिसमें किसानों के हिस्सा लिया। इन्हीं सब आन्दोलनों के दौरान ही कई बड़े नेता भी उभर के आये। किसान नेताओं के राजनीति में आने के कारण आन्दोलन में सामाजिक और राजनीतिक दोनों तथ्य मजबूत हो गये। इन्हीं आन्दोलनों के दौरान विभिन्न दलित जातियों ने अपने आप को समाज की मुख्यधारा में शामिल करने का प्रयास किया और कुछ हद तक वे इसमें सफल भी हुए।

1939 के बाद दलित के एक वर्ग ने कुछ क्षेत्रों में गॉधीवादी विचारधारा को न अपनाकर डॉ0 भीमराव अम्बेडकर की विचाराधारा को प्राथमिकता दिया तथा अपना मुख्य फोकस अपने राजनीतिक स्तर को सुधारने पर रहा।[1] आगरा के जूता कारीगर जो मुख्य रूप से दलित जाति के थे वे आर्य समाज के प्रभाव में थे धीरे-धीरे वे शिक्षा की तरफ अग्रसर हुए और फिर राजनीति

में भी भाग लेने लगे। इन लोगों ने दलित जाति फेडरेशन की स्थापना सन् 1944 में आगरा में की।[2] इसके पश्चात 1966 में संयुक्त जाटव फ्रंट की स्थापना हुई।[3]

तत्कालीन समय में उत्तर प्रदेश के कुछ दलित जातियों के लोगों ने राजनीति में भागीदारी शुरू कर दिया परन्तु अधिकतर दलित जातियाँ अभी भी इससे दूर थी। 1958 में जब रिपब्लिकन पार्टी आफ इण्डिया की स्थापना उत्तर प्रदेश में हुई तो दलित जाति आन्दोलन को एक नया आयाम मिला।[4] रिपब्लिकन पार्टी आफ इण्डिया ने 1962 में हुए आम चुनाव में भाग लिया और लोक सभा में पार्टी के 3 सदस्य तथा विधानसभा में 8 सदस्यों को विजय प्राप्त हुई।[5] महाराष्ट्र की तुलना में पार्टी को उत्तर प्रदेश में सकारात्मक परिणाम देखने को मिले।

1967 के उत्तर प्रदेश विधानसभा चुनाव में रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इण्डिया के 10 उम्मीदवार विजयी हुए।[6] तत्पश्चात 1974, 1977 और 1980 के विधानसभा चुनाव में पार्टी का प्रदर्शन अच्छा नहीं रहा। दलित वर्ग के कुछ संभ्रान्त लोगों ने अपने वर्ग को सुसंगठित होने का प्रयास किया परन्तु नेतृत्व के अभाव में ये सफल न हो सके। 1970 के दशक में हुए दलित आन्दोलन के दो भाग दिखाई देते हैं एक तो अलगाववादी राजनीति दूसरा फूट और एकीकरण की राजनीति। 1969 में हुए विधानसभा के चुनाव में रिपब्लिकन का पतन प्रारम्भ हो गया। तत्पश्चात दलित आन्दोलन कांग्रेस के सहयोगी के रूप में कार्य करने लगा। लगभग 1960 के दशक में मध्यम वर्ग के लोगों ने अपने-अपने नेतृत्वकर्ताओं के माध्यम से और हरित क्रान्ति से होने वाले फायदे से एक नये विश्वास और जोश के साथ नया दौर प्रारम्भ किया। इसी दौर में भारतीय क्रांति दल की भी राजनैतिक शुरूआत हुई। तत्पश्चात अभी तक जो जाति संघर्ष मुख्यत: उच्च जाति और दलित जातियों के बीच था अब वह दलित जातियों और उच्च मध्यम जातियों के बीच प्रारम्भ हो गया।[7] 1960 के दशक में ही कांग्रेस पार्टी की विचारधारा में बदलाव हुआ और कांग्रेस ने अल्पसंख्यकों, दलितों ऐसे व्यक्ति जो भूमिहीन थे उन सभी को अपने करीब लाने का प्रयास किया गया।[8]

इन्दिरा गॉधी की नेतृत्व वाली सरकार से लोगों में उम्मीद की नई किरण दिखी। उन्हीं के समय बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया जिससे भूमिहीनों तथा बेरोजगारों को काफी लाभ मिला।[9] उसी समय गरीबी हटाओं का नारा तथा 20 सूत्री कार्यक्रम की भी शुरूआत हुई।[10] इन कार्यक्रमों के चलते कांग्रेस का प्रयास किसानों तथा मजदूरों को अपनी ओर आकर्षित करना था।

उत्तर प्रदेश में दलित आन्दोलन 1980 के दशक में एक नये दौर से गुजरा जहाँ नेतृत्व बहुजन समाज पार्टी कर रही थी। बहुजन समाज पार्टी एक मजबूत राजनीतिक शक्ति के रूप में उभर कर सामने आयी और उसी समय उत्तर प्रदेश में कांग्रेस का पतन प्रारम्भ हो चुका था। इन्दिरा गॉधी के समय में केन्द्रीय व्यवस्था ज्यादा मजबूत होती गयी साथ ही साथ क्षेत्रीय व्यवस्था कमजोर होती चली गयी। इसका परिणाम यह हुआ कि कांग्रेस के भीतर भी फूट पड़ने लगी और पार्टी के वोट बैंक पर भी काफी नकारात्मक प्रभाव पड़ा। पार्टी पर उच्च वर्ग के लोगों का प्रभुत्व स्थापित था और दलित तथा पिछड़े वर्ग के नेताओं में कुछ गिने-चुने लोग ही थे।

अब दलित समुदाय की स्थिति में पहले की अपेक्षा सुधार होने लगा परन्तु यह सुधार धीरे-धीरे हुआ और कुछ हो क्षेत्रों तक सीमित रहा। हरित क्रांति से कृषि व्यवस्था में सुधार आया और नगरीकरण की गति तेज हुई जिससे निर्माण क्षेत्र के कामगारों के आय में वृद्धि हुई।[11] विभिन्न सामाजिक एवं शैक्षिक परिवर्तनों के कारण दलित वर्ग में एक शिक्षित वर्ग भी तैयार हुआ जो सरकारी नौकरियों में विभिन्न पदों पर भी आसीन हुए।[12] बहुजन समाज पार्टी की शुरूआत ही जमीनी स्तर पर हुई जिसकी विचारधारा और जड़ दोनों मजबूत थी। दलित जातियों पर अत्याचार, आर्थिक रूप से पिछड़ापन और गरीबी ने विभिन्न संगठनों के जन्म का आधार बनी। बहुजन समाज पाटी के संस्थापक कांशीराम जी थे जिन्होंने सन् 1978 में बामसेफ नामक संगठन शुरू किया इस संगठन का प्रारम्भिक उद्देश्य दलितों के साथ हो रहे भेदभाव से उनको मुक्त कराना था। इसके अधिकतर सदस्य शिक्षित थे। संगठन की तमाम गतिविधियों के लिए संगठन के सदस्य ही चंदा इकट्ठा करते थे और स्वयं का भी आर्थिक सहयोग प्रदान करते थे। कांशीराम जी इस संगठन के माध्यम से दलितों को एक नई दिशा देकर समाज की मुख्य धारा के साथ जोड़ना था जिससे उनका सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक विकास सुनिश्चित हो सके और समाज में दलितों की अपनी पहचान बन सके। कांशीराम जी ने दलित आंदोलन की उद्घोषणा 1982 में की और इस आन्दोलन की एक शाखा दलित, शोषित समाज संघर्ष समिति थी।[13] जिसको डी0एस0 फोर के नाम से जाना जाता था। इस संगठन का प्रभाव ग्रामीण स्तर पर व्यापक रूप से था। इन्हीं संगठनों एवं आन्दोलनों के परिणाम के रूप में सन् 1984 में बहुजन समाज पार्टी का गठन हुआ। बहुजन समाज पार्टी दलितों की वास्तविक स्थिति और समस्याओं से भली-भाँति परिचित थी जिसका उसको राजनीतिक लाभ भी प्राप्त हुआ। पार्टी का उद्देश्य सरकार बनाकर दलित हित के लिए कार्य करना था। शुरूआत में दलित नेताों का प्रयास किसी

तरह सत्ता में भागीदारी होना तथा कुछ सुधार तक सीमित रहा। दलित नेताओं द्वारा दलितों की एक अलग पहचान बनाने की कोशिश की गयी और जाति के प्रति उनकी सोच और व्यवहार असमझौतावादी रहा।[14] इनका मुख्य ध्यान मनुवादी लोगों तथा व्यवस्था का विरोध करने पर रहा। ब्राह्मणवादी व्यवस्था का विरोध करना इनकी मुख्य विचारधारा में शामिल था क्योंकि उनका यह मानना था कि सभी आर्थिक व सामाजिक विषमताओं की जड़ तथा जाति आधारित व्यवसाय का कारण ब्राह्ममणवादी व्यवस्था ही है। बहुजन समाज पार्टी ने जाति संघर्ष को तीव्र ढंग से बढ़ावा दिया।[15] बहुजन समाजपार्टी ने कांग्रेस की खूब आलोचना की जिससे उनकी राजनीतिक शक्ति में भी वृद्धि हुई।[16] आलोचना के माध्यम से बहुजन समाज पार्टी की राजनीतिक भूमि और मजबूत होती गयी और दलितों में पार्टी के प्रति विश्वास में बढ़ोत्तरी हुई। प्रदेश के साथ-साथ केन्द्र सरकार की आलोचना करने में बहुजन समाज पार्टी ने कोई कसर न छोड़ी। इसके लिए बहुजन समाज पार्टी ने जातिगत भेदभाव, राजनीतिक भेदभाव, दलितों का शोषण व उत्पीड़न तथा आर्थिक असमानता को मुद्दा बनाया। क्योंकि इन मुद्दों पर सरकार बहुत ज्यादा सफल नहीं दिख रही थी। आजादी मिलने के बाद भी दलितों का समग्र विकास सुनिश्चित नहीं दिख रहा था। बहुजन समाज पार्टी शुरूआत से ही अम्बेडकर के विचारों की पक्षधर थी और संविधान के प्रति उनका विश्वास भी था। उनका मानना था कि धर्म, जाति, भाषा विभिन्न प्रथाएँ दलित जातियों के विकास में मुख्य बाधा थी। बहुजन समाज पार्टी डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के विचार शिक्षित और संगठित होने से सहमत थी।[17] बहुजन समाज पार्टी के स्थापना होने के बाद ही राजनीति में भी अपने प्रत्याशी उतारना प्रारम्भ कर दिया इसी के साथ पार्टी का विस्तार और तेजी से होने लगा। बहुजन समाज पार्टी का मुख्य उद्देश्य सत्ता प्राप्त करके जातीय भेदभाव को खत्म करना था।[18]

निष्कर्षः-

दलित आन्दोलन न केवल उत्तर प्रदेश में बल्कि पूरे देश में आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक परिवर्तन का कारण बना। इसने देश के तमाम कुप्रथाओं का विरोध किया जिससे मानवीय मूल्य उभर कर सामने आये। इस आन्दोलन ने भारत के लोकतांत्रिक मूल्यों को पटल पर लाने का कार्य किया और आम जन मानस को उनके अधिकारो तथा कर्तव्यों के प्रति जागरूक किया। इससे दलित समाज एवं पिछड़ो को सभी प्रकार से लाभान्वित किया। आन्दोलन के माध्यम से जातिगत भेदभाव काफी कम हुआ और दलितों को मुख्यधारा में शामिल होने का अवसर मिला।

संदर्भ ग्रन्थः-

1. सुधा पई-कान्सेप्ट ऑफ सोशल जस्टिस 1998
2. पाल ब्रास-कास्ट फैक्शन एण्ड पार्टी इन उत्तर प्रदेश।
3. आधुनिक भारत का दलित आन्दोलन आर चन्दा, कन्हैयालाल चंचरीक।
4. सुधा पई-कान्सेप्ट ऑफ सोशल जस्टिस 1998
5. उत्तर प्रदेश चुनाव संकलन विधानसभा प्रकाशन, लखनऊ।
6. उत्तर प्रदेश चुनाव संकलन विधानसभा प्रकाशन, लखनऊ।
7. घनश्याम शाह-दलित पॉलीटिक्स राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
8. घनश्याम शाह-दलित पॉलीटिक्स राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
9. घनश्याम शाह-दलित पॉलीटिक्स राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
10. अभय कुमार दूबे-कांशीाम एक आलोचनात्मक अध्ययन, राजकमल प्रकाशन दिल्ली।
11. अभय कुमार दूबे-कांशीाम एक आलोचनात्मक अध्ययन, राजकमल प्रकाशन दिल्ली।
12. पाल ब्रास-कास्ट फैक्शन एण्ड पार्टी इन उत्तर प्रदेश।
13. आम्बेथ राजन-भाई बहुजन समाज पार्टी A.B.C.D.E. प्रकाशन, नई दिल्ली 1996।
14. रजनी कोठारी राइज ऑफ दलित एण्ड रिन्यूड डिवेड आन कास्ट
15. रजनी कोठारी-राइज ऑफ दलित एण्ड रिन्यूड डिवेड आन कास्ट
16. गेल आम्बेड्ट-दलित वीजन्स आरिएंट लांगमेन, नई दिल्ली 1996
17. अमरेश मिश्रा-दलित एग्नशन EPW, 11 Dec, 1993
18. भारत की जनगणना, 1991

मौयोत्तर काल में उद्योग-धंधों का विकास

डॉ० मुकेश कुमार

सीनियर सहायक प्रोफेसर, इतिहास विभाग/मुरारका कॉलेज

रोशनी कुमारी

(शोधार्थी) प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, ति० मॉ० भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

भारत प्राचीन काल से हीं शिल्प कला व उद्योग के लिए विश्व प्रसिद्ध है। भारत में उत्पादित माल विश्व के बजारों में भरे पड़े रहते थे। विश्व में अधिकांश वस्तुओं की आपूर्ति भारतीय बजारों से होता था। खासकर मौर्योत्तर काल में शिल्प कला उद्योग के लिए प्रसिद्ध थे, चाहे वह कपड़ा निर्माण उद्योग हो या धातु निर्माण उद्योग हो। घर-घर में उद्योग कारखना चलता था। अगर कपड़ा उद्योग की चर्चा करे तो कपड़ा निर्माण उद्योग से सम्बंधित कई अन्य तरह के कपड़ा उद्योग जैसे सुत तैयार करने, कपड़ा बुनने, कपड़े को रंगने आदि उद्योग विकसित था। इसकी जानकारी विभिन्न स्त्रोतों मूलत: बौद्ध ग्रंथं, जैन ग्रंथों तथा अन्य साहित्यक ग्रंथों से मिलता है। बौद्ध ग्रंथ 'महावस्तु'[1] से पता चलता है कि राजगृह में 36 विभिन्न प्रकार के शिल्पकार वर्ग रहते थे, जो अपनी कला, हुनर तथा नवाचार के लिए प्रसिद्ध थे। इसी ग्रंथ से यह सूचना मिलता है कि सुरक्षित 25 श्रेणियाँ, 22 श्रेणी महत्तरों एवं शिल्पायतनों की सूची कारीगरी के क्षेत्र में तथा व्यापार के क्षेत्र में काफी प्रगति की थी। अन्य बौद्ध ग्रंथ मिलिन्दपन्हों में 75 प्रकार के व्यवसायों का उल्लेख मिलता है, जिसमें 60 शिल्प उद्योगों से सम्बन्धित थे।[2] जिसमें आभूषण उद्योग, मृदभांड उद्योग, स्वर्णकार, बुनकरों, रंगरेजों, लौहार, हाथी के दाँतों का कारीगीरी करने वाले, बढ़ईकार, जैसे व्यवसाय व शिल्पकार वर्गों के विषय में जानकारी मिलती है। जैन साहित्य 'अंगविज्जा' में विविध प्रकार के काष्ठ उद्योगों जैसे - नाव-जहाज का निर्माण, रथ व बैलगाड़ी के काष्ठ उद्योग का उल्लेख मिलता है। इसके अलावे दर्जी, सुगन्धित तेल, इस्त्र बनाने वाले गंधिक आदि का उल्लेख मिलता है। अभिलेखीय स्त्रोतों से भी सातवाहन और कुषाणकालीन विभिन्न उद्योगों व कारखानों का उल्लेख मिलता है। बौद्ध ग्रंथ मिलिन्दपन्हों, दिव्यावदान, महावस्तु, अवदानशतक तथा ललितविस्तर और मौर्योत्तरकालीन साहित्यों में उस काल के उद्योगों-धंधों की चर्चा मिलता है। इसके अलावे मौर्योत्तरकालीन रचना गाथासप्तशती, बुद्धचरित, सौहरमंद, चरक संहिता, सुश्रुत संहिता प्रथम शताब्दी की रचना अंगविज्जा (कुछ कीमती व्यवसायों व शिल्पों का उल्लेख) विमलसूरी की पुस्तक पउमचरियम, सदधर्म पुण्डरीक आदि कुषाण काल की रचनाओं में तत्कालीन उद्योग-धंधो की चर्चा मिलता है।[3] इस काल में उद्योग-धंधे, कारखाना के विकास का प्रमुख कारण 'श्रेणी' संगठन की स्थापना था, जो अपने-अपने व्यवसायों को अधिक विकसित और उन्नत करने का प्रयास करता था। इस काल में शिल्प कला व उद्योगों के विकास का प्रमुख कारण विदेश व्यापार था। खासकर इस काल में भारत-रोम के बीच विलासिता की वस्तुओं की अत्यधिक माँग के कारण मौर्योत्तर काल में उद्योगों का काफी विकास हुआ। इसके अलावे दैनिक आवश्यकता ने भी विवेच्यकाल में उद्योग-धंधे का भरपूर विकास हुआ। इस काल में विभिन्न उद्योगों का विकास व शिल्प वर्गों का विकास इस प्रकार हुआ है -

कुम्भकार - मिट्टी के पात्रों के निर्माण 'कुलाल' वर्ग करते थे। कुलाल को 'कुम्भकार' भी कहा जाता था। इस वर्ग का मुख्य कार्य मिट्टी के बर्तन, मिट्टी के खिलौना बनाना आदि महत्त्वपूर्ण कार्य था।

तक्षण - तक्षण कला भी मौर्योत्तर काल की काफी विकसित उद्योग था। किसानों के लिए हल की मूढे तथा अन्य भागों का निर्माण करना महत्त्वपूर्ण कार्य था। कृषि की उपज ढोने वाली तथा सवारी के काम आने वाली गाड़ियों, रथ, बैलगाड़ियों का निर्माण तक्षा के भरोसे था। यज्ञ के लिए यूप का भी निर्माण करना, गोलि (घोड़े की पालकी), नाव-पोत, वाघयंत्रों के निर्मात्ता करता था।[4]

अयस्कार - पातंजलि के 'महाभाष्य' में तक्षा के साथ हीं 'अयस्कार' का उल्लेख मिलता है, अयस्कार को लोहार भी कहा जाता है। अयस्कार विविध कृषिगत उपकरणों एवं गृहपयोगी सामग्री के साथ-साथ बैलगाड़ी, रथों के लिए पहिये का रिंग तैयार करता था। मौर्योत्तर काल के लौह निर्मित उपकरण, जैसे - वाणाग्र, भालाग्र, हंसिया, शिकंजा, कांटी, हुक, छेनी, घंटी, गंडासा आदि मिले है। गया से कुषाणकालीन लोहे कांटी, छूरी, भाले का अग्रभाग, कुल्हाड़ियाँ, कटार आदि वस्तुऐं मिली है।[5]

सातवाहनकालीन धातु गलाने की भट्टी तथा धातु मल का साक्ष्य बेसनगर, महेश्वर, नासिक, नेवासा, नावदाटोली से मिले है।[6] खेड़ाडीह की खुदाई से कुषाणकालीन लौह भट्टी, पच्चीस मन धातुमल तथा बहुसंख्यक लौहे के औजार मिले है।[7] इस प्रकार ईसा के आरम्भिक दो-तीन सदियों अर्थात् मौर्योत्तर काल में लौह कृषि औजारों-फावड़ा, हल का फाल, दरांती, खुरपी आदि के निर्माण बड़ी संख्या में हुआ। मथुरा से दूसरी सदी के मिले रथों ओर बैलगाड़ी में लोहे के रिंगयुक्त चक्का का साक्ष्य मिला है। यानि परिवहन और कृषि क्षेत्र में लोहे का प्रयोग वृहत पैमाने पर होने लगा। प्रथम शताब्दी ई० पू० के पाणिनिकृत गंथ 'अष्टाध्यायी' में लौह अयस्कों को गलाने, ढाँलने की समस्त प्रक्रियाओं का उल्लेख किए है। इसके अलावे लोहारों द्वारा प्रयुक्त होने वाले औजारों का उल्लेख मिलता है। वे अपनी रचना में चमडे की घौकनी, अयोधन (हथौरा), कुटिलिक (संडसी), संदशिकी (पकड़ने की चिमटी) आदि का उल्लेख किये हैं।[8] अयस्कार को कुटिलिका (सँड़सी) से पकड़कर लोहे को पीटने के कारण उसे 'कौटिलक' भी कहते थे।[9] लौहार का मुख्य साधन भस्त्रा (धौकनी) जो चर्म की बनी रहती थी।[10] इसी से वह हवा करके अग्नि प्रज्वलित रखता था। इससे भट्टी का तापमान काफी बढ़ जाता था, जिससे लोहा जल्दी गर्म हो जाता था। लोहे को तपाकर वह अयोधन से हथौड़ा पीटता था। दुर्घन और कुटिलिका[11] उसके दूसरे सहायक औजार थे। द० भारत वुड्ज इस्पात के लिए विश्व प्रसिद्ध थे।[12]

धातु निर्माण उद्योग के अन्तर्गत ताँबे और काँसे से संबंधित शिल्पकार वर्ग- ताम्रकुट्टा, त्रपुकारा का उल्लेख करता है। कसकारा आदि शिल्पकार वर्गो का उल्लेख तत्कालिन, बौद्ध, जैन और संस्कृत साहित्यों में मिलता है। इस ग्रंथों के अनुसार ताँबे की धातु को पीटकर विभिन्न प्रकार के आभूषण, मुद्रा, घरेलू बर्त्तन, गृहपयोगी उपकरण बनाये जाते थे।

सुवर्णकार - मौर्योत्तर काल की रचना 'महाभाष्य' में स्वर्णकारों का बार-बार उल्लेख किया है। जैन ग्रंथ 'सुन्दरानन्द' में स्वर्णकार (कनकमिह) एवं उसके द्वारा निर्माण की विविध प्रक्रिया का उल्लेख हुआ है। सुनार की छोटी-छोटी भट्टी होती थी। वह कुटिलिका (सँड़सी) की मदद से भटठी में सोने को तपाता और पीटता था। आवश्यकता अनुसार वह सुवर्ण को एक या अधिक बार तपाता था। सुवर्णकारा सोने के आभूषण, जैसे-गले का हार, सोने की चूड़ियाँ, पाजेब (पायल), कान-नाक के आभूषण आदि का निर्माण करते थे। स्वर्णकार स्वर्ण आभूषण पर अंलकरण करते समय स्वर्ण के महीने तारों में मणियों, रत्नों, मोतियों को जड़ने में पारंगत थे। स्वर्ण के महीन तारों का कपड़े पर कढ़ाई-बुनाई में भी प्रयोग करते थे। महत्वपूर्ण बौद्ध ग्रंथ मिलिन्दपनहों में 75 व्यवसायों में 8 जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण उद्योग व व्यवसाय सोना, चाँदी, सीसा, ताँबा, लोहा, बहुमूल्य पत्थर, रत्न थे।[13] स्वर्ण आभूषण के साथ-साथ स्वर्ण के सिक्के व मुद्रा का निर्माण करना होता था।

कपड़ा उद्योग - मौर्योत्तर काल में घर-घर में सूत काटने की प्रथा थी।[14] कटा हुआ सूत 'तन्तुवाय' को दे दिया जाता था। तन्तुवाय के तुरी वेमा को, जिस पर कपड़ा बुनता था, 'आवाय' कहते थे। तंतुवाय पहले सूत को उतना लम्बा-चौड़ा फैला लेता था, जितना लम्बा-चौड़ा वस्त्र उसे बुनना हो, इसे तंत्र को 'आस्तीर्ण' करना कहते थे। बाद में वह चौड़ाई में सूत पिरोता जाता था। कम्बल की भी बुनाई भी इसी प्रकार होती थी। तन्तुवाय वस्त्रों को बुनने के बाद वस्त्रों को रजक या जुलाहा को दे देते थे। वे वस्त्रों को मसालें से धोते थे, जिसे मटमेले सूत के वस्त्र भी साफ हो जाते थे।

कार्पास (सूती) वस्त्र के अलावे तत्कालिन भारत में रेशम, मलमल, ऊनी कपड़ा आदि का उत्पादन होता था। रेशम वस्त्र को पतंजलि भाष्यकार ने इन्हें 'क्षौम वस्त्र' कहा है। ये क्षुमा से बनते थे। रेशम वस्त्र कोश से उत्पन्न होने के कारण 'कौशेय' भी कहते थे। अर्थशास्त्र में भारतीय रेशम के साथ चीनपट्ट और चीनभूमिज रेशम का भी उल्लेख है।[15] प्रथम शताब्दी ई० सन तक रेशम उद्योग भारत में काफी विकसित हो गया था। देश में बंगाल से दुकूल (सफेद रेशम), असम का क्षौम (रेशम), गुजरात का पघ्त्रोर्णा रेशम, काशी और अंग का 'लिलन' आदि रेशम उत्पादन के लिए प्रसिद्ध थे। प्रथम शताब्दी ई० में अज्ञात नाविक द्वारा लिखी गई 'पेरिप्लस ऑफ द एरिथ्रियन सी' में भारतीय रेशम के व्यापार के विषय में उल्लेख किया गया है। 200 ई० के बीच रोम में निर्यात किए जाने वाले वस्तुओं में से सबसे अधिक रेशमी वस्त्र का होता था। रेशमी वस्त्र का अत्यधिक निर्यात के कारण भारत सिल्क मार्ग में आता था। रेशम के कपड़े सिंध के बन्दरगाह बार्बरिकोन से रोम को निर्यात किया जाता था। फिर भड़ौच के बन्दरगाह से भी निर्यात किया जाता था। काशी और अंग से रेशम गंगा नदी के मुहाने या ब्रह्मपुत्र नदी के रास्ते बंगाल की खाड़ी तक पहुँचते थे, फिर वहाँ से रोम को निर्यात किया जाता था।[16] दक्षिण भारत में अरिकमेडू, कावेरीपट्टनम, उरैयूर रोम को कपड़े निर्यात के लिए प्रसिद्ध थे।[17]

ऊनी वस्त्र - कपड़ा उद्योग के अंतर्गत ऊनी वस्त्र बनाने वालों का एक अलग स्वतंत्र वर्ग थे। पंतजलि के महाभाष्य में कश्मीरी ऊनी धागे, पश्मीना का उल्लेख मिलता है। पश्मीना भेड़ के रोएं से बनाये जाते थे। भूटान और तिब्बत पश्मीना शॉल बनाने के लिए प्रसिद्ध थे। शुंग काल में अवि (भेड़) के रोएं व बाल से बुना ऊनी कपड़ा उत्तम माना जाता था और भेड़ के

रोएं से बुने ऊनी वस्त्र को 'आविक' कहते थे। पतंजलि ने 'कुटप' तथा 'कृष्णभिगीसी' नामक ऊनी शॉल का उल्लेख किया है। इसके अलावे मौर्योत्तर काल में 'रांकव' नामक कंबल की बुनाई होती थी।

रंगाई-छपाई - मौर्योत्तर काल में कपड़ों की रंगाई-छपाई एक अलग उद्योग के रूप में विकसित हुआ था। रंगने वाले को 'रंगरेज' कहा जाता था। पतंजलि के ग्रंथ में अलग-अलग रंगों से रंगे कपड़े का का उल्लेख मिलता है।[18] पाणिनिकृत अष्टाध्यायी में नील पौधे से 'नील' प्राप्त करने की विधि का उल्लेख मिलता है। महाभाष्य से लाख, रोचना कर्दम, हरिद्रा से वस्त्रों को रंगे जाने का उल्लेख मिलता है। 'रोचना' हड़ताल का दूसरा नाम था। तलाब के नीचे से सड़ा हुआ कीचड़ से कर्दम रंग तैयार किया जाता था, इससे रंगे कपड़े कर्दम कहलाते थे। 'पेरिण्लस ऑफ एरिथ्रयन सी' से पता चलता है कि दक्षिण भारत में तंगर (तैर) तथा पैठान (प्रतिष्ठान) कपड़ा रंगने का प्रमुख केन्द्र थे। उर्रयूर, अरिकमेडु, से पहली शताब्दी में निर्मित रंगाई के हौज का साक्ष्य मिलता है।

इसके अलावे कपड़ा उद्योग से सम्बन्धित दर्जी, धोबी (रंगरेज) का उल्लेख मिलता है। ई० स० की प्रथम शताब्दियों में रचित ग्रंथ 'मिलिन्दपन्हों' में सूती धोगों के काटने वाला, रंगरेजों, रंग निर्मिताओं के अलावा वाराणसी, बंगाल के मलमल का उल्लेख किए है। इसके अलावे हाथी दाँत के नक्काशी उद्योग, चमड़ा उद्योग, काँच उद्योग काफी विकास हुआ था। हाथी दाँत के कड़े, चूडियाँ, आभूषण विविध प्रकार के अलंकारी किये वस्तुएँ दर्पण की मुठिया, रथ के अलकरण, तलवार की मुठिया आदि बनाये जाते थे। चर्म्मकार चमड़े को साफ करके धूप में सुखाकर रंगते थे, फिर सीकर जूते, चमड़े की पेटियाँ, रस्सी, चाबुक, छाता, ढौलक के परत, घौकनी इत्यादी बनाते थे।[19] चमड़े के ऐसे थेले बनते थे, जिसमें चावल, फल का रस, तेल, दूध, घी भी रखे जाते थे।[20]

निष्कर्ष - कुल मिलाकर मौर्योत्तर काल में उद्योगों का काफी विकास हुआ था। विश्व के बाजार भारतीय मालों से भरे पड़े होते थे, यानि विश्व के बाजार को तीन-चौथाई वस्तुओं की आपूर्ति भारत में उत्पादित मालों से होती थी। इसका प्रमाण विदेशी यात्रियों के विवरण तथा पेरिप्लस ऑफ इरिथ्रियन सी की रचना आदि से मिलता है। दूसरी शताब्दी के महत्त्वपूर्ण बौद्ध ग्रंथ 'महावस्तु' में 36 प्रकार के शिल्पकार वर्गो का उल्लेख किए है। मिलिन्दपहों में तत्कालीन 75 प्रकार के उद्योगों का उल्लेख मिलता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

1. महावस्तु, सेनार्त (संपा.) तीन खण्ड, पेरिस, 1882-1897, टोंस (अनु.) लंदन, 1949, पृ० 442-43
2. मिलिन्दपन्हों, वी. टेंकार (संपा.) लंदन, 1880, रीज डेविड्स, टी. डब्ल्यू (अनू०), ऑक्सफोर्ड, 1889-1894, पृ० 331
3. ऋतेश कुमार, प्राचीन भारत में व्यापार व्यवस्था: एक सर्वेक्षण, रिसर्च इंडिया प्रेस, 2008, पृ० 15-18
4. पूर्वोक्त
5. वी. पी. सिन्हा और बी. एस. वर्मा, सोनपुर एक्सनेवेंशस (1956-62 ई०) पृ० -10-11
6. सी० मार्गबंधु, आर्कियोलॉजी ऑफ द सातवाहन क्षत्रप टाईम, पृ० 324-25
7. हिमांशु शेखर, प्राचीन भारत में विज्ञान और तकनीक, बीएफसी पब्लिकेशन, पृ० 68
8. गुणाकर मूले, भारतीय विज्ञान की कहानी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पृ० 103
9. महाभाष्य, 4/4/18, (संपा.) प्रभुदयाल अग्निहोत्री, पतंजलिकालीन भारत, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पृ० 313
10. अष्टाध्यायी, 4/4/16, महाभाष्य 4/4/19
11. महाभाष्य, 3/3/82, (संपा.) प्रभुदयाल अग्निहोत्री, पूर्वोक्त, पृ० 314
12. ए. रहमान एंड सुब्बाराथप्पा, ए नोट ऑन द नेटिव मेथर ऑफ आयरन प्रोडक्शन इन साउथ एशिया (सलेम)
13. पी. बी. काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, पृ० 117
14. मोतीचन्द्रा, सार्थवाह, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, पृ० 76
15. आर. के. मुखर्जी, चन्द्रगुप्त मौर्य और उसका काल, पृ० 254
16. मोतीचन्द्रा, पूर्वोक्त, पृ० 260
17. ई. एच. वार्मिंगटन, कामर्स बिटवीन दि रोमन एम्पायर एंड इंडिया, पृ० 9-10
18. प्रभुदयाल अग्निहोत्री, पूर्वोक्त, पृ० 317
19. ऋतेश कुमार, पूर्वोक्त, पृ० - 34
20. अष्टाध्यायी 3/3/123

साहित्यिक सिनेमा और डिजिटल प्लेटफॉर्मः नई सम्भावनाएं

संजीव कुमार

शोधार्थी, हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग, जम्मू केंद्रीय विश्वविद्यालय

डॉ० शशांक शुक्ल

शोध निर्देशक, सह आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय

हिंदी सिनेमा और साहित्य का संबंध गहरा और पुराना है। समय-समय पर साहित्यिक कृतियों ने हिंदी सिनेमा को नई दिशा और गहराई प्रदान की है। यह रिश्ता केवल मनोरंजन तक सीमित नहीं है, बल्कि समाज की गूढ़ सच्चाइयों को उजागर करने और विभिन्न सामाजिक मुद्दों पर जागरूकता फैलाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। साहित्यिक कृतियों पर आधारित हिंदी सिनेमा में नई संभावनाएँ उभरती जा रही हैं, जो न केवल पुराने साहित्यिक कार्यों को नए रूप में प्रस्तुत करती हैं बल्कि दर्शकों के सामने विविध और अद्वितीय दृष्टिकोण भी प्रस्तुत करती हैं। साहित्य और सिनेमा के मिलन का यह सफर साहित्यिक कृतियों के गहराई, जटिलताओं और उनके सामाजिक संदर्भों को आधुनिक रूप में पेश करने की चुनौती और संभावनाओं को उजागर करता है। हिंदी सिनेमा अपनी एक सदी से अधिक की लंबी यात्रा में भारतीय सांस्कृतिक और सामाजिक जीवन का महत्वपूर्ण हिस्सा बन चुका है। यह केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं बल्कि समाज की समस्याओं, विविधताओं और सांस्कृतिक धरोहर की अभिव्यक्ति भी है। ''21वीं सदी में हिंदी सिनेमा ने साहित्यिक कृतियों के साथ नए और प्रयोगात्मक तरीकों से जुड़ने का प्रयास किया है। साहित्यिक सिनेमा, जिसमें साहित्यिक कृतियों, लेखकों और शैलियों का संलग्न होता है, ने हिंदी सिनेमा को नए दृष्टिकोण, प्रयोगात्मक शैलियाँ और सामाजिक मुद्दों की प्रस्तुति के नए अवसर प्रदान किए हैं।''[1] साहित्यिक सिनेमा वह फिल्में हैं जो साहित्यिक कृतियों, लेखकों या साहित्यिक शैलियों से प्रेरित होती हैं। इस सिनेमा का उद्देश्य साहित्यिक अनुभवों, विचारों और शैलीगत तत्वों को दर्शकों तक पहुँचाना होता है। साहित्यिक सिनेमा न केवल साहित्यिक कृतियों का रूपांतरण करता है, बल्कि साहित्यिक अभिव्यक्तियों को नई दृष्टि और आधुनिक तकनीक के साथ प्रस्तुत करता है। हिंदी सिनेमा में साहित्यिक कृतियों का पुनर्निर्माण और उनका आधुनिक रूपांतरण एक नई संभावना प्रस्तुत करता है। यह प्रक्रिया साहित्यिक कृतियों को नए संदर्भ और सांस्कृतिक परिदृश्य में पुनः प्रस्तुत करने का अवसर देती है। 21वीं सदी में हिंदी सिनेमा ने नई साहित्यिक शैलियों और तकनीकों का प्रयोग किया है। ये शैलियाँ और तकनीकें फिल्मों को साहित्यिक अनुभव को और गहरा और प्रभावशाली बनाने में मदद करती हैं।

साहित्य और सिनेमा के बीच का रिश्ता ऐतिहासिक और गहरा है, लेकिन आधुनिक युग में इस संबंध ने नई संभावनाओं को जन्म दिया है। 21वीं सदी में तकनीकी विकास, डिजिटल प्लेटफार्मों की वृद्धि, और वैश्वीकरण के प्रभाव ने साहित्य और सिनेमा दोनों को नए आयाम दिए हैं। इन बदलावों ने साहित्यिक कृतियों के फिल्मांकन और सिनेमा की साहित्य पर प्रभाव को विस्तारित किया है। साहित्य और सिनेमा का पारंपरिक संबंध उपन्यासों, कहानियों और नाटकों के फिल्मी रूपांतरण में देखा जाता रहा है। भारतीय सिनेमा में शरतचंद्र चट्टोपाध्याय, रवींद्रनाथ टैगोर और प्रेमचंद जैसे महान साहित्यकारों की कृतियों को कई बार फिल्मी परदे पर उतारा गया है। सिनेमा ने साहित्यिक कृतियों को एक नया जीवन दिया, उन्हें दृश्य रूप में प्रस्तुत किया, और उन्हें उन दर्शकों तक पहुँचाया, जिनके लिए साहित्य की भाषा या शैली को समझना कठिन था। इसी तरह, साहित्यिक पात्रों, घटनाओं और विचारों को सिनेमा ने अपने तरीके से व्याख्यायित किया, जिससे साहित्य को नई पीढ़ी के साथ जोड़ने में मदद मिली।

हिंदी सिनेमा में साहित्यिक कृतियों का फिल्मी रूपांतरण एक लंबे समय से चला आ रहा परंपरा है। मुंशी प्रेमचंद की 'गोदान' से लेकर हरिवंश राय बच्चन की 'मधुशाला' तक, कई महान साहित्यिक कृतियाँ सिनेमा की दुनिया में प्रवेश कर चुकी हैं। इन रूपांतरणों की प्रक्रिया अक्सर चुनौतियों से भरी रहती है, क्योंकि साहित्यिक कृतियाँ शब्दों की गहराई और जटिलता

को प्रस्तुत करती हैं, जो फिल्म के दृश्य और श्रव्य प्रारूप में अनुवादित करना कठिन हो सकता है। इसके बावजूद, नए समय में सिनेमा ने साहित्यिक कृतियों को नए और प्रयोगात्मक दृष्टिकोण से पेश करने की दिशा में कदम बढ़ाए हैं।

साहित्यिक कृतियों पर आधारित फिल्मों का निर्माण हिंदी सिनेमा में एक लम्बी परंपरा है। चाहे वह शरतचंद्र चट्टोपाध्याय के उपन्यास 'देवदास', 'परीणिता' पर आधारित फिल्में हों, प्रेमचंद के उपन्यास 'गोदान, कर्मभूमि, सेवासदन, गबन' पर बनी फिल्में या फिर रवींद्रनाथ टैगोर की साहित्यिक कृतियों 'चोखेरबाली' पर आधारित सिनेमा हो। इन सभी ने हिंदी सिनेमा को नए आयाम दिए हैं। ये फिल्में न केवल साहित्य को सजीव बनाती हैं, बल्कि समाज के विभिन्न पहलुओं को भी उभारती हैं।

अंतर्राष्ट्रीय साहित्यिक कृतियों का हिंदी सिनेमा में प्रयोग भी एक नई दिशा हो सकती है। उदाहरण के लिए मारियो पूजो के 'द गॉडफादर' पर आधारित फिल्म 'सरकार' ने भारतीय दर्शकों को एक नई कहानी के साथ जोड़ा। विदेशी क्लासिक्स साहित्य को नए परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करना भी एक नई संभावना है। उदाहरण के लिए शेक्सपीयर के नाटक 'मैकबेथ, आथेलो, हैमलेट, रोमियो जूलियट' को 'मकबूल, ओमकारा, हैदर, गोलियों की रास लीला राम लीला' जैसी फिल्मों में प्रस्तुत कर इन्हें भारतीय संदर्भ में ढाला गया है। यह प्रयोग दर्शकों को विदेशी क्लासिक साहित्य से जोड़ने का एक नया तरीका है।''[2]

आज के दौर में, जब सिनेमा तकनीकी और विषयगत दोनों रूपों में विस्तार कर रहा है, साहित्यिक कृतियों पर आधारित फिल्मों की संभावनाएं और भी बढ़ गई हैं। आधुनिक सिनेमा में साहित्यिक कृतियों का प्रयोग नई दृष्टिकोण के साथ हो रहा है। आज के समय के लेखकों के कार्यों पर आधारित फिल्मों की संभावनाएं बढ़ रही हैं। तकनीकी प्रगति के कारण साहित्य और सिनेमा के संबंधों में नई संभावनाओं का उदय हुआ है। डिजिटल प्लेटफॉर्म जैसे नेटफ्लिक्स, अमेजन प्राइम, और डिज्नी+ ने दर्शकों के सामने साहित्यिक कृतियों पर आधारित वेब सीरीज और फिल्में पेश की हैं। इससे सिनेमा और साहित्य के बीच का रिश्ता और भी व्यापक हो गया है। अब दर्शक केवल बड़े परदे तक सीमित नहीं रहे, बल्कि वे अपनी पसंद की कहानियों को किसी भी समय और किसी भी स्थान पर देख सकते हैं।

पारंपरिक फिल्मों के विपरीत, डिजिटल प्लेटफार्मों ने वेब सीरीज के रूप में साहित्यिक कृतियों को पेश किया है, जो एक नई संभावना को उजागर करता है। इस प्रारूप में लेखकों और फिल्म निर्माताओं को अधिक समय मिलता है, जिससे वे उपन्यासों या कहानियों के जटिल पात्रों और घटनाओं को विस्तार से दर्शा सकते हैं। उदाहरण के लिए विक्रम सेठ के ए सूटेबल बाय को वेब सीरीज के रूप में प्रस्तुत किया गया, जिसमें उपन्यास के हर महत्वपूर्ण पहलू को विस्तार से दिखाया गया। वेब सीरीज के इस उभार ने न केवल साहित्यिक कृतियों के फिल्मांकन को नया आयाम दिया है, बल्कि साहित्य को उन दर्शकों तक पहुँचाया है, जो साहित्यिक पाठों में रुचि नहीं रखते थे। इस तरह, साहित्य और सिनेमा का यह नया रूप लोगों के बीच साहित्यिक रुचि को पुनर्जीवित कर रहा है। ''चेतन भगत के उपन्यास '2 स्टेट्स, फाइव पॉइंट समवन, वन नाइट-द कॉल सेंटर, द 3 मिस्टेक्स ऑफ माय लाइफ, हाफ गर्लफ्रेंड पर बनी फिल्में इसकी एक मिसाल है, जो दो अलग-अलग संस्कृतियों के बीच के संबंधों को दर्शाती हैं।''[3] यह फिल्म न केवल मनोरंजन करती हैं, बल्कि भारतीय समाज में विविधताओं और पारंपरिक मूल्यों को भी सामने लाती हैं। साहित्यिक कृतियों पर आधारित सिनेमा न केवल मनोरंजन का साधन है, बल्कि यह समाज के महत्वपूर्ण मुद्दों पर भी प्रकाश डालता है। उदाहरण के लिए 'पिंक' जैसी फिल्में जो महिलाओं के अधिकारों और समाज में उनके प्रति दृष्टिकोण पर आधारित है, साहित्यिक दृष्टिकोण से गहरे समाजशास्त्रीय संदेश देती हैं। ''साहित्यिक कृतियों में अक्सर गहरी सामाजिक और सांस्कृतिक टिप्पणियाँ होती हैं, जो सिनेमा में एक चुनौतीपूर्ण लेकिन प्रेरणादायक तत्व बनती हैं। हिंदी सिनेमा ने इन संदर्भों को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है, जिससे दर्शकों को समाज के विभिन्न पहलुओं को समझने का नया दृष्टिकोण मिला है।''[4] साहित्यिक कृतियों की विविधता को फिल्म में सही ढंग से प्रस्तुत करना एक चुनौतीपूर्ण कार्य हो सकता है, लेकिन इसने सिनेमा में नई संभावनाओं को जन्म दिया है। फिल्मों में साहित्यिक कृतियों की विविधता और अनूठे दृष्टिकोण को उजागर करने के लिए नए प्रयोग किए गए हैं। हिंदी सिनेमा में साहित्यिक कृतियों के सफल फिल्मी रूपांतरण की कुछ प्रमुख फिल्में दर्शकों को नई संभावनाओं का एहसास कराती हैं। इन फिल्मों ने साहित्यिक कृतियों की गहराई और जटिलताओं को एक नया रूप और दृष्टिकोण प्रदान किया है। साहित्यिक सिनेमा ने साहित्यिक कृतियों और सांस्कृतिक विचारों के बीच एक संवाद स्थापित किया है। फिल्में साहित्यिक कृतियों के विषयों और पात्रों को आधुनिक दर्शकों के सामने प्रस्तुत करके सांस्कृतिक बातचीत को प्रोत्साहित करती हैं। साहित्यिक सिनेमा ने सामाजिक मुद्दों को उजागर करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जैसे कि लैंगिक असमानता, जातिवाद और पर्यावरणीय समस्याएँ, जो साहित्यिक कृतियों में अक्सर प्रस्तुत की जाती हैं, फिल्में इन मुद्दों को व्यापक दर्शकों तक पहुंचाती हैं।

21वी सदीं में डिजिटल मीडिया और नई तकनीकों ने हिंदी सिनेमा को साहित्यिक कृतियों के रूपांतरण में नई संभावनाएँ प्रदान की हैं। वेब सीरीज, डिजिटल प्लेटफार्म और हाई-डिफिनिशन कैमरा टेक्नोलॉजी ने साहित्यिक कृतियों को एक नया रूप और विस्तार दिया है। वेब सीरीज ने साहित्यिक कृतियों को एक विस्तृत प्रारूप में प्रस्तुत करने का एक नया रास्ता खोला है। पारंपरिक फिल्म प्रारूप की सीमाओं को पार करते हुए, वेब सीरीज साहित्यिक कृतियों के विभिन्न पहलुओं को गहराई से अन्वेषण करने का अवसर प्रदान करती हैं। उदाहरण के लिए 'पाताललोक' (2020) ने हिंदी साहित्य की गहराई और सामाजिक समस्याओं को एक विस्तृत दृष्टिकोण से पेश किया। राजेश शर्मा की कृति पर आधारित इस वेब सीरीज ने न केवल कथा को विस्तार से प्रस्तुत किया बल्कि सामाजिक मुद्दों और पात्रों की जटिलताओं को भी बारीकी से दर्शाया।

'नेटफ्लिक्स' और 'अमेजन प्राइम' जैसी डिजिटल प्लेटफार्मों ने साहित्यिक सिनेमा को वैश्विक दर्शकों तक पहुँचाने का अवसर प्रदान किया है, जिससे फिल्म निर्माता नई और विविध प्रकार की साहित्यिक कृतियों को प्रस्तुत कर सकते हैं। ''सोशल मीडिया ने साहित्यिक फिल्मों की समीक्षाओं, चर्चाओं और प्रचार को बढ़ावा दिया है, जिससे दर्शकों के बीच साहित्यिक सिनेमा की समझ और रुचि बढ़ी है। डिजिटल युग में वेब सीरीज का प्रचलन बढ़ रहा है। साहित्यिक कृतियों को वेब सीरीज के रूप में प्रस्तुत करना भी एक नई संभावना है।''[5] 'मिर्जापुर' जैसी वेब सीरीज ने अपराध और राजनीति को जिस तरह से प्रस्तुत किया, वह साहित्यिक दृष्टिकोण से बहुत ही प्रभावी है। डिजिटल तकनीक और सोशल मीडिया ने हिंदी साहित्यिक सिनेमा के निर्माण और प्रचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इन तकनीकों का उपयोग करके साहित्यिक चर्चाओं और समीक्षाओं को बढ़ावा दिया जा सकता है और दर्शकों तक साहित्यिक सिनेमा की पहुँच को आसान बनाया जा सकता है। तकनीकी प्रगति के साथ, साहित्यिक कृतियों पर आधारित फिल्मों में भी नई तकनीकों का प्रयोग हो रहा है। ''एनिमेशन, वीएफएक्स और अन्य तकनीकी साधनों का प्रयोग कर साहित्यिक कहानियों को और भी रोचक और प्रभावी बनाया जा रहा है। उदाहरण के लिए, 'बाहुबली' जैसी फिल्मों ने भारतीय पौराणिक कथाओं को नये और अद्‌भुत रूप में प्रस्तुत किया है।''[6] भविष्य में साहित्यिक कृतियों पर आधारित फिल्मों की संभावनाएं और भी व्यापक हो सकती हैं। आजकल के युवा लेखक और फिल्म निर्माता नए और विविधतापूर्ण विषयों पर काम कर रहे हैं, जो हिंदी सिनेमा को एक नई दिशा दे सकते हैं। डिजिटल प्लेटफॉर्म के उदय के साथ, अब सिनेमा के दर्शक भी व्यापक हो गए हैं, जिससे साहित्यिक फिल्मों के लिए अधिक संभावनाएं खुली हैं।

आज के युग में साहित्यिक सिनेमा का विस्तार केवल राष्ट्रीय सीमाओं तक सीमित नहीं है। वैश्वीकरण और इंटरनेट की पहुंच ने साहित्यिक कृतियों पर आधारित फिल्मों और वेब सीरीज को वैश्विक दर्शकों तक पहुंचाया है। उदाहरण के लिए, जापानी लेखक हारुकी मुराकामी की कहानियों और उपन्यासों पर आधारित फिल्में केवल जापान तक सीमित नहीं रहीं, बल्कि उन्हें अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सराहा गया। इसके अतिरिक्त, हिंदी साहित्य पर आधारित फिल्में भी अब वैश्विक मंच पर अपनी पहचान बना रही हैं। प्रेमचंद की कहानियों पर आधारित फिल्में और वेब सीरीज ने अंतरराष्ट्रीय दर्शकों का ध्यान खींचा है, जिससे भारतीय साहित्य को एक नया वैश्विक मंच मिला है। साहित्य और सिनेमा के बीच का संवाद अब केवल साहित्यिक कृतियों के फिल्मांकन तक सीमित नहीं है। सिनेमा भी अब साहित्य को प्रेरित कर रहा है। कई फिल्में और वेब सीरीज ऐसी हैं, जो समकालीन सामाजिक मुद्दों, राजनीतिक घटनाओं, और सांस्कृतिक बदलावों को दर्शा रही हैं। ये फिल्में और सीरीज लेखकों को नई कहानियाँ लिखने के लिए प्रेरित कर रही हैं।

उदाहरण के तौर पर समकालीन राजनीतिक घटनाओं पर आधारित फिल्में और डॉक्युमेंट्रीज ने कई लेखकों को इन विषयों पर उपन्यास और निबंध लिखने के लिए प्रेरित किया है। इस प्रकार, सिनेमा और साहित्य का यह नया संवाद समाज में विचारशील विमर्श को प्रोत्साहित कर रहा है।

साहित्य और सिनेमा के बीच नई संभावनाओं का उभरना एक सकारात्मक दिशा में संकेत करता है। डिजिटल प्लेटफार्मों की वृद्धि, तकनीकी प्रगति, और वैश्विक दर्शकों की रुचि ने साहित्यिक सिनेमा के भविष्य को उज्ज्वल बना दिया है। साहित्य और सिनेमा का यह संबंध दोनों माध्यमों को न केवल समृद्ध कर रहा है, बल्कि समाज में रचनात्मकता, विचारशीलता, और संवाद को भी प्रोत्साहित कर रहा है। इन नई संभावनाओं के साथ, साहित्य और सिनेमा का आपसी जुड़ाव आने वाले वर्षों में और भी महत्वपूर्ण और प्रभावशाली हो सकता है।

हिंदी साहित्यिक सिनेमा में नई संभावनाएँ न केवल साहित्यिक कृतियों के पुनर्निर्माण और रूपांतरण की दिशा में हैं, बल्कि नए साहित्यिक शैलियों, पात्रों और सामाजिक मुद्दों की प्रस्तुति के माध्यम से भी उभर रही हैं। डिजिटल तकनीक, सामाजिक मीडिया और सृजनात्मक दृष्टिकोण ने हिंदी सिनेमा को साहित्यिक अभिव्यक्तियों के नए और प्रभावशाली तरीकों से जोड़ने

का अवसर प्रदान किया है। साहित्यिक सिनेमा की यह यात्रा साहित्य और फिल्म के बीच एक महत्वपूर्ण पुल का कार्य करती है और दर्शकों को साहित्यिक अनुभव के और करीब लाती है। साहित्यिक कृतियों पर आधारित हिंदी सिनेमा में नई संभावनाएँ लगातार उभर रही हैं, जो सिनेमा और साहित्य के बीच एक महत्वपूर्ण संवाद को स्थापित करती हैं। डिजिटल मीडिया, नई तकनीक और आधुनिक दृष्टिकोणों ने साहित्यिक कृतियों को पर्दे पर जीवंत करने की संभावनाओं को बढ़ाया है। यह क्षेत्र एक अद्वितीय और रोमांचक यात्रा का हिस्सा है, जिसमें साहित्य की गहराई और जटिलताओं को एक नई विधि और दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया जा रहा है। हिंदी सिनेमा के इस सफर में साहित्यिक कृतियों के फिल्मी रूपांतरण नई दिशा और संभावनाएँ प्रदान कर रहे हैं, जो दर्शकों को एक नया अनुभव और समझ प्रदान करती हैं। ''साहित्यिक कृतियों पर आधारित हिंदी सिनेमा में नई संभावनाओं का मतलब है कि फिल्म निर्माता अब नई तकनीकों और दृष्टिकोणों के साथ साहित्यिक कृतियों को पर्दे पर जीवंत करने की कोशिश कर रहे हैं। इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि हिंदी सिनेमा साहित्यिक कृतियों पर आधारित नई संभावनाओं का अन्वेषण कर रहा है, जिसमें सांस्कृतिक संदर्भों, संगीत, दृश्य कला और वेब श्रृंखलाओं के माध्यम से साहित्य की गहराई और जटिलताओं को आधुनिक और सृजनात्मक ढंग से प्रस्तुत किया जा रहा है।''[7] साहित्यिक सिनेमा की नई संभावनाओं को आगे बढ़ाने के लिए, फिल्म निर्माताओं को साहित्यिक गहराई, सामाजिक मुद्दों और सांस्कृतिक संदर्भों पर ध्यान देना चाहिए। इसके साथ ही, डिजिटल तकनीक और नवाचार का उपयोग करके सिनेमा को नए और आकर्षक तरीकों से प्रस्तुत करना चाहिए। इस दिशा में किए गए प्रयास हिंदी साहित्यिक सिनेमा की समृद्धि और विकास को सुनिश्चित करेंगे और दर्शकों को एक नया और समृद्ध अनुभव प्रदान करेंगे।

संदर्भ-

1 दास, अनुराग, डिजिटल तकनीक और सोशल मीडिया का साहित्यिक सिनेमा पर प्रभाव, पृ. -26
2 कुमार, अजय, साहित्यिक के ऐतिहासिक पात्रों की पुनरावृत्ति, पृ. -12
3 जैन, रितिका, सामाजिक मुद्दों की प्रस्तुति और साहित्यिक सिनेमा, पृ. -70
4 भाटिया, पूनम, सिनेमा और साहित्य समीक्षा, पृ. -45
5 शंत, रवींद्र, नई तकनीकों और शैलियों का प्रयोग हिंदी सिनेमा में, पृ. -55
6 भाटिया, पूनम, सिनेमा और साहित्य समीक्षा, पृ. -102
7 सिंह, अर्चना, हिंदी सिनेमा में साहित्यिक कृतियों का पुनर्निर्माण, पृ. -88

वर्तमान सन्दर्भ में समकालीन अमूर्तकला की सामाजिक अवधारणा

डॉ० गुरदीप कौर

असिस्टैन्ट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, देशभक्त विश्वविद्यालय, मण्डी गोविन्दगढ़, पंजाब

जेबा बानो

शोधछात्रा, इतिहास विभाग, देशभक्त विश्वविद्यालय, मण्डी गोविन्दगढ़, पंजाब

द्रष्टा को नगण्य मानने की कलाकारों की प्रवृति अतर्कनीय है। कलाकार द्वारा जब कलाकृति को द्रष्टा के अवलोकनार्थ प्रस्तुत किया जाता है, तो स्वाभिविकतया द्रष्टा की कलाकृति विषयक प्रतिक्रिया को जानने के लिये किया जाता है तथा द्रष्टा अपनी प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति भी करता है। अत: कला के सम्बन्ध में द्रष्टा को अस्तित्वहीन नही माना जा सकता है। कलाकार केवल द्रष्टा को मूढ़ समझकर उसकी मौन सहमति को प्राप्त नही कर सकता हैं? इससे कला का श्रेष्ठत्व की हानि हो सकती है।

सर्वसाधारण द्रष्टा की मनोवृति 'नूतनरूप'=नवीनकला के प्रति सन्देहग्रस्त रहती है; किन्तु इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं हो सकता कि उसमें सौन्दर्यदृष्टि या रसग्रहण-क्षमता का अभाव है। द्रष्टा सदैव नूतनकलाकृति को अपनी पूर्वकल्पना अथवा अपने जीवन से सम्बन्धित ही देखना चाहता है और उसकी यह प्रवृति मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुकूल है। किसी भी 'नवीनविचार' अथवा 'नवीनकार्य' को परीक्षण के उपरान्त ही स्वीकार किया जा सकता है।[1]

एक उदासीन व्यक्ति आधुनिक वस्तुनिरपेक्ष कृतियों को तथा दैनन्दिन (दैनिक) उपयोग की वस्तुओं को आधुनिक रूप में ही देखना पसन्द करता है; किन्तु रङ्गों अथवा आकारों की रचना को विशुद्ध रूप में स्वीकार करने में उसको कठिनाई होती है; क्योंकि किसी भी कृति को जीवन से पृथक् रूप में देखने का वह आदि नहीं होता है और वह समझता है कि उस कृति का कुछ प्रयोजन है। संसार परिवर्तनशील है; अत: प्रत्येक सामाजिक मनुष्य परिर्वतन चाहता है जि कि एक स्वाभाविक मानवीय प्रवृत्ति भी है, किन्तु उसकी इच्छा होती है कि उस परिवर्तन पर अपनी सङ्कल्पना व स्व-व्यक्तित्व की छाप हो। इस द्विधात्मक मनस्स्थिति से बाहर निकलने का कार्य सामाजिक मनोविज्ञान का परिचय तथा समसामयिक तत्त्व करते हैं व अन्त में उत्तम एवं सत्य कला को द्रष्टा स्वीकृत कर लेता है।[2]

समकालीन कला की अपनी विभिन्न भूमिकाऐं रही हैं। इन विभिन्न भूमिकाओं में से एक है उसकी जोडने वाली वह भूमिका जो जन सामान्य को एक-दूसरे से जोड़ती है। विस्तीर्ण राष्ट्र, समाज तथा संस्कृतियों को जोड़ने के लिये उनके मध्य एक सेतु का निर्माण करती है। किसी राष्ट्र व समाज को अपनी विशिष्ट पहचान भी देती है और एतद् विषयक कतिपय अवधारणाओं को उनके कुछ मानवीय और कला मूल्यों की चर्चा करती है। अपनी निश्चित परम्पराऐं भी बनाती है और इस प्रकार अतित वर्तमान और भविष्य को जोड़ने का भी कार्य करती है।[3] कला अपने सम्बन्धित मानवीय समुदाय की आनुवांशिक-जलवायु, आर्थिक तथा सामाजिक-मान्यताओं से प्रभावित होती है। कलाकार समाज से ही सब कुछ प्राप्त करता है तथा उन पर कला के माध्यम से अपने व्यक्तित्व की अमिट छाप लगा देता है। डॉ. ममता चतुर्वेदी अपने ग्रन्थ 'सौन्दर्यशास्त्र' में ऐतिह्यविद् रीत का मन्तव्य प्रस्तुत करते हुए लिखती हैं कि "कला तथा समाज के सम्बन्ध में कोई प्रश्न उठना ही नहीं चाहिए। यदि कला और समाज में कोई सम्बन्ध नहीं होता तो भिन्न-भिन्न युगों की कलाकृतियों में तारतम्यता तथा परिवर्तन नहीं होते। कला संग्रहालयों में नहीं अपितु हमारे चारों और विकीर्ण है; जिसे हम जीवन से पृथक् नहीं कर सकते है।"[4]

वस्तुनिरपेक्ष आकारों की प्रखरता, कोमलता, गति व स्थायित्व, वैभवता इत्यादि गुण होते है जो साहचर्य से द्रष्टा के मन में प्रभावोत्पादकता को उत्पन्न करते हैं। किसी व्यक्ति को देखकर प्रेम, घृणा, भय, स्नेह, करूणा आदि के जो भाव उत्पन्न होते हैं वे उस व्यक्ति की कृति एवं विचारों के अतिरिक्त उसके बाह्यरूप पर बहुत निर्भर करते हैं। यह अनुभवजन्य मनोवैज्ञानिक सत्य है। अत: रूप व अभिव्यक्ति के पृथक् अस्तित्व को कैसे माना जा सकता है? कोई भी वस्तु सजीव हो या निर्जीव, उसके

रूप का एक भावनात्मक पक्ष होता है। इसलिए भारतीय ऐतिह्यदर्शन में दोनों को समान रूप से अज्ञात शक्ति का निवास माना जाता है।

आकृतिमूलक और अमूर्तकला विषयक कार्य आदिकाल से वर्तमान काल पर्यन्त गतिमान् है, जिसमें कि परिवर्तनशील समाज में गुण तथा दोष दृग्गोचर होते रहें हैं। समकालीन अमूर्तकला ने उत्कर्ष एवम् अपकर्ष का भी सामना किया है। अत: कहा जा सकता बहै कि अमूर्तकला अत्यन्त सरल भी है और अत्यन्त कठिन भी। सरल उस कलाकार के लिए है जो उक्त कला की आत्मा को सम्यकतया नहीं समझ पाता और कठिन उसके लिए जो इसकी आत्मा को सम्यकतया समझ पाता है। यही स्थिति 'आकृतिमूलककला' की भी है। उस कलाकार के लिए यह अत्यन्त सरल है; जो अतीत में की गयी उत्कृष्ट कलाकृतियों की मात्र नकल करना चाहता है और ऐसे कलाकार के लिए यह अत्यन्त कठिन कार्य है जो 'आकृतिमूलककला' में लोकोक्तियों के बल पर वह सब कुछ कहना चाहता हो, जो पहले कभी नहीं कहा गया।

'आकृतिमूलक' और 'अमूर्त' दोनों प्रकार की कलाओं में अत्यन्त सृजनात्मकता होती है। कलाकार आन्तरिक एकता और अनुशासन से ही इसकी सिद्धी कर सकता है। ऐतिह्यविद् ब्रांकुशी के अनुसार "ईश्वर की भांति सृजन करो, सम्राट की तरह शासन करो और गुलाम की तरह काम करों।"[5] ब्रिटेन के प्रसिद्ध कला विचारक रस्किन ने अपने विचारों को अभिव्यक्त करते हुए कहा था कि "कला को प्रधान रूप से विचारों तथा भावों की वाहिका के रूप में सामाजिक माध्यम माना है और सौन्दर्य का नैतिकता से सम्बन्ध अनिवार्य स्थिर किया है। सहस्त्रों वर्ष से अगणित हृदय सभी कलाकृतियों के आनन्द का अनुभव करते आ रहे है।"[6]

वस्तुत: कला ने ही मानव का संस्कार किया उसे पशुप्रवृत्ति से पृथक् किया तथा वह सौन्दर्यबोध कराया जिसके कारण मनुष्य ने इस सुन्दर एवं सुव्यवस्थित जगत् की रचना कर डाली। ये दीर्घकाय नगर, ये सुन्दर एवं सुव्यवस्थित आवास, ये अनेक प्रवृतियाँ मनुष्य के कलात्मक उन्नयन की प्रतीक है और इन्ही प्रतीकों के कारण मनुष्य को क्रमश: सांस्कृतिकबोध होता गया हैं। निरन्तर मानवीय समाज को स्व-संस्कृति एवं ऐतिह्यकला के माध्यम से ही बोध होता रहेगा। हमारे वस्त्रों की विभिन्न रूपरेखा, आभूषणों के नाना आकार तथा प्रत्येक उपयोगी वस्तु का भव्य रूप कला ने ही हमको दिया हैं। सभी वस्तुयएँ कला की देन हैं। उनके सुन्दर आकार-प्रकारों में कला सन्निहित है। कला न होती तो मनुष्य गिरि-कन्दराओं में रहता वृक्ष की छाल शरीर पर लपेटता चारों हाथ पैरों से चलता रहता। क्षुधा-निवृति के पश्चात् मनुष्य जो कुछ करता है वह कला की ही उपसना के अज्ञात उपादान है, जो परम्परा से विकसित होते चले आये है। जहाँ भी दृष्टिपात कला के विभिन्न रूप विभिन्न भेद ही दृग्गोचर होते हैं।[7]

कला कहाँ नहीं है। प्रत्येक स्थान पर हमें कला के साथ रहना पढ़ता है। कला के विभिन्न नाम, भेद या शैलियां हो सकती है; परन्तु मानवसमाज में कला इस प्रकार सम्बद्ध है, कि हम उसे पूर्णरूपेण समाज से पृथक् रखकर नहीं देख सकते।

समकालीन अमूर्त कला को वर्तमान समाज समझता है। उसकी अवधारणाएँ पृथक-पृथक् हो सकती है; परन्तु अमूर्तकला में छिपा सौन्दर्यबोध सामाजिक-आकारों से ओत-प्रोत रूप सभी सामाजिक विचारों के समीप ही तो है। जनश्रुति है कि कला समाज का दर्पण होती है; अमूर्त कला भी तो समाज से ही उपजी है यहाँ के विभिन्न प्रकार के रंग विभिन्न आकारों की वस्तुएं सम्पूर्ण सृष्टि में उतार-चढ़ाव, ऊचाई, लम्बाई, चौड़ाई एवं गहराई आदि के विचारों से कलाकार निश्चित रूप से प्रभावित होता होगा। साथ ही सम्पूर्ण बह्माण्ड में मौजूद अनेको प्रकार के टेक्सचर ये सभी तो अमूर्त कला के लिए सहायक रहे होगे, इन्हीं को नये विचारों के साथ कलाकार ने उकेरा होगा।

किसी भी वस्तु को पहचानने में सबसे पहले रंग ही हमारें सहयोगी होते है। नहीं तो हमे इतनी शीघ्रता से मालूम नहीं पड़ सकता की यह क्या है? इन रंगों से ही संसार इतना सुन्दर है कि रंगों को हम सदैव अपने समक्ष देखते है, रंग बिना दृष्टि के भी महसुस किये जा सकते हमारी कल्पना द्वारा रंगों में इतना बल, प्रकाश, गति एवम् ऊर्जा है जिसे हम महसुस कर सकते है देख सकते है, अनुभवजन्य लोग भी लाभ प्राप्त कर सकते है यह रंगों की माया ही तो है। रंगों की माया में हर रंग कुछ बोलता है, उनकी अपनी भाषा है, उनकी अपनी ऊर्जा उनका अपना गुण है और इन सभी कारणों से ही हम रंगों की बात करते हैं।

भारत के अमूर्तवादि चित्रकारों में सबसे अग्रणी एस.एच. रजा के अनुसार रंगों के अपने शब्द होते है और ऊन शब्दों में विस्फोट करने जैसी शक्ति होती है। शुन्य से दिखने वाले रंग के बिन्दु में भी अथाह शक्ति होती है।[8]

उपरोक्त इन्हीं अनेको कारणों को ध्यान में रखकर देखा जाये तो समकालीन अमूर्तकला का विकास भी ऐसे रंगों, रेखाओं, आकारों द्वारा ही तो हुआ है; जिसे हम देखते है, पहनते है, खाते है, पिते है। एक शोध में पाया गया है कि गुलाबी रंग के पेक में पैस्ट्री जैसी वस्तुएँ अधिक स्वादिष्ट लगती है। मान जाता है कि लाल रंग में अधिक उष्णता प्रतीत होती है और निले रंग में शीतलता। क्या इन सबको समाज नहीं पहचानता? तो अमूर्तकला को भी समाज पहचानता है आवश्यकता अनुसार उसमें से कुछ खोजने का प्रयास करता है।

इस प्रकार जब से समाज का अस्तित्व है तभी से ही कलाकार और कला का अस्तित्व है, कलाकार आपस में भी एक दूसरे की विशेषताओं से प्रभावित होते है अत: कलासृष्टि कलाकारों के सहयोग से होने वाली सृष्टि है।[9]

कलाकार जिस युग में आविभूर्त होता है उस युग का चित्र स्वत: ही उसकी कृतियों में झांकने लगता है। इच्छा होने पर भी वह अपने समय के प्रभाव से मुक्त नहीं रह सकता क्योंकि कलाकार का निर्माण उसके समकालीन युग की परिस्थितियों से ही होता है और प्रत्येक युग में कलाकार इन परिस्थितियों से उत्पन्न समस्याओं का समाधान ही अपनी रचना में प्रस्तुत करता है। हम जिस मानव समूह में रहते है उसका सामाजिक वातावरण हमें प्रभावित करता है;[10] किन्तु केवल सामाजिक आधार और उद्देश्य ही कला का उद्देश्य नहीं। कलाकार सामाजिक विषय-वस्तु से प्रेरित होता है पर उसे मूल भूत मानवीय मूल्य और अनुभव प्रदान कर सार्वभौम बनाता है।[11] इस प्रकार कलाकार औसत से हट कर पूर्ण की ओर बढ़ता है। इससे उसकी कृति सुन्दरता की अपेक्षा अनुकरणीय बन जाती है।[12]

समकालीन अमूर्तकला भी इसी समाज की देन है। इसी समाज के कलाकारों की कृति है। यदि समाज कला को जानता है, उसे पसन्द करता है, तो निश्चित ही वह अमूर्तकला को भी समझने का प्रयत्न करता है; क्योंकि किसी भी नये विचारों को ग्रहण करने में कठिनाई होती है। उसे समय की कसौटी पर खरा उतरना होता है। वर्तमान समय समकालीन अमूर्तकला का भी समय है। अन्य कलाशैलियों अथवा समसामियीक कलाशैलियों में अमूर्तकला भी समय के साथ विकास की ओर अग्रसर है नहीं तो इसका नाम भी सामने नहीं आता है।

कला व्यापक है केवल चित्र संगीत व मूर्तिकला ही कला नहीं है। स्वर, शब्द, रंग, रेखा, आकार, आयाम, सज्जा अलंकार आदि सभी में अपनी सम्पूर्ण रूप सम्पदा तथा रूपविधान को लेकर कला प्रकट होती है अन्तर केवल माध्यम का है।[13]

अमूर्त कला भी सृजनात्मक ही है, अज्ञात सृजन किसी विषयवस्तु, कहानी, प्रकृति आदि के चित्रण में जितनी सृजनात्मक सम्भावनाएँ होती है। सम्भवत: अमूर्तकला में उनसे कम नहीं होती। यहाँ पर किसी कलाशैली की तुलना नहीं की जा रही, अपितु बिना किसी विषयवस्तु के रचना करना और उसे किसी अन्य के भावों को प्रभावित करने की शक्ति उसमें उत्पन्न करना आसान काम नहीं।

सभी आर्ट या चित्रों में से अमूर्त पेन्टिंग सबसे कठिन है यह मांग है कि आप जानते है कि कैसे अच्छी तरह से आकर्षित करने के लिए, रचना के लिए और रंग के लिए एक संवेदनशीलता है। समकालीन अमूर्तकला का काम लोकप्रिय होता जा रहा है। वर्तमान में जिस कलाशैली व कला-आन्दोलन संसार की पूरी पीढ़ी को शुद्ध व्यक्तित्वपूर्ण-शैली में कार्य करने को प्रेरित किया वह अमूर्तकला के नाम से जानी जाती है।[14] अमूर्तकला कलाकारों के लिए एक बड़ा आन्दोलन है। यह सृजनात्मकता का आन्दोलन है। अज्ञात को जानने का, जो नहीं है उसे प्रकट करने का वो भी बिना किसी बनावटी भाषा के केवल रंग और रेखाओं द्वारा सभी मानवीय भावों को प्रकट करने का आन्दोलन है। इन सबको समाज ने मान्यता दी भी है; क्योंकि कलादिर्घाओं में होने वाली प्रदर्शनियों में अमूर्तकला चर्चा का विषय रही है। भारतीय कला परिदृश्य को देखने पर ज्ञात होता है कि अमूर्तवादि चित्रकारों की कला की मान्यता न केवल भारत अपितु विदेशों में भी होती है। यदि हम वर्तमान के प्रमुख चित्रकारों की बात करें तो अमूर्तवादि कलाकार भी पहली पङ्क्ति में होंगे अर्थात् उनका भी वही स्थान है जो अन्य कलाशैलियों के कलाकारों का और यह न केवल भारत में हो रहा है अपितु यह विदेशों में भी है। अमूर्तकला के इस क्षेत्र को एक व्यापक विस्तार मिला है।[15]

वस्तुनिरपेक्ष कलाकृति से आनन्द उठाने के लिये हमको उसे स्वतन्त्र कलाकृति के रूप में देखना चाहिये। उससे सादृश्य, विचार, जागृति, उपयोग या संदेश की अपेक्षा नहीं करनी चाहिये।[16]वस्तुत: वस्तुनिरपेक्ष या अमूर्तकला स्वतन्त्र कला है। उसमें किसी विषयवस्तु को खोजना या कोई किस्से-कहानी को खोजना कला की स्वतन्त्रता में बाधक है। कला मनुष्य की भावनाओं, विचारों और विश्वासों को रेखा और रंग के माध्यम से अभिव्यक्त करने को उसकी आकांक्षा है और इतिहास हमें बताता है कि यह उसने स्वयं को अक्षरों और शब्दों द्वारा अभिव्यक्त करने से पहले किया। अब हम ऐसी स्थिति में आ पहुँचे है जब

कला को अनुभव करने की अपेक्षा उसका अध्ययन करना है।[17] कलावादी जीवन को एक कला मानते थे। उनके अनुसार यदि कलात्मक मूल्यों के आधार पर जीवन व्यतीत किया जाये तो अधिक सरस एवं आनन्दप्रद होगा।[18]

विश्व की इस अनन्त सृष्टि के समान ही कला भी आनन्द का ही प्रकाश है।[19] जो कल्याणकारी है, वह सुन्दर से भी सम्बन्धित है। प्राचीन यूनानी शब्द 'कालोन' से 'सौन्दर्य' तथा 'नैतिक सज्जनता' दोनों ही अर्थ निकलते है।[20] वस्तुनिरपेक्ष कलाकृति के सौन्दर्यग्रहण में अनभिज्ञ द्रष्टा कठिनाई महसूस करता है। यद्यपि उपयोग की वस्तुओं, वस्त्रों, आभूषणों आदि को आकर्षक अथवा उन्नत बनाने के लिये वह सुन्दर रंग संगतियों व वस्तुनिरपेक्ष आकारों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग करता है।[21]

वर्तमान में तो वस्त्रों, भवनों, वस्तुओं में से भी फूल-पत्तियों की जगह वस्तुनिरपेक्ष आकारों का अधिकाधिक उपयोग हो रहा है। अत: हम यह मान सकते है कि हमारा समाज अमूर्तकला के प्रति कितना भी अनभिज्ञ रहे, परन्तु उन अज्ञात आकारों का उपयोग करता ही है; क्योंकि ये सब कला के ही रूप है। कलावादियों के अनुसार कलाकार सुन्दर वस्तुओं का सृष्टा है। उनके अनुसार यदि कोई कलाकार किसी वस्तु को सौन्दर्य की दृष्टि से नहीं देखता तो वह कलाकार नहीं है।[22]

कलाकारों को मानव कल्याण से सम्बन्धित मानने में टाल्सटॉय अपने नैतिक दृष्टि-कोण के लिए प्रसिद्ध है। उनके विचार से धर्म तथा बुद्धि का उदय ही कला की कसौटी है और नैतिक विवेक जागृत करने वाली कला ही श्रेष्ठ है रस्किन ने कला के द्वारा 'धर्म', 'अर्थ', 'काम' तथा 'मोक्ष' की सिद्धी में ही विश्वास प्रकट किया है।

भारतीय विचारको ने भी कलाओं के धार्मिक एवम् आध्यात्मिकपक्ष पर बहुत बल दिया है। चित्र सूत्र में कहा गया है कि कला 'धर्म', 'अर्थ', 'काम' तथा 'मोक्ष' चारों पुरुषार्थ प्रदान करने वाली होती है।[23] मनोविज्ञान जिस प्रकार हमारे मन के रहस्यों को सुलझाने का प्रयत्न करता है उसी प्रकार कलासृष्टि और कला आस्वादन के मन से सम्बन्धित रहस्यों को भी सुलझाने का प्रयत्न करता है। धर्म और कला दोनों ही मनुष्य के भावी जीवन को सुधारने और आकांक्षाओं को पूरा करने के लिये इस संसार को श्रेष्ठतर रूप में कल्पित करते है और जीवन को व्यवस्थित तथा संगतिपूर्ण बनाते है।[24] इस प्रकार धर्म और कला की प्रक्रिया एक समान है।[25] कला समाज के लिए परम आवश्यक है। यह समाज के प्रत्येक व्यक्ति की आधारभूत आवश्यकता को पूर्ण करने का उचित मार्ग है।[26]

प्रसिद्ध कलाविद् 'रेनह्वाग' का मन्तव्य है कि "कई लोग कला को केवल मनोरंजन का विषय मानते है। एक ऐसी वस्तु जो जीवन से अलग हो।" वास्तव में वे नहीं जानते की कला सीधे जीवन के तले में घुसकर देखती है और उसके रहस्य की पर्ते उखाड़ फेकती है। कला के अतिरिक्त कोई ऐसा माध्यम नहीं जो जीवन को भेदकर उसके मूल को प्रस्तुत कर सके। भारतीय कला का भी यही आदर्श रहा है। मनोरंजन अथवा नेत्रों का विलास इसका लक्ष्य कभी भी नहीं रहा। विश्लेषण एवं अन्तर-उद्बोधन की भारतीय कला में अपूर्व क्षमता रही है।[27]

समकालीन अमूर्तकला के प्रति वर्तमान जनमानस की सामयिक अवधारणा ये रही है कि जो समझ में न आये वह अमूर्तकला है। वास्तव में यह बात कुछ हद तक ठिक भी हो सकती है; क्योंकि उसके विचार अमूर्त है। जो समझ में आना इतना ही कठिन है जितना किसी वृक्ष को देखने के बाद उसके बिज को देखना कलाकार अपने विचारों को स्वतन्त्र रूप से सोचता है इसलिए वह अज्ञात से लगने लगते है। अमूर्तकला में कलाकार अपने आकारों में कलात्मक रंगों की अभिव्यक्ति करता है। उसके आकार भी यहीं के बनाये हुए है, रंग भी यही के है और उसकी प्रस्तुति भी यही के लिए है; तो अमूर्त कभी भी समाज से अलग नहीं है। अमूर्तकला में अपने व रंगों के भावों को कलाकार किसी भी बात को सिधे न लिखकर वह रंगों एवं रेखाओं द्वारा अज्ञात सौन्दर्य सृष्टि की रचना करता है, जो हमे अमूर्त सी लगने गलती है क्योंकि वह अमूर्त विचारों एवं वस्तुनिरपेक्ष आकारों का शुद्ध रूप है।

निष्कर्षत: अमूर्तकला के विचार को बुद्धिजीवी वर्ग जल्दी पढ़ सकता है क्योंकि अमूर्तकला का जन्म नई बात हो सकती है परन्तु वह हमारे साथ हमेशा से मौजुद रही है। बस उसे हम अलग दृष्टि से देखने का प्रयास नहीं करते। अमूर्तकला हमारे ज्ञानकोश का पहला अक्षर एवं हमारे शब्दों का पहला स्वर, हमारी आवाजों में पहली ध्वनी थी। वर्तमान में अमूर्त कला चर्चा का, आकारों का, विचारों का, सृजन का विषय है। शायद अमूर्तकला की पहचान न होती तो समाज में इतना सृजन भी न होता। बिना किसी विषय वस्तु बिना किसी किस्से कहानियों के बिना किसी बनावटी भाषा के भी सृजन हो सकता है। समाज को शुद्ध कला द्वारा सुन्दर से सुन्दर बनाया जा सकता है। ये सब हुआ केवल रंग, रेखाओं तथा कलाकारों द्वारा।

संदर्भ-

1. आधुनिक चित्र कला का इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 1999 पृ. 333
2. आधुनिक चित्र कला का इतिहास, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर 1999 पृ. 334
3. शेष हेमन्त भारतीय कला रूप पृ. 52
4. चतुर्वेदी डॉ. ममता "सौन्दर्यशास्त्र" राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर 1997 पृ. 135
5. रमन ए. एम. "समकालीन कला" ललित कला अकादमी पत्रिका मई 1986 संख्या 6 पृ. 5
6. Christopher Caudwell I, II Vision and Reality Page 28
7. विजयवर्गीय रामगोपाल "संस्कृति और कला उत्कृर्ष प्रतिष्ठान अंक 2 2 अप्रेल 2001
8. अमूर्तकला का लोकपक्ष: एक विवेचनात्मक अध्ययन, अध्याय - 02, पृष्ठ - 78 अप्रकाशित शोधप्रबन्ध, गुरुकुल काङ्गड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।
9. Patrick D. Delong: Art in the Humanities Page 72
10. Johan Mackenzie: A Manval of ethies Page 45
11. राय नीहार रंजन: भारतीय कला के आयाम पृ. 146, 49
12. A Richards: Principles of literary criticism Page 190
13. चतुर्वेदी डॉ. ममता "सौन्दर्यशास्त्र राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर 1997 पृ. 105
14. उपाध्याय डॉ. विद्यासागर "राजस्थान के रंग जवाहर कला केन्द्र एवं राजस्थान ललित कला अकादमी जयपुर प्रस्तावना से गृहीतघ
15. Articles – Abstract Art or Painting work indian artists 683671
16. कला के अन्त: दर्शन राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर 2004 पृ. 69
17. चौधरी शंखो, पूर्व त्रयवार्षिक कैटलाग समीक्षा पृ. 103
18. चतुर्वेदी डॉ. ममता "सौन्दर्यशास्त्र" राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर 1997 पृ. 103
19. जोशी इलाचन्द "कला और नीती साहित्य सर्जना पृ. 22
20. R.G. Collin good: Principles Art Page 38
21. कला के अन्त: दर्शन राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर 2004 पृ. 13
22. चतुर्वेदी डॉ. ममता "सौन्दर्यशास्त्र" राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर 1997 पृ. 103
23. कलानां प्रवंर चित्र धर्मार्थ काममोक्षदम। चित्रसूत्र - 40/38
24. Religion and Art, Encyclopedia of Art by Runes & Schickel New Yark 1946
25. S.L. Jarrett : The Quest for Beauty, Page : 284
26. Ozenfant : Foundations of modern art : Page 184
27. भारतीय चित्र कला का इतिहास महाराजा भूपाल कालेज, उदयपुर 1980 पृ. 13

प्राचीन ज्ञान परम्पराः कला एवं संस्कृति

डॉ० वाणीश्री बुग्गी

सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, माउंट कार्मल महाविद्यालय (स्वायत्त), बेंगलुरु, कर्नाटक (भारत)

सारांश

प्राचीन ज्ञान परम्परा एक समृद्ध एवं विस्तृत बौद्धिक विरासत है। वेद, पुराण, उपनिषद, ब्राह्मण ग्रंथ, योग, आयुर्वेद, ज्योतिष, महाभारत, श्रीमद् भगवद्गीता, रामायण दर्शन, कला एवं संस्कृति आदि प्राचीन ज्ञान परम्परा के स्रोत हैं। भारतीय संस्कृति एवं कला आदि का तथा ज्ञान परम्परा का अत्यन्त गहरा सम्बन्ध है। भारतीय ज्ञान परम्परा का समाज के लिए महत्वपूर्ण योगदान है। हमारे भारतीय दर्शनों में भी जीवन मूल्यों को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्रदत्त है। योग तथा ध्यान धारणा (तपस्या करने की क्रिया) भारतीय संस्कृति की समाजोपयोगी देन है। वैदिक साहित्य प्राचीन ज्ञान परम्परा का सर्वाधिक प्राचीन स्रोत है। प्राचीन ज्ञान परम्परा आज के वैज्ञानिक युग में भी मानव जीवन एवं समाज को केवल दिशा निर्देश करने वाली ही नहीं बल्कि एक सशक्त आधार शिला है। भारतीय संस्कृति में धर्म, कला, साहित्य, विज्ञान एवं अध्यात्म का एक सन्तुलित समन्वय दृष्टिगोचर होता है।

हमारे देश भारतवर्ष की प्राचीन सभ्यता को सिन्धु घाटी सभ्यता के नाम से जाना जाता है। इस सभ्यता का अनुमानित समय (कुछ विद्वत्जनों के अनुसार प्रमाणित समय) 3500 ई. पूर्व से 2500 ई. पूर्व तक माना गया है।

बीज शब्द- संस्कृति, ग्रंथ, ज्ञान, प्राचीन, स्रोत, सभ्यता, सत्य, अहिंसा, पारलौकिक, वस्तु-विनिमय, आत्मतत्त्व, बोध, वसुधैव कुटुम्बकं तथा शैली आदि।

प्राचीन ज्ञान परम्परा

भारतीय संस्कृति में चतुष्पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के समस्त मानव जीवन कार्य व्यापार संचालित होते थे। प्राचीन भारत की अर्थ व्यवस्था अत्यन्त सुदृढ़ थी, जिसका आधार भारतवर्ष की सनातन संस्कृति थी। हमारे धार्मिक ग्रंथों में सत्य अहिंसा तथा त्याग आदि को परम धर्म माना गया है। हमारी श्रीमद्भगवद् गीता निष्काम कर्म, धर्म तथा न्याय को प्रतिपादित करती है। इतना ही नहीं हमारे धार्मिक ग्रंथों में प्रेम, करुणा तथा क्षमा आदि का भी विशेष महत्व बताया गया है। इसी से मानवीय मूल्यों का निर्धारण होता है।

> ''वैदिक साहित्य प्राचीन ज्ञान परम्परा का सर्वाधिक प्राचीन स्रोत है। इसमें चार वेद (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद) सम्मिलित हैं। वेदों में देवताओं की स्तुति, यज्ञों के मंत्र तथा प्रकृति के साथ-ही-साथ प्राकृतिक घटनाओं (प्रलय एवं सृष्टि) का भी उल्लेख प्राप्त होता है। उपनिषदों में आत्मा, ब्रह्म एवं जीवन के गूढ़ रहस्यों का उल्लेख मिलता है।''[1]

प्राचीन ज्ञान परम्परा अद्वितीय ज्ञान एवं प्रज्ञा का प्रतीक है। इसमें ज्ञान-विज्ञान, लौकिक-पारलौकिक, कर्म-धर्म, योग-आयुर्वेद तथा भोग एवं त्याग के अद्भुत समन्वय के साथ-ही-साथ धार्मिक ज्ञान, आध्यात्मिक ज्ञान, गणित, विज्ञान खगोल शास्त्र, दर्शन, राजनीति तथा न्याय शास्त्रों का अध्ययन भी समावेशित है। प्राचीन काल में प्राचीन ज्ञान परम्परा का संचरण गुरु शिष्य परम्परा के माध्यम से होता रहा है।

> ''हमारे देश भारतवर्ष में तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला, पल्लवी, काशी, उज्जयिनी, काचीपुरम् तथा अनेक बौद्ध मठों के साथ-ही-साथ अनेक धार्मिक केन्द्र प्राचीन ज्ञान परम्परा शिक्षा के केन्द्र थे।''[2]

प्राचीन ज्ञान परम्परा के अन्तर्गत हमारे देश की अर्थव्यवस्था एवं न्याय प्रणाली सत्य एवं आदर्श पद्धति पर स्थापित थी। मानव का जीवन मुख्य रूप से कृषि पर आधारित था परन्तु कृषि के साथ-ही-साथ पशुपालन एवं व्यापार भी जीविका के साधन

थे। ''वस्तु विनिमय की प्रथा पूर्णरूप से लागू थी। वस्तु विनियम प्रणाली के साथ-ही-साथ धातु-विनिमय मुद्रा-विनिमय का प्रचलन भी प्रगति पर था। मुद्रा के रूप में स्वर्ण, रजत एवं कास्य के सिक्के प्रचलन में थे जो व्यापार के आधार थे। सिन्धु सभ्यता मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा सभ्यता को विकसित सभ्यता के रूप में स्वीकार किया जाता है। '''कौटिल्य का अर्थशास्त्र' नामक ग्रंथ आर्थिक सभ्यता का प्रामाणिक ग्रंथ माना जाता है।''

कला

वेद ब्रह्माण्डीय ज्ञान के मूल स्रोत हैं। ज्ञान मूलतः जैविक चेतना अर्थात् आत्मतत्त्व का अन्तर्निहित स्वभाव ही सिद्ध होता है। नित्य-नूतन सीखने की प्रवृत्ति के कारण आत्मिक चेतना पर आच्छादित अज्ञान का कृत्रिम आवरण जब शनैः शनैः हटने लगता है तब ज्ञाता एवं ज्ञेय के मध्य का सम्बन्ध ज्ञान के रूप में प्रकट होने लगता है।

कला एक अद्भुत क्रिया है इसे समझना अत्यन्त दुर्लभ है। यह परम्परागत तरीके से गतिमान होकर शनैः शनैः लुप्त प्राय हो जाती है। कला के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं- ''भवन निर्माण कला, देवालय निर्माण कला, संगति कला तथा नाट्यकला आदि। कला को साहित्यिक भाषा में शैली भी कहा जाता है। इसके अतिरिक्त बया पक्षी द्वारा निर्मित अद्भुत घोसला, मकड़ी द्वारा बुना गया जटिलतम जाल, दीमक द्वारा निर्मित वातानुकूलित बाँबी, चीटियों का अपने बिल में दक्षिण कोने में मल त्याग का स्थान, सिंह द्वारा अपने क्षेत्र का दायित्व बोध, पक्षियों का सुदूर क्षेत्र तक उड़ने का गन्तव्यबोध तथा समुद्र में स्थित व्हेल मछली का सैकड़ों मील दूर अपने साथियों से संवाद स्थापित करना आदि क्रियाएँ कला के अन्तर्गत समाहित हैं।''[4]

हमारे प्राचीन साहित्य में 14 विद्याओं तथा 64 कलाओं का वर्णन हमें स्थान-स्थान पर प्राप्त होता है। 'नीतिसार' नामक ग्रंथ में कलाओं का विस्तृत वर्णन किया गया है। कला को परिभाषित करते हुए विद्वत्जनों का कथन है कि-''जिसको एक मूक (गूँगा) व्यक्ति भी, जो वर्णोच्चारण भी नहीं कर सकता, कर सके वह 'कला' है।''[5]

नटराज-राज अनादि शिव है। भगवान शिव की शक्ति का वैज्ञानिक पाण्डुलिपिकरण भरतमुनि का नाट्यशास्त्र है। नाट्यशास्त्र में सौन्दर्यशास्त्र के सिद्धान्त प्रतिपादित किये गये हैं। दक्षिण भारत के राजा-महाराजाओं ने नाट्यकला को विशेष संरक्षण प्रदान किया है।

संस्कृति

किसी विशेष क्षेत्र में सामाजिक परम्पराओं एवं प्रथाओं से जुड़े मूल्यों के समूह को संस्कृति की संज्ञा प्रदान की जाती है।

''संस्कृति शब्द संस्कृत के 'सम उपसर्ग को जब 'कृति' मूल शब्द में जोड़ते हैं तो संस्कृति शब्द की व्युत्पत्ति होती है। 'सम' का अर्थ है अच्छी तरह से या शुद्ध अथवा पूर्ण जबकि 'कृति' का अर्थ है किया हुआ कार्य रचना अर्थात् शुद्ध एवं अच्छी तरह से किया हुआ प्रशंसनीय कार्य।''[6]

''मानस की श्रेष्ठ साधनाएँ ही संस्कृति हैं।''[7]

हमारे देश भारतवर्ष को विश्वगुरु की संज्ञा प्रदान की गयी है। इसका कारण यह है कि हमारी संस्कृति एवं ज्ञान परम्परा अद्भुत है। प्राचीन समय में हमारी शिक्षा का आधार हमारी ज्ञान परम्परा का ही था। विश्व में प्रत्येक क्षेत्र का ज्ञान हमारे भारतवर्ष द्वारा ही फैलाया गया है। प्राचीन ज्ञान परम्परा में कर्म-धर्म, ज्ञान-विज्ञान, लौकिक-पारलौकिक तथा भोग-त्याग आदि का अद्भुत मिश्रण हमें देखने को मिलता है। हमारी भारतीय संस्कृति में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की अवधारणा मूल रूप से विद्यमान है इतना ही नहीं इसमें सम्पूर्ण विश्व को एक ही परिवार माना गया है।

भारतीय संस्कृति की जीवन शैली पृथक-पृथक होते हुए भी विविधता में एकता को दर्शाती है। वर्तमान एवं भावी पीढ़ी का अस्तित्व वनस्पतियों की शुचिता पर निर्भर है। विषाक्त वायुमण्डल, प्रदूषित जल, मरुभूमि का विस्तार तथा ओजोन परतों का क्षरण आदि समस्याओं का समाधान वनस्पतियों के संरक्षण एवं संवर्धन पर ही निर्भर है। यदि हम वनस्पतियों का संवर्धन नहीं करेंगे तो एक दिन ऐसा आयेगा जब इस धरा-धरातल से मानव-जाति ही विलुप्त हो जायेगी। तकनीकि ज्ञान अर्थात् आर्टिफिशिएल इटेलिजेंस में भी हमारी प्राचीन ज्ञान परम्परा किसी भी मायने में पीछे नहीं है। पर्यावरण स्वच्छ रहेगा तो मानव जीवन स्वस्थ रहेगा।

उपसंहार

प्राचीन ज्ञान परम्परा ही वर्तमान समय के विकास का आधार है। हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों द्वारा स्थापित प्राचीन ज्ञान परम्परा बहुमूल्य ज्ञान-विज्ञान से परिपूर्ण एक ऐसी विशिष्ट पद्धति है, जिसके माध्यम से मानव जाति ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण सृष्टि का उत्कर्ष एवं विकास हुआ है। इस पद्धति में विचारों का परिमार्जन तथा समग्र उत्थान के लिए विविध उपायों, विविध समाधानों तथा विविध प्रयोगों की स्थापना की गयी है। जीवनयापन करने की इस प्राचीन ज्ञान परम्परा में कला एवं शैली सन्निहित है। इस कला एवं शैली की पद्धति को जीवन में आत्मसात करके मनुष्य में देवत्व का उदय किया जा सकता है तथा इसी धरती पर स्वर्ग का अवतरण भी हो सकता है। प्राचीन ज्ञान परम्परा अद्वितीय ज्ञान तथा प्रज्ञा का प्रतीक है इसमें मनुष्यता की श्रेष्ठता को स्वीकार किया गया है।

संदर्भ

1. भारतीय ज्ञान परम्परा के मूल्यों का अनुशीलन-डॉ. कलावती गाडरिया, संस्करण 2025, पृ. 103, संकल्प प्रकाशन कानपुर।
2. वही, पृ. 92
3. भारतीय ज्ञान परम्परा व संस्कृति संधान-डॉ. संदीप कुमार पाण्डेय, पृ. 100, संस्करण 2024, समता प्रकाशन बजरंग नगर, रूरा कानपुर देहात।
4. भारत वैभव-ओम प्रकाश पाण्डेय, पृ. 121, संस्करण 2021, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास भारत
5. वही, पृ. 131
6. भारतीय ज्ञान परम्परा व संस्कृति संधान, डॉ. संदीप कुमार पाण्डेय, पृ. 9
7. कला और संस्कृति-वासुदेव शरण अग्रवाल, पृ. 140, संस्करण 2019, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद।

उत्तर आधुनिकता और मनोहर श्याम जोशी के उपन्यास

आशुतोष तिवारी

शोधार्थी, (दयानंद गर्ल्स पी. जी. कॉलेज, कानपुर, उत्तर प्रदेश)

प्रो० इंदु यादव

शोध निर्देशिका, (दयानंद गर्ल्स पी. जी. कॉलेज, कानपुर, उत्तर प्रदेश)

उत्तर आधुनिकता अंग्रेजी के पोस्टमाडर्निज्म (postmodernism) का हिंदी अनुवाद है। यह शब्द दो शब्दों उत्तर+आधुनिकता से मिलकर बना है, जिससे यह तो स्पष्ट हो जाता है कि यह आधुनिकता के बाद की अवधारणा है। आधुनिकता में पुरातन तथा परंपरागत विचारों, रूढ़ियों एवं पुरातन मूल्यों के स्थान पर विज्ञान, तर्क आदि के सहारे नवीन विचारों और मूल्यों को महत्व दिया गया। इस प्रकार आधुनिकता ने मानव जीवन को ज्ञान-विज्ञान और बौद्धिकता के आधार पर संजोया परंतु धीरे-धीरे समाज में अनेक विश्व युद्धों, औद्योगिकरण से तीव्र विकास मशीनीकरण आदि से एक नैराश्य की भावना उत्पन्न होने लगी और लोग भी,संत्रास, अंतर्विरोध आदि से भर गए। जिस प्रकार आधुनिकता का विकास इस शर्त के साथ हुआ कि यह आधुनिकता मानव जीवन में एक सुख व शांति को स्थापित करेगी, यह शर्त कुछ हद तक पूरी भी हुई परंतु धीरे-धीरे मानव जीवन में इसी आधुनिकतावादी मूल्यों से एक प्रकार की मानसिक अशांति का भी जन्म हुआ। कैलाश वाजपेई ने लिखा है- "आधुनिकता जब पतनोन्मुख होती है तब या तो फिर सनकी हो जाती है या दंभी। दिव्यता के स्थान पर आधुनिकता ने मानव को प्रतिष्ठित करने का कष्ट तो किया था मगर काल के प्रवाह में मानव पशु अधिक सिद्ध हुआ। आस्था का हरा भरा खेत जो राष्ट्रीयता, देश प्रेम, प्रतिबद्धता और वीरों की गौरव गाथाओं के रूप में लहलहाया करता था वह धीरे-धीरे बंजर हो चुका था। युद्ध के दिनों में वही आधुनिकता सारे सिद्धांतों को तिलांजलि देकर अणुबम गिरा चुकी थी।"[1]

आधुनिकता से मानव जीवन में उपजे अशांति व अंतर विरोध ने एक मोह भंग को जन्म दिया और उत्तर-आधुनिकता का विकास हुआ। हालांकि उत्तर-आधुनिकता, आधुनिकता के विरोध में उपजी एक विचारधारा है अथवा आधुनिकता के विकास की अगली कड़ी है, इसे लेकर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। उत्तर-आधुनिकता का स्वरूप इतना विविध है कि उसे एक परिभाषा में निहित कर पाना कठिन है। सुधीश पचौरी उत्तर-आधुनिकता के विषय में लिखते हैं कि- "बीसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध उत्तर-औद्योगिक क्रांति का अद्‌भुत युग है। इस युग में समाज, संस्कृति, राजनीति, कला, साहित्य, दर्शन, संगीत, इतिहास, अर्थव्यवस्था और पूरे मानव चिंतन में जो परिवर्तन चक्र तीव्र गति से घुमा है, उस स्थिति,परिस्थिति की ओर ध्यान दिलाने वाला नाम है- उत्तर आधुनिकता।"[2]

उत्तर-आधुनिकता के विषय के बारे में बात करें तो उत्तर आधुनिकता के विकास को लेकर दो अवधारणाएं प्रचलित हैं-

(क) इस अवधारणा का विकास तीसरी दुनिया के गरीब देश निकारागुआ से हुई।

(ख) इस अवधारणा का विकास साम्राज्यवादी देश अमेरिका व यूरोप में हुई।

मलयज चौधरी का मानना है कि उत्तर-आधुनिकता का जन्म निकारागुआ से हुआ। अनसतासीओ सोमोजो के शासन में अनेक कवि व कलाकार निकारागुआ से भागकर लातिनी अमेरिका देशों में जा बसे। वहीं से धीरे-धीरे इसका विकास हुआ। निकारागुआ के स्पेनिश कवि 'फेदेरिको दे वेनिस' ने अपने कविता संग्रह 'आंतोलेजिया द ला पायेजिया एस्पेनोला ए हिमापानोमारिकाना' की भूमिका में 'पोस्टमाडर्न' की व्याख्या की। दूसरी अवधारणा में बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुए प्रसिद्ध चिंतक 'ज्या फ्रांकोइस ल्योतार' को उत्तर आधुनिकतावाद के जनक के रूप में माना जाता है। ल्योतार की पुस्तक 'द पोस्ट मॉडर्न कंडीशन: ए रिपोर्ट ऑन नॉलेज (The post Modern Condition : A Report on Knowledge)' से इसकी शुरुआत मानी जाती है। ल्योतार ने लिखा है कि- "उत्तर-आधुनिकता महावृतांत के विरुद्ध है। महावृतांत का अर्थ है ईसाइयत, मार्क्सवाद और वैज्ञानिक प्रगति का मिथ। इनके विरुद्ध अब छोटे-छोटे अस्मिता समूहों जैसे स्त्री-विमर्श, दलित-विमर्श आदि का उदय हो रहा है।"[3]

ल्योतार के अतिरिक्त बौद्रिआ, फ्रेडरिक जेम्सन आदि नाम प्रमुख हैं। फ्रेडरिक जेम्सन ने अपनी पुस्तक 'पोस्ट मॉडर्निज्म द कल्चरल लॉजिक ऑफ लेट कैपिटलिजम(Post Modernism: The Cultural Logic of Late Capitalism)' में उत्तर आधुनिकता को पूंजीवाद के विकास की खास अवस्था वृद्ध पूंजीवाद के रूप में व्याख्यायित किया है।

उत्तर-आधुनिकता के मूल में नकार है। वह सभी प्रकार के अधिवृतान्तों, महावृतांतों, मूल्य मीमांसा, तर्कवाद आदि पर प्रश्न चिन्ह खड़ा करती है। डॉ. अमरनाथ के अनुसार- "एक व्यापक दृष्टिकोण से उत्तर-आधुनिकता के तीन केंद्रीय तत्व हैं। पहला

समग्रतावादी सार्वभौमिक सत्यों का नकार दूसरा तर्कवाद का नकार तीसरा आधुनिकता की सक्षमता का नकार।... उत्तर आधुनिकता सार्वभौमिक समग्रतावादी शक्तियों पर प्रश्न चिन्ह लगाती है वहीं तार्किकता पर भी प्रश्न चिन्ह खड़ा करती है।"[4]

स्वतंत्रता पश्चात भारतीय समाज में भी तीव्र बदलाव देखने को मिले। आजादी के बाद लोगों में आजादी से एक प्रकार का मोहभंग दिखा जिसकी अभिव्यक्ति हिंदी साहित्य में मुख्य रूप से हुई। लोगों के अंदर आजादी से पूर्व एक भाव था कि अपने शासन में सरकारी कामकाज में व्याप्त अनियमितताओं आदि से स्वतंत्रता मिलेगी पर वह पूरी ना हो सकी। साथ ही साथ आजादी के बाद भारत में औद्योगीकरण ने भी तीव्रता पकड़ी, बाजारवाद, उपभोक्तावादी संस्कृति ने भारतीय समाज में धीरे-धीरे पैठ बना लिया जिससे समाज में एक प्रकार से भय, व्याकुलता, अंतर- विरोध आदि का जन्म हुआ। लोगों की अस्मिता का संकट व्याप्त हुआ। इस प्रकार आजादी से उपजा मोहभंग, बाजारवाद, आपातकाल, 1991 में हुआ आर्थिक उदारीकरण आदि अनेक प्रमुख घटनाओं ने भारतीय समाज को प्रभावित किया। इन्हीं सब से समाज में एक प्रकार की अस्थिरता, व्याकुलता व अराजकता का जन्म हुआ और धीरे-धीरे उत्तर-आधुनिकता के बिंदुओं द्वारा साहित्य में समाज के इस पक्ष को पहचानने की कोशिश की जाने लगी। अनेक साहित्यकारों में से एक मनोहर श्याम जोशी ने भी अपने साहित्य में समाज के विविध पक्षों का उद्घाटन उत्तर-आधुनिकता के नजरिए से किया। मनोहर श्याम जोशी के साहित्य में उपस्थित उत्तर-आधुनिकतावादी दृष्टि की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए सुधीश पचौरी लिखते हैं- "इस संबंध में सबसे पहले और जबरदस्त प्रयोग मनोहर श्याम जोशी ने कुरु-कुरु स्वाहा नामक उपन्यास से शुरू किया था। इसमें चले आते कथानक को तोड़ फोड़ दिया था, चरित्रों को आजाद कर दिया था और लेखक अपने प्रमाणिक अनुभवों का उच्छेद चलता था।... उसे एक उत्तर-आधुनिक कथा का आरंभिक बिंदु मान सकते हैं।"[5]

आज के इस युग में सत्य और झूठ में विभेद हो गया है। व्यक्ति, समाज के अनेक परतों में व्यक्तित्व के अनेक परतों के रूप में जाना पहचाना जाता है। प्रत्येक व्यक्ति आज के समाज में अपनी पहचान को झूठ के लिबास में लपेटकर प्रस्तुत करता है। कुरु-कुरु स्वाहा उपन्यास में मनोहर श्याम जोशी लिखते हैं कि- "एक वह होता है एक वह होती है और जो कुछ होता है, वह कुछ भी नहीं होता क्योंकि उनके दो होने से होता और सच्ची मुच्ची में वह दो थोड़ी होते हैं जी।"[6] एक ही व्यक्ति के जीवन में कई मुखौटे हैं। लेखक ने अपने उपन्यास में पहुंचेली के चरित्र के माध्यम से यह दिखाया है। लेखक कहता है कि- "मैं तो यह नहीं जानता कि तुम कौन हो? तांत्रिक- जैसा कि तुम खुद कहती हो? वैश्या- जैसा कि बाबू ने बताया? लेखिका- जैसा की खलीक ने बताया? क्रांतिकारी- जैसा की रथजीत भट्टाचार्य का अनुमान है? व्यापारी जैसा कि डोभनवाल कह रहा है? और तुम इतने झूठ बोलती हो अपने बारे में, दूसरों के बारे में कि तुम्हारा सच इस गोरख धंधे में छिप जाता है। मुझे दिलचस्पी है झूठ के गोरखधंधे में छिपे हुए तुम्हारे सत्य से।"[7] इस प्रकार मनोहर श्याम जोशी ने तत्कालीन समय में व्याप्त जीवन में सत्य व झूठ के अभेद को उत्तर-आधुनिकता की दृष्टि से व्याख्यायित किया है। सुधीश पचौरी लिखते हैं कि- "सत्य: कुरु-कुरू स्वाहा सत्य का उद्घाटन करने नहीं चलता, झूठ का उद्घाटन करता है। सत्य की प्रतिनिधिकता संकटपूर्ण है। उसे जानना कितना कठिन है यह पहुंचेली के अनेक रूपों, अनेक झूठों से स्पष्ट है। कुरू-कुरु स्वाहा समूचे प्रतिनिधान पर टिप्पणी बन जाता है। एक उत्तर आधुनिक टिप्पणी।"[8]

उत्तर-आधुनिकता की एक प्रमुख विशेषता है की महावृतांतों एवं विचारधाराओं का अंत। मनोहर श्याम जोशी ने अपने उपन्यासों में इन विचारधाराओं के अंत के स्वरूप को रेखांकित किया है। कुरू- कुरू स्वाहा उपन्यास में खलीक एक मार्क्सवादी विचारधारा के चरित्र के रूप में पाठक के सम्मुख आता है वह धीरे-धीरे अपने सिद्धांतों से परे चला जाता है। उपन्यास के प्रारंभ में खलीक का चित्रण करते हुए मनोहर श्याम जोशी लिखते हैं- "मैला फटा पजामा और उल्टी पहनी हुई खादी की मैली गंजी। चेहरे पर दाढ़ी की कुछ हफ्तों के बढ़वार दां पता नहीं कब से साफ नहीं किए हुए।"[9] आगे इसी खलीक के विचारों में उपन्यास का कथाक्रम बढ़ने के साथ-साथ परिवर्तन परिलक्षित होते हैं, जो कि उसकी मूल विचारधारा मार्क्सवाद में परिवर्तन है।और वह भी सुविधा होगी बन जाता है। "खलीक मियां की आज यह हैसियत है कि प्रोजेक्ट उनके इर्द-गिर्द

बनाए जाते हैं। तरक्की पसंद है इसलिए इनका भाव बराबर तरक्की पर है। सुना है चार लाख लेते हैं इन दोनों एक फिल्म लिखने का।"[10] इस प्रकार मनोहर श्याम जोशी अपने उपन्यास के माध्यम से यह दिखाने का प्रयास करते हैं कि आज के समय में विचारधारा से नकार की ओर विचारधारा पोषित लोग ही उन्मुख हैं।

हिंदी साहित्य में यौन संबंधों का चित्रण प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से होता रहा है परंतु उत्तर आधुनिकता के दौर में यौन संबंधों की अतियथार्थता का चित्रण किया गया। समाज में जिस रूप में नैतिक मूल्यों का पतन हो रहा था तथा समाज जिस तरह जिस कदर अनैतिकता की भेंट चढ़ रहा था इन साहित्यकारों के सम्मुख शील या अश्लील,भद्र या भदेस सभी के बीच का भेद मिट गया। कुरु कुरु स्वाहा, कसप, क्याप, हमजाद आदि सभी उपन्यासों में वैध-अवैध में भेद किए बगैर मनोहर श्याम जोशी ने यौन संबंधों की अतियथार्थता का चित्रण किया है। हमजाद उपन्यास का यह कथन "इतना नीचे मत गिर वह तेरी बेटी और दोत्री दोनों है, वह हंस और मेरी जांघों पर हाथ मार कर बोला कि मेरी बेटी लाते हुए तुझे परहेज है तो जा अपनी बेटी ले आ।"[11]

समाज में जैसे-जैसे उपभोक्तावाद व बाजारवाद का प्रभाव बढ़ता गया साहित्य पर भी इसका गहरप्रभाव पड़ा। साहित्य भी बाजार से संचालित होने लगा। साहित्य एक सूचना मात्र बनकर रह गया इसी कारण साहित्य में पाठों के भीतर अंतर-पाठ की प्रवृत्ति का तीव्रता से विकास हुआ। मनोहर श्याम जोशी ने अपने उपन्यास हरिया हरक्यूलीज की हैरानी में इस प्रवृत्ति को बहुत ही स्पष्ट रूप से दिखाया है। हरिया जिसकी मूल वृत्ति ही हैरानी थी उसे इस बाजारवाद ने खत्म कर दिया। "टीवी ने दुनिया जहां की परेशानी इतने बड़े पैमाने पर और इतने आए गए नए ढंग से घर-घर पहुंचने शुरू कर दी थी कि हरिया हरक्यूलीज की हैरानी का बिरादरी के लिए कोई आकर्षण नहीं रह गया था।"[12]

इस प्रकार हम देखते हैं कि मनोहर श्याम जोशी ने अपने समय के समाज में व्याप्त समस्याओं पर गहरा चिंतन व्यक्त किया है। उनका यह चिंतन उत्तर-आधुनिकतावादी दृष्टि से प्रभावित रहा है। उपभोक्तावादी संस्कृति से हुए समाज में परिवर्तनों की पहचान उन्होंने की तथा उत्तर आधुनिकता के नजरिए से उन बिंदुओं को पाठक के सम्मुख प्रमुखता से प्रस्तुत किया।

सन्दर्भ ग्रन्थ-

1. कैलाश बाजपेई, आधुनिकता का उत्तरोत्तर (हिंदुस्तान साप्ताहिक, 3- 9मई, 1992) पृष्ठ संख्या 52
2. कृष्ण दत्त पालीवाल, उत्तर आधुनिकता और दलित साहित्य, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 13
3. डॉ. अमरनाथ, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 78
4. वही, पृष्ठ संख्या 79
5. सुधीश पचौरी, उत्तर यथार्थवाद, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 65
6. मनोहर श्याम जोशी, कुरु-कुरू स्वाहा, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 30
7. वही, पृष्ठ संख्या 86
8. सुधीश पचौरी, उत्तर यथार्थवाद, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 24
9. मनोहर श्याम जोशी, कुरू-कुरू स्वाहा, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 27
10. वही पृष्ठ संख्या 208
11. मनोहर श्याम जोशी, हमजाद, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ संख्या 87
12. मनोहर श्याम जोशी, हरिया हरक्यूलीज की हैरानी, पृष्ठ संख्या 125

योजना आयोग और नीति आयोग के कार्यों का तुलनात्मक अध्ययन

मुकेश पासवान

शोध छात्र, राजनीतिक विज्ञान विभाग, तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

प्रस्तावना

योजना आयोग और नीति आयोग दोनों ही भारतीय सरकार की महत्वपूर्ण संस्थाएँ हैं, परंतु उनके कार्य, उद्देश्य और संरचना में कई महत्वपूर्ण अंतर हैं। दोनों संस्थानो की स्थापना, कार्य और भूमिका, संरचना और दृष्टिकोण में अंतर देखी जा सकती है। योजना आयोग और नीति आयोग दोनों का उद्देश्य भारत के आर्थिक और सामाजिक विकास को बढ़ावा देना है, लेकिन योजना आयोग एक केंद्रीकृत दृष्टिकोण के तहत कार्य करता था, जबकि नीति आयोग एक विकेंद्रीकृत और सहयोगात्मक दृष्टिकोण को अपनाता है, जिससे राज्यों को अधिक सहभागिता और स्वतंत्रता मिलती है। योजना आयोग और नीति आयोग के बीच इस अंतर के लिए बदलते हुए परिस्थिति और नेतृत्व को उळारदायी माना जा सकता है। निवर्तमान में योजना आयोग के स्थान पर नीति आयोग कार्यरत् है।

योजना आयोग और नीति आयोग स्थापना की परिस्थितियाँ

योजना आयोग की स्थापना 15 मार्च, 1950 को भारत में हुई थी। उस समय की परिस्थितियाँ अलग थीं। भारत 1947 में ब्रिटिश शासन से स्वतंत्र हुआ था। स्वतंत्रता के तुरंत बाद, देश को विभाजन और उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न समस्याओं का सामना करना पड़ा। विभाजन ने भारी जनसंख्या स्थानांतरण, सांप्रदायिक हिंसा और आर्थिक अस्थिरता को जन्म दिया। भारत की अर्थव्यवस्था मुख्यत: कृषि पर आधारित थी, और औद्योगिक क्षेत्र कम विकसित था। स्वतंत्रता के समय भारतीय अर्थव्यवस्था बेहद पिछड़ी हुई थी और देश को व्यापक गरीबी, बेरोजगारी और निम्न जीवन स्तर जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा था।[1] स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, देश के नेताओं ने महसूस किया कि एक ठोस योजना और विकास कार्यक्रम की आवश्यकता है। इसके माध्यम से आर्थिक विकास को प्रोत्साहित किया जा सके, जीवन स्तर को सुधारा जा सके और देश को आत्मनिर्भर बनाया जा सके। भारत को एक समग्र और संगठित तरीके से विकास के लिए योजनाओं की आवश्यकता थी। यह सुनिश्चित करने के लिए कि संसाधनों का उचित और कुशल उपयोग हो, योजना आयोग की स्थापना की गई।[2] योजना आयोग का मुख्य कार्य देश की पंचवर्षीय योजनाओं का निर्माण करना था। इन योजनाओं के माध्यम से विभिन्न क्षेत्रों में विकास के लिए प्राथमिकताएँ निर्धारित की जाती थीं और संसाधनों का उचित वितरण सुनिश्चित किया जाता था। इसी उद्देश्य से योजना आयोग का गठन किया गया ताकि देश को सही दिशा में प्रगति कराई जा सके।

नीति आयोग की स्थापना 1 जनवरी, 2015 को हुई। नीति आयोग की स्थापना के समय भी भारत में कई महत्वपूर्ण आर्थिक और सामाजिक मुद्दे सामने थे। भारत की अर्थव्यवस्था तेजी से बढ़ रही थी, लेकिन विकास दर में अस्थिरता देखी जा रही थी। अधिक समावेशी और स्थायी विकास के लिए संरचनात्मक सुधारों की जरूरत महसूस हो रही थी। भारत की आर्थिक विकास दर स्थिर हो रही थी। सकल घरेलू उत्पाद (GDP) की वृद्धि दर 7-8% के आसपास थी। मुद्रास्फीति का स्तर नियंत्रित था, लेकिन खाद्य पदार्थों की कीमतें उच्च थीं। भारत सरकार ने 'मेक इन इंडिया' पहल की शुरुआत की थी, जिसका उद्देश्य भारत को एक वैश्विक विनिर्माण हब बनाना था। इसके साथ ही स्वास्थ्य सेवाओं और शिक्षा में सुधार की आवश्यकता थी। ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य सुविधाओं और शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार आवश्यक था। देश में गरीबी की समस्या थी, विशेष रूप से ग्रामीण और पिछड़े क्षेत्रों में। गरीबी उन्मूलन के लिए कई योजनाएं चलाई जा रही थीं। राज्यों को अधिक स्वायत्तता और अधिकार देने की बात हो रही थी ताकि वे अपने विकास के लिए स्वतंत्र निर्णय ले सकें। केंद्र और राज्य सरकारों के बीच बेहतर समन्वय स्थापित करना था। यह संघीय ढांचे को मजबूत करने और राज्यों की भागीदारी को बढ़ावा देने के लिए महत्वपूर्ण था। संयुक्त राष्ट्र द्वारा निर्धारित सतत विकास लक्ष्यों (SDGs) की प्राप्ति के लिए एक नई दिशा और दृष्टिकोण की

आवश्यकता थी। नीति आयोग को इन लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में देश को मार्गदर्शन करने के लिए स्थापित होना था।[3] डिजिटल इंडिया, स्टार्टअप इंडिया जैसी योजनाओं को प्रोत्साहित करने और तकनीकी नवाचार को बढ़ावा देने के लिए नीति आयोग की भूमिका महत्वपूर्ण होनी थी। इसके साथ ही 2014 में नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) की सरकार सत्ता में आई थी। इस नई सरकार ने विकास और सुधार के एजेंडे पर जोर दिया। योजना आयोग, जो 1950 से कार्य कर रहा था, को आधुनिक और अधिक प्रभावी संस्थान से बदलने की आवश्यकता थी। नीति आयोग को योजना आयोग के स्थान पर लाया गया ताकि देश की आर्थिक और सामाजिक नीति-निर्माण में अधिक लचीलेपन और सहभागिता को प्रोत्साहित किया जा सके। नीति आयोग को एक थिंक टैंक के रूप में स्थापित किया गया, जो सरकार को नीति निर्माण और क्रियान्वयन में सलाह दे सके। नीति आयोग का उद्देश्य केंद्र और राज्य सरकारों के बीच सहयोग और साझेदारी को बढ़ावा देना था ताकि विकास के लक्ष्य प्राप्त किए जा सकें। नीति आयोग की स्थापना के साथ, सरकार ने विकासशील योजनाओं को अधिक प्रभावी, समावेशी और राज्य सरकारों के साथ समन्वित तरीके से लागू करने का प्रयास किया।[4] अतः नीति आयोग को योजना आयोग के स्थान पर स्थापित किया गया था। योजना आयोग की भूमिका और कार्यप्रणाली में बदलाव की आवश्यकता महसूस की गई थी। इन परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, नीति आयोग का गठन एक महत्वपूर्ण कदम था ताकि भारत को एक आधुनिक, समावेशी और स्थायी विकास के पथ पर अग्रसर किया जा सके।

संरचना और प्रमुख सदस्य

योजना आयोग की संरचना और प्रमुख सदस्य

योजना आयोग की स्थापना 1950 में भारत सरकार द्वारा एक सलाहकार निकाय संस्था के रूप में किया गया, जिसका मुख्य उद्देश्य देश की योजना और विकास के लिए नीतियाँ बनाना था। इसके प्रमुख सदस्य होते थे -

1. अध्यक्ष - प्रधानमंत्री
2. उपाध्यक्ष - आमतौर पर एक प्रमुख अर्थशास्त्री या वरिष्ठ राजनेता होते थे, जो आयोग के रोजमर्रा के कार्यों को संभालते थे।
3. सदस्य - योजना आयोग के अन्य सदस्य विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञ होते थे, जैसे अर्थशास्त्र, उद्योग, विज्ञान और प्रौद्योगिकी, शिक्षा, कृषि आदि।
4. सचिव - योजना आयोग के एक सचिव होते थे जो आयोग के प्रशासनिक और सचिवीय कार्यों को संभालते थे।

नीति आयोग की संरचना और प्रमुख सदस्य

नीति आयोग (NITi~Aayog - National Institution for Transforming India) की स्थापना 1 जनवरी, 2015 को योजना आयोग के स्थान पर की गई। आयोग सरकार की नीतियों और कार्यक्रमों को अधिक प्रभावी तरीके से लागू करने और राज्य सरकारों के साथ साझेदारी में काम करने का लक्ष्य रखा है।[5] इसके प्रमुख सदस्य हैं -

1. अध्यक्ष - प्रधानमंत्री
2. उपाध्यक्ष - एक विशेषज्ञ या वरिष्ठ राजनेता, जो आयोग के कार्यों को देखता है।
3. सीईओ - मुख्य कार्यकारी अधिकारी, जो आयोग के दिन-प्रतिदिन के संचालन को संभालता है।
4. 'फुल-टाइम सदस्य - विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञ जिन्हें आयोग के काम के लिए नियुक्त किया जाता है।
5. 'पार्ट-टाइम सदस्य - समय-समय पर नियुक्त किए जाते हैं और उन्हें विशेष कार्यों के लिए शामिल किया जाता है।
6. एक्स-ऑफिसियो सदस्य - कुछ केंद्रीय मंत्रियों को नीति आयोग का सदस्य नामित किया जाता है।
7. गवर्निंग काउंसिल - इसमें सभी राज्य और केंद्र शासित प्रदेशों के मुख्यमंत्री शामिल होते हैं।

इस प्रकार संगठनात्मक संरचनात्मक रूप में नीति आयोग के सीईओ की नियुक्ति प्रधानमंत्री द्वारा की जाती है और उनका पद सचिव स्तर का होता है। जबकि योजना आयोग के समय, सचिवों की नियुक्ति सामान्य सरकारी प्रक्रिया के माध्यम से की जाती थी, जिसमें सरकारी सेवा के वरिष्ठ अधिकारी शामिल होते थे। नीति आयोग में, सीईओ का चयन प्रधानमंत्री की सिफारिश पर किया जाता है, जो नीति निर्माण और विकास योजनाओं के क्रियान्वयन में सहायता प्रदान करते हैं। इससे नीति

आयोग की भूमिका और भी महत्वपूर्ण हो जाती है, क्योंकि सीईओ सीधे प्रधानमंत्री के अधीन काम करते हैं।[6] नीति आयोग में योजना आयोग की तुलना में कम पूर्णकालिक सदस्य होते हैं। योजना आयोग में आठ पूर्णकालिक सदस्य होते थे, जबकि नीति आयोग में तीन से चार पूर्णकालिक सदस्य होते हैं। नीति आयोग का उद्देश्य नीतिगत मामलों में सरकार को सलाह देना और समावेशी विकास को प्रोत्साहित करना है। योजना आयोग की तुलना में नीति आयोग अधिक लचीला और सहभागी दृष्टिकोण अपनाता है, जिसमें विशेषज्ञों और स्टेकहोल्डर्स की व्यापक भागीदारी शामिल है। नीति आयोग और योजना आयोग की संगठनात्मक संरचना में विभिन्नताएँ होती हैं। नीति आयोग में सीईओ, उपाध्यक्ष, चार कैबिनेट सदस्य, दो अंशकालिक सदस्य और पांच पूर्णकालिक सदस्य शामिल होते हैं। वहीं, योजना आयोग में पूर्णकालिक सदस्य, एक सदस्य सचिव, और एक उपाध्यक्ष होते थे।[7] यह संरचना नीति निर्धारण और विकास में अंतर को दर्शाती है।

कार्यकारी ढांचे में अंतर

योजना आयोग

1. योजना आयोग की भूमिका मुख्य रूप से पांच साल की योजनाओं को बनाना और उन्हें लागू करना था, जिनमें देश के विभिन्न क्षेत्रों के विकास के लिए लक्ष्य और संसाधन निर्धारण होता था।
2. यह केंद्रीय रूप से योजनाएँ बनाता था और राज्य सरकारों को दिशानिर्देश देता था। दूसरे शब्दों में कहे तो योजना आयोग का दृष्टिकोण अधिक केंद्रीयकृत था, जिसमें योजनाओं और नीतियों का मुख्य रूप से केंद्र सरकार द्वारा निर्धारण होता था।
3. योजना आयोग में एक केंद्रीकृत दृष्टिकोण था जिसमें राज्य सरकारों की भूमिका सीमित थी। दूसरे शब्दों में कहे तो राज्यों के विकास योजनाओं को केंद्रीय योजनाओं के साथ समन्वयित करना था, लेकिन राज्यों की स्वतंत्रता सीमित थी।

नीति आयोग

1. नीति आयोग का उद्देश्य सहकारी संघवाद को बढ़ावा देना और राज्यों के साथ मिलकर नीतियों का निर्माण करना है। नीति आयोग का दृष्टिकोण विकेंद्रीकृत है, जिसमें राज्यों को अधिक स्वतंत्रता और सहयोग प्रदान किया गया है।
2. यह मुख्य रूप से नीति-निर्माण, रणनीति, और निगरानी में शामिल है। दूसरे शब्दों में कहे तो नीति आयोग दिशानिर्देशन और सुझाव देने वाली संस्था है, जो नीतियों के निर्माण और कार्यान्वयन में सहायता करती है, न कि योजना निर्माण की।
3. नीति आयोग राज्यों के साथ सहभागिता और भागीदारी को प्राथमिकता देता है और विभिन्न क्षेत्रों में विशेषज्ञों की मदद से नीतियाँ बनाता है। नीति आयोग का उद्देश्य ही केंद्र और राज्यों के बीच अधिक सहयोग और समन्वय स्थापित करना है।
4. नीति आयोग विभिन्न क्षेत्रों में विशेषज्ञता और नवाचार को प्रोत्साहित करता है, जिससे नीति निर्माण में नवीनतम तरीकों और विचारों का समावेश हो सके।

इन परिवर्तनों से, नीति आयोग अधिक लचीला और सहकारी दृष्टिकोण अपनाता है, जबकि योजना आयोग का दृष्टिकोण अधिक केंद्रीकृत और निर्देशात्मक था।[8]

योजना आयोग और नीति आयोग के कार्य बीच तुलना

नीति आयोग एक नीति थिंक टैंक के रूप में कार्य करता है और उसका मुख्य उद्देश्य नीति निर्माण, नीति अनुसंधान, और नीति सिफारिशें करना है। नीति आयोग के पास राज्यों पर नीतियाँ थोपने की शक्ति नहीं है। यह आयोग विभिन्न राज्यों के साथ सहयोग करके उनके विकास में सहायता करता है और समन्वय स्थापित करता है।

दूसरी ओर, योजना आयोग के पास राज्यों को स्वीकृत परियोजनाओं के लिए नीतियाँ थोपने का अधिकार था। यह एक केन्द्रीयकृत संस्था थी जो राज्यों को विकास योजनाओं के लिए वित्तीय सहायता और मार्गदर्शन प्रदान करती थी। 2015 में योजना आयोग को भंग करके नीति आयोग की स्थापना की गई थी ताकि नीति निर्माण में अधिक लचीलापन और सहयोगात्मक दृष्टिकोण अपनाया जा सके।

नीति आयोग और योजना आयोग के बीच एक प्रमुख अंतर राज्य सरकारों की भागीदारी में है। नीति आयोग में राज्य सरकारों की अधिक सक्रिय भूमिका होती है। यह आयोग एक थिंक टैंक के रूप में कार्य करता है और इसमें राज्यों की सीधी भागीदारी को प्रोत्साहित किया जाता है। नीति आयोग का गठन इस दृष्टिकोण से किया गया था कि विकास की प्रक्रिया में राज्यों की अधिक भागीदारी हो और उनकी विशेष आवश्यकताओं और प्राथमिकताओं को ध्यान में रखा जाए। इसके लिए नीति आयोग ने कई मंच और समितियाँ बनाई हैं जिनमें राज्यों के मुख्यमंत्री और अन्य उच्च अधिकारी शामिल होते हैं।

दूसरी ओर, योजना आयोग में राज्यों की भूमिका सीमित थी। योजना आयोग केंद्रीयकृत योजना और संसाधन आवंटन के लिए जिम्मेदार था, और राज्यों की भागीदारी मुख्यत: राष्ट्रीय विकास परिषद की बैठकों तक सीमित थी। योजना आयोग में राज्यों को योजनाओं के कार्यान्वयन और प्रगति की निगरानी में अधिक स्वतंत्रता और योगदान की अपेक्षा नहीं की जाती थी। इस तरह, नीति आयोग के माध्यम से राज्यों को विकास और नीति निर्माण की प्रक्रिया में अधिक सक्रिय और समावेशी भूमिका दी गई है।

नीति आयोग और योजना आयोग के बीच कई संरचनात्मक और कार्यात्मक अंतर हैं। नीति आयोग और योजना आयोग के बीच एक महत्वपूर्ण अंतर यह है कि नीति आयोग आवश्यकताओं के आधार पर अंशकालिक सदस्यों की नियुक्ति करता है, जबकि योजना आयोग में अंशकालिक सदस्यों की नियुक्ति का कोई प्रावधान नहीं था। यह परिवर्तन नीति आयोग को अधिक लचीला और समकालीन बनाने के उद्देश्य से किया गया है, ताकि यह तेजी से बदलती परिस्थितियों और विशिष्ट विशेषज्ञताओं की आवश्यकता के अनुसार अपने सदस्यों को नियुक्त कर सके। अंशकालिक सदस्यों के माध्यम से नीति आयोग विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञों की विशेषज्ञता और अनुभव का लाभ उठा सकता है, जिससे नीति निर्माण प्रक्रिया अधिक समावेशी और प्रभावी हो सकती है।

नीति आयोग और योजना आयोग, दोनों ही भारत में आर्थिक और विकास योजनाओं के लिए महत्वपूर्ण संस्थाएं रही हैं, लेकिन इनके कामकाज और संरचना में अंतर है। नीति आयोग की गवर्निंग काउंसिल में राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों के मुख्यमंत्री और उपराज्यपाल शामिल होते हैं। इसका उद्देश्य सहकारी संघवाद को बढ़ावा देना और राज्यों को उनकी विकास योजनाओं में सक्रिय भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहित करना है। वहीं योजना आयोग भारत की केंद्रीय योजना एजेंसी थी। योजना आयोग राष्ट्रीय विकास परिषद को रिपोर्ट करती थी, जिसमें राज्यों के मुख्यमंत्री और केंद्र शासित प्रदेशों के उपराज्यपाल शामिल होते थे। इसका मुख्य कार्य पाँच वर्षीय योजनाएँ बनाना और देश के विकास के लिए नीति निर्धारण करना था।[9]

सारत:, नीति आयोग और योजना आयोग दोनों में राज्यों के मुख्यमंत्री और केंद्र शासित प्रदेशों के उपराज्यपाल की भागीदारी होती थी, लेकिन उनकी संरचना और कार्य करने के तरीके में अंतर है। नीति आयोग ने वाकई एक नए दौर का प्रारंभ किया है कि नीति निर्माण से लेकर कार्यक्रमों और परियोजनाओं के लिए धन आवंटन तक के विभिन्न पहलुओं में राज्य सरकारों के साथ समन्वय और परामर्श किया जाता है। यह सुनिश्चित करता है कि नीतियों का प्रायोजनीकरण सही ढंग से हो और राष्ट्रीय नीतियों के लक्ष्यों तक पहुँच सके। यह राज्य सरकारों को सहयोग और परामर्श प्रदान करता है ताकि वे अपने क्षेत्र में सर्वोत्तम नीतियों और कार्यक्रमों की विकसिति में सक्षम हो सकें। वहीं योजना आयोग, जिसने नीतियां तैयार की और फिर धन आवंटन के माध्यम से कार्यक्रमों या परियोजनाओं को लागू करने के लिए राज्य सरकारों से सम्बंधित सलाह प्राप्त करती थी। नीति आयोग एक कार्यकारी निकाय है जो केंद्र और राज्य सरकारों को नीतियों और योजनाओं के सुझाव देता है, जबकि योजना आयोग अपने कार्यकाल में योजनाओं की निर्माण और अनुदेशन में सहायक था। विशेष अवसर पर, संसद द्वारा एक वैधानिक निकाय के रूप में इन्हें स्थापित किया जा सकता है।[10]

इस प्रकार नीति आयोग और योजना आयोग के बीच का यह परिवर्तन भारतीय राजनीतिक परिदृश्य में महत्वपूर्ण बदलाव है। योजना आयोग, जिसे 1950 में स्थापित किया गया था, का मुख्य उद्देश्य देश के संसाधनों का उचित वितरण और योजनाओं का निर्माण करना था। इसके विपरीत, 2015 में स्थापित किया गया नीति आयोग एक थिंक टैंक के रूप में काम करता है और केंद्र एवं राज्यों के बीच सहकारी संघवाद को बढ़ावा देने पर जोर देता है। पर आज यह भी देखने को मिल रहा है कि नीति आयोग और योजना आयोग भारतीय राजनीति में एक प्रकार का फुटबॉल बन गया है। 15 अगस्त, 2014 को प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने योजना आयोग में सुधार की घोषणा की थी। इसके बाद, सरकार ने योजना आयोग को समाप्त करके नीति आयोग का गठन किया। अब कांग्रेस पार्टी ने कहा है कि अगर वह सत्ता में आती है तो वह नीति आयोग को खत्म कर देगी। यह मुद्दा सरकार की विकास नीति और आर्थिक योजनाओं की दिशा को लेकर राजनीतिक पार्टियों के बीच की असहमति को

दर्शाता है। एक तरफ, मोदी सरकार का मानना है कि नीति आयोग अधिक लचीला और समकालीन आवश्यकताओं के अनुरूप है, जबकि दूसरी ओर, कांग्रेस पार्टी का मानना है कि यह संस्था अपेक्षित परिणाम नहीं दे पा रही है और इसे समाप्त करना चाहिए। वास्तविकता है कि काई भी कितनी अच्छी और उद्देश्यपरख क्यों न हो, वह तभी सफल हो सकता है जब उसको चलानेवाले प्रभावी रूप से चला सके। नीति आयोग और योजना आयोग, दोनों संस्थाओं को ऐसी कमियों से गुजरना पड़ा है और पड़ रहा है।

निष्कर्ष

निष्कर्षत: नीति आयोग ने योजना आयोग का स्थान लिया है, ताकि सुशासन की विकासात्मक आवश्यकताओं को सुविधाजनक बनाया जा सके और उन्हें सशक्त किया जा सके। नीति आयोग का मुख्य उद्देश्य राष्ट्र की समग्र वृद्धि और विकास का समर्थन करना है। यह राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों की अधिकतम भागीदारी को प्रोत्साहित करता है, जिससे वे कार्यक्रमों और पहलों को तैयार कर सकें। नीति आयोग पारदर्शिता के साथ काम करता है और भारत के लोगों के प्रति संवेदनशीलता को बनाए रखने के लिए हर संभव कदम उठाता है। इसके गवर्निंग काउंसिल के सभी अंशकालिक या स्थायी सदस्य केवल वितरण, परिणाम, और जवाबदेही पर ध्यान केंद्रित करते हैं, जिससे सुशासन को बेहतर बनाया जा सके और राष्ट्र की प्रगति सुनिश्चित हो। पर इसमे कोई दो मत नहीं कि योजना आयोग आजादी के बाद (1950-2015) देश के पुनर्निर्माण और समग्र विकास में ऐतिहासिक और यादगार भूमिका को र्निवहन किया है।

संदर्भ सूची -

1. ज्यां द्रेजे और अमर्त्य सेन, इंडिया: इकोनोमिक डेवलपमेंट एंड सोशल, दिल्ली, 1996, पृष्ठ 39.
2. बागची, ए., नई भारतीय अर्थव्यवस्था में योजना और योजना आयोग की भूमिका: समीक्षा का मामला, 2007, इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, पृष्ठ 92-100.
3. इकोनॉमिक टाइम्स, 15/05/2015.
4. इंडियन एक्सप्रेस, 27 /12/2015.
5. वार्षिक रिपोर्ट 2022-23, नई दिल्ली, पृष्ठ 42.
6. अमर उजाला, 12/04/2016.
7. पांडे, ए., और शुक्ला, एस.पी., भारत के नीति आयोग की कार्यप्रणाली: एक अध्ययन, दिल्ली, 2022, पृष्ठ 27.
8. इकोनॉमिक टाइम्स, 16/08/2016.
9. मेहरोत्रा, एस., और गुइचार्ड, एस. (सं.)., 20वीं सदी और उसके बाद की योजना: भारत का योजना आयोग और नीति आयोग, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2020, पृष्ठ 201.
10. वही, पृष्ठ 208.

बिहार में सुशासन में कानून एवं कार्यक्रमः एक अवलोकन

स्वीटी गुप्ता

असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, गया कॉलेज, गया जी, बिहार

शोध आलेख का सारतत्व :

बिहार में सुशासन की अवधारणा मुख्यमंत्री नीतीश कुमार के नेतृत्व में कानून के शासन, पारदर्शिता, जवाबदेही और विकासोन्मुख नीतियों के माध्यम से साकार हुई है। सुशासन के तहत राज्य सरकार ने विधि व्यवस्था को सुदृढ़ करने, भ्रष्टाचार पर नियंत्रण, महिला सशक्तिकरण, शिक्षा, स्वास्थ्य और पर्यावरण संरक्षण जैसे क्षेत्रों में अनेक कानून और कार्यक्रम लागू किए। लोक शिकायत निवारण अधिनियम, 2015, मद्यनिषेध कानून, मुख्यमंत्री सात निश्चय योजना, हर घर नल का जल, हर घर बिजली, तथा हरियाली मिशन जैसी पहलें सुशासन की दिशा में मील का पत्थर सिद्ध हुई हैं। इन कानूनों और कार्यक्रमों ने शासन को अधिक जवाबदेह और नागरिकों को अधिक सशक्त बनाया है। परिणामस्वरूप, बिहार में प्रशासनिक दक्षता, सामाजिक न्याय और विकास के नए मानदंड स्थापित हुए हैं, जो लोकतांत्रिक शासन की पारदर्शी और जनोन्मुख प्रणाली का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं।

प्रमुख शब्दावलीः पारदर्शिता, उत्तरदायित्व, कार्यक्रम, नीतियां, पुलिस सुधार, विद्युतीकरण, उत्थान, प्रोत्साहन

परिचयात्मक :

सुशासन अर्थात सुंदर शासन, जिसके अंतर्गत जनता को शासन की बेहतर सुविधाए उपलब्ध हो सके। सुशासन को साधारण भाषा में अच्छा शासन कहा जाता है, जिसका अंग्रेजी रूपांतरण गुड गवर्नेस है। एक अच्छे शासन के अंतर्गत यह आशा की जाती है कि जनता को एक ऐसा शासन उपलब्ध कराया जाए जिसमे पारदर्शिता, विधि का शासन, सहभागिता, निश्चितता, विश्वसनीयता, प्रभावशीलता, संवेदनशीलता इत्यादि जैसे गुण विद्यमान हो और यह सब इसके महत्वपूर्ण तत्व भी माने जाते हैं। प्रस्तुत लेख बिहार के संदर्भ में सुशासन एवं सुशासन की स्थापना के लिए बिहार सरकार के द्वारा क्या कार्यक्रम एवं नीतियों बनाई गई है, विषय पर है। बिहार में सुशासन की अवधारणा काफी समय से रही है, लेकिन प्रबल रूप से वर्ष 2005 से इस अवधारणा 'सुशासन' शब्द का उपयोग एवं प्रयोग बढ़ा। बिहार में सुशासन की स्थापना के लिए अनेक योजनाओं एवं कार्यक्रमों का संचालन किया जा रहा है, जिसका मुख्य उद्देश्य बिहार में हाशिये पर खड़े समूह, महिलाओं, गरीबों, किसानों, एवं आम जनता को बेहतर शासन व्यवस्था उपलब्ध कराना है। बिहार में सुशासन स्थापना के लिए जहां सूचना का अधिकार अधिनियम 2005, लोक शिकायत निवारण कानून, पुलिस सुधार कानून, बेनामी संपत्ति अधिग्रहण कानून जैसी व्यवस्थाएं हैं तो वहीं सरकार के सभी विभागों द्वारा अनेक कार्यक्रमों का संचालन किया जा रहा है। समाज कल्याण विभाग, बिहार के द्वारा मुख्यमंत्री कन्या विवाह योजना, मुख्यमंत्री कन्या उत्थान योजना, पूरक पोषाहार कार्यक्रम, मुख्यमंत्री नारी शक्ति योजना, मुख्यमंत्री अन्त्येष्टि अनुदान योजना, मुख्यमंत्री वृद्धजन पेंशन योजना, डी.बी. टी. कोषांग (इसके तहत सामाजिक सुरक्षा पेंशन को डायरेक्ट बेनीफिट ट्रांसफर के माध्यम से सीधे लाभुक के बैंक खाते में राशि का भुगतान किया जा रहा है), बिहार सरकार श्रम संसाधन विभाग के द्वारा बिहार के युवाओं के लिए विभिन्न औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों में प्लेसमेंट जॉब फेयर आदि का संचालन किया जा रहा है। ऊर्जा विभाग के द्वारा ग्रामीण विद्युतीकरण, कृषक हेतु अलग फीडर, मुख्यमंत्री बिजली संबंधी निश्चय योजना, नीचे मछली ऊपर बिजली, ऊर्जा स्टेडियम एवं ऊर्जा पार्क, स्मार्ट प्रीपेड मीटर इत्यादि कृषि विभाग के द्वारा कृषि रोड मैप, बिहान एप, अनलाइन बीज वितरण, जैविक कॉरिडोर, आधुनिक कृषि यंत्रों को बढ़ावा, सूक्ष्म सिंचाई, हर खेत पानी इत्यादि। राजस्व एवं भूमि सुधार विभाग द्वारा ऑनलाइन दाखिल-खारिज, ऑनलाइन भू-लगान भुगतान, बिहार भूमि न्यायाधिकरण की स्थापना

इत्यादि। इन सबके अतिरिक्त बिहार के अल्पसंख्यक कल्याण विभाग, पिछड़ा एवं अतिपिछड़ा कल्याण विभाग, अनुसूचित जाति अनुसूचित जनजाति कल्याण विभागों के द्वारा भी अनेक कार्यक्रमों का संचालन किया जा रहा है। इन सभी वर्गों के छात्रों के लिए छात्रवृत्ति एवं प्रोत्साहन कार्यक्रम, प्री मैट्रिक छात्रवृति, शिक्षा ऋण योजना इत्यादि का संचालन हो रहा है।बिहार के ग्रामीण विकास विभाग के द्वारा जल-जीवन-हरियाली योजना, लोहिया स्वच्छ बिहार अभियान, मुख्यमंत्री ग्रामीण आवास योजना इत्यादि महत्वपूर्ण हैं। इसी प्रकार महिलाओं के लिए भी विभिन्न योजनाए विभिन्न विभागों के द्वारा संचालित हैं। बिहार में सुशासन की स्थापना एवं संचालन हेतु लगभग सभी 45 विभागों द्वारा अनेक योजनाओं का संचालन किया जा रहा है।

सुशासन का तात्पर्य ऐसे प्रशासनिक ढाँचे से है जिसमें सरकार पारदर्शिता, जवाबदेही, निष्पक्षता, सहभागिता और न्याय के सिद्धांतों के आधार पर कार्य करती है। यह केवल शासन की प्रक्रिया नहीं बल्कि एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें नागरिकों के अधिकारों की रक्षा, उनके कल्याण की सुनिश्चितता और संसाधनों के समान वितरण को प्रमुखता दी जाती है। सुशासन का अर्थ हैख़्रजनता के लिए, जनता द्वारा और जनता के हित में संचालित शासन, जहाँ सरकार अपने निर्णयों और नीतियों के लिए नागरिकों के प्रति उत्तरदायी होती है। यह लोकतांत्रिक मूल्यों और मानवाधिकारों की रक्षा का माध्यम बनता है। सुशासन का प्रमुख लक्ष्य है-न्यायपूर्ण, पारदर्शी और सहभागी प्रशासन की स्थापना। इसका उद्देश्य नागरिकों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाना, सामाजिक समानता को सुदृढ़ करना, भ्रष्टाचार को समाप्त करना, तथा प्रशासनिक प्रक्रियाओं में दक्षता और प्रभावशीलता लाना है। सुशासन के माध्यम से सरकार यह सुनिश्चित करती है कि विकास के लाभ समाज के प्रत्येक वर्ग तक पहुँचें और कोई भी व्यक्ति या समुदाय हाशिए पर न रहे। यह शासन को केवल शक्ति के प्रयोग का साधन न बनाकर सेवा का माध्यम बनाता है। सुशासन की मुख्य विशेषताओं में पारदर्शिता, जवाबदेही, दक्षता, सहभागिता, विधि का शासन, समानता, उत्तरदायित्व और नैतिकता प्रमुख हैं। इसके अंतर्गत निर्णय प्रक्रिया खुली होती है तथा नागरिकों को सूचना और भागीदारी का अवसर दिया जाता है। सुशासन में सरकारी नीतियाँ नागरिकों की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं के अनुरूप होती हैं तथा विकास की प्रक्रिया में समाज के सभी वर्गों को सहभागी बनाया जाता है। इस प्रकार सुशासन सतत विकास, सामाजिक न्याय और लोकतांत्रिक स्थायित्व की आधारशिला है, जो एक सशक्त, समतामूलक और संवेदनशील समाज की रचना करता है।

सुशासन अर्थात 'गुड गवर्नेंस' इसकी परिभाषा सर्वप्रथम 1992 में विश्व बैंक के द्वारा 'शासन एवं विकास' नामक अपने एक रिपोर्ट में निर्धारित की गई थी। इस शब्द को विकास के लिए किसी देश के आर्थिक और सामाजिक संसाधनों के प्रबंधन में शक्ति के प्रयोग करने के तरीके के रूप में परिभाषित किया गया है। सुशासन का तात्पर्य नीति निर्माण में संगठनात्मक प्रभावशीलता के उच्च स्तर और इसे लागू करने की क्षमता से है। सुशासन का पर्याय या तत्वों में उत्तरदायित्व, विधि का शासन, पारदर्शिता, जवाबदेही, भागीदारी, दक्षता, प्रभावशीलता, मानवाधिकार उन्मुख, मानव विकास, सर्वसम्मति सभ्य समाज उन्मुख समाज कल्याण एवं विश्वसनीयता आदि को शामिल किया जाता है। यह व्यापक रूप से स्वीकार किया गया है की खराब शासन किसी देश के विकास एवं प्रगति को अवरुद्ध करने का मुख्य कारण है। शासन को किस प्रकार लोगों के अनुकूल बनाया जाए एवं अच्छा लोक प्रशासन बनाया जाए यह राष्ट्रों के सामने आज भी बड़ी चुनौती है। भारतीय संदर्भ में सुशासन की अवधारणा नवीन नहीं है प्राचीन भारत के लिच्छवि गणराज्य से लेकर आधुनिक काल में महात्मा गांधी एवं पं. जवाहर लाल नेहरू ने भी सुशासन की अवधारणा पर बात कही है। प्रस्तुत लेख में बिहार के साथ-साथ भारत में भी सुशासन का परिचय कराना आवश्यक प्रतीत होता है।

भारतीय संदर्भ में सुशाससन के लिए अनेक पहल किए गए जैसे सूचना का अधिकार कानून जिसे 12 अक्टूबर 2005 से पूरे देश में लागू किया गया है। सिटिजन चार्टर, लोक शिकायत केंद्र का निर्माण किया गया है। इसके तहत विभिन्न सरकारी सेवाओं की समय सीमा का निर्धारण किया गया है। विकेन्द्रीकरण के तहत भारत में पंचायती राज व्यवस्था की शुरुआत की गई, जो भारत में 'ग्रासरूट डेमोक्रेसी' सुशासन की स्थापना की दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास रहा है। ई गवर्नेंस जिसके तहत कंप्युटर, मोबाईल या दूरसंचार के माध्यमों से प्रशासनिक कार्यों का सम्पादन किया जा रहा है। प्रशासन में सूचना तकनीक का प्रयोग डिजिटलीकरण ने अनेक सुविधाओं से आमजन को मुखर किया है। सभी प्रकार के सरकारी दस्तावेज ऑनलाइन हो गए हैं। भारत में डिजिटल इंडिया कार्यक्रम ने सुशासन की प्राप्ति में क्रांतिकारी भूमिका निभाई है। इसके तहत सरकारी नीतियों का डिजिटलीकरण किया गया, आधार को बैंक खातों से जोड़ा गया, डायरेक्ट बेनीफिट कक्ष ट्रांसफर योजना, न्यायालय, डाकघर, पुलिस स्टेशनों का डिजिटलीकरण किया गया है। सुशासन के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए पुलिस सुधार भी किए गए है। हाशिये पर खड़े वंचित समूह एवं महिलाओ के लिए अनेक कार्यक्रम एवं कानून की शुरुवात की गए है। जनवरी 2018 में

भारत में आकांक्षी जिला कार्यक्रम को शुरू किया गया है जिसका उद्देश्य भारत के सबसे काम विकसित 118 जिलों का चयन कर उनका विकास करना है। सुशासन के लक्ष्य की प्राप्ति को प्रतिस्पर्धी बनाया जा सके इसके लिए 25 दिसम्बर, 2019 से सुशासन सूचकांक की शुरुआत की गई। इसके अंतर्गत यह आकलन किया जाता है की भारत के विभिन्न राज्य एवं केंद्रशासित प्रदेशों में सुशासन की स्थिति क्या है।

बिहार भारत का महत्वपूर्ण राज्य है। 'बिहार' ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। बिहार के संदर्भ में सुशासन की अवधारणा 2005 से प्रबल रोप से विकसित हुई। वर्ष 2005 से लेकर वर्तमान तक बिहार सुशासन के मार्ग पर अग्रसर है। बिहार में सुशासन का प्रभाव कानून व्यवस्था की स्थिति में सुधार, शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार और बुनियादी ढांचे में बदलाव इत्यादि में देखने को मिला है। वस्तुतः बिहार प्रशासन ने 'सुशससन' को शासन का केंद्र बिन्दु बनाया है।

बिहार में सुशासन की स्थापना के लिए सरकार द्वारा कानून एवं कार्यक्रम दोनों ही दिशा में प्रयास किए गए हैं। प्रस्तुत पत्र में बिहार सरकार के सुशासन स्थापना की दिशा में किए गए प्रयासों का अग्र अध्ययन किया जा सकता है:

सूचना का अधिकार :

सूचना का अधिकार अधिनियम पूरे भारत में 12 अक्तूबर, 2005 से लागू है, जिसमे बिहार भी शामिल है। सूचना के अधिकार अधिनियम का मूल उद्देश्य नागरिकों को सशक्त बनाना, सरकार के कामकाज में पारदर्शिता और जवाबदेही को बढ़ावा देना, भ्रष्टाचार नियंत्रण और भारतीय लोकतंत्र को वास्तविक अर्थों में लोगों के काम करने योग्य बनाना है। यह अधिनियम नागरिकों को सरकार की गतिविधियों के बारे में सूचित करने की दिशा में एक बड़ा कदम है। बिहार में सूचना का अधिकार बिहार सूचना का अधिकार नियमावली, 2006 से जानी जाती है। इसमे वर्ष 2009 में संशोधन किया गया था। बिहार में सूचना का अधिकार अधिनियम के तहत राज्य सूचना आयोग का प्रावधान किया गया है। इस अधिनियम के तहत बिहार में एक 'लोक सूचना अधिकारी' की भी नियुक्ति की जाती है। अधिनियम के अनुसार जो व्यक्ति सूचना प्राप्त करना चाहते है। वे प्रपत्र 'क' में वर्णित विहित फीस के साथ अथवा ई-मीडिया के माध्यम से अपना आवेदन लोक सूचना अधिकारी या कॉल सेंटर को देते है। आवेदक को आवेदन प्राप्ति की एक रसीद भी दी जाती है। इस अधिनियममे आवेदक को आवेदन के साथ एक निश्चित फीस भी जमा करनी होती है जिसकी प्राप्ति रसीद भी आवेदक को प्रदान किया जाता है। अधिनियम के तहत, बिहार में जानकारी कॉल सेंटर की भी स्थापना की गई है।

'सूचना का अधिकार' के तहत आवेदक संबंधित विषय से ई सूचना मांग सकता है। यह लिखित अनुरोध 150 शब्दों से अधिक नहीं होना चाहिए। लोक सूचना अधिकारी आवेदन के 30 दिनों के अंदर सूचना व्यक्ति को उपलब्ध कराते हैं 'अथवा' अधिनियम की धारा '8' एवं '9' के प्रावधान के अनुरूप आवेदन अस्वीकृत भी कर सकते है। अधिनियम के तहत लोक सूचना अधिकारी ऐसी सूचना प्रदान करेंगे जो उनके नियंत्रण में हो। यदि कोई व्यक्ति प्राप्त सूचना से संतुष्ट नहीं है तो वैसी स्थिति में वह 30 दिनों के अंदर अपीलीय प्राधिकार के पास अपील कर सकता है। यह अपीलीय प्राधिकार राज्य सरकार के द्वारा नियुक्त होते हैं। यदि व्यक्ति अपीलीय प्राधिकार के निर्णय से भी संतुष्ट नहीं हो तब वह राज्य सूचना आयोग में 90 दिनों के अंदर (आदेश प्राप्ति के) द्वितीय अपील कर सकता है।

लोक शिकायत निवारण कानून :

बिहार में सुशासन की दिशा में लोक शिकायत निवारण कानून एक महत्त्वपूर्ण कदम सिद्ध हुआ है। बिहार के आमजनों की शिकायतों का एक निश्चित सीमा में समाधान करने के के उद्देश्य से 5 जून, 2016 से पूरे राज्य में बिहार लोक शिकायत निवारण अधिनियम लागू किया गया। राज्य सरकार द्वारा चलाई जा रही किसी योजना, सेवा या कार्यक्रम के संबंध में लाभ हेतु अथवा लाभ प्राप्ति में विलंब की स्थिति में या लोक सेवक के द्वारा राज्य में लागू किसी भी नियम या विधि की अवहेलना किए जाने के मामले में लोक शिकायत पदाधिकारी के पास परिवाद दायर किया जा सकता है। इस कानून में आवेदकों को 60 दिनों में शिकायत की सुनवाई एवं उसके निवारण तथा निवारण से संबंधित सूचना प्राप्ति का कानूनी अधिकार मिल जाता है। अधिनियम के तहत परिवाद दायर किए जा सकने वाले विषयों की सूची लोक शिकायत प्राप्ति केंद्रों एवं वेबसाईट पर उपलब्ध कराया गया है। परिवाद किसी भी नागरिक द्वारा कराई जा सकती है। अधिनियम के तहत शिकायत अनुमंडल, जिला एवं राज्य मुख्यालय में स्थित लोक शिकायत केंद्र पर जाकर या ऑनलाइन वेब पोर्टल ीजजचे:// lokshikayat.bihar.gov-in अथवा

टॉल फ्री नंबर 18003456284 या ई-मेल या डाक द्वारा किया जा सकता है। लोक शिकायत निवारण कानून के तहत व्यक्ति पेयजल, सफाई, बिजली, शौचालय निर्माण, आवास योजना, राशन संबंधी कोई योजना, भूमि मापी, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं अन्य कल्याणकारी योजनाओं से जुड़े अपनी समस्याओं का समाधान के लिए शिकायत करा सकते है। कानून लागू होना बिहार में सुशासन की दिशा में सराहनीय प्रयास रहा है। इस कानून से अब तक कुल 1798265 परिवाद दायर किए गए है जिसमे से 1759717 परिवादों का निष्पादन किया जा चुका है।

बिहार में पुलिस सुधार :

सुशासन की स्थापना में बिहार पुलिस व्यवस्था में व्यापक सुधार किए गए हैं। बिहार में पुलिस व्यवस्था की शुरुआत वर्ष 1862 में भारतीय पुलिस अधिनियम 1861 के लागू होने के साथ ही की गई थी। 1952 में पुलिस कल्याण कोष एवं पुलिस सूचना कक्ष का निर्माण किया गया। 1958 में एक पुलिस आयोग की भी स्थापना बिहार में हुई जिसका कार्य था बिहार पुलिस को जनता के समीप लाना। बिहार पुलिस में लगातार वृद्धि एवं पुलिस कर्मियों की नियुक्ति राज्य में अपराध में कमी लाना, लोगों को सुरक्षित वातावरण प्रदान करना सरकार का लक्ष्य बन गया है। पुलिस व्यवस्था में सुधार से विधि-व्यवस्था में सुधार हुआ जिससे बिहार में निवेशक बढ़े। बिहार में सुशसन स्थापना के उद्देश्य से बिहार पुलिस जन शिकायत व्यवस्था की शुरुआत की गई है जिसमें सुबह 11 बजे से अपराहन 01:00 बजे तक प्रत्येक कार्य दिवस को थाना से लेकर पुलिस मुख्यालय के पदाधिकारी आमजन की शिकायत निवारण के लिए उपलब्ध रहते हैं। 24 घंटे कार्यरत सेवा डायल 112 पर आपराधिक घटनाएं, दुर्घटना, आगजनी, स्वास्थ्य इमरजेन्सी जैसी शिकायत दर्ज किया जा सकता है। साइबर क्राइम जैसी घटनाओं पर नियंत्रण हेतु साइबर थानों की स्थापना की गई है। बिहार पुलिस के आधिकारिक वेबसाईट पर भी साइबर क्राइम की शकायत दर्ज करने हेतु व्यक्ति प्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीय साइबर अपराध रेपोर्टिंग पोर्टल पर शिकायत दर्ज करा सकते हैं। बिहार पुलिस के द्वारा मद्य निषेध, साइबरक्राइम, या अन्य आपराधिक, गैर-आपराधिक घटनाओं के शिकायत हेतु टॉल फ्री नंबर, ई-मेल इत्यादि की सुविधाये प्रदान की गई हैं। नि:संदेह बिहार में सुशसन हेतु पहल में पुलिस विभाग अग्रणी भूमिका निभा रही है

बिहार में ई-गवर्नेस :

ई-शासन का तात्पर्य है सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली सूचनाओं एवं सेवाओं को इलेक्ट्रॉनिक माध्ययमों से नागरिकों तक पहुँचाना। इसका मुख्य उद्देश्य होता है सरकारी कार्यों में पारदर्शिता, जवाबदेही एवं दक्षता लाना। बिहार सरकार के द्वारा अलग से सूचना प्रोद्योगिकी विभाग का ही गठन किया गया है जिसका प्रमुख कार्य समय-समय पर सूचना प्रोद्योगिकी नीति बनाना एवं दिशा-निर्देश जारी करना है।

बिहार में सुशासन की स्थापना में नागरिकों को ऑनलाइन सेवाएं प्रदान की गई हैं जैसे भू अभिलेखों का कम्प्यूटरीकरण, ऑनलाइन दाखिल-खारिज, लग्न संग्रह करना आदि। बिहार सरकार के किसी भी योजनाओं जिसमें लाभार्थी को धनराशि प्रदान की जाती है जैसे विभिन्न योजनाओं शिक्षा विभाग संबंधित, पेंशन योजनाओं आदि के लाभार्थी के बैंक खाते में सीधे धनराशि का प्रत्यक्ष हस्तांतरण किया जा रहा है।

वर्तमान वोटर पंजीकरण रजिस्टर में नाम दर्ज करने हेतु ऑनलाइन सुविधाएं नागरिकों को प्रदान की जा रही है। बिहार सरकार के अनुशासन संबंधी विभिन्न सेवाओं, कानून के साथ-साथ अनेक प्रकार के कार्यक्रमों का संचालन किया जा रहा है जिसका मुख्य फोकस महिला, कमजोर वर्ग एवं छात्र रहे हैं। इन सभी कार्यक्रमों में कुछ का अध्ययन प्रस्तुत पत्र में किया जा रहा है।

बिहार सरकार की सात निश्चय योजना एवं सात निश्चय 2.0 :

बिहार को विकसित बिहार बनाने के लक्ष्य से बिहार सरकार द्वारा सात निश्चय को सुशासन कार्यक्रम 2015-20 में शामिल किया गया। इस कार्यक्रम का उद्देश्य सभी बिहार वासियों को न केवल मूलभूत सुविधाएं जैसे पेयजल, शौचालय, बिजली उपलब्ध कारवाई जा रही है बल्कि आधारभूत संरचनाए जैसे सड़क, गली-नाली, पल आदि का भी विस्तार किया जा रहा है।

बिहार में सुशासन 2015-20 नीति के तहत शुरू किए गए सात निश्चय योजना कार्यक्रम निम्नलिखित प्रकार रहें -

1. अवसर बढ़े-आगे बढ़े
2. आरक्षित रोजगार महिलाओं का अधिकार

3. हर घर नल का जल
4. शौचालय निर्माण घर का सम्मान
5. आर्थिक हाल युवाओं को बल
6. हर घर बिजली लगातार
7. घर तक पक्की गली, नालियां।

विकसित बिहार निर्माण के उद्देश्य से शुरू किए गए सात निश्चय योजना को पूरा करने की अवधि वर्ष 2015 से 2020 तक थी। इसके प्रथम चरण के अंतर्गत आरक्षित रोजगार-महिलाओं का अधिकार एवं हर घर बिजली लगातार का लक्ष्य प्राप्त किया जा चुका है। हर घर नल का जल "निश्चय के अंतर्गत वित्त वर्ष 2024-25 में 1295 करोड़ रुपये आवंटित किए गए है।" अवसर बढ़े आगे बढ़े "निश्चय योजना के तहत बिहार के विभिन्न जिलों में कॉलेज एवं संस्थानों के निर्माण कार्य चल रहा है। "शौचालय निर्माण घर का सम्मान" योजना के तहत ग्रामीण विकास विभाग द्वारा लक्षित सभी 115.60 लाख घरों को आच्छादित करते हुए बिहार के सभी 8053 पंचायतों, 534 प्रखंडों, 101 अनुमंडलों तथा सभी जिला एवं शहरी क्षेत्र के सभी 3398 शहरी वार्डों एवं 142 निकायों को खुले में शौच से मुक्त घोषित किया जा चुका है।

बिहार की युवा पीढ़ी को आत्मनिर्भर बनाने के उद्देश्य से कौशल विकास एवं रोजगार उपलब्ध कराए गए। इसके तहत बिहार स्टूडेंट क्रेडिट कार्ड योजना, मुख्यमंत्री निश्चय स्वयं सहायता भट्ट योजना की शुरुआत की गई । यह योजनाएं राज्य में अभी चल रही हैं। इसके लिए वित्तीय वर्ष 2024-25 में क्रमशः 700 करोड़, 363 करोड़ एवं 200 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है।

बिहार सरकार की प्रतिबद्धता न्याय के साथ विकास के तहत सुशासन कार्यक्रम को पूरे राज्य में लागू करने के उद्देश्य के तहत सात निश्चय 2.0 महत्वपूर्ण है। इसकी शुरुआत 15 दिसम्बर 2020 को की गई। सात निश्चय पार्ट-टू के तहत निम्नलिखित योजनाए शुरू की गई हैं-

1. युवा शक्ति बिहार की प्रगति
2. सशक्त महिला सक्षम महिला
3. हर खेत सिंचाई का पानी
4. स्वच्छ गाँव-समृद्ध गाँव
5. स्वच्छ शहर विकसित शहर
6. सुलभ संपर्कता होगी और आसान
7. सबके लिए अतिरिक्त स्वास्थ्य सुविधा

युवा शक्ति बिहार की प्रगति योजना के तहत राज्य के सभी औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों एवं पालीटेक्निक संस्थानों में गुणवत्ता बढ़ाने का लक्ष्य निर्धारित है। इसके साथ ही इसके अंतर्गत उच्च शिक्षा के लिए स्टूडेंट क्रेडिट कार्ड योजना, कंप्युटर प्रशिक्षण, संवाद कौशल और व्यावहारिक ज्ञान पर ध्यान केंद्रित किया गया है। सशक्त महिला सक्षम महिला योजना के तहत महिला उद्यमी योजना की शुरुआत की गई है। महिलाओं को उद्योग लगाने के लिए परियोजना लागत का 50% या अधिकतम 05 लाख रुपये तक ब्याज मुक्त ऋण दिए जाने का प्रावधान किया गया है। हर खेत सिंचाई योजना को भी प्रमुखता देते हुए अगले 05 वर्षों में हर खेत को पानी पहुँचाने का लक्ष्य रखा गया है। स्वच्छ गाँव समृद्ध गाँव के तहत "लोहिया स्वच्छ बिहार अभियान" का क्रियान्वयन किया जा रहा है। स्वच्छ शहर विकसित शहर के अंतर्गत नगर एवं आवास विभाग द्वारा महत्वपूर्ण कदम उठाए जा रहे हैं। निश्चय सुलभ संपर्कता योजना के तहत ग्रामीण पथों की सुलभ संपर्कता योजना के तहत 1623 पथों के निर्माण की योजना है। 7 वें निश्चय सबके लिए अतिरिक्त स्वास्थ्य सुविधा के तहत सभी के लिए अतिरिक्त स्वास्थ्य सुविधा के उद्देश्य से 243 विधन्ससभा क्षेत्रों में एक अतिरिक्त प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र, 05 स्वास्थ्य उपकेन्द्र एवं 136 सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र का निर्माण किया गया है।

बिहार में सुशासन की स्थापना की दिशा में समग्र रूप से जहां सात निश्चय कार्यक्रम में सभी को शामिल किया गया है वहीं अलग-अलग वर्गों के लिए भी योजनाओं का संचालन सरकार द्वारा किया गया है।

महिलाओं के कल्याण के लिए बिहार सरकार के प्रयास :

बिहार सरकार के सुशासन कार्यक्रम के अंतर्गत महिलाओं को प्रमुखता दी गई है। महिला कल्याण हेतु विविध कानून एवं कार्यक्रम सरकार के द्वारा बनाए गए हैं:-

महिलाओं हेतु आरक्षण -

सुशासन के तहत महिलाओं को आगे बढ़ाने के लिए सरकार ने आरक्षण की क्रांति की शुरुआत की। पंचायतों में 50% आरक्षण (2006), नगर निकायों में 50% आरक्षण (2007), प्राथमिक शिक्षक नियुक्ति में 50% आरक्षण (2006), बिहार पुलिस एवं अन्य सरकारी सेवाओं में 35% आरक्षण, मेडिकल, इंजीनियरिंग, एवं स्पोर्टस यूनिवर्सिटी में संबद्ध शैक्षणिक संस्थानों के नामांकन में 33% आरक्षण दिया गया है।

मुख्यमंत्री कन्या उत्थान योजना -

इस योजना के तहत बेटियों के जन्म से लेकर स्नातक तक की पढ़ाई के लिए सभी जरूरतों पर ध्यान दिया गया है। विभिन्न चरणों में 94100/- की प्रोत्साहन राशि प्रदान की जाती है।

मुख्यमंत्री बालिका साइकिल एवं पोशाक योजना -

इस योजना के तहत सरकारी विद्यालय में पढ़ने वाली कक्षा 9 वीं की छात्राओं के लिए साइकिल के लिए तीन हजार रुपये (3000/-) का प्रावधान है। कक्षा 1 से 12 तक की छात्राओं के पोशाक के लिए 600/- से 1500/- रुपये तक का प्रावधान है।

सिविल सेवा प्रोत्साहन योजना -

इस योजना के तहत महिला अभ्यर्थियों को सिविल सेवा की तैयारी यूपीएससी एवं बीपीएससी हेतु क्रमशः 01 लाख एवं 50,000/- रुपये का प्रावधान है। अब तक 1615 महिला अभ्यर्थी इस योजना से लाभान्वित हुई हैं।

मुख्यमंत्री महिला रोजगार योजना -

सितंबर 2025 से आरंभ इस योजना के तहत महिलाओं को अपनी पसंद का रोजगार शुरू करने के लिए 10 हजार से लेकर 02 लाख रुपये तक की आर्थिक सहायता राशि दिए जाने का प्रावधान है।

जीविका -

बिहार सरकार के ग्रामीण विकास विभाग के अंतर्गत एक स्वायत्त निकाय, बिहार ग्रामीण आजीविका संवर्धन सोसाइटी (BRLPS) के माध्यम से एवं विश्व बैंक के सहयोग से बिहार ग्रामीण आजीविका परियोजना की शुरुआत हुई, जिसे स्थानीय भाषा में जीविका कहते हैं। इसका उद्देश्य बिहार के ग्रामीण गरीबों के सामाजिक एवं आर्थिक सशक्तिकरण है, जिसमे महिलायें भी शामिल हैं। इस परियोजना में 11 लाख से अधिक स्वयं सहायता समूहों का गठन किया गया जिसमें 1 करोड़ 40 लाख से अधिक महिलाये जुड़ीं हैं। इसमें विभिन्न रोजगार के लिए महिला समूहों को धनराशि उपलब्ध कराई जाती है।

उपर्युक्त के अलावा अन्य योजनाएं सामाजिक सुरक्षा पेंशन योजना, मुख्यमंत्री कन्या विवाह योजना, महिला उद्यमी योजना, मुख्यमंत्री नारी शक्ति योजना, वन स्टॉप सेंटर सह महिला हेल्पलाइन, बेटी बचाओ-बेटी पढ़ाओ, पालनघर सुविधा, मुख्यमंत्री वृद्धजन पेंशन योजना, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय वृद्धा पेंशन योजना, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय विधवा पेंशन योजना (दोनों केंद्र प्रायोजित), मुख्यमंत्री विवाह प्रोत्साहन अनुदान योजना इत्यादि।

बिहार सरकार के सुशसन कार्यक्रम में सात निश्चय एवं महिलाओं के कल्याण के अतिरिक्त अन्य प्रमुख योजनाए जो कमजोर वर्ग, छात्रों, किसानों आदि के लिए शुरू किए गए हैं उन सभी का अध्ययन निम्न प्रकार किया जा सकता है -

मनरेगा अधिनियम -

महात्मा गांधी रोजगार गारंटी अधिनियम जो बिहार सहित पूरे देश में लागू है, की शुरुआत 02 फरवरी 2006 से की गई। इस योजना का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में परिवारों को 100 दिनों का गारंटी युक्त रोजगार प्रादन करना है। इसमें ग्रामीण परिवार में अकुशल व्यक्ति को भी रोजगार का अवसर मिलता है। बिहार में कमजोर वर्ग, हाशिये पर खड़े वर्ग, महिला इत्यादि इससे लाभान्वित हुए हैं। बिहार में 2025-26 में इसमें सक्रिय श्रमिकों की संख्या 97.77 लाख है।

मुख्यमंत्री ग्रामीण आवास योजना-

इसकी शुरुआत 2018-19 में की गई थी। इस योजना के अंतर्गत प्रति लाभार्थियों को 1.20 लाख रूपए की सहायता राशि आवास निर्माण हेतु दी जाती है। सुशासन के इस कार्यक्रम के तहत झुग्गी झोपड़ी, कच्चे घरों या जिनके पास रहने के लिए घर नहीं है उसे सहायता प्रदान की जाती है।

कृषि रोड मैप -

बिहार सरकार सुशासन कार्यक्रम के अंतर्गत किसानों को अनेक सुविधाएं उपलब्ध कराने के उद्देश्य से विभिन्न कदम उठाए गए है, जिसमें कृषि रोड मैप महत्वपूर्ण हैं। इसके अंतर्गत राज्य में कृषि के विकास के लिए प्राकृतिक संसाधन जैसे उपजाऊ मिट्टी, जल एवं कृषि योग्य जलवायुवीय परिस्थिति उपलब्ध है। सरकार का लक्ष्य निश्चित समय सीमा को तय कर कृषि संबंधित महत्वपूर्ण लक्ष्य को प्राप्त करना है। पहला कृषि रोड मैप 2008-12, दूसरा कृषि रोड मैप 2012-17 तक क्रियान्वित हुआ। बिहार के तीसरे कृषि रोड मैप का क्रियान्वयन 2017 से 2023 तक किया गया, जबकि चौथे कृषि रोड मैप की समय-सीमा 2023-28 तक तय की गई है। कृषि रोड मैप के कार्यान्वयन के फलस्वरूप भारत सरकार के द्वारा बिहार को कृषि कर्मण पुरस्कार 2011-12, 2015-16, 2016-17, 2017-18 में चावल, गेंहू, मोटे अनाज के लिए दिया गया

राज्य में आधुनिक एवं नवीनतम बीजों को बढ़ावा देने के लिए कई महत्वपूर्ण योजनाएं जैसे मुख्यमंत्री तीव्र बीज विस्तार योजना, बीज ग्राम योजना एवं अनुदानित दर पर प्रमाणित बीज वितरण कार्यक्रम शुरू की गई। इसके अलावा बीजों की होम डिलीवरी भी शुरू की भी सुविधा प्रदान की गई। सुशासन कार्यक्रम के अंतर्गत किसानों को मिट्टी की जांच के आधार पर स्वास्थ्य हेल्थ कार्ड उपलब्ध कराया जा रहा है। जिसके तहत राज्य के 38 जिलों में जिलास्तरीय मिट्टी जांच प्रयोगशालाओं का निर्माण किया गया है।

सरकार का उद्देश्य किसानों को ऑनलाइन सुविधाये प्रदान करना भी है जिसके तहत उनका ऑनलाइन पंजीकरण किया जा रहा है। बिहार में 'बिहान एप' किसानों के लिए शुरू किया गया जिसका उद्देश्य कृषि संबंधी सभी सूचनाओं को एकल विंडो के उपयोग की नई शुरुआत की गई है। आपदा में फसल क्षति की स्थिति में सहायता प्रदान करना, मौसम पूर्वानुमान से कृषकों को लाभ, जैविक कृषि, हर खेत सिंचाई का पानी, सूक्ष्म सिंचाई पद्धति, कृषि हेतु अलग फीडर, मुख्यमंत्री कृषि विद्युत संबंध योजना, राष्ट्रीय मखाना बोर्ड का गठन इत्यादि।

विभिन्न वर्ग के छात्रों/आमजनों हेतु कार्यक्रम -

बिहार के सात निश्चय कार्यक्रम के अंतर्गत युवाओं के लिए महत्वपूर्ण प्रयास रहा है जिनमें से ये दो प्रमुख है आर्थिक हल युवाओं को बल, एवं अवसर बढ़े-आगे बढ़े, निश्चय योजना। इसके अतिरिक्त अलग-अलग वर्ग के छात्रों के लिए अलग-अलग योजनाए चलाई गई हैं:-

अल्पसंख्यक वर्ग के लोगों विशेषकर युवाओं के लिए कार्यक्रम -

सुशससन के कार्यक्रम के अंतर्गत पूरी दृढ़ता एवं संकल्प के साथ सद्भाव एवं सामाजिक सौहाद्र का वातावरण बनाए रखना, अल्पसंख्यकों को ऊक भागीदारी, शिक्षा, रोजगार उन्मुख प्रशिक्षण, उर्दू भाषा का विकास, मदरसों का आधुनिकीकरण एवं संरक्षण एवं सक्षम बनाए रखने का प्रयास है। अल्पसंख्यक वर्ग के छात्रों के लिए छात्रवृति तथा प्रोत्साहन योजना के तहत प्री-मैट्रिक छात्रवृत्ति, पोस्ट मैट्रिक छात्रवृत्ति चलाई जा रही है। इनके लिए बिहार राज्य अल्पसंख्यक वित्त निगम की स्थापना की गई है। मुख्यमंत्री श्रम योजना, बिहार राज्य अल्पसंख्यक आयोग का गठन, वक्फ बोर्ड का सुदृढ़ीकरण, मुख्यमंत्री अल्पसंख्यक शिक्षा ऋण योजना, इत्यादि का संचालन किया जा रहा है।

अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति समूह के छात्रों के लिए सुशासन की योजनाएं :-

बिहार महादलित विकास मिशन, अनुसूचित जाति एवं जनजाति कल्याण विभाग बिहार सरकार की एक स्वायत्त निकाय है। महादलित समुदाय के विभिन्न विकास एवं कल्याणकारी योजनाओं के प्रभावकारी ढंग से क्रियान्वयन के लिए राज्य के विभिन्न पंचायतों, वार्डों में विकास मित्र कार्यरत हैं। इस समूह के छात्रों के लिए प्रवेशिकोत्तर छात्रवृति योजना जिसका मुख्य उद्देश्य अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के छात्रों को उच्च शिक्षा हेतु प्रोत्साहित करना है। मुख्यमंत्री अनुसूचित जाति एवं जनजाति मेधावृति योजना, सिविल सेवा प्रोत्साहन योजना, आवासीय विद्यालय, प्राक-परीक्षण प्रशिक्षण केंद्र इत्यादि कार्यक्रम राज्य में संचालित हैं। सिविल सेवा की तैयारी करने वाले छात्रों को जहां प्रोत्साहन राशि प्रदान की जाती है तो वहीं प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी हेतु प्राक परीक्षा केंद्र में छात्रों को नि:शुल्क कोचिंग की व्यवस्था प्रदान की जाती है।

पिछड़ा एवं अतिपिछड़ा वर्ग के छात्रों के लिए योजनाएं -

इन वर्गों के छात्रों के लिए भी सुशासन के तहत छात्रवृत्ति योजनाए चलाई जा रही है जिसमें प्रवेशिकोत्तर छात्रवृति, सिविल सेवा प्रोत्साहन योजना, मुख्यमंत्री मेधवृति योजना इत्यादि संचालित की जा रही है।

बिहार में सुशासन के तहत मुख्यमंत्री नीतीश कुमार के नेतृत्व में बागवानी और हरियाली कार्यक्रम राज्य के सतत विकास और पर्यावरण संरक्षण की दिशा में एक महत्वपूर्ण पहल रहा है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य न केवल पर्यावरणीय संतुलन स्थापित करना था, बल्कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सशक्त बनाना और किसानों की आय में वृद्धि करना भी रहा है। बागवानी मिशन के अंतर्गत आम, लीची, अमरूद, कटहल, केला, और अन्य फलों की व्यावसायिक खेती को बढ़ावा दिया गया, जिससे कृषि में विविधता आई और किसानों को अतिरिक्त आय के स्रोत प्राप्त हुए। हरियाली मिशन के माध्यम से वृक्षारोपण, जल संरक्षण और भूमि सुधार पर विशेष ध्यान दिया गया। इसके तहत नदियों के किनारे, सड़कों के आसपास और सरकारी भूमि पर बड़े पैमाने पर पौधारोपण किया गया, जिससे हरित आवरण में उल्लेखनीय वृद्धि हुई। ग्रामीण रोजगार के अवसर भी बढ़े और जलवायु परिवर्तन के दुष्प्रभावों को कम करने में मदद मिली। इन कार्यक्रमों ने बिहार में पर्यावरणीय चेतना के साथ-साथ जनसहभागिता की भावना को भी मजबूत किया। नीतीश कुमार की सुशासन नीति में ये योजनाएँ इस बात का प्रतीक हैं कि विकास और पर्यावरण संरक्षण साथ-साथ चल सकते हैं और राज्य को आत्मनिर्भर व हरित दिशा में आगे बढ़ाया जा सकता है।

निष्कर्ष :

बिहार को भारत का एक महत्वपूर्ण राज्य बन जाता,लेकिन की वर्षों से यह पिछड़ेपन का शिकार रहा है, फिर भी सुशासन कार्यक्रम एवं कानून के माध्यम से बिहार और अधिक विकसित बिहार बनने की राह पर अग्रसर है। राज्य सरकार का एक प्रमुख स्लोगन ष्बढ़ता बिहार, बदलता बिहारष है तभी तो सुशासन कार्यक्रम वर्तमान में बिहार के लगभग सभी विभागों द्वारा संचालित किया जा रहा है। बिहार में सुशासन की दिशा में लागू किए गए कानूनों और कार्यक्रमों ने राज्य की प्रशासनिक पारदर्शिता, सामाजिक न्याय और जनसशक्तिकरण को नई दिशा दी है। नीतीश कुमार के नेतृत्व में शासन की प्राथमिकता जनहित और विकास केंद्रित रही, जिससे शासन व्यवस्था अधिक उत्तरदायी और संवेदनशील बनी। लोक शिकायत निवारण, मद्यनिषेध, हरियाली मिशन और सात निश्चय जैसी योजनाओं ने नागरिकों में विश्वास और सहभागिता की भावना को प्रबल किया। इन पहलों से बिहार ने सुशासन के उस आदर्श को स्थापित किया है जहाँ विकास, नैतिकता और न्याय प्रशासन के मूल आधार बन गए हैं।

संदर्भ ग्रन्थ :

1. सिंह, सी. आर. (2018). बिहार में ग्राम पंचायत एवं सुशासन. पटना: ज्ञानदीप प्रकाशन।
2. पन्नकाल, स्कारिया., - मोहन, वसुंधरा. (2016). गुड गवर्नेंस इन इंडिया. नई दिल्ली: दीप एंड डीप पब्लिकेशन्स।
3. तिवारी, त्रिविक्रम., - त्रिपाठी, आनंदा. (2019). भारत में ई-गवर्नेंस और सार्वजनिक सेवाओं का वितरण. वाराणसी: भारतीय लोक प्रशासन संस्थान प्रकाशन।
4. सिंह, कमाल कुमार., - गुप्ता, सुनील. (2020). सुशासन. नई दिल्ली: अटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स।
5. बिहार सरकार, सुशासन के आयाम : बिहार मॉडल, सूचना एवं जनसंपर्क विभाग, पटना, 2018।
6. कुमार, नरेश, बिहार में सुशासन और विकास : एक अध्ययन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2020।
7. सिंह, अरविंद कुमार, नीतीश कुमार और बिहार का सुशासन मॉडल, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017
8. Government of Bihar, Good Governance Initiatives in Bihar, Department of Planning and Development, Patna , 2019।
9. झा, शशि भूषण, बिहार का सामाजिक-आर्थिक विकास और सुशासन की भूमिका, ज्ञानदीप प्रकाशन, पटना, 2021।
10. Planning Commission of India, Bihar Development Report, Government of India, New Delhi, 2010.
11. World Bank, Strengthening Governance in Bihar: Policy and Institutional Framework, World Bank Report, Washington D.C., 2015.
12. http://www.brips.in.
13. http:// state.bihar.gov.in.
14. http://scstonline.bihar.gov.inhttp://minority commission.bihar.com“15. http://bcebconline.bihar.gov.in
16. nrega.dord.gov.इन
17. हिंदुस्तान हिन्दी दैनिक, 04 सितंबर 2025
18. हिंदुस्तान हिन्दी दैनिक, 16 सितंबर 202

ऐतिहासिक सन्दर्भ में नारी साहित्य लेखन का अध्ययन

डॉ० रितु रानी

सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, ए.आई.जे.एच.एम. कॉलेज, रोहतक (हरियाणा)

शोध सार

साहित्य लेखन का मूल प्रयोजन साहित्य की प्रवृत्तियों एवं उसकी उपलब्धियों को जनता तक पहुँचाना है। उसके आन्तरिक और बाह्य संघर्ष की गाथा को सरल व सुबोध भाषा में वर्णित करना है। हिन्दी साहित्य का आदिकाल प्रारम्भ से लेकर अंत तक विविधताओं से युक्त है। हिन्दी साहित्य के इतिहास पर यदि हम दृष्टि डालें तो उसके आलोक में यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक युग में परिस्थितियाँ चाहे जैसी भी रही हों पुरुष रचनाकारों का वर्चस्व रहा है। उन्होंने भारतीय नारियों को वह सम्मान नहीं दिया जिसकी उनसे अपेक्षा की जा सकती थी। हिन्दी साहित्य का मूल स्वर चाहे धर्म केन्द्रित रहा हो, राजनीति केन्द्रित रहा हो अथवा सामाजिक व्यवस्था से जुड़ा रहा हो, सबमें प्रायः स्त्रियों को वस्तु के रूप में प्रस्तुत किया गया। उन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा से वंचित रखा गया। इतना स्वीकार करने में किसी को आपत्ति नहीं होगी कि भारतीय साहित्य स्त्रियों के प्रभाव में आकंठ डूबा रहा। यदि इन संदर्भों को हिन्दी साहित्य से निकाल दिया जाय तो हिन्दी साहित्य ही नहीं रह जायेगा। नारी सशक्तीकरण के युग में आज इस वर्ग का अस्तित्व आधी आबादी और आधी दुनिया के रूप में है। अब वह सृष्टि की मूल, पुरुष की जीवनसंगिनी और उत्पत्ति की अनिवार्य आवश्यकता के रूप में प्रभावी भूमिका में है। पुराकाल से आज तक नारी जन्मदात्री, पालनहारी, प्रेयसी, पुत्री, देवी, सती, दानवी और पवित्रता के प्रतिमान प्रस्तुत कर प्रकृति के सृष्टि मंच पर विराजमान है। नारी इस सृष्टि में ईश्वर की अद्वितीय कृति है, जो साहित्य, कला और समाज का चिरंतन विषय है। नारी पुरुष से सहयोग करने वाला एक सुंदर और सुकुमार अंग है। प्रेम नारी के माध्यम से आकार लेकर धरती पर अवतीर्ण होता है। जननी के रूप में संस्कृति के लिए वही अविलंब वृत्त धारण करती है। नारी लेखन के बिना भारतीय लौकिक और अलौकिक साहित्य नीरस है। उसके रूप, सौंदर्य और गुणों से ही साहित्य की शोभा है। नारी के बिना मनुष्य, जीव प्रकृति और उत्पत्ति की जैसे कल्पना ही नहीं की जा सकती तो साहित्य विमर्श और लेखन का अस्तित्व क्या? विश्व की सभी सभ्यताओं के साहित्य में नारी लेखन को प्रश्रय मिला है। साहित्य लेखन काल से अद्यावधि साहित्य में नारी लेखन को पर्याप्त स्थान मिला है। प्रत्येक काल में लेखन के प्रतिमान भले ही पृथक-पृथक हों पर नारी की उपस्थिति इसमें प्रभावी परिलक्षित होती है। विवेच्यकाल में से नारी साहित्य और तत्संबंधी प्रसंगों को पृथक कर दिया जाए तो यह साहित्य अपूर्ण और नीरस ही सिद्ध होगा। हिंदी जीवन के सभी क्षेत्रों में नारी ने पुरुष का कंधे से कंधा मिलाकर साथ दिया है। हिंदी साहित्य का क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं है। हिंदी साहित्य के क्षेत्र में जहां महाकाव्यों और लेखकों ने साहित्य को एक नवीन दिशा प्रदान की है, वही महिलाओं ने भी अपनी अमूल्य कृतियों से हिंदी साहित्य में अपना विशेष योगदान दिया है। इस शोध-पत्र में ऐतिहासिक सन्दर्भ में नारी साहित्य लेखन का अध्ययन किया गया है।

मुख्य शब्दः साहित्य लेखन, साहित्य की प्रवृत्ति, ऐतिहासिक सन्दर्भ, साहित्य विमर्श और हिन्दी साहित्य

सदियों से नारी प्रकृति रूपी है। वह सृष्टि रूपी है। नारी सशक्तीकरण के युग में आज इस वर्ग का अस्तित्व आधी आबादी और आधी दुनिया के रूप में है। अब वह सृष्टि की मूल, पुरुष की जीवनसंगिनी और उत्पत्ति की अनिवार्य आवश्यकता के रूप में प्रभावी भूमिका में है। पुराकाल से आज तक नारी जन्मदात्री, पालनहारी, प्रेयसी, पुत्री, देवी, सती, दानवी और पवित्रता के प्रतिमान प्रस्तुत कर प्रकृति के सृष्टि मंच पर विराजमान है। चिरकाल से ही वह मानव को प्रभावित कर स्वयं एक अबूझ पहेली के रूप-स्वरूप में चित्रित किए हुए है। ऋग्वेद में 'नृ' का प्रयोग वीरता का काम करने, दान देने और नेतृत्व करने के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। कालांतर में स्त्री का नाम नारी भी इन्हीं विशेषताओं के कारण पड़ा।

नारी की एक मुस्कान ने यदि चराचर को विमुग्ध किया है तो उसकी बंकिम दृष्टि ने रौद्र रूप में सृष्टि के प्रलय की भूमिका भी निभाई है। एक ओर वह सृष्टि है, दूसरी ओर प्रलय। पुरुष निसंग है स्त्रीबद्ध। पुरुष स्त्री को शक्ति समझकर ही पूर्ण हो सकता है, पर स्त्री, स्त्री को शक्ति समझकर अधूरी रह जाती है। इसके अतिरिक्त उसकी सफलता पुरुष को बांधने में है। यद्यपि दोनों परम शिव के एक ही तत्व से प्रकट हुए हैं, जिनका नामकरण हुआ शिव और शक्ति। शिव विधि रूप है, स्त्री निषेध-रूपा। इन दोनों के प्रस्पंद और विस्पंद से इस सृष्टि का निर्माण हुआ है। पिंड में शिव का प्राधान्य ही पुरुष है और शक्ति का प्राधान्य नारी। ''नारी इस सृष्टि में ईश्वर की अद्वितीय कृति है, जो साहित्य, कला और समाज का चिरंतन विषय है। नारी पुरुष से सहयोग करने वाला एक सुंदर और सुकुमार अंग है। प्रेम नारी के माध्यम से आकार लेकर धरती पर अवतीर्ण होता है। जननी के रूप में संस्कृति के लिए वही अविलंब वृत्त धारण करती है।"

नारी लेखन के बिना भारतीय लौकिक और अलौकिक साहित्य नीरस है। उसके रूप, सौंदर्य और गुणों से ही साहित्य की शोभा है। नारी से ही नर शक्तिवान कहलाया है। नारी सृष्टि के उद्‌भव और वर्तमान तक नर के जीवन का पोषण और उन्नयन करती रही है। उसकी उपस्थिति पौराणिक काल के साहित्य से ही उपलब्ध होती है। नारी के बिना मनुष्य, जीव प्रकृति और उत्पत्ति की जैसे कल्पना ही नहीं की जा सकती तो साहित्य विमर्श और लेखन का अस्तित्व क्या जो नारी की उपेक्षा का साहस कर सके।

संसार के समस्त प्राणियों में 'स्त्री', मानव समाज की अपनी दुनिया है। यह जानने, समझने के बावजूद स्त्री घर के भीतर और बाहर समाज में अपेक्षित अपमानित और प्रताड़ित होती रही है। कभी उसने प्रतिरोध किया तो कभी विरोध। हर हाल में झेलना स्त्री को ही पड़ा है। कभी परिस्थितियों की प्रतिकूलता ने उसे संघर्षमय बनाया तो कभी अपनों की अनानुकूलता के कारण उसे विषमताओं को झेलना पड़ा। यदि वह उनसे उभरती तो कोई-नकोई कलंक उसे कलुषित करता। मानों स्त्री कोई वस्तु है, जिसे प्रत्येक स्तर पर अपने आपको ढालना है। स्त्री स्त्री है तभी वह ऐसा करने में सक्षम है। नारी मानव समाज का अभिन्न अंग है। समाज की ही भाँति साहित्य में भी नारी को लेकर कई विचारधाराएँ हैं। समय चाहे कोई भी रहा हो नारी के जीवन में कई उतार-चढ़ाव आये हैं। परिणामस्वरूप समय-समय पर नारी की स्थिति में परिवर्तन आया। सामाजिक रूप से नारी की स्थिति में आये परिवर्तन का प्रभाव हिन्दी साहित्य पर भी पड़ा क्योंकि साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होता है। साहित्य मानव जीवन की ही प्रति-छाया है। समाज में नारी की गतिविधियों चित्तवृत्तियों के अनुरूप हिन्दी साहित्य में भी नारी का चित्रण मिलता है।

प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति संसार की संस्कृतियों में सर्वश्रेष्ठ है। भारतीय संस्कृति की धरोहर नारी है क्योंकि वेद, पुराण लौकिक काव्य सभी में नारी को वामांगी कहा गया है। नर देवता है, तो नारी देवी। वैदिक साहित्य में नारी का स्थान उच्च था उसका मातृरूप सम्मानजनक और विशिष्ट रहा। नारी को पुरुष के समान सभी अधिकार प्राप्त थे और उच्च शिक्षा की सुविधा प्राप्त थी। भारतीय संस्कृति और धर्म में माँ, पत्नी एवं बहन के रूप में नारी की अलग पहचान है, जो आदर और सम्मान से परिपूर्ण है। दुनिया के प्रत्येक साहित्य में नारी के रूप में माँ का स्थान सर्वोपरि व पूजनीय है। वैदिक साहित्य में नारी पूजनीय एवं स्वतंत्र रही, उसका स्थान उच्च था लेकिन हिन्दी साहित्य के प्रारंभिक काल से ही नारी ने देवी के रूप में भोग्या का रूप धारण कर लिया था, यद्यपि इस युग में नारी में वीरता की दृष्टि से कोई कमी नहीं रही। वह वीर क्षत्राणी के रूप में हमारे सामने आती है तथापि सौन्दर्यशाली रूप की उपासना अधिक हुई है। यही स्थिति मध्ययुग में भी रही। भारतीय समाज में नारी की महिमा अविस्मरणीय रही है। बीसवीं शताब्दी तक नारी लेखन में कुछ विशिष्ट नामों का उल्लेख भी होने लगा तथा समाज में उनकी लेखन क्षमता को प्रोत्साहन भी प्राप्त हुआ। नारी के द्वारा नारी की संवेदनाओं, ममत्व, मातृत्व तथा पीड़ा को उजागर करना आसान था, जिससे समाज की नारी को अपनी वास्तविक परिस्थितियों का सामना करने तथा संघर्ष करने के लिए एक हथियार की प्राप्ति हुई। इस कलम में समाज ने नारी के अस्तित्व तथा उसके स्थान के लिए पुरुष प्रधान समाज को सोचने पर मजबूर किया। इस प्रकार नारी लेखन से समाज में एक नये दीपक का उदय हुआ।

भारतीय आजादी के संघर्ष के दौरान राजाराम मोहन राय जैसे महान् व्यक्तित्व के द्वारा नारी उत्थान के प्रति किये गये प्रयासों के परिणामस्वरूप सतीप्रथा पर अंग्रेजों द्वारा रोक की व्यवस्था कानून द्वारा की गई। इसी प्रकार समाज में प्रताड़ित तथा नारी की पीड़ा व दु:ख को उजागर किया गया। आजादी के संघर्ष में नारी शक्ति का भी अहम् योगदान तथा भूमिका का निर्वहन प्रत्यक्ष रूप से दिखाई दिया। इसी प्रकार नारी के समाज में उत्थान के लिए कई प्रकार की संस्थाओं का सहयोग प्राप्त हुआ।

धीरे-धीरे महिलाओं में जागृति के परिणामस्वरूप नारी में सृजनशीलता का भी विकास हुआ। जिसे उसने गीत, गजलों, कविताओं, लेखों, कहानियों आदि के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान की। धीरे-धीरे समाज में कई प्रतिष्ठित महिलाओं के महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान करने के कारण, उन्होंने अपने स्वयं के जीवन के बारे में लेखन प्रारंभ किया, जिससे एक नये सूत्रपात आत्मकथा लेखन का उदय हुआ, साहित्य की विविध विधाओं में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विधा है-आत्मकथा।

आत्मकथा ने बीसवीं सदी में विधा का रूप लिया। आत्मकथा में पाठक लेखक के जीवन के अंतरंग पहलुओं को जानकर प्रभावित होता है और लेखक से मुलाकात का अनुभव करता है। प्राय: विश्व के सभी देशों में आत्मकथाएं लिखी गई हैं, किन्तु आरंभिक दौर में महिलाओं की आत्मकथाओं का अभाव रहा। महिलाएं आत्मकथा में लेखनी चलाने से इसलिए हिचकती थी, क्योंकि जो कुछ कथनीय है उसको कहने का साहस और कौशल वह जुटा नहीं पाती थी, इसलिए वह आत्मकथा लिखकर जोखिम नहीं उठाना चाहती थी।

आज के युग में नारी का मन भी बदल रहा है, वह अपने अधिकारों के प्रति सजग है। आज अनेक सामाजिक मान्यताएं टूटती नजर आ रही हैं, उनके स्थान पर नई मान्यताओं ने जन्म लिया है। रीति-रिवाजों में बंधी नारी के अन्दर इन परम्पराओं से निकलने की छटपटाहट उनकी आत्मकथाओं में चित्रित होती है। मराठी लेखिकाओं ने अपनी आत्मकथाओं को बहुत ही बेबाकी से लिखा है। सर्वप्रथम मराठी, पंजाबी और बंगला में लिखित स्त्री आत्मकथाओं से प्रेरित होकर हिन्दी की लेखिकाएं आत्मकथा लेखन में प्रवृत्त हुई। ये आत्मकथाएं एक और कथा लेखिका क आत्मसंघर्ष को पाठक के समक्ष रखती हैं, तो दूसरी ओर अन्य महिलाओं को जो समाज में अत्याचारों को सहकर चुप रहती हैं, उन्हें इन आत्मकथाओं द्वारा अपने अधिकारों के प्रति सचेत करती हैं।

वर्तमान सदी सामाजिक मर्यादाओं के नाम पर बंधन के प्रतिशोध का समय है। समाज के हाशिए पर स्थित विभिन्न वर्गों ने अपनी उपेक्षाओं को दरकिनार करते हुए अपनी अस्मिता के लिए संघर्ष किया है और बराबरी में अपनी सार्थक उपस्थिति दर्ज की है। अस्मिता के लिए संघर्ष में ईमानदार कोशिश है-अपनी आत्मकथा लिखना और सम्पूर्ण मानवता के परिप्रेक्ष्य एवं सामाजिक स्थिति में अपनी इयता को अन्वेषित करना।

महिला लेखिकाओं की परंपरा लम्बी है किन्तु पुरुष वर्चस्व और अपनी नियती के बीच आत्मान्वेषण और अभिव्यक्ति का साहस करने वाली हिन्दी लेखिकाओं की आत्मकथाएं एक सराहनीय प्रयास है, आज का युग प्रत्येक क्षेत्र में जागरण का युग है, आज नारी वह नहीं रह गयी है, जो पचास वर्ष पहले थी। समय के साथ उसकी सोच भी विकसित हुई है। आज अपनें जख्मों को दिखाने के लिए नारी की आत्मा छटपटा रही है। वह अपने मौन को शब्द देना चाह रही है उसकी सोई चेतना जाग उठी है और उसे अपने अस्तित्व का बोध हो गया है। नारी ने आज कलम को हथियार बनाकर लड़ना सीख लिया है। परिवार, समाज तथा साहित्य जगत में लेखिकाओं को जो कटु अनुभव हुए उनका वर्णन उन्होंने अपनी आत्मकथाओं में बेबाकी से किया है। महिला आत्मकथाकारों ने आत्मकथाओं के माध्यम से स्त्री जीवन में जुड़े अनेक अनकहे कोने सामने रखे। लेखिकाओं ने समाज के उस पुरुष वर्ग को चिह्नित किया है जो नारी को मूल अधिकारों से वंचित करते हुए यह स्वीकार नहीं कर पाते की स्त्री को समान मानकर उसके विचारों का आदर करना चाहिए। आज लेखिकाएं ही नहीं बार डांसर, राजनेत्री, अभिनेत्री, घरेलू परिचारिका, एवं सैक्स वर्कर धड़ाधड़ आत्मकथाएं लिखकर समाज को सोचने पर विवश कर रही हैं। महिलाओं ने अपने लिखे का लोहा मनवाया है, इसलिए आज वह समाज में चर्चा का विषय है।

वैदिक काल से ही भारतीय साहित्य में नारी की उपस्थिति रही है। हालांकि वह प्रत्येक कदम पर पुरुष द्वारा नियमित और अनुशासित होती रही है। फिर भी विश्व की सभी सभ्यताओं के साहित्य में नारी लेखन को प्रश्रय मिला है। धार्मिक ग्रंथों में उल्लेख मिलता है कि प्राचीन वैदिक सभ्यता में नारी की दशा बहुत ही सम्मानपूर्ण थी। ''वैदिक सभ्यता में आर्य नारी की दशा भी सुदृढ़ थी। उक्त युग के उत्तरार्द्ध और वैदिक सभ्यता के बाद भले ही समाज में कन्या जन्म का स्वागत नहीं किया जाता था। परंतु बाद में परवर्ती पुत्रों की भांति इस युग में कन्या का उपनयन संस्कार भी होता था। उन्हें शिक्षा का अधिकार मिल गया था। उच्च शिक्षा सुसंस्कृत एवं धनी परिवारों तक ही सीमित थी, किंतु साधारण परिवारों में भी कन्याओं को वेद मंत्रों और प्रार्थनाओं के शुद्ध उच्चारण कंठस्थ कराए जाने के उदाहरण मिलते हैं।"

गृहस्थाश्रम की सफलता का श्रेय नारी को ही जाता है। प्राचीनकाल में नारी प्रतिष्ठित पद पर विराजमान थी। मनु ने भी सामाजिक ग्रंथ 'मनुस्मृति' में लिखा है-

''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते, सर्वास्तत्राफला किया:।"

अर्थात् जिस कुल में नारी की पूजा होती है. उस कुल पर देवता प्रसन्न होते हैं। और जिस कुल में नारी की पूजा द्वारा आदर-सत्कार नहीं होता, उस कुल में सब कर्म निष्फल होते हैं। मनुस्मृति के पश्चात उपनिषदों में भी वर्णित है कि सृष्टि की रिक्तता की पूर्ति नारी में मानी गई है। शतपथ ब्राह्मण के अंतर्गत जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नारी और पुरुष को समान माना गया है। उनकी समकक्षता के आख्यान प्रस्तुत किए गए हैं। यथा वर्णित भी है-

''स्त्री और पुरुष दल के दलों की भांति हैं।"

नारी का सबसे सशक्त रूप वैदिक रूप में देखने को मिलता है। उस युग में अनेक नारियां ज्ञान के क्षेत्र में विश्वविख्यात हुई। इनमें लोपमुद्रा, मैत्रेयी, घोष और गार्गी आदि प्रमुख हैं। उस समय विवाह के लिए स्वयंवर प्रथा थी। नारी गृहस्थ धर्म में उचित गरिमा की पात्र थीं। दृष्टव्य है-

''साम्राज्ञी श्वसुरे भव साम्राज्ञी अधिदेवृषु"

सती हो जाना भी उसकी इच्छा पर निर्भर था। वैदिक युग में नारी यज्ञ-कर्म में भाग लेती थी। पुत्र न होने पर पिता की संपत्ति की अधिकारिणी पुत्री को ही माना जाता था। मातृत्व को दैवी शक्ति माना जाता था। संतान के लिए पिता, वंश या कुल का नाम नहीं होने पर वह माता के नाम से परिचय करती थी। उपनिषदों में वर्णित पुत्र सत्यकाम और माता जाबाला की कथा इसका श्रेष्ठ उदाहरण है। जिसमें पिता का अज्ञात रहना उसकी शिक्षा-दीक्षा में बाधक नहीं बनता। वैदिक काल के पश्चात नारी की स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तनों का दौर आया। इस युग में मनुस्मृति के साथ-साथ धर्मसूत्र, कौटिल्य अर्थशास्त्र और अनेक महाकाव्यों की रचना हुई। इस युग में नारी और शूद्रों की मुक्ति का एकमात्र मार्ग भक्ति ही रहा। मनुस्मृति में तो आगे बढ़ कर स्त्री जाति पर अंकुश लगा दिए कि वह जीवित प्राणी के बदले पराधीन भोग की वस्तु बनकर रह गई। मनु के अनुसार स्त्री कभी भी स्वतंर्यता के योग्य नहीं। कुमारी अवस्था में स्त्री की रक्षा पिता करेंगे, यौवन में पति और बुढ़ापे में पुत्र। यथा वर्णित भी है-

''पिता रक्षति कौमार्यो, भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातंर्त्यमहर्ति।"

मनुकाल में नारी का कर्तव्य पुरुष की सेवा करना ही था। पतिसेवा ही उसका संस्कार था। यदि कोई स्त्री विवाह न करती तो उसे संस्कार विहीन और पाप की खान समझा जाता था। 'अपितना तू नारीणा, मद्यप्रभूति पातकम।' के अनुसार स्त्री पुरुषों से कभी तृप्त नहीं होती। वह न तो रूप देखती है न वय। उसे तो केवल नर चाहिए। यथा-

''नैता रूपं परीक्षन्ते, नासा वयसि स्थित:
सुरूपं वा विरूपं वा पुमानित्येत भुंजते।"

मनु ने स्त्री के चरित्र को विचित्र माना है। यह काल नारी के लिए अत्यंत हीन था। नारी की आजादी इस काल में छीन ली गई। रूढ़िवादता, धार्मिक रीति-रिवाजों की आचार संहिता में उसे जकड़ लिया गया। इनकी आड़ में नारी को विभिन्न प्रकार की यातनाएं भी दी गई। रामायण और महाभारत काल में नारी को सम्मान दिया जाता था। परंतु पतिसेवा और आज्ञापालन ही उसका धर्म समझा गया। इस काल में नारी को वस्तु का दर्जा दिया गया। रामायण में राम ने एक सामान्य व्यक्ति की आलोचना की खातिर सीता को वनवास दे दिया। महाभारत में युधिष्ठिर ने द्रौपदी को जुएं के दांव पर लगा दिया। इस युग में नारी को भोग्या ही माना गया। बहुपत्नीक प्रथा प्रचलित थी। नारी की हीन दशा का वर्णन ही धार्मिक ग्रंथों में मिलता है। बौद्ध काल के साहित्य में नारी की दशा में काफी सुधार हुआ। कर्मकांड और रूढ़िवादिता की जंजीरों को तोड़कर स्त्री शिक्षा और पुनर्विवाह को बढ़ावा मिला। इस संबंध में रोमिला थापर लिखती भी हैं- ''समाज के हर वर्ग के स्त्री पुरुषों को श्भिक्खुनीश् तथा श्भिक्खुश् बना लिया करते थे। इसीलिए शिक्षा केवल कुछ उच्चस्थ लोगों तक ही सीमित नहीं रही। इस बात को दृष्टि में रखते हुए कि ब्राह्मण-रूढ़ीवादिता धीरे-धीरे स्त्रियों की गतिविधिया पर प्रतिबंध लगाने का प्रयत्न कर रही थी, स्त्रियों को भिक्खुनियों के रूप में स्वीकार करना उनकी अवस्थिति के विचार से एक कांतिकारी कदम था।"

इस काल में समाज द्वारा पीड़ित नारी को इस धर्म में सहानुभूति प्राप्त हुई। बहु-विवाह की प्रथा थी। पर्दा प्रथा का प्रचलन बड़े-बड़े घरों में था। यदि किसी स्त्री का पति अयोग्य होता तो वह उसका तलाक देकर न्यायालय में पति के विरोध में न्याय

की अपेक्षा कर सकती थी। मध्यकाल में नारी की स्थिति अत्यंत शोचनीय बन गई। मुगलों के आक्रमण बढ़ा और शिक्षा-दीक्षा समाप्त होकर नारी घर की चारदीवारी में बंद हो गई। सती प्रथा चरम सीमा तक पहुंच चुकी थी। लेखिका आशारानी व्होरा ने इस संबंध में लिखा है- ''स्त्रियों के समस्त अधिकार छीन लिए गए। स्वतंत्रता नाममात्र का रह गई। यह दमनचक दसवी शताब्दी में भारत में विदेशियों के आक्रमणों के साथ चलना शुरु हुआ था और सोलहवीं शताब्दी में मुगलों के भारत आगमन के साथ गतिशील हुआ जो उन्नीसवीं शताब्दी तक अपनी चरमसीमा तक पहुंच गया।"

इस युग में मुस्लिम संस्कृति में स्त्रियों पर बड़ा अंकुश था। कुरान में स्पष्ट कहा गया है कि -''स्त्री मर्द की पसली की हड्डी से बनाई गई है जिसका काम पति यानी पुरुष को हमेशा खुश रखना है, नहीं तो वे जहन्नुम की हकदार होंगी।"

हिंदी साहित्य में नारी लेखनः-

बदले आधुनिक परिवेश में यह प्रश्न तेजी से उभर कर सामने आया है कि हिन्दी साहित्य में स्त्रियों की बराबर उपेक्षा हुई है। हिन्दी साहित्य के इतिहास पर यदि विहंगम दृष्टि डालें तो उसके आलोक में यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक युग में परिस्थितियाँ चाहे जैसी भी रही हों पुरुष रचनाकारों का वर्चस्व रहा है। उन्होंने अपनी प्रतिबद्धता के आधार पर भारतीय नारियों को वह सम्मान नहीं दिया जिसकी उनसे अपेक्षा की जा सकती थी। हिन्दी साहित्य का मूल स्वर चाहे धर्म केन्द्रित रहा हो, राजनीति केन्द्रित रहा हो अथवा सामाजिक व्यवस्था से जुड़ा रहा हो, सबमें प्रायः स्त्रियों को वस्तु के रूप में प्रस्तुत किया गया। उन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा से वंचित रखा गया। इतना स्वीकार करने में किसी को आपत्ति नहीं होगी कि भारतीय साहित्य स्त्रियों के प्रभाव में आकंठ डूबा रहा। वे निन्दा स्वरूप साहित्य चिन्तन के क्षेत्र में लायी रही गयी रही हों अथवा पुरुष के लिए आकर्षण बनी भोग्या के रूप में। यदि इन संदर्भों को हिन्दी साहित्य से निकाल दिया जाय तो हिन्दी साहित्य ही नहीं रह जायेगा। इसका विस्तार हिन्दी साहित्य के आदिकाल से लेकर रीतिकाल तक रहा। ऐसी स्थिति में यदि तटस्थ होकर सूक्ष्म विवेचन किया जाय तो स्पष्ट हो जायेगा कि स्त्री विमर्श के अभाव के इन कालखण्डों में भी नारियों का स्वर बुलन्द हुआ है। चाहे वह क्षेत्र भक्ति का रहा हो, राजनीति का रहा हो अथवा सामाजिक दायित्वबोध का रहा हो। इसी क्रम में रजिया सुल्तान, ताज बीवी, मीरा, चाँद बीवी और रानी दुर्गावती का उल्लेख किया जा सकता है।

हिंदी साहित्य के विभिन्न कालों में नारी की जो स्थिति रही है वह निम्नवर्णित है-

आदि कालः- आदि काल में नारी की स्थिति बेहतर नहीं थी। वह मात्र मनोरंजन का साधन और भोग्या रूप में ही परिलक्षित होती है। नारी को लेकर ही इस काल में युद्धों की कल्पना, योजना और उसको अंजाम दिया जाता था। ताकतवर राजा दूसरे राजा की रानी और पुत्री के संबंध में अपने दरबारी कवियों की प्रशंसाआदि पर ही उसे बलात् प्राप्त करने का अवसर तलाशते थे। इस काल के वीरकाव्य में जैसा कि वर्णित भी है-

'जिहि की बिटिया सुंदर देखी,
तिहि के जाय धरे हथियार।'

भक्ति कालः- भक्ति काल में भी नारी की स्थिति में बहुत सुधार नहीं आया। स्थिति जस की तस ही थी। भक्ति काल के प्रमुख कवि तुलसीदास ने ढोल, गंवार और नारी को मात्र प्रताड़ना का अधिकारी माना है। यथा-

'ढोल गंवार शूद्र पशु नारी,
सकल ताड़ना के अधिकारी।'

रीति कालः- रीतिकाल में भी नारी के रूप सौंदर्य का ही वर्णन ज्यादा किया गया है। कवियों ने इस काल की नारी का वर्णन माता और कन्या के रूप में न करके उसके सौंदर्य के सूक्ष्म से सूक्ष्म चित्र उकेरे हैं। नखशिख वर्णन करके उसे मात्र भोगविलास की वस्तु के रूप में परोसा है। जायसी कृत पदमावत और अन्य कवियों के काव्य में नारी को भोग्या के रूप में ही प्रस्तुत किया गया है।

आधुनिक कालः- आधुनिक काल में मैथिलीशरण गुप्त की नारी दीनता की प्रतिमूर्ति है। आंचल में दूध और आंखों में पानी के अतिरिक्त जैसे उसके जीवन में अन्य अभीष्ट की प्राप्ति नहीं। प्रस्तुत भी है-

''अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहनी,
आंचल में है दूध आंखों में पानी।"

प्रसाद युग में नारी की स्थिति कुछ सम्मानजनक हुई। उन्होंने स्त्री के स्वरूप को पहचाना और उसे श्रृद्धा की प्रतिमूर्ति मानकर वर्णन किया है। प्रसाद ने ऐसी नारी की कल्पना प्रस्तुत की जिसने अपना सर्वस्व, सभी स्वप्न और संकल्प पुरुष हेतु अश्रुओं से दान कर दिए। नारी सम्मान की रक्षा करते हुए प्रसाद जी ने उसे श्रृद्धेय कहा है। उसका उद्देश्य मात्र कामसंगिनी के लिए ही नहीं जीवन को सुंदर बनाना है। यथा-

''क्या कहती हो ठहरो नारी
संकल्प अश्रुजल से अपने
तुम दान कर चुकीं पहले ही
जीवन के सोने से सपने
नारी तुम केवल श्रृद्धा हो।"

आधुनिक युग की आकर्षणता में में दिनकर की नारी स्वच्छंद, मुक्त, भोगी, अप्सरा बन गई है। उसके इन्हीं रूपों को कवियों और लेखकों ने साहित्यप्रेमियों के समक्ष रखा है। उसका बसेरा न जाने कितनों की चाह में है। कितने कामातुरों के आगोश में है। दिनकर की नारी खुले विचारों की है। वह मुक्त होना चाहती है। स्वच्छंद होकर किसी बंधन को स्वीकार नहीं करना चाहती। मातृत्व भी उसको बोझिल लगने लगता है। वह उससे घृणा करने लगती है। महज प्रेम के कारण वह गर्भ की कुरूपता को सहन नहीं करना चाहती। दृष्टव्य भी है-

''किरणमयी यह परी करेगी यह विरूपता धारण,
वह भी और नहीं कुछ, केवल एक प्रेम के कारण।"

काव्य में ही नहीं गद्य साहित्य में नारी लेखन को आवश्यक स्थान मिला है। उसके रूप, स्वरूप, सौंदर्य, व्यक्तित्व और कृतित्व की झांकी हमें साहित्य की विभिन्न विधाओं में परिलक्षित होती है। कहानी और उपन्यास आदि में युगीन परिस्थितियों के बीच नारी लेखन अपनी प्रभावी भूमिकाओं में है। हिंदी कहानीकार चंद्रधर शर्मा गुलेरी की कहानी उसने कहा था से लेकर कथा सम्राट प्रेमचंद के साहित्य में नारी की विभिन्न प्रकार की समस्याओं, उनकी समाज में स्थिति, उनके जीवन की असाध्यता, पराधीनता और दुर्बलता को अंकित किया गया है। जैनेंद्र कुमार, इलाचंद्र जोशी और अज्ञेय आदि कहानीकारों ने स्त्री की मानसिकता का यशपाल ने पूंजीवादी व्यवस्था में स्त्री के शोषण का चित्रण किया है। उपन्यास साहित्य में स्त्री के प्रति सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाया गया है। बाल विवाह, विधवाओं की स्थिति, अनमेल विवाह जैसी सामाजिक बुराईयों का वर्णन श्रृद्धाराम फुल्लौरी, लाला श्रीनिवासदास, पंडित बालकृष्ण भट्ट, अयोध्यासिंह उपाध्याय और भारतेंदु हरिश्चंद्र आदि ने किया है। सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए इन लेखकों ने स्त्री शिक्षा को महत्व दिया है।

प्रेमचंदोत्तर काल में मार्क्सवाद, मनोविश्लेषण आदि विचारधाराओं से युक्त नारी साहित्य का लेखन किया गया। इस समय के कथा साहित्य में स्त्री के स्वतंत्र व्यक्तित्व की झलक, और उसका बदला हुआ रूप प्रस्तुत किया गया है। विवाह के प्रति नया दृष्टिकोण, दांपत्य संबंध, व्यक्तिवाद, स्त्री का राजनीति में प्रवेश, मातृत्व परिवर्तन के प्रति नया दृष्टिकोण, अकेली स्त्री और पुरुष के साथ स्पर्धा करने वाली स्त्री और आर्थिक रूप में स्वावलंबी नारी का चित्रण उपन्यासों में मिलता है। युगीन साहित्य में नरेश मेहता का 'डूबते मस्तूल', लक्ष्मीकांत वर्मा का 'काली कुर्सी की आत्मा', अमृतलाल नागर का 'बूंद और समुद्र', लक्ष्मीनारायण लाल का 'प्रेम अपवित्र नदी', रामदरश मिश्र का 'जल टूटता हुआ', मोहन राकेश का 'अंधेरे बंद कमरे', कमलेश्वर का 'डाक बंगला', रांगेय राघव का 'प्रतिदिन', सुरेंद्र वर्मा का 'मुझे चांद चाहिए' आदि में नारी की प्रस्तुति एक पुरुष के रूप में की गई है।

आधुनिक युग की कथाकार कृष्णा सोबती ने अपने साहित्य में नारी के विषय में विभिन्न विचार और दृष्टिकोण प्रस्तुत किए हैं। हमारे समाज में धर्म की आड़ में स्त्रियों पर मनमाना अत्याचार करने की छूट दी है। नारी को व्यवहार में निम्न माना जाता है। लेखिका ने नारी के मन के सूक्ष्म भावों को खोलने का प्रयास किया है जिस प्रकार प्रेमचंद ने भारतीय गांव और ग्रामीण जनता को अपने उपन्यासों का विषय बनाया उसी प्रकार कृष्णा सोबती ने नारी जीवन की गुत्थियों और नारी मन की गहराईयों को उभारा है। जिस नारी का वर्णन लेखिक करती है उसमें अप्रितम साहस है। संघर्ष करने की सामर्थ्य है। उनका नारी विषयक विचार यह कहता है कि नारी अब पहले जैसे बेजान गुड़िया नहीं है जो पुरुष के कारण अपना अस्तित्व को मिटा दे। अपने व्यकितत्व को पहचानने के कारण आज इनकी नारियां अपने अधिकारों के प्रति जागरूक हैं।

आज नारी पुरुष के समान अधिकार पाने की इच्छा रखती है। लेखिक की प्रत्येक नारी के भीतर स्वतंत्र होने की चाह जागती रही है। कृष्णा सोबती का कहना है- ''नारी में विद्रोह और आकोश की भावना होनी चाहिए। उसे पुराने मूल्यों का डटकर मुकाबला करना चाहिए। अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए अपनी एक अलग पहचान बनानी चाहिए।"

नारी जीवन के उस रूप को लेकर लेखन की शुरुआत उन्होंने की है जो सिर्फ एक भोग्या है। पुरुष ने उसे खिलौना समझा है और उसे अपनी हवस का शिकार बनाकर इस समाजरूपी जंगल में उसे अकेले भटकने और तड़पने के लिए छोड़ दिया है। नारी पर पुरुष जाति ने बहुत अत्याचार और जुल्म किए है। इसके लिए उनके नारी विषयक लेखन में पुरुषों के प्रति कोध, विद्रोह और आकोश की ज्वाला भड़की है जिससे नारी स्वयं अपनी रक्षा कर सके। लेखिका ने नारी स्वातंर्त्यता और समानता का लक्ष्य लेकर उसमें नारी चेतना को जागृत करने का प्रयास किया है। हर नारी में साहस जुटाने का सामर्थ्य लेखिका के लेखन में है।

निष्कर्ष:

निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है साहित्य लेखन काल से अद्यावधि साहित्य में नारी लेखन को पर्याप्त स्थान मिला है। प्रत्येक काल में लेखन के प्रतिमान भले ही पृथक-पृथक हों पर नारी की उपस्थिति इसमें प्रभावी परिलक्षित होती है। विवेच्यकाल में से नारी साहित्य और तत्संबंधी प्रसंगों को पृथक कर दिया जाए तो यह साहित्य अपूर्ण और नीरस ही सिद्ध होगा। वर्तमान सदी की स्त्री लेखिकाओं ने अपने लेखन में आधुनिक स्त्री जीवन के व्यापक आयामों को स्पर्श करते हुए स्त्री संबंधी अनेक पुराने व नये प्रश्नों को उठाया ही नहीं है, बल्कि उनके विकल्पों को भी चिह्नित किया है। कस्बों, गाँवों, शहरों से लेकर दूर दराज के देशों में काम करने वाली स्त्रियों के त्रासद अनुभवों को शब्द प्रदान किए हैं। टीएस इलियट के अनुसार, ''इतिहास जहाँ प्राचीनता में रमता है, वहीं वह भविष्य में दृष्टि भी रखता है।" इस सदी की लेखिकाओं ने प्राचीन ग्रंथों के नारी पात्रों का नये चिंतन के अनुरूप उनका मूल्यांकन भी किया है एवं आधुनिक स्त्री विरोधी परम्पराओं का पोस्टमार्टम भी किया है। इस सदी की स्त्री लेखिकाएं वर्तमान संस्कृति का वह इतिहास गढ़ने जा रही है, जहाँ आधी आबादी की उपेक्षा संभव नहीं होगी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

- सुशीला मित्तल, आधुनिक हिंदी कहानी मे, नारी की भूमिकाए, पृ० 4
- श्रीमती सरला दुबे, आधुनिक हिंदी साहित्य मे, नारी चित्रण, पृ० 11
- कृष्णा अग्निहोत्री, संजनिया, जैसियाराम कहानी संग्रह, पृ० 11
- डॉ० मीतालाल, प्रेमचंद का नारी चित्रण, पृ० 11
- मनुस्मृति, मन्वर्थ मुक्तावली, श्लोक-56, पृ० 114
- वृहदारण्यकोपनिषद, अयमाकाश, पृ० 143
- शतपथ ब्राह्मण, पृ० 14, 42 और 45
- डॉ० रूपा सिंह, स्त्री अस्मिता और कृष्णा सोबती, पृ० 15
- डॉ० शैलजा माहेश्वरी, हिंदी व्यंग्य साहित्य में नारी , पृ० 46
- रोमिला थापर, भारत का इतिहास, पृ० 228
- आशारानी व्होरा, भारतीय नारी की दशा और दिशा, पृ० 7
- आदिकालीन वीर रस की एक कविता के अंश
- तुलसीदास, रामचरितमानस, चौपाई अंश
- डॉ० सरिता वशिष्ठ, युगबोध और हिंदी नाटक, पृ० 87
- जयशंकर प्रसाद, कामायनी, पृ० 114
- रामधारी सिंह दिनकर, उर्वशी, पृ० 16, 17
- शारदा सारस्वत, कृष्णा सोबती के उपन्यास और एक लड़की, पृ० 9
- डॉ० आशा दत्तात्रय कांबले, कृष्णा सोबती के कथात्मक साहित्य में नारी पात्र, पृ० 27

संस्कृतसाहित्ये नारी

डॉ० प्रवीण कुमार झाडी

सहायक प्राध्यापक, शा० दू० श्री वै० स्ना० संस्कृत महा वि०, रायपुर

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः। 1 मनुस्मृति

स्त्रीणां पूजा देवताना ंसमाराधनायाः मुख्यं साधनम् अस्ति। नार्याः भारतीयसंस्कृतौ अतीवगौरवस्य अधिकारिणी सर्वदा वर्तते। स्त्रीतत्वस्य स्वभावकारणात् अनेकाः दुर्बलताः विद्यमानाः सन्ति। एतस्मात् कारणात् भारतीयसमाजशास्त्रीणः शंखनिनादं कृतवन्तः - ' न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ' एतद् कथनं स्त्री समाजस्य निंदायाः अथवा अपमानस्य सूचकः नास्ति किन्तु वस्तुस्थित्यः द्योतकः अस्ति। अस्माकं धर्मशास्त्रिणः नार्यः संरक्षणस्य भारः बलस्य प्रतीकः पुरुषस्य ऊपरि त्यक्तवन्तः। नार्यः तिस्रः स्वरुपाः -कन्या पत्नी तथा च माता। एताषु तिसृषु दशाषु तस्याः रक्षा-मर्यादा-प्रतिष्ठाश्च संरक्षणस्य पवित्रकार्य ंपुरुषस्य ऊपरि मन्यते। हिन्दूसंस्कृतेः नार्यः महनीयं स्थानं वर्तते, अस्माक ंसभ्यतायाः दौ पादपीठौ स्तः -त्यागः तपस्याश्च। अस्माकं संस्कृतौ अथवा सभ्यतामध्ये कस्यापि सम्पत्तेः बलात्पूर्वकं अधिकारः स्थापनीयं नास्ति। यथा उपनिषत्सु उक्तम् -

तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।

त्यागपूर्वक ंसम्पत्तेः उपभोगं करणीयं कस्यापि धनस्य लोभः न करणीयं स्वस्य धनस्यापि उपयोगं परस्पर ंमिलित्वा करणीयम।

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येष ुलोष्ठवत्।

आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति सः पण्डितः।। 2 हितोपदेश

भारतीयसंस्कृतेः त्यागतपस्याश्च अतीव महत्ता अस्ति। तपस्यां विना त्यागभावनायाः कंथचित् अपि जागृति न भवति। भारतीयसंस्कृतिः त्यागतपस्याश्च मिश्रिता शाटिका अस्ति यस्याः वर्णा शताब्दीपर्यन्तं न गच्छति। भारतीयनारी अस्याः संस्कृतिसभ्यतायाः प्रतीका वर्तते। नारी त्यागतपस्याश्च जाज्वजल्यमाना विभूति अस्ति। एतयोः द्वयोः तत्वयोः समन्वयोः अस्माक ंआर्यनार्यः स्वरूपं संगठितम् अस्ति। नारीजीवनस्य मूलमन्त्रम् -त्यागम। एतस्य मन्त्रस्य सिद्धिप्राप्तेः क्षमता तस्याः तपस्या। नार्यः तिस्रः रूपाः भवन्ति, कन्यारूपः -भार्यारूपः -मातृरूपाश्च। कौमार्यकालः नारीजीवनस्य साधनावस्थावर्तते, उत्तरकालः जीवनस्य सिद्धावस्था भवति।अस्माक ंसंस्कृतेः उपासकाः संस्कृतसाहित्यकाराः नार्यः तिसृणां अवस्थाना ंसुन्दरं चित्रण ंकृतवन्तः -

01 नारी कन्यारूपे-कन्या शब्दस्य प्रयोगः ऋक्संहिता तथा च अथर्वसंहितामध्ये कृतास्ति-

कन्येवतन्वा शाशदाना एषिदेविदेवमियक्षमाणम्।

संस्मयमना युवतिः पुरस्तादाविवक्षांसि कृषणे विभाति।। 3 ऋक् 01/123/10

आतेकारो श्रृणयमावचांसि ययाथदूरादनसारथेन।

नितेनंसैपीद्ययानैव योषामर्यायवैकन्या शश्वदेते।। 4 ऋक् 03/33/10

एषा ते राजन् कन्या वधूर्नि धूयतां यम।

सा मार्तुबध्यतां गृहेऽथो भ्रातुरथो पितुः।। 5 अथर्व0 01/14/02

कन्यारूपे नार्यः चित्रणं कालिदासस्य काव्येषु श्लोकेष ुप्राप्यते, कालिदासः आर्यसंस्कृतेः प्रतिनिधिः स्वरूपेण अस्ति। तेन आर्यकन्यायाः आदर्श ंपार्वत्याः रूपे अभिव्यक्ता कृतः। आर्यकन्यां अदम्य -अजेय -जितेन्द्रयश्च कर्तु मुख्यसाधनातपस्या एव अस्ति। कालिदासः पार्वत्याः तपस्य रहस्योद्घाटनं विशेषरूपेण कृतः -

इयेष सा कर्तुमवन्ध्यरूपतां समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः।

अवाप्यते वा कथमन्यथा द्वयं तथाविधं प्रेमपतिश्च तादृशः।। 6 कुमारसंभवम् 05/01

अर्थो हि कन्या परकीय एव तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतुः।

जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा।। 7 अभिज्ञानशाकुन्तलम् 04/21

गौर्यः साधनाभारतीयकन्यानां कृते अनुकरणीयाः। अस्माकं कन्यानां पुरतः एका आदर्शा सा पार्वती अस्ति। भारतीयसमाजे गौरीपूजनस्य रहस्यं अस्यां तपसाधनायां अन्तर्निहित ंवर्तते।

02 नारीपत्नीरूपे-वेदेषुपत्नी शब्दस्य प्रयोगः प्राप्यते-

सुमंगलीरियं वधूरिमां समेतपश्यत।

सौभाग्यमस्यै दत्वा याथास्तं विपरेतन।। 8 ऋक् 10/85/33

हविर्धानमग्निशालं पत्नीनां सदनं सदः।

सदो देवानामसि देवि शाले।। 9 अथर्व0 09/03/07

संस्कृतसाहित्ये पत्नीरूपे नार्यः सम्यक् चित्रणं दरीदृश्यते । वाल्मीकिव्यासकालिदासभवभूतिश्च आदयः महाकवीनः भारतीयपत्न्याः अतीवसुन्दरतया चित्रणं कृतवन्तः। रामस्य भार्याः सीतायाः चरित्रचित्रण भारतीयपत्नीनां कृते महान् आदर्शस्य प्रतीकं वर्तते। रावणेन बारम्बार प्रार्थनां कृते सति अपि सीता तस्य अवहेलनां करोति इति भारतीयनार्यः गौरवस्य सर्वदा स्मरणं कारयति।

चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम्।

रावणं किं पुनरहं किं कामयेयं विगर्हितम्।। 10 वा0 रा0 सु0 05/26/10

कल्याणबुद्धिरथवा तवायं न कामचारो मयि शंकनीयः।

ममैव जन्मान्तरपातकानां वपाकविस्फूर्जथुरप्रमेयः।।

त्वया तु नरशार्दूल क्रोधमेवानुर्वता।

लघूनेव मनुष्येण स्त्रीत्वमेव पुरस्कृतम्।।

न प्रमाणीकृतः पाणिर्बाल्ये बालेन पीडितः।

मम भक्तिश्च शीलं च सर्वं ते पृष्ठतः कृतम्।।

गृहस्थजीवने नार्यः विशेषमहत्त्वं वर्तते। महाकविः भवभूतिना उक्तम् -

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगुणं सर्वास्ववस्थासु यद्

विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।

कालेनावरणात्ययात् परिणते यत्स्नेहसारे स्थितं

भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत् प्राप्यते।।

भारतीयनार्यः त्यागमयं जीवनं पत्युः कल्याणार्थं तथा च मंगलनिमित्तम् आत्मनिषेध -आत्मसमर्पणमैव 'नारीत्वम्' अस्ति। पुरुषस्य पूर्तिः नार्यः संगमेन वर्तते नारीं विना पुरुषस्य जीवनं पूर्ण नास्ति।

03 नारीमातृरूपे -ममता-महनीयता-वात्सल्यश्च प्रतिमूर्तिः मातरं शब्दसीमासु बन्धनं कर्तु न शक्नुमःवैयाकरणाचार्याः मातृ - शब्दंमान् + तृच् प्रत्ययेन निष्पन्नं कर्तु प्रयासः कृतवन्तः यस्य अर्थः "आदरणीया ''। ऋक्संहितायां मातृशब्दस्य अर्थः केवलं जन्मदात्री एव न किन्तु एषः शब्दः नदी, अन्तरिक्षः, जल, पृथिवी इत्यादिनां व्यापकस्य अर्थस्य सूचकः अस्ति। मातृ शब्दः निःसन्देहेन पवित्रतायाः उत्कर्षस्य द्योतकः अस्ति।ऋक्संहितायाम् उल्लेखितं बालकं जन्मदात्री मातातस्य लालनं पालनं पोषणं च स्वयं करोति। मातुः कृते पुत्रः प्रियः भवति माता अमृततुल्येन दुग्धेन पुत्रस्य पोषणं करोति।

पितुः पयः प्रतिगृभ्णाति मातापिता वर्धते तेन पुत्रः। 11 ऋक0 07/101/03

त्वं हि नः पिता वसोत्वं माता शतक्रतो बभूविथ। 12 ऋक0 09/98/11

अनुव्रतः पितुः पुत्रोमात्रा भवतु संमनाः। 13 ऋक0 18/03/50

सन्तानोत्पत्तिकारणात् मातुः स्थानं समाजे श्रेष्ठे वर्तते। राजगृहेषु पुत्रजन्मधात्री कारणात् रानीं महिषी इति पदेन सुशोभितं भवति स्म। यजुर्वेदे लिखितमस्ति मातुः समानं पालनं क्रयमाणं जलेन अस्माकं पवित्रं भवेत।

आपो अस्मान् मातरः शुन्धयन्तु। 14 यजु0 04/02

पुमांसं पुत्रं जनय तं पुमान् न जायताम।

भवासि पुत्राणां माता जातानां जनयाश्च यान्।। 15 अथर्व0 03/23/03

नार्यः समाजे अत्यन्तं महत्वपूर्ण स्थानमस्ति। यस्याः मातृशक्तिः रूपेण पूजा भवति समाजस्य आधारशिला। परिवारं समाजं तथा च सम्पूर्ण जगत् एकसूत्रेण बन्धनं कर्तु महत्वपूर्ण भूमिकां यच्छति।

संदर्भ सूची:-

1 मनुस्मृति
2 हितोपदेश
3 ऋक् 01/123/10
4 ऋक् 03/33/10
5 अथर्व0 01/14/02
6 कुमारसंभवम् 05/01
7 अभिज्ञानशाकुन्तलम् 04/21
8 ऋक् 10/85/33
9 अथर्व0 09/03/10
10 वा0 रा0 सु0 05/26/10
11 ऋक् 07/101/03
12 ऋक् 09/98/11
13 ऋक् 18/03/50
14 यजु0 04/02
15 अथर्व0 03/23/

भारतीय हिंदी साहित्य में नवजागरण और स्वाधीनता आन्दोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि

डॉ० रीना देवी

सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग, चौ. ईश्वर सिंह कन्या महाविद्यालय, फतेहपुर- पूंडरी (कैथल)

सार

यह विश्वसनीय तथ्य है कि भारत में हिंदी साहित्य में नवजागरण शब्द का अर्थ है जब कोई देश, जाति और समाज अपनी वास्तविक परिस्थितियों और उसके कारणों का ज्ञाता हो जाता है एवं अपनी उन्नति और रक्षा के लिए सचेत हो जाता है। नवजागरण का अर्थ है जागृत होना, जन-मानसिकता में नवचेतना और अपने विचारों को स्वतंत्र चिंतन भावनाओं के साथ व्यक्त करना होता हैप् भारत में नवजागरण के लिए प्रायः कई पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया जाता है जैसे- पुनर्जागरण, पुनरुत्थान, नवजीवन, नवजागृति, नवोत्थान आदि। परंतु भारत में आधुनिक संदर्भों में देखे तो अंग्रेजी शब्द 'रिनेसाँ ' का पर्यायवाची 'नवजागरण' है। यह तथ्य है कि 14वीं शताब्दी से 17वीं शताब्दी तक यूरोप में हुए सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों ने 'पुनर्जागरण' में भूमिका निाई थी। भारतीय नवजागरण का अर्थ है एक नया विचार जिसके कारण देश में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक परिवर्तन लाया जा सके। इस दुनिया में नवजागरण एक वैचारिक अवधारणा है जिसका विकास भिन्न-भिन्न देशों में विभिन्न ऐतिहासिक परिस्थितियों, कालों एवं विभिन्न रूपों में हुआ था। इस दुनिया में शरिनेसां' का काल प्रायः पश्चिमी युरोप जिसमें इटली, फ्रांस, ब्रिटेन, स्पेन, जर्मनी जैसे देश से समझा जाता हैं। शरिनेसां' को इनकी सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक प्रगति का काल माना जाता है। इस काल में कला, संगीत, साहित्य और विज्ञान के क्षेत्र में परिवर्तन हुआ था। सर्वप्रथम पुनर्जागरण काल का आरंभ इटली से हुआ था। भारत में हिंदी के लेखकों ने अपने साहित्य के माध्यम से स्वतंत्रता आंदोलन को एक गति दी थी। भारत में हिन्दी साहित्य में 18वीं और 19वीं शताब्दी को 'हिन्दी पुनर्जागरण काल' माना जाता है। भारत में हिंदी साहित्य में 18वीं और 19वीं शताब्दी के हिंदी लेखकों ने अपनी पांडुलिपियों के माध्यम से अंग्रेजी हुकूमत के खिलाफ आवाज उठाई थी। नवजागरण युग भारतीय स्वतंत्रता से पूर्व हिंदी साहित्य का संक्रमणकालीन काल है। भारत में हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को भारतीय हिन्दी पुनर्जागरण आंदोलन का प्रमुख प्रवर्तक माना जाता है। हिंदी साहित्य के मंच से हिन्दी साहित्य में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भारत में अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध आवाज उठाई थी। इस हिंदी साहित्य में, कई कहानीकार, लेखक, कवि हैं जिन्होंने भारत में ब्रिटिश हुकूमत के खिलाफ अपनी राष्ट्रवादी आवाज उठाई थी। भारत में हिंदी साहित्य में, तत्कालीन कई हिंदी लेखक, कहानीकार महसूस करते हैं कि ब्रिटिश साम्राज्यवादी सरकार भारत को लूट रही है। हिंदी भाषा के लेखकों और कवियों ने भी भारत में ब्रिटिश सरकार की शोषणकारी नीतियों का विरोध किया था। यह विश्वसनीय तथ्य है कि भारत में हिंदी साहित्य में तत्कालीन सभी हिंदी दिग्गज लेखक और कवि राष्ट्रवादी थे और वे चाहते थे कि भारत को ब्रिटिश सरकार से यथाशीघ्र मुक्त किया जाए। इसलिए उन्होंने हिंदी साहित्य लेखन के माध्यम से आम जनता को जागृत करने का निर्णय लिया। इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि ब्रिटिश शासन के दौरान, भारत में हर वर्ग को लूटा गया। इस शोध-पत्र में लेखक ने भारतीय हिंदी साहित्य में पुनर्जागरण काल और स्वतंत्रता आंदोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि को तलाशने का प्रयास किया है।

मुख्य शब्दः भारतीय, नवजागरण, स्वाधीनता, आन्दोलन, वैचारिक।

भूमिका

इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि भारतीय हिंदी साहित्य में पुनर्जागरण काल केवल राजनीतिक स्वतंत्रता तक ही सीमित नहीं था बल्कि इसमें मनुष्य की एकता, समानता और भाईचारे की भावना भी प्रतिबिंबित होती थी। पुनर्जागरण ऐसी चेतना कहलाता है जो पहले कभी न आई हो। भारतीय इतिहास एवं साहित्य में नवजागरण 19वीं शताब्दी के अंतिम दशकों में प्रारंभ हुआ। यही समय था जब भारतीय भाषाओं के साहित्य में भी नवजागरण और स्वाधीनता आंदोलन का गहरा प्रभाव

पड़ा था। भारतीय भाषाओं में नवजागरण के अनुकूल नए विषयों को अपनाने, समाज सुधार के विभिन्न आयामों पर लिखने तथा स्वाधीनता संग्राम के नेताओं और घटनाओं पर विवेचन करने की परंपरा चली थी। ब्रिटिश राज की सत्ता का केंद्र कोलकाता अर्थात बंगाल रहा इसलिए अंग्रेजी शिक्षा के प्रभाव और प्रतिरोध में नवजागरण और पुनरुत्थान की शक्तियां सर्वप्रथम वही दिखाई पड़ी थी। तत्पश्चात् हिंदी, मराठी, गुजराती पश्चिम भारतीय क्षेत्रों एवं तमिल, तेलुगू, कन्नड़, मलयालम के दक्षिणी क्षेत्रों और बांग्ला, असमिया आदि के पूर्वी क्षेत्रों में इन नवजागरण आंदोलनों की गूंज एक साथ सुनाई पड़ी थी। पुनर्जागरण काल में हिंदी साहित्य में ऐतिहासिक घटनाओं के प्रति एक अधिक धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण देखने को मिला है। यह धर्मनिरपेक्ष दृष्टिकोण इतिहास लेखन के प्रति मानवतावादी दृष्टिकोण के उदय के कारण था।

हिंदी साहित्य में भारतेंदु हरिश्चंद्र भारतीय पुनर्जागरण के एक प्रमुख व्यक्तित्व थे जिन्हें इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि अक्सर ष्आधुनिक हिंदी साहित्य का जनकष कहा जाता है। हिंदी साहित्य में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने साहित्य और पत्रकारिता के माध्यम से सामाजिक सुधार और राष्ट्रीय चेतना का प्रचार किया था। भारतेन्दु ने सामाजिक परम्पराओं, कुरीतियों और रीति-रिवाजों के विरुद्ध लिखा था। वे भारतीय हिन्दी साहित्य में अत्यंत प्रगतिशील सोच वाले व्यक्ति के रूप में जाने जाते थे। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने भारतीय लोगों को सत्तारूढ़ ब्रिटिश सरकार के अवैध कानून का विरोध करने के लिए प्रोत्साहित किया था क्योंकि उनका मानना था कि अंग्रेजों को भारतीय लोगों पर शासन करने का कोई कानूनी और नैतिक अधिकार नहीं है और उन्होंने महसूस किया था कि अंग्रेजों को भारत को तुरंत आजाद करना चाहिए। भारतेंदु हरिश्चंद्र ने कई पांडुलिपियां लिखी थीं, जिनमें तत्कालीन सत्तारूढ़ ब्रिटिश सरकार के खिलाफ आम भारतीय जनता की पीड़ा को दर्शाया गया था। हिंदी साहित्य में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने पारंपरिक विधाओं को समकालीन विषयों के साथ मिलाकर हिंदी साहित्य का आधुनिकीकरण किया था और गरीबी, ब्रिटिश शासन और शोषण जैसे मुद्दों को उठाया था। भारतेंदु हरिश्चंद्र के कार्यों, जिनमें नाटक, कविता और निबंध शामिल थे, का उद्देश्य हिंदी को एक राष्ट्रीय भाषा के रूप में स्थापित करना और औपनिवेशिक काल के दौरान भारतीयों में सांस्कृतिक और राजनीतिक पहचान की भावना को प्रेरित करना था। भारतेन्दु हरिश्चन्द ने हिन्दी साहित्य में राष्ट्रवाद की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ब्रिटेन की साम्राज्यवादी नीतियों के पूर्णत: विरोधी थे भारतेन्दु का व्यक्तित्व देशभक्ति से ओतप्रोत था। वे देशभक्ति के मुद्दे पर ब्रिटिश शासन के साथ कोई समझौता नहीं चाहते थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जनता के हृदय में उतरकर उनकी आत्मा तक पहुँचे। इसी कारण वह ऐसा साहित्य निर्माण करने में सफल हुए, जिससे उन्हें हिंदी साहित्य में युग-निर्माता कहा जाता है।

भारतीय हिंदी नवजागरण और स्वाधीनता आन्दोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि:

साहित्य आम जनता के समक्ष अपने विचार प्रस्तुत करने का एकमात्र आसान तरीका है। भारत में नव-जागरण का अर्थ है कि आम जनता शासक वर्ग द्वारा किये गये शोषण के विरुद्ध जागृत हो रही है। यह विश्वसनीय तथ्य है कि भारत में हिंदी साहित्य में जहां तक हिंदी राष्ट्रवादी लेखकों का सवाल है हिंदी साहित्य ही साहित्य में राष्ट्रवादी विचारों को प्रस्तुत करने का एकमात्र तरीका है। भारतीय पुनर्जागरण की प्रकृति कई यूरोपीय देशों के पुनर्जागरण से भिन्न प्रतीत होती है। यूरोप की तरह सामंती तत्वों और पूंजीवादी ताकतों के बीच कोई सीधा संघर्ष नहीं था। यह विश्वसनीय तथ्य है कि भारत में हिंदी साहित्य में भारतीय पुनर्जागरण की शुरुआत बंगाल में हुई। हिंदी नव-जागरण की प्रमुख विशेषताओं में स्वतंत्रता चेतना का जागरण, सामाजिक सुधार, देशभक्ति की भावना तथा हास्य-व्यंग्य के माध्यम से तत्कालीन व्यवस्था पर प्रहार शामिल हैं। इसके अलावा वैज्ञानिक सोच को बढ़ावा देना, गद्य और नई विधाओं का विकास तथा भारतीय संस्कृति का महिमामंडन भी इसमें प्रमुखता से शामिल था।

भारतीय नवजागरण के संदर्भ में भारतेन्दु के इतिहास लेखन का मुख्य उद्देश्य सामंती जीवन और कला दृष्टि से संघर्ष करते हुए जनोन्मुखी दृष्टि की स्थापना करना था। भारत में उस समय ब्रिटिश सरकार अत्याचारी थी और अंग्रेज कानून और नियमों के माध्यम से भारतीयों पर अत्याचार कर रहे थे। भारतेन्दु की पांडुलिपियों को पढ़ने के बाद यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय भारतीय आम जनता का कल्याण उनके जीवन की मुख्य चिंता थी। भारतेंदु हरिश्चंद्र को भारतीय हिंदी साहित्य में एक राष्ट्रवादी लेखक माना जाता था। उन्होंने न केवल नई किस्म की भाषा का विकास किया बल्कि आधुनिक भारत की समस्याओं पर भी खुलकर चिंतन किया। वे इन पत्रिकाओं के जरिए अक्सर देशप्रेम विकसित करने की कोशिश किया करते थे। हरिश्चंद्र बाबू ने इन पत्रिकाओं के लिए ढेरों निबंध, आलोचना और रिपोर्ताज लिखे। भारतेन्दु तत्कालीन ब्रिटिश शासन की चापलूसी नहीं करते थे। उन्होंने अपने साहित्य में हमेशा गैर-ब्रिटिश दृष्टिकोण को अपनाया था। हरिश्चंद्र बाबू ने श्भारत दुर्दशाश जैसे नाटकों

और कविताओं के माध्यम से अपने समय के समाज की पतनशील स्थिति का मार्मिक चित्रण किया और देशभक्ति की भावना पर बल दिया था।

नवजागरण काल के लेखकों के मन में राष्ट्रीय भावना केंद्रित थी। उन्हें व्यक्तिगत क्षति का कोई डर नहीं था। वे भारत में ब्रिटिश शासन के खिलाफ बहुत मुखर थे। उन्होंने भारत में ब्रिटिश शासन के खिलाफ समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में लेख लिखना शुरू कर दिया था। उन्होंने भारतीय आम जनता का विश्वास हासिल कर लिया था। आज यदि भारत स्वतंत्र है तो इसमें उन हिन्दी लेखकों और कवियों की मुख्य भूमिका है जिन्होंने भारत में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध वातावरण तैयार किया। इन पुनर्जागरण युग के हिंदी लेखकों और कवियों ने भारत में ब्रिटिश शासन के खिलाफ आम भारतीय जनता को प्रेरणा प्रदान की थी।

पुनर्जागरण काल के हिन्दी लेखकों और कवियों ने भारतीयों को तत्कालीन ब्रिटिश शासन की अवज्ञा करने के लिए प्रेरित किया था। अत: यह कहा जा सकता है कि 1947 में भारत को मिली आजादी में न केवल स्वतंत्रता सेनानियों की भूमिका थी, बल्कि पुनर्जागरण काल के लेखकों और कवियों की भी भूमिका थी। भारतेंदु युग के जितने भी हिंदी साहित्य के लेखक थे उन सब लोगो ने भारत की आजादी के लिए बहुत साहित्य रचा था। देशभक्ति की भावना और समाज-समर्थक नीति पुनर्जागरण काल के हिन्दी साहित्य के कवियों और लेखकों की मुख्य चिंता थी। यह देखा गया है कि पुनर्जागरण काल के हिन्दी साहित्य के लेखकों और कवियों ने एक ऐसे साहित्य का सृजन किया जिसने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध भारतीय जनता की राष्ट्रवादी भावना को सशक्त किया। यह एक विचारणीय तथ्य है कि नवजागरण आन्दोलन ने स्वतंत्रता आन्दोलन के लिए वैचारिक पृष्ठभूमि तैयार करने में भूमिका निभाई थी।

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि यह विश्वसनीय तथ्य है कि भारत में हिंदी साहित्य में नवजागरण का अर्थ है कि आम जनता को उत्पीड़न के प्रति जागरूक किया जा रहा है। यह विचारणीय तथ्य है कि अन्याय और उत्पीड़न के विरुद्ध खड़े होने को हिन्दी साहित्य में पुनर्जागरण कहा गया है। इसमें हिंदी साहित्य के लेखकों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। भारत में 1857 की क्रांति के बाद, भारतीय हिंदी साहित्य लेखकों और कवियों ने भारत पर अत्याचार करने के लिए ब्रिटिश सरकार की आलोचना करना शुरू कर दिया था भारतीय हिंदी लेखकों ने ब्रिटिश शासन के आर्थिक और राजनीतिक शोषण को उजागर किया है और किसानों व कारीगरों की दयनीय स्थिति के बारे में आवाज उठाई है। भारतीय हिंदी साहित्य के लेखकों और कवियों ने स्वदेशी वस्तुओं के उपयोग को बढ़ावा दिया है। हिंदी साहित्यकारों की राष्ट्रवादी भावना के कारण ही 1947 में भारत को स्वतंत्रता मिली। हिंदी के विभिन्न लेखकों और उपन्यासकारों ने साहित्य के माध्यम से आम जनता के पुनर्जागरण में अनुकरणीय भूमिका निभाई है। हालांकि उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं लिया, लेकिन उन्होंने अपने राष्ट्रवादी साहित्य और पांडुलिपियों के माध्यम से आम जनता को जागृत किया। इन लेखकों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की भूमिका सराहनीय थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साहित्य और लेखन में ब्रिटिश उपनिवेशवाद के अत्याचारों और भारतीय समाज की दुर्दशा को दर्शाया गया जिससे भारतीयों में आत्म-सम्मान और एकता की भावना जागृत हुई। अंतत: भारतीय राष्ट्रवादी लेखकों और कवियों की इसी राष्ट्रवादी भावना के कारण 1947 में भारत को स्वतंत्रता मिली।

संदर्भ सूची :

1. संतोष रोड़े. "हिंदी प्रदेश का नवजागरण और भारतेंदु हरिश्चंद्र." अंतर्राष्ट्रीय हिंदी एवं सामाजिक विज्ञानं शोध पत्रिका,13.1, (2025): 34-38.
2. नीरजा सिंह, हिन्दी नवजागरण की मान्यता, साहित्य संहिता,1.9,(2015):57-65.
3. प्रकाश देव, "हिंदी नवजागरण और राष्ट्रीय निजी में बालमुकुंद गुप्ता का योगदान", इंटरनेशनल जर्नल ऑफ सोशल साइंस रिसर्च,1. 5,(2024):20-25.
4. जोनटि दुवरा, "नवजागरण के अग्रदूत और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र." अंतर्राष्ट्रीय हिंदी एवं सामाजिक विज्ञानं शोध पत्रिका, 9.2, (2021):1-4.
5. संजीव कुमार भरदुाज. ष्साहित्ये में सामाजिक यथार्थ का निरूपण." भारतीय आधुनिक शिक्षा,37.2, (2016):38-46.
6. मोहन सिंह. "भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन और हिंदी कविता: एक विद्वत अध्ययन, शोध संगम पत्रिका,1.1,(2024):31-37.
7. शिवा धमेजा और बृजेश कुमार. "वैदिक संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में आर्यो की उत्पत्ति एवं भारत के नवजागरण में योगदान." अंतर्राष्ट्रीय हिंदी एवं सामाजिक विज्ञानं शोध पत्रिका, 4.1,(2016):18-26.

8. नीलम और मधुबाला शर्मा. "हिंदी भाषा की उपयोगिता और वर्चस्वी प्रसार." साहित्य संहिता, 5.11, (2019): 9-23.
9. धनंजय सिंह. "स्वाधीन भारत के दो दशक पहले: हिंदी साहित्य में मोहभंग." पूर्वोत्तर प्रभा ,1.1, (2021):62-65.
10. बीना माथुर. "असहयोग आन्दोलन की सफलता में स्वदेशी की भूमिका." अंतर्राष्ट्रीय हिंदी एवं सामाजिक विज्ञानं शोध पत्रिका, 5. 1,(2017):64-69.
11. राजकुमार मीना, "हिन्दी नवजागरण और भारतेन्दु हरिश्चंद्र," (2016).
12. अंजलि मिश्रा, "हिन्दी आलोचना में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की भूमिका एवं योगदान, शोध संगम पत्रिका,1.4,(2025):18-24.
13. दीनानाथ मौर्य, "नवजागरण के दौर में भाषायी जमीन की तलाश." पाठशाला भीतर और बाहर, 1, (2018): 148-152.
14. गरिमा श्रीवास्तव, "नवजागरण, स्त्री प्रश्न और आचरण पुस्तकें." 4,(2014):683-710.
15. जोनटि दुवरा, "नवजागरण के अग्रदूत और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र." अंतर्राष्ट्रीय हिंदी एवं सामाजिक विज्ञानं शोध पत्रिका, 9.2,(2021):1-4.

अमूर्त चित्रकला में संरचनात्मकता: एक विवेचनात्मक अध्ययन

डॉ० अर्चना त्यागी

शोधनिर्देशिका, ललित कला विभाग, महाराजा अग्रसेन हिमालयन गढवाल विश्वविद्यालय, पौडी गढवाल।

नीतू

शोधच्छात्रा, ललित कला विभाग, महाराजा अग्रसेन हिमालयन गढवाल विश्वविद्यालय, पौडी गढवाल।

सार (Abstract)

इस शोध-पत्र का उद्देश्य अमूर्त चित्रकला के सौंदर्यशास्त्रीय और अर्थ-निर्माण प्रक्रियाओं का विश्लेषण करने के लिए संरचनात्मकता के सिद्धांतों का विस्तार से अध्ययन करता है। संरचनात्मकता, जो फर्डिनेंड डी सॉस्यूर के भाषा विज्ञान और क्लाउड लेवी-स्ट्रॉस के नृविज्ञान से प्रभावित है, यह तर्क देती है कि अर्थ व्यक्तिगत तत्वों के बजाय एक बड़ी प्रणाली के भीतर उनके अंतर्संबंधों और गहरी संरचनाओं से उत्पन्न होता है। अमूर्त कला, वस्तुनिष्ठ प्रतिनिधित्व को त्यागकर, विशुद्ध रूप से दृश्य तत्वों (रेखा, रंग, रूप) का उपयोग करती है, जो उन्हें गैर-प्रतिनिधित्ववादी संकेतकों में बदल देती है। यह अध्ययन पड़ताल करता है कि कैसे ज्यामितीय अमूर्तता और गीतात्मक अमूर्तता के कलाकारों ने अनजाने में या जानबूझकर संरचनात्मक सिद्धांतों का उपयोग किया, और कैसे यह ढाँचा अमूर्त कला के सार्वभौमिक अपील और संचार क्षमता की व्याख्या करता है। यह शोध-पत्र संरचनात्मकता के अनुप्रयोगों के साथ-साथ उत्तर-संरचनात्मकता द्वारा प्रस्तुत की गई चुनौतियों पर भी प्रकाश डालता है।

प्रस्तावना -

संरचनात्मकता बीसवीं शताब्दी के बौद्धिक इतिहास में एक मौलिक बदलाव का प्रतिनिधित्व करती है, जिसने मानविकी और सामाजिक विज्ञानों में आत्मगत अनुभव और इतिहास पर केंद्रित पूर्ववर्ती विचारों को चुनौती दी। इसकी जड़ें स्विस भाषाविद फर्डिनेंड डी सॉस्यूर के श्कोर्स इन जनरल लिंग्विस्टिक्सश में हैं। सॉस्यूर ने भाषा को एक सामाजिक संस्था और संरचनात्मक प्रणाली के रूप में देखा। सॉस्यूर के अनुसार भाषा के व्यक्तिगत उपयोग और भाषा को नियंत्रित करने वाले अंतर्निहित नियमों और सम्मेलनों की अमूर्त प्रणाली के बीच अंतर किया। संरचनात्मकता श्भाषाश या अंतर्निहित नियम प्रणाली पर ध्यान केंद्रित करती है।

सॉस्यूर के अनुसार, चिह्न एक भौतिक संकेतक (ध्वनि या छवि) और एक वैचारिक संकेतित अवधारणा का मिलन है। यह संबंध मनमाना होता है, जिसका अर्थ है कि एक शब्द और उसका अर्थ प्राकृतिक रूप से जुड़े नहीं होते; वे केवल प्रणाली के भीतर समझौतों पर आधारित होते हैं।

लेवी-स्ट्रॉस ने नृविज्ञान में इन सिद्धांतों को लागू किया, यह तर्क देते हुए कि रिश्तेदारी की व्यवस्था, मिथक और अनुष्ठान भी मस्तिष्क की गहरी, सार्वभौमिक द्विआधारी संरचनाओं (जैसे कच्चा/पका, प्रकृति/संस्कृति) को दर्शाते हैं।

अमूर्त कला में संरचनात्मकता की प्रासङ्गिकता

अमूर्त चित्रकला 20वीं शताब्दी की शुरुआत में कला में एक क्रांतिकारी मोड़ लेकर आई, जिसने सदियों पुरानी पश्चिमी कला की प्रतिनिधित्ववादी परंपरा को तोड़ा। जब एक कलाकृति प्राकृतिक दुनिया में किसी वस्तु का चित्रण नहीं करती है, तो वह अपने अर्थ को किस आधार पर संप्रेषित करती है? संरचनात्मकता के आधार पर अर्थ स्वयं कलाकृति के आंतरिक संगठन और व्यवस्था में निहित है। अमूर्त कला में, रंग, रेखा, और रूप अपनी प्रतिनिधित्ववादी कार्यक्षमता खो देते हैं और शुद्ध संकेतक बन जाते हैं, जिनका अर्थ केवल कैनवास पर उनके आस-पास के अन्य तत्वों के साथ उनके अंतर और संबंधों से

निर्धारित होता है। इस प्रकार, अमूर्त कला स्वयं एक दृश्य भाषा या दृश्य अर्ध-विज्ञान प्रणाली बन जाती है, जिसे संरचनात्मक रूप से विघटित और विश्लेषण किया जा सकता है।

ज्यामितीय अमूर्तता और कठोर संरचनात्मकता -

ज्यामितीय अमूर्तकला संरचनात्मक विश्लेषण के लिए सबसे स्पष्टता प्रदान करती है, क्योंकि ये दृश्य तत्वों को उनकी मूलभूत, सार्वभौमिक इकाइयों तक कम करते हैं। डच आंदोलन डी स्टिज्ल (शैली) के प्रमुख कलाकार पीट मोंड्रियन ने संरचनात्मक सिद्धांतों का एक अनजाने में, लेकिन प्रभावी ढंग से उपयोग किया। मोंड्रियन ने अपनी कला को केवल क्षैतिज और ऊर्ध्वाधर रेखाओं, प्राथमिक रंगों (लाल, पीला, नीला) और गैर-रंगों (सफेद, काला, ग्रे) तक सीमित कर दिया। उनकी रचनाएँ 'हॉरिजॉन्टल/वर्टिकल', 'रंग/गैर-रंग', 'छोटा/बड़ा ब्लॉक' जैसे मूलभूत द्विआधारी विरोधों की परस्पर क्रिया पर आधारित हैं। क्षैतिज रेखाएँ शांति और स्थिरता का प्रतिनिधित्व करती हैं, जबकि ऊर्ध्वाधर रेखाएँ जीवन शक्ति और गति का प्रतिनिधित्व करती हैं। कलाकृति का अर्थ व्यक्तिगत रूप या रंग में नहीं, बल्कि इन विपरीत शक्तियों के गतिशील संतुलन में निहित होता है।

मोंड्रियन का नव-प्लास्टिसिज्म एक तरह का कलात्मक व्याकरण स्थापित करता हैख़नियमों का एक कठोर सेट जिसके भीतर ही अर्थ उत्पन्न हो सकता है। दर्शक कलाकृति को श्पढ़ताश है, न कि उसकी व्याख्या करता है, इन संरचनात्मक रिश्तों को समझकर 'आध्यात्मिक सामंजस्य' या 'कॉस्मिक ऑर्डर' की अवधारणा तक पहुँचता है, जो उनके अनुसार कला का अंतिम लक्ष्य था।

रूसी कलाकार काजीमीर मालेविच ने अमूर्तता को उसकी तार्किक चरम सीमा तक पहुँचाया। उनके आंदोलन सुप्रीमेटिज्म का उद्देश्य कला की 'परम वास्तविकता' (Supremacy of pure artistic feeling) को स्थापित करना था।

'ब्लैक स्क्वायर' (1915) जैसी रचनाएँ दृश्य तत्वों को केवल ज्यामितीय रूप (Geometric Form) (वर्ग, वृत्त, क्रॉस) और रंग तक कम कर देती हैं। मालेविच ने दावा किया कि ये रूप भावना की शुद्धतम अभिव्यक्ति थे, जो बाहरी दुनिया की वस्तुओं से पूरी तरह से मुक्त थे।

मालेविच की संरचनात्मकता मोंड्रियन की तरह औपचारिक नहीं थी, बल्कि आध्यात्मिक और अस्तित्वगत थी। कलाकृति का अर्थ अंतरिक्ष के भीतर शुद्ध रूपों के पदानुक्रम सर्वोच्चता और उनके विरोध (जैसे काले वर्ग की अनंत सफेद पृष्ठभूमि से विपरीतता) द्वारा उत्पन्न होता है। सफेद पृष्ठभूमि 'शून्य' या 'अनंतता' को दर्शाती है, जबकि ज्यामितीय रूप इस शून्य में रखी गई श्भावनाश का प्रतीक है, जिससे एक संरचनात्मक 'नाटक' पैदा होता है।

गीतात्मक अमूर्तता और लचीली संरचनाएँ -

गीतात्मक अमूर्तता (जैसे अमूर्त अभिव्यक्तिवाद या टैचिज्म) में संरचनाएँ उतनी कठोर नहीं होती हैं जितनी ज्यामितीय अमूर्तता में, लेकिन संरचनात्मक विश्लेषण अभी भी अर्थ-निर्माण को समझने में उपयोगी है।

अमूर्त कला के एक अन्य अग्रणी वासिली कैंडिंस्की (Wassily Kandinsky) ने कला को संगीत के करीब बताया, जहाँ ध्वनि की तरह, रंग और रूप सीधे आत्मा को प्रभावित करते हैं। हालाँकि उनके चित्र सहज और भावनात्मक दिखते हैं, फिर भी वे रंगों, रेखाओं और रूपों के एक जटिल विन्यास द्वारा शासित होते हैं। उनके 'कॉम्पोजिशन' शीर्षक वाले कार्य यह दर्शाते हैं कि वे एक अंतर्निहित व्यवस्था में विश्वास करते थे।

कैंडिंस्की ने सिनेस्थेसिया (संवेदनाओं का मिश्रण) के विचार पर काम किया। उनके लिए, पीले रंग का कोना एक तीखी ध्वनि उत्पन्न करता था, जबकि नीला एक गहरी, शांत ध्वनि। संरचनात्मक रूप से, ये तत्व चिह्न के रूप में कार्य करते हैं जो एक दूसरे के साथ संबंध स्थापित करते हैं: एक तेज, ऊपर की ओर खींची गई रेखा (संकेतक) एक उत्तेजित भावना (संकेतित) को व्यक्त करती है, जिसे एक शांत, गहरे रंग के धब्बे (दूसरे संकेतक) के साथ विपरीत करके एक जटिल भावनात्मक संरचना का निर्माण किया जाता है।

संरचनात्मक विश्लेषण यहाँ कलाकृति में दृश्य लय (visual rhythm) और गति (movement) के पैटर्न को समझने का प्रयास करता है, जो संगीत की तरह ही एक अमूर्त संरचनात्मक टेम्पलेट का पालन करता है।

अमूर्त अभिव्यक्तिवाद -

जैकसन पोलॉक और विलेम डी कूनिंग जैसे कलाकारों की एक्शन पेंटिंग को अक्सर संरचनात्मकता के विपरीत माना जाता है, क्योंकि वे कलाकार के 'कर्म' और व्यक्तिपरक अभिव्यक्ति पर जोर देते हैं। हालाँकि, संरचनात्मक दृष्टिकोण अमूर्त अभिव्यक्तिवाद में भी पैटर्न और पदानुक्रम खोजता है। पोलॉक के श्ड्रिप पेंटिंग्सश में, पेंट की बूँदों का अनियमित नेटवर्क एक जटिल श्ओवर-ऑलश संरचना बनाता है जहाँ कैनवास पर कोई एकल केंद्र बिंदु या पदानुक्रमित फोकल पॉइंट नहीं होता।

कलाकृति की संरचना को सामग्री के रूप में भी देखा जा सकता है: पेंट की पतली परतें (संकेतक) घनी, भारी परतों (संकेतक) के विपरीत हैं; यह द्वि-आधारी विरोध 'अस्थिरता/स्थिरता' या 'क्षणभंगुरता/स्थायित्व' जैसे अमूर्त विचारों को संप्रेषित करता है। यह सामग्री-आधारित संरचनात्मकता 'कलाकार की उपस्थिति' के बावजूद अर्थ का एक व्यवस्थित स्रोत प्रदान करती है।

संरचनात्मकता की आलोचना और उत्तर-संरचनात्मक प्रतिक्रिया

संरचनात्मकता ने अमूर्त कला के विश्लेषण में मूल्यवान अंतर्दृष्टि प्रदान की, लेकिन 1960 के दशक के उत्तरार्ध में इसे उत्तर-संरचनात्मकता द्वारा गंभीर आलोचना का सामना करना पड़ा।

संरचनात्मकता यह मानती है कि संरचना स्थिर और अपरिवर्तनीय है, जो अर्थ को श्निश्चितश करती है। उत्तर-संरचनात्मकता इसे चुनौती देती है। जाक डेरिडा ने श्अंतरश की अवधारणा प्रस्तुत की, यह तर्क देते हुए कि किसी भी संकेतित को कभी भी पूरी तरह से नहीं पकड़ा जा सकता, क्योंकि प्रत्येक चिह्न का अर्थ हमेशा अन्य चिह्नों पर उसके अवलंबन और विलंब में निहित होता है।

अमूर्त कला में, इसका अर्थ है कि मोंड्रियन की कठोर संरचनाएँ भी पूरी तरह से निश्चित नहीं हैं। एक दर्शक लाल वर्ग के 'अर्थ' को कभी भी अंतिम रूप से नहीं जान सकता; वह अर्थ हमेशा उसके नीले, पीले और सफेद पड़ोसियों से संबंधित होता है, जिससे अर्थ गतिशील और विघटित हो जाता है।

उत्तर-संरचनावादियों ने संरचनात्मकता की इस आलोचना को उजागर किया कि यह कलाकार/दर्शक के व्यक्तिपरक श्विषयश और कला के इतिहास को अनदेखा करती है।

रोलैंड बार्थेस (Roland Barthes) ने 'लेखक की मृत्यु' (The Death of the Author) की घोषणा की, जो संरचनात्मकता के अनुरूप है, यह तर्क देते हुए कि कलाकृति की व्याख्या संरचना में होनी चाहिए, न कि कलाकार के इरादे में। हालाँकि अमूर्त कला को अक्सर एक विशेष ऐतिहासिक और सामाजिक संदर्भ (जैसे WWII के बाद अमेरिका में अमूर्त अभिव्यक्तिवाद का उदय) में उत्पन्न होने वाली माना जाता है। संरचनात्मकता इस संदर्भ को नजरअंदाज करती है, जो इसकी व्याख्या को अत्यधिक सैद्धांतिक और संदर्भहीन बना सकती है।

इन आलोचनाओं के बावजूद, संरचनात्मकता ने बाद के सिद्धांतों के लिए आधार तैयार किया। दृश्य अर्ध-विज्ञान (Visual Semiotics), संरचनात्मकता का एक उप-क्षेत्र, अमूर्त कला का अधिक व्यापक रूप से विश्लेषण करता है, जिसमें सांस्कृतिक कोड (cultural codes) और सामाजिक संदर्भ को शामिल किया जाता है, जिससे यह शुद्ध 'अमूर्त संरचना' से आगे बढ़कर कलाकृति के सामाजिक अर्थ को समझता है।

निष्कर्षत: अमूर्त चित्रकला, अपनी गैर-प्रतिनिधित्ववादी प्रकृति के कारण, पारंपरिक कला आलोचना के तरीकों को चुनौती देती है। संरचनात्मकता एक मौलिक सैद्धांतिक ढाँचा प्रदान करती है जिसके द्वारा हम इस कला रूप में अर्थ के निर्माण को समझ सकते हैं। ज्यामितीय अमूर्तता की कठोर और तार्किक व्यवस्थाओं से लेकर गीतात्मक अमूर्तता की अधिक सहज और तरल संरचनाओं तक, संरचनात्मकता यह स्थापित करती है कि अमूर्त कला भी एक व्यवस्था) है-एक दृश्य भाषा है जो अपने आंतरिक तत्वों के संबंधों और विरोधों के माध्यम से संवाद करती है।

संरचनात्मकता हमें सिखाती है कि अमूर्त कला में सौंदर्य और अर्थ केवल एक शुद्ध रूप नहीं हैं, बल्कि संबंधों के एक जटिल नेटवर्क का परिणाम हैं। हालांकि उत्तर-संरचनात्मक आलोचना ने अर्थ की निश्चितता के दावे को कमजोर कर दिया, फिर भी संरचनात्मक दृष्टिकोण अमूर्त कला की सार्वभौमिकता और उसकी सैद्धांतिक दृढ़ता को उजागर करने के लिए एक आवश्यक प्रारम्भिक बिंदु बना हुआ है। यह अंतर्दृष्टि अमूर्त कला की आलोचनात्मक समझ के लिए आधारशिला बनी हुई है,

जो हमें कलाकृति को केवल अभिव्यक्ति के रूप में नहीं, बल्कि संरचनात्मक रूप से व्यवस्थित संचार के रूप में देखने के लिए प्रेरित करती है।

संदर्भ -

1. Saussure, Ferdinand de. (1983). Course in General Linguistics. (R. Harris, Trans.). Open Court. (Original work published 1916).
2. Lévi-Strauss, Claude. (1963). Structural Anthropology. (C. Jacobson & B. G. Schoepf, Trans.). Basic Books.
3. Michelson, Annette. (1969). "Art and the Structuralist Perspective." Artforum, 7(10), 30-33.
4. Mondrian, Piet. (1993). The New Art-The New Life: The Collected Writings of Piet Mondrian. (H. Holtzman & M. S. James, Eds.). Da Capo Press.
5. Derrida, Jacques. (1978). Writing and Difference. (A. Bass, Trans.). University of Chicago Press.
6. Kandinsky, Wassily. (1977). Concerning the Spiritual in Art. (M. T. H. Sadler, Trans.). Dover Publications. (Original work published 1912).
7. Greenberg, Clement. (1965). "Modernist Painting." Art and Literature, 4, 193-201.
8. Barthes, Roland. (1967). Elements of Semiology. (A. Lavers & C. Smith, Trans.). Hill and Wang.

भारत, बांग्लादेश और श्रीलंका पर चीन के बढ़ते प्रभाव का रणनीतिक विश्लेषण

महेन्द्र प्रताप यादव

शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

शोध सारः-

भारत के दो महत्वपूर्ण पड़ोसी देशों- बांग्लादेश और श्रीलंका पर चीन के बढ़ते भू-रणनीतिक, आर्थिक और सैन्य प्रभाव का गहन विश्लेषण प्रस्तुत करती है। चीन का यह विस्तार उसके महत्वाकांक्षी बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव (BRI) और 'मोतियों की माला' (String of Pearls) सिद्धांत जैसे भू-आर्थिक और सैन्य उपकरणों के माध्यम से हो रहा है। श्रीलंका के मामले में, चीन की 'ऋण-जाल' कूटनीति का सबसे स्पष्ट उदाहरण हंबनटोटा बंदरगाह का अधिग्रहण है, जिसने भारत के लिए गंभीर सुरक्षा चुनौतियाँ खड़ी की हैं। वहीं, बांग्लादेश में चीन के बढ़ते आर्थिक निवेश, सैन्य आपूर्ति और संवेदनशील परियोजनाओं (जैसे तीस्ता नदी परियोजना) में उसकी भागीदारी से भारत के क्षेत्रीय प्रभाव पर दबाव बढ़ रहा है।

इन प्रभावों से उत्पन्न होने वाली बहुआयामी चुनौतियों (रणनीतिक घेराव, आर्थिक प्रतिस्पर्धा और कूटनीतिक झुकाव) का मूल्यांकन करती है। अंत में, इसमें चीन की विस्तारवादी नीतियों का मुकाबला करने के लिए भारत की बहु-आयामी जवाबी रणनीतियों का विस्तृत विवरण दिया गया है, जिसमें 'नेकलेस ऑफ डायमंड्स' (Necklace of Diamonds) रणनीति, पड़ोसी देशों को आर्थिक संकट में सहायता और अपनी 'एक्ट ईस्ट' नीति के माध्यम से बढ़ते सुरक्षा सहयोग को मजबूत करना शामिल है। यह विश्लेषण एक विश्वसनीय और नैतिक भागीदार के रूप में भारत की भूमिका पर जोर देता है, जो चीन के अपारदर्शी और सशर्त सहयोग के विपरीत है।

चीन की दक्षिण एशिया रणनीति का विहंगम विश्लेषणः-

बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव (BRI) एक बहुआयामी विकास रणनीति है जिसकी शुरुआत चीन ने वर्ष 2013 में की थी। यह परियोजना लगभग 2,000 वर्ष पुराने सिल्क रोड की अवधारणा से प्रेरित है, जिसने यूरेशिया के माध्यम से चीन को भूमध्य सागर से जोड़ा था। बीआरआई का प्राथमिक लक्ष्य बुनियादी ढाँचे, व्यापार और आर्थिक सहयोग को बढ़ाकर अंतर्राष्ट्रीय कनेक्टिविटी को बढ़ावा देना है, जिसमें रेलवे, बंदरगाह, राजमार्ग और ऊर्जा बुनियादी ढाँचे जैसी परियोजनाओं की एक विस्तृत श्रृंखला शामिल है। यह पहल दक्षिण-पूर्व एशिया, मध्य एशिया, खाड़ी क्षेत्र, अफ्रीका और यूरोप को सड़क, रेल और समुद्री मार्ग से जोड़ने वाली परियोजनाओं का एक विशाल समूह है।

बीआरआई को अक्सर एक शुद्ध आर्थिक पहल के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, लेकिन इसकी मूल प्रेरणाएं आर्थिक सीमाओं से कहीं आगे निकल जाती हैं। शोध सामग्री स्पष्ट रूप से संकेत देती है कि इस परियोजना का एक प्रमुख उद्देश्य चीनी पूंजी, श्रम और प्रौद्योगिकी का निर्यात करना है, जिसके तहत नए बंदरगाहों, औद्योगिक केंद्रों और विशेष आर्थिक क्षेत्रों का निर्माण किया जाता है। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि इस पहल के तहत सैन्य सुविधाओं का विकास भी एक प्रमुख उद्देश्य है। यह चीन के भू-आर्थिक उद्देश्यों के भू-रणनीतिक में संक्रमण का प्रमाण है। उदाहरण के लिए, बीआरआई के एक महत्वपूर्ण घटक, चीन-पाकिस्तान इकोनॉमिक कॉरिडोर (CPEC) का निर्माण पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर (PoK) से होकर गुजरता है। यह परियोजना न केवल पाकिस्तान में कनेक्टिविटी को बढ़ावा देती है, बल्कि यह चीन को हिंद महासागर तक पहुंचने में भी सक्षम बनाती है, जो कि व्यापार और ऊर्जा सुरक्षा के लिहाज से एक महत्वपूर्ण रणनीतिक लाभ है। इसलिए, बीआरआई सिर्फ व्यापार मार्गों को खोलने के बारे में नहीं है, बल्कि यह वैश्विक शक्ति प्रक्षेपण और रणनीतिक लाभ प्राप्त करने के लिए चीन का एक महत्वपूर्ण उपकरण है। भारत इस परियोजना का शुरू से ही विरोध करता रहा है, क्योंकि यह भारत की संप्रभुता और सामरिक चुनौतियों को सीधे तौर पर प्रभावित करती है।

'मोतियों की माला' (String of Pearls) सिद्धांतः एक रणनीतिक घेरावः-

'मोतियों की माला' शब्द उन क्षेत्रों को संदर्भित करता है जहां चीन हिंद महासागर में अपने भू-राजनीतिक और सैन्य प्रभाव का विस्तार करने के लिए अपने ठिकानों का विकास कर रहा है। इस माला में प्रत्येक मोती एक जंक्शन है जो चीनी भू-राजनीतिक प्रभाव या सैन्य अस्तित्व को दर्शाता है। इस रणनीति का मुख्य उद्देश्य भारत को घेरना, उसकी रणनीतिक स्थिति को कमजोर करना, चीन की नौसैनिक शक्ति को बढ़ाना और पूरे एशिया में अपने प्रभाव क्षेत्र को मजबूत करना है। पाकिस्तान में ग्वादर, श्रीलंका में हंबनटोटा, बांग्लादेश में चटगांव और म्यांमार में सितवे जैसे बंदरगाह इस रणनीति के प्रमुख 'मोती' हैं।

इस सिद्धांत का गहन विश्लेषण यह दर्शाता है कि यह केवल व्यापार मार्गों को सुरक्षित करने के लिए रणनीतिक बंदरगाहों का एक नेटवर्क बनाने तक सीमित नहीं है। यह हिंद महासागर में चीन की स्थायी सैन्य उपस्थिति का मार्ग प्रशस्त करता है। चीन द्वारा 2017 में जिबूती में अपने पहले विदेशी सैन्य अड्डे का अधिग्रहण करना इस इरादे को स्पष्ट करता है। ये 'मोती' चीन के लिए भविष्य के नौसैनिक अड्डों के लिए संभावित जंक्शन हैं, जिससे भारत की समुद्री सुरक्षा के लिए सीधा खतरा उत्पन्न होता है। चीन हिंद महासागर में अधिक पनडुब्बियों, विध्वंसक जहाजों और जहाजों के साथ एक बड़ी मारक क्षमता विकसित कर रहा है, और उनकी उपस्थिति पानी के माध्यम से भारत की सुरक्षा के लिए खतरा पेश करती है। यह रणनीति भारत के संसाधनों को रक्षा और सुरक्षा की ओर मोड़ने के लिए भी डिजाइन की गई है, जिससे देश के आर्थिक विकास में बाधा आ सकती है।

श्रीलंकाः चीन की 'ऋण-जाल' कूटनीति का प्रमुख केंद्रः-

चीन श्रीलंका का सबसे बड़ा द्विपक्षीय ऋणदाता है, और श्रीलंका अपने विदेशी ऋण के बोझ से निपटने के लिए चीनी ऋण पर बहुत अधिक निर्भर है। श्रीलंका के सार्वजनिक क्षेत्र का लगभग 15% विदेशी ऋण अकेले चीन से प्राप्त हुआ है। हंबनटोटा बंदरगाह का मामला चीन की ऋण-जाल कूटनीति का सबसे प्रसिद्ध उदाहरण है। चीन ने इस बंदरगाह के निर्माण में लगभग +1 अरब का निवेश किया, जिसे ऋण के रूप में दिया गया। हालांकि, बंदरगाह से कोई खास लाभ नहीं हुआ और यह परिचालन में घाटे में रहा, जिससे श्रीलंका के लिए कर्ज चुकाना असंभव हो गया। नतीजतन, श्रीलंका ने 2017 में बंदरगाह को 99 साल के लिए चाइना मर्चेंट्स पोर्ट होल्डिंग्स कंपनी को पट्टे पर दे दिया, जिससे चीन को एक रणनीतिक रूप से महत्वपूर्ण संपत्ति पर नियंत्रण मिल गया।

यह प्रक्रिया केवल आर्थिक चूक का परिणाम नहीं है। इन कर्जों के साथ अक्सर गोपनीय शर्तें जुड़ी होती हैं, जिन्हें कर्ज लेने वाला देश उजागर नहीं कर सकता है । इस पारदर्शिता की कमी चीन को कमजोर देशों पर दबाव बनाने की अनुमति देती है, जैसा कि हंबनटोटा के मामले में हुआ। यह चीन को अपने रणनीतिक और भू-राजनीतिक हितों को आगे बढ़ाने में मदद करता है, और अंततः श्रीलंका जैसे देशों की संप्रभुता को कमजोर करता है।

2022 में श्रीलंका के अभूतपूर्व आर्थिक संकट के दौरान, चीन के दृष्टिकोण और भारत के दृष्टिकोण के बीच एक स्पष्ट अंतर देखा गया। भारत ने ईंधन और आवश्यक वस्तुओं के लिए लगभग +4 बिलियन की सहायता प्रदान की और ऋण पुनर्गठन के लिए समर्थन पत्र देने वाला पहला देश था। इसके विपरीत, चीन ने केवल +76 मिलियन की मानवीय सहायता की पेशकश की और ऋण पुनर्गठन समिति में शामिल होने में हिचकिचाया, जिससे श्रीलंका को अपने विदेशी ऋण को पुनर्गठित करने में देरी हुई।

रणनीतिक और सैन्य प्रभावः-

श्रीलंका पर चीन का प्रभाव केवल आर्थिक क्षेत्र तक सीमित नहीं है। हंबनटोटा बंदरगाह पर चीनी दोहरे उद्देश्य वाले नौसैनिक जहाज, जैसे कि युआन वांग 5, का लंगर डालना, भारत के लिए गंभीर सुरक्षा चिंताएं पैदा करता है। भारत को संदेह है कि यह जहाज जासूसी और खुफिया जानकारी एकत्र करने के लिए है, जो भारत के सामरिक ठिकानों की जानकारी एकत्र कर सकता है। हंबनटोटा बंदरगाह पर 99 साल का पट्टा चीनी नौसेना के लिए हिंद महासागर में एक स्थायी उपस्थिति प्रदान करने का मार्ग प्रशस्त करता है। यह भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए एक बड़ा खतरा है।

कूटनीतिक रूप से, श्रीलंका ने चीन के प्रति एक मजबूत झुकाव दिखाया है। उसने 'एक चीन' नीति के प्रति अपनी दृढ़ प्रतिबद्धता को दोहराया है और संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद (UNHRC) में चीन के पक्ष में मतदान किया है। श्रीलंका

के राष्ट्रपति रानिल विक्रमसिंघे ने भी चीन के साथ संबंधों को जारी रखने की बात कही है, हालांकि उन्होंने भारत की सुरक्षा हितों को ध्यान में रखने का आश्वासन भी दिया है। यह भारत के लिए एक जटिल कूटनीतिक चुनौती है, क्योंकि उसे अपने पड़ोसी को चीन के रणनीतिक प्रभाव के दायरे में जाने से रोकना है।

बांग्लादेशः आर्थिक और सैन्य संबंधों की नई दिशाः-

चीन बांग्लादेश में एक महत्वपूर्ण आर्थिक खिलाड़ी बन गया है, जो सितंबर 2024 तक +2.67 बिलियन के प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) के साथ देश का दूसरा सबसे बड़ा निवेशक है। चीन का निवेश मुख्य रूप से विशाल अवसंरचना परियोजनाओं, जैसे पुल, राजमार्ग और बिजली संयंत्रों पर केंद्रित है। हालांकि, ये निवेश आर्थिक विकास के दृश्यमान प्रतीक हैं, लेकिन ये कृषि, स्वास्थ्य या शिक्षा जैसे जमीनी स्तर के क्षेत्रों को मजबूत नहीं करते हैं।

चीन और भारत के बीच तीस्ता नदी परियोजना को लेकर एक महत्वपूर्ण भू-राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता देखी जा रही है। चीन इस परियोजना के लिए बांग्लादेश को 6,700 करोड़ टका का ऋण दे रहा है, जिसका उद्देश्य बाढ़ नियंत्रण और नदी तट के कटाव को कम करना है। यह परियोजना भारत के लिए अत्यधिक संवेदनशील है क्योंकि यह 'चिकन नेक' (सिलीगुड़ी गलियारे) के करीब है, जो पूर्वोत्तर को शेष भारत से जोड़ता है। यह परियोजना भारत और बांग्लादेश के बीच तीस्ता जल-बंटवारे के दशकों पुराने विवाद से भी जुड़ी है। बांग्लादेश की राजनीतिक अस्थिरता ने इस परियोजना को चीन के पक्ष में स्थानांतरित करने का अवसर दिया है।

बांग्लादेश की सरकार को चीन से +5 बिलियन के भारी-भरकम ऋण की उम्मीद थी, लेकिन चीन ने केवल +800-900 मिलियन का ही ऑफर दिया। यह चीन द्वारा बड़े वादे करने और फिर उनसे पीछे हटने की प्रवृत्ति को दर्शाता है, जिससे बांग्लादेशी सरकार में निराशा हुई। यह चीन को कम वित्तीय जोखिम के साथ रणनीतिक लाभ (प्रभाव और सद्भावना) प्राप्त करने की अनुमति देता है, जबकि प्राप्तकर्ता देश को उनकी विकास महत्वाकांक्षाओं को पूरा करने के लिए अधूरी वित्तीय सहायता के साथ छोड़ देता है।

सैन्य और राजनीतिक प्रभावः-

चीन दशकों से बांग्लादेश का सबसे बड़ा सैन्य आपूर्तिकर्ता रहा है, जिसकी सैन्य सूची का दो-तिहाई से अधिक हिस्सा चीन से आयातित हथियारों से बना है। इस निर्भरता में पनडुब्बियां, लड़ाकू विमान, फ्रिगेट और मिसाइलें जैसी महत्वपूर्ण हथियार प्रणालियां शामिल हैं । इन हथियारों की गुणवत्ता पर गंभीर सवाल उठते रहे हैं। मीडिया रिपोर्टों के अनुसार, चीन द्वारा बेचे गए सैन्य हार्डवेयर अक्सर घटिया गुणवत्ता के होते हैं, जिसमें ठीक से फायर न करने वाले लड़ाकू विमान और खराब रडार शामिल हैं। यह बांग्लादेश की सैन्य तैयारियों को कमजोर करता है और उसकी राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए एक गंभीर खतरा है। इस स्थिति को और जटिल बनाने वाली बात यह है कि चीन बांग्लादेश के पड़ोसी म्यांमार का भी प्रमुख हथियार आपूर्तिकर्ता है, जिसके साथ बांग्लादेश के संबंध तनावपूर्ण हैं। घटिया हथियारों की बिक्री चीन के लिए एक दीर्घकालिक रणनीति का हिस्सा है। खराब गुणवत्ता वाले हार्डवेयर को निरंतर रखरखाव, स्पेयर पार्ट्स और प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है, जिससे बांग्लादेश की चीन पर निर्भरता बढ़ जाती है। यह चीन को बांग्लादेश की रक्षा क्षमताओं पर एक स्थायी प्रभाव और रणनीतिक पकड़ प्रदान करता है। यह भारत के सैन्य सहयोग से अलग है, जो संयुक्त अभ्यास और क्षमता निर्माण पर आधारित है, जिसका उद्देश्य रणनीतिक बंधन के बजाय परस्पर निर्भरता है।

चीन बांग्लादेश में हाल के राजनीतिक परिवर्तनों का लाभ उठाने में भी तत्पर रहा है। शेख हसीना के नेतृत्व वाली सरकार के जाने के बाद, चीन ने तुरंत बांग्लादेश के साथ अपने संबंधों को मजबूत करने की तत्परता व्यक्त की। यह दर्शाता है कि चीन लोकतांत्रिक या राजनीतिक स्थिरता की परवाह किए बिना अपने प्रभाव को बढ़ाने के लिए राजनीतिक उथल-पुथल का फायदा उठाता है।

भारत पर चीन के प्रभाव के बहुआयामी परिणामः-

चीन की 'मोतियों की माला' रणनीति हिंद महासागर में भारत की सामरिक शक्ति को कम करने का एक सीधा प्रयास है। ग्वादर और हंबनटोटा जैसे बंदरगाहों का उपयोग करके, चीन भारत के चारों ओर एक रणनीतिक घेरा बना रहा है, जिससे भारत की समुद्री सुरक्षा के लिए सीधा खतरा उत्पन्न हो रहा है। इसके अतिरिक्त, ब्च्म्ब् का पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर से गुजरना भारत की संप्रभुता के लिए एक बड़ा खतरा है और भारत-चीन सीमा पर तनाव को बढ़ाता है।

आर्थिक प्रतिस्पर्धा और चुनौतियाँः-

पिछले एक दशक में, चीन ने मालदीव और बांग्लादेश जैसे कई दक्षिण एशियाई देशों में भारत को प्रमुख व्यापारिक भागीदार के रूप में प्रतिस्थापित कर दिया है। बांग्लादेश के साथ चीन का व्यापार भारत की तुलना में लगभग दोगुना है, और नेपाल और श्रीलंका के साथ भी यह अंतर लगातार कम हो रहा है। भारत का चीन के साथ व्यापार घाटा भी बहुत बड़ा है। चीन के सस्ते उत्पादों और तकनीक की बाढ़ भारतीय घरेलू उद्योगों के लिए एक बड़ी चुनौती बनती है, जो भारत को आर्थिक रूप से चीन पर निर्भर बनाती है।

कूटनीतिक और राजनीतिक प्रभावः-

चीन का वित्तीय और सैन्य प्रभाव दक्षिण एशियाई देशों के कूटनीतिक रुख को प्रभावित कर रहा है। श्रीलंका जैसे देश संयुक्त राष्ट्र जैसे अंतरराष्ट्रीय मंचों पर चीन के पक्ष में मतदान करते हैं, जो भारत की पारंपरिक नेतृत्व भूमिका के लिए एक चुनौती है । इन देशों में हाल के सत्ता परिवर्तन ने यह सवाल भी उठाया है कि क्या ये राष्ट्र किसी विदेशी ताकत के हाथों की कठपुतली बन गए हैं।

भारत की जवाबी रणनीतियाँ और भविष्य की राहः-

चीन की 'मोतियों की माला' रणनीति का मुकाबला करने के लिए भारत ने अपनी खुद की 'हीरों की माला' (Necklace of Diamonds) रणनीति विकसित की है। इस जवाबी रणनीति का उद्देश्य हिंद महासागर में भारत की समुद्री शक्ति को मजबूत करना और चीन की विस्तारवादी नीति को रोकना है। इस रणनीति के तहत, भारत अपने रणनीतिक ठिकानों (जैसे अंडमान और निकोबार द्वीप समूह) को उन्नत कर रहा है और चाबहार जैसे महत्वपूर्ण बंदरगाहों में अपनी उपस्थिति बढ़ा रहा है। भारत हिंद महासागर क्षेत्र के सभी शक्तिशाली देशों और अपने मित्र देशों, जैसे जापान, ऑस्ट्रेलिया, सिंगापुर और वियतनाम के साथ नौसैनिक और सुरक्षा सहयोग बढ़ा रहा है।

भारत की आर्थिक और कूटनीतिक प्रतिक्रियाः-

भारत ने अपने पड़ोसी देशों को आर्थिक संकट के दौरान सहायता प्रदान करके चीन के ऋण-जाल के विपरीत एक विश्वसनीय भागीदार के रूप में अपनी छवि स्थापित की है। श्रीलंका को +4 बिलियन से अधिक की वित्तीय सहायता प्रदान करना इसका एक प्रमुख उदाहरण है, जो चीन द्वारा दी गई सहायता से कहीं अधिक था। भारत ने चीन के बीआरआई की काट के लिए दक्षिण एशियाई देशों को 600 परियोजनाओं के लिए 300 से अधिक लाइन ऑफ क्रेडिट भी दिए हैं। भारत की यह सहायता एक नैतिक आयाम रखती है, क्योंकि यह चीन द्वारा लगाई गई गुप्त, रणनीतिक शर्तों के बिना प्रदान की जाती है। यह भारत को एक विश्वसनीय और पारदर्शी साझेदार के रूप में प्रस्तुत करता है, जो चीन के 'मानदंडा-मुक्त' दृष्टिकोण के विपरीत है।

भारत की 'एक्ट ईस्ट' नीति भी चीन की बढ़ती शक्ति को संतुलित करने का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। इस नीति के माध्यम से, भारत आसियान देशों के साथ राजनीतिक, आर्थिक और सुरक्षा संबंधों को मजबूत कर रहा है।

निष्कर्ष :-

चीन का बांग्लादेश और श्रीलंका पर बढ़ता प्रभाव केवल आर्थिक या सैन्य सहायता का मामला नहीं है, बल्कि एक बहु-आयामी भू-रणनीतिक रणनीति है। चीन का अपारदर्शी 'ऋण-जाल' और घटिया सैन्य हार्डवेयर की बिक्री एक स्थायी निर्भरता और रणनीतिक पकड़ स्थापित करने का लक्ष्य रखती है, जो भारत की क्षेत्रीय सुरक्षा और नेतृत्व के लिए एक महत्वपूर्ण चुनौती है। इन चुनौतियों का मुकाबला करने के लिए, भारत को एक बहु-आयामी दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता हैः-

- आर्थिकः भारत को अपने पड़ोसी देशों में लक्षित निवेश को बढ़ावा देना चाहिए, विशेष रूप से उन क्षेत्रों में जहां चीन कमजोर पड़ता है। व्यापार घाटे को कम करने के लिए दीर्घकालिक रणनीतियों पर जोर दिया जाना चाहिए।
- सुरक्षाः भारत को हिंद महासागर में अपनी समुद्री निगरानी और टोही क्षमताओं को बढ़ाना चाहिए। मित्र देशों के साथ बहुपक्षीय सैन्य अभ्यास जारी रखना और नौसेना को 'ब्लू वाटर नेवी' के रूप में विकसित करना महत्वपूर्ण है।

- कूटनीतिः भारत को चीन के साथ द्विपक्षीय और बहुपक्षीय मंचों पर संवाद बनाए रखना चाहिए। साथ ही, पड़ोसी देशों के साथ विभिन्न स्तरों पर सक्रियता बनाए रखना और चीन-विरोधी तत्वों के प्रभाव को कम करने के लिए सक्रिय कदम उठाना आवश्यक है।
- सॉफ्ट पावरः चीन के सशर्त और अपारदर्शी मॉडल के विपरीत, भारत को अपने सांस्कृतिक और ऐतिहासिक संबंधों का उपयोग करके एक विश्वसनीय, पारदर्शी और नैतिक भागीदार के रूप में अपनी छवि को मजबूत करना चाहिए।

संदर्भ सूची

1. डॉ. बी. एल. फड़िया अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, आगरा-2001, पृ.सं. 337
2. अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स 7.
3. डॉ. बी. एल फड़िया आगरा-2001, पृ.सं 338
4. डॉ. बी. एल. फड़िया अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति. साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा-2001, पू.सं. 338
5. डॉ. वी. एल. फड़िया अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा-2001, पृ.सं. 339
6. डी. एस. यादव भारतीय राजनीति का अन्य देशों पर प्रभाव, डिस्करी पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 2011, पृ.सं. 211
7. डी. एस. यादव भारतीय राजनीति का अन्य देशों पर प्रभाव, डिस्करी पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 2011, पृ.सं. 211
8. hindi.news18.com
9. hindi.news18.com
10. hindi.news18.com
11. www.bbc.com
12. डी. एस यादव भारतीय राजनीति का अन्य देशों पर प्रभाव डिस्करी पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली- 2011, पू.सं. 213
13. डी. एस. यादव, भारतीय राजनीति का अन्य देशों पर प्रभाव, डिस्करी पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली 2011 पृ.सं. 213
14. प्रो. बी. एम. जैन 2013 पृ.सं 482 अंतर्राष्ट्रीय संबंध, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर,
15. https://www.drishtiias.com
16. https://www.aajtak.in
    https://www.dhyeyaias.com

आदिवासी स्वर और उनका साहित्य

डॉ० सुनील यशवंत व्यवहारे

हिंदी विभागाध्यक्ष, सरस्वती विद्या मंदिर कला महाविद्यालय, किनवट, नांदेड़ (महाराष्ट्र)

यदि अभिव्यक्ति की शक्ति मनुष्य को पशुता से भिन्न बनाती है तो साहित्य उसे दिशा प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त साहित्य ही मनुष्य को यह स्मरण दिलाता है कि मनुष्य अकेला नहीं है बल्कि वह समाज का एक अंग है। इससे यह सिद्ध होता है कि प्रतिबद्ध साहित्य समाज को गति प्रदान करता है जड़ता नहीं। समृद्ध समाज की पहचान उसके समय के साथ खुद को बदलने की समता में होती है न कि जड़ बनकर समय को बाँध देने में। यही कारण है कि आज तक आदिवासी समाज को विशेषकर भारत में तथाकथित धार्मिक कट्टरवादियों, मैदानी मध्यवर्गीय मानसिकता वाले समुदाय ने जो सदा ही जातीय दंभ में जकड़ा रहता है उसने आदिवासी समाज को दायरे से बाहर ही नहीं आने दिया तथा न ही इन्हें विकसित होने दिया।

''मनुष्य को यह भली भाँति विदित है कि इतिहास की जानकारी के बिना वर्तमान को बदलना कठिन है और यदि वर्तमान को नहीं बदला जा सका तो भविष्य को भी नहीं बदला जा सकता है। यही कारण है कि आदिवासी लेखक भले ही संख्या की दृष्टि से कम हैं परन्तु जितने हैं वे एक मुहिम चला रहे हैं कि-समय को कदमताल में कदम मिलाने की। वे कल, आज और कल से खुद को जोड़कर चलने की प्रक्रिया में हैं।[1]

ब्रिटिश काल में अंग्रेजों ने आदिवासियों को हैबीस कार्पस एक्ट (एक प्रकार का कानून) के अन्तर्गत वह भी राजपूतों सत्ताधीशों के कहने पर जन्मजात अपराधी घोषित कर दिया था। राजस्थान की आदिवासी समुदाय की मीणा एवं भील प्रजाति ने अपनी आजादी की लड़ाई के साथ ही इस कानून के मुद्दे को जोड़कर स्वतंत्रता (1947 ई.) के पूर्व ही इस कानून को निरस्त करने एवं इस कानून को वापस करने की मंजूरी अर्थात् सफलता प्राप्त कर ली थी।

हमारा देश भारतवर्ष एशिया खण्ड ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भूमण्डल में अपना अस्तित्व स्थापित किये हुए है। प्राकृतिक सम्पदाओं से परिपूर्ण भारतवर्ष की भौगोलिक स्थिति अत्यन्त विस्मयकारी एवं आश्चर्यजनक है। भाषाओं के आधार पर हमारे देश भारतवर्ष की आन्तरिक संरचना सबसे बड़ी उपलब्धि है। हमारे देश भारतवर्ष में अनेक धर्मों, जातियों, सम्प्रदायों, पंथों एवं समुदायों के लोग प्रेम एवं सौहार्द के साथ निवास करते हैं। यही कारण है कि हमारे देश में सामाजिक, धार्मिक, साम्प्रदायिक एवं पंथीय विभिन्नता है। इसके बावजूद भी बंधुभाव एवं एकता है।

इसके बावजूद भी कालांतर में तथा कथित सभ्य समाज के समुदाय ने अपने ही समाज के गरीब लोगों को असभ्य कहकर समाज गाँव शहर से दूर कर दिया। कहने का तात्पर्य यह है कि-''आदिवासी समाज के लोग गाँव में रहे उनसे बहिष्कृत होकर पर वे सभ्यता के भीतर रहे-उनके विकास के साधन बनकर। फिर भी विकास से वंचित रहे। वे अपनी सुविधा के लिए नहीं बल्कि दूसरों की सुविधा के लिए जिन्दा रखे गये, गाँव में ही रखे गये।''[2]

आदिवासियों ने संघर्ष करना सीख लिया है अब उन्हें कठघरों अथवा पिंजड़ों में बन्द करके नहीं रखा जा सकता है। उनका भी स्वाभिमान जाग चुका है इसलिए तथाकथित सफेदपोशी सावधान हो जाओ। इस संदर्भ में डॉ. रमणिका गुप्ता जी का कथन है कि-''उन्हें समय के साथ नहीं चलने दिया गया। जैसे सदियों पूर्व जिस क्षण में तस्वीर की तरह उसे किसी एक फ्रेम में जड़ दिया गया था, उसी तरह इन्हें जड़ा और जकड़ा रहने देने की प्रक्रिया सदैव जारी रही और आज भी जारी है। लेकिन अब फ्रेम के भीतर जड़ी तस्वीर स्वयं हिल उठी है तथा फ्रेम तोड़कर बाहर आने के लिए अपने कदम बाहर निकाल भी चुकी है।''[3]

इस संदर्भ में आदिवासी समाज अपने देवी-देवताओं के गुणगान भी करता है ताकि उनकी मनोकामना पूर्ण हो सके। इसी संदर्भ का एक गीत इस प्रकार है-

''बांदा ने सुख ने शांति देणारी अवतारी,
माता नावे हाय देव मोगरा
राज कोमे जनम लिने
आदिवासी लोक सेवा किलया

बादाने सुखने शांति देणारी अवतारी...
माता नावे हाय देवमोगरा
केडो जाहे गाड़ीली जुपी ने
केडो जाहे पागे चाली ने
केडो जाहे मुनके हिजारी
केडो जाहे बाल भागाने
तो अजे नावोपे खेत खल पुजा हे
तो अजे नावो पे गोरी गोवाण पुजा हे।''[4]

मानवी समाज का सर्वाधिक वृहद् एवं महत्वपूर्ण अंग परिवार है। परिवार का अर्थ है एक दूसरे से रक्त सम्बन्ध। व्यक्तियों (मनुष्यों) से परिवार, परिवारों से जाति तथा अनेक जाति समूहों से समाज की निर्मिति होती है। यही कारण है कि व्यक्ति, परिवार तथा समाज के अटूट सम्बन्ध होते हैं। परिवार के सदस्यों माता-पिता, पुत्र-पुत्री, सास-ससुर, पति-पत्नी, बहू तथा भाई-बहिन आदि के सम्बन्ध अत्यंत घनिष्ठ होते हैं तथा आपस में इनमें अगाध प्रेम होता है।

अत: परस्पर व्यवहार करते समय इनके मुँह से अनायास ही यह स्वर फूटता है-

''आय, तु लाडी कोडो पो आनारो पाई। (भीली बोली)
मी राणी, तू राणी, कूण भरे पाणी। (पावरी बोली)
अर्थात् मैं रानी, तू रानी कौन भरेगा पानी।''[5]

आदिवासी आह्वान देते हुए वीरता का गुणगान इस प्रकार करते हैं-

हे संगी!
तानो अपना तरकस
नहीं हुआ है भोथरा अब तक
बिरसा 'आबा' का तीर
कसकर थामो
टहनी पर अटके हुए
सूरज के लाल गोढा को
गला दो अपनी हथेलियों की
गर्मी से
और फैला दो झारखंड की
फुनगियों पर
भिनसरिया में उजास
चटकने से पहले
बेध डालो
हाँ, बेध डालो
दामोदर और स्वर्ण रेखा को
काली नागिन बनने से पहले
कि देख सको तुम
उसके निर्मल जल में
सिर्फ
मछली की आँख
अर्जुन की तरह।''[6]

सम्पूर्ण देश में आदिवासियों के निवास स्थान अपना एक विशेष एवं विशिष्ट महत्व रखते हैं। सम्पूर्ण विश्व में आदिवासी समाज कबीलों में बँटा हुआ गुफाओं, कन्दराओं तथा निर्जन स्थानों पर निवास कर रहा है। हमारे देश भारतवर्ष का समस्त आदिवासी समाज एक है परन्तु अनेक बोलियों, जातियों एवं सम्प्रदायों में विभक्त है। इन जातियों की बोली, भाषा, संस्कृति, रीति-रिवाज परम्पराएँ एवं लोक साहित्य पृथक-पृथक है। आदिवासी समाज की बोली भाषाओं, संस्कृति, सांस्कृतिक एवं धार्मिक प्रथाओं तथा लोक साहित्य का अध्ययन करना अत्यन्त कठिन कार्य है। इनके लोक साहित्य एवं बोली भाषाओं पर हमारे देश के अनेक साहित्यकारों ने लेखन कार्य किया है। इस समुदाय की पृथक सांस्कृतिक परम्परा, पिछड़ापन तथा समाज की मुख्यधारा से पृथक होने के कारण इनके विकास का प्रश्न प्राचीनकाल से ही विशेष प्राथमिकता एवं विचार-विमर्श का विषय रहा है।

> ''आदिवासी समुदाय हमारे समाज का सर्वाधिक अविकसित एवं अत्यन्त पिछड़ा हुआ हिस्सा है। इस समुदाय को राष्ट्र की मुख्य धारा से जोड़ना तथा उस तक विकास की पहुँच बनाना एक बहुत बड़ी चुनौती है।''[7]

जनजातीय समाज हमारे समाज से कटा एवं सदियों से पिछड़ा हुआ है। विशेष तथ्य यह है कि इसके बावजूद भी इस समुदाय की अपनी पृथक संस्कृति, परम्परा एवं भिन्न पहचान रही है। हमारे भारतीय संविधान में इसे पाँचवीं एवं छठवीं अनुसूची में इसलिए सम्मिलित किया गया है कि इसका भी विकास हो सके।

निष्कर्ष

मानव समुदाय में सच्चा मनुष्य वही है जो अपनी दयनीय अवस्था में भी हँसता-गाता रहे। आदिवासियों की विशेषता यही है कि वह अभाव की जिंदगी जीता हुआ भी अपने स्वर इस प्रकार प्रस्फुटित करता है-झड़ जाये माँ मेरा सारा/ अहं तुम्हारे ही चरणों में/पा स्पर्श तव पारसमणि का/रज मेरा सोना हो जाये। अर्थात् उसके विचारों का उद्‌गार अत्यंत विनम्र एवं स्मरणीय है। हमारे देश के समस्त आदिवासी समुदायों में लोकगीतों की परम्परा विद्यमान है। आदिवासी समुदायों के लोकगीत मानव जीवन के सभी विषयों से सम्बन्धित हैं। इन लोकगीतों में पौराणिक आख्यान, सृष्टि की उत्पत्ति, प्रकृति, लोककथाएँ, मानव के उद्‌गम एवं देशांतरगमन, तथा अनेक जीव-जन्तुओं के उत्पत्ति आख्यान भी सम्मिलित हैं।

संदर्भ

1. आदिवासी स्वर और नई शताब्दी-सं. रमणिका गुप्ता, पृ. 6, संस्करण 2009, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली
2. वही, पृ. 8
3. वही, पृ. 9
4. आदिवासी लोक साहित्य-डॉ. गौतम भाईदास कुंवर, पृ. 184-185, संस्करण 2012, चंद्रलोक प्रकाशन कानपुर।
5. वही, पृ. 203
6. आदिवासी स्वर और नई शताब्दी सं. रमणिका गुप्ता, पृ. 22-23
7. आदिवासी विकास एवं गैर-सरकारी संगठन-उदय सिंह राजपूत, पृ. (कवर पृष्ठ), संस्करण 2010, रावत पब्लिकेशन्स नई दिल्ली

गृह विज्ञान की शिक्षा में डिजिटल प्लेटफॉर्म्स/टूल्स का प्रयोग और उपयोगिता

डॉ० नीलिमा दुबे

असिस्टेंट प्रोफेसर, गृह विज्ञान विभाग, हवाबाग कॉलेज, जबलपुर

सारांश

"शिक्षा मानव समाज की रीढ़ है।" समय के साथ-साथ इसका स्वरूप भी बदलता रहा है। 20 वीं शताब्दी तक जहां शिक्षा पारंपरिक कक्षा और पुस्तकों तक सीमित थी, वहीं 21वीं शताब्दी में इसे डिजिटल प्लेटफार्म तक पहुंचा दिया है। विशेष रूप से कोविड महामारी के बाद डिजिटल शिक्षा एक आवश्यकता बन गई है, ना कि केवल एक विकल्प। समय के साथ हमारे शैक्षणिक साधनों और विधियों में होता परिवर्तन समाज के सोच विचार और जीवंतता का दर्पण प्रस्तुत करता है। बीते कुछ वर्षों में स्कूल की क्लास रूम से बाहर निकलकर स्क्रीन तक शिक्षा पहुंचने लगे पहले जहां सीमित संसाधनों की वजह से शिक्षा की गुणवत्ता प्रभावित होती थी वहीं अब इंटरनेट और मोबाइल टेक्नोलॉजी के माध्यम से छात्रों को उच्च स्तरीय कंटेंट उपलब्ध हो पाता है। इससे सामाजिक और शैक्षिक समानता बढ़ती है। यह शिक्षा की पारंपरिक सीमाओं को तोड़कर एक नवाचारी शिक्षण प्रणाली प्रस्तुत करता है, जहां शिक्षक, छात्र और तकनीक का समन्वित मेल शिक्षा को अधिक प्रभावशाली बनाता है।

गृह विज्ञान, विज्ञान और मानविकी को एकीकृत करने वाला एक अंत:विषय क्षेत्र, व्यक्ति, परिवार और समुदाय के कल्याण को बेहतर बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। डिजिटल क्रांति ने गृह विज्ञान शिक्षा और जागरूकता को और अधिक सुलभ, इंटरैक्टिव और लचीला बनाकर बदल दिया है। स्वयं, कोर्सेरा और उडेमी जैसे ऑनलाइन प्लेटफॉर्म संरचित पाठ्यक्रम प्रदान करते हैं, जबकि ल्वनज्नइम, प्देजंहतंउ और ब्लॉग दृश्य प्रदर्शन और विशेषज्ञ अंतर्दृष्टि प्रदान करते हैं। मोबाइल एप्लिकेशन पोषण ट्रैकिंग, घरेलू प्रबंधन और पालन-पोषण संबंधी मार्गदर्शन में सहायता करते हैं, जबकि वर्चुअल रियलिटी (VR) और ऑगमेंटेड रियलिटी (AR) जैसी उभरती हुई तकनीकें व्यावहारिक शिक्षण अनुभवों को बेहतर बनाती हैं। इसके अतिरिक्त, सरकारी पहल, ऑनलाइन अभियान, वेबिनार, पॉडकास्ट और चर्चा मंच पोषण, स्वच्छता, सतत जीवन और उपभोक्ता अधिकारों के बारे में जागरूकता बढ़ाने में योगदान करते हैं। गृह विज्ञान में डिजिटल शिक्षा सुलभता, लागत-प्रभावशीलता, जुड़ाव और व्यक्तिगत शिक्षा जैसे लाभ प्रदान करती है। हालाँकि, डिजिटल विभाजन, गलत सूचना, व्यावहारिक अभ्यास का अभाव और भाषा संबंधी बाधाएँ इसकी प्रभावशीलता में बाधा डालती हैं। बुनियादी ढाँचे के विकास, विश्वसनीय सामग्री विनियमन, हाइब्रिड शिक्षण मॉडल और बहुभाषी शैक्षिक संसाधनों के माध्यम से इन चुनौतियों का समाधान गृह विज्ञान शिक्षा में डिजिटल प्लेटफॉर्म के प्रभाव को बढ़ा सकता है। यह अध्ययन गृह विज्ञान में आजीवन शिक्षा और कौशल विकास को बढ़ावा देने में डिजिटल शिक्षा की परिवर्तनकारी भूमिका पर प्रकाश डालता है, जिससे एक अधिक सूचित और टिकाऊ समाज सुनिश्चित होता है।

मूल शब्द: डिजिटल शिक्षा, गृह विज्ञान शिक्षा, ऑनलाइन प्लेटफॉर्म, कौशल विकास, सतत जीवन, जागरूकता

प्रस्तावना

गृह विज्ञान एक अंत:विषय क्षेत्र है जो व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामुदायिक स्तर पर जीवन की गुणवत्ता में सुधार के लिए विज्ञान और मानविकी के विभिन्न पहलुओं को एकीकृत करता है। इसमें पोषण और आहार विज्ञान, मानव विकास, वस्त्र और परिधान, पारिवारिक संसाधन प्रबंधन और गृह अर्थशास्त्र सहित विविध क्षेत्र शामिल हैं।

पारंपरिक शैक्षणिक विषयों के विपरीत, गृह विज्ञान दैनिक जीवन में वैज्ञानिक सिद्धांतों को लागू करता है, व्यक्तियों को स्वास्थ्य, स्वच्छता, संसाधन उपयोग और सतत जीवन के बारे में सूचित निर्णय लेने के लिए ज्ञान और कौशल से सशक्त बनाता है।

उदाहरण के लिए, पोषण शिक्षा कुपोषण और जीवनशैली संबंधी विकारों से निपटने में मदद करती है, जबकि संसाधन प्रबंधन के बारे में जागरूकता घरों में स्थिरता को बढ़ावा देती है। इसी प्रकार, वस्त्रों को समझना टिकाऊ कपड़ों के चयन में सहायक होता है, और बाल विकास अध्ययन प्रभावी पालन-पोषण और देखभाल रणनीतियों का मार्गदर्शन करते हैं।

तकनीक पर बढ़ती निर्भरता के साथ, डिजिटल प्लेटफॉर्म ने गृह विज्ञान शिक्षा और जागरूकता अभियानों में क्रांति ला दी है। स्वयं, कोर्सेरा और उडेमी जैसे ऑनलाइन शिक्षण प्लेटफॉर्म संरचित पाठ्यक्रमों तक पहुँच प्रदान करते हैं, जिससे गृह विज्ञान शिक्षा अधिक सुलभ और लचीली हो जाती है।

इसके अतिरिक्त, YouTube, Instagram और Pinterest जैसे सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म पोषण, गृह प्रबंधन और टिकाऊ जीवन शैली के बारे में जागरूकता फैलाने के लिए प्रभावी उपकरण के रूप में काम करते हैं। मोबाइल एप्लिकेशन, वर्चुअल सिमुलेशन और AI-संचालित शैक्षिक उपकरण जैसी इंटरैक्टिव प्रौद्योगिकियाँ व्यक्तिगत मार्गदर्शन और व्यावहारिक वर्चुअल प्रशिक्षण प्रदान करके सीखने के अनुभव को और बेहतर बनाती हैं।

डिजिटल उपकरणों और प्लेटफार्मों ने गृह विज्ञान शिक्षा और अनुसंधान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, विशेष रूप से कोविड-19 महामारी के बाद, जिसने ऑनलाइन शिक्षण को एक आवश्यकता बना दिया है।

इस प्रकार, गृह विज्ञान में डिजिटल प्लेटफॉर्म का एकीकरण न केवल ज्ञान की खाई को पाटता है, बल्कि आजीवन सीखने और कौशल विकास को भी बढ़ावा देता है, जिससे शिक्षा अधिक समावेशी और प्रभावशाली बनती है। गृह विज्ञान में, डिजिटल प्लेटफॉर्म कौशल विकास, जागरूकता और व्यावहारिक प्रशिक्षण के विविध अवसर प्रदान करते हैं।

गृह विज्ञान शिक्षा में डिजिटल उपकरणों की भूमिका

शोध पत्रों और लेखों के अनुसार, डिजिटल उपकरणों और प्लेटफार्मों की भूमिका बहुआयामी है:

- शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया को प्रभावी बनाना: आधुनिक डिजिटल संसाधन, जैसे ई-बुक्स, ब्लॉग, सोशल नेटवर्किंग साइट्स, और ई-कॉन्फ्रेंस, छात्रों को अधिगम प्रक्रिया में प्रभावी ढंग से शामिल करने में मदद करते हैं।
- निरंतरता सुनिश्चित करना: महामारी जैसी अप्रत्याशित स्थितियों के दौरान ऑनलाइन प्लेटफार्मों ने शिक्षण की निरंतरता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- संसाधनों की पहुंच: इंटरनेट, लैपटॉप, डेस्कटॉप, टैबलेट, या स्मार्टफोन के माध्यम से व्हाट्सएप, जूम, गूगल मीट, और यूट्यूब जैसे प्लेटफॉर्म ने ई-लर्निंग को सुलभ बनाया।
- छात्र जुड़ाव और व्यक्तिगत शिक्षण: डिजिटल उपकरण छात्रों की व्यस्तता बढ़ा सकते हैं और शिक्षकों को व्यक्तिगत शिक्षण (personalized learning) की सुविधा प्रदान करने में मदद करते हैं, जिससे प्रत्येक छात्र की जरूरतों के अनुसार सामग्री को अनुकूलित किया जा सकता है।
- 21वीं सदी के कौशल विकसित करना: ये उपकरण छात्रों में आवश्यक 21वीं सदी के कौशल जैसे डिजिटल साक्षरता, महत्वपूर्ण सोच और समस्या-समाधान विकसित करने में सहायक हैं।
- शोध और नवाचार: डिजिटल उपकरणों को अपनाने से अकादमिक अनुसंधान की प्रासंगिकता और प्रभाव को बढ़ाया जा सकता है, जिससे डेटा संग्रह और विश्लेषण की प्रक्रियाएं सुगम होती हैं।
- व्यावहारिक अनुप्रयोग: वर्चुअल रियलिटी (VR) और ऑगमेंटेड रियलिटी (AR) जैसी नवीन प्रौद्योगिकियां गृह विज्ञान की वास्तविक दुनिया की गतिविधियों (जैसे, पाक कला, पोषण, वस्त्र डिजाइन) का पउउमतेपअम सिमुलेशन प्रदान करके सीखने की प्रक्रिया को बेहतर बना सकती हैं।

अनुसंधान लेखों में प्रमुख विषय

गृह विज्ञान अनुसंधान लेखों में डिजिटल उपकरणों से संबंधित विषयों में शामिल हैं:

- ई-लर्निंग और ई-कंटेंट का मूल्यांकन।
- गेमिफिकेशन (gamification) और व्यक्तिगत सीखने की तकनीकों का उपयोग।

- ऑनलाइन शिक्षा में चुनौतियों और अवसरों का विश्लेषण, जैसे डिजिटल विभाजन और बुनियादी ढांचे की कमी।
- गृह विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों (खाद्य और पोषण, संसाधन प्रबंधन, वस्त्र और परिधान) में प्रौद्योगिकी का अनुप्रयोग।

ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म और शिक्षा

कोर्सेरा, उडेमी और स्वयं जैसे ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म पोषण, संसाधन प्रबंधन और वस्त्रों पर संरचित पाठ्यक्रम प्रदान करते हैं। ल्वनज्नइम और वीडियो ट्यूटोरियल खाना पकाने की तकनीकों, घरेलू व्यवस्था और फैशन डिजाइन के दृश्य प्रदर्शनों के माध्यम से सीखने की कुशलता को बढ़ाते हैं। मोबाइल एप्लिकेशन पोषण ट्रैकिंग, घरेलू प्रबंधन और पालन-पोषण मार्गदर्शन में सहायता करते हैं। आभासी वास्तविकता (VR) और संवर्धित वास्तविकता (AR) इमर्सिव अनुभव प्रदान करते हैं, जैसे कि नकली खाना पकाना या वस्त्र डिजाइनिंग। सोशल मीडिया और ब्लॉग DIY टिप्स, विशेषज्ञ सलाह और स्थायी जीवन पद्धतियों को साझा करके जागरूकता बढ़ाते हैं। ये उपकरण गृह विज्ञान शिक्षा को अधिक आकर्षक और व्यापक रूप से सुलभ बनाते हैं।

ये प्लेटफॉर्म वीडियो व्याख्यान, पठन सामग्री, प्रश्नोत्तरी और प्रमाणन कार्यक्रमों के साथ संरचित पाठ्यक्रम प्रदान करते हैं, जिससे छात्र, पेशेवर और गृहिणियाँ अपनी सुविधा से सीख सकते हैं। इसके अतिरिक्त, स्वयं जैसे सरकार समर्थित प्लेटफॉर्म विशेष रूप से भारतीय शिक्षार्थियों को ध्यान में रखते हुए एनसीईआरटी, यूजीसी और इग्नू जैसे संस्थानों द्वारा विकसित पाठ्यक्रम प्रदान करते हैं। ऐसे प्लेटफॉर्म पर गृह विज्ञान से संबंधित पाठ्यक्रमों की उपलब्धता ज्ञान के व्यापक प्रसार को सुनिश्चित करती है, खासकर दूरदराज के क्षेत्रों के छात्रों के लिए जिनकी पारंपरिक कक्षा शिक्षा तक पहुँच नहीं हो सकती है।

- यूट्यूब और वीडियो ट्यूटोरियल: यूट्यूब कौशल-आधारित शिक्षा के लिए एक शक्तिशाली उपकरण के रूप में उभरा है, विशेष रूप से गृह विज्ञान जैसे व्यावहारिक क्षेत्रों में। कई शिक्षक और संस्थान खाना पकाने की तकनीक, कपड़ा डिजाइन के तरीके, घर की सजावट के विचार और बाल देखभाल प्रथाओं को प्रदर्शित करने के लिए वीडियो ट्यूटोरियल का उपयोग करते हैं। वीडियो-आधारित शिक्षा अत्यधिक प्रभावी है क्योंकि यह दृश्य प्रदर्शन, चरण-दर-चरण मार्गदर्शन और वास्तविक जीवन के अनुप्रयोग प्रदान करती है, जिससे अवधारणाओं को समझना और लागू करना आसान हो जाता है। कई गृह विज्ञान विशेषज्ञों और प्रभावशाली लोगों ने बजट-अनुकूल गृह प्रबंधन, पोषण योजना और क्प्ल् टिकाऊ फैशन पर सामग्री साझा करके ल्वनज्नइम पर लोकप्रियता हासिल की है, जिससे व्यापक जागरूकता और ज्ञान-साझाकरण में योगदान मिला है।
- मोबाइल एप्लिकेशन: स्मार्टफोन पर बढ़ती निर्भरता के साथ, मोबाइल एप्लिकेशन दैनिक जीवन में गृह विज्ञान शिक्षा को एकीकृत करने का एक सुविधाजनक तरीका बन गए हैं। डलथ्पजदमेच्ंस और भ्मंसजीपलिडम जैसे ऐप पोषण ट्रैकिंग और आहार संबंधी सुझाव प्रदान करते हैं, जिससे उपयोगकर्ताओं को स्वस्थ भोजन विकल्प चुनने में मदद मिलती है। टोडी और ब्राइटनेस्ट जैसे गृह प्रबंधन ऐप घरेलू कार्यों को कुशलतापूर्वक व्यवस्थित करने में सहायता करते हैं और संसाधनों के बेहतर उपयोग को बढ़ावा देते हैं। बेबीसेंटर और किनेडू जैसे पेरेंटिंग गाइड ऐप बाल विकास पर विशेषज्ञ-समर्थित सलाह प्रदान करते हैं, जिससे माता-पिता के लिए अपने बच्चे के विकास और उपलब्धियों पर नजर रखना आसान हो जाता है। ये एप्लिकेशन सूचना और व्यक्तिगत शिक्षण अनुभवों तक त्वरित पहुँच में योगदान करते हैं, जिससे ज्ञान धारण और अनुप्रयोग में वृद्धि होती है।
- आभासी वास्तविकता (वीआर) और संवर्धित वास्तविकता (एआर): आभासी वास्तविकता (वीआर) और संवर्धित वास्तविकता (एआर) जैसी उभरती हुई प्रौद्योगिकियाँ इमर्सिव और इंटरैक्टिव शिक्षण अनुभव प्रदान करके गृह विज्ञान शिक्षा को बदल रही हैं। पाक कला, वस्त्र डिजाइन और आंतरिक सज्जा जैसे क्षेत्रों में, वीआर उपयोगकर्ताओं को वास्तविक जीवन में लागू करने से पहले एक नकली वातावरण में कौशल का अभ्यास करने में सक्षम बनाता है। उदाहरण के लिए, वीआर-आधारित खाना पकाने के सिमुलेशन शिक्षार्थियों को सामग्री बर्बाद किए बिना व्यंजनों और खाना पकाने की तकनीकों के साथ प्रयोग करने की अनुमति देते हैं। इसी तरह, टेक्सटाइल डिजाइनिंग में एआर (संवर्धित वास्तविकता) अनुप्रयोग छात्रों को वास्तविक समय में कपड़े के पैटर्न और रंगों की कल्पना करने में मदद करते हैं,

जिससे फैशन उद्योग में बेहतर निर्णय लेने में मदद मिलती है। इन उन्नत तकनीकों को एकीकृत करके, गृह विज्ञान शिक्षा अधिक आकर्षक, व्यावहारिक और उद्योग-उन्मुख बन जाती है।

- सोशल मीडिया और ब्लॉग: इंस्टाग्राम, फेसबुक और पिंटरेस्ट जैसे सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म गृह विज्ञान जागरूकता फैलाने के प्रमुख साधन बन गए हैं। प्रभावशाली व्यक्ति, शिक्षक और संस्थान इन प्लेटफॉर्म का उपयोग स्थायी जीवन, पोषण योजना और गृह व्यवस्था जैसे विषयों पर लघु वीडियो टिप्स, इन्फोग्राफिक्स और ब्लॉग लेख साझा करने के लिए करते हैं। विशेष रूप से, पिंटरेस्ट, DIY घरेलू परियोजनाओं, फैशन स्टाइलिंग और आंतरिक सज्जा के विचारों के लिए एक दृश्य प्रेरणा केंद्र के रूप में कार्य करता है, जिससे गृह विज्ञान की अवधारणाएँ व्यापक दर्शकों के लिए अधिक आकर्षक बनती हैं। इसके अतिरिक्त, फेसबुक समूह और फोरम चर्चा, ज्ञान-साझाकरण और सामुदायिक जुड़ाव के लिए स्थान प्रदान करते हैं, जिससे व्यक्तियों को विशेषज्ञों और साथियों दोनों से सीखने का अवसर मिलता है।

चुनौतियाँ और सीमाएँ

अपने अनेक लाभों के बावजूद, गृह विज्ञान में डिजिटल शिक्षा को कई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है जो इसकी प्रभावशीलता को सीमित करती हैं। तकनीकी बाधाएँ, जैसे कि सीमित इंटरनेट पहुँच और ग्रामीण क्षेत्रों में डिजिटल साक्षरता का अभाव, ऑनलाइन शिक्षा तक समान पहुँच को रोकती हैं। सोशल मीडिया पर गलत सूचनाएँ स्वास्थ्य, पोषण और गृह प्रबंधन संबंधी अविश्वसनीय सलाह फैलाती हैं, जिससे गलतफहमियाँ पैदा होती हैं। इसके अतिरिक्त, व्यावहारिक शिक्षा में अंतराल पैदा होता है, क्योंकि खाना पकाने, कपड़ा डिजाइनिंग और बच्चों की देखभाल जैसे व्यावहारिक कौशल के लिए आभासी प्रदर्शनों से परे शारीरिक अभ्यास की आवश्यकता होती है। भाषा संबंधी बाधाएँ सीखने में और बाधा डालती हैं, क्योंकि अधिकांश डिजिटल सामग्री अंग्रेजी या प्रमुख भाषाओं में होती है, जिससे क्षेत्रीय शिक्षार्थियों के लिए यह मुश्किल हो जाता है। एक अधिक समावेशी और प्रभावी गृह विज्ञान शिक्षा प्रणाली के लिए इन चुनौतियों का समाधान करना महत्वपूर्ण है।

1. डिजिटल विभाजन: डिजिटल शिक्षा में सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक डिजिटल विभाजन है, खासकर ग्रामीण और आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों में। दूरदराज के क्षेत्रों में कई छात्रों और गृहिणियों के पास स्थिर इंटरनेट कनेक्शन, डिजिटल उपकरणों और बिजली की पहुँच नहीं है, जिससे ऑनलाइन शिक्षा का लाभ उठाना मुश्किल हो जाता है। शहरी परिवेश में भी, उच्च गति वाला इंटरनेट और उन्नत डिजिटल उपकरण सभी के लिए वहनीय नहीं हो सकते हैं। यह तकनीकी असमानता गुणवत्तापूर्ण गृह विज्ञान शिक्षा तक समान पहुँच को सीमित करती है, जिससे कई लोग ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म, वेबिनार और ऑनलाइन संसाधनों का उपयोग करने से रोकते हैं। इस अंतर को पाटने के लिए सरकारी पहल, सस्ती इंटरनेट पहुंच और वंचित क्षेत्रों में बुनियादी ढांचे में सुधार की आवश्यकता है।

2. सूचना की प्रामाणिकता: सोशल मीडिया और ऑनलाइन प्रभावशाली लोगों के उदय के साथ, गलत सूचना एक बड़ी चिंता का विषय बन गई है। कई असत्यापित स्रोत पोषण, घरेलू उपचार, पालन-पोषण के सुझाव और स्थायी जीवन शैली से संबंधित गलत या भ्रामक सामग्री साझा करते हैं। उदाहरण के लिए, सनक भरे आहार, असुरक्षित घरेलू उपचार और भ्रामक कपड़ा देखभाल तकनीकें अक्सर बिना वैज्ञानिक आधार के प्रसारित की जाती हैं, जिससे गलत निर्णय लिए जाते हैं। विश्वसनीय और सहकर्मी-समीक्षित जानकारी प्रदान करने वाले शैक्षणिक संस्थानों के विपरीत, ल्वनज्नइम वीडियो, इंस्टाग्राम पोस्ट और ब्लॉग में प्रामाणिकता का अभाव हो सकता है।

गलत सूचना से निपटने के लिए, तथ्य-जांच, विशेषज्ञ-निर्देशित सामग्री और नियामक उपाय आवश्यक हैं ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि शिक्षार्थियों को विश्वसनीय और वैज्ञानिक रूप से मान्य ज्ञान प्राप्त हो।

3. व्यावहारिक शिक्षण अंतराल: गृह विज्ञान एक कौशल-आधारित विषय है जिसमें खाना पकाने, कपड़ा डिजाइन, बाल विकास और संसाधन प्रबंधन जैसे क्षेत्रों में व्यावहारिक अनुप्रयोग शामिल हैं। हालाँकि डिजिटल प्लेटफॉर्म सैद्धांतिक ज्ञान और वीडियो प्रदर्शन प्रदान करते हैं, वे व्यावहारिक शिक्षण अनुभवों की पूरी तरह से जगह नहीं ले सकते। उदाहरण के लिए, ऑनलाइन ट्यूटोरियल के माध्यम से खाना बनाना सीखना मददगार है, लेकिन खाना पकाने की तकनीकों, खाद्य सुरक्षा प्रथाओं या कढ़ाई के काम में महारत हासिल करने के लिए शारीरिक अभ्यास और रीयल-टाइम फीडबैक की आवश्यकता होती है। आभासी वास्तविकता (वीआर) और संवर्धित वास्तविकता (एआर) उपकरण कुछ हद तक इंटरैक्टिव प्रशिक्षण प्रदान करते हैं, लेकिन वे कई लोगों के लिए महंगे और दुर्गम बने हुए हैं। इस व्यावहारिक शिक्षण अंतर को पाटने के लिए हाइब्रिड लर्निंग

मॉडल की आवश्यकता है, जहाँ डिजिटल शिक्षा को व्यावहारिक कार्यशालाओं, इंटर्नशिप और प्रयोगशाला-आधारित प्रशिक्षण से पूरित किया जाता है।

4. भाषा बाधाएँ: अधिकांश डिजिटल शिक्षण प्लेटफॉर्म मुख्य रूप से अंग्रेजी या कुछ प्रमुख भाषाओं में सामग्री प्रदान करते हैं, जिससे क्षेत्रीय भाषा बोलने वालों के लिए पहुँच सीमित हो जाती है। कई छात्र और गृहिणियाँ, विशेष रूप से ग्रामीण भारत, गैर-अंग्रेजी भाषी देशों और स्थानीय समुदायों में, अपरिचित भाषा में जटिल अवधारणाओं को समझने में संघर्ष करती हैं। इसके अतिरिक्त, ध्वनि-आधारित शिक्षण प्लेटफॉर्म और उपशीर्षक अक्सर तकनीकी गृह विज्ञान शब्दों का सटीक अनुवाद करने में विफल रहते हैं, जिससे समझ मुश्किल हो जाती है। डिजिटल शिक्षा को वास्तव में समावेशी बनाने के लिए, बहुभाषी शैक्षिक सामग्री, ध्वनि-सहायता प्राप्त शिक्षण उपकरण और क्षेत्र-विशिष्ट अनुकूलन की आवश्यकता है। स्थानीय भाषाओं में डिजिटल गृह विज्ञान शिक्षा का विस्तार करने से व्यापक दर्शक वर्ग ऑनलाइन संसाधनों का लाभ उठा सकेगा और ज्ञान को दैनिक जीवन में प्रभावी ढंग से लागू कर सकेगा।

भविष्य का दायरा और सुझाव

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई), बहुभाषी शिक्षा, गेमिफिकेशन और संस्थागत सहयोग में प्रगति के साथ गृह विज्ञान में डिजिटल शिक्षा का भविष्य आशाजनक है। एआई-संचालित व्यक्तिगत शिक्षा, व्यक्तिगत शिक्षण शैलियों के अनुकूल ढलकर, अनुकूलित सुझाव, रीयल-टाइम फीडबैक और इंटरैक्टिव आकलन प्रदान करके शिक्षा को बेहतर बना सकती है। एआई-संचालित चौटबॉट पोषण, गृह प्रबंधन और बाल विकास पर तत्काल मार्गदर्शन प्रदान कर सकते हैं। सुगम्यता में सुधार के लिए, क्षेत्रीय भाषा की सामग्री को बढ़ावा देना आवश्यक है। कई ग्रामीण शिक्षार्थी अंग्रेजी-आधारित शिक्षा से जूझते हैं, जिससे उनकी समझ सीमित हो जाती है। क्षेत्रीय भाषाओं में ई-लर्निंग मॉड्यूल, वीडियो ट्यूटोरियल और मोबाइल ऐप विकसित करने से समावेशिता बढ़ेगी। गेमीफिकेशन और वर्चुअल इंटर्नशिप को एकीकृत करने से सीखना और भी ज़्यादा आकर्षक और व्यावहारिक हो सकता है। क्विज, पुरस्कार और इंटरैक्टिव सिमुलेशन का उपयोग करके गेमीफाइड लर्निंग प्रेरणा और धारणा को बढ़ाता है। वर्चुअल इंटर्नशिप छात्रों को वर्चुअल कुकिंग चौलेंज, टेक्सटाइल डिजाइन सिमुलेशन और डिजिटल होम मैनेजमेंट प्रोजेक्ट्स जैसे वास्तविक दुनिया के परिदृश्यों में अपने कौशल का उपयोग करने का अवसर प्रदान करती है। विश्वविद्यालयों, गैर-सरकारी संगठनों और एड-टेक कंपनियों के बीच मजबूत सहयोग डिजिटल शिक्षा के विस्तार में मदद करेगा। विश्वविद्यालय मान्यता प्राप्त पाठ्यक्रम विकसित कर सकते हैं, गैर-सरकारी संगठन हाशिए पर पड़े समुदायों तक पहुँच सकते हैं, और एड-टेक कंपनियाँ AR-आधारित टेक्सटाइल डिजाइनिंग मॉड्यूल या AI-संचालित पोषण योजनाकार पेश कर सकती हैं। AI-संचालित वैयक्तिकरण, बहुभाषी सामग्री, गेमीफाइड लर्निंग और संस्थागत सहयोग को अपनाकर, डिजिटल गृह विज्ञान शिक्षा अधिक समावेशी, इंटरैक्टिव और प्रभावशाली बन सकती है, जिससे शिक्षार्थियों को एक आत्मनिर्भर समाज के लिए व्यावहारिक कौशल प्राप्त होंगे।

निष्कर्ष

डिजिटल प्लेटफॉर्म ने गृह विज्ञान शिक्षा में क्रांति ला दी है, जिससे शिक्षा अधिक सुलभ, आकर्षक और इंटरैक्टिव हो गई है। ई-लर्निंग प्लेटफॉर्म, मोबाइल एप्लिकेशन, वीडियो ट्यूटोरियल और सोशल मीडिया के माध्यम से, छात्र और पेशेवर पोषण, स्वास्थ्य, संसाधन प्रबंधन, वस्त्र और बाल विकास जैसे क्षेत्रों में आवश्यक ज्ञान और व्यावहारिक कौशल प्राप्त कर सकते हैं। इन उपकरणों ने न केवल शैक्षिक अवसरों का विस्तार किया है, बल्कि स्थायी जीवन, स्वस्थ आहार और प्रभावी गृह प्रबंधन के बारे में जागरूकता फैलाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हालाँकि, जहाँ डिजिटल शिक्षा के अनेक लाभ हैं, वहीं जिम्मेदार और प्रभावी डिजिटल शिक्षा रणनीतियों को लागू करना भी आवश्यक है। सूचना की सटीकता सुनिश्चित करना, डिजिटल खाई को पाटना और व्यावहारिक प्रशिक्षण तत्वों को शामिल करना गृह विज्ञान में डिजिटल शिक्षा को अधिक प्रभावशाली और समावेशी बनाने की दिशा में आवश्यक कदम हैं। इसके अतिरिक्त, बहुभाषी सामग्री, एआई-संचालित व्यक्तिगत शिक्षा और गेमीफाइड अनुभवों का विकास इसकी पहुँच और प्रभावशीलता को और बढ़ा सकता है। जैसे-जैसे तकनीक का विकास जारी है, डिजिटल शिक्षा को केवल सैद्धांतिक ज्ञान के बजाय वास्तविक दुनिया के अनुप्रयोगों से शिक्षार्थियों को सशक्त बनाने के लिए डिजाइन किया जाना चाहिए। नवीन शिक्षण विधियों को नैतिक डिजिटल प्रथाओं के साथ जोड़कर, गृह विज्ञान शिक्षा को एक गतिशील, आकर्षक और समावेशी क्षेत्र में परिवर्तित किया जा सकता है, जो व्यक्तियों को बेहतर जीवन स्तर के लिए आवश्यक कौशल और जागरूकता से सुसज्जित करेगा।

संदर्भ

1. देसाई, आर. (2020). गृह विज्ञान शिक्षा में उभरती प्रौद्योगिकियों की भूमिका: एक समीक्षा. जर्नल ऑफ एजुकेशनल टेक्नोलॉजी, 15(2), 45-59.
2. गुप्ता, पी., और शर्मा, आर. (2021). सोशल मीडिया और गृह विज्ञान जागरूकता: डिजिटल शिक्षण प्रवृत्तियों पर एक अध्ययन. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ होम साइंस, 18(3), 112-126.
3. गुप्ता, एस., और सिंह, ए. (2021). पोषण शिक्षा का आहार संबंधी आदतों पर प्रभाव: डिजिटल प्लेटफॉर्म की भूमिका. इंडियन जर्नल ऑफ पब्लिक हेल्थ, 66(1), 24-31.
4. कुमार, ए. (2021). डिजिटल शिक्षण का उदय: पॉडकास्ट, ई-लर्निंग और सोशल मीडिया. शिक्षा और समाज, 22(4), 78-92.
5. कुमार, एस., और राठी, एम. (2020). गृह विज्ञान शिक्षा में वीडियो-आधारित शिक्षण और कौशल विकास. जर्नल ऑफ एप्लाइड लर्निंग, 14(3), 57-72.
6. महिला एवं बाल विकास मंत्रालय. (2021)। पोषण अभियान: राष्ट्रीय पोषण मिशन का अवलोकन। भारत सरकार.
7. मिश्रा, पी. (2021). डिजिटल प्रभावक और गृह विज्ञान जागरूकता: यूट्यूब और इंस्टाग्राम के प्रभाव का विश्लेषण. जर्नल ऑफ डिजिटल मीडिया स्टडीज, 10(2), 33-48
8. Patel, M., & Verma, R. (2018). Sustainable textiles: Consumer awareness and selection preferences. Journal of Home Science Research, 9(1), 54-67.
9. Rao, N., & Mehta, D. (2020). Home Science education: An interdisciplinary approach to well-being. Indian Journal of Home Science, 12(4), 89-105.
10. Sharma, R., & Gupta, P. (2022). E-learning and Home Science: Expanding access through technology. Journal of Distance Education, 19(1), 95-112.
11. Singh, T. (2022). Social media as a tool for sustainable living and Home Science education. International Journal of Social Media Studies, 5(3), 88-102.
12. Verma, K. (2021). SWAYAM and online education: Transforming access to Home Science learning. Indian Journal of Digital Education, 8(2), 44-59.
13. Verma, K., & Singh, R. (2020). Online forums and peer-based learning in Home Science. Journal of Educational Innovations, 16(1), 67-81.

भारतीय भाषाओं की आवश्यकता और उपयोगः एक अवलोकन

डॉ० सीमा सिंह

डिपार्टमेंट ऑफ फिजिक्स, हवाबाग कॉलेज, जबलपुर

सारांश

भारतीय भाषाएँ सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण, समावेशी शिक्षा और राष्ट्रीय पहचान को बढ़ावा देने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, और भारत में प्रौद्योगिकी, अनुसंधान, मीडिया और ई-कॉमर्स में इनके महत्वपूर्ण व्यावहारिक अनुप्रयोग हैं।

भारतीय भाषाएँ राष्ट्र की समृद्ध और विविध कलात्मक परंपराओं, मौखिक इतिहास और सांस्कृतिक मूल्यों का भंडार हैं। ये क्षेत्रीय पहचान के केंद्र में हैं और पीढ़ियों के बीच सांस्कृतिक ज्ञान के संचार में मदद करती हैं।

विशेष रूप से उच्च शिक्षा और अनुसंधान में, शिक्षण माध्यम के रूप में मातृभाषाओं या क्षेत्रीय भाषाओं का उपयोग समझ को बढ़ाता है, संज्ञानात्मक भार को कम करता है और समस्या-समाधान क्षमताओं में सुधार करता है, जिससे अधिक न्यायसंगत शिक्षा प्राप्त होती है।

भाषाई विविधता सरकार, प्रशासन और सार्वजनिक सेवाओं में प्रभावी संचार के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, यह सुनिश्चित करते हुए कि अधिकांश आबादी इन सेवाओं तक पहुँच और उनसे संवाद कर सके।

भारत में विशाल गैर-अंग्रेजी भाषी उपभोक्ता आधार तक पहुँचने के लिए व्यवसायों के लिए भारतीय भाषाएँ महत्वपूर्ण हैं। ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म और डिजिटल सामग्री प्रदाता अपने उपयोगकर्ता आधार का विस्तार करने और स्थानीय दर्शकों से जुड़ने के लिए तेजी से भारतीय भाषाओं को अपना रहे हैं।

प्रतिभागियों और शोधकर्ताओं द्वारा सबसे अच्छी तरह समझी जाने वाली भाषा में किए गए शोध से अधिक सूक्ष्म और सटीक निष्कर्ष निकल सकते हैं, क्योंकि इससे संस्कृति-विशिष्ट अर्थों और सामाजिक संदर्भों की गहरी समझ प्राप्त होती है। मशीन समझ और निर्माण के लिए भारतीय क्षेत्रीय भाषाओं के प्रसंस्करण में महत्वपूर्ण शोध हो रहा है।

राष्ट्रीय अनुवाद मिशन जैसी पहल सभी प्रमुख विषयों के ज्ञानवर्धक ग्रंथों का भारतीय भाषाओं में अनुवाद और प्रकाशन को प्रोत्साहित करती हैं, जिससे एक व्यापक अनुसंधान और विकास पारिस्थितिकी तंत्र को समर्थन मिलता है।

डिजिटल प्लेटफॉर्म (ओटीटी, सोशल मीडिया) सांस्कृतिक रूप से प्रासंगिक सामग्री तैयार करने के लिए क्षेत्रीय भाषाओं का लाभ उठा रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप क्षेत्रीय कला रूपों और सिनेमा का पुनरुत्थान हुआ है और वे वैश्विक दर्शकों तक पहुँच रहे हैं।

प्राचीन भारतीय भाषाओं में वैश्विक शैक्षणिक रुचि है और ये भारत की ष्सॉफ्ट पावरष और सांस्कृतिक कूटनीति के लिए एक संसाधन हैं, जहाँ विदेशी विश्वविद्यालय भारतीय संस्कृति और दर्शन पर गहन अध्ययन के लिए पाठ्यक्रम प्रदान करते हैं।

संक्षेप में, भारतीय भाषाओं में अनुसंधान और अनुप्रयोगों को बढ़ावा देना न केवल एक सांस्कृतिक अनिवार्यता है, बल्कि देश के भीतर समावेशी विकास, तकनीकी प्रगति और प्रभावी संचार के लिए एक व्यावहारिक आवश्यकता भी है।

प्रस्तुत शोध लेख इस बात पर जोर देता है कि विभिन्न क्षेत्रों में मातृभाषाओं के प्रयोग से समझ, पहुँच और आम जनता के साथ जुड़ाव की समग्र गुणवत्ता में सुधार होता है।

मूल शब्दः भारतीय भाषाएँ, सांस्कृतिक विरासत, संरक्षण, समावेशी शिक्षा, राष्ट्रीय पहचान, ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म, डिजिटल सामग्री, अनुवाद, तकनीकी प्रगति, प्रभावी संचार

प्रस्तावना

भारत एक बहुभाषी और बहुजातीय देश है जिसमें समृद्ध भाषाई विविधता है। यहाँ बोली जाने वाली भाषाएँ विभिन्न जनजातियों के इतिहास, संस्कृति और परंपराओं को दर्शाती हैं। भारत में 120 से अधिक भाषाएँ हैं, और हर एक अपनी अनूठी विरासत में योगदान देती है। यह विविधता भारत की भाषा विशेषताओं का अध्ययन करना विशेष रूप से दिलचस्प और महत्वपूर्ण बनाती है।

भारत के संविधान के अनुसार, राष्ट्रीय स्तर पर दो आधिकारिक भाषाएँ हैं: हिंदी और अंग्रेजी। हिंदी देश की सबसे व्यापक रूप से बोली जाने वाली भाषा है और 40% से अधिक जनसंख्या की पहली भाषा के रूप में उपयोग होती है। दूसरी तरफ, अंग्रेजी भाषा अंतरराष्ट्रीय संवाद की भाषा के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और सरकारी तथा कानूनी दस्तावेजों में, साथ ही शिक्षा में उपयोग होती है।

इसके अलावा, भारत के विभिन्न राज्यों में अपनी क्षेत्रीय भाषाएँ हैं। उदाहरण के लिए, पश्चिम बंगाल में बंगाली, आंध्र प्रदेश में तेलुगु और तमिलनाडु में तमिल। इन भाषाओं की विविधता देश की बहुस्तरीय भाषाई संरचना को उजागर करती है और इसकी सांस्कृतिक समृद्धि को दर्शाती है।

भारत की 2001 की जनगणना के अनुसार, देश भर में 1,600 से अधिक भाषाएँ बोली जाती हैं, हालाँकि संविधान आठवीं अनुसूची के तहत 22 भाषाओं को मान्यता देता है। ये भाषाएँ एक आवश्यक माध्यम के रूप में कार्य करती हैं जिसके माध्यम से भारत की समृद्ध और विविध कलात्मक परंपराएँ–शास्त्रीय संगीत और नृत्य से लेकर लोक परंपराओं और दृश्य कलाओं तक–संप्रेषित और संरक्षित की जाती हैं। पिछले पाँच वर्षों में, भारतीय कलाओं में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है, जो आंशिक रूप से क्षेत्रीय भाषाओं की बढ़ती दृश्यता और क्षेत्रीय कला रूपों को बढ़ावा देने में उनकी भूमिका से प्रेरित है। डिजिटल प्लेटफॉर्म, सोशल मीडिया और सरकारी नीतियों ने भारतीय भाषाओं के संरक्षण और लोकप्रियकरण की आवश्यकता पर और जोर दिया है।

भारतीय भाषाओं की आवश्यकता और उपयोग सांस्कृतिक पहचान, राष्ट्रीय एकता और शिक्षा से जुड़े हैं। ये भाषाएँ एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक ज्ञान और संस्कृति को हस्तांतरित करने, विचारों को व्यक्त करने और सामाजिक समरसता बनाए रखने के लिए महत्वपूर्ण हैं। इसके अलावा, व्यापार, प्रशासन और मीडिया जैसे क्षेत्रों में भी इनका व्यापक उपयोग होता है।

भाषायी विविधता की आवश्यकता

- सांस्कृतिक पहचान: ये भाषाएँ भारत की सांस्कृतिक विविधता और विरासत को दर्शाती हैं, जिससे लोगों की अपनी पहचान बनी रहती है।
- राष्ट्रीय एकता: ये विभिन्न क्षेत्रों के लोगों को एक–दूसरे से जुड़ने और राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने में मदद करती हैं।
- ज्ञान और समझ: भाषा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक ज्ञान और समझ को हस्तांतरित करने में मदद करती है।
- प्रशासनिक आवश्यकता: देश के विभिन्न स्तरों पर प्रशासन के लिए विभिन्न भाषाओं की आवश्यकता होती है, जिससे लोगों के लिए सरकारी सेवाओं की पहुँच आसान होती है।
- वैश्विक संबंध: हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं का वैश्विक स्तर पर भी महत्व बढ़ रहा है, जिससे भारत के अंतरराष्ट्रीय संबंधों को बढ़ावा मिलता है।

भाषाओं का उपयोग

- शिक्षा: नई शिक्षा नीति के तहत मातृभाषा में शिक्षा देने पर जोर दिया जा रहा है, इसलिए भारतीय भाषाओं का उपयोग शिक्षा के लिए आवश्यक है।
- संचार: लोग अपनी भावनाओं और विचारों को व्यक्त करने के लिए भाषा का उपयोग करते हैं।
- प्रशासन: भारत सरकार द्वारा हिंदी को आधिकारिक भाषा का दर्जा दिया गया है, जिसका उपयोग सरकारी दस्तावेजों और प्रक्रियाओं में होता है।

- व्यापार और विपणन: व्यापारिक क्षेत्र में हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं का उपयोग विज्ञापन, विपणन और ग्राहक सेवा के लिए किया जाता है।
- मीडिया और मनोरंजन: हिंदी फिल्में, टीवी शो और समाचार चौनल भारतीय मीडिया और मनोरंजन उद्योग में एक प्रमुख भूमिका निभाते हैं।
- साहित्य और कला: भारतीय भाषाएँ साहित्य, कला और इतिहास का संवाहक हैं और इन क्षेत्रों के विकास में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं।

भारत में कई लेखन प्रणालियाँ उपयोग में हैं, जिससे इसकी भाषाई चित्रकला और भी विविध हो जाती है। ये लेखन प्रणालियाँ प्रत्येक भाषा और क्षेत्र की सांस्कृतिक और ऐतिहासिक विशेषताओं को भी दर्शाती हैं।

बोलियों और उच्चारण की विविधता रोजमर्रा की बातचीत में भी प्रकट होती है, जो भाषाई संवाद में अतिरिक्त रंग और अनोखापन प्रदान करती है। यह विविधता सांस्कृतिक भिन्नताओं को जन्म देती है और भारतीय समाज को समृद्ध बनाती है।

भारतीय भाषाओं के बीच सामंजस्य और संचार हेतु अनुवाद की महत्ता

भारत एक बहुभाषी देश है। इन भाषाओं में परस्पर आदान-प्रदान शताब्दियों से हो रहा है। इन भाषाओं और संस्कृतियों के बीच अनुवाद संवाद सेतु के रूप मेंकार्य कर रहा है। वास्तव में शताब्दियों के सांस्कृतिक समन्वय की प्रक्रिया के चलते देश में सांस्कृतिक एकीकरण में भारतीय भाषाओं में रचित साहित्य और ज्ञान-विज्ञान के विकास में अनुवाद का विशेष महत्व रहा है। अनुवाद के माध्यम से भारतीय भाषाओं में किए जा रहे कार्यों का परिचय मिलता है। उनमें निहित साहित्यिक सौंदर्य का रसास्वादन होता है। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, तुलसीदास कबीर, तिरुवल्लुवर, कंबन, सुब्रह्मण्यम भारती, वेमना, पोतन्ना, संत बसवेश्वर, उल्लूर परमेश्वरय्यर, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, शरतचंद्र भाई वीर सिंह ज्ञान देव, नामदेव आदि अनेक भाषाओं के कवि और साहित्यकार भारतीय साहित्य के ज्ञानदीप हैं। इसके अतिरिक्त अनुवाद एक ऐसी विधा है, जिसका उपयोग जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में होता है। सर्जनात्मक साहित्य के साथ-साथ प्रशासन, बैंकिंग, पर्यटन, विज्ञापन, बाजार, विज्ञान प्रौद्योगिकी आदि विभिन्न कार्यक्षेत्रों में अनुवाद का कार्य असीम मात्रा में उपलब्ध है। इसलिए अनुवाद की आवश्यकता और महत्ता आज भी बनी हुई है।

भारत की भाषाएँ इन विभिन्न भाषा-परिवारों की भाषाओं को बोलने वालों में परस्पर समरसता रही है। एक भाषा-भाषी समुदाय ने दूसरे भाषा-भाषी समुदाय के सामाजिक-सांस्कृतिक विकास में साथ दिया और आवश्यकता के अनुसार उसकी भाषा को सीखता रहा, अपनाता रहा और उसमें प्रवीणता प्राप्त कर उस भाषा के साहित्य के विकास में सक्रिय सहयोग भी देता रहा। इस प्रकार शताब्दियों के सामाजिक-सांस्कृतिक 'समन्वय की प्रक्रिया में भारत की सामाजिक-सांस्कृतिक एकता एवं अखंडता सातत्य मिलता है। इसी सातत्य के कारण कश्मीर से कन्याकुमारी और गुजरात से असम तक भाषाओं में कहीं भी टूटन नहीं मिलती। इसीलिए भारत में बहुभाषिकता किसी विशेष समस्या के रूप में न उभर कर सामाजिक आवश्यकता के अनुरूप सहज और प्राकृतिक लक्षण के रूप में उद्दत हुई है। भारत की यह बहुभाषिकता न केवल राष्ट्रीय स्तर पर मिलती है, वरन विभिन्न प्रदेश भी बहुभाषी हैं। भारत की यह बहुभाषिकता प्राचीन काल से निरंतर चली आ रही हैं।

भारत की इस बहुभाषिकता में अनुवाद की बहुत बड़ी भूमिका रही है। यह भूमिका अनुवाद आज नहीं, सदियों से निभा रहा है।

आधुनिक युग में अनुवाद मानव जीवन के अनेक ऐसे क्षेत्रों में प्रवेश कर चुका है जो हमारे दैनंदिन कार्यों के लिए आवश्यक है। इन प्रयोजनों से अनुवाद के क्षेत्र में नई संभावनाएँ पैदा हुई हैं, जिनसे अनुवादकों की माँग में बढ़ोतरी हो रही है।

कार्यक्षेत्रों में भारतीय भाषाओं का प्रयोग होता है, इसलिए वहां द्विभाषिकता की स्थिति बनी हुई है। "वस्तुत: भारतीय भाषाओं के बीच आदान-प्रदान के अभाव और अनुवाद प्रक्रिया की कमी के कारण भारत की अनेक भाषाएँ और उनकी संपदा एक-दूसरे से काफी असंपृक्त बनी हुई हैं। इससे विभिन्न भाषी राज्यों के निवासी एक-दूसरे के साहित्य, संस्कृति, कला, वैज्ञानिक प्रगति आदि के संबंध में प्राय: अपरिचित ही हैं। इसीलिए भारतीय भाषाओं में संरचनात्मक तथा सांस्कृतिक समानता होते हुए तथा एक-दूसरे के निकट होते हुए भी वे अलग-अलग सी लगती हैं। इन भाषाओं के आदान-प्रदान की समस्या का समाधान मुख्यत: अनुवाद से ही संभव है। इससे हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं की संपदा एक-दूसरे के पास पहुँचेगी। यह

महान कार्य भारतीय भाषाओं के बीच सुनियोजित भारतीय भाषाओं की अनुवाद प्रक्रिया में छोटी-छोटी समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं, क्योंकि विविध लिपियों में लिखे होने के कारण कई शब्दों को समझने में कठिनाई होती है, हालांकि इन भाषाओं में प्रयुक्त शब्दावलियों में स्वभाषी अर्थात देशज शब्दों को छोड़ कर ज्यादातर शब्दों में समानता मिलती है।

सामाजिक और सांस्कृतिक समानता के कारण भारतीय भाषाओं के मुहावरों, लोकोक्तियों, मिथकीय कथनों और प्रयोग में भी काफी समानता मिलती है। इसलिए भारतीय भाषाओं के बीच अनुवाद की अनेक समस्याओं के बावजूद कई सुविधाएँ भी हैं।

इस प्रकार अनुवाद ही एक ऐसा विकल्प है जो विभिन्न भाषाओं में रचित साहित्य, विज्ञान, तकनीकी आदि को सर्वसुलभ और सार्वजनिक बनाने में सहायता करता है। भारत जैसे बहुभाषी देश में एकता और अखंडता को सुरक्षित और विश्व संस्कृति में अनुवादः विश्व की सभ्यताओं और संस्कृतियों के विकास में अनुवाद की विशेष भूमिका रही है। विभिन्न सभ्यताओं और संस्कृतियों को जानने तथा समझने के लिए अनुवाद को माध्यम बनाना हमारी नियति रही है।

यूनान, मिस्र, चीन आदि प्राचीन सभ्यताओं से भारत का घनिष्ठ संबंध रहा है और इस संबंध में अनुवाद की विशेष महत्ता रही है। बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार समूचे एशिया में अनुवाद की जीवंत परंपरा का परिणाम है। विश्व भर में गीता तथा उपनिषद् के ज्ञान का अनुवाद अपने विश्व साहित्य और अनुवादः साहित्य के अनुवाद का इतिहास काफी प्राचीन है। अनुवाद ने न केवल विभिन्न साहित्यों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है, बल्कि भाषा के विकास में भी इसके योगदान को नकारा नहीं जा सकता।

विश्व के विभिन्न साहित्यों के बीच जो परस्पर आदान-प्रदान हुआ, वह अधिकतर अनुवाद के माध्यम से ही हुआ है। इससे विभिन्न भाषाओं के साहित्यों के तुलनात्मक अध्ययन करने में काफी सहायता मिली है। इससे मानवीय ज्ञान के विविध सन्दर्भों, संकल्पनाओं, सिद्धांतों आदि की जानकारी मिलती है। इसके माध्यम से अन्य भाषाओं के साहित्य का अध्ययन करने से जिन नई अभिव्यक्तियों, संवेदनाओं, विचारधाराओं, जीवनानुभूतियों और साहित्य- शैलियों का परिचय मिलता है, वे हमारे जीवन के साथ-साथ हमारी चिंतन शक्ति और साहित्य सर्जना को भी प्रभावित है। भारत जैसे बहुभाषी देश में तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन और उसमें निहित अनुवाद की भूमिका प्रासंगिक है। विभिन्न भाषाओं में रचित भारतीय साहित्य के इतिहास की सार्वभौमिकता को देखने के लिए अनुवाद का आश्रय लेना आवश्यक हो जाता है।

पश्चिम के नए ज्ञान-विज्ञान से हमारे ज्ञान और चेतना के विकास में अनुवाद ही संबल रहा है। अनुवाद का महत्वपूर्ण योगदान ज्ञान- विज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में मिलता है। ज्ञान के संचार और संरक्षण में यह एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में उभरा है। विश्व के सभी विकसित देशों की राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिकीपरक प्रगति में अनुवाद की उल्लेखनीय भूमिका रही है।

वास्तव में विश्व की कम होती दूरियों में अनुवाद की उपयोगिता, प्रासंगिकता और महत्व में वृद्धि हो रही है।

प्राचीन काल से ही अनुवाद देश-विदेश में वाणिज्य और व्यापार के क्षेत्र में अत्यंत उपयोगी रहा है। प्राचीन काल से ही भारत, अरब, चीन, यूरोप में व्यापारी लोग अपने व्यापार के लिए देश- विदेश जाया करते थे और अनुवाद के सहारे ही अपना व्यापार और वाणिज्य करते थे। आज भी व्यापारी अपने उत्पादों और वस्तुओं की गुणवत्ता और उनके क्रय-विक्रय के संवर्धन के लिए अनुवाद का ही सहारा लेते हैं। अनुवाद ने धर्मों के प्रचार-प्रसार में भी विशेष भूमिका अदा की है।

भारतीय भाषाओं के बीच वैचारिक आदान-प्रदान के मार्ग भी अनुवाद ने खोले, जिससे हिंदी साहित्य का संवर्धन हुआ और देश को एकसूत्र में बाँधने के प्रयास को बल मिला। इस राष्ट्रीय और सांस्कृतिक नवजागरण में अनुवाद ने युगांतरकारी कार्य किया है।

भूमंडलीकरण और उदारीकरण से चलने वाले बाजार तंत्र को स्थापित करने के लिए मुक्त बाजार, निजीकरण और मीडिया का सहारा लिया जा रहा है। इसके लिए उत्पादक को स्थानीय भाषा का जो प्रयोग करना होता है, उसके लिए अनुवाद का आधार लिया जाता है।

आज वाणिज्य, शिक्षा, पर्यटन, जनसंचार प्रशासन, विज्ञान, प्रौद्योगिकी आदि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रयोजनमूलक उद्देश्यों के कारण अनुवाद के क्षेत्र में वृद्धि हो गई है। इन नई संभावनाओं के कारण अनुवाद का संबंध अब "स्वातः सुखाय" तक सीमित न रहकर प्रयोजनमूलक आयामों के साथ जुड़ गया है। इसीलिए अनुवाद रोजगार का माध्यम भी बन गया है।

आधुनिक युग में अनुवाद का क्षेत्र बड़ा व्यापक हो गया है। यह मानव जीवन के उन क्षेत्रों में प्रविष्ट हो गया है जो जन सामान्य के दैनंदिन के कामकाज में प्रयुक्त होते हैं। इसी कारण अनुवादकों की माँग बढ रही है।

हिंदी भाषा और मोबाइल तकनीक

मोबाइल तकनीक के बढ़ते प्रयोग के साथ ही हिंदी भाषा का उपयोग भी मोबाइल यंत्रो में बढ़ा है। स्मार्टफोन कंपनियां अब हिंदी इंटरफेस, टाइपिंग कीबोर्ड, वोयस टाइपिंग, और वोइस वोइस असिस्टेंट की सुविधाएँ हिंदी में उपलब्ध करा रही हैं। इससे डिजिटल पहुँच आसान और लोकतांत्रिक बन गई है। गूगल वाइस टाइपिंग,ै पजिज्ञमल, प्दकपब ज्ञमलइवंतक जैसे टूल्स हिंदी टाइपिंग को सरल बना रहे हैं।

क्षेत्रीय विविधता और हिंदी डिजिटल संस्कृति

भारत की भाषाई विविधता के बीच हिंदी एक सेतु का कार्य कर रही है। विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं के बीच हिंदी एक संपर्क भाषा के रूप में उभर रही है, विशेषकर डिजिटल मंचो पर। बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, राजस्थान और दिल्ली जैसे हिंदी भाषी राज्यों के साथ-साथ गैर-हिंदी भाषी राज्यों में भी हिंदी कंटेंट की खपत तेजी से बढ़ रही है। यह परिवर्तन सोशल मीडिया रील्स, शॉर्ट्स और मीम्स के माध्यम से और भी स्पष्ट दिखाई देता है।

ई-गवर्नेंस में भारतीय भाषाओँ का उपयोग

ई-गवर्नेंस के बढ़ते प्रयोग ने प्रशासनिक सेवाओं को नागरिकों तक पहुँचाने का तरीका बदला है। अब अविकांश सरकारी वेबसाइटें हिंदी समेत तमाम भारतीय भाषाओँ में भी उपलब्ध हैं। रेल, बैंकिंग, सरकारी योजनाओं, आधार पोर्टल, डिजिटल इंडिया पोर्टल जैसी सेवाओं में हिंदी विकल्पों की सुविधा दी जा रही है। इससे आम नागरिकों की भागीदारी बढ़ी है और डिजिटल समावेशन को बल मिलता है।

विकसित भारत के निर्माण में भारतीय भाषाओं की भूमिका

सभी भारतीय भाषाओं की राष्ट्र की प्रगति में महत्वपूर्ण भूमिका है - यह विवाद का विषय ही नहीं होना चाहिए। असली मुद्दा है विदेशी भाषा के मुकाबले भारतीय भाषाओं की उपेक्षा करना, भारतीय भाषाओं के प्रति हीनता की भावना का वातावरण बनाना और विदेशी भाषा को समृद्धि की भाषा मान लेने की नासमझी करना।

नई शिक्षा नीति 2020 सभी भारतीय भाषाओं के संवर्धन और संरक्षण की वकालत करती है। इसके आधार पर भाषाओं के संरक्षण के लिए विभिन्न कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। मातृभाषा में शिक्षा देने पर विशेष जोर दिया जा रहा है। इंजीनियरिंग और मेडिकल की पढ़ाई कुछ राज्यों में भारतीय भाषा हिंदी में शुरू हो चुकी है। यह भारतीय भाषाओं के पुनरुद्धार का समय है।

भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 19वीं सदी के उत्तरार्ध में कहा था कि "निज भाषा ही सभी उन्नतियों का मूल है।" लेकिन आजाद भारत की उन्नति का आधार विदेशी भाषा को माना गया। विडंबना यह है कि तमाम किंतु-परंतु के बावजूद आज भी सरकारी कार्यालयों में अंग्रेजी भाषा के प्रति झुकाव देखा जाता है। इस मानसिकता में बदलाव केवल जन-जागरूकता से ही लाया जा सकता है।

चूँकि हिंदी देश में सबसे अधिक लोगों द्वारा बोली समझी जाती है, तो माना जा सकता है की इसमें सभी भारतीय भाषाओं को एक साथ लेकर राष्ट्र को एकता के सूत्र में पिरोने की सामर्थ्य है। इस सामर्थ्य का उपयोग करते हुए भारत जैसे विशाल देश की अपनी एक राष्ट्रभाषा अवश्य होनी चाहिए। राष्ट्र का विकास स्वदेशी भाषा में ही संभव है। आज जब भारत विकसित राष्ट्र का संकल्प लेकर आगे बढ़ रहा है, तब हिंदी भाषा का दायित्व और भी बढ़ जाता है। आवश्यकता इस बात की है कि हिंदी अन्य भारतीय भाषाओं के साथ कदमताल मिलाकर राष्ट्र के संकल्प को सशक्त बनाए।

निष्कर्ष

भारत की जीवंत सांस्कृतिक विरासत इसकी भाषाई विविधता में गहराई से समाहित है, जहाँ देश भर में 22 से ज्यादा आधिकारिक मान्यता प्राप्त भाषाएँ और सैकड़ों बोलियाँ बोली जाती हैं। ये भाषाएँ संचार, संरक्षण और नवाचार के माध्यम के रूप में कार्य करके, भारतीय कला के विभिन्न रूपों, चाहे वे पारंपरिक हों या समकालीन, को बढ़ावा देने में सहायक रही हैं।

अगले दशक में, भारत की जनसंख्या विश्व के किसी भी देश की तुलना में सबसे युवा होगी, और हमारे राष्ट्र की सफलता सीधे तौर पर युवाओं को उच्चतम संभव शिक्षा प्रदान करने की हमारी क्षमता से जुड़ी होगी। शिक्षा न केवल व्यक्तियों के लिए अपनी पूर्ण क्षमता का एहसास करने के लिए, बल्कि समुदायों के विकास और राष्ट्रों की प्रगति के लिए भी महत्वपूर्ण है। आर्थिक विकास, सामाजिक निष्पक्षता और समानता, वैज्ञानिक प्रगति, राष्ट्रीय एकीकरण और सांस्कृतिक संरक्षण के संदर्भ में अंतर्राष्ट्रीय मंच पर भारत के निरंतर उत्थान और नेतृत्व को सुनिश्चित करने के लिए, देश को अपने प्रत्येक नागरिक को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने में सक्षम होना चाहिए। सभी बच्चों को उच्च स्तर की शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए ताकि उनकी स्वाभाविक प्रतिभा को बढ़ावा मिले और उनका और विकास हो ताकि वे अपने समुदाय, राष्ट्र और समग्र रूप से विश्व को लाभान्वित कर सकें।

भाषा समुदायों के सामने आने वाली चुनौतियों के बावजूद, आने वाली पीढ़ियों के लिए भाषाई विविधता को बनाए रखने और संरक्षित करने के लिए भारत सक्रिय रूप से अपनी भाषा नीति का विकास करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. हिंदी तथा भारतीय भाषाओं के समान तत्व, कैलाश चंद्र भाटिया, (1995), हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, 1995. अनुवाद विज्ञान की भूमिका, कृष्ण कुमार गोस्वामी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2008.
2. अनुवाद की सामाजिक भूमिका, रीतारानी पालीवाल, हिंदी बुक सेंटर, 2003.
3. दि प्रॉब्लम्स ऑफ ट्रांसलेशन, जी. गोपीनाथन और एस. कुंडुस्वामी (संपा), लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1993.
4. बेनेडिक्टर, थॉमस (2009). भारत में भाषा नीति और भाषाई अल्पसंख्यक: भारत में अल्पसंख्यकों के भाषाई अधिकारों का मूल्यांकन. लिट वर्लाग मुंस्टर. पृष्ठ 89. आईएसबीएन 978-3-643-10231-7.
5. यूजीसी - डिजिटल लर्निंग रिपोर्ट (2022)
6. सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार
7. डिजिटल इंडिया अभियान पोर्टल
8. नाहिद सबा (18 सितंबर 2013)। '2. बहुभाषावाद'। भारत में भाषाई विविधता और बहुभाषावाद: भारतीय भाषा नीतियों का भाषाई मूल्यांकन (पीडीएफ)। अलीगढ़: अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय। पृ. 61-68।
9. Google-KPMG Report: Indian Languages-Defining India's Internet (2017)
10. https://epathshala.nic.in
11. https://swayam.gov.in
12. National Education Policy-2020, Ministry of Human Resource Development, Government of India, 2020
13. https://www.hindustantimes.com/india-news/nep-2020-stresses-on-learning-all-indian-languages-dharmendra-pradhan-101653146875898.html
14. "India - Language, Culture, Customs and Etiquette." Professional Translation Services. Kwintessential. Web. 23 Apr. 2012.

"भारतीय लोकतंत्रः संवैधानिक आदर्श, संस्थागत विकास और समकालीन चुनौतियाँ"

डॉ० अजीत सिंह

असि० प्रो०, राजनीति विज्ञान, डॉ0 पी0 द0 ब0 हि0 रा0 स्ना0 महाविद्यालय, कोटद्वार (पौड़ी गढ़वाल) उत्तराखंड

शोध सारांश :

भारत विश्व का सर्वाधिक जनसंख्या-युक्त तथा बहुलतावादी लोकतांत्रिक गणतंत्र है, जिसकी आधारशिला सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार, संवैधानिक सर्वोच्चता, शक्तियों के पृथक्करण और सामाजिक न्याय के सिद्धांतों पर स्थापित है। 1950 में संविधान-प्रवर्तन के साथ भारत ने प्रतिनिधिक लोकतंत्र का वह स्वरूप अपनाया जिसमें नागरिकों की राजनीतिक भागीदारी, समानता, स्वतंत्रता, सहिष्णुता और सामाजिक समरसता को मूलाधार प्रदान किया गया। भारतीय लोकतंत्र केवल सत्ता-हस्तांतरण की प्रक्रिया नहीं, बल्कि नागरिक सशक्तीकरण, सामाजिक परिवर्तन, विधि का शासन, स्वतंत्र न्यायपालिका, सशक्त निर्वाचन प्रणाली, संघीय ढाँचा और पंचायती राज से लेकर डिजिटल शासन तक की संस्थागत प्रक्रियाओं का विकसित मॉडल है।

स्वतंत्रता-पश्चात् प्रशासनिक सुधारों, शिक्षा और संवैधानिक अधिकारों के विस्तार, सूचना के अधिकार, सामाजिक न्याय आधारित नीतियों, ई-गवर्नेन्स तथा पारदर्शिता- सम्मत उत्तरदायित्वों ने लोकतंत्र की भागीदारी को व्यापक स्वरूप प्रदान किया। तथापि जातिवाद, साम्प्रदायिकता, चुनावी व्यावसायीकरण, धन-बल और बाहुबल का प्रभाव, मीडिया-पक्षपात, सूचना-भ्रांतियाँ, सामाजिक-डिजिटल असमानता, मतदाता उदासीनता तथा आर्थिक विषमता जैसे कारक आज भी लोकतांत्रिक सुदृढ़ता के समक्ष गंभीर चुनौतियाँ बनकर खड़े हैं।

गहनता से देंखें तो भारतीय लोकतंत्र के ऐतिहासिक विकास, संवैधानिक आधार, मौलिक विशेषताओं और लोकतांत्रिक संस्थाओं की भूमिका का विश्लेषण करते हुए समकालीन चुनौतियों एवं उनके समाधान की संभावनाओं पर प्रकाश अपेक्षित है। फलतः निष्कर्ष यह है कि, भारत का लोकतंत्र निरंतर प्रगति, सामूहिक सहभागिता और संवैधानिक नैतिकता के माध्यम से अधिक उत्तरदायी, पारदर्शी, समावेशी तथा सहभागी शासन-व्यवस्था की ओर अग्रसर है।

मुख्य शब्दः भारतीय लोकतंत्र; संविधान; सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार; राजनीतिक सहभागिता; बहुदलीय व्यवस्था; विकेंद्रीकरण; सुशासन; नागरिक कर्तव्य; राजनीतिक संस्कृति; लोकतांत्रिक सुधार।

प्रस्तावना :

लोकतंत्र केवल शासन-प्रणाली नहीं, बल्कि विचार, व्यवहार और नागरिक चेतना का ऐसा समन्वित ढाँचा है जो सत्ता का अंतिम स्रोत स्वरुप हो जनता को मान्यता देता है। भारत का लोकतंत्र ऐतिहासिक, दार्शनिक तथा सांस्कृतिक आयामों की जटिल पृष्ठभूमि में विकसित हुआ है। यहाँ लोकतांत्रिक परंपराओं के प्रारूप वेदों के सभा-समिति तंत्र में, बौद्ध संघों की संगठन-व्यवस्था में तथा गणराज्यों की शासन संरचनाओं में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होते हैं। आधुनिक काल में भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन ने लोकतंत्र को केवल राजनीतिक आकांक्षा ही नहीं, बल्कि नैतिक और सामाजिक मुक्ति के साधन के रूप में स्थापित किया। इसलिए भारतीय लोकतंत्र का स्वरूप मात्र संवैधानिक औपचारिकता नहीं, बल्कि सामाजिक-न्यायोन्मुख परिवर्तन का सशक्त उपकरण है।

26 जनवरी 1950 को संविधान लागू होने के साथ भारत ने संप्रभु, समाजवादी, पंथ-निरपेक्ष, लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में स्वयं को परिभाषित किया। सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार ने नागरिकों को बिना किसी आर्थिक, जातीय, लैंगिक या शैक्षणिक भेद के राजनीतिक बराबरी प्रदान की। प्रतिनिधिक शासन, संसदीय प्रणाली, स्वतंत्र न्यायपालिका, स्वायत्त संवैधानिक

निकाय और स्थानीय स्वशासन संस्थाएँ लोकतांत्रिक नैतिकता को संरक्षित करती हैं। भारत का लोकतंत्र केवल मताधिकार की प्रक्रिया तक सीमित नहीं, बल्कि नागरिक-स्वतंत्रताओं, मानवाधिकारों, असहमति की स्वीकृति, सामाजिक समता, राजनीतिक सहभागिता और पारदर्शी शासन तक विस्तृत है।

तथापि लोकतांत्रिक ढाँचे की सफलता नागरिक चेतना पर निर्भर करती है। यदि मतदाता राजनीतिक उपभोक्ता के रूप में व्यवहार करें, मीडिया असंतुलित सूचना प्रवाह का साधन बन जाए, और राजनीतिक प्रतिस्पर्धा नैतिकता के स्थान पर सत्ता-लोलुपता पर आधारित हो, तो लोकतंत्र का सारांश कमजोर पड़ने लगता है। यही कारण है कि भारतीय लोकतंत्र के स्थायित्व के लिए सामाजिक जागरूकता, उत्तरदायी नागरिक भागीदारी, राजनीतिक शिक्षण, सुशासन, और नैतिक नेतृत्व का विकास आवश्यक है।

भारतीय लोकतंत्र आज एक संक्रमण-कालीन स्थिति से गुजर रहा है-जहाँ एक ओर डिजिटल गवर्नेंस, पारदर्शिता, विकेंद्रीकरण और नागरिक अधिकारों का विस्तार हो रहा है, वहीं दूसरी ओर राजनीतिक ध्रुवीकरण, सामाजिक विभाजन, मीडिया-विकृति, आर्थिक विषमता और लोकतांत्रिक मूल्यों का अवमूल्यन जैसी चुनौतियाँ सामने हैं। इस संदर्भ में शोध का उद्देश्य भारतीय लोकतंत्र के सैद्धांतिक आधार, व्यावहारिक संरचना, उपलब्धियों और वर्तमान चुनौतियों की गंभीर समीक्षा करते हुए उन नीतिगत उपायों की ओर संकेत करना है, जो लोकतंत्र को उत्तरदायी, संवेदनशील और सहभागी दिशा प्रदान कर सकें।

1. भारतीय लोकतंत्र का संवैधानिक आधार और मूलभूत सिद्धांत

भारतीय लोकतंत्र का आधार भारतीय संविधान है, जिसे सामाजिक-राजनीतिक न्याय, समानता, स्वतंत्रता, और बंधुत्व के सिद्धांतों पर निर्मित किया गया है। संविधान-निर्माताओं ने विश्व की सर्वश्रेष्ठ संवैधानिक परंपराओं का समन्वय करते हुए भारत को एक सार्वभौम, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष, लोकतांत्रिक एवं गणराज्य राष्ट्र घोषित किया।

इस लोकतांत्रिक ढाँचे की मूल आत्मा सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार है, जिसके अंतर्गत 18 वर्ष से अधिक आयु का प्रत्येक भारतीय नागरिक, जाति, धर्म, लिंग, भाषा और आर्थिक स्थिति के भेदभाव से परे मतदान करने का अधिकार रखता है।

भारतीय लोकतंत्र केवल राजनीतिक अधिकारों तक सीमित नहीं बल्कि सामाजिक-आर्थिक न्याय और समतामूलक विकास का भी संरक्षक है। इसी कारण इसे मात्र शासन प्रणाली नहीं बल्कि जीवन-पद्धति और सामाजिक-सांस्कृतिक दर्शन के रूप में देखा जाता है।

2. भारतीय चुनाव प्रणाली और बहुदलीय राजनीति

भारत में लोकतंत्र की जड़ें इसकी चुनाव प्रणाली और बहुदलीय ढाँचे में निहित हैं। भारत में केंद्र और राज्य स्तर पर विभिन्न राजनीतिक दल कार्यरत हैं, जो नागरिकों के हितों और विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस, भारतीय जनता पार्टी, भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी, बहुजन समाज पार्टी, तृणमूल कांग्रेस इत्यादि प्रमुख राजनीतिक दल हैं।

चुनाव आयोग स्वतंत्र एवं स्वायत्त संवैधानिक संस्था है, जिसका उद्देश्य चुनाव प्रक्रिया को निष्पक्ष, पारदर्शी और विश्वसनीय बनाना है।

हालाँकि, चुनावों में क्षेत्रीय दलों की बढ़ती भूमिका, गठबंधन राजनीति और चुनावी वित्तपोषण से जुड़े मुद्दे लोकतांत्रिक प्रक्रिया में जटिलता उत्पन्न करते हैं। लोकतंत्र को सुदृढ़ बनाए रखने हेतु आवश्यक है कि चुनाव प्रक्रिया पारदर्शी, तकनीक-सक्षम और धन-बल व बाहुबल से मुक्त हो।

3. भारतीय लोकतंत्र की चुनौतियाँ

लोकतांत्रिक व्यवस्था के व्यापक प्रसार के बावजूद भारत में कई संरचनात्मक एवं व्यवहारगत चुनौतियाँ विद्यमान हैं:

I. शिक्षा और राजनीतिक जागरूकता की कमी: निरक्षरता और राजनीतिक ज्ञान की कमी के कारण अनेक नागरिक मतदान को मात्र औपचारिक अधिकार के रूप में देखते हैं, न कि परिवर्तन का माध्यम।

II. जातिवाद, साम्प्रदायिकता और सामाजिक विषमता: जातिगत और धार्मिक पहचानें अभी भी मतदान प्रवृत्ति को प्रभावित करती हैं, जिससे लोकतंत्र का मूल्य-आधारित चरित्र कमजोर होता है।

III. राजनीतिक भ्रष्टाचार और धन-बल: चुनावी प्रक्रिया में धन और शक्ति का दुरुपयोग लोकतंत्र की नींव को चुनौती देता है।

IV. मीडिया का पक्षपात और सूचना का विकृतिकरण: अनेक बार मीडिया समूह राजनीतिक स्वार्थों से प्रेरित होकर अपूर्ण या पक्षपातपूर्ण जानकारी प्रसारित करते हैं। लोकतंत्र में स्वतंत्र मीडिया प्रहरी की भूमिका निभाता है, परन्तु सूचना-व्यवस्था में असंतुलन नागरिकों को भ्रमित कर सकता है।

V. मतदाता उदासीनता और कम मतदान दर: लोकतांत्रिक प्रक्रिया में नागरिकों की सक्रिय भागीदारी अत्यंत आवश्यक है, किंतु कम मतदान प्रतिशत लोकतंत्र की सक्रियता को प्रभावित करता है।

4. लोकतंत्र सुदृढ़ीकरण के उपाय

भारतीय लोकतंत्र को सशक्त और प्रभावी बनाने हेतु निम्न उपाय आवश्यक हैं:

I. लोकतांत्रिक शिक्षा और नागरिक चेतना का विस्तार: विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में लोकतांत्रिक मूल्यों, संवैधानिक अधिकारों, कर्तव्यों और राजनीतिक साक्षरता को अनिवार्य बनाना चाहिए।

II. मीडिया साक्षरता और सूचना पारदर्शिता: नागरिकों को मीडिया सामग्री का आलोचनात्मक विश्लेषण करने में सक्षम बनाना आवश्यक है ताकि वे तथ्यों और प्रचार में अंतर समझ सकें।

III. ईमानदार एवं सक्षम नेतृत्व का संवर्धन: राजनीति में योग्य, शिक्षित, नैतिक और दूरदर्शी नेतृत्व की सहभागिता बढ़ाने हेतु सामाजिक समर्थन तंत्र विकसित होना चाहिए।

IV. चुनावी सुधार: ई-मतदान, चुनावी धन पारदर्शिता, अपराधी पृष्ठभूमि वाले उम्मीदवारों पर प्रतिबंध, और डिजिटल खर्च निगरानी जैसे सुधार लोकतंत्र की विश्वसनीयता को बढ़ाएँगे।

V. वंचित वर्गों का सशक्तिकरण: गरीबी उन्मूलन, सामाजिक समानता, महिला-शिक्षा, और सामाजिक न्याय योजनाएँ लोकतंत्र की धरातलीय मजबूती सुनिश्चित करती हैं।

निष्कर्ष

भारतीय लोकतंत्र विश्व के सबसे सशक्त और व्यापक लोकतांत्रिक प्रयोगों में से एक है, जिसने विविधता, बहुलता, भाषायी-सांस्कृतिक भिन्नताओं तथा विशाल जनसंख्या के मध्य एक संतुलित और सहभागी शासन मॉडल स्थापित किया है। संविधान निर्माताओं ने जिस लोककल्याणकारी राज्य की परिकल्पना की थी, उसमें नागरिकों की समान भागीदारी, सामाजिक-आर्थिक न्याय, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और मानवीय गरिमा का संरक्षण केंद्र में रहा। आज, भारत में लोकतंत्र केवल शासन प्रणाली नहीं बल्कि सामाजिक जीवन का नैतिक और दार्शनिक आधार है, जो नागरिकों को अधिकारों के साथ-साथ कर्तव्यों की भी याद दिलाता है।

फिर भी, लोकतंत्र की वास्तविक सफलता मात्र मतदान से नहीं, बल्कि नागरिक चेतना, संवैधानिक निष्ठा, नैतिक राजनीतिक व्यवहार और सामाजिक उत्तरदायित्व से सुनिश्चित होती है। अशिक्षा, गरीबी, सामाजिक विषमता, राजनीतिक स्वार्थ, मीडिया-पक्षपात और मतदाता उदासीनता जैसी चुनौतियाँ लोकतंत्र के मूल चरित्र पर निरंतर दबाव डालती हैं। इन चुनौतियों के समाधान हेतु राजनीतिक पारदर्शिता, नागरिक शिक्षा, मीडिया नैतिकता, सामाजिक न्याय और संविधानिक मूल्यों का प्रसार अनिवार्य है। जब नागरिक अपने मताधिकार का सक्रियता से उपयोग करेंगे, नेताओं को जवाबदेह बनाएँगे तथा लोकतंत्र को केवल अधिकार का साधन नहीं बल्कि जन-भागीदारी और सामूहिक दायित्व का मंच मानेंगे, तभी भारत का लोकतंत्र अपने वास्तविक आदर्शों को चरितार्थ कर सकेगा।

अंतत:, भारतीय लोकतंत्र एक जीवंत, गतिशील और विकासशील प्रणाली है, जिसकी शक्ति उसके नागरिकों में निहित है। लोक-भागीदारी, नैतिक नेतृत्व, पारदर्शी शासन और सामाजिक संवेदनशीलता के माध्यम से हम इसे और अधिक सुदृढ़, समावेशी और मानवीय बना सकते हैं। यही वह मार्ग है, जिससे भारत न केवल विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्र के रूप में, बल्कि सबसे प्रेरणादायी लोकतांत्रिक राष्ट्र के रूप में उभर सकता है।

संदर्भ सूची (References)

अंबेडकर, भीमराव रामजी. (1950). भारतीय संविधान का निर्माण: वाद-विवाद एवं विश्लेषण. नई दिल्ली: भारत सरकार प्रकाशन विभाग.

अंबेडकर, भीमराव रामजी. (1947). भारत का संवैधानिक स्वरूप और लोकतांत्रिक मूल्य. नई दिल्ली: भारतीय विधान सभा प्रकाशन.

आस्टिन, ग्रैनविल. (1999). भारतीय संविधान: राष्ट्र-निर्माण की रूपरेखा (अनुवाद). नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

लिजफार्ट, अरेण्ड. (2001). लोकतांत्रिक शासन और बहुलतावाद: तुलनात्मक अध्ययन. नई दिल्ली: सेज प्रकाशन.

नेहरू, जवाहरलाल. (1946). भारत की खोज. नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट.

नंदा, बालगोविंद. (2016). भारतीय राजनीति और लोकतंत्र: सिद्धांत एवं व्यवहार. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड एंड आईबीएच.

प्रियदर्शी, प्रभाकर. (2020). भारतीय लोकतंत्र: संरचना, चुनौतियाँ और संभावनाएँ. नई दिल्ली: प्रभात प्रकाशन.

भारत निर्वाचन आयोग. (2022). भारतीय चुनाव प्रणाली: संविधान, नियम और सुधार रिपोर्ट. नई दिल्ली: भारत निर्वाचन आयोग प्रकाशन.

भारत का संविधान. (1950). नई दिल्ली: भारत सरकार प्रकाशन विभाग.

भारतीय संस्कृति के उत्थान में अकबर और उसके नवरत्नों का योगदान

डॉ० अर्चना सिंह

असि० प्रोफेसर (इतिहास), हेमवती नन्दन बहुगुणा राज० स्ना० महाविद्यालय, नैनी, प्रयागराज

सारांश –

भारतीय संस्कृति अनवरत काल से चली आ रही है। विभिन्न काल खण्डों में इस पर कई हमले हुए है किन्तु भारतीय संस्कृति अपनी स्वरूप को बनाये रखने में लगातार सफल रही है। भारतीय संस्कृति का संवर्धन एवं विकास मध्यकाल में अत्यधिक हुआ क्योंकि मध्यकाल की प्रकृति अत्यधिक कलात्मक एवं साहित्यिक रही है। कृषि के कारण वनों का विकास व शोषण के फलस्वरूप मानव का घुटता मुक्त प्राकृतिक गान भी संस्कृति के विकास को रोक नहीं पाया। उत्तर मध्यकाल अर्थात मुगल काल में शासकों के दरबार भारतीय संस्कृति के तत्वों से परिपूर्ण रहे हैं। हुमांयू के काल में चित्रकला, स्थापत्य कला, साहित्यिक परिचर्चा का विकास की चरण परिणति अकबर के शासन काल में पहुँचा। जहाँ अकबर के नौ प्रसिद्ध विद्वानों ने भारतीय संस्कृति के विभिन्न तत्वों का संचरण किया। ये नवरत्न दरबार में नृत्यकला, संगीत, साहित्य, विज्ञान, गणित, तर्कशास्त्र, खगोलशास्त्र, राजनीति, चिकित्सा शिक्षा आदि क्षेत्रों से जुड़े थे। इन नवरत्नों को अकबर के दरबार में उनके साथी-सलाहकार, संगीतकार, विद्वान वित्तमंत्री, सेनापति, मन्त्री, शाही चिकित्सक आदि के रूप में स्थान दिया गया था। इन्होंने अपने कार्यों से भारतीय संस्कृति एवं सामाजिक समन्वय को बढ़ावा दिया। इन नवरत्नों में बीरबल, तानसेन, राजा टोडरमल, राजा मानसिंह, फैजी, अबुलफजल, मुल्ला-दो-पियाजा, अब्दुल रहीम-खान-ए-खाना और फकीर अजियोद्वीन शामिल है। प्रस्तुत शोध पत्र इन्हीं नवरत्नों द्वारा भारतीय संस्कृति के समन्वय उनके प्रचार प्रसार हेतु किये गये कार्यों और उनकी उपलब्धियों पर आधारित हैं।

बीजशब्द- सभ्यता, संस्कृति, समन्वय, रीति-रिवाज, परम्परा, वेश-भूषा, खान-पान आदि।

प्रस्तावना - संस्कृति के शाब्दिक अर्थ की बात की जाए तो संस्कृति किसी भी देश, जाति और समुदाय की आत्मा होती है। संस्कृति से ही देश, जाति और समुदाय के उन गुणों का ज्ञान होता है जिनके सहारे वह अपने जीवन मूल्यों और आदर्शों का निर्माण करता है। संस्कृति किसी भी समाज की जड़ों में फैले गुणों के सामूहिक रूप का नाम है जो उस विशेष समाज के सोचने समझने, चिन्तन-मनन करने, क्रियाकलाप, खानपान, बोल-चाल, साहित्य, दर्शन, धर्म, रीति-रिवाज, जय-पराजय, परम्पराओं जैसे जीवन के विभिन्न पक्षों में दिखायी देता है। मनुष्य का सामाजिक जीवन अस्तित्व जिन साधनों पर टिका है उसे ही समग्र रूप से संस्कृति नाम दिया जाता है। जिस प्रकार सामाजिक मनुष्य सांस्कृतिक प्रतिक्रियाओं का परिणाम है, उसी प्रकार संस्कृति का विकास भी मनुष्य की प्रतिक्रियाओं का परिणाम होता है।

संस्कृति, मनुष्य जीवन जीने की कला है। प्रत्येक देश की संस्कृति में कुछ जीवन मूल्य होते हैं जिसका पालन उस संस्कृति से जुड़ने वाले समाज के सभी मनुष्यों द्वारा किया जाता है। संस्कृति का प्रत्यक्ष सम्बन्ध मनुष्य और उस समाज से होता है। यह किसी भी देश की आत्मा स्वरूप होती है। किसी भी देश के जीवन मूल्यों व आदर्शों का निर्धारण उस देश की संस्कृति से होता है। वहीं मनुष्य के सांस्कृतिक क्रियाकलापों से सभ्यता का जन्म व विकास होता है। सभ्यता का सम्बन्ध हमारे बाहरी जीवन के ढंग, तौर-तरीकों से होता है। सभ्यता समाज के सामूहिक स्वरूप को आकार प्रदान करती है किन्तु संस्कृति के अभाव में सभ्यता का अस्तित्व अस्थायी होता है। सभ्यता अपना मूलरूप खो सकती है।

भारत के सन्दर्भ में हमारी संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। भारतीय संस्कृतिक मौलिक है। इसकी अपनी अलग-अलग विशेषताएं है। जब पूरे विश्व में सभ्यताएं जन्म ले रही थी, उस काल में भारतीय संस्कृति अपने उत्थान पर थी। यह विश्व की सबसे प्राचीनतम एवं समृद्ध संस्कृतियों में से एक है। जिसकी जड़े सिन्धु घाटी सभ्यता तक जाती है। हमारी संस्कृति हजारों वर्षों से विकसित होती रही है। जहाँ विश्व की अनेक सभ्यताएं व उनकी संस्कृति समय के साथ नष्ट होती चली गयी वहीं भारतीय संस्कृति आज भी ''वसुधैव कुटुम्बकम'' की विचार-धारा के साथ निरन्तर बहती जा रही है।

भारतीय संस्कृति ने 'जियो और जीने दो' का नारा देकर विश्व को मानवता का पाठ पढ़ाया।

भारत में हिन्दू संस्कृति का उद्‌भव आर्य एवं आर्येत्तर संस्कृतियों के मिश्रण से हुआ जिसे वैदिक संस्कृति के नाम से जाना जाता है। यह वैदिक और प्राग्वैदिक संस्कृतियों के मिलन से उत्पन्न हुई। सभ्यता यदि संस्कृति का भौतिक पक्ष है तो भारत में इस पक्ष का विकास आर्यों ने किया। भारतीय संस्कृति की कई विशेषतायें जैसे अहिंसा, सहिष्णुता और वैराग्य भावना द्रविण स्वभाव के प्रभाव से विकसित हुई। यह देश आर्यों के आगमन से पूर्व ही सहिष्णु, संतोषी रहता आया है। कर्म, ज्ञान और भक्ति में से कर्म को आर्यों की देन माना जाता है। वहीं ज्ञान और भक्ति का विकास प्राग्वैदिक संस्कृति के प्रभाव से हुआ है। आर्यों के आगमन से पूर्व ही धर्म और संस्कृति के अनेक अंग रूप ग्रहण कर चुके थे। इसके बाद जो जाति या भारत में आयी वे भारतीय संस्कृति के विशाल समुद्र में समाती चली गई। यूनानी, शक, हूण, कुषाण, तुर्क मंगोल आदि भारत आये और यहीं की संस्कृति में रच-बस गये। उनका कोई अलग अस्तित्व नहीं बचा। भारतीय संस्कृति प्रचार-प्रसार में महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी, सम्राट अशोक जैसे महापुरूषों का भी योगदान रहा।

मध्य काल में अरबों, तुर्कों और मुगलों के आक्रमण से भारत में नये प्रकार के धर्म, रीति रिवाजों, विश्वास, परम्पराओं का आगमन हुआ। इस्लाम के आगमन के साथ ही देश में एक 'मिश्रित संस्कृति' का प्रार्दुभाव हुआ जिसे हिन्दी-मुस्लिम (गुंगा-जमुना तहजीब) संस्कृति कहा गया। मिश्रित संस्कृति को बढ़ावा देने में विभिन्न हिन्दू सन्तों एवं मुस्लिम सूफियों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। मुस्लिम शासकों द्वारा भी इस हिन्दू मुस्लिम संस्कृति को बढ़ावा देने के प्रयास किये गये जिसका पूर्ण विकास मुगल काल में हुआ और मुगल काल अकबर के शासनकाल में यह समन्वय अपने चरमोत्कर्ष तक पहुँच गया।

16वीं शताब्दी में अकबर ने जिस मुगल साम्राज्य की स्थापना की वह गैर संकीर्णतावादी विचारधारा पर आधारित था। अकबर द्वारा सहिष्णुता की नीति अपनाने के कारण हिन्दू मुस्लिम संस्कृतियों के बीच काफी तत्वों का आदान-प्रदान व समावेश हुआ जिसके परिणाम स्वरूप एक नवीन समन्वित संस्कृति का विकास हुआ। इस सांस्कृतिक समन्वय की पृष्ठभूमि तैयार करने में कुछ विशेष तत्वों का योगदान रहा। इन तत्वों ने इस्लाम के अत्याचारी स्वरूप का त्यागकर राजस्व का वह स्वरूप और सिद्धान्त अपनाया जो मुख्य रूप से राष्ट्रीय था। अकबर हिन्दुओं और मुसलमानों को एक दूसरे के निकट लाना चाहता था और इसके लिए यह आवश्यक था कि वे एक दूसरे की संस्कृति को जाने इसके लिए उसने एक अनुवाद विभाग की स्थापना की गयी जिसमें संस्कृत, तुर्की और फारसी भाषाओं के ग्रन्थों का फारसी भाषा में अनुवाद किया गया। बाबर द्वारा तुर्की भाषा में लिखित आत्मकथा 'तुजुक-ए-बाबरी' का फारसी में अनुवाद किया गया। इस काल में प्रसिद्ध ग्रन्थ 'तजक' का भी फारसी में अनुवाद किया गया। फैजी ने गणित पर भास्कराचार्य द्वारा रचित संस्कृत के ग्रन्थ ''लीलावती'' का फारसी में अनुवाद किया। अब्दुल कादिर बदायूँनी ने महाभारत का रज्मनामा नाम से फारसी में अनुवाद किया। अबुलफजल ने भी अनेक संस्कृत ग्रन्थों का फारसी भाषा में अनुवाद किया, उसमें पंचतत्र का अनुवाद 'अनवार-ए-सुहेली' नाम से किया। अब्दुल कादिर बदायूँनी ने अन्य लेखकों के साथ मिलकर रामायण का भी अनुवाद किया। ताजुल माली ने 'हितोपदेश' का फारसी भाषा में 'मुफर्री-अल-कुलूब' नाम से अनुवाद किया।

अकबर की नीतियों के इस समन्वित स्वरूप का विकास धीरे-धीरे हुआ। प्रारम्भ से ही साम्राज्य विस्तारवादी नीति का पालन करने से विभिन्न क्षेत्रीय संस्कृतियों के आपस में मिलने का अवसर मिला किन्तु इस काल में अकबर पर उलेमा वर्ग का पूर्ण प्रभाव था। सर्वप्रथम अकबर ने अपने ऊपर से इस प्रभाव को समाप्त कर अपनी मुस्लिम प्रजा का पूर्ण सत्ताधारी शासक बनने का प्रयास किया जिस पर उलेमा वर्ग का किसी प्रकार का नियन्त्रण न हो। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उसने फतेहपुर सीकरी में एक इबादतखाना का निर्माण करवाया जिसमें विभिन्न इस्लामी विद्वान एकत्र होकर परस्पर विचार-विमर्श करते थे। इन विद्वानों के विचार-विमर्श के समर्थ आपसी मन-मुटाव या स्वयं की श्रेष्ठता सिद्ध करने की आतुरता और कट्टरता के कारण अकबर ने इबादतखाने की बैठकों में अन्य धर्मों के विद्वानों को भी बुलाना प्रारम्भ कर दिया। उसका मानना था कि अच्छी बातें सभी धर्मों में पायी जाती हैं। सन् 1579 में अकबर ने स्वयं साम्राज्य के प्रमुख इमाम की हैसियत से मस्जिद में खुतबा पढ़ा और महजर की घोषणा की। इस घोषणा के अनुसार विवाहस्पद विषयों पर अकबर सम्राट जो भी निर्णय राज्यहित में लेंगे वह सभी को मान्य होगा। उसने सुलहकुल की नीति का पालन करते हुए हिन्दू-मुस्लिम एकता को बढ़ावा दिया। अकबर की इस नीति की पराकाष्ठा उसके द्वारा प्रतिपादित ''तौहीद-ए-इलाही'' धर्म में भी दिखायी देती हे। अकबर के तौहीद-ए-इलाही की कल्पना राजनैतिक और धार्मिक दोनों थी। राजनैतिक रूप से देखने पर ज्ञात होता है कि आरम्भ के मुगल बादशाह, बाबर, हुमांयू और अकबर हिन्दुओं के साथ मित्रता स्थापित करना चाहते थे क्योंकि वह जानते थे यदि भारत पर अधिकार स्थापित करना

व उसे बनाये रखना है तो हिन्दुओं के साथ सामन्जस्य स्थापित करना होगा। धार्मिक रूप से वह उन सूफियों और हिन्दू सन्तों का भी अनुकरण कर रहा था। तौहीद-ए-इलाही ने मानव-मूल्यों को स्वीकार कर समन्वित संस्कृति एवं सामाजिकता का ताना-बाना बुना। वस्तुतः तौहीद-ए-इलाही द्वारा मुगल साम्राज्य में राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया गया। यह एक सामाजिक-धार्मिक सम्प्रदाय मात्र था जिसका संगठन विभिन्न जातियों को एक दूसरे से निकट लाने के विचार से किया गया था। इसकी रचना सुलह-कुल के सिद्धान्त के आधार पर की गयी थी। अकबर के इन प्रयासों में उसके दरबार में रहने वाले नौ विद्वान (जिन्हें नवरत्न भी कहा जाता है) ने भी विभिन्न तत्वों का संचार किया। अकबर के नवरत्नों को अपने समय को सबसे प्रतिभाशाली व्यक्ति माने जाते थे। इन्होंने भारत के विभिन्न पहलुओं को विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारतीय संस्कृति के विकास में इन नवरत्नों को भूमिका को निम्न प्रकार से देखा जा सकता है।

1. राजा टोडरमल - राजा टोडरमल अकबर के नवरत्नों में प्रमुख स्थान प्राप्त था। वे दरबार राजस्व सम्बन्धी कार्य देखते थे। उन्होंने मुगल राजस्व प्रणाली में सुधार करते हुए ''जब्ती'' प्रणाली नामक नई व्यवस्था लागू कर एक केन्द्रीकृत राजस्व संग्रह प्रक्रिया शुरू की। इस व्यवस्था से भ्रष्टाचार कम करने में सहायता मिली। राजा टोडरमल ने किलों, नहरों और बुनियादी ढांचे का निर्माण करवाया।

2. अब्दुल रहीम खान-ए-खाना - अब्दुल रहीम खान-ए-खाना को उसके साहित्यिक कार्यों और हिन्दुस्तानी भाषा में महत्वपूर्ण योगदान के लिए जाना जाता है। वे अकबर के दरबार में एक प्रमुख विद्वान और कवि थे। इनके दोहे जीवन के अनुभवों और सीखों से भरे होते थे जो नैतिकता, सम्बन्धों और प्रकृति पर आधारित होते थे। वह अकबर के अधीन सेनानायक, प्रशासक थे। उन्होंने मुगल सभा की सैन्य व्यवस्था का मुख्य आधार 'मनसबदारी व्यवस्था' की स्थापना में प्रमुख भूमिका निभाई। वह हिन्दी और फारसी के प्रसिद्ध कवि तथा कला एवं सांस्कृतिक आदान-प्रदान के संरक्षक माने जाते हैं उनके प्रसिद्ध दोहों में से कुछ प्रसिद्ध दोहे हैं-

''रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून'' और

''रहिमन देख बड़ेन को, लघुन दीजिए डार''

एक प्रसिद्ध दोहा जो समन्वय व सर्व धर्मसमभाव पर आधारित है -

''टूटे सुजन मनाइये, जो टूटे सौ बार।
रहिमन फिरि-फिरि पोइए, टूटै मुक्ताहार।।''

3. अबुलफजल - अबुलफजल को अकबर के नवरत्नों में प्रमुख स्थान प्राप्त था। उन्हें एक इतिहास और दार्शनिक के रूप में जाना जाता है। उन्हें शाही पुस्तकालय की देख रेख की जिम्मेदारी सौंपी गयी थी। उन्होंने अकबरनामा और आइन-ए-अकबरी जैसे महत्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना की जिनमें अकबर के शासनकाल का विस्तृत विवरण दिया गया है। ये दोनों रचनायें मुगल साम्राज्य के इतिहास और संस्कृति के विषय में मूल्यवान जानकारी प्रदान करती है। वे सूफीवाद के सिद्धान्तों का पालन करते थे तथा इसके लिए दूसरों को भी प्रोत्साहित करते थे। वे सूफी विचारधारा के नक्सबंदी सिलसिले के अनुयायी थे जो आध्यात्मिक शुद्धता और आन्तरिक सत्य की खोज पर बल देते थे। इन्होंने ईसाई धर्म की पवित्र पुस्तक बाइबिल का फारसी भाषा में अनुवाद कर सांस्कृतिक समन्वय को बढ़ावा दिया।

4. बीरबल - बीरबल अकबर के प्रमुख नवरत्न थे। वह अकबर के विश्वासपात्र, मित्र, सलाहकार थे। वे अपनी बुद्धिमता और हाजिर जवाबी के लिए जाने जाते थे। वे जटिल से जटिल समस्याओं का हल व्यवहारिक रूप से निकाल लिया करते थे। वे सदैव सत्य के साथ खड़े रहते थे। उन्हें मुख्य काजी, दीवान, कोतवाल के रूप में नियुक्त किया गया था। उन्होंने अकबर की धार्मिक सहिष्णुता की नीति का समर्थन किया। वे सभी धर्मों के लोगों को मिलजुल कर रहने का आवाह्न करते थे। वे कला और साहित्य के संरक्षक थे। उन्होंने मुगल संस्कृति और साहित्य के संवर्धन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

5. फैजी - फैजी शेख मुबारक के पुत्र व अबुलफजल के भाई थे। वे एक प्रसिद्ध कवि, विद्वान के साथ-साथ अकबर के नवरत्नों में शामिल थे। वे फारसी व हिन्दुस्तानी भाषा के ज्ञाता थे। उन्होंने सम्राट अकबर को इबादतखाना की स्थापना में सहयोग प्रदान किया जहाँ लोग सभी धर्मों के बारे में ज्ञान की बातें जान सकते हैं। एक दूसरे धर्म की अच्छाइयों और बुराइयों से परिचित होने से समाजिकता की बढ़ावा मिला। उन्होंने अकबर द्वारा स्थापित धर्म ''तौहीद-ए-इलाही'' के द्वारा इस्लाम और हिन्दू धर्म के बीच मतभेदों को सुलझाकर सामाजिक समन्वय स्थापित करने में बहुमूल्य योगदान दिया। वे इतिहास, धर्म व दर्शन

के विशेषज्ञ व प्रमुख विद्वान थे। वे दरबार में मुख्य कवि और इतिहासकार के रूप में कार्य करते थे। जहाँ उन्होंने मुगल साम्राज्य के सांस्कृतिक और साहित्यिक परिदृश्य को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ये दक्षिण से खानदेश के राजा अली खाँ और अहमदनगर के राजा बुरहानुल्मुल्क के पास राजदूत के रूप में भी रहे। इन्होंने अकबर के पास दक्षिण भारत से बहुत से पत्रों का आदान प्रदान किया जिसमें भारत की सामाजिक व सांस्कृतिक दशा का अच्छा ज्ञान प्राप्त होता है। इन्होंने भास्कराचार्य के गणित के प्रसिद्ध ग्रन्थ लीलावती का फारसी में अनुवाद किया।

6. राजा मानसिंह – राजा मानसिंह अकबर के नवरत्नों में से एक मुगल सम्राट के एक विश्वसनीय सेनापति और करीबी सलाहकार थे। राजा मानसिंह ने सैन्य अभियानों के माध्यम से मुगल साम्राज्य के विस्तार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और मगल संस्कृति के प्रचार प्रसार में योगदान दिया। उन्होंने कूटनीति का सहारा लेते हुए पड़ोसी राज्यों और जनजातियों के साथ शान्तिपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर सामाजिक सौहार्द को बढ़ावा दिया। उन्होंने मेवाड़ के राजपूत शासक राणा प्रताप के आत्मसमर्पण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन्होंने मुगल दरबार में कला, नृत्य, संगीत और साहित्य के विकास को प्रोत्साहन दिया।

7. तानसेन – तानसेन अकबरकालीन नवरत्नों में से एक प्रमुख व्यक्ति थे। उन्हें भारतीय शास्त्रीय संगीत में महारत हासिल थी। वे ध्रुपद व ख्याल सहित भारतीय शास्त्रीय संगीत की विभिन्न शैलियों के ज्ञाता थ। वह वीणा, रबाब, और पखावज सहित कई प्रकार के वाद्ययंत्र बजाने में भी कुशल थी, उन्होंने शास्त्रीय संगीत में फारसी और भारतीय वाद्ययन्त्रों के समन्वित उपयोग को प्रोत्साहन दिया तथा लोक संगीत को शास्त्रीय संगीत में शामिल करने को बढ़ावा दिया। उन्होंने सभी धर्मों को बढ़ावा दिया। उन्होंने अपने संगीत का उपयोग हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच विभाजन की खाई को भरने के, उनको सामाजिकता बढ़ाने के लिए, सांस्कृतिक समीकरण को बढ़ावा देने के लिए किया।

8. मुल्ला दो-पियाजा – मुल्ला दो-पियाजा एक फारसी विद्वान, इस्लामी धर्मशास्त्र दर्शन और कानून के विशेषज्ञ थे। उन्होंने इस्लामी धर्मशास्त्र और कानूनी पर कई ग्रन्थ लिखे। उन्होंने भारत और ईरानी के मध्य भाषा और संस्कृति को बढ़ावा देने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। मुगल दरबार में इसके विषय में बताया। वे अपनी बुद्धिमत्ता और हास्य उपाख्यानों के लिए प्रसिद्ध थे।

9. फकीर अजियाउद्दीन – फकीर अजीयाउद्दीन एक प्रसिद्ध विद्वान, खगोल शास्त्री, शाही चिकित्सक और अकबर के नवरत्नों में एक थे। उन्हें फारसी व हिन्दी भाषा सहित अनेक भाषाओं पर अधिकार प्राप्त था। वह भारत में रहस्यवाद और सूफीवाद के लिए प्रसिद्ध थे। उन्होंने मुगल दरबार के सांस्कृतिक और स्थापत्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने मुगल दरबार के सांस्कृतिक और बौद्धिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

निष्कर्ष –

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दू-मुस्लिम एकता की स्थापना का क्रम सूफी सन्तों व भक्ति-आन्दोलन के प्रवर्तकों ने किया किन्तु उसे गति प्रदान करके पूर्णत: की ओर ले जाने का श्रेय अकबर को जाता है। उसकी उदार धार्मिक नीति के कारण दोनों परस्पर विरोधी धर्मों में एकता की भावना का उदय हुआ। मुगल संस्कृति के तत्व विशुद्ध रूप से न तो हिन्दू थे और न ही मुस्लिम परन्तु दोनों का सुन्दरतम समन्वय है। इसकी छाप हमारे सांस्कृतिक जीवन के विभिन्न अंगों पर आज भी दिखाई देती है। मुगलकालीन आर्थिक समृद्धि और शान्तिमय जीवन में इस सांस्कृतिक समन्वय की प्रक्रिया को बढ़ाने में पूर्ण योगदान दिया। अकबरकालीन नवरत्नों ने इस सांस्कृतिक एकता एवं समन्वयता को बढ़ाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया।

सन्दर्भ ग्रन्थ –

1. दिनकर, रामधारी सिंह- संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ सं0-326-327, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. डॉ0 अहमद, लईक – मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, पृष्ठ सं0-63-64 शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
3. लूनिया, बी0एन0- भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का विकास, पृष्ठ सं0-312-313, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
4. प्रभाकर, विष्णु- संस्कृति क्या है? पृष्ठ सं0-13-16 सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन।
5. डॉ0 खुराना, के0एल0- भारत का सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक इतिहास, पृष्ठ सं0-232-233, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
6. दास, पुरी, चोपड़ा- भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास, पृष्ठ सं0-28-29, मैकमिलन इण्डिया लि0

ग्रामीण विकास का महत्व

डॉ० राम कृष्ण साहू

अतिथि सहा.प्राध्यापक, नवीन शास. महाविद्यालय भिंभोरी, जिला- बेमेतरा (छ.ग.)

प्रस्तावना

स्वतंत्रता के पूर्व से ही भारत विश्व में सांस्कृतिक धरोहर और विश्व का मार्गदर्शक पथ प्रदर्शक बनने की क्षमता रखता था। 1893 में शिकागो विश्व धर्म सम्मेलन में भारत के स्वामी विवेकानंद के विचारों को जानने के बाद दुनिया में जो राष्ट्र भारत को मदारी और सपेरों का देश कहा करते थे। वह राष्ट्र वास्तविकता में परिचित होने के बाद से इसे सोने की चिड़िया कहने लगे , क्योंकि भारत की सर्वाधिक आबादी प्रारंभ से ही गांव में निवास करती है। इसीलिए स्वतंत्रता के बाद राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जिन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन के समय संपूर्ण भारत का भ्रमण किया था। उन्होंने कहा था कि भारत में जब तक गांव का विकास नहीं होगा। तब तक भारत का विकास अधूरा ही रहेगा। अतएव विकास की धारा गांव से ही प्रवाहित होना चाहिए। भले ही प्रथम पंचवर्षीय योजना अप्रैल 1951 में प्रारंभ हुई और सरकार का ध्यान औद्योगिकीकरण की प्रतिस्पर्धा में नगरीय विकास और महानगरों की अधोसंरचना पर ही केंद्रित रहा तथा ग्रामीण विकास की सदैव उपेक्षा होती रही ।1993 में 73वें संविधान संशोधन में जब पंचायती राज व्यवस्था की अवधारणा को मूर्त रूप दिया गया। तब से भारत में केंद्र व राज्य सरकार की समस्त संचालन व क्रियान्वयन सरपंच के माध्यम से प्रारंभ हुआ अधिकांश राज्यों में ग्राम पंचायतों में महिलाओं को 50प्रतिशत आरक्षण देकर ग्रामीण क्षेत्रों में महिला सशक्तिकरण की दिशा में सराहनीय पहल की गई। जिसमें छत्तीसगढ़ भी प्रमुख राज्य है अतएव वर्तमान परिवेश में केंद्र व राज्य दोनों सरकारों का ध्यान ग्रामीण विकास पर केंद्रित हो चुका है।

ग्रामीण विकास

किसी भी सभ्यता का विकास बिना ग्रामीण विकास के नहीं हुआ है। भारतीय अर्थव्यवस्था ग्रामीण प्रधान अर्थव्यवस्था है क्योंकि देश की लगभग 70 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है। अत: देश की खुशहाली, प्रगति, समृद्धि एवं विकास नि:संदेह रूप से गाँवों की खुशहाली व विकास पर ही निर्भर है। "भारत गाँवों का देश है यहाँ की आत्मा गाँवों में निवास करती है" राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी का यह कथन देश की अर्थव्यवस्था में गाँवों की भूमिका व योगदान को रेखांकित करता है।

ग्रामीण विकास से अभिप्राय ग्रामीण क्षेत्र के सम्पूर्ण विकास और ग्रामीणों के जीवन स्तर में सुधार से है। इस आशय से यह एक समग्र और बहुआयामी अवधारणा है, क्योंकि एक धारणा के रूप में यह ग्रामीण क्षेत्रों के सर्वांगीण विकास अर्थात् आर्थिक और सामाजिक विकास का बोध कराती है। जिसमें कृषि व अन्य कार्यों (जैसे-ग्रामीण लघु उद्योग एवं दस्तकारी, सामाजिक-आर्थिक अंत:रचना, सामुदायिक सेवाएँ, सुविधाएँ और ग्रामीण क्षेत्र के मानव संसाधन) का विकास शामिल है। विश्व बैंक की रिपोर्ट में भी ग्रामीण विकास का मूल अर्थ ग्रामीण जनसंख्या के निम्न आय वर्ग के लोगों के जीवन स्तर में सुधार लाने से है।

आजादी के बाद देश में पंचवर्षीय योजनाओं के क्रियान्वयन से जहाँ ग्रामीण अर्थव्यवस्था में प्रगति हुई है, वहीं निर्धनता, बेरोजगारी, कुपोषण, स्वास्थ्य सुविधाओं का अभाव और धन एवं आय के स्तर में विषमता जैसी कई मूलभूत समस्याएँ आज भी विद्यमान हैं। अत: आवश्यकता इस बात की है कि देश में ग्रामीण विकास की प्रक्रिया की जटिलता और असफलता को देखते हुए सर्वप्रथम ग्रामीण समस्याओं को समझने का प्रयास किया जाए।

ग्रामीण विकास का महत्व --

1. गाँव भारतीय संस्कृति का आधार हैं- देश की विभिन्न प्रकार की संस्कृतियाँ गाँवों से ही जुड़ी हुई हैं। वास्तव में गाँव ही विभिन्न प्रकार की संस्कृतियों के जन्मदाता एवं संरक्षक हैं, परन्तु वर्तमान समय में विभिन्न प्रकार की समस्याओं और दुर्दशाओं के बीच ये संस्कृतियाँ धूमिल होती जा रही हैं। इन्हें पुन: सफल बनाने के लिए ग्रामीण विकास परम् आवश्यक है।

2. कृषि विकास- कृषि हमारी राष्ट्रीय आय का मुख्य स्त्रोत है, परन्तु दुर्भाग्यवश भारतीय कृषि अत्यंत पिछड़ी दशा में है। डॉ. क्लाउस्टन ने भारतीय कृषि के विषय में उचित ही कहा है कि भारत में अछूत एवं पिछड़ी हुई जातियाँ तो हैं ही, साथ ही पिछड़े हुये उद्योग धंधें भी हैं, दुर्भाग्यवश खेती उनमें से एक है। अतः देश के ग्रामीण विकास हेतु कृषि को उन्नत अवस्था में लाना अत्यंत आवश्यक हैं।
3. औद्योगिक विकास- ग्रागीण विकास योजनाओं के सफल होने पर भारत के विभिन्न महत्वपूर्ण उद्योग धंधों (जैसे-कपड़ा, जूट, चीनी, वनस्पति, घी और तेल आदि) के लिए पर्याप्त कच्चा माल (रुई, जूट, गन्ना, तिलहन आदि) प्राप्त हो सकेगा। साथ ही भारत को निर्यात के लिए चाय, तम्बाकू कपास, मसाले, जूट का समान, सूती कपड़ा, वनस्पति घी, तेल भी मिल सकता है। इस दृष्टि से भारत में ग्रामीण विकास का अत्यंत महत्व है।
4. राष्ट्रीय आय में वृद्धि- ग्रामीण विकास योजनाओं के सफल होने के साथ-साथ गाँवों की आर्थिक दशा सुधरेगी और मालगुजारी, कृषि आयकर, सिंचाई कर आदि के रुप में सरकार की आय भी बढ़ेगी।
5. शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं का विकास- ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं का सर्वथा अभाव रहा है, जिसकी समुचित व्यवस्था आवश्यक है और इसे सामान्य प्रशिक्षण के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। इस लक्ष्य की प्राप्ति में ग्रामीण विकास की विभिन्न योजनाएँ और कार्यक्रम अत्यंत उपयोगी साबित हो सकते हैं। इसी तरह ग्रामीणों में जनसंख्या नियंत्रण और छोटे परिवार की अवधारणा के प्रति जागरुकता उत्पन्न करने का कार्य भी तभी संभव हो सकेगा, जब एक योजनाबद्ध कार्यक्रम के द्वारा ग्रामीण समुदाय के विचारों में परिवर्तन उत्पन्न किया जाए। इसी कारण देश में ग्रामीण विकास महत्वपूर्ण हो गया है।

निष्कर्ष

देश एवं राज्य में ग्रामीण विकास का क्षेत्र ग्रामीण लोगों के जीवन से संबंधित समस्त पहलुओं का संतुलित विकास करना है, जिससे उनकी सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का विकास हो सके। भारत की सम्पूर्ण सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था में गाँवों का अत्यधिक महत्व है। हालांकि भारतीय ग्रामीण समुदाय अनेक छोटी-बड़ी समस्याओं से घिरे हैं। गाँवों के लोगों को न उचित भोजन मिलता है, न कपड़ा और न ही मकान। इस दयनीय दशा से उनका उद्धार करने के लिए ग्रामीण विकास आवश्यक है, यहीं इसका सबसे बड़ा महत्व भी है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सिसोदिया, यतीन्द्र नाथ, 2002 "पंचायती राज व्यवस्था एवं अनुसूचित जाति महिला नेतृत्व'', रावत पब्लिकेशन,जयपुर, पृष्ठ 165
2. यादव सुषमाएवं शर्मा राम अवतार, 1994, "भारतीय राजनीति ज्वलन्त ग्रंथ'' हिन्दी माध्यम कार्यालय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ. 2.
3. अग्रवाल, प्रमोद कुमार,2004, "भारत के विकास की चुनौतियाँ", पृ. 3, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद,पृ. 3
4. जमुआर, रविशंकर,2011, "भारत में ग्रामीण विकासः अवधारणा, रणनीति एवं योजनाए'', रिगल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली ,पृ.36
5. जमुआर, रवि भांकर,2005, "भारत की पंचवर्षीय योजनाएँ और निर्धनता निवारण'', राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृ.63

महिला सशक्तिकरण की अवधारणा, समस्या एवं समाधान

नेहा मंडावी

अतिथि सहा.प्रा. (राजनीति विज्ञान) कंगलू कुम्हार षासकीय महाविद्यालय दुर्गूकोन्दल कांकेर छ.ग.)

प्रस्तावनाः-

भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से महिलाओं को देवी के रूप में मान्यता दी गई है एवं उसे कभी माँ के रूप में कभी पतिव्रता स्त्री के रूप में शक्ति स्त्रोत व शक्ति का रूप माना जाता रहा है। परंतु दूसरा पक्ष यह भी रहा है कि अनेक अंधविश्वासों के भवंरजाल में फंसकर सभी समाजिक व धार्मिक आडंबर एवं प्रयोग का शिकार भी महिलाओं को ही बनाया गया। इसीलिए महिला को पूजने के बाद भी वह पुरूष प्रधान परिवार में असहाय अबला बनकर दोयम दर्जे के स्थान पर शोषित होती रही है।

वैदिक युग से लेकर आधुनिक काल तक अनेक उतार-चढ़ाव आते रहे है और उनके अधिकारों में तदनुरूप बदलाव भी होते रहे है। वैदिक युग में स्त्रियों की स्थिति सुदृढ़ थी, परिवार तथा समाज में उन्हें सम्मान प्राप्त था। उनको शिक्षा का अधिकार प्राप्त था संपत्ति में उन्हें बराबरी का हक था सभा और समितियों में स्वतंत्रतापूर्वक भाग लेती थी। हिन्दू जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वह समान रूप से आदर और प्रतिष्ठित थी। शिक्षा, धर्म व्यक्तित्व और सामाजिक विकास में उसका महान योगदान था। मध्यकाल में इनकी स्थिति और भी दयनीय हो गयी पर्दा प्रथा इस सीमा तक बढ़ गई जिससे स्त्रियों की स्थिति और खराब हो गई पर्दा प्रथा, बाल विवाह, सती प्रथा, जौहर प्रथा के चलते इनका विकास अवरूद्ध हो गया।

21 वीं सदी में महिला सशक्तिकरण की दिशा में अनेक प्रयास प्रारंभ हुए है। इसी कड़ी में महिलाओं को केन्द्र एवं राज्यों में 33 प्रतिशत आरक्षण प्राप्त है तथा केन्द्र में उनके लिए एक तिहाई आरक्षण आरक्षित है। छत्तीसगढ़ राज्य निर्माण के बाद में छत्तीसगढ़ राज्य में महिलाओं को पंचायतों में 50 प्रतिशत आरक्षण प्राप्त है और आरक्षण के माध्यम से ही महिला सशक्तिकरण को बढ़ावा मिला है। महिलाओं को उनका अधिकार मिला है जिसका वे लाभ उठा रही है। महिला आरक्षण से ही छत्तीसगढ़ राज्य के प्रत्येक ग्राम पंचायतों, जिला, पंचायतों, जनपद पंचायतों में महिलाओं की भूमिका सराहनीय है।

महिला आरक्षण से महिला सशक्तिकरण का यह अच्छा उदाहरण है कि महिलाएँ सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सभी क्षेत्रों में अपना योगदान दे रही है, तथा समाज में फैली बुराई को दूर कर रही है और राज्य की राजनीति में भाग लेकर देश और राज्य का नाम भी रौशन कर रही है। इसके साथ ही साथ घर की आर्थिक स्थिति को भी सम्भाले हुए है।

भारत में महिला सशक्तिकरण का सबसेअच्छा उदाहरण यह है कि महिलाएँ राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, लोकसभा अध्यक्ष, मुख्यमंत्री, केन्द्रीय मंत्री और भी विभिन्न क्षेत्रों में अपनी प्रतिभा को स्थापित करने में सफल रही है। यह समय की माँग है कि महिला आरक्षण से ही महिला सशक्तिकरण की मार्ग प्रशस्त होगा।

महिला आरक्षण के माध्यम से ही महिला सशक्तिकरण का विकास हुआ है और यही कारण है कि महिलाएँ अब हर क्षेत्र में आगे बढ़ रहीं है। महिला सशक्तिकरण का आशय है महिलाओं को पूर्ण रूप से जागरूक एवं सशक्त बनाना ताकि वे अपने अधिकारों को पहचान सके तथा पुरूषों के समान आत्मनिर्भर होकर अपना कार्य कर सके स्वावलंबी बन सके।

राजनीतिक महत्व

देश व प्रदेश की आधी जनसंख्या प्रारंभ से ही महिलाओं की रही है। इसीलिए किसी भी समाज, राज्य और राष्ट्र के विकास में आधी जिम्मेदारी महिलाओं की ही होती है भले ही उनकी सहभागिता व सहयोग को अधिकतर क्षेत्रों में नजर अंदाज कर दिया जाता है। परंतु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में बढ़ते हुए महिला सशक्तिकरण में उनके योगदान को नजरअंदाज कर पाना संभव नहीं है। प्रजातांत्रिक व्यवस्था में जनप्रतिनिधि किसी भी स्तर पर राजनीतिक व्यवस्था का शीर्ष बिन्दू होता है और इस दृष्टि से महिला सशक्तिकरण का राजनीतिक महत्व आरक्षण व्यवस्था में पुरूष के समकक्ष ला दिया है।

छत्तीसगढ़ के सभी ग्राम पंचायतों में महिला सरपंचों की महत्वपूर्ण भूमिका है। महिला आरक्षण से महिला सशक्तिकरण का विकास तो हुआ ही है तथा महिलाओं को ग्राम पंचायतों में और केन्द्र सरकार में भी आरक्षण प्राप्त है जिनके माध्यम से वे ग्राम पंचायतों के विकास में अपना सक्रिय भागीदारी दिखा रही है महिलाओं को ग्राम पंचायतों में 50 प्रतिशत आरक्षण दिये गये है जिनके माध्यम से वह विभिन्न योजनाओं के माध्यम से राज्य के विकास के मार्ग को प्रशस्त कर रही है, लेकिन अभी भी महिलाओं की स्थिति उतनी अच्छी नहीं है अभी भी वे अपने अधिकारों का उचित इस्तेमाल नहीं कर पा रही है इसका कारण है ग्रामीण क्षेत्र की महिलाएँ कम पढ़ी लिखी होती है तथा रीति रिवाज और रूढ़ियों से बंधे होने के कारण अपना और समाज का विकास नहीं कर पाती है।

आरक्षण की व्यवस्था के कारण पंचायती राज में ही नहीं बल्कि देश की सभी वर्गों की महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक क्षेत्र में कार्य करने का अवसर प्राप्त हुआ है। छत्तीसगढ़ राज्य के ग्राम पंचायतों में महिलाओं को 50 प्रतिशत आरक्षण प्राप्त होने के कारण महिलाएँ आपना सर्वांगीण विकास कर रहीं है और छत्तीसगढ़ की राजनीति में भी अपना पूर्ण योगदान दे रहीं हैं। महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए पूर्व मुख्यमंत्री डॉ. रमन सिंह ने विभिन्न योजनाएं बनाई है तथा योजनाओं का लाभ उठाकर महिलाएँ अपना पूर्ण विकास कर रहीं हैं। और इस विकास कार्य में महिला आयोग की अध्यक्ष सुश्री लता उसेंडी तथा महिला एवं बाल विकास मंत्री श्रीमती रमशीला साहू भी अपना पूर्ण योगदान दिया है, जिसके माध्यम से महिलाओं को सशक्त बनाया जा रहा है, साथ ही विकास कार्य में वर्तमान महिला आयोग की अध्यक्ष श्रीमती किरणमयी नायक तथा पूर्व महिला एवं बाल विकास मंत्री श्रीमती अनिला भेंडिया,विधायक संगीता सिन्हा भी अपना पूर्ण योगदान दे रही है, जिसके माध्यम से महिलाओं को सशक्त बनाया जा रहा है।

महिला आरक्षण, महिला सशक्तिकरण के विकास का एक सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। महिलाओं को छत्तीसगढ़ राज्य में सशक्त बनाने के लिए स्वयं सहायता समूह योजना का निर्माण किया गया है, जिसके माध्यम से महिलाएँ आर्थिक रूप से सशक्त हो रही है। यह एक ऐसा समूह है जो महिलाओं को पूर्ण सशक्त बनाती है। यह छत्तीसगढ़ सरकार की योजना है, जिसमें महिलाओं को सशक्त बनाने के के साथ ही साथ आत्मनिर्भर भी बनाया जाता है और उनका पूर्ण विकास किया जाता है।

पंचायती राज संस्थाओं में महिला आरक्षण का महत्वपूर्ण योगदान है क्योंकि छत्तीसगढ़ के ग्राम पंचायतों में अनूसूचित जाति, अनूसूचित जनजाति इन वर्गों की महिलाओं को महत्व दिया जाता है तथा अनुसूचित जाति, अनूसूचित जनजाति वर्ग की महिलाएँ सरपंच के पद पर चुनकर आती हैं और गांवों के सर्वांगीण विकास में अपना योगदान देतीं हैं।

ग्रामीण महिलायें ग्राम पंचायत, जनपद पंचायत, जिला पंचायत सभी क्षेत्रों में अपना राजनीतिक परिचय दे रही है और इनके माध्यम से ही महिला सशक्तिकरण का सूत्रपात हो रहा है तथा छत्तीसगढ़. राज्य महिला सशक्तिकरण का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है जो महिलाओं के विकास में अपनी सक्रिय भागीदारी निभा रहे है जो कि राजनीतिक दृष्टि से अद्‌भुत कार्य है।

शोध साहित्य का पुनरालोकनः-

भारत के संविधान में कमजोर, दलित और असहाय वर्गों को समाज की मुख्यधारा में जोड़ने के लिए आरक्षण व्यवस्था का प्रावधान रखा गया है। जो प्रारंभ में अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति वर्ग को दिया गया है बाद में पिछड़ा वर्ग को भी इसका लाभ दिया गया। इसी कड़ी में छ.ग. राज्य में ग्राम पंचायतों में 50: महिला आरक्षण लागू किया गया है। भारत में इस प्रकार के प्रयोग अलग-अलग प्रदेशों में विशेष श्रेणी या वर्ग को प्रदान करने के लिए किये गए,

- चक्रवर्ती एवं भट्टाचार्य (1993) महिला आरक्षण अध्ययन के द्वारा स्पष्ट होता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में भी महिला सशक्तिकरण का विकास हो रहा है। और राजनीतिक क्षेत्र में भी महिलाएँ भाग ले रही है।
- कौशिक सुशीला (1993) ने महिला एवं पंचायती राज पर अध्ययन में स्पष्ट किया है कि 73 वें संविधान संशोधन के पश्चात एक तिहाई स्थानों के महिलाओं हेतु आरक्षण के संवैधानिक प्रावधान के पश्चात यह विश्लेषणात्मक अध्ययन विषय के लिए महत्वपूर्ण है। इस अध्ययन में स्थानीय स्वाशासन महिलाओं की शिक्षा एवं प्रशिक्षण कि महत्ता पर विशेष बल दिया गया है।
- शर्मा शकुंतला (1994) शकुंतला शर्मा ने भारत में पंचायत राज व्यवस्था के विकास के साथ पंचायत में नेतृत्व पंचायत चुनाव एवं मतदान व्यवहार को स्पष्ट किया है। जिसमें जाति वर्ग एवं शक्ति जैसे कार्य की भूमिका को स्पष्ट किया है। जिससे महिला सशक्तिकरण को सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण योगदान है।

समस्या एवं निराकरण

वर्तमान 21वीं सदी में महिला सशक्तिकरण की अवधारणा पर दृष्टिपात करते हैं तो यह स्पष्ट होता है कि महिला कभी भी कमजोर या आंबला के रूप में नहीं रही है। प्रारंभिक समय से ही महिला ने एक शक्ति के रूप में अपने वर्चस्व को स्थापित किया है चाहे वह मां दुर्गा के रूप में बात हो, मां सरस्वती की बात करते हैं, महालक्ष्मी की बात करते हैं, तो इनके बिना कोई भी परिवार समाज या देश ना सशक्त हो सकता है और ना किस की कल्पना की जा सकती है। निश्चित रूप से महिलाओं का योगदान प्राचीन काल में भी मध्यकाल में भी और वर्तमान समय में भी एक एक परिवार समाज और देश को सशक्त करने में अतुलनीय रहा है जिसकी कितनी भी प्रशंसा की जाए कम है।

वर्तमान 21वीं सदी में यदि हम महिलाओं सशक्त होने के ऊपर यह सफल बनाने के प्रयास के ऊपर दृष्टिपात करते हैं तो विभिन्न देशों के अलग अलग संविधान में अपने अपने नागरिकों को द्वितीय विश्व युद्ध के बाद स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जब द्वितीय विश्व युद्ध समाप्त हुआ तो विश्व के एशिया अफ्रीका के महाद्वीपों ने ने अपने सभी जितने भी परतंत्र देश थे। जहां पर साम्राज्यवाद नव साम्राज्यवाद उभर रहा था उन सभी राष्ट्र में में अपने अपने संविधान मैं महिला पुरुष और हर वर्ग को विकसित करने के लिए अपने अपने अनुसार संविधान की स्थापना की भारत के परिपेक्ष में भारत के संविधान में कमजोर वर्ग और पिछड़े वर्ग निराश्रित वर्ग को हर दृष्टि से आगे बढ़ाने के लिए विशेष प्रावधान रखा गया है। जिसमें जिसमें विशेष प्रावधान की चर्चा जब भारत के संविधान के परिपेक्ष में की जाती है ,तो सबसे पहला भारत में विशेष प्रावधान में इन वर्गों को कौन सी सुविधा देकर आगे बढ़ाया गया तो सबसे पहले उसे लाओ उत्तर निकल कर सामने आता है कि आरक्षण के के माध्यम से भले ही यह मार्ग समाज के कई लोगों के लिए कभी भी उनके पक्ष में नहीं रहा हो इसकी आलोचना होती रही है। विदेशों में भी विदेशी कंपनियों ने भी इसे अमान्य किया है और ऐसी स्थिति में भारत ने आरक्षण व्यवस्था के माध्यम से एस.सी व एस.टी, पिछड़े वर्गों को उच्च वर्ग के समकक्ष प्रशासनिक क्षेत्र में, राजनीतिक क्षेत्र में, शैक्षणिक क्षेत्र में, हर जगह उनके समकक्ष स्थापित करने का प्रयास किया है।

महिला वर्ग को भी जिसे प्राचीन परंपराएं जो कुप्रथाए थी जैसे सती प्रथा थी, तीन तलाक की प्रथा थी, और महिलाओं को किसी न किसी रूप से शोषित करने के लिए भी लिए प्रताड़ित करने के लिए पुरुष प्रधान समाज में दोयम दर्जे का स्थान देकर एक विकल्प रखा था। उसे समाप्त करने के लिए आधुनिक प्रयोग में 21वीं सदी में लिखित संविधान में दिए गए प्रावधान की के अनुसार हर देश ने विशेषकर भारत ने महिलाओं को पुलिस पुरुष के समकक्ष है। हर क्षेत्र में बढ़ाने का भरकस प्रयास किया और धीरे धीरे शासन-प्रशासन पूर्णता सफल हुआ भारत में महिलाओं को राजनीतिक स्तर पर राजनीतिक स्तर पर आगे लाने के लिए इंदिरा गांधी भारत की पहली महिला प्रधानमंत्री थी उनके समय से महिलाओं को सशक्त करने के लिए संसद में 33: आरक्षण की मांग की जाती रही है परंतु सब महिलाओं सभी राजनीतिक दल की महिलाओं उन्हें एक होने के बाद भी इसमें सफलता प्राप्त नहीं की है यह एक अलग बात है परंतु फिर भी इसकी शुरुआत भारत भारत के कई राज्यों में विशेषकर छत्तीसगढ़ में, मध्यप्रदेश में, ग्राम पंचायतों में 50% आरक्षण देकर इसकी शुरुआत की और इसकी शुरुआत हो चुकी है। अब महिलाएं घर की चार दीवारी में कैद होकर केवल घर के अंदर घूंघट डाल कर समय बिताने का कार्य नहीं कर रही हैं बल्कि हर क्षेत्र में महिलाओं का पुरुष से आ गया ना उनके समकक्ष रहना उनके महत्वपूर्ण स्थान बन चुका है।

निष्कर्ष एवं सुझाव

प्रजातंत्र को मजबूती प्रदान करने की दृष्टि से पंचायती राज संस्थाओं को भारतीय संविधान में ग्रामसभा को एक "कृषि औद्योगिक समुदाय की संज्ञा दी जा सकती है। इसके क्षेत्र में आने वाले कार्यक्रमों के संचालन हेतु ग्रामीण जन के योगदान पर बल देना होगा। ग्रामसभा को इस जिम्मेदारी को निभाना है कि ग्रामीण विकास के किसी कार्यक्रम के श्रमदान हेतु लोगों को प्रेरित किया जाए। नि:संदेह इसके लिए पंचायती राज संस्थाओं के स्तर पर एक गतिशील नेतृत्व की आवश्यकता होगी।

1. महिलाओं को विश्व के अन्य देशों की तरह स्वयं के दल बनाने चाहिए। इनका उद्देश्य विभिन्न स्तरों पर महिलाओं की सहभागिता को बढ़ावा देना होना चाहिए।
2. महिलाओं को संगठित होकर विभिन्न स्तरों पर अपने नेटवर्क स्थापित करने चाहिए, ताकि निर्णय लेने एवं क्रियान्वयन में अपने प्रभाव का इस्तेमाल कर सकें।

3. महिलाओं के लिए शैक्षणिक सुविधाओं के विस्तार, राजनीति में सक्रियता, अधिकारों के लिए विधानमंडलों एवं. वैधानिंक निकायों में सक्रियता, समानता के अवसरों को पाने की इच्छा एवं सामाजिक परिवर्तन की अति आवश्यकता है। इन सभी. समन्वित प्रयासों से ही महिलाओं का राजनीति में सशक्तिकरण संभव है।
4. पंचायती राज में महिलाओं की प्रभावी सहभागिता विशिष्ट कुशलता, ज्ञान एवं दृष्टिकोण की मांग करती है। इसलिए व्यवस्थित प्रशिक्षण एवं अभिनवीकरण की आवश्यकता है ताकि महिलाएं वर्तमान स्थितियों को बदलकर संसाधनों एवं सत्ता के प्रयोग द्वारा महिला सशक्तिकरण को शीघ्रता से संभव बना सकें।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. फड़िया, बी. एल. "राजनीति विज्ञान, कैलाश पुस्तक सदन'', प्रकाशक, 2010 पृ. 113, भोपाल
2. अग्रवाल, प्रमोद कुमार "भारत में पंचायती राज'', ज्ञानगंगा प्रकाशन, 2005 पृ. 68 दिल्ली
3. महिपाल, "पंचायती राज चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ'', सारांश प्रकाशन, 1998, पृ. 87, नई दिल्ली
4. द्विवेदी, राकेश "महिला सशक्तिकरण चुनौतियाँ एवं रणनीतियाँ'', पंचशील प्रकाशन, 1996 पृ. 105
5. गोड, के.के. "भारत के ग्रामीण नेतृत्व का उदीयमान स्वरूप'', मानक पब्लिकेशन, 1997 पृ. 105, नई दिल्ली
6. महिपाल "पंचायत में महिलाएँ अगला कदम'', समाज कल्याण विभाग,1997,पृ. 24
7. डॉ. अनीता "पंचायती राज प्रशिक्षण संदर्भ सामग्री'', इंदिरा गाँधी पंचायती राज एवं ग्रामीण विकास संस्थान, 2005 पृ. 27 जयपुर
8. "महिला सशक्तिकरण की राष्ट्रीय नीति'', महिला एवं बाल विकास मंत्रालय, भारत सरकार, 2001, पृ. 97, नई दिल्ली

ग्राम पंचायत और ग्राम सभा का अध्ययन

डॉ० प्रदीप जाम्बुलकर

सहा.प्राध्यापक, शास.नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, डोंगरगढ़ (छ.ग.)

प्रस्तावना

भारत के संविधान में 'स्थानीय स्वशासन' को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। संविधान के अनुच्छेद-40 के अंर्तगत पंचायती राज-व्यवस्था को राज्य के नीति-निर्देशक तत्वों के अंर्तगत रखा गया है। वस्तुतः भारतीय लोकतंत्र इस आधारभूत अवधारणा पर आधारित है कि शासन के प्रत्येक स्तर पर जनता अधिक से अधिक शासन-सम्बन्धी कार्यों में हाथ बंटा, तथा स्वयं पर राज्य करने का उत्तरदायित्व स्वयं वहन करे।

पंचायतें भारत के राष्ट्रीय जीवन की रीढ़ हैं। देश के राजनीतिक भविष्य व भावी राजनीतिक चाल का निर्धारण संघीय-व्यवस्था में बैठे बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ की अपेक्षा, विभिन्न राज्यों के ग्रामीण अंचलों में विद्यमान पंचायती राज संस्था ही करती हैं। संविधान में यद्यपि प्रारम्भ से ही सरकार को स्थानीय स्वायत्त-शासन की संस्थाओं के गठन और संचालन के लिये निर्देशित किया गया था, लेकिन वह निर्देश बाध्यकारी नहीं था, जिसके चलते अनेक राज्यों उसका दृढ़ता से पालन नहीं किया गया। अनेक राज्यों में पंचायतों के चुनाव समय पर नहीं कराये गये। नगरों में भी स्वायत्त संस्था अधिकांशतः निलम्बित रहती थीं और प्रशासकों द्वारा शासन चलाया जाता था।

पृष्ठभूमि

भारत में पंचायती राज व्यवस्था का शुभारंभ सबसे पहले विधिवत तरीके से राजस्थान में किया गया था। देश में सबसे पहले पंचायती राज व्यवस्था का उद्घाटन 2 अक्टूबर, 1959 को देश के तत्कालीन प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू द्वारा राजस्थान के नागौर जिले में किया गया था। पंचायती राज व्यवस्था महात्मा गांधी के राजनीतिक विकेंद्रीकरण के दर्शन का एक महत्वपूर्ण घटक था। महात्मा गांधी पंचायती राज व्यवस्था को स्थापित करने के प्रबल समर्थक रहे थे। आजादी के बाद विभिन्न सरकारें पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिक स्वरूप देने के संदर्भ में विभिन्न समितियां गठित करती रही थी। अधिकांश समितियों ने पंचायती राज व्यवस्था को संविधानिक दर्जा प्रदान करने की बात कही थी। इसके परिणाम स्वरूप अंततः वर्ष 1992 में भारतीय संसद ने 73 वाँ संविधान संशोधन अधिनियम पारित किया था और इसके माध्यम से पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिक दर्जा प्रदान कर दिया गया था।

इस 73 वें संविधान संशोधन अधिनियम के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिक दर्जा प्रदान किया गया था। इसके तहत ग्रामीण स्तर पर ग्राम सभा और ग्राम पंचायत, ब्लॉक स्तर पर पंचायत समिति और जिला स्तर पर जिला परिषद के गठन का प्रावधान किया गया था। आज के अपने आलेख में हम ग्राम सभा और ग्राम पंचायत से जुड़े विभिन्न पहलुओं को समझने का प्रयास करेंगे।

ग्राम पंचायत परिचय

.'ग्राम पंचायत' पंचायती राज व्यवस्था की सबसे छोटी निर्वाचित इकाई होती है। ग्राम पंचायत के सदस्यों का निर्वाचन ग्राम सभा के सदस्यों द्वारा किया जाता है। ग्राम पंचायत के सदस्यों का चुनाव 5 वर्षों के लिए होता है। पंचायती राज व्यवस्था के लिए चुनाव संपन्न कराने की जिम्मेदारी राज्य चुनाव आयोग की होती है। वास्तव में, प्रत्येक राज्य में 'राज्य चुनाव आयोग' का गठन पंचायती राज चुनावों को संपन्न कराने के लिए ही किया गया है।

प्रत्येक ग्राम पंचायत का मुखिया एक सरपंच होता है। विभिन्न राज्यों में सरपंच का पद नाम अलग अलग हो सकता है। इसके अलावा, ग्राम पंचायत को विभिन्न वार्ड में विभक्त किया जाता है। वार्ड की संख्या का निर्धारण गांव की जनसंख्या के आधार पर किया जाता है। प्रत्येक वार्ड का प्रतिनिधित्व एक पंच के द्वारा किया जाता है। ग्राम पंचायत स्तर पर समस्त पंचों का मुखिया सरपंच होता है। पंच और सरपंच दोनों का ही चुनाव प्रत्यक्ष निर्वाचन के माध्यम से किया जाता है। अतः सभी वार्ड पंचों और सरपंच से मिलकर ग्राम पंचायत का गठन होता है।

ग्राम पंचायत की विशेषताएँ

1. ग्राम पंचायत ग्राम सभा के सदस्यों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से निर्वाचित संस्था है। यह ग्राम सभा के प्रति उत्तरदाई होती है।
2. इसके सदस्यों का कार्यकाल 5 वर्षों का होता है। यह संस्था ग्रामीण विकास संबंधी योजनाओं का क्रियान्वयन करती है।
3. यदि किसी कारणवश ग्राम पंचायत 5 वर्ष का कार्यकाल पूरा होने से पहले ही भंग हो जाती है और अगली ग्राम पंचायत के चुनाव होने में 6 माह से अधिक का समय शेष रहता है, तो ऐसी स्थिति में, ग्राम पंचायत के भंग होने की तिथि से 6 माह की अवधि के भीतर संबंधित राज्य निर्वाचन आयोग को उन्हें चुनाव कराना होता है और नवगठित ग्राम पंचायत केवल शेष कार्यकाल के लिए ही अस्तित्व में रहती है। नवगठित ग्राम पंचायत का कार्यकाल 5 वर्षों का नहीं होता है।
4. राज्य सरकार द्वारा प्रत्येक पंचायत समिति के लिए एक पंचायत सचिव की नियुक्ति की जाती है, जो ग्राम पंचायत के प्रति उत्तरदाई होता है।

ग्राम पंचायत के कार्य

ग्राम पंचायत एक कार्यकारी संस्था है। इसका मुख्य कार्य सरकार द्वारा आवंटित किए गए बजट का उपयोग करके ग्रामीण विकास को सुनिश्चित करना होता है।

73 वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1992 के माध्यम से ग्राम पंचायत को 29 विषय सौंपे गए हैं। इसके तहत ग्रामीण सड़कों को पक्का करना, गंदे पानी के निकास की व्यवस्था करना, घरेलू उपयोग और पशुओं के लिए पेयजल की व्यवस्था करना, तालाबों का रखरखाव व सिंचाई के साधनों की व्यवस्था करना आदि शामिल हैं।

इसके अलावा, ग्रामीण क्षेत्रों में मेले, हाट, खेलों आदि के लिए सार्वजनिक स्थल की व्यवस्था करना, ग्रामीण चौपाल व गलियों में प्रकाश का प्रबंध करना, जन्म-मृत्यु, विवाह आदि का रिकॉर्ड रखना, सार्वजनिक शौचालय बनवाना, प्राथमिक शिक्षा को बढ़ावा देना आदि भी ग्राम पंचायत के प्रमुख कार्य हैं।

ग्राम सभा परिचय

ग्राम सभा ग्रामीण स्तर पर पंचायती राज व्यवस्था की सबसे छोटी इकाई है। 73 वें संविधान संशोधन अधिनियम के अंतर्गत ग्राम सभा को परिभाषित किया गया है। इसके अनुसार ग्राम सभा को एक ऐसे निकाय के रूप में परिभाषित किया गया है, जो ग्रामीण क्षेत्र में 18 वर्ष की आयु पूरी कर चुके समस्त मतदाताओं से मिलकर निर्मित होता है। यह निकाय कभी भी घटित नहीं होता है। इसका अर्थ है कि यह एक स्थाई निकाय होता है।

सरल शब्दों में कहें, तो 18 वर्ष से ऊपर के सभी मतदाता ग्राम सभा के सदस्य होते हैं और इन सभी मतदाताओं के समूह को ही ग्राम सभा कहा जाता है। ग्राम सभा के यह सदस्य ही ग्रामीण स्तर पर अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करते हैं। यह लोग पंच, सरपंच इत्यादि प्रतिनिधियों का प्रत्यक्ष चुनाव करते हैं।

ग्राम सभा की विशेषताएँ

1. यह स्थाई निकाय कभी भंग नहीं होता है और समस्त मतदाता इसके आजीवन सदस्य होते हैं।
2. प्रत्येक ग्राम सभा के लिए ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा एक ग्राम विकास अधिकारी नियुक्त किया जाता है। यह अधिकारी ग्राम सभा के सदस्यों के प्रति उत्तरदाई होता है।
3. ग्राम सभा मुख्यत: एक निगरानी निकाय होता है। यह ग्राम पंचायत द्वारा किए जाने वाले कार्यों पर नजर रखती है।

ग्राम सभा के कार्य

1. ग्राम सभा मुख्य रूप से ग्राम पंचायत द्वारा किए जाने वाले सभी कार्यों की निगरानी करती है। इसका मुख्य उद्देश्य ग्राम पंचायत द्वारा गांव के विकास के लिए किए जाने वाले कार्यों का पर्यवेक्षण करना होता है।
2. ग्राम सभा के सदस्य ग्राम पंचायत, पंचायत समिति और जिला परिषद के लिए अपने प्रतिनिधियों का चुनाव भी करते हैं।

3. इसका कार्य ग्रामीण स्तर पर गांव के विकास के लिए चुनी गई सरकारों को विकास परियोजनाओं व कार्यक्रमों संबंधी सुझाव देना होता है।
4. इसका कार्य विकास परियोजनाओं के लिए पात्र अभ्यर्थियों की पहचान करना और उन्हें योजनाओं का लाभ दिलाना होता है।
5. ग्राम सभा ग्राम पंचायत से उसकी आय और व्यय का ब्यौरा मांग सकती है।
6. ग्राम सभा द्वारा अनेक अवसरों पर विकास परियोजनाओं में श्रमदान करके ग्रामीण विकास को गति प्रदान करती है।
7. ग्राम सभा के सदस्यों द्वारा ग्राम पंचायत द्वारा किए गए विकास कार्यों की निगरानी करने के लिए एक निगरानी समिति बनाई जाती है। ग्रामसभा उसकी रिपोर्ट पर विचार विमर्श करती है और उससे संबंधित अपनी सिफारिशें देती है।
8. इसके अलावा ग्राम सभा स्वास्थ्य, शिक्षा, परिवार कल्याण आदि के संबंध में भी ग्राम पंचायत का सहयोग करती है।

निष्कर्ष

ग्राम पंचायत और ग्राम सभा में एक अटूट संबंध होता है। ग्राम पंचायत जिन विकास परियोजनाओं का क्रियान्वयन करती है, ग्रामसभा उन परियोजनाओं की निगरानी करती है। इसके अलावा, ग्राम सभा ग्राम पंचायत को विभिन्न विकास परियोजनाओं के विषय में सहयोग व सुझाव भी प्रदान करती है। समेकित रूप में, दोनों संस्थाएं देश के ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में अभूतपूर्व भूमिका निभा रही हैं।

सन्दर्भ सूची

1. विस्वाल तपन, 2017, भारतीय राज व्यवस्था एवं शासन, हैदराबाद, ओरियंट लैकस्वान प्राईवेट लि पृष्ठ क्र. 13
2. अवस्थी, महेश्वरी, 2017 भारत में पंचायती शज, आगरा, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन. पृष्ठ क्र. 24
3. नायक डॉक्टर अशोक द्विवेदी हर्षित (2013) पंचायती राज में ग्रामीण नेतृत्व महिलाएँ एवं राजनीतिक सहभारिता पाइंटनर पब्लिशर्स जयपुर पृष्ठ क्र. 15
4. शर्मा, के.के. 2009, भारत में पंचायती राज, कालेज वुक डिपो, जयपुर, पृष्ठ क्र. 24
6. मलपुरण (2009) नवीन पंचायती राज्य एवं महिला नेतृत्व पोइंटर पब्लिकेशन जयपुर पृ.28
7. द्विवेदी डॉ.रमेश कुमार: पंचायत राज व्यवस्था एवं जिला नियोजन, सोलापुर, लक्ष्मी बुक्स पव्लिशिंग, 2012

बिहार में उच्च शिक्षा की दशा एवं दिशा

डॉ० उमाकर ठाकुर

सहायक प्राध्यापक, श्री नित्यानंद झा स्कूल ऑफ एजुकेशन, संदीप युनिवर्सिटी, सिजौल, मधुबनी, बिहार

सार

बिहार राज्य भारत में शिक्षा के प्रमुख केंद्रों में से एक है। बहुत पहले से ही यह राज्य शिक्षा का केंद्र रहा है। वर्तमान में शिक्षा की मांग और आपूर्ति के बीच एक बड़ा अंतर पैदा हो गया है। स्कूली शिक्षा और उच्च शिक्षा के बीच इस अंतर ने राज्य की साक्षरता दर को थोड़ा नीचे ला दिया है। यह आधुनिक शिक्षा के क्षेत्र में अधिक विद्यालयों की स्थापना के महत्व को दर्शाता है। बिहार के आम लोगों में उच्च शिक्षा के लिए इस लालसा के कारण राज्य से छात्रों का पलायन हुआ है। इसके कारण स्नातक स्तर की कॉलेज शिक्षा के लिए भी छात्र दूसरे राज्यों में शिक्षा के अवसरों की तलाश में उमड़ पड़े हैं। ज्ञातव्य है कि पटना पूर्वी भारत के लिए एक शैक्षिक केंद्र बन गया है। यह आईआईटी, आईएएस, इंजीनियरिंग और मेडिकल प्रवेश जैसी परीक्षाओं की तैयारी के लिए एक महत्त्वपूर्ण केंद्र है। पटना में स्कूलों की गुणवत्तापूर्ण शिक्षा काफी बेहतर है। लेकिन बिहार अभी भी उच्च शिक्षा के मामले में पिछड़ा हुआ है। जाहिर है कि बिहार के छात्रों के लिए तकनीकी संस्थान खोलने के लिए बिहार के शिक्षा मंत्रालय से उचित कदम उठाने की आवश्यकता है, जिससे उन्हें अपने राज्य में तकनीकी शिक्षा प्राप्ति में मदद मिलेगी और विभिन्न राज्यों के छात्र भी आकर्षित होंगे। यदि हम सभी इन कदमों की दिशा में काम करें, तो हम बिहार की शिक्षा प्रणाली में सुधार देखेंगे जो बिहार और उसके लोगों की बेहतरी के लिए बहुत उपयोगी होगा।

मुख्य-शब्दः शिक्षा, संस्थान, छात्र, हब, उच्च शिक्षा।

परिचय

शिक्षा किसी भी देश की संस्कृति का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। किसी व्यक्ति के समुचित विकास के लिए शिक्षा महत्त्वपूर्ण है। किसी देश का विकास एक मजबूत शैक्षिक प्रणाली पर निर्भर करता है। अगर हम भारत को देखें तो अभी भी साक्षरता दर विकसित देशों की तुलना में कम है। लेकिन अगर हम बिहार को देखें तो हम पाते हैं कि शैक्षिक प्रगति बहुत धीमी है। प्राचीन समय में बिहार शिक्षा का केंद्र था। बिहार में दो प्रसिद्ध विश्वविद्यालय थे, नालंदा और विक्रमशिला। उन दिनों बिहार में शिक्षा प्रणाली बहुत उच्च गुणवत्ता की थी। लेकिन आजकल बिहार में शिक्षा की स्थिति बहुत निराशाजनक है। वर्तमान में, बिहार साक्षरता दर में सबसे निचले स्थान पर है। बिहार के रोहतास जिले में साक्षरता दर सर्वाधिक 73.37 प्रतिशत है वहीं राजधानी पटना जिले में साक्षरता दर 70.68 प्रतिशत है साक्षरता दर में पूर्णियाँ जिला सबसे पिछड़ा है, जहाँ साक्षरता दर 52. 49 प्रतिशत है। इसलिए बिहार में आधुनिक शिक्षा प्रणाली विकसित करने की आवश्यकता है। वास्तव में आधुनिक शिक्षा के बिना बिहार में विकास नहीं हो सकता। चूंकि केंद्र सरकार और बिहार राज्य सरकार ने बिहार में शिक्षा की स्थिति को सुधारने के लिए कई परियोजनाएं शुरू की हैं। इसके अलावा, बिहार में आधुनिक शिक्षा के विकास के लिए विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विशेष पाठ्यक्रम शुरू करने की आवश्यकता है। चूंकि सरकार ने इस क्षेत्र पर विशेष ध्यान दिया है। उम्मीद है कि आने वाले वर्षों में बिहार में आधुनिक शिक्षा विकसित रूप में उपलब्ध होगी।

भारतीय ज्ञान परंपरा का मानना है कि शिक्षा न केवल मानव जाति के आध्यात्मिक जीवन की शुरुआत है, बल्कि यह मानव आत्मा का प्रशिक्षण भी है। इसका उद्देश्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना है। शिक्षा किसी देश के सामाजिक-आर्थिक विकास को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत एक विशाल मानव संसाधन के साथ सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं में से एक है। इतनी विशाल मानव पूंजी के साथ, उच्च शिक्षा का दायरा अन्य देशों की तुलना में बहुत व्यापक है।

भारत में हम "माँ सरस्वती" को ज्ञान की देवी के रूप में मानने और पहचानने की परंपरा रखते हैं। हमारे मूल मूल्यों में वेद, उपनिषद, पुराण शामिल हैं। भगवद् गीता मानव जाति को जीवन की सबसे गंभीर समस्याओं में मार्गदर्शन करती है और न केवल मानव मन को जागृत करती है बल्कि मानव आत्मा को भी जागृत करती है। भारतीय परंपरा को विकसित और समृद्ध करने में वैदिक युग में महिला विद्वानों की भूमिका को कम नहीं आंका जा सकता है। तक्षशिला को दुनिया का सबसे पुराना

विश्वविद्यालय माना जाता है। वहीं बिहार में नालंदा, विक्रमशिला आदि भारत में उच्च शिक्षा के कई प्रतिष्ठित केंद्रों के उदाहरण हैं, जो समय से बहुत आगे थे। ऐसे उच्च शिक्षा संस्थानों का मुख्य उद्देश्य वैदिक ज्ञान प्रदान करना था जिससे आध्यात्मिक विकास होता है। उस समय भारत आने वाले कई विदेशी यात्रियों के लेखन से इसकी महिमा का पता लगाया जा सकता है, जो न केवल प्रचलित उच्च शिक्षा प्रणाली को देखने के लिए बल्कि ज्ञान प्राप्त करने के लिए भी भारत आए थे। हमारी आधुनिक शिक्षा प्रणाली काफी हद तक औपनिवेशिक विरासत और अंग्रेजी शिक्षा पद्धति पर आधारित है। विदेशी आक्रमण और ब्रिटिश शासन ने योजनाबद्ध तरीके से पारंपरिक भारतीय शिक्षा प्रणाली को नष्ट कर दिया।[1]

यूनेस्को के अनुसार, दुनिया भर के विभिन्न विश्वविद्यालयों में लगभग 235 मिलियन छात्र नामांकित हैं। अगर भारत किसी दिन महाशक्ति बनना चाहता है तो यह केवल ज्ञान आधारित समाज के माध्यम से ही संभव होगा। बिहार में 17 राज्य विश्वविद्यालय हैं, प्रत्येक विश्वविद्यालय में मोटे तौर पर दो प्रकार के कॉलेज हैं- अर्थात् घटक कॉलेज और संबद्ध कॉलेज। घटक कॉलेज कमोबेश सरकारी कॉलेज की तरह होते हैं और संबद्ध कॉलेज निजी कॉलेज की तरह होते हैं। दोनों ही तरह के कॉलेजों से पढ़ने वाले छात्रों के समान उपाधि प्राप्त होती है। उल्लेखनीय है कि पटना उच्च शिक्षा का बहुत बड़ा केन्द्र है, पटना के बाद उच्च शिक्षा के क्षेत्र में दरभंगा का दूसरा स्थान आता है। दरभंगा में दो विश्वविद्यालय है, कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंता तथा ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा। दोनों ही विश्वविद्यालय के अन्तर्गत कई अंगीभूत व सम्बद्ध महाविद्यालय हैं। इनमें चन्द्रधारी मिथिला कॉलेज दरभंगा सबसे पुराना महाविद्यालय है। समय के साथ उच्च शिक्षा में संस्थानों और नामांकन दोनों के संदर्भ में विस्तार हुआ है, लेकिन यह पर्याप्त नहीं है। वर्तमान उच्च शिक्षा प्रणाली हमारी महान प्राचीन परंपरा से पूरी तरह से अलग हो गई है। उच्च शिक्षा स्तर पर नवीन और परिवर्तनकारी रणनीतियों को प्राथमिकता के आधार पर लागू करने की आवश्यकता है।[2]

बिहार में विश्वविद्यालय

प्राचीन काल में बिहार भारत में शिक्षा के लिए प्रसिद्ध स्थान था। बिहार दो प्रमुख विश्वविद्यालयों - नालंदा विश्वविद्यालय और विक्रमशिला विश्वविद्यालय के लिए जाना जाता था। बिहार के सभी मौजूदा विश्वविद्यालयों में से, पटना विश्वविद्यालय बिहार के सबसे पुराने विश्वविद्यालयों में से एक है। पटना विश्वविद्यालय के बाद शिक्षा की जरूरत को पूरा करने के लिए कुछ अन्य विश्वविद्यालय अस्तित्व में आए। बिहार के सभी विश्वविद्यालय छात्रों को उनके उच्च अध्ययन के लिए कई तरह के पाठ्यक्रम प्रदान करते हैं। बिहार में विश्वविद्यालयों द्वारा विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रम जैसे स्नातक, स्नातकोत्तर, डॉक्टरेट और पोस्ट डॉक्टरेट कार्यक्रम पेश किए जाते हैं। छात्रों के लिए कैरियर ओरिएंटेड सर्टिफिकेट और डिप्लोमा पाठ्यक्रमों की एक विस्तृत शृंखला है जो उन्हें अच्छी नौकरी पाने में मदद करती है। बिहार में 17 राज्य विश्वविद्यालय, 1 आईआईटी और 4 अन्य केंद्रीय विश्वविद्यालय संचालित हैं। 2005 से, बिहार में शिक्षा के क्षेत्र में कई सुधार किए गए हैं। बिहार में कई नए संस्थान विकसित हो रहे हैं जैसे नालंदा महावीर विश्वविद्यालय, आईआईटी पटना, आदि।[3] बिहार के सभी विश्वविद्यालयों के नाम निम्नांकित हैं:

1. पटना विश्वविद्यालय, पटना
2. बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
3. तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर
4. मगध विश्वविद्यालय, बोध गया
5. जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा
6. भूपेन्द्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा
7. वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा
8. कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा,
9. ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा
10. मौलाना मजहरूल हक अरबी एवं फारसी विश्वविद्यालय, पटना,

11. आर्यभट्ट नॉलेज विश्वविद्यालय, पटना
12. मुंगेर विश्वविद्यालय, मुंगेर
13. पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना
14. पूर्णिया विश्वविद्यालय, पूर्णिया
15. चाणक्य नेशनल लॉ विश्वविद्यालय, पटना
16. राजेन्द्र कृषि विश्वविद्यालय, पुसा, समस्तीपुर
17. बिहार कृषि विश्वविद्यालय, सबौर, भागलपुर

बिहार में इंजीनियरिंग कॉलेज

इन दिनों इंजीनियरिंग के क्षेत्र में कई पाठ्यक्रम शुरू किए गए हैं। इसलिए छात्रों के पास इंजीनियरिंग के कोर्स में प्रवेश के लिए बहुत सारे अवसर हैं। बिहार के इंजीनियरिंग कॉलेज कई तरह के आधुनिक कोर्स उपलब्ध कराते हैं, जो छात्रों को उनकी शिक्षा में मदद करेंगे।

बिहार में कुछ महत्वपूर्ण इंजीनियरिंग कॉलेज हैं जैसे:

1. भागलपुर कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग, सबौर
2. सीवान इंजीनियरिंग एंड टेक्निकल इंस्टीट्यूट, सीवान
3. मुजफ्फरपुर इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, मुजफ्फरपुर
4. महिला प्रौद्योगिकी संस्थान, दरभंगा
5. बिहार कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग, पटना
6. मौलाना आजाद कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग एंड टेक्नोलॉजी, नेओरा, पटना
7. नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ फाउंड्री एंड फोर्ज टेक्नोलॉजी
8. आर.पी. शर्मा इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, दानापुर, पटना
9. आईआईटी, पटना
10. दरभंगा कॉलेज ऑफ इंजीनियरिंग, दरभंगा

बिहार में मेडिकल कॉलेज

नवीनतम तकनीकों और पाठ्यक्रमों की शुरूआत के साथ चिकित्सा विज्ञान के अध्ययन में तेजी आई है। भारत में ऐसे कई कॉलेज हैं जो चिकित्सा विज्ञान पर शिक्षा प्रदान करते हैं। वर्तमान में, छात्रों का एक बहुत बड़ा समुदाय चिकित्सा अध्ययन का विकल्प चुन रहा है। चिकित्सा विज्ञान की पढ़ाई की चाहत ने बिहार मेडिकल कॉलेजों में चिकित्सा विज्ञान से संबंधित कई संस्थानों और पाठ्यक्रमों को जन्म दिया है। हर साल अलग-अलग राज्यों से छात्र बिहार मेडिकल कॉलेजों में पढ़ाई करने के लिए बिहार आते हैं।

यहाँ बिहार के कुछ मेडिकल कॉलेजों की सूची दी गई है:

1. पटना मेडिकल कॉलेज
2. ए एन मगध मेडिकल कॉलेज
3. बिरसा मेमोरियल इंस्टीट्यूट ऑफ मेडिकल एंड एलाइड साइंस
4. दरभंगा मेडिकल कॉलेज
5. डॉ. एसएम नफुई इमाम मेडिकल एंड डेंटल कॉलेज
6. दयानंद आयुर्वेद कॉलेज एंड हॉस्पिटल
7. एम्स, पटना
8. नालन्दा मेडिकल कॉलेज, पटना

9. आई. जी. आई. एम. एस., पटना
10. जवाहरलाल नेहरू मेडिकल कॉलेज, भागलपुर

बिहार मेडिकल कॉलेज में आधुनिक बुनियादी ढांचे हैं और उनके आधुनिक पाठ्यक्रम निस्संदेह राज्य के अंदर और बाहर से संभावित छात्रों को आकर्षित करने में मदद करते हैं। बिहार मेडिकल कॉलेजों के बेहद आशाजनक चिकित्सा पाठ्यक्रम न केवल हमारे देश से बल्कि विदेशों से भी छात्रों को आकर्षित करने में सफल रहे हैं।

बिहार में डेंटल कॉलेज

बिहार डेंटल कॉलेजों में छात्रों के लिए बहुत सारी संभावनाएँ और उच्च अध्ययन के विकल्प हैं। लेकिन बड़े पैमाने पर छात्र अपनी पसंद का अच्छा करियर बनाने के लिए अपने राज्य के साथ-साथ विदेश भी जा रहे हैं। विज्ञान और प्रौद्योगिकी की प्रगति के साथ छात्र विभिन्न पाठ्यक्रमों के बारे में जानने के लिए अधिक उत्सुक हो गए हैं और ऐसे करियर विकल्पों को चुनने के लिए उत्सुक हैं जो उनके मानदंडों के अनुरूप हों और साथ ही निकट भविष्य में फलदायी हों। जो छात्र चिकित्सा विज्ञान में अपनी उच्च शिक्षा जारी रखना चाहते हैं, खासकर दंत चिकित्सा विज्ञान में, उनके लिए बिहार के डेंटल कॉलेज अच्छे विकल्प हैं।[4]

बिहार में निम्नलिखित डेंटल कॉलेज उपलब्ध हैं:

1. डॉ. बीआर अंबेडकर इंस्टीट्यूट ऑफ डेंटल साइंस एंड हॉस्पिटल, पटना
2. दरभंगा डेंटल कॉलेज, दरभंगा
3. बुद्ध इंस्टीट्यूट ऑफ डेंटल साइंसेज, पटना
4. मिथिला माइनॉरिटी डेंटल कॉलेज एंड हॉस्पिटल, दरभंगा
5. सरजुग डेंटल कॉलेज, दरभंगा
6. डॉ. एसएम नकी इमाम डेंटल कॉलेज एंड हॉस्पिटल, बहेरा, दरभंगा
7. पटना डेंटल कॉलेज एंड हॉस्पिटल, पटना

इन कॉलेजों के संशोधित और बेहतर पाठ्यक्रम ने बिहार डेंटल कॉलेज में बड़ी संख्या में छात्रों को लाने में सक्षम बनाया है।

बिहार कृषि विश्वविद्यालय

बिहार कृषि विश्वविद्यालय 2010 में स्थापित राज्य सरकार के तहत एक स्वायत्त संस्थान है। यह भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR) के तहत सबौर, भागलपुर में स्थित है। विश्वविद्यालय में बिहार के 3 कृषि-पारिस्थितिक क्षेत्रों में फैले 10 कॉलेज और 12 अनुसंधान केंद्र हैं। विश्वविद्यालय में दस कॉलेज हैं:

1. बिहार कृषि महाविद्यालय, सबौर
2. भोला पासवान शास्त्री कृषि महाविद्यालय, पूर्णिया
3. मदन भारती कृषि महाविद्यालय, अगवानपुर
4. नालंदा बागवानी महाविद्यालय, नूरसराय
5. डॉ. कलाम कृषि महाविद्यालय, किशनगंज
6. वी.के.एस. कृषि महाविद्यालय, डुमरांव
7. वानिकी महाविद्यालय, मुंगेर
8. कृषि व्यवसाय प्रबंधन महाविद्यालय, पटना
9. जैव प्रौद्योगिकी महाविद्यालय, आरा
10. सामुदायिक विज्ञान और खाद्य प्रौद्योगिकी, गया

समय के साथ संस्थानों और नामांकनों की वृद्धि के बावजूद, उच्च शिक्षा को क्षेत्र की समृद्ध पारंपरिक ज्ञान संस्कृति के साथ एकीकृत करने में अभी भी एक महत्वपूर्ण अंतर है। जबकि 2020 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी) में उपयोगी प्रस्ताव

शामिल थे, अभी भी और काम किया जाना बाकी है। बिहार में उच्च शिक्षा के स्तर पर नई और क्रांतिकारी पहलों की तैनाती महत्वपूर्ण है। इस बदलाव में सहायता के लिए, राज्य के विश्वविद्यालयों और कॉलेजों को आवश्यक बुनियादी ढाँचे के निर्माण के लिए बड़े अनुदान और धन दिए जाने चाहिए। इसके अलावा, प्रशासनिक इच्छा और प्रभावकारिता राज्य की उच्च शिक्षा प्रणाली में लाभकारी बदलाव लाने के लिए आवश्यक घटक हैं।[5]

अप्रैल 2013 में बिहार विधानसभा ने निजी विश्वविद्यालयों से संबंधित विधेयक पारित किया, जिससे राज्य में निजी विश्वविद्यालय खोलने का रास्ता साफ हो गया। विश्वविद्यालयों और कॉलेजों को राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद (NAAC) से मान्यता प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करने का एक मजबूत प्रयास शुरू किया गया है। इस पृष्ठभूमि रिपोर्ट का उद्देश्य बिहार में उच्च शिक्षा के नीति-निर्माताओं और हितधारकों को मिशन मानव विकास के महत्वाकांक्षी लक्ष्यों तक पहुँचने के संदर्भ में राज्य के सामने आने वाले अवसरों और चुनौतियों का अवलोकन प्रदान करना है। रिपोर्ट में पहुँच, समानता, उत्कृष्टता और वित्त पर आसानी से उपलब्ध डेटा और जानकारी का विश्लेषण किया गया है। इसे राष्ट्रीय उच्चतर शिक्षा अभियान (RUSA) प्रक्रिया के हिस्से के रूप में तैयार बिहार में राज्य उच्च शिक्षा योजना के लिए आधार रेखा के रूप में भी इस्तेमाल किया जा सकता है। रिपोर्ट यह दर्शाती है कि उपलब्ध डेटा और जानकारी के साथ कम समय में क्या करना संभव हुआ है।[6]

निष्कर्ष

बिहार में स्वतंत्रता के पश्चात् उच्च शिक्षा के क्षेत्र में निरन्तर विकास हुआ है। परन्तु उच्च शिक्षा में गुणवत्ता की कमी देखी जाती है। उच्च शिक्षा की गुणवत्ता इसलिए जरूरी है कि उच्च शिक्षा के अन्तर्गत आने वाले अनुशासन सर्वाधिक कुशलता की मांग करते हैं। छात्र से यदि यह पूछा जाता है कि आप अपनी उच्च शिक्षा कहाँ से प्राप्त करना चाहेंगे तो वह कैम्ब्रिज, ऑक्सफोर्ड या अन्य किसी विदेशी या आई.आई.टी. जैसे उच्च संस्थान की बात करेगा। इस दृष्टि से बिहार को उच्च शिक्षा की दशा संतोषजनक नहीं है। जहाँ तक उच्च शिक्षा की दिशा की बात है, उच्च शिक्षण संस्थानों को सुधारने की कोशिश की जा रही है। गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा प्राप्ति हेतु कई निजी उच्च शिक्षण संस्थान व विश्वविद्यालय खोले जा रहे हैं। वर्तमान में बिहार में उच्च शिक्षा के कई केन्द्र हैं: पटना, दरभंगा, मुजफ्फरपुर, भागलपुर आदि। बिहार की राजधानी पटना पूर्वी भारत के लिए एक शैक्षिक केंद्र बन गया है। आईआईटी, आईएएस, इंजीनियरिंग और मेडिकल प्रवेश जैसी परीक्षाओं की तैयारी के लिए यह एक महत्वपूर्ण केंद्र है। वहीं उत्तर बिहार में दरभंगा उच्च शिक्षा का दूसरा महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गया है। बिहार में स्कूलों की गुणवत्तापूर्ण शिक्षा अन्य राज्यों की तुलना में बेहतर है। लेकिन इतने सारे कॉलेज और विश्वविद्यालय होने के बाद भी बिहार उच्च शिक्षा के मामले में पिछड़ा हुआ है। हालांकि, यहां गुणवत्तापूर्ण प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा है, लेकिन गुणवत्तापूर्ण उच्च शिक्षा नहीं है, जो बिहार से बाहर छात्रों के पलायन का मुख्य कारण है। इसके अलावा बिहार में पत्रकारिता, फैशन या एनीमेशन को चुनने के बजाय डॉक्टर, इंजीनियर या आईएएस अधिकारी बनने पर बहुत जोर दिया जाता है। इसका कारण यह है कि बिहार की शिक्षा संस्कृति ऐसी है कि युवा छात्र इंजीनियरिंग, मेडिकल या आईएएस के दायरे से आगे कुछ नहीं सोच पाते हैं। बिहार को आगे बढ़ना है तो लोगों को इस पुरानी सोच से बाहर आना होगा। हमें बिहार के शिक्षा मंत्रालय से एक पहल की आवश्यकता है ताकि बिहार के छात्रों के लिए आधुनिक शिक्षा पर आधारित ऐसे और अधिक संस्थान खोले जा सकें ताकि उन्हें अपने राज्य में उच्च शिक्षा प्राप्ति में मदद मिल सके और विभिन्न राज्यों के छात्रों को भी आकर्षित करें। अगर हम सब इन कदमों की दिशा में काम करें तो हम बिहार की शिक्षा प्रणाली में सुधार देखेंगे जो बिहार और उसके लोगों की बेहतरी के लिए बहुत उपयोगी होगा।

सन्दर्भ

1. प्रथम- भारत में सार्वभौमिक प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए सामाजिक मिशनों का एक नेटवर्क 'एनयूईपीए, नई दिल्ली,, 2006।
2. "बिहार ने प्राथमिक शिक्षा स्कोर में सुधार कियाष भारत सरकार, नई दिल्ली, 1986।
3. बिहार में शैक्षणिक संस्थान बिहार सरकार, एनयूईपीए, नई दिल्ली।
4. मेहता, ए.सी. (2008): विश्लेषणात्मक रिपोर्ट 2006-07, भारत में प्रारंभिक शिक्षा: यूईई की दिशा में प्रगति, एनयूईपीए, नई दिल्ली।
5. एमएचआरडी (1986): कार्रवाई का कार्यक्रम, शिक्षा विभाग, एमएचआरडी, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1986
6. एनयूईपीए (2008): राज्य रिपोर्ट कार्ड 2006-07, भारत में प्रारंभिक शिक्षा: हम कहां खड़े हैं? एनयूईपीए, नई दिल्ली।

किशोरावस्था के दौरान पोषण की कमी के प्रभाव और सप्लीमेंटेशन की जरूरतः एक समीक्षा

रागनी यादव

शोधार्थी, गृह विज्ञान विभाग, भगवन्त विश्वविद्यालय अजमेर, राजस्थान

डॉ० संध्या श्रीवास्तव

शोध-निर्देशिका, गृह विज्ञान विभाग, भगवन्त विश्वविद्यालय अजमेर राजस्थान

प्रस्तावना-

वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गनाइजेशन के अनुसार, 10 से 19 साल की उम्र के बच्चों को किशोर माना जाता है। बचपन से बड़े होने की उम्र को टीनएजर्स कहा जाता है, जिसमें इमोशनल डेवलपमेंट, फिजिकल डेवलपमेंट, बॉडी साइज में बढ़ोतरी, बॉडी कंपोजिशन में बदलाव, साइकोसोशल और बायोकेमिकल बदलाव तेजी से होते हैं।[1] यह वह समय है जब बच्चा अपने आस-पास के माहौल को देखना शुरू करता है और स्कूल के हालातों से रूबरू होता है। इनसे खाने के व्यवहार पर असर पड़ना चाहिए और खाने के पैटर्न को प्रॉब्लम माना जा सकता है। इस दौरान, हॉर्मोन के असर से कई फिजिकल और मेंटल बदलाव होंगे। फिर, वजन और हाइट बढ़ने के साथ आखिरी ग्रोथ रश होता है। लड़कियों की तुलना में लड़कों का फिजिकल डेवलपमेंट रश ज्यादा धीरे-धीरे होता है।

बच्चे के खाने के ऑप्शन पर माता-पिता का भी बहुत असर पड़ता है। बच्चों की जिंदगी में इस समय माता-पिता और बेबीसिटर को अच्छे खाने के पैटर्न को सपोर्ट करने और डाइट चार्ट में नया खाना देने के लिए अच्छा समय दें। माता-पिता को अपने किशोरों को उनके स्कूल के बच्चों की तरह हेल्दी खाना खाने और खाने के बारे में सोचने में मदद करनी चाहिए।[2]

इस समय, 10 प्रतिशत बॉडी फैट के मामले में बॉडी कंपोजिशन बहुत जरूरी है। फिर भी, रेगुलर ओव्यूलेशन के लिए कम से कम 22 प्रतिशत फैट जरूरी है। लड़कियों में ग्रोथ की दर 10 साल से 13 साल की उम्र में और लड़कों में 18 साल से 20 साल की उम्र में सबसे तेज होती है। प्यूबर्टी के दौरान, उनकी बॉडी कंपोजिशन बदल जाती है और एनर्जी, मिनरल, प्रोटीन और विटामिन की जरूरतें भी बढ़ जाती हैं। लड़कों में बॉडी फैट का प्रतिशत कम हो जाता है, हालांकि, उनकी ग्रोथ के दौरान, प्यूबर्टी के आखिर तक उनके शरीर का 12 प्रतिशत वजन बढ़ जाता है। कुछ लड़कियों में लड़कों की तुलना में बहुत ज्यादा फैट बढ़ता है।[3]

साइकोसोशल बदलावों में, बच्चों को कई इमोशनल, साइकोलॉजिकल और सोशल स्ट्रेस और दबावों का सामना करना पड़ता है। जबकि तेजी से ग्रोथ का समय कम हो जाता है, साइकोलॉजिकल डेवलपमेंट बहुत लंबे समय तक जारी रहता है।[3] बॉडी वेट 13-15 साल की उम्र के बीच लड़कों का बॉडी वेट 47.6 और लड़कियों का 46.6 होना चाहिए। और 16-17 साल की उम्र में लड़कों के लिए 55.4 और लड़कियों के लिए 55.1 होना चाहिए।

दस से 12 साल की उम्र के बीच, लड़कियों को लड़कों की तुलना में प्रोटीन की ज्यादा जरूरत होती है। टीनएज में, लड़कों और लड़कियों दोनों को सबसे ज्यादा प्रोटीन की जरूरत होती है। असल में, ICRM के अनुसार, टीनएजर्स की ग्रोथ पर असर डालने के लिए फैट का इनटेक 25 एनर्जी परसेंट से कम होना चाहिए। बच्चों और टीनएजर्स की डाइट में दिखने वाला फैट हर दिन 25-30 और 35-50 g के बीच होना चाहिए। इस समय जरूरी फैटी एसिड की जरूरत 3 प्रतिशत E होती है। टीनएजर्स के लिए, फैटी एसिड की जरूरतें तय नहीं की गई हैं। रिकमेंडेशन बड़ों जैसी ही है। ग्रोथ और एनर्जी के इस्तेमाल की मेटाबोलिक जरूरतों के कारण कैलोरी की जरूरतें बढ़ जाती हैं। पुरुषों के लिए, सबसे ज्यादा कैलोरी उनकी ग्रोथ के हिसाब से होनी चाहिए, जो 16 साल की उम्र तक रहती है और फिर 19 साल की उम्र तक कम हो जाती है। प्यूबर्टी के दौरान, बढ़ने और हीमोग्लोबिन कंसंट्रेशन बढ़ाने के लिए आयरन की जरूरत होती है। 1-3 साल की उम्र में, ग्रोथ रेट धीमी हो जाती है और बॉडी मास सिर्फ 1.9 kg/lky बढ़ता है, 2 साल और 6 महीने की उम्र के बीच आयरन का कोई रिजर्व स्टोर नहीं होता है। और जरूरी आयरन की कुल मात्रा लगभग 0.44 mgदिन होती है। विटामिन D किशोरों में स्केलेटल ग्रोथ के लिए जरूरी होता है।

इस समय में विटामिन की रोजाना जरूरत 600 माइक्रोग्राम रेटिनॉल होती है और धूप से 400 माइक्रोग्राम विटामिन D भी जरूरी होता है। मिनरल में, 10 साल की उम्र में हर दिन **800 कैल्शियम और** 800 उह फॉस्फोरस की जरूरत होती है। शरीर का वजन बढ़ रहा है और पुरुषों का वजन हर साल 4.3 kg बढ़ता है, जबकि महिलाओं का वजन हर साल 4 kg बढ़ता है। पानी के मामले में, टीनएजर्स आम तौर पर कम पानी पीते हैं। कम पानी पीने का कारण टीवी देखते समय बार-बार सोडा/स्नैक्स खाना हो सकता है। सादा पानी पीना पानी की सबसे अच्छी जरूरत है। उन्हें टीनएज में बिना चीनी वाला 100 प्रतिशत फ्रूट जूस, छाछ पीना चाहिए। टीनएजर्स के लिए दूध स्टिम्युलेटिंग होना चाहिए।

प्यूबर्टी की शुरुआत (उम्र 9 से 13 साल)

फिजिकल प्रोग्रेस के इस समय के दो फेज होते हैं। पहले हिस्से में हाइट में 20 से 25 प्रतिशत की बढ़ोतरी होती है। तेजी से फैलने के मामले में प्यूबर्टी प्रेग्नेंसी के बाद दूसरे नंबर पर है, जब लंबी हड्डियां अपने आखिरी साइज तक लंबी हो जाती हैं, साइज हर व्यक्ति में अलग-अलग होता है। लड़कियां हर साल लड़कों की तुलना में 2 से 8 इंच (5-20 cm) लंबी होती हैं, जिनकी हाइट 4-12 इंच (10-30 cm) बढ़ जाती है।

किशोरावस्था में खाने की जरूरतें

किशोरावस्था में, फिजिकल और साइकोलॉजिकल दबाव खाने की आदतों पर असर डालते हैं। लड़कियों का वजन उनके फिजिकल सेक्स डिफरेंस और फैट डिपॉजिट के कारण बिना सोचे-समझे बढ़ जाता है। उनका पर्सनल टेंशन और सोशल प्रेशर उन्हें वजन कम करने के लिए गलत, खुद पर मजबूर डाइट अपनाने पर मजबूर करता है। इस समय में बुलिमिया और एनोरेक्सिया नर्वोसा जैसे कॉम्प्लेक्स और ईटिंग डिसऑर्डर में भुखमरी हो सकती है। इस समय में, उनमें खाने की बुरी आदतें होती हैं। उन्हें खाना छोड़ देना चाहिए, खासकर नाश्ता। लड़कियों को लड़कों की तुलना में बिना खाना खाना ज्यादा पसंद होता है। इस समय, बच्चों को नाश्ता करना चाहिए क्योंकि उनमें पोषक तत्वों की कमी होती है। अगर बच्चे नाश्ता नहीं करते हैं, तो इससे उन्हें खाने की बीमारी, समय की कमी, दोस्तों का दबाव और पोषण के बारे में जागरूकता की कमी हो सकती है।

घर के खाने के कुछ फायदे

कई ऐसे खाने होते हैं जिन पर पूरा कंट्रोल होता है और उन्हें कैसे बनाना है। शुगर-फ्री या ग्लूटेन- फ्री या कम फैट या कम नमक वाला खाना बनाया जा सकता है। और इसे ज्यादा फाइबर और बहुत सारी एंटीऑक्सीडेंट वाली सब्जियों से भी बनाया जाता है। इसमें हर किसी की पसंद के हिसाब से ताजी चीजें शामिल होती हैं। साफ-सफाई से, कुछ हेल्दी खाना बनाया जा सकता है। परिवार के स्वाद के हिसाब से मसाले और हर्ब्स भी डाले जाते हैं। इसलिए घर का खाना फायदेमंद होता है, कम बजट में बनता है और खाने की अच्छी आदतें बनाने में मदद करता है।[4]

किशोरावस्था के लिए डाइट गाइडलाइंस

इस समय डाइट बहुत जरूरी है क्योंकि यह बच्चों की जिंदगी में न्यूट्रिशन की स्थिति पर असर डालती है।

- बच्चों को न्यूट्रिशन और मोटापे से बचने के लिए काफी न्यूट्रिशियस खाना खिलाना चाहिए।
- इस समय, लड़कियों को अपनी डाइट में कैल्शियम वाली चीजें ज्यादा लेनी चाहिए ताकि बोन डेंसिटी का लेवल बढ़ सके। यह ऑस्टियोपोरोसिस को शुरू होने में देरी करने में भी मदद करता है।
- उन्हें रोज का खाना देना चाहिए और जंक फूड बच्चों से दूर रखना चाहिए।
- खाना आकर्षक और रंगीन होना चाहिए।
- कुछ खाने की चीजें जिनमें खाली कैलोरी होती है, जैसे कार्बोनेटेड ड्रिंक्स, उनसे बचना चाहिए।
- एनीमिया से पीड़ित बच्चों को नॉन-वेजिटेरियन खाना, हरी पत्तेदार सब्जियाँ जैसी आयरन वाली चीजें नहीं खानी चाहिए।
- ग्रोथ को तेज करने में मदद के लिए, उन्हें ज्यादा कैलोरी और प्रोटीन वाला खाना खाना चाहिए।
- खाने की आदतें उनकी भावनाओं पर निर्भर होनी चाहिए।
- माता-पिता को अपने बच्चों को टीनएज में घर पर पौष्टिक और स्वादिष्ट खाना बनाने के लिए बढ़ावा देना चाहिए।
- बच्चों के लिए, होम मेकर डाइट सबसे अच्छी होती है।[5]

किशोरों में न्यूट्रिशन की समस्या

मोटापा

मोटापा कम खाने की आदतों और खराब फिजिकल एक्टिविटी की वजह से होता है। इससे हमारे शरीर में ज्यादा वजन बढ़ता है। भारत में, 13–18 साल के लड़के और लड़कियां ज्यादा ओवरवेट या मोटे होते हैं। लगभग 22 प्रतिशत लड़के और 18 प्रतिशत लड़कियां जो बच्चे ज्यादा कैलोरी और बहुत ज्यादा फैट वाला खाना खाते हैं, वे मोटे हो जाते हैं। मोटापे का सबसे बड़ा कारण बार–बार मीठे ड्रिंक्स पीना है। ज्यादा ग्लाइसेमिक फूड लेने से हार्मोनल और मेटाबोलिक बदलाव हो सकते हैं जिससे ज्यादा खाना खाने में मदद मिलती है।[6]

न्यूट्रिशन की कमी

किशोरावस्था में शरीर की ग्रोथ के साथ–साथ कद में कुल बढ़ोतरी में 20 प्रतिशत से ज्यादा और शरीर के वजन में 40–50 प्रतिशत तक का योगदान होता है। टीनएज में कम न्यूट्रिशन, बचपन में शादी के कारण, ज्यादा मृत्यु दर और कम न्यूट्रिशन के कारण होने वाली बीमारियों का चक्र बन जाता है। आदिवासी आबादी में ग्रामीण आबादी के मुकाबले महिलाओं की कम पढ़ाई–लिखाई, माँ और बच्चे की ज्यादा मृत्यु दर का सुझाव दिया गया है। आदिवासी टीनएजर्स के बीच हुई स्टडी से पता चलता है कि RDA और ग्रामीण आबादी के मुकाबले खाने और विटामिन का इस्तेमाल कम होता था। आयरन, विटामिन A, राइबोफ्लेविन और फ्री फोलिक एसिड जैसे माइक्रोन्यूट्रिएंट्स की कमी की वजह से कमी का लेवल बहुत ज्यादा था। लड़कों में कुपोषण का ज्यादा होना इस बात की वजह से हो सकता है कि उनमें से ज्यादातर RDA के हिसाब से 70प्रतिशत से कम एनर्जी लेते हैं।

हैदराबाद में नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ न्यूट्रिशन की रिसर्च के मुताबिक, ज्यादातर अच्छी तरह पैदा हुई महिलाओं का BMI कम होता है, जिससे पता चलता है कि वजन कम होना एक बड़ी समस्या है, शायद इस ग्रुप के लड़कों के कम कैलोरी लेने की वजह से। हालांकि यह ज्यादातर इसलिए होता है क्योंकि शहरी और ग्रामीण महिलाओं को परिवार के लड़कों की तुलना में खाने को कम प्राथमिकता दी जाती है, लेकिन टीनएज में वजन कम होना पर्सनल पसंद और सही चुनाव करने की सोची–समझी कोशिश से जुड़ा है। टीनएज में कुपोषण का कारण खाना छोड़ना, खाने का ट्रेंड और इमोशनल परेशानी हो सकती है। टीनएज में माइक्रोन्यूट्रिएंट की कमी की समस्याओं के नतीजे में ग्रोथ में रुकावट, कम इम्यूनिटी और रिप्रोडक्टिव कामों में कमी आती है। कभी–कभी यह प्रेग्नेंसी से जुड़ी दिक्कतों या कम वजन के नुकसान पर भी असर डाल सकता है। इस तरह यह पीढ़ी–दर–पीढ़ी चलने वाला चक्र या कुपोषण बना रहता है। आयोडीन उन जरूरी माइक्रोन्यूट्रिएंट्स में से एक है जो इंसान के दिमाग और शरीर को रोजाना बेहतर और आकर्षक बनाने के लिए जरूरी है। टीनएज लड़कियों को फोर्टिफाइड नमक से आयोडीन की जरूरतें पूरी करनी चाहिए। आयोडीन की कमी से हाइपोथायरायडिज्म या घेंघा होता है।[7]

न्यूट्रिएंट्स की कमी से एनीमिया

खून की मात्रा और मसल्स मास के बढ़ने और फैलने के साथ आयरन की जरूरत बढ़ जाती है। लड़कों को लड़कियों की तुलना में ज्यादा आयरन की जरूरत होती है क्योंकि उनका लीन बॉडी मास ज्यादा तेजी से बढ़ता है। लड़कियों के लिए, पीरियड्स का आना अपने नए कारणों से होता है। टीनएजर्स को आयरन से भरपूर खाना (हरी पत्तेदार सब्जियाँ, गुड़, बीफ) खाने की सलाह दी जानी चाहिए, साथ ही विटामिन ब् से भरपूर खाना (संतरे, नींबू और आंवला) भी खाना चाहिए। टीनएजर्स महिलाओं को महीने में होने वाले खून की कमी को पूरा करने के लिए ज्यादा थ्म की जरूरत होती है।[8]

किशोरों के लिए डाइट और खाने का तरीका

किशोरावस्था के दौरान खाने के तरीकों पर अलग–अलग असर पड़ता है। किशोरों की आजादी, सोशल एक्टिविटीज में ज्यादा हिस्सा लेना, और आम तौर पर बिजी एक्टिविटीज का शेड्यूल, इन सभी ने खाने के तरीके पर काफी असर डाला।[9]

किशोरावस्था अक्सर ब्रेकफास्ट को नजरअंदाज करते हैं और बड़े भी अक्सर इसे नजरअंदाज कर देते हैं। लंच स्किप करना आमतौर पर टीनएज लड़कियों के लिए वजन कम करने का एक तरीका माना जाता है। डाइट ज्यादातर अजीब और असंतुलित होगी। शरीर के साइज और बनावट, सेक्सुअल डेवलपमेंट, एनर्जी, स्किन की हालत और सुंदरता के मामले में स्थिति बहुत अच्छी है, और पर्सनल फैसले लेने की आजादी है, जो खाने की पसंद में दिखती है। समाज में कमजोरी या पढ़ाई और यूनिवर्सिटी की नौकरी के तनाव की वजह से भी परिवार में झगड़े और इमोशनल दिक्कतें हो सकती हैं। बहुत ज्यादा भूख लगने के बावजूद, "सोशल मीडिया," "गेम्स," "दोस्तों," और "डेटिंग" में ध्यान लगाने की वजह से खाने का समय अलग–अलग होता है। इस वजह से, चीजों के बीच 'स्नैकिंग' आम बात है। सही चीजें चुनना बहुत जरूरी है। स्नैक्स पौष्टिक

होने चाहिए और उनमें एनर्जी, प्रोटीन और दूसरे जरूरी न्यूट्रिएंट्स होने चाहिए।[10] ज्यादातर न्यूट्रिएंट्स के लिए बताई गई डाइटरी मात्रा पुरुषों की तुलना में महिलाओं के लिए कम होती है। लड़कियों की डाइट में आयरन से भरपूर खाना जैसे हरी पत्तेदार सब्जियां, साबुत अनाज, सूखे मेवे, अंडा और लिवर को प्राथमिकता देनी चाहिए।[11]

किशोरावस्था खाने से जुड़े एडवरटाइजिंग मैसेज से खास तौर पर प्रभावित होते हैं। ऐसे ज्यादातर खाने की चीजों में एनर्जी, फैट और शुगर भरपूर होती है, लेकिन उनमें दूसरे जरूरी न्यूट्रिएंट्स की कमी हो सकती है। फास्ट मील आउटलेट और फूड स्टोर पर आसानी से तैयार खाना मिलने से टीनएजर्स ज्यादा बार बाहर खाते हैं। फास्ट फूड को एक अच्छी बैलेंस्ड डाइट के हिस्से के तौर पर समझदारी से इस्तेमाल करने की जरूरत है, लेकिन रेगुलर वेट लॉस प्लान पैटर्न के विकल्प के तौर पर नहीं। टीनएजर्स को अपनी पसंद और जिम्मेदारियों के आधार पर खाने के फैसले लेने के लिए बढ़ावा देना चाहिए।

किशोरावस्था के दौरान सुस्ती और तेज, गाढ़ी और तेज चीजें खाने की आदत आम है। अनियमित और अनहेल्दी खाना खाने से टीनएजर्स बड़े होने पर ज्यादा वजनध्मोटे हो जाते हैं। इसलिए, इस दौरान शारीरिक मेहनत और हेल्दी खाने की पसंद को बढ़ावा देना चाहिए। हेल्दी एडल्टहुड में कदम रखने के लिए इस उम्र में न्यूट्रिशन की जरूरतों को पूरा करना सबसे जरूरी है। इसलिए, बचपन और शुरुआती जिंदगी में किसी भी समय सही विटामिन न सिर्फ हेल्दी एडल्टहुड का रास्ता बनाता है, बल्कि खाने की आदतों को ठीक से बढ़ावा देने में भी मदद करता है।[12]

निष्कर्ष

किशोरावस्था में, बच्चों को मोटापे से बचने के लिए रेगुलर फिजिकल एक्सरसाइज करनी चाहिए और स्कूल गेम्स में हिस्सा लेना चाहिए। इस समय बच्चों के लिए फिजिकल एक्टिविटीज सबसे जरूरी हैं। फिजिकल एक्टिविटी से लड़कियों में प्रीमेंस्ट्रुअल डिस्फोरिक बीमारी को भी रोका जा सकता है। एक्सरसाइज किशोर लड़कों को मसल्स डेवलप करने में मदद करती है। "स्पोर्ट्स" द्वारा किए गए सर्वे से पता चला है कि भारत में 7–17 साल की उम्र के बच्चों का BMI और फिटनेस लेवल अनहेल्दी BMI स्कोर के साथ अनफिट है। तीन में से एक किशोर का BMI हेल्दी नहीं था, वह अपनी उम्र के हिसाब से जरूरी लेवल पर दौड़ नहीं सकता था और उसके शरीर की ऊपरी ताकत की कमी थी। बच्चों को ज्यादा फिजिकल एक्टिविटी करने के लिए बढ़ावा दिया जाना चाहिए। कम और मिडिल इनकम वाले देशों में बच्चों और किशोरों की फिटनेस के लिए बाइनरी न्यूट्रिशनल रिस्क बढ़ रहा है। इंफेक्शन से बचाने वाले, वेट लॉस प्रोग्राम के पहलू को बेहतर बनाने वाले और फिजिकल एक्सरसाइज को बढ़ावा देने वाले इंटीग्रेटेड एडोलेसेंट फिटनेस पैकेज की जरूरत है, ताकि कुपोषण से जुड़ी कमी को कम किया जा सके और मोटापे से भी बचा जा सके।

संदर्भ

1. Mahana R, Puri S, Khanna K, Gupta S, Jain PS , Seth R. Textbook of Nutrition and Dietetics. 2nd Edition Oxford and Published for Elite Publishing House Pvt.Ltd;2016th Edition Delhi-110002. https://www.goodreads.com/author/list/20233031. Kumud_Khan.
2. Fialkowski M, Titchenal A, Draper J. Textbook of Human Nutrition 2020 Edition, University of Hawaii; Publishers 2020. http://pressbooks.oer.hawaii.edu/humannutrition2/frontmatter/preface/.
3. New Age International (P) Ltd; Publishers 2019. https://books. google.co.in/books/about/Dietetics.html?id=0DWze4JLn5o C&redir_esc=y.
4. growth during pregnancy and the competition for nutrients. The American journal of clinical nutrition. 1994 Aug 1;60(2):183-8. https://doi.org/10.1093/ajcn/60.2.183.
5. Scholl TO, Hediger ML, Cronk CE, Schall JI. Maternal growth during pregnancy and lactation. Hormone Research in Paediatrics. 1993;39(Suppl. 3):59-67. https://doi.org/10.1159/000182785.
6. Gigante DP, Rasmussen KM, Victora CG. Pregnancy increases BMI in adolescents of a population-based birth cohort. The Journal of nutrition. 2005 Jan 1;135(1):74-80. https://doi.org/10.1093/jn/135.1.74.
7. Lassu Z, Moin A, andBhutta Z textbook of Nutrition in Middle Childhood and Adolescence. In: Bundy DAP, Silva ND, Horton S, et al., editors. Child and Adolescent Health and Development. 3rd edition. Washington (DC): The International Bank for Reconstruction and Development / The World Bank; 2017 Nov 20. https://www.ncbi. nlm.nih.gov/books/NBK525242/#_NBK525242_pubdet.
8. Gupta MD, Engelman R, Levy J, Luchsinger G, Merrick T, Rosen JE. ADOLESCENTS, YOUTH AND THE TRANSFORMATION OF THE FUTURE. state of world population 2014..
9. Lobstein T, Jackson-Leach R, Moodie ML, Hall KD, Gortmaker SL, Swinburn BA, James WP, Wang Y, McPherson K. Child and adolescent obesity: part of a bigger picture. The Lancet. 2015 Jun 20;385(9986):2510-20. https://doi.org/10.1016/S0140-6736(14)61746-3.
10. Kozuki N, et al: Short maternal stature increases risk of smallfor-gestational-age and preterm births in low- and middle-income countries: individual participant data meta analysis and population attributable fraction. J Nutr 2015;145:2542-2550. https://doi.org/10.3945/jn.115.216374.
11. Meyers LD, Hellwig JP, Otten JJ, editors. Dietary reference intakes: the essential guide to nutrient requirements. National Academies Press; 2006 Sep 29.
12. Aurino E. Do boys eat better than girls in India? Longitudinal evidence on dietary diversity and food consumption disparities among children and adolescents. Economics & Human Biology. 2017 May 1;25:99-111. https://doi.org/10.1016/j.ehb.2016.10.007

भारत की अर्थव्यवस्था के लिए विनिर्माण और खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों की भविष्य की संभावनाएं

डॉ० सोहित राम

सहायक प्राध्यापक, अर्थशास्त्र विभाग, आर. बी. महाविद्यालय, दलसिंह सराय, समस्तीपुर, बिहार

सारांश

भारत की अर्थव्यवस्था के विकास में विनिर्माण और खाद्य प्रसंस्करण उद्योग महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। विनिर्माण क्षेत्र 'मेक इन इंडिया' और 'आत्मनिर्भर भारत' जैसी पहलों के माध्यम से सकल घरेलू उत्पाद (GDP) में 17% से 25% तक का योगदान करने का लक्ष्य रखता है, जबकि खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र कृषि-आधारित अर्थव्यवस्था, विशाल उपभोक्ता आधार और निर्यात वृद्धि से लाभान्वित होता है। ये दोनों क्षेत्र रोजगार सृजन, विदेशी निवेश (FDI) आकर्षित करने और ग्रामीण-शहरी प्रवास को कम करने में मदद करते हैं।

प्रस्तुत शोध लेख में विनिर्माण और खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र में विकास, चुनौतियों और अवसरों पर ध्यान केंद्रित किया गया है, जिसमें भारत जैसे देशों के लिए कच्चे माल की उपलब्धता, बढ़ती घरेलू मांग, सरकारी नीतियों, तकनीकी नवाचारों (जैसे AI और IoT) और लॉजिस्टिक्स में सुधार जैसे पहलुओं पर चर्चा की गई है। इस लेख में उद्योग की वर्तमान स्थिति, इसकी क्षमता, और इसके विकास को बाधित करने वाली बाधाओं का विश्लेषण भी किया गया है, जिसमें कुशल जनशक्ति की कमी, वित्तीय बाधाएं और बुनियादी ढांचे की कमी शामिल हैं।

मूल शब्दः भारत, अर्थव्यवस्था, विनिर्माण, खाद्य प्रसंस्करण, उद्योग, मेक इन इंडिया, प्रत्यक्ष विदेशी निवेश

प्रस्तावना

भारत में बड़े पैमाने पर खेती-बाड़ी होने के बावजूद, भारत में कच्चे माल की अच्छी उपलब्धता है, लेकिन कटाई के बाद होने वाला नुकसान या खाने की बर्बादी बड़ी चिंता बनी हुई है क्योंकि ये नागरिकों की बुनियादी जरूरतों पर असर डालती है। 'फूड प्रोसेसिंग' शब्द का मतलब है खेती या बागवानी की पैदावार में ग्रेडिंग, सॉर्टिंग और पैकेजिंग जैसी तकनीकों के जरिए वैल्यू जोड़ना। असल में, इसमें खाने की चीजों को बनाना और उनकी शेल्फ लाइफ बढ़ाने, उनकी क्वालिटी बढ़ाने और उन्हें ज़्यादा काम का बनाने के लिए उन्हें बचाना शामिल है। GDP, रोजगार और इन्वेस्टमेंट में अपने योगदान के मामले में फूड प्रोसेसिंग सेक्टर भी भारतीय अर्थव्यवस्था का एक जरूरी हिस्सा बनकर उभरा है। फूड इंडस्ट्री की कॉम्प्लेक्स सप्लाई चेन में कई स्टेकहोल्डर शामिल हैं, प्रोडक्ट की सेफ्टी और क्वालिटी बनाए रखने के साथ-साथ फूड सेफ्टी नियमों का पालन करने के लिए, फूड बिजनेस के लिए एक मजबूत फूड सेफ्टी मैनेजमेंट सिस्टम लागू करना बहुत जरूरी है।

भारत की अर्थव्यवस्था के लिए विनिर्माण और खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों की भविष्य की संभावनाएं बहुत उज्ज्वल हैं। खाद्य प्रसंस्करण उद्योग का अनुमान है कि 2026 तक +535 बिलियन तक पहुँच जाएगा, जो 2030 तक +700 बिलियन तक पहुँच सकता है। यह अनुमानित वृद्धि घरेलू मांग, बढ़ती निर्यात, सहायक सरकारी नीतियों, और मेक इन इंडिया पहल जैसे कारकों से प्रेरित है।

विनिर्माण उद्योग

विनिर्माण भारत की आर्थिक वृद्धि का एक प्रमुख स्तंभ बनकर उभर रहा है, जो सकल घरेलू उत्पाद में लगभग 16-17% का योगदान देता है और 2.7 करोड़ से अधिक श्रमिकों को रोजगार देता है। इस क्षेत्र की ताकत ऑटोमोटिव, इंजीनियरिंग, रसायन, फार्मास्यूटिकल्स, उपभोक्ता टिकाऊ वस्तुएं, इलेक्ट्रॉनिक्स और वस्त्र जैसे प्रमुख उद्योगों के प्रदर्शन में निहित है। मेक

इन इंडिया और उत्पादन-आधारित प्रोत्साहन (पीएलआई) जैसी सरकारी पहलों के समर्थन से, भारत आने वाले वर्षों में सकल घरेलू उत्पाद में विनिर्माण की हिस्सेदारी 25% करने का लक्ष्य लेकर चल रहा है।

विनिर्माण क्षेत्र वर्तमान में भारत की GDP का लगभग 17% है, जिसका लक्ष्य 'मेक इन इंडिया' और 'आत्मनिर्भर भारत' जैसी पहलों के तहत 2030 तक इसे 25% तक बढ़ाना है।

यह क्षेत्र GDP में योगदान के साथ-साथ रोजगार के बड़े अवसर पैदा करने में महत्वपूर्ण है।

इलेक्ट्रॉनिक्स, फार्मास्यूटिकल्स, इंजीनियरिंग उत्पाद और ऑटोमोबाइल जैसे क्षेत्रों में निर्यात में वृद्धि हो रही है, जो भारत को वैश्विक बाजार में प्रतिस्पर्धी बना रहा है।

विनिर्माण क्षेत्र निवेशकों के लिए एक आकर्षक गंतव्य बना हुआ है, जिससे देश में FDI आकर्षित होता है।

प्रौद्योगिकी उद्योग को नया रूप देने में एक परिवर्तनकारी भूमिका निभा रही है। कभी मशीन टूल क्षेत्र पर आधारित, भारत अब स्वचालन, डिजिटलीकरण और प्रक्रिया-संचालित उत्पादन की ओर बढ़ रहा है। डिजिटल परिवर्तन ने नवाचार को बढ़ावा दिया है, दक्षता में सुधार किया है और निर्माताओं को वैश्विक बाजारों में प्रतिस्पर्धी बने रहने के लिए तैयार किया है। इस क्षेत्र की गति जुलाई 2025 में परिलक्षित हुई, जब एचएसबीसी इंडिया मैन्युफैक्चरिंग पीएमआई 16 महीने के उच्चतम स्तर 59. 1 पर पहुँच गया, जो लगभग पाँच वर्षों में फैक्टरी ऑर्डरों में सबसे तेज वृद्धि के कारण था।

भारत विशिष्ट वैश्विक मूल्य श्रृंखलाओं में भी अपनी जगह बना रहा है। पवन ऊर्जा क्षेत्र में अपनी बढ़ती क्षमता के जरिए, भारत 2030 तक दुनिया की पवन ऊर्जा की 10% माँग को पूरा करने की क्षमता रखता है।

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग

खाद्य प्रसंस्करण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें कच्चे खाद्य पदार्थों (जैसे अनाज, फल, सब्जियां, दूध, मांस) को उपभोग के लिए तैयार, अधिक उपयोगी और लंबी शेल्फ लाइफ वाले उत्पादों में बदला जाता है। इसमें खाना पकाना, डिब्बाबंदी, मैकरेटिंग और पायसीकरण जैसी विभिन्न भौतिक और रासायनिक क्रियाएं शामिल होती हैं, जो उत्पादों का मूल्यवर्धन करती हैं और अपशिष्ट को कम करती हैं।

- कृषि-आधारित विकास: यह उद्योग भारत के विशाल कृषि आधार का लाभ उठाता है, जहाँ भारत फलों और सब्जियों का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक है।
- बढ़ती घरेलू मांग: बढ़ती शहरीकरण और बदलते उपभोग पैटर्न के कारण रेडी-टू-ईट और पैक्ड खाद्य पदार्थों की मांग में वृद्धि हो रही है, जो उद्योग के विकास को बढ़ावा दे रही है।
- निर्यात में वृद्धि: प्रसंस्कृत खाद्य उत्पादों के निर्यात में हिस्सेदारी 2014-15 में 13.7% से बढ़कर 2024-25 में 20.4% हो गई है।
- रोजगार सृजन: यह क्षेत्र पंजीकृत और असंगठित दोनों क्षेत्रों में बड़ी संख्या में रोजगार प्रदान करता है।
- सरकारी पहल: सरकार, खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्रालय (MoFPI) के माध्यम से, उत्पादन-लिंक्ड प्रोत्साहन योजना (PLISFPI) जैसी योजनाओं के माध्यम से इस क्षेत्र को बढ़ावा दे रही है।
- बुनियादी ढांचे में निवेश: कोल्ड स्टोरेज, बूचड़खाने और फूड पार्क्स जैसे बुनियादी ढाँचे में निवेश की महत्वपूर्ण संभावनाएं हैं।

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग की भविष्य की संभावनाएं

भारत में कृषि और उससे संबद्ध क्षेत्र आजीविका का सबसे बड़ा स्रोत होने के कारण, इसके 70% ग्रामीण परिवार अभी भी अपनी आजीविका के लिए मुख्य रूप से कृषि पर निर्भर हैं। इस प्रकार, यह क्षेत्र रोजगार सृजन की एक बड़ी क्षमता भी प्रदान करता है।

- मजबूत विकास: भारत दुनिया के दूसरे सबसे बड़े फल और सब्जी उत्पादक के रूप में अपनी मजबूत कृषि आधार के कारण, खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र में वैश्विक नेता बनने की राह पर है।

- बड़ी मांग: बढ़ती घरेलू मांग, 1.4 बिलियन से अधिक की आबादी और भारतीय प्रवासियों की वैश्विक संख्या इस क्षेत्र को बढ़ावा दे रही है।
- निर्यात में वृद्धि: प्रसंस्कृत खाद्य उत्पादों के निर्यात में वृद्धि देखी गई है, जो 2014-15 में 13.7% से बढ़कर 2024-25 में 20.4% हो गई है।
- सरकारी प्रोत्साहन: सरकार 'मेक इन इंडिया' के तहत 100% प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (FDI) की अनुमति देकर, खाद्य पार्कों के लिए नाबार्ड कोष स्थापित करके, और PLISMBP जैसी योजनाओं के माध्यम से इस क्षेत्र को प्रोत्साहित कर रही है।
- रोजगार सृजन: यह क्षेत्र अर्थव्यवस्था के लिए एक महत्वपूर्ण योगदानकर्ता है और सकल घरेलू उत्पाद, रोजगार और निर्यात में योगदान दे रहा है। पंजीकृत और अपंजीकृत क्षेत्रों में लगभग 7 मिलियन से अधिक रोजगार सृजित हुआ है।

खाद्य प्रसंस्करण में विनिर्माण उद्योग की हिस्सेदारी

खाद्य प्रसंस्करण में विनिर्माण उद्योग की भूमिका कच्चे माल को तैयार, बाजार-योग्य उत्पादों में बदलकर खाद्य श्रृंखला का महत्वपूर्ण हिस्सा बनना है, जिससे खाद्य अपशिष्ट कम होता है, उत्पादों की शेल्फ-लाइफ बढ़ती है और किसानों की आय में वृद्धि होती है। विनिर्माण उद्योग कच्चे खाद्य पदार्थों को उपभोक्ता-तैयार, आकर्षक और स्थिर उत्पादों में बदलने के लिए प्रसंस्करण, पैकेजिंग, ब्रांडिंग और लॉजिस्टिक्स का उपयोग करता है।

तालिका: खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र में लगे श्रमिकों की संख्या

(लाख व्यक्ति)

क्षेत्र	खाद्य प्रसंस्करण उद्योग*	सभी उद्योग	(प्रतिशत) एफपी क्षेत्र का हिस्सा
पंजीकृत (2019-2020)	20.32 लाख	166.21 लाख	12.22
असंगठित	51.11 लाख	360.41 लाख	14.18

स्रोत: वार्षिक रिपोर्ट-वित्त वर्ष 2022-23, खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्रालय, भारत सरकार, खाद्य उत्पाद और पेय पदार्थ खंड शामिल हैं।

विनिर्माण उद्योग की भूमिका

- कच्चे माल को मूल्यवर्धित उत्पादों में बदलना: विनिर्माण प्रक्रिया कच्चे माल को संसाधित करके ऐसे उत्पाद बनाती है जो लंबे समय तक चलते हैं और उपभोग के लिए सुरक्षित होते हैं।
- खाद्य अपशिष्ट को कम करना: खाद्य प्रसंस्करण और विनिर्माण से कटाई के बाद होने वाले नुकसान को कम करने में मदद मिलती है, जिससे बर्बादी में कमी आती है।
- अर्थव्यवस्था में योगदान: यह भारतीय अर्थव्यवस्था के कुल सकल मूल्य वर्धन (GVA) में महत्वपूर्ण योगदान देता है और निर्यात में भी इसका बड़ा हिस्सा है।
- रोजगार सृजन: यह क्षेत्र प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से लाखों रोजगार के अवसर प्रदान करता है, जिससे ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में आजीविका के अवसर पैदा होते हैं।
- आपूर्ति श्रृंखला का एकीकरण: विनिर्माण उद्योग किसानों से कच्चा माल प्राप्त करके और उसे अंतिम उपभोक्ताओं तक पहुँचाने के लिए एक कुशल आपूर्ति श्रृंखला का निर्माण करके पूरी खाद्य आपूर्ति श्रृंखला को एक साथ जोड़ता है।
- नई तकनीक और नवाचार का उपयोग: उद्योग नई तकनीकों जैसे कि कृत्रिम बुद्धिमत्ता (AI) का उपयोग करके उत्पादन प्रक्रिया को अनुकूलित करता है, इन्वेंट्री का प्रबंधन करता है और आपूर्ति श्रृंखला में पारदर्शिता लाता है।
- सरकारी नीतियों और योजनाओं का लाभ: 'मेक इन इंडिया' और उत्पादन-सह-प्रोत्साहन (PLI) जैसी योजनाएं, विनिर्माण को बढ़ावा देने, नवाचार को प्रोत्साहित करने और भारतीय खाद्य ब्रांडों को अंतरराष्ट्रीय बाजारों में प्रतिस्पर्धा करने में मदद करती हैं।
- बुनियादी ढांचे का विकास: सरकार कोल्ड चेन, भंडारण और प्रसंस्करण इकाइयों के लिए निवेश को बढ़ावा देती है, जो इस क्षेत्र के विकास के लिए आवश्यक हैं।

चुनौतियाँ

भारत का खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र एक महत्त्वपूर्ण मोड़ पर है, जिसमें वृद्धि और निर्यात विस्तार की व्यापक संभावना है। कृषि विकास को प्राथमिकता देने के सरकार के प्रयासों–जहाँ वर्ष 2024–25 में 1.52 लाख करोड़ रुपए का पर्याप्त बजट आवंटन भी किया गया है, के बावजूद देश का कृषि–निर्यात कमजोर प्रदर्शन कर रहा है। कृषि निर्यात का केवल 25% भाग प्रसंस्करित या मूल्यवर्द्धित उत्पादों का है और यह आँकड़ा पिछले एक दशक से गतिहीन बना हुआ है। भारत वैश्विक औसत और चीन जैसे प्रतिस्पर्द्धियों से पीछे है। यह अंतराल भारतीय खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के लिये चुनौती और अवसर दोनों प्रस्तुत करता है।

खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के लिये उत्पादन–आधारित प्रोत्साहन योजना (Production Linked Incentive Scheme for the Food Processing Industry- PLISFPI) का कार्यान्वयन धीमा रहा है, जहाँ क्रियान्वयन समय–सीमा के मध्य तक आवंटित धनराशि का केवल 10% ही उपयोग किया गया है।

- बुनियादी ढांचे की कमी: कटाई के बाद होने वाली हानि को कम करने के लिए भंडारण, परिवहन और शीत श्रृंखला जैसी सुविधाओं का अभाव एक बड़ी चुनौती है।
- आपूर्ति श्रृंखला में बिखराव: आपूर्ति श्रृंखला खंडित होने के कारण अपव्यय और लागत में वृद्धि होती है।
- कुशल कार्यबल की कमी: विभिन्न स्तरों पर कुशल श्रमिकों की कमी है।
- गुणवत्ता मानकों का पालन: गुणवत्ता और मानकीकरण की कमी एक और चुनौती है।

भारत को अपनी पूरी क्षमता को साकार करने और वैश्विक बाजार में प्रभावी रूप से प्रतिस्पर्द्धा करने के लिये इस क्षेत्र में बेहतर प्रदर्शन करने की आवश्यकता है।

आज खाद्य और पेय निर्माताओं के सामने आने वाली उच्च स्तरीय समस्याएँ वैसी ही लग सकती हैं जैसी उद्योग वर्षों से झेल रहा है। हालाँकि, इन चुनौतियों का परिवेश काफी बदल गया है। अधिक उत्पाद विकास और खुलेपन के लिए ग्राहकों की रुचि, लगातार बढ़ती गुणवत्ता और स्थिरता की माँग, अधिक समेकित शुद्ध राजस्व, नए चौनल अवसर और एक मजबूत श्रमशक्ति, ये कुछ कारक मात्र हैं। ये कारक बाजार के उन पहलुओं की ओर ले जा रहे हैं जहाँ खाद्य और पेय उत्पादकों को खाद्य उद्योग के विकास में सहयोग करने के लिए एक नई रणनीति अपनाने की आवश्यकता है।

खाद्य और पेय उद्योगों के लिए, तकनीक मित्र या शत्रु हो सकती है। वर्षों पहले लागू की गई ईआरपी प्रणालियाँ अब इस उद्योग की जटिल माँगों को पूरा नहीं कर सकतीं।

कुल मिलाकर, भारत का खाद्य प्रसंस्करण और विनिर्माण क्षेत्र भविष्य में एक प्रमुख भूमिका निभाएगा, जो देश की आर्थिक वृद्धि और विकास में महत्वपूर्ण योगदान देगा।

निष्कर्ष

खाद्य प्रसंस्करण मंत्रालय, वैश्विक खाद्य विनिर्माण चौंपियनों के निर्माण और अंतर्राष्ट्रीय बाजार में भारतीय खाद्य ब्रांडों को बढ़ावा देने के लिए खाद्य प्रसंस्करण उद्योग के लिए केंद्रीय क्षेत्र उत्पादन–सह–प्रोत्साहन योजना (पीएलआईएसएफपीआई) लागू कर रहा है। यह योजना 2021–22 से 2026–27 तक की छह वर्षों की अवधि में 10,900 करोड़ रुपये के परिव्यय के साथ लागू की जा रही है।

भारतीय खाद्य उत्पादों में निवेश और सोर्सिंग को बढ़ावा देने के उद्देश्य से, खाद्य प्रसंस्करण उद्योग मंत्रालय ने वर्ष 2017, 2023 और 2024 के दौरान विश्व खाद्य भारत (डब्ल्यूएफआई) के तीन संस्करणों का आयोजन किया था, जो घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में उनके एकीकरण की सुविधा प्रदान करके खाद्य प्रसंस्करण में निवेश के अवसरों और विकास को दिखाने के लिए एक प्रमुख मंच प्रदान करता है। यह आयोजन वैश्विक खाद्य प्रसंस्करण कंपनियों, नवप्रवर्तकों, आपूर्ति श्रृंखला हितधारकों, उपकरण निर्माताओं आदि को एक सहयोगी मंच पर लाता है और विदेशी कंपनियों को अपने भारतीय समकक्षों के साथ गठजोड़/व्यावसायिक अवसर प्रदान करता है।

भारत के खाद्य प्रसंस्करण उद्योग में तेजी से बदलाव आया है, जो इसके विशाल कृषि आधार, बढ़ती घरेलू मांग और सहायक सरकारी नीतियों से प्रेरित है। भारत एक प्रभावशाली विकास गति के साथ खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र में वैश्विक अगुआ

के रूप में उभरने को तैयार है। कृषि क्षेत्र भारत के खाद्य प्रसंस्करण उद्योग की रीढ़ हैद्य कृषि सांख्यिकी 2023 के अनुसार भारत फलों और सब्जियों का दूसरा सबसे बड़ा उत्पादक है।

इसके अलावा, एमओएफपीआई ने रेडी टू कुक (आरटीसी) / रेडी टू ईट (आरटीई) उत्पादों में बाजरा के उपयोग को प्रोत्साहित करने और खाद्य उत्पादों में बाजरा के उपयोग को बढ़ाने और मूल्यवर्धन और बिक्री को बढ़ावा देने के लिए बाजरा आधारित उत्पादों (पीएलआईएसएमबीपी) के लिए उत्पादन लिंक्ड प्रोत्साहन योजना के तहत उन्हें प्रोत्साहित करने की पहल की। खाद्य प्रसंस्करण क्षेत्र जीडीपी, रोजगार और निर्यात में अपने योगदान के मामले में भारतीय अर्थव्यवस्था के एक महत्वपूर्ण क्षेत्र के रूप में उभरा इसके अलावा, प्रसंस्कृत खाद्य निर्यात में हिस्सेदारी 2014-15 के 13.7% से बढ़कर 2024-25 में 20. 4% हो गई है। वार्षिक उद्योग सर्वेक्षण, 2022-23 के अनुसार, पंजीकृत खाद्य प्रसंस्करण इकाइयों में लगभग 2.23 मिलियन श्रमिक कार्यरत हैं, जबकि असंगठित क्षेत्र उद्यमों के वार्षिक सर्वेक्षण, 2023-24 के अनुसार, अपंजीकृत क्षेत्र में 4.68 मिलियन श्रमिक कार्यरत हैं।

सन्दर्भ

1. अली जे., सिंह एस.पी., और एकेनम ई. (2009)। भारतीय खाद्य प्रसंस्करण उद्योग में दक्षता और उत्पादकता में परिवर्तन: निर्धारक और नीतिगत निहितार्थ। अंतर्राष्ट्रीय खाद्य और कृषि व्यवसाय प्रबंधन समीक्षा , 12(1), 43-66। https://doi.org/10.22004/ag.econ.53745
2. मीर, आईए, भारतीय अर्थव्यवस्था को सशक्त बनाने के लिए 'मेक इन इंडिया' अभियान का रणनीतिक महत्व
3. साहू, बी.बी., मेक इन इंडिया: भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभाव। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च कल्चर सोसाइटी, (2018) 483-489।
4. शेट्टार, डी.आर., मेक इन इंडिया अभियान का प्रभाव- एक वैश्विक परिप्रेक्ष्य। जर्नल ऑफ रिसर्च इन बिजनेस एंड मैनेजमेंट, (2017) 01-06।
5. अनेजा, डीपी, मेक इन इंडिया: सामाजिक-आर्थिक के लिए नया प्रतिमान। पैरीपेक्स- इंडियन जर्नल ऑफ रिसर्च, (2016) 295-297।
6. भाटिया, आर., और अग्रवाल, एस., मेक इन इंडिया: एक मात्रात्मक दृष्टिकोण। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ एप्लाइड रिसर्च, (2018) 152-156।
7. गौबा, आर., नंदिता, और ढींगरा, आर., मेक इन इंडिया-देश के आर्थिक परिदृश्य को बदलने की एक पहल। एमिटी जर्नल ऑफ इकोनॉमिक्स, (2018) 88-104।
8. कमल, एन., मेक इन इंडिया: सतत विकास के लिए एक रोडमैप। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ बिजनेस एडमिनिस्ट्रेशन एंड मैनेजमेंट, (2017) 83-97।
9. http://www.makeinindia.com/
10. https://www.businessalligators.com/advantages-disadvantages-make-india/
11. https://dipp.gov.in/publications/fdi-statistics
12. https://data.gov.in/keywords/gdp

वैदिकदर्शन में अन्तर्निहित माया शब्द का अर्थानुशीलन

प्रमोद कुमार

शोधच्छात्र, वेदविभाग, गुरुकुल काङ्गडी (समविश्वविद्यालय), हरिद्वार, उत्तराखण्ड

वास्तव में माया का अर्थ है - मापना। इसीलिए यह उस कार्य को सूचित करती है जिसके द्वारा अपरिमेय को मापा जाता है तथा असीम को ससीम बनाया जाता है। उसी से माया की आवरण शक्ति का दूसरा गुण सामने आता है, क्योंकि जब तक असीम अनन्तता को आवृत्त नहीं किया जाता, उसे लघु ससीम के रूप में भी उपस्थित करना असम्भव हो जाता है। उसका तीसरा गुण ऐन्द्रिक चमत्कार या छल भी इससे निकलता है, क्योंकि वह असीम को ससीम के रूप में, अनन्त को सान्त के रूप में, नित्य को अनित्य के रूप में तथा महान् को अणु के रूप में और इसके विपरीत भी प्रकट करके सबको छलती रहती है।[1] ऐसे ही भाव को प्रकट करने वाला निर्वचन शब्दकल्पद्रुम में भी दिया गया है। 'मीयते अपरोक्षवत् प्रदर्श्यतेऽनया इति'।[2] मा+माच्छाससिसूभ्यो यः सूत्र से य और टाप् प्रत्यय।[3] जिसके द्वारा अपरोक्ष की भांति दिखाया जाता है। माया व्यक्त रूप में सब कुछ दिखा देती है। अन्यथा यदि प्रकृति न होती तो सब कुछ अव्यक्त रहता।

मेदिनीकोष में माया के 'शाम्बरी' और 'बुद्धि' पर्याय दिये गये हैं। 'माया स्यात् शाम्बरी बुद्ध्योमाघ्यः पीताम्बरेऽसुरे'।[4] अमरकोष में माया का 'शाम्बरी' ही पर्याय माना गया है।[5] सेन्टपीटर्सबर्ग डिक्शनरी में माया के निम्नलिखित पर्याय दिये गये हैं - प्रज्ञा, प्राज्ञन, शाम्बरी, बुद्धि, कूट, शाठ्य, दम्भ, क्षुद्रोपाय।[6] निघण्टु और निरुक्त में माया का अर्थ 'प्रज्ञा-प्रज्ञान' ही मिलता है।[7]

भारतीय दर्शन परम्परा तथा महात्मा नारायण स्वामी ने माया के मान्य अर्थ को समुचित बोध कराने वाले निम्नलिखित शब्दों को अपने उपनिषद्-भाष्य में स्थान दिया है -

1. अविद्या :- कठोपनिषद् और मुण्डकोपनिषद् में अज्ञान अर्थ में अविद्या शब्द का प्रयोग मिलता है।[8] अनित्य में नित्य का, अशुचि में शुचि का, दुःख में सुख का और अनात्मा में आत्मा का होना अविद्या है।[9] अविद्या क्लेश है।[10]
2. अज्ञान :- गीता की "अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुहयन्ति जन्तवः" इस उक्ति में अज्ञान शब्द का प्रयोग अविद्या या माया के लिए किया गया है। वेदान्तसार में भी सदानन्द ने माया की तरह अज्ञान को सद्-असद् से विलक्षण होने के कारण 'अनिर्वचनीय' कहा है।[11] अज्ञान के अर्थ में माया का प्रयोग इसलिए किया गया है कि अज्ञान ही किसी को ढकता है और जो अपरिमेय को परिमेय और निस्सीम को ससीम बनाता है। अज्ञान के कारण ही वास्तविक वस्तु दूसरे रूप में दिखाई देती है।
3. प्रकृति :- श्वेताश्वतरोपनिषद् में प्रकृति को माया का पर्यायवाची माना गया है। शंकराचार्य ने भी 'ईश्वरस्य माया शक्तिः प्रकृतिः' कह कर प्रकृति को माया का पर्याय माना है।[12]
4. अव्यक्त :- अविद्यात्मिका बीज शक्ति को अव्यक्त शब्द के द्वारा निर्दिष्ट किया गया है।[13]
5. आकाश :- अविद्या के पर्याय अव्यक्त शब्द का निर्देश कही-कही आकाश शब्द के द्वारा भी किया गया है। क्योंकि आकाश प्रपञ्च का हेतु होने के कारण ही अविद्या का पर्याय है।[14]
6. अक्षर :- अक्षर को भी अव्यक्त का पर्यायवाची माना है। 'क्वचिदक्षरशब्दोदितम्' ज्ञान के बिना माया का अन्त न होने के कारण ही अविद्या को अक्षर कहा है।[15]
7. अव्याकृत :- माया अव्याकृत तथा नामरूप बीजशक्ति रूपा है। ईश्वराधीन यह अव्याकृत नामरूप का उपादान कारण है। शंकर ने इसे भी भाया का पर्याय माना है।[16]
8. प्रधान :- प्रधान को माया के अन्य पर्यायवाची शब्दों के साथ परिगणित किया है।[17]
9. अध्यास :- आचार्य शंकर ने 'अध्यासं पण्डिता अविद्येति मन्यन्ते' कह कर अध्यास को अविद्या का पर्यायवाची माना है।[18]

10. शक्ति :- माया का शक्ति के रूप में भी विवेचन प्राप्त होता है। कतिपय ग्रन्थों में माया का उल्लेख परमेश्वर की शक्ति के रूप में किया है।[19]

11. उपाधि :- माया ब्रह्म की उपाधि है। पञ्चदशीकार के अनुसार माया और उपाधि को पर्यायवाची माना है।[20]

अतः प्रकरणभेद से अज्ञान को शास्त्रों में कही पर माया, कहीं कर अविद्या और कहीं पर नामरूप कह कर विभिन्न नामों से अभिहित किया गया है। अज्ञान या माया भारतीय दर्शन का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। अतः अज्ञान का स्वरूप क्या है ? इस विषय पर विचार करना यहाँ अप्रासंगिक नहीं होगा।

"विसदृशप्रतीतिसाधनं माया इति नागोजीभट्टः।
अर्घटनटनपटीयसीमाया इति केचित्। ईश्वरशक्तिस्तस्या नामान्तरम्।
यथा प्रकृतिः, अविद्या, प्रधानम्, अज्ञानम्, शक्तिः, अजा।" [21]

माया अनिर्वचनीय है। माया न तो सत् है, न असत् है। क्योंकि यदि माया को सत् मानें तो चिदात्मा के समान इसका बन्ध कभी नहीं होना चाहिए। परन्तु तत्त्वज्ञान से अज्ञान का नाश होता देखा जाता है। अतः अज्ञान सत् नहीं है। अज्ञान बन्ध्यापुत्र और नरविषाण की तरह असत् भी नहीं है। क्योंकि संसार के मोहपाश में बद्ध प्रत्येक व्यक्ति को 'मैं अज्ञ हूँ' इस प्रकार भान होता है। अतः अज्ञान असत् भी नहीं है। अज्ञान 'सदसद्रूप' भी नहीं है। क्योंकि सद्रूपता और असद्रूपता दानों परस्पर विरुद्ध हैं। अतः अज्ञान अनिर्वचनीय है।

सन्नाप्यसन्नाप्युभयात्मिका नो भिन्नाप्यभिन्नाप्युभयात्मिका नो।
साङ्गाप्यनङ्गाप्युभयात्मिका नो महाद्भूताऽनिर्वचनीयरूपा।।[22]

अतः माया न सत् है, न असत् है, न उभयरूप है, न ब्रह्म से भिन्न है, न अभिन्न है, न उभयात्मक, न अंगसहित, न अंगरहित, न उभयरूप है। यह महाद्भुत और अनिर्वचनीय रूप है।

महात्मा नारायण स्वामी श्वेताश्वतरोपनिषद् में माया को 'देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्' तथा 'अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बहवीः प्रजाः सृजमानां स्वरूपाः'[23] 'देवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया'[24] और 'त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम्"[25] कहकर उसकी त्रिगुणात्मिका का चित्रण किया है।

ज्ञान के द्वारा निर्वर्त्य होना ही माया का लक्षण है। 'तस्याभिध्यानात् योजनात् तत्त्वभावाद् भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः'।[26] यदि माया भावरूप न होती तो इसकी निवृत्ति का प्रश्न ही नहीं उठता। माया को भावरूप कहने का अभिप्राय यह है कि उसे अभाव से विलक्षण बताना। जब तक आत्मा का साक्षात्कार नहीं होता तभी तक अज्ञान तमोरूप और भावरूप है।[27] साक्षात्कार होने पर अज्ञान नष्ट हो जाता है। माया लौकिक दृष्टि से सत् प्रतीत होती है। युक्तिपूर्वक विवेचन करने से अनिर्वचनीय जान पड़ती है और आत्मज्ञान होने पर तुच्छ हो जाती है। वस्तुतः इसका निरूपण असम्भव प्रतीत होता है।

तुच्छा निर्वचनीया च वास्तवी चेत्येपा त्रिधा।
ज्ञेया माया त्रिभिर्बोधः श्रौतयोक्तिकलौकिकैः।।[28]

माया का सद्रूप, असद्रूप अथवा सदसद्रूप से निरूपण करना असम्भव हैं। अतः इसे यत्किञ्चित् कहना ही उपयुक्त है।[29]

मायावाद का सिद्धान्त सूक्ष्म रूप से महात्मा नारायण स्वामी जी के उपनिषद् भाष्यों में मिलता है। इसका बीज वेदों में है। यद्यपि प्राचीन उपनिषदों में 'माया' शब्द का प्रयोग नहीं के बराबर हुआ है, तथापि उसका अन्तर्निहित भाव उनमें सदेव विद्यमान रहा है। छान्दोग्योपनिषद् में 'माया' शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है, परन्तु मायावाद के सिद्धान्त सर्वत्र दृष्टिगोचर होते हैं। छान्दोग्योपनिषद् में प्राप्त अविद्यातत्त्व[30] और बृहदारण्यकोपनिषद् में प्राप्त असत्-तत्त्व[31] को पूर्ववर्ती माया का प्रतिरूप ही माना जा सकता है। शंकरादि विद्वान् अविद्या को माया मानते हैं। जो कार्य विद्या से श्रद्धा से और उपनिषद् से किया जाता है, वहीं कर्म बलवान् होता है।[32]

ब्रह्मप्राप्ति की इच्छा सत्य और प्राकृतिक विषयों की इच्छा अमृत कही जाया करती है। वह सत्य जगत् में अमृत से ढक जाता है। मनुष्य की सच्ची कामनाएं अविद्या तक रखी है। उन सत्य होने वाले मनोरथों का असत्य ढक्कन है। मरने के बाद मनुष्य अपने सगे सम्बन्धियों को देख नहीं पाता है। जबकि वे उस समय परलोक में होते हैं।[33] उपनिषद् में एक जगह कहा गया है कि सत्य का मुख हिरण्यमय पात्र से ढका हुआ है और वहाँ ईश्वर से प्रार्थना की गयी है कि उस आवरण को सत्यता की प्राप्ति के लिए हटा दें।[34] छान्दोग्योपनिषद् में एक दृष्टान्त द्वारा समझाया गया है कि जैसे क्षेत्र का स्वामी क्षेत्र को भली

प्रकार न जानने वाला ऊपर-ऊपर व्यापार करते हुए भी खेत के भीतर गड़ी हुई हिरण्यनिधि को नहीं जानता, इसी प्रकार यह सब प्रजायें प्रतिदिन ब्रह्म को प्राप्त होती हुए भी अमृत से ढकी हुई होने के कारण इस ब्रह्म को प्राप्त नहीं कर सकतीं।[35] निश्चय से सत्य में तीन अक्षर हैं- 'स' अमृत है, 'त' मर्त्य है और 'य' दोनों को जोड़ कर रखता है।[36] इस विषय को दूसरे प्रकार से कह सकते हैं 'स' सत्त्वगुण है, 'त' तमोगुण है और 'च' गति का सूचक रजोगुण है।

विद्वान् उपासक मृत्यु से डरते हुए अमर पद प्राप्ति के लिए ऋक्, यजु, और सामरूपी त्रयी विद्या में प्रविष्ट हुए। उन्होंने अपने आपको छन्दों से आच्छादित कर लिया। जैसे मछलीमार मछली को जल में देख लेता है। इसी प्रकार वहाँ ऋग् यजु और साम में विद्यमान उन देवों को मृत्यु ने देख लिया। शब्दों में वे काल की मार से न बच सकें। वे उपासक देव वहाँ भी मृत्यु का भय जानकर अन्त में त्रयी विद्या से ऊपर उठकर स्वर ओंकार अर्थात् भगवान् की धुन में प्रविष्ट हो गये।[37]

असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्माऽमृतं गमयेति।[38]

यहाँ प्रस्तोता प्रस्ताव करता है कि 'मुझे असत् से सत् की ओर ले चलो। मुझे अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो और मृत्यु से अमृत की ओर ले चलो। यहाँ यह प्रश्न उठता है कि असत् सत, तमस् और प्रकाश से प्रस्तोता का क्या अभिप्राय है? सत् तत्त्व से जीवात्मा परमात्मा और मूल प्रकृति को माना जाता है. कूटस्थ, अपरिणामी, सर्वात्मा ही सत् है। शेष सब कुछ असत् है। असत् से यह अर्थ भी लगाया जा सकता है कि जो अस्तित्व में ही नहीं है या मिथ्या है; परन्तु इसका यह अभिप्राय तो अवश्य है कि असत् सत् से भिन्न नाशवान्, सतत परिवर्तनशील, केवल वाणी से ज्ञातव्य विकार रूप और नाममात्र है।[39] अतः परवर्ती काल में, माया इस तत्त्व की कल्पना भी तो केवल जगत् के पारमार्थिक मिथ्यात्व को सिद्ध करने के लिए ही की गयी थी। अतः माया का अन्तर्निहित भाव जगत् को असत् कहकर ही अभिव्यक्त किया था। ऐसा माना जा सकता है, क्योंकि प्रस्तोता कहता है मुझे असत् से सत् की ओर ले चलो। इस नाशवान् सतत परिवर्तन शील जगत् से जोकि केवल व्यावहारिक रूप से सत्य है अथवा जो अस्तित्व में नहीं है उससे 'सत्' एक मात्र सत्तावान् परम ईश्वर की ओर ले चलो। तमस् रूप इस संसार से अर्थात् जो केवल अज्ञानवश सत्य रूप प्रतीत होता है उससे ज्योतिर्मय परमात्मा की ओर जाना चाहता है। परन्तु अपने कर्मों के वशीभूत होकर मनुष्य पुनः पुनः संसार में जन्मता व मरता है। अतः मुझे जन्म-मृत्यु के चक्र से अमृतत्व अर्थात् जहाँ से मनुष्य एक ही दीर्घावधि तक लौटकर नहीं आता। ऐसे अमरत्व की ओर ले चलो।[40]

इन्द्र और विरोचन समित्पाणि होकर आत्मजिज्ञासा से प्रजापति के पास गये। प्रजापति ने उन्हें 32 वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन करने के लिए कहा।[41] ब्रह्मचर्य की समाप्ति पर प्रजापति ने दोनों से कहा कि जलपात्र में आत्मा को देखो। वे दोनों जलपात्र में शिर से लेकर पैर तक आत्मा का प्रतिरूप देखने लगे। असुरराज विरोचन वस्त्र और अलंकारों से युक्त शरीर को आत्मा जानकर अपने घर लौट गया। परन्तु इन्द्र ने वास्तविक आत्मज्ञान की प्राप्ति हेतु प्रजापति के पास 101 वर्ष तक निवास किया। यह बाह्याडम्बर ही माया है।[42] नारद सभी विद्याओं के ज्ञाता थे। नारद से कोई विद्या अपरिचित नहीं थी। फिर भी नारद दुःखी हैं। अपने गुरु सनत्कुमार के पास जाते हैं और उपदेश हेतु प्रार्थना करते हैं। नारद केवल मन्त्रवित् हैं। आत्मवित् नहीं हैं। शब्दशास्त्र के मायाजाल में फंसे हैं। वास्तविक आत्मज्ञान के कोसों दूर हैं।[43] सनत्कुमार नारद से कहते हैं हुए 'भूमा में ही सुख है। तुम माया के चक्र में मत फंसो। अपने हृदय को विशाल करो। हृदय की विशालता में ही सुख है। भूमा को पहिचानो।[44]

आचार्य शंकर प्रकृति को 'अजा'[45] 'अक्षर'[46] 'अविनाशी' 'नित्य'[47] 'माया' आदि विभिन्न नामों से अभिहित किया गया है। भगवद्गीता में प्रकृति को 'महद्ब्रह्म' कहा गया है।[48] दामोदर सातवलेकर के अनुसार "सब विश्व का पालक एक ईश्वर है, उस ईश्वर की एक प्रकृति है, उसको 'महद्ब्रह्म' कहते हैं। यह शक्ति अनन्त है। अपरंपार अथाह शक्ति होनेसे इसको 'महत्-ब्रह्म' कहते है"।[49] महत् का अर्थ होता है - विशाल, विस्तृत। अतः महत्-ब्रह्म का अर्थ हुआ 'विशाल विस्तृत शक्ति'। यह ईश्वर की ही शक्ति है। जिस प्रकार ईश्वर महान् है, उसी प्रकार उसकी शक्ति भी महान है। यही ईश्वरीय महती प्रकृति ही सब स्थिर-चर का उत्पत्तिस्थान है। इसी से समस्त भूत उत्पन्न होते हैं और अन्त में इसी में विलीन हो जाते हैं। ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो इस प्रकृति से उत्पन्न न हुई हो अर्थात् स्थिर, चर, मूर्त, अमूर्त तथा सृष्टि के अन्तर्गत सब पदार्थ इसी ईश्वरीय प्रकृति से उत्पन्न हुए हैं। ईश्वर बीजप्रदः पिता अर्थात् गर्भाधान करने वाला है तथा यह प्रकृति गर्भ का धारण-पोषण करके प्रसव करनेवाली- ब्रह्म महद्-योनि अर्थात् 'माता' है। इस प्रकृति की योनि में ईश्वर का वीर्य जाता है, वहां उससे गर्भधारणा होती है और सृष्टि के सब चल-अचल, सजीव-निर्जीव पदार्थ बनते हैं। संपूर्ण भूतों की उत्पत्ति इसी तरह होती है।

श्रीमद्भगवद्गीता के शांकर भाष्य में दो प्रकार की प्रकृति का वर्णन है 'अष्टधा-अपराप्रकृति' तथा 'जीवभूत-पराप्रकृति'। पञ्चमहाभूत, बुद्धि, अहंकाररूप जो अष्टधा प्रकृति का वर्णन है, वह अपरा प्रकृति है। यह कनिष्ठ, गौण, क्षर अथवा स्थूल

प्रकृति है। यहाँ कनिष्ठ शब्द का प्रयोग प्रकृति के हीनत्व का दर्शक नहीं है, प्रत्युत दूसरे की अपेक्षा इसकी गौणता बताई है। अब इस गौण अर्थात् गुण-मयी किंवा त्रिगुणमयी प्रकृति के उपरान्त परा प्रकृति पर विचार करते हैं।

परमतत्त्व की द्वितीय प्रकृति परा-प्रकृति है। जिसको 'जीव' भी कहते हैं।[50] इस जगत् का जीवरूप विभाग परमात्मा की परा प्रकृति है। मनुष्य, पशु-पक्षी, जल-जन्तु, उद्भिज-स्वेदज-अण्डजादि प्रत्यक्ष जीव-जगत् है। इनमें इच्छा-देष, सुख-दुःख तथा प्रयत्न का अनुभव प्रत्यक्ष रूप से होता है। वृक्षादि में भी जीव है[51], परन्तु वह स्वप्नस्थितिमें रहने के समान अर्ध-निद्रित अवस्थामें है। पशु-सृष्टि में वह किंचित् जाग्रत है और मानव-सृष्टि में वह अत्यंत जाग्रत है। यही स्थावर-सृष्टि में पूर्ण सुप्तावस्था में है। यह जो जीवसृष्टि है वह परमेश्वरकी श्रेष्ठ प्रकृति है, मनुष्य-शरीर की जीवन-कला भी इसी का अंश है। परमेश्वरकी इस जीव-रूपा पराप्रकृति को विशाल सागर मान लेने से मनुष्य की जीवन-कला उसकी एक बूंद मात्र ही है। इस दृष्टि से भी मानवीय जीवन-कला परमात्मा का प्रचंड जीव-रूप प्रकृति का एक विभाग मात्र है। इस जीवन-शक्ति से इस जगत् की धारणा होती है।[52] जगत् के अन्दर जो अनंत पदार्थ विद्यमान हैं वे इसी जीवन-शक्ति से अपने अपने स्थान में धारण किये गये हैं। अर्थात् जीव-सृष्टि तथा निर्जीव सृष्टि दोनों इस जीवन शक्ति का आधार है। इस जीवन-शक्ति के आधार पर ही यह सब जगत् चल रहा है। यह अपरा और परा प्रकृति मिलकर परमेश्वर की प्रकृति बनती है। इस प्रकार ईश्वर तथा प्रकृति अर्थात् जीवशक्ति+स्थूलभूत के मेल से संपूर्ण जगत् का निर्माण होता है, इसलिये गीता कहती है कि - अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा[53]

मानवीय शरीर स्थूल, जीवन-कला तथा आत्मा आत्मा से युक्त है। आत्मा स्वसामर्थ्य से शरीर के अन्दर का समस्त कार्य करती है अथवा चलाती है। इसी तरह ईश्वर अपनी शक्ति के द्वारा जीवतत्त्व-शक्ति तथा क्षर-प्रकृति में कार्य करता है, जिसके कारण इस समस्त जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय होते रहते हैं।

अष्टधा अपरा प्रकृति, जीवभूत परा प्रकृति तथा ईश्वर इन तीनों तत्त्वों में ईश्वरीय शक्ति ही श्रेष्ठ है। गीता कहती है कि - इससे और परे अथवा इससे और अधिक श्रेष्ठ उच्च, कुछ भी नहीं है।[54]

दामोदर सातवलेकर के अनुसार "जो कुछ सबसे श्रेष्ठ है, जो कुछ भी परात्पर है, वही पुरुषोत्तम है। वही अन्तिम प्राप्तव्य है। वहां पहुंचने पर आगे चलने की कोई आवश्यकता नहीं रहती क्योंकि इसके आगे और कुछ भी नहीं है। इसलिये बारबार कहा जाता है कि यहाँ पहुंचने पर गति कुंठित हो जाती है। गति कुंठित होने का अर्थ यही है कि यहाँ प्रगति की समाप्ति हो जाती है।"[55]

'अपराप्रकृति' तथा 'पराप्रकृति' परमपिता परमेश्वर की प्रकृति अर्थात् ईश्वरीय शरीर बनता है। जैसे अपने शरीर में स्थूल शरीर और जीवनतत्त्व ये दो विभाग हैं वैसे ही परमेश्वर के इस विराट् शरीर में अपरा और परा प्रकृति ये दो विभाग हैं। मानवीय शरीर के उक्त दोनों विभाग परमेश्वर के विराट् शरीर के अंश हैं अर्थात् हम सब प्राणी परमेश्वर के शरीर के सूक्ष्म अंश हैं। जैसे हमारे शरीर में सूक्ष्म कीटाणु होते हैं, वे हमारे शरीर के अंश होते हुए भी स्वतन्त्रतया जीते मरते रहते हैं, उनके जीने और मरने से हमारे अखंड जीवन में कोई न्यूनाधिकता नहीं होती, उसी प्रकार हम सब जीव-सब प्राणियों के शरीर परमेश्वर के विराट् देह में कीटाणुओं के समान हैं और हमारे मरने और जन्म लेने से उनके अखण्डानन्द जीवन में कोई न्यूनाधिकता नहीं होती। अतः हम अपने क्षुद्र जीवन का अभिमान न करते हुए, किंवा क्षुद्र जीवन के अभिमान से अपने आपको क्षुद्र न बनाते हुए, यदि अपने आपको परमात्मा के अखंडानन्द जीवन का अंश अनुभव करने लगेंगे, तो हम यावत्जीवनअखंण्डानन्द के भागी हो सकते हैं।[56]

इस सृष्टि में मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, जल-चर, स्थल-चर, खे-चर, वृक्ष-वनस्पति आदि अनन्त योनियां है। प्रत्येक जाति में अनन्त उपजातियां हैं। जिनकी गणना नहीं की जा सकती। प्रत्येक योनि में उत्पन्न पदार्थों का स्वभाविक-धर्म भी भिन्न-भिन्न होता है। ऐसे ही अनन्त योनियों में उत्पन्न अनन्त मूर्तियों की महायोनि यह परमात्मतत्त्व की प्रकृति ही है और परमात्मतत्त्व ही इस प्रकृति में उन सबका बीज डालता है। जिससे सब सृष्टिमें दीखनेवाली मणियां उत्पन्न होती हैं। समस्त दर्शानिकों के समान सातवलेकर भी सत्त्व, रज, तम की साम्यावस्था को प्रकृति तथा वैषम्यावस्था को विकृति मानते है।[57] प्रकृति तथा विकृति में मात्र साम्य तथा वैषम्य का भेद ही है। जगत् के स्वरूप तथा कारण विषयक अवस्था पर भारतीय दर्शन शास्त्र में बहुशः विचार प्राप्त होते हैं। कुछ दार्शनिकों के मतानुसार यह जगत् स्वरूप सत्य है तथा इसका मूल कारण प्रकृति है। आचार्य शंकर तथा उनकी अद्वैत् परम्परा में जगत् मिथ्यारूप है तथा अविद्या इसका कारण है। आचार्य रामानुजाचार्य मतानुसार यह जगत् सत्य है।

समान्यतः समस्त जीवों के शरीर, इन्द्रियाँ, प्राण तथा भोग्य वस्तुएँ और भोगस्थानमय इस सम्पूर्ण व्यक्त प्रकृति की संज्ञा जगत् है। यह जगद्-रूप जड़तत्त्व चेतन तत्त्व से व्याप्त है, क्योंकि चेतन तत्त्व अन्य भौतिक पदार्थों की अपेक्षा श्रेष्ठ और सूक्ष्म है। चेतन तत्त्व के अभाव में इस जगत् का उत्पन्न, विकास और धारित होना सम्भव नहीं है। तात्पर्य यह है कि तत्त्वतः ईश्वर जगत् की उत्पत्ति और प्रलय का कारण है इसके परतर कोई तत्त्व नहीं है। अनन्त ब्रह्माण्ड के रूप में प्रकाशित प्रकृति और पुरुष उसी तात्विक ईश्वर की परा - अपरा प्रकृतियाँ है। यह अपरा प्रकृति जड़ है और परा प्रकृति चेतन, इन दोनों जड़-चेतन के संयोग से जगत् की उत्पत्ति हुई है। गीता में उल्लिखित है कि जिस प्रकार मणियाँ गुँथी होती हैं, यह ब्रह्माण्ड भी ईश्वर में उसी प्रकार गुँथा हुआ है।[58] इस जगत् की सभी जड़ और चेतन वस्तुएँ उसी ईश्वर (ब्रह्म) का स्वरूप हैं, जो जगत् की निमिन्त और उपादान कारण है। साधारणतः प्रश्न उठता है कि एक ईश्वर को जगत् का उपादान कारण और निमित्त कारण कैसे स्वीकार किया जाय ? अद्वैत वेदान्त में वर्णित है कि सांसारिक या व्यावहारिक दृष्टि से जिसको हम घट कहते हैं, वह वस्तुतः मिट्टी की रूपान्तर है, उपाधि है। इसलिए (घट) का सम्बन्ध रुप से है, मिट्टी से नहीं। इस 'घट' रुप का उपादान कुम्हार की बुद्धि है, क्योंकि संसार के जितने भी रुप हैं, वे सभी काल्पनिक या मानसिक होते हैं। माया (प्रकृति), जो ब्रह्म की कल्पना बुद्धि या इच्छा है, इस स्थूल जगत् का निश्चित उपादान है। इसलिए माया के माध्यम से ब्रह्म ही विश्व का उपादान सिद्ध है। शंकराचार्य ने कहा है कि जिस प्रकार सोने से बना आभूषण सोना ही होता है, उसी प्रकार ब्रह्म से उत्पन्न जगत् निश्चित ही ब्रह्म है।[59] जगत् परिवर्तनशीलता का रहस्य भले ही अत्यन्त गूढ़ हो, किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से उसका लोक प्रचलन हमारे दैनिक जीवन में सदैव उपस्थित है।

संदर्भ

1 गोविन्द गोपाल मुखोपाध्याय, स्टडीज इन द उपनिषद्स, पृ. 83, (कलकत्ता) 1960
2 शब्द कल्पद्रुम, तृतीय काण्ड, पृ0 602
3 उणादिकोष 4/109
4 वामन शिवराम आप्टे, संस्कृत हिन्दी कोप, पृ0 795 (बनारस 1969)
5 अमरकोष - 2/10/19
6 सेन्टपीटर्सबर्ग, डिक्शनरी, पृ0 - 731
7 निघण्टु - 03/09
8 कठोपनिषद् 1/2/5 तथा मुण्डकोपनिषद् - 02/01/10
9 योगदर्शन - 02/05
10 योगदर्शन - 02/03
11 अज्ञानन्तु सदसद्भ्यामनिर्वचनीयं त्रिगुणात्मकं ज्ञानविरोधीभावरूपं यत्किञ्चदिति वदन्त्यहमतित्यनुभवात्द्ध वेदान्तसार - 07
12 शांकरभाष्य ब्रह्मसूत्र 2/1/14
13 तत्रैव - 01/04/03
14 तत्रैव
15 तत्रैव
16 तत्रैव - 01/02/22
17 तत्रैव - 01/01/22
18 तत्रैव - 01/01/01
19 तत्रैव - 01/04/03
20 पञ्चदशी - 7/27
21 शब्दकल्पद्रुम, तृतीय काण्ड पृ0 - 702
22 शंकराचार्य, विवेकचूडामणि
23 श्वेताश्वतरोपनिषद् 1/3 तथा 4/5
24 गीता 7/14
25 छान्दोग्योपनिषद् 6/4/1
26 श्वेताश्वतरोपनिषद् 1/10

27 विद्यारण्यमुनि पञ्चदशी 6/125
28 विद्यारण्यमुनि पञ्चदशी, 6/130
29 डा0 मनुदेव बन्धु- बृहदारण्यकोपनिषद् - एक अध्ययन, चतुर्थ अध्याय
30 नाना तु विद्या चाविद्या चा।। छां. उप. 1/1/10
31 असतो मा सद्गमय। बृहदा. उप. 1/3/28
32 यदेव विद्यया करोति श्रद्धयोपनिषदा तदेव वीर्यवत्तरं भवतीतिष छान्दोग्योपनिषद् - 1/1/10
33 त इमे सत्याः कामाः अनृतापिधानास्तेषां सत्यानां सतामनृतमपिधानं यो यो हास्येत : प्रैति न तमिह दर्शनाय लभते।। छान्दोग्योपनिषद् 8/3/1
34 हिरण्यमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम। तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टयेष ईशोपनिषद् मन्त्र 15
35 तद्यथापि हिरण्यनिधि निहितमक्षेत्रज्ञा उपर्युपरिसञ्चरन्तो न विन्देयुरेवमेवेमा : सर्वाः प्रजा अहरहर्गच्छन्त्य एतं ब्रह्मलोकं न विन्दन्त्यनृतेन हि प्रत्यूढाः ।। छा0उ0 - 8/3/2
36 तानि ह वा एतानि त्रीग्यक्षराणि सतियमिति तद्यत्सत्तदमृतमथ यन्ति तन्मर्त्यमथ यद्यं तेनोभे यच्छति।। - छांदोग्योपनिषद् 8/3/5
37 देवा वै मृत्योर्विभ्यतस्त्रयीं विद्यां प्राविशन। छन्दोभिराच्छादयन। यदेभिराच्छादयस्तच्छन्दसां छन्दस्त्वम्।। छा0उप0 - 1/4/2 तथा तत्रैव - 01/04/03
38 बृहदारण्यकोपनिषद 1/3/28
39 पी.डी.देवानन्दन द कान्सेप्ट आफ माया, पृष्ट 58-59 (कलकता 1954)
40 डा मनुदेव बन्धु, बृहदारण्यकोपनिषद् - एक अध्ययन, चतुर्थ अध्याय
41 छान्दोग्योपनिषद् 8/7/2-3
42 छान्दोग्योपनिषद् 08/08/01
43 तत्रैव तथा सप्तम प्रपाठक सम्पूर्ण
44 छान्दोग्योपनिषद् 7/23/1
45 श्वेताश्वेतरोपनिषद् शांकरभाष्य - 04/05
46 श्वेताश्वेतरोपनिषद् शांकरभाष्य - 01/07
47 श्वेताश्वेतरोपनिषद् - 04/10
48 श्रीमद्भगवद्गीता शांकरभाष्यख्र 14/03
49 श्रीमद्भगवद्गीता शांकरभाष्य, पृष्ठ - 72
50 श्रीमद्भगवद्गीता शांकरभाष्यख्र 07/05
51 श्रीमद्भगवद्गीता शांकरभाष्य, पृष्ठ - 168
52 श्रीमद्भगवद्गीता शांकरभाष्यख्र 07/05
53 श्रीमद्भगवद्गीता शांकरभाष्यख्र 07/06
54 श्रीमद्भगवद्गीता शांकरभाष्यख्र 07/07
55 श्रीमद्भगवद्गीता पुरुषार्थबोधिनी टीका, पृष्ठ - 469
56 श्रीमद्भगवद्गीता शांकरभाष्य, पृष्ठ - 469
57 श्रीमद्भगवद्गीता शांकरभाष्य, पृष्ठ - 468
58 श्रीमद्भगवद्गीता - 7/6-7
59 वाचस्पति गैरोला, भारतीय दर्शन, पृष्ठ - 388

हिन्दू पुनरूत्थान और राष्ट्रीय जागरण -भारतीय ज्ञान परम्परा की अवरिल धारा

डॉ० बरुण कुमार

असिस्टेंट प्रोफेसर, आर्यभट्ट टिचर्स ट्रेनिंग कॉलेज, रकसिया, पटना

शोध आलेख का सार तत्वः-

भारत में हिन्दू पुनरूत्थान का राष्ट्रीय आंदोलन के इतिहास में विशेष महत्व है। अंग्रेजी शासन के दिनों में भारतीय समाज पर औपनिवेशिक आधुनिकीकरण का प्रभाव पड़ा तथा पाश्चात्य विचारधारा एवं विदेशी शासन ने भारतीय चिंतन और संस्कृति पर सकारात्मक प्रभाव डाला। पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित लोगों ने हिन्दू सामाजिक रचना, धर्म, रीति रिवाज और परम्पराओं के तर्क की कसौटी पर परखना शुरू किया। भारत में ब्रिटिश सत्ता की स्थापना के बाद जहाँ एक तरफ भारतीय जनमानस पाश्चात्य संस्कृति के संपर्क में आया, वहीं दूसरी तरफ हिन्दू पुनरूत्थानवाद की पृष्ठभूमि में राष्ट्रीय जागरण की शुरूआत हुई। हिन्दू पुनरूत्थानवाद का मुख्य उद्देश्य हिन्दू धर्म और समाज के यश-गौरव को अभिव्यक्त करना और हिंदू धर्म तथा समाज पर लगाये हुए आरोपों एवं दोषों का निराकरण कर उसकी समीक्षा करना एवं राष्ट्रीय जागरण पैदा करना था। इसी के फलस्वरूप 19वीं-20वीं सदी में भारत में सामाजिक और धार्मिक आंदोलन का जन्म हुआ।

मुख्य शब्दः- हिन्दू पुनरूत्थान, राष्ट्रीय जागरण, सामाजिक धार्मिक आन्दोलन, दलित आंदोलन, नारी उत्थान राष्ट्रीय आंदोलन, प्रबुद्ध वर्ग, अंग्रेजी शिक्षा।

प्रस्तावनाः-

भारतीय इतिहास की प्रमुख विशेषता थी। इस दौरान जहाँ एक ओर हिन्दू समाज में धार्मिक एवं सामाजिक सुधारों का आह्वान किया वहीं दूसरी ओर इसने भारत के अतीत को उजागर कर भारतीयों के मन में आत्मगौरव की भावना जगाने की कोशिश की। इसने एक राष्ट्रीय जागरण को उत्प्रेरित किया, जिसने राष्ट्र के विकास की माँग के साथ-साथ धर्म, समाज और संस्कृति में आवश्यक परिवर्त्तन किये। इसमें बंगाल का ब्रह्मसमाज, बम्बई का प्रार्थना समाज, स्वामी दयानंद सरस्वती का आर्य समाज, विवेकानंद का रामकृष्ण मिशन, मद्रास का थियोसोफीकल सोसाइटी, आचार्य श्री राम शर्मा के गायत्री परिवार आदि की भूमिका काफी महत्वपूर्ण थी।

अध्ययन का उद्देश्यः-

प्रस्तुत शोध आलेख, 'भारत में हिन्दू पुनरूत्थान और राष्ट्रीय जागरण' आधुनिक भारतीय इतिहास में सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक जागरण पर आधारित है। इस शोध आलेख का मुख्य उद्देश्य हिन्दू पुनरूत्थान की प्रकृति को समझते हुए भारत के गौरवशाली अतीत का अध्ययन करना है। इसने कैसे राष्ट्रीय जागरण को प्रभावित किया उसे भी रेखांकित करना है।

विश्लेषणः-

18वीं सदी के मध्य में भारत में अंग्रेजों ने भारत की राजनीतिक निर्बलता के कारण अपनी सत्ता की स्थापना करने में सफलता प्राप्त की। (लुणिया, 2015)[1] अंग्रेजों की राजनैतिक गतिविधियों, प्रशासनिक व्यवस्थाओं तथा आर्थिक शोषण के साथ-साथ भारत के जन-जीवन में तमाम आधुनिक विचारों एवं ज्ञान का भी प्रवेश हुआ। (शुक्ल,1987)[2] इसके परिणामस्वरूप धार्मिक संस्कृति तथा पश्चिम की नयी आक्रामक वैज्ञानिक तथा वाणिज्यवादी सभ्यता के बीच संघर्ष तथा भारत के बौद्धिक पुनर्जागरण में हिन्दू पुनरूत्थान की जिज्ञासा उत्पन्न हुई। इसने सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, साहित्यिक, राजनीतिक आदि क्षेत्रों में भारतीयों को प्रभावित करना शुरू कर दिया। इसने भारतीयों में अतीत के गौरवपूर्ण उपलब्धियों पर गौरव करने का मौका प्रदान किया।

19वीं सदी के भारत में हिन्दू पुनरूत्थान में अनेकों समाज सुधारकों जैसे राजा राम मोहन राय, दयानंद सरस्वती, मदन मोहन मालवीय, श्रीराम शर्मा आचार्य आदि की भूमिका काफी उल्लेखनीय रही। इसमें कई संगठनों जैसे ब्रह्म समाज, आर्य समाज, राम कृष्ण मिशन, गायत्री परिवार आदि की भूमिका भी काफी महत्वपूर्ण रही। हिन्दू पुनरूत्थान वालों का मानना था कि वास्तविक प्रगति धार्मिक शिक्षा का विरोध करके नहीं, अपितु उस शिक्षा का अधिक दृढ़ता से पालन करके प्राप्त किया जा सकता है। (मिश्र शशिकांत,1992)[3]

भारत में हिन्दू पुनरूत्थान की शुरूआत करने का श्रेय राजा राम मोहन राय को जाता है। इसीलिए उन्हें भारतीय पुर्नजागरण का अग्रदूत कहा जाता है। इनका मानना था कि भले ही अंग्रेजी सत्ता विदेशी है परंतु इसी की क्षत्रछाया में भारतीयों का भी भला होगा।(नेटसन,1925)[4] अंग्रेजी शिक्षा पद्धति, तर्क की प्रधानता आदि से भारतीयों में आधुनिक राजनैतिक चेतना विकसित होगी जो आगे चलकर स्वतंत्रता आंदोलन की रीढ़ साबित होगी। ये अपने धार्मिक, दार्शनिक और सामाजिक दृष्टिकोण में ईस्लाम के एकेश्वरवाद और मूर्तिपूजा विरोध, सूफीमत के रहस्यवाद, इसाई धर्म की आचारशास्त्रीय नीतिपरक शिक्षा और पश्चिम के आधुनिक देशों के उदारवादी बुनियादी सिद्धांतों से काफी प्रभावित थे। (देसाई, 2014)[5] ये पहले भारतीय ये जिन्होंने भारतीय धर्म में व्याप्त आडंबरों का विरोध किया। 1928 ई० में उन्होंने ब्रह्म समाज की स्थापना की। (सिंह अयोध्या,1977)[6] ब्रह्म समाज के कार्यों से हिन्दू धर्म में हिन्दुओं का विश्वास बढ़ा, एक बार पुन: उन्हें धर्म के सच्चे रूप से साक्षात्कार का मौका मिला।

राज राम मोहन राय का मानना था कि प्रेस के माध्यम से जनता अपनी समस्या को सरकार के समक्ष आसानी से प्रस्तुत कर सकती है।(दत्र, 1964)7 ये पहले समाज सुधारक हुए जिन्होंने समाज सुधार के कार्यों को राजनीतिक जागृति के साथ जोड़ा। (कॉलेट,1967)[8] जाति प्रथा तथा अनेक धार्मिक विधियों और संस्कारों की संकीर्णता ने राजनीतिक एकता को कमजोर कर दिया है। अत: आवश्यकता इस बात की है कि हिन्दू समाज में सुधार इस प्रकार किया जाए कि वे अपने राजनीतिक महत्व को समझ सकें। (बंदोपाध्याय, 2011)[9]

भारतीय इतिहास में हिन्दू पुनरूत्थान के पुरोधा के रूप में स्वामी दयानंद सरस्वती का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। वे हिन्दू धर्म में प्याप्त बुराइयों जैसे, बहुदेववाद, मूर्तिपूजा, जाति-प्रथा, छुआ-छूत दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा की निंदा करते थे। उन्होंने कहा था कि ''कोई कितना ही कहे, परंतु स्वदेशी राज्य ही सर्वोपरी होता है। (सिंह,1977)[10] ए० आर० देसाई लिखते हैं कि ''आर्य समाज भारतीय राष्ट्रवाद के पहले उफान का परिचायक था लेकिन यह भिन्न तरह का आंदोलन था। इससे पुरानी प्रवृतियों को पुनरूज्जीवित करने के बात पर विशेष जोर दिया गया। इसके अनुसार वेद भयातीत और अमोध हैं और भूत, वर्त्तमान और अतीत के सारे ज्ञान के अविरल श्रोत हैं'' (स्वामी,1966)[11] दयानंद सरस्वती एवं आर्य समाज ने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के विभिन्न धटकों पर महत्वपूर्ण नेतृत्व प्रदान किया। उन्होंने ने अपने आप को देश के बलिदानी बलिदेवी को समर्पित किया। इनके विचार भारतीय जनमानस में आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास की भावना प्रसारित कर रही थी। उन्होंने नैतिकता और धार्मिकता के आधार पर सभी स्त्री-पुरुष, शूद्र के लिए शिक्षा देने का प्रयास किया। (विद्यावचस्पति, 1957)[12]

19वीं शताब्दी में भारत के सामाजिक एवं धार्मिक सुधार के प्रमुख पुरोधा के रूप में विवेकानंद का नाम आदर से लिया जाता है। शिकागो सर्व-धर्म सम्मेलन के पहले तक पश्चिमी राष्ट्र हिन्दू धर्म को अंधविश्वास, नैतिक, रूढ़ीवादिता तथा सामाजिक कुरूतियों का प्रयोग स्थली मानते थे। विवेकानंद व्याख्यानों के द्वारा उन्हें हिन्दू धर्म के उदात्त सिद्धांतों से परिचय करवाया, जिससे हिन्दू धर्म के प्रति उनका हृदय परिवर्त्तन हुआ। शिकागो सर्व-धर्म सम्मेलन पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए 'द न्यूयार्क हेराल्ड' ने लिखा था कि '' इनके प्रवचन सुनने के बाद हमें अनुभव होता है कि उन सरीखे विद्वान देश में ईसाई प्रचारक भेजना कितनी बड़ी मूर्खता है।''(यादव, 2013)[13] स्वामी विवेकानन्द ने राष्ट्रवाद के निर्मिक, संगठित और स्वावलम्बी मूल्यों को स्थापित किया। उन्होंने हिन्दू सभ्यता और संस्कृति को सबसे प्राचीन, श्रेष्ठ और सुन्दर प्रमाणिक कर ईस्लाम और ईसाई धर्म के प्रहार से रक्षा की। वे संपूर्ण संसार में हिन्दू धर्म और आध्यात्यवादी की श्रेष्ठता को स्थापित किया। (मिश्र, 1992)[14]

भारत के हिन्दू पुनरूत्थान में बाल गंगाधर तिलक का योगदान अद्वितीय रहा है। उनका राष्ट्रवाद परिचमी सभ्यता को ललकारा तथा भारतवर्ष के संस्कृति को नवजागृत करने की कोशिश की। ये राष्ट्र में आध्यात्मिक शक्ति और नैतिक उत्थान उत्पन्न करने के लिए वेदों तथा गीता के संदेशों को जनता के समक्ष रखना चाहते थे। उनका राष्ट्रधर्म था-पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति से मुक्ति पाना। उन्होंने 'गणपति पूजा' और 'शिवाजी उत्सव' सार्वजनिक हिन्दू कार्यक्रम शुरू किये, ताकि राष्ट्रीय

आंदोलन को ऐतिहासिक परंपराओं से जोड़ा जा सके। (केलकर, 1928)[15] तिलक ने राष्ट्रीय आंदोलन में लोगों को एकताबद्ध करने के लिए स्वराज्य के लक्ष्य की विवेचना धार्मिक अर्थों की ओर आह्वान किया कि स्वराज्य हमारी धार्मिक आवश्यकता तथा जन्मसिद्ध अधिकार है।

बाल गंगाधर तिलक का मुख्य उद्देश्य राष्ट्रीय जीवन में एक नया उभार उत्पन्न करना था। वे सामाजिक सुधारों को उचित सामाजिक शिक्षण के माध्यम से क्रियान्वित करना चाहते थे। उनका मानना था कि पुराने शास्त्री तथा पंडित नवीन परिस्थितियों से उसी प्रकार अपरिचित है जिस प्रकार से नवीन शिक्षा प्राप्त सुधारक हिन्दू धर्म की परंपराओं एवं दर्शन से। (नेहरू, 1942)[16] उनके अनुसार ''सच्चा राष्ट्रवादी पुरानी नींव पर आधारित होना चाहिए।

आधुनिक भारतीय इतिहास में हिन्दू पुनरूत्थान में पं० मदन मोहन मालवीय का योगदान भी अद्वितीय रहा है। मालवीय हिन्दू समाज की सुदृढ़ता तथा पुर्नस्थापना के कई सकारात्मक प्रयास किये तथा ईसाई मिशनरियों के क्रियाकलापों का विरोध किया। (मालवीय,1962)[17] उनके अनुसार राष्ट्रीय जागरण का वास्तविक अर्थ सभी भारतीयों के सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक हितों की रक्षा करना था। वे कहते थे कि सब संप्रदाय के लोगों को एक महान राष्ट्र के रूप में संयुक्त करने के लिए आवश्यक है कि देशभक्ति तथा भाईचारे की भावनाओं का परिवर्द्धन किया जाए। उनके विचार में राष्ट्रीयता धर्म से ऊपर है। ये एक ऐसी संस्था की नींव रखना चाहते थे, जिसमें हिन्दू धर्म विश्व पटल पर गौरवान्वित हो। दूसरों को यह बता सके कि हिन्दू धर्म ही सभी धर्मों का मार्गदर्शक है। उन्होंने स्वदेशी आंदोलन का समर्थन किया तथा कहा कि स्वावलंबन और आत्मनिर्भरता के लिए स्वदेशी जरूरी है। उन्होंने 1916 ई० में बनारस में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना कर हिन्दू पुनरूत्थान पर विशेष योगदान दिया।

भारत में हिन्दू पुनरूत्थान में आचार्य श्रीराम शर्मा का योगदान भी अद्वितीय रहा है। इन्होंने जीवनपर्यंत हिन्दू पुनरूत्थान के लिए प्रयासरत रहे। इनके द्वारा 1971 ई० में हरिद्वार में शांति कुंज की स्थापना की। यह हरिद्वार में गायत्री तीर्थ के रूप में जाना जाता है। यहाँ से भारत ही नहीं अपितु पुरे विश्व में हिन्दू पुनरूत्थान का प्रयास किया जाता है। इसका मुख्य उद्देश्य भारतीय संस्कृति की प्राचीन परंपरा को पुनर्जीवित करना और गायत्री परिवार के मुख्यालय के रूप में आध्यात्मिक जागृति लाने के लिए कार्य करना है।

परिकल्पना:-

शोध आलेख में परिकल्पना का बहुत ही महत्व होता है। वस्तुत: इसी परिप्रेक्ष्य में शोध कार्य को सम्पन्न किया जाता है। इस शोध आलेख में निम्न परिकल्पना अपेक्षित है:-

(i) हिन्दू पुनरूत्थान का वास्तविक तात्पर्य क्या है?

(ii) हिन्दू पुनरूत्थान ने राष्ट्रीय जागरण को कैसे संबल प्रदान किया?

(iii) हिन्दू पुनरूत्थान में किन-किन सामाजिक सुधारकों की भूमिका रही है?

साहित्य सर्वेक्षण:-

शोध आलेख में साहित्य सर्वेक्षण से क्षेत्र की सीमा निर्धारण में सहायता मिलती है तथा प्रस्तुत अध्ययन के मौलिक तथा अद्वितीय बनाने में महत्वपूर्ण रूप-रेखा तैयार करती है।

लुणिया, बी०एन०, आधुनिक भारत जन-जीवन और संस्कृति, कमल प्रकाशन, इंदौर, 2015, प्रस्तुत पुस्तक में लेखन ने ब्रिटिश औपनिवेशवादी नीतियों का आकलन करते हुए इसके प्रभाव से भारतीय समाज और धर्म के उद्वेलन, सामाजिक और सांस्कृतिक नवचेना और जागरण तथा पुनर्जागरण की प्रवृति और लक्षण, धार्मिक तथा सामाजिक आंदोलनों और सुधारों का समीक्षात्मक विवेचन किया है। साथ ही साथ आधुनिक भारतीय इतिहास के जन-जीवन और संस्कृति को लेखन ने बड़े ही रोचक ढंग से रेखांकित किया है।

शोध प्रविधि:-

प्रस्तुत शोध के सूक्ष्म अध्ययन और उद्देश्य से स्पष्ट है कि शोध विषय की प्रविधि वर्णनात्मक तथा विश्लेषणात्मक है जो मुख्यत: ऐतिहासिक शोध पद्धति के अंतर्गत आते हैं। इसमें आधुनिक भारत में हिन्दू पुनरूत्थान तथा उसके प्रतिफल के रूप में राष्ट्रीय जागरण को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

निष्कर्ष-

19वीं एवं 20वीं शताब्दियों में हिन्दू पुनरूत्थान प्रक्रिया का जो विकास हुआ उससे राष्ट्रीय जागरण को मजबूती मिली। इसने हिन्दू धर्म, हिन्दू संस्कृति और राष्ट्रीय जागरण को परिभाषित करने का असाधारण प्रयास किया। इस समय आधुनिक संस्कृति का प्रभाव और विदेशी शक्तियों द्वारा पराजित होने के चलते लोगों में नई जागृति पैदा हुई। इसका प्रभाव भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के राष्ट्रीय जागरण के प्रत्येक क्षेत्र में पड़ा। साथ-ही-साथ मध्ययुगीन सामाजिक और धार्मिक दृष्टिकोण के सिद्धान्तों का परिशोधन भी किया तथा राष्ट्रीय जागरण के प्रत्येक पहलु में विद्यमान स्वतंत्रता, समानता और आत्मनिर्णय के सिद्धांत का प्रतिपादन किया। हिन्दू पुनरूत्थान की पृष्ठभूमि में राष्ट्रीय जागरण को दर्शाने वाले पुरोधाओं में देवेन्द्र नाथ ठाकुर, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर थियोसोफिकल सोसाइटी एवं शांतिकुंज के सराहनीय कार्य अतुलनीय है। अतः कहा जा सकता है कि तत्कालीन भारतीय राजनीति का मुख्य केन्द्र बिन्दु हिन्दू पुनरूत्थान की वैचारिक प्रवृतियों से प्रभावित रही और पूरे भारतीय राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम में राष्ट्रीय परम्पराओं, मूल्यों और भावनाओं को प्रेरित करता रहा। इसी के कारण पुरे हिन्दू समाज में राष्ट्रीय जागरण की जो प्रवृति विकसित हुई वही राष्ट्रीय आंदोलन की पृष्ठभूमि को तैयार किया।

यदि हम इन सारे विचारों तथा आंदोलनों से भारतीय ज्ञान एवं भारतीय ज्ञान परम्परा को संबंधित करें तो हम स्वाभाविक रूप से निष्कर्ष निकाल सकते हैं, कि इनसे उत्पन्न ज्ञान एवं विचार भारतीय दर्शन एवं सामाजिक चेतना प्रवाहित करते हैं। इन आंदोलनों और इनके दार्शनिक विचार ने भारतीय ज्ञान परम्परा को एक दिशा दी है, साथ ही भारतीय समाज की जड़ता को तोड़कर एक गतिशील समाज का निर्माण किया है। शिक्षा इन सारे आंदोलनों का केन्द्र-बिन्दु रही है और शिक्षा ने ही इन सारे आंदोलनों को प्रवाहित एवं प्रभावित किया है। वर्त्तमान समय में जब देश भारतीय ज्ञान परम्परा को बटोरकर संग्रहित कर रहा है इन आन्दोलनों की भूमिका को भी कलमबद्ध किया जाना चाहिए और इन्हें शिक्षा एवं समाज को गति एवं दिशा देने का पूरा श्रेय दिया जाना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. लुणिया, बी० एन०, (2015) आधुनिक भारत जन जीवन और संस्कृति, कमल प्रकाशन, इंदौर, पृ० 17
2. शुक्ल, रामलखन (सं०), (1987), आधुनिक भारत का इतिहास, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली, पृ० 343
3. मिश्र, शशिकांत (1992), भारत में बीसवीं शताब्दी में हिन्दू राष्ट्रवाद का विकास, मारवाह प्रकाशन, दिल्ली, पृ० 40
4. नेटसन, जी० ए० (सं०), (1925), राजा राममोहन राय-हिज लाइफ, रायटिंग्स एंड स्पीचेज जी० ए० नेटसन एंड कं०, मद्रास, पृ० 44
5. देसाई, ए० आर० (2014), पृ० 229
6. सिंह, अयोध्या, (1977), भारत का मुक्ति संग्राम, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली, पृ० 38
7. दत्त, के० (1964), डॉन ऑफ टेनेसां इंडिया, एलाइड पब्लिशर्स, बंबई,पृ० 55
8. कॉलेट, मिस सोफिया डॉबसन, (1967), लाइफ एंड लेटर ऑफ द राजा राममोहन राय, एच० सी० सरकार एण्ड कं०, कलकत्ता, पृ० 15
9. बंदोपाध्याय, शेखर (2011), प्लासी से विभाजन तक, ओरियंट ब्लैकस्वान, दिल्ली, पृ० 166
10. सिंह, अयोध्याय, वही, पृ० 44
11. स्वामी, दयानंद, (1966), सत्यार्थ प्रकाशन, अध्याय प्टए वैदिक पुस्तकालय, अजमेर, पृ० 112
12. विद्यावचस्पति, ई०, (1957), आर्य समाज का इतिहास, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली, पृ० 178
13. यादव, वी० एस० (सं०) (2013), वैश्विक परिदृश्य में स्वामी विवेकानंद के विचारों की प्रासंगिता, विस्ताइटर नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, पृ० 313
14. मिश्र, शशिकांत, वही, पृ० 61
15. केलकर, एन० सी०, (1928), लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ लोकमान्य तिलक, मद्रास, पृ० 76
16. नेहरू, जवाहरलाल, (1942), टुवर्ड फ्रीडम, दी जॉन डे कं०, न्यूयार्क, पृ० 35
17. मालवीय, पी० के०, (1962), मालवीय जी-जीवन झलकियाँ, दिल्ली, पृ० 2

अंग्रेजी साम्राज्य में नीलहा आंदोलन और महात्मा गांधी का स्वतंत्रता संग्राम में प्रवेश

डॉ० संजय कुमार सिंह

पीएच.डी., जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में चम्पारण का अतिविशिष्ट स्थान है। चम्पारण बिहार राज्य के पश्चिमोत्तर सीमा पर अवस्थित एक जिला है जो औपनिवेशिक शासन के दौर में नील उत्पादन का सर्वाधिक लोकप्रिय केंद्र था। उत्तरी बिहार विशेषकर ''चम्पारण'', के प्रति निलहों के आकर्षण के अनेक कारण थे। सर्वप्रथम चम्पारण की उर्वर भूमि नील की खेती के लिए सर्वाधिक उपयुक्त थी। जहाँ पर निलहें निर्वाद्ध रूप से अपने व्यवसाय का संचालन कर सकते थे। दूसरा चम्पारण ही एक ऐसा क्षेत्र था जहाँ पर कोई भारतीय नील निर्माता उस समय तक यूरोपियन नील निर्माताओं के साथ प्रतिस्पर्धा में सफल नहीं हो पाया था। तीसरा 1857 के पश्चात् निलहों के प्रति सरकार का रूख काफी उदार हो गया क्योंकि बिहार में सिपाही विद्रोह सषक्त था और निलहें कम्पनी शासन के प्रबल समर्थक सिद्ध हुए थे।[1] 19वीं शताब्दी के मध्यकाल में चम्पारण में नील की खेती प्रारंभ हुई तथा निलहें साहबों का अत्याचार का दौर शुरू हो गया। नील एक रंजक पदार्थ था जिसका प्रयोग सफेद सूती वस्त्रों को रंगने के लिए होता था। नील के पौधे से प्राकृतिक रूप से नीला रंग तैयार किया जाता था जिसे तैयार करने की प्रक्रिया बेहद कष्टदायी थी। जिसमें बहुत समय एवं श्रम लगता था। उस समय ब्रिटेन में नील की भारी माँग थी। ब्रिटेन के अलावा भारतीय नील इटली, फ्रांस, अमेरिका, आस्ट्रेलिया, मिश्र तथा फारस आदि देशों में भेजी जाती थी। नील की माँग से भारी मुनाफे को ध्यान में रखकर कम्पनी ने निलहें साहबों को जन्म दिया, जो अपने शोषण और अत्याचार से चम्पारण ही नहीं, सम्पूर्ण भारतीय इतिहास को कलंकित किए।[2]

चम्पारण के किसान अपनी भूमि पर खाद्यान फसलों का उत्पादन करना चाहते थे, किंतु अत्यधिक लाभ की लालसा में निलहें, किसानों पर जबरन नील की खेती के लिए दबाब बनाना प्रारंभ कर दिये। ददनी प्रथा के अन्तर्गत किसानों को कुछ अग्रिम राशि देकर नील की खेती के लिए जबरन अनुबंध करने लगे, जबकि नील उत्पादन से किसानों को कोई लाभ न था। उल्टे नील के पौधों की जड़ें उनके उर्वर भूमि को बंजर बना रही थी। नील के अलाभकारी खेती से न केवल किसानों की आर्थिक स्थिति खराब हो गई थी बल्कि अन्न उत्पादन में भी बहुत कमी आ गई जिससे अकाल की स्थिति उत्पन्न हो गई थी। अतः 1874-75 में बिहार के अकाल के बारे में जो प्रतिवेदन बंगाल सरकार को प्रस्तुत किया गया उसमें नील की खेती के चलते रैयतों की बढ़ती हुई आर्थिक दिक्कतों की विस्तृत चर्चा की गई थी। प्रतिवेदन में इस तथ्य को भी स्वीकार किया गया कि यदि नील की खेती नहीं की जाती तो अकाल के समय बाहर के जिलों से चम्पारण के लिए बहुत कम मात्रा में अनाज आयात करने की आवश्यकता पड़ती।[3] किन्तु निलहों को इस बात से कोई सरोकार न था। वे गरीब, लाचार एवं ऋणग्रस्त किसानों को उनकी इच्छा के विपरीत नील की खेती के लिए बाध्य करते। यदि कोई किसान निलहों का विरोध कर खेती से इंकार करने की चेष्टा करते, तो उन्हें कई तरह की यातनाएँ दी जाती, उनके साथ अमानुषिक व्यवहार किया जाता।

यूरोपियन निलहों के चम्पारण में आने के पूर्व सभी ठीकेदार भारतीय ही थे। यूरोपियन निलहों ने पहले ठीकेदारी तथा बाद में मुर्कररीदार के रूप में नील की खेती आरम्भ किया।[4] चम्पारण में मुख्यतः दो प्रकार से खेती होती थी। पहला ''जीरात व्यवस्था'', जिसके अन्तर्गत निलहें अपनी दखल वाली भूमि पर खेती करवाते थे एवं दूसरा ''असामीवार व्यवस्था'' इसके अन्तर्गत निलहें किसानों की भूमि पर ही नील की खेती करवाते थे तथा फसल तैयार होने पर किसान निलहों को सौंप देते जिसके पश्चात् किसानों को पूर्व निर्धारित दर पर फसल की कीमत मिलती थी। असामीवार व्यवस्था के अन्तर्गत ही एक

आपत्तिजनक व्यवस्था ''तिनकठिया व्यवस्था'' प्रचलित थी। तिनकठिया व्यवस्था के तहत किसानों को 20 कट्ठे भूमि के 3 कट्ठे यानि एक बीघा में तीन कट्ठा भूमि पर नील की खेती करना अनिवार्य था। सामान्यत: भूमि का यह हिस्सा सबसे उपजाऊ होता था जिसका चुनाव स्वयं निलहें ही करते थे। यही व्यवस्था किसानों के दु:खों का मूल कारण था। इस व्यवस्था के माध्यम से निलहें किसानों का भरपूर शोषण कर रहे थे।

इन्हीं अव्यवस्था एवं असंतोष भरे माहौल में एक ऐसी घटना हुई जिससे किसानों की स्थिति और बद्तर हो गई। जर्मनी में एक रासायनिक प्रयोग हुआ जिसके फलस्वरूप वहाँ कृत्रिम नील तैयार कर लिया गया। कृत्रिम नीला रंग तैयार करने में बेहद कम लागत आया जबकि प्राकृतिक नील तैयार करने में बहुत अधिक समय, लागत एवं श्रम लगता था। कृत्रिम नील सस्ता होने से ब्रिटेन एवं अन्य देषों के बाजारों पर जल्द ही अपना कब्जा जमा लिया जिससे प्राकृतिक नील उद्योग को काफी धक्का लगा। भारतीय निलहों को भारी नुकसान हुआ। अब कृत्रिम नील कम लागत पर आसानी से उपलब्ध हो जाने से प्राकृतिक नील उत्पादन का क्षेत्रफल भी घटने लगा। ''उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशक तथा बीसवीं सदी के प्रथम दशक में उत्तरी बिहार के सभी नील उत्पादक जिलों में नील की खेती का क्षेत्रफल तेजी से घटता गया। 1896 में नील की खेती का कुल क्षेत्रफल 4,32,000 एकड़ था। वही 1911 में घटकर 2,78,100 एकड़ हो गया। नील की खेती के घटने का यह क्रम जारी रहा। 1911 में 1,09,600 एकड़ भूमि में ही खेती की गई थी। 1913-14 के आते-आते सम्पूर्ण उत्तरी बिहार में नील की खेती का क्षेत्रफल मात्र 63,100 एकड़ हो गया।[5] निलहें नील उद्योग में हुए क्षतिपूर्त्ति का बोझ भी अब गरीब किसानों पर डालने की योजना बनाने लगे इसके लिए जल्द ही नीलवरों ने शहरवेशी, तावान, हुण्डा और हरजाना नामक तरीकें खोज निकाले। रैयतों को अपने खेतों में नील न बोना पड़े, इसके बदले में जो हर्जाना नीलवर वसूल करते थे। उसे ''शहरवेशी'' कहते थे। नीलवाली भूमि पर अन्य फसल बोने पर फसल अथवा उसका दाम जब नीलवर लेते थे तो उसे ''हुण्डा'' कहा जाता था। नील की खेती न करने पर बीघा पीछे 50 या 60 या 100 रूपया ''तावान'' लगाया जाता था। इसी प्रकार नील की पाबन्दी से छुटकारा देने के लिए रैयतों से ''हरजाना'' लिया जाता था।[6] एवं लगान में भी वृद्धि कर दिया गया, अनुचित प्रकार के कई अबवाब भी सख्ती से वसूले जाते। शोषण एवं अत्याचार से त्रस्त किसानों के लिए नील की खेती अभिशाप बन गई थी।

इन्हीं तनावपूर्ण वातावरण में चम्पारण के ही मूरली भरहवा गाँव के निवासी ''राजकुमार शुक्ल'' जो स्वयं एक किसान थे एवं निलहों के शोषण के शिकार थे। उन्होंने किसानों की पीड़ा दूर करने की ठानी एवं उस समय कांग्रेस में सक्रिय गाँधीजी से मिलकर सहायता लेने का निश्चय किया। किंतु उन्हें ध्यान आया कि वे अधिक शिक्षित तो हैं नहीं फिर गाँधीजी उनकी बोली कैसे समझेंगे, तभी अचानक उनके मानस पटल पर 1915 के बिहार प्रांतीय सम्मेलन का दृश्य घूम गया और याद आये बाबू ब्रज किशोर प्रसाद जिन्होंने निलहों के विरूद्ध उनकी सहायता करने का वचन दिया था। शुक्लजी दरभंगा गए। उनको चम्पारण के विषय में विस्तारपूर्वक जानकारी दी। उनके विचारों से प्रभावित होकर ब्रज किशोर बाबू ने उन्हें अखिल भारतीय कांग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में चलने का वचन दिया। अपने निश्चित उद्देश्य के साथ राजकुमार शुक्ल 1916 के लखनऊ अधिवेशन में पहुँचे। जहाँ उन्होंने प्रमुख नेतागण को चम्पारण के किसानों की दुर्दशा से अवगत कराया। फलत: 1916 के कांग्रेस अधिवेशन में चम्पारण से संबंधित एक प्रस्ताव पारित हुआ, जिसमें चम्पारण के किसानों के प्रति सहानुभूति प्रकट की गई। तत्पश्चात् राजकुमार शुक्ल ने गाँधीजी से चम्पारण आने का आग्रह किया। किंतु गाँधीजी पहली मुलाकात में राजकुमार शुक्ल की बातों से प्रभावित नहीं हुए और उन्हें टाल दिया। किंतु दृढ़ निश्चयी राजकुमार शुक्ल ने गाँधीजी का पीछा नहीं छोड़ा। निरन्तर प्रयास करते रहे, जिससे उन्हें चम्पारण आने के लिए विवश होना पड़ा।

10 अप्रैल 1917 को गाँधीजी पटना पहुँचे। राजेन्द्र प्रसाद और मजहरूल हक के घर अल्प विश्राम के पश्चात् मुजफ्फरपुर के लिए प्रस्थान किये। ''22 अप्रैल को ब्रजकिशोर प्रसाद, रामनवमी प्रसाद और राजकुमार शुक्ल के साथ गाँधीजी बेतिया के लिए प्रस्थान किय। चम्पारण के लोगों का उत्साह सातवें आसमान पर था। वे गाँधीजी का एक झलक पाने के लिए बेताव थे। जिस स्टेशन पर गाँधी की ट्रेन रूकती थी। फूल-माला लेकर हजारों लोग वहाँ पहले से ही जयघोश करते रहते थे। भीड़ इतनी हो जाती थी कि ट्रेन के ड्राईवर को स्टेशन से पहले ही गाड़ी रोकनी होती थी। राजकुमार शुक्ल का प्रयास रंग ला रहा था।[7] महात्मा गाँधी ने ''आत्मकथा'' में उल्लेख किया है कि चम्पारण संबंधी प्रस्ताव स्वीकृत हो जाने पर राजकुमार शुक्ल

को बड़ी खुशी हुई। पर इतने से उन्हें संतोष न मिला। वह तो खुद मुझे चम्पारण के किसानों का दु:ख दिखाना चाहते थे।[8] गाँधीजी के आगमन से चम्पारण के किसानों में आत्मविश्वास का जबरदस्त संचार हुआ। चम्पारण पहुँचकर गाँधीजी ने कई गाँवों का दौरा किया एवं शुरूआत के दो महीने प्रभावित क्षेत्रों की गहराई से जाँच की।

इस पहल से गाँधीजी पर ब्रिटिश सरकार द्वारा सार्वजनिक शांति भंग करने का आरोप लगाया गया एवं उनके खिलाफ नोटिस जारी कर उन्हें चम्पारण छोड़ने का आदेश दिया गया। किंतु उन आदेशों का उल्लंघन कर गाँधीजी अपना दायित्व निभाते रहे। परिणामस्वरूप गाँधीजी को गिरफ्तार कर लिया गया और उन पर कानून तोड़ने का आरोप लगाकर मुकदमा दर्ज कर लिया गया। अगले दिन जब उन्हें न्यायालय में पेश किया गया तब पेशी के दौरान न्यायालय के बाहर हजारों किसानों की हिंसक भीड़ इक्कठा हो गई। घबड़ाकर न्यायालय को मुकदमा खत्म कर गाँधीजी को बरी करना पड़ा। गाँधीजी ने किसानों से हिंसा न करने की आग्रह की एवं अहिंसा का पालन कर सत्याग्रह के माध्यम से आंदोलन का मार्ग सुझाया। आंदोलन में सत्याग्रह के साकारात्मक परिणाम सामने लाए। 10 जून 1917 को ब्रिटिश सरकार द्वारा जाँच के लिए एक समिति का गठन किया गया जिसमें गाँधीजी को भी ब्रिटिश सरकार ने विभाग का उप सचिव बनाया। समिति के सचिव ई. एल. टैनर, आई.सी.एस. को बनाया गया जो दक्षिण बिहार के सेटेलमेंट पदाधिकारी थे। समिति को काम सौंपा गया कि चम्पारण के जमींदारों और किसानों के बीच के संबंध तथा नील उपजाने और उत्पन्न हुए झगड़ों के कारण के संबंध में जाँच करें। जाँच का निष्कर्ष सरकार को सुपुर्द करें तथा समस्या के समाधान का उपाय सुझाए।

दक्षिण अफ्रीका में आजमाए अपने अस्त्र अहिंसा एवं सत्याग्रह का भारत की भूमि चम्पारण में गाँधीजी का प्रथम प्रयोग था एवं अहिंसक हथियार के बल से चम्पारण के किसानों एवं आम जनों को परिचित कराया। चम्पारण में गाँधीजी द्वारा किया गया सत्याग्रह का यह प्रयास पूर्णत: सफल हुआ। फलस्वरूप चम्पारण में ''चम्पारण कृषि अधिनियम 1918'' बना, जिससे किसानों को नील की खेती की बाध्यता से मुक्ति मिली। साथ ही ''तीन कठिया व्यवस्था'' समेत कृषि संबंधित अन्य सभी अवैध कानून समाप्त हो गए। ''चम्पारण कृषि अधिनियम 1918'' लाचार एवं शोषित किसानों के लिए किसी जीवनदान से कम न था। चम्पारण सत्याग्रह के सफलता के पश्चात् मोहन दास करमचंद गाँधी ''महात्मा'' की उपाधि से विभूषित किये गए। महात्मा गाँधी अब प्रमुख सहयोगी के रूप में बाबू ब्रजकिशोर प्रसाद, बाबू राजेन्द्र प्रसाद, रामनवमी प्रसाद, अनुग्रह नारायण सिंहा, जे.बी. कृपलानी, मजहरूल हक, गोरख प्रसाद एवं अन्य महान विभूतियों ने अपना अहम योगदान दिया। साथ ही चम्पारण के किसानों व मजदूरों के साथ-साथ आम जनों ने भी पूर्ण आत्मविश्वास एवं निष्ठा के साथ अपनी सक्रिय भूमिका निभाई।

महात्मा गाँधी ने अपनी आत्मकथा में विस्तार से इस बात का जिक्र करते हुए लिखा है कि, चम्पारण आने से पहले वे चम्पारण का नाम तक नहीं जानते थे। नील पौधे से प्राप्त किया जाता है इसकी जानकारी भी उन्हें नहीं थी। नील की गोटियाँ उन्होंने देखी थी पर हजारों लोगों पर अत्याचार के उपरांत वह गोटियाँ तैयार होती है, इसका आभाश उन्हें नहीं था। वैसे तो जर्मनी में कृत्रिम नील के आविष्कार के पश्चात् नील उद्योग निलहों के लिए लाभप्रद नहीं रह गया था। फिर भी निलहों का किसानों पर अत्याचार समाप्त नहीं हुआ बल्कि शोषण प्रक्रिया में और तीव्रता ही आ गई थी। वे किसानों का अनुचित एवं मनमाने तरीकों से शोषण करते रहे। कई किसान तो नील की खेती से मुक्ति पाने के लिए अपने पैतृक आवास छोड़कर अन्य जगहों पर बसने के लिए मजबूर हो गए थे।

निष्कर्षत: चम्पारण किसान आंदोलन के सूत्रधार राजकुमार शुक्ल थे जो स्वयं निलहों के जुल्म के शिकार थे। जो किसानों की पीड़ा को भली-भाँति समझते थे। नील की खेती से मुक्ति पाने के प्रयास एवं ब्रिटिश शासन के शोषणपूर्ण नीति के विरूद्ध मुकदमा लड़ते-लड़ते तथा अपने साथियों की सहायता करते-करते उनकी आर्थिक अवस्था बेहद कमजोर हो गई थी। फिर भी उन्होंने कभी हार नहीं मानी। अपने उद्देश्य को पूरा करने में निरंतर प्रयासरत रहे। परिणामस्वरूप किसानों को नील की खेती से मुक्ति पाने में सफलता मिली। गाँधीजी के नेतृत्व में चम्पारण के किसानों ने अहिंसा का पालन करते हुए ''सत्याग्रह'' को हथियार बनाया। 19 अप्रैल 1917 को किसानों ने आंदोलन किया जो भारतीय इतिहास में प्रथम सफल किसान आंदोलन सिद्ध हुआ। इस तरह गाँधीजी ने चम्पारण के पीड़ित किसानों को भी राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य धारा से जोड़ा जो भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में मुख्य कड़ी साबित हुई। अतएव ऐतिहासिक आंदोलन के दुरगामी प्रभावों का विश्लेषण की दृष्टि से भी चम्पारण के किसान आंदोलन का विशेष महत्व है।

सन्दर्भ सूची:-

1. डॉ. बादशाह चौबे, ''बेतिया राज और चम्पारण के किसान'', 2011, पृष्ठ सं. - 98
2. ब्रजकिशोर सिंह, ''नील संघर्ष और गाँधी'', पृष्ठ सं.- 19
3. बिहार इतिहास परिषद्, ''पंचम अधिवेशन'' नरकटियागंज - 1994'', पृष्ठ सं. - 8
4. डॉ. बादशाह चौबे, ''बेतिया राज और चम्पारण के किसान'', 2011, पृष्ठ सं. - 99
5. वही, पृष्ठ सं. - 106
6. ब्रजकिशोर सिंह, ''चम्पारण में बापू'', पृष्ठ सं. - 37
7. भैरव लाल दास, ''गाँधीजी का चम्पारण आंदोलन के सूत्रधार राजकुमार शुक्ल की डायरी'' 2014, पृष्ठ सं. - 74
8. ब्रजकिशोर सिंह, ''नील संघर्ष और गाँधी'', पृष्ठ सं. - 57

भारतीय ज्ञान परंपरा में सामाजिक एवं जीवन कौशलः एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

सरोज शर्मा

शोधार्थी, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर

डॉ० प्रीति शर्मा

शोध निर्देशिका, ज्योति विद्यापीठ महिला विश्वविद्यालय, जयपुर

सारांश

भारतीय ज्ञान परंपरा में मानव जीवन को केवल जैविक अस्तित्व नहीं, बल्कि सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से देखा गया है। शिक्षा व्यवस्था के केंद्र में "जीवन के लिए शिक्षा" की अवधारणा रही है। सामाजिक एवं जीवन कौशल जैसे-सहयोग, नेतृत्व, सहानुभूति, समस्या समाधान, भावनात्मक संतुलन, स्वास्थ्य प्रबंधन, सतत विकास आदिख्रभारतीय शास्त्रों, दार्शनिक ग्रंथों और परंपराओं में गहराई से अंतर्निहित हैं। वर्तमान भारतीय शिक्षा नीति 2020 (NEP-2020) इन कौशलों को पुनः शिक्षा के केंद्र में लाने का प्रयास करती है। इस शोध में भारतीय विचारधारा और NEP-2020 के कौशल विकास उद्देश्यों के पारस्परिक संबंधों का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन स्पष्ट करता है कि भारतीय शिक्षा का पारंपरिक ज्ञान आधुनिक कौशल आधारित शिक्षा प्रणाली के लिए एक सशक्त आधार प्रदान करता है।

भूमिका

भारतीय संस्कृति में मानव जीवन को चार पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) के संतुलन से श्रेष्ठ माना गया है। शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक दृष्टि से सक्षम बनाना था। वसुधैव कुटुम्बकम्, लोकः समस्ताः सुखिनो भवन्तु जैसे सिद्धांत दर्शाते हैं कि भारत में सामाजिक कौशल केवल व्यवहारिक नहीं बल्कि आध्यात्मिक आधार पर विकसित हुए।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने 10 मूल जीवन कौशलों की पहचान की है, जिनमें भावनात्मक प्रबंधन, समस्या समाधान, आलोचनात्मक चिंतन, संचार व नेतृत्व आदि प्रमुख हैं। यह सभी कौशल भारतीय ज्ञान परंपरा में प्राचीनकाल से विद्यमान हैं।

उद्देश्य

1. भारतीय ज्ञान परंपरा में सामाजिक एवं जीवन कौशल की अवधारणा का अध्ययन
2. शास्त्र, धर्म, दर्शन और शिक्षण पद्घतियों में कौशल विकास के घटकों का विश्लेषण
3. आधुनिक शिक्षा में भारतीय जीवन कौशल की प्रासंगिकता ज्ञात करना

शोध प्रश्न

1. भारतीय ज्ञान परंपरा में सामाजिक कौशल का स्थान क्या है?
2. जीवन कौशल को किस प्रकार परिभाषित किया गया है?
3. आधुनिक शिक्षा और समाज में इन कौशलों की प्रासंगिकता कैसी है?

पद्धति

यह शोधख्रपत्र वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है। साहित्य संग्रह ख्र वेद, उपनिषद, गीता, बौद्धख्रजैन साहित्य, गुरुकुल व्यवस्था, शिक्षा से संबंधित आधुनिक शोध व पुस्तकें।

भारतीय ज्ञान परंपरा में सामाजिक कौशल का विकास केवल सामाजिक जीवन की सुविधा तक सीमित नहीं रहा, बल्कि सामूहिक उत्कर्ष एवं लोककल्याण की दिशा में निर्देशित रहा। वेदों में वर्णित "सर्वे भवन्तु सुखिनः" तथा उपनिषदों में निहित "वसुधैव कुटुम्बकम्" जैसी अवधारणाएँ भारतीय समाज को सहयोग, सहभागिता एवं समन्वय केंद्रित बनाती हैं। प्राचीन भारत में यज्ञ एवं ग्राम संगठन के माध्यम से समूह चेतना, आपसी सहयोग और सामाजिक उत्तरदायित्व जैसे कौशल स्वाभाविक रूप से विकसित होते थे। नेतृत्व कौशल का आधार धर्म, सत्य और नैतिकता रहाख्रराम, कृष्ण, चाणक्य या अशोक के उदाहरण इसका प्रत्यक्ष स्वरूप हैं। बौद्ध और जैन दर्शन करुणा, अहिंसा और सहानुभूति आधारित सामाजिक व्यवहार का निर्देश देते हैं, जो आधुनिक सामाजिक कौशल में एम्पैथी के रूप में महत्वपूर्ण है। शास्त्रार्थ और सत्संग की परंपरा मनुष्य में संवाद कौशल, तर्क और शिष्ट शब्द-प्रयोग विकसित करती थी। इसी प्रकार "एकं सद्विप्राः बहुधा वदन्ति" का दर्शन सांस्कृतिक विविधता की स्वीकृति और सामंजस्य की शिक्षा देता है। भारतीय समाज में संघर्ष समाधान अहिंसा एवं क्षमा जैसे आचरणों पर आधारित था, जिससे समाज में एकता और शांति बनी रहती थी।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 (NEP-2020) इन सभी मूल्यों को आधुनिक शिक्षा के केंद्र में पुनर्स्थापित करने का प्रयास करती है। यह नीति विद्यालयों एवं उच्च शिक्षा में सहयोग, नेतृत्व, सांस्कृतिक समझ, संवाद कौशल और सामाजिक उत्तरदायित्व को अनिवार्य कौशल के रूप में सम्मिलित करती है। छात्र परिषदों, समूह आधारित अधिगम, सामुदायिक सेवा, सहपाठी सहयोग जैसे उपाय आज वही उद्देश्य पूरा करते हैं जो प्राचीन शिक्षण व्यवस्था करती थी। समावेशी शिक्षा की अवधारणा सीधे-सीधे भारतीय मूल्यों की पुनर्पुष्टि है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि NEP-2020 सामाजिक कौशल विकास को भारतीय ज्ञान परंपरा की दिशा में आधुनिक रूप में आगे बढ़ा रही है।

जीवन कौशल की दृष्टि से भारतीय ज्ञान परंपरा और भी समृद्ध दिखाई देती है। योग, ध्यान और ब्रह्मचर्य की परंपरा आत्म-प्रबंधन, एकाग्रता, आत्मनियंत्रण और अनुशासन जैसे कौशलों का आधार है। भगवद्गीता में कर्मयोग का सिद्धांत व्यक्ति को निर्णय लेने की क्षमता, उत्तरदायित्व बोध और भावनात्मक संतुलन प्रदान करता है। न्याय और तर्कशास्त्र की परंपरा आलोचनात्मक चिंतन और समस्या समाधान के वैज्ञानिक दृष्टिकोण को सक्षम बनाती है। उपनिषदों में दार्शनिक मनोविज्ञान के माध्यम से मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार नियंत्रण की सुव्यवस्थित व्याख्या मिलती है, जो आज के मानसिक स्वास्थ्य शिक्षा में अत्यंत प्रासंगिक है। भारतीय कला, संगीत, स्थापत्य, नाट्य और आयुर्वेद रचनात्मकता, नवाचार और स्वास्थ्य प्रबंधन को विकसित करते आए हैं। प्रकृति को माता के समान पूजने की परंपरा ने सतत जीवन शैली, पर्यावरण संरक्षण और संतुलित विकास के सिद्धांतों को जन्म दिया, जो वर्तमान विश्व के सतत विकास लक्ष्यों से मेल खाते हैं।

NEP-2020 इन जीवन कौशलों को 21वीं सदी के कौशल (21st Century Skills) के रूप में मान्यता देती है। नीति में स्वास्थ्य एवं कल्याण, योग शिक्षा, खेल-कूद, मानसिक संतुलन, आर्ट एकीकृत शिक्षा, व्यावहारिक एवं कौशल आधारित शिक्षण पर विस्तृत बल दिया गया है। Inquiry-Based Learning और Critical Thinking को मुख्य स्थान देते हुए पाठ्यक्रम में सुधार किया जा रहा है, जो भारतीय शास्त्रार्थ परंपरा का आधुनिक रूप है। मातृभाषा आधारित शिक्षा पर जोर भारतीय संस्कृति में निहित उस मान्यता का विस्तार है जिसमें भाषा को विचार, ज्ञान और भावनाओं का माध्यम माना गया है। कौशल-आधारित शिक्षा के माध्यम से उद्यमिता, आत्मनिर्भरता और रोजगार क्षमता बढ़ाना भी ठीक वैसा ही है जैसा गुरुकुल प्रणाली में कार्य-शिक्षा एवं श्रम-सम्मान जैसी व्यवस्थाओं के माध्यम से सिखाया जाता था। इस कारण NEP-2020 भारतीय जीवन कौशल शिक्षा के प्राचीन दर्शन का यथार्थ पुनर्जागरण है।

इस प्रकार विश्लेषण स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा में सामाजिक एवं जीवन कौशल केवल व्यवहारिक गुण नहीं थे, बल्कि नैतिक और आध्यात्मिक जीवन दर्शन के अंग थे। भारतीय शास्त्रों की यह शिक्षा व्यक्ति को समाज के प्रति उत्तरदायी, आत्मनियंत्रित, पर्यावरण के प्रति संवेदनशील, तथा आंतरिक रूप से संतुलित बनाती है। आधुनिक शिक्षा नीति इन मूल्यों को वैज्ञानिक, तकनीकी और बहुविषयक रूप में सुदृढ़ कर नई पीढ़ी को समग्र और सशक्त नागरिक बनाने की दिशा में उन्मुख है।

निष्कर्ष

भारतीय ज्ञान परंपरा में सामाजिक एवं जीवन कौशलों का मूल उद्देश्य मानव के सर्वांगीण उत्थान और वैश्विक सद्भाव को स्थापित करना रहा है। आज जब संपूर्ण विश्व मानसिक असंतुलन, सामाजिक संघर्ष और पर्यावरण संकट जैसी चुनौतियों से

जूझ रहा है, उस समय भारतीय जीवन दर्शन आधारित कौशल शिक्षा मानवता को नई दिशा दे सकती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 इसी विरासत को आधुनिक एवं वैश्विक आवश्यकताओं के अनुरूप पुनर्संरचित कर रही है। अतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय ज्ञान परंपरा और NEP–2020 दोनों मिलकर भविष्य की पीढ़ी को मूल्याधारित, मानसिक रूप से स्वस्थ, कौशल संपन्न और विश्व–नागरिक बनने में निर्णायक भूमिका निभाएँगे।

संदर्भ

- ऋग्वेद, अथर्ववेद, उपनिषद
- भगवद्गीता ख्र श्रीकृष्ण
- पतंजलि ख्र योगसूत्र
- तर्कशास्त्र ख्र गौतम
- धम्मपद ख्र बुद्ध
- राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020

भारत में दलित उत्पीड़न के सामाजिक एवं राजनीतिक परिप्रेक्ष्यः समीक्षात्मक विश्लेषण

डॉ० मनोज गुप्ता

एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, रमाबाई राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अकबरपुर, अम्बेडकरनगर (उ0प्र0)

चन्द्रभान

असि0 प्रो0 राजनीति विज्ञान, महंत अवेद्यनाथ राजकीय महाविद्यालय, जंगल कौड़िया, गोरखपुर, (उ0प्र0)

सारांश

भारत एक लोकतांत्रिक एवं सामाजिक समानता पर आधारित राष्ट्र है, परंतु स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी समाज के हाशिये पर खड़े दलित वर्ग को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से बराबरी का दर्जा प्राप्त नहीं हो सका है। दलित उत्पीड़न की ऐतिहासिक जड़ें वर्ण-व्यवस्था और जातिगत भेदभाव में निहित हैं। यह शोध पत्र भारतीय समाज में दलित उत्पीड़न के सामाजिक और राजनीतिक परिप्रेक्ष्य का समीक्षात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इसमें दलितों की वर्तमान स्थिति, संवैधानिक प्रावधान, सामाजिक आंदोलनों और राजनीतिक भागीदारी की भूमिका का विवेचन किया गया है। आजाद भारत के 75 बर्ष के बाद भी दलितों के साथ सामाजिक भेदभाव और उनका आर्थिक सामाजिक शोषण से संरक्षण हाशिए पर हैं। जाति के आधार पर उनके साथ सार्वजनिक स्थानों, शिक्षण संस्थाओं, राजनीतिक भागीदारी, आर्थिक अवसर आदि स्तरों पर सदैव दोयम दर्जे का व्यवहार होता है। कानूनी, संवैधानिक बहुत से प्रावधान किए गए हैं, लेकिन उनको सही से लागू करने की राजनीतिक इच्छा शक्ति एवं प्रशासनिक नैतिक बल का अभाव है। साथ ही साथ इन समाजिक वर्गों में राजनीतिक, सामाजिक जागरूकता की कमी के कारण अपने अधिकार से वंचित रह रहें है।

शब्दावलीः दलित, उत्पीड़न, सामाजिक, राजनीतिक, समुदाय, सामाजिक विभेद, जातिगत भेदभाव, छुआछूत, अवसर की असमानता, सामाजिक बहिष्कार, आर्थिक शोषण, संवैधानिक प्रावधान, वोट बैंक, रूढ़िवादी मानसिकता, दलित चेतना, राजनीतिक भागीदारी।

परिचयः

भारत का सामाजिक ढांचा प्राचीन काल से जातिगत संरचना पर आधारित रहा है। इस व्यवस्था में "अस्पृश्य" या "दलित" कहे जाने वाले समुदायों को सामाजिक बहिष्कार, आर्थिक शोषण और शैक्षिक अवसरों से वंचित रखा गया। आधुनिक भारत में संविधान ने समानता और न्याय का अधिकार दिया, परंतु व्यवहारिक स्तर पर दलित उत्पीड़न की समस्या अभी भी विद्यमान है।

यह विषय इसलिए प्रासंगिक है क्योंकि लोकतांत्रिक व्यवस्था में किसी भी वर्ग का लगातार दमन न केवल मानवाधिकार का हनन है बल्कि लोकतंत्र की असफलता का प्रतीक भी है।

शोध उद्देश्यः

1. दलित उत्पीड़न की ऐतिहासिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना।
2. दलितों के सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक स्थिति का विश्लेषण करना।
3. दलित आंदोलनों और राजनीतिक संघर्षों का मूल्यांकन करना।
4. संविधानिक एवं विधिक उपायों की प्रभावशीलता का समीक्षात्मक अध्ययन करना।
5. भविष्य के लिए समाधान एवं नीतिगत सुझाव प्रस्तुत करना।

शोध प्रश्नः

1. क्या स्वतंत्र भारत में दलितों को वास्तविक सामाजिक समानता प्राप्त हुई है?
2. दलित उत्पीड़न के मुख्य कारण क्या हैं?
3. राजनीतिक आरक्षण और भागीदारी ने दलितों की स्थिति को किस हद तक बदला है?
4. क्या कानूनी और संवैधानिक प्रावधान दलित अत्याचारों को रोकने में सफल हुए हैं?

दलित उत्पीड़न का सामाजिक परिप्रेक्ष्यः

दलित उत्पीड़न का सामाजिक परिप्रेक्ष्य मुख्य रूप से जाति व्यवस्था पर आधारित है, जो भारतीय समाज में पवित्रता और प्रदूषण (शुचिता एवं अपवित्रता) की ब्राह्मणवादी अवधारणाओं से उपजा है। यह परिप्रेक्ष्य ऐतिहासिक, सामाजिक और आर्थिक, सभी आयामों को समाहित करता है।

1. जाति व्यवस्था और जन्म आधारित भेद-भावः

भारतीय समाज में जाति का निर्धारण जन्म से होता है, न कि कर्म से। दलितों को पारंपरिक वर्ण व्यवस्था में 'अछूत' या 'पंचम वर्ण' में रखकर उन्हें सामाजिक पदानुक्रम में सबसे निचले पायदान पर रखा गया। इस जन्म-आधारित व्यवस्था ने दलितों और गैर-दलितों के बीच एक गहरा सामाजिक विभाजन पैदा किया, जिससे दलित समुदाय हमेशा शोषित और मानवाधिकारों के हनन का शिकार रहा है।

2. अस्पृश्यता (छुआछूत) और सामाजिक बहिष्कारः

(i) अपवित्रता की अवधारणाः दलितों को पारंपरिक रूप से अशुद्ध या अपवित्र माना गया, जिसका सामाजिक प्रदर्शन स्पर्श के माध्यम से होता था। उनके स्पर्श, उनके साये (परछाई) और यहाँ तक कि उनकी आवाज को भी ऊँची जातियों के लिए 'अपवित्रता का स्रोत' माना जाता था।

(ii) पेशे और प्रदूषणः उन्हें ऐसे पेशे तक सीमित रखा गया जिन्हें अपवित्र माना जाता था, जैसे चमड़े का काम, मैला ढोना, सीवेज टैंक की सफाई, और शवों का निपटान। ये काम समाज में उनकी 'निम्न' स्थिति को और मजबूत करते थे।

(iii) प्रतिबंधः आज भी कई जगहों पर उन्हें मंदिरों में प्रवेश करने, सार्वजनिक कुओं/तालाबों से पानी लेने, या ऊँची जाति के लोगों के साथ बराबरी से बैठने-खाने जैसे सामाजिक अधिकारों से वंचित रखा जाता है।

3. रूढ़िवादी मानसिकता में जड़ताः

(i) मानसिकता में बदलाव की कमीः कानूनी प्रावधानों और शिक्षा के प्रसार के बावजूद, समाज के एक बड़े हिस्से की मानसिकता में कोई खास परिवर्तन नहीं आया है। आज भी उन्हें हीनता की भावना से देखा जाता है।

(ii) दोहरी मारः पूंजीवादी विकास और आरक्षण के कारण दलित वर्ग में एक सुविधासंपन्न वर्ग का उदय हुआ है, लेकिन गरीब दलित समूह आज भी परंपरागत सामंती शक्तियों और कभी-कभी नवधनाढ्य दलितों के दबाव की दोहरी मार झेल रहे हैं।

4. हिंसा और शोषणः

(i) दैनिक शोषणः उत्पीड़न केवल बड़े अत्याचारों तक सीमित नहीं है, बल्कि रोजमर्रा के जीवन में शोषण और अन्याय के रूप में भी शामिल है।

(ii) मानवाधिकारों का हननः दलितों के साथ हत्या, अपहरण, महिलाओं के साथ बलात्कार और यौन शोषण जैसे गंभीर अपराध होते हैं। दलित महिलाओं के खिलाफ अपराध दर अन्य महिलाओं की तुलना में काफी अधिक है।

5. आर्थिक और शैक्षिक कारकः

(i) संसाधनों तक सीमित पहुँचः ऐतिहासिक रूप से वंचित स्थिति के कारण, दलितों की संसाधनों, अवसरों और व्यक्तिगत गरिमा तक पहुँच सीमित रही है, जिससे उनकी आर्थिक उन्नति में बाधा आती है।

(ii) गरीबी और अशिक्षा: गरीबी और अशिक्षा आज भी दलित उत्पीड़न और उनके मानवाधिकारों के हनन के प्रमुख कारकों में से हैं, क्योंकि ये कानून के बारे में जानकारी के अभाव और जन चेतना की कमी को जन्म देते हैं।

संक्षेप में, दलित उत्पीड़न का सामाजिक परिप्रेक्ष्य भारतीय समाज की श्रेणीबद्ध असमानता को दर्शाता है, जहाँ जाति व्यवस्था ने एक क्रूर सामाजिक अनुबंध का रूप ले लिया है जो जन्म के आधार पर मानवाधिकारों और स्वतंत्रता का व्यवस्थित शोषण करता है। इसे निम्न आधार पर देख सकते हैं।

1. ऐतिहासिक आधार: मनुस्मृति जैसी धर्मग्रंथीय व्यवस्थाओं में अस्पृश्यता का उल्लेख मिलता है।
2. सामाजिक बहिष्कार: शिक्षा, मंदिर प्रवेश, पानी के स्रोत और सार्वजनिक स्थानों पर भेदभाव।
3. आधुनिक परिप्रेक्ष्य: ग्रामीण क्षेत्रों में दलितों को अब भी जातिगत हिंसा, भेदभाव और आर्थिक शोषण का सामना करना पड़ता है।
4. शिक्षा और रोजगार: आरक्षण नीति के बावजूद दलित शिक्षा व रोजगार में पीछे हैं।

राजनीतिक परिप्रेक्ष्य:

दलित उत्पीड़न का राजनीतिक परिपेक्ष्य सामाजिक न्याय और राजनीतिक भागीदारी के इर्द-गिर्द घूमता है। भारतीय राजनीति में दलितों का मुद्दा 1930 के दशक में डॉ. बी.आर. अम्बेडकर द्वारा दलित वर्गों के राजनीतिक अधिकारों के सवाल उठाने के साथ ही शुरू हो गया था।

1. वोट बैंक की राजनीति और प्रतिनिधित्व:

आजादी के बाद लंबे समय तक, कुछ राजनीतिक दलों ने दलितों को एक वोट बैंक के रूप में इस्तेमाल किया तथापि कुछ राजनीतिक दलों के उदय ने उत्तर भारत में दलितों को लामबंद करने और राजनीतिक रूप से सशक्त बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, जिससे दलितों में राजनीतिक चेतना का उद्‌गार हुआ।

आज के दौर में, लगभग सभी राजनीतिक दल दलितों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए नई नीतियाँ अपना रहे हैं, लेकिन यह आरोप भी लगता है कि कई मामलों में उत्पीड़न और भेदभाव के पीछे राजनीतिक दलों के नेताओं या उनके समर्थकों का हाथ होता है।

2. उत्पीड़न और राजनीतिक जिम्मेदारी:

यह एक विरोधाभास है कि जहां एक ओर संवैधानिक सुरक्षा उपाय और आरक्षण हैं, वहीं दूसरी ओर गरीब दलित समूह आज भी सबसे ज्यादा उत्पीड़न का शिकार हैं। उत्पीड़न के मामलों में सत्ताधारी दलों पर अक्सर यह आरोप लगाया जाता है कि वे आरोपी सवर्णों (उच्च जातियों) का पक्ष लेते हैं, जिससे न्याय मिलने में देरी होती है या न्याय नहीं मिल पाता।

कुछ राजनीतिक विश्लेषकों का मानना है कि राजनीतिक दल अपने संकीर्ण एजेंडे के अनुसार ही दलितों के खिलाफ होने वाले अपराधों पर प्रतिक्रिया देते हैं, जिससे इस संवेदनशील मुद्दे का राजनीतिकरण होता है।

3. दलित आंदोलन और चेतना

दलित आंदोलन ने दलितों के लिए अधिकारों, सम्मान और सामाजिक समावेशन की लड़ाई लड़ी है, जिससे दलित समाज सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से अधिक सक्रिय हुआ है। आरक्षण को निष्क्रिय करने के प्रयासों के विरुद्ध दलितों और वंचित वर्गों में राजनीतिक चेतना बढ़ी है, जिसके परिणामस्वरूप कई जगहों पर उग्र विरोध प्रदर्शन भी हुए हैं।

हालांकि, वर्तमान में यह भी कहा जाता है कि दलित आंदोलन हाशिये पर है और कोई ऐसा सर्वमान्य दलित नेता नहीं है जो सभी दलितों को एकजुट कर सके।

4. कानूनी और नीतिगत पहलू:

सरकारें दलितों के उत्थान के लिए विभिन्न योजनाओं और बजट का आवंटन करती हैं, लेकिन जमीन का अभाव, गरीबी और बुनियादी सुविधाओं की कमी जैसी चुनौतियाँ आज भी बनी हुई हैं। दलितों के हितों के लिए बनाए गए कानूनों (जैसे अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम) के बावजूद, वास्तविक धरातल पर कुछ स्तरों पर उत्पीड़न जारी है, जो राजनीतिक और प्रशासनिक तंत्र की विफलता को दर्शाता है।

चुनौतियाँ और समस्याएँ:

1. जातिगत हिंसा और सामाजिक भेदभाव का जारी रहना।
2. राजनीतिक नेतृत्व का प्रतीकात्मक होना, वास्तविक नीतिगत प्रभाव कम।
3. शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में पिछड़ापन।
4. आर्थिक असमानता और भूमि रहित स्थिति।
5. शहरीकरण और वैश्वीकरण के बावजूद सामाजिक भेदभाव का कायम रहना।

सकारात्मक पहल:

1. आरक्षण नीति से शिक्षा और रोजगार में अवसर बढ़े।
2. दलित साहित्य और मीडिया ने सामाजिक चेतना को मजबूत किया।
3. दलित आंदोलनों से राजनीतिक दबाव और सामाजिक जागरूकता बढ़ी।
4. एन0जी0ओ0 और सिविल सोसाइटी संगठनों की भूमिका।

समीक्षात्मक विश्लेषण:

यद्यपि संविधान और कानून ने समानता की गारंटी दी है, परंतु दलितों की वास्तविक स्थिति अपेक्षित स्तर तक सुधरी नहीं है। सामाजिक स्तर पर गहराई से जमी जाति मानसिकता अब भी दलित उत्पीड़न का मुख्य कारण है। राजनीतिक आरक्षण ने प्रतिनिधित्व तो दिया है लेकिन सत्ता संरचना पर दलितों का नियंत्रण सीमित है। न्यायपालिका और मीडिया में भी दलित आवाजें हाशिए पर हैं। संक्षेप में, दलित उत्पीड़न का राजनीतिक परिपेक्ष्य वोट की राजनीति, सामाजिक-आर्थिक असमानता, और न्याय के लिए सतत संघर्ष का एक जटिल मिश्रण है।

दलित उत्पीड़न का समीक्षात्मक अध्ययन यह दर्शाता है कि संवैधानिक और कानूनी सुरक्षा उपायों के बावजूद, यह समस्या आज भी जाति व्यवस्था की कठोरता, सामाजिक-आर्थिक असमानता और प्रभावी कार्यान्वयन की कमी के कारण बनी हुई है।

1. सामाजिक और सांस्कृतिक कारण:

रूढ़िवादी मानसिकता: हजारों वर्षों से चली आ रही वर्ण व्यवस्था और जाति पदानुक्रम की जड़ें समाज की मानसिकता में गहरी जमी हुई हैं।

अस्पृश्यता का निरंतर अस्तित्व: यद्यपि अस्पृश्यता को कानूनी रूप से समाप्त कर दिया गया है (अनुच्छेद 17), ग्रामीण भारत के कई हिस्सों में आज भी दलितों को सार्वजनिक स्थानों (जैसे कुएं, मंदिर) के उपयोग से वंचित रखा जाता है और उन्हें 'अशुद्ध' माना जाता है।

शुद्धता और अपवित्रता की अवधारणा: दलितों के पारंपरिक पेशे (जैसे चमड़े का काम, सफाई) को अपवित्र माना जाता है, जो उच्च जातियों के प्रभुत्व को स्थापित करता है और भेदभाव को बढ़ावा देता है।

हिंसक प्रतिक्रिया: जब दलित समुदाय अपने मानवीय अधिकारों (जैसे घोड़ी पर चढ़ना, सम्मानजनक कार्य करना) का प्रदर्शन करने की कोशिश करता है, तो सामंती शक्तियों का एक तबका हिंसक प्रतिक्रिया देता है, जो डांगावास या हाथरस जैसी घटनाओं को जन्म देता है।

2. आर्थिक और राजनीतिक आयाम

भूमिहीनता और आर्थिक निर्भरता: गाँवों में बड़ी संख्या में दलित परिवारों के पास जमीन नहीं है और वे आजीविका के लिए उच्च जातियों पर निर्भर रहते हैं। यह निर्भरता शोषण को बढ़ाती है और उन्हें भूदास बनने के जोखिम में डालती है।

दोहरा शोषण: पूंजीवादी विकास के साथ दलित वर्ग में भी एक सुविधासंपन्न वर्ग का उदय हुआ है, लेकिन गरीब दलित समूह दोहरी मार झेलते हैं, एक ओर पारंपरिक सामंती शक्तियों का शोषण और दूसरी ओर नवधनाढ्य दलितों का दबाव।

3. कानूनों का अपर्याप्त कार्यान्वयन:

अनुसूचित जाति/जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 जैसे कठोर कानून मौजूद हैं, लेकिन उनका प्रभावी कार्यान्वयन अक्सर संदिग्ध रहता है।

आरोपों पर तुरंत और निष्पक्ष जांच (डीएसपी रैंक के अधिकारी द्वारा) न होना, राजनीतिक हस्तक्षेप और न्यायिक देरी के कारण पीड़ितों को न्याय नहीं मिल पाता।

कई बार दलित विरोधी कानूनों को ही 'जातिवाद बढ़ाने वाला' बताकर कमजोर करने का प्रयास किया जाता है।

वोट बैंक की राजनीतिः सभी राजनीतिक दल दलितों को अपनी ओर आकर्षित करना चाहते हैं, लेकिन कई मामलों में सत्ताधारी लोग या उनके समर्थक ही उत्पीड़क होते हैं, जिससे न्याय की प्रक्रिया में बाधा आती है। दलितों के मुद्दों का राजनीतिकरण होने से वास्तविक कल्याण और न्याय हाशिये पर चला जाता है।

निष्कर्षः

भारत में दलित उत्पीड़न एक बहुआयामी समस्या है, जो केवल कानून से नहीं बल्कि सामाजिक चेतना और राजनीतिक इच्छाशक्ति से हल की जा सकती है। दलित सशक्तिकरण के लिए शिक्षा, आर्थिक अवसर और राजनीतिक भागीदारी को वास्तविक रूप से सुनिश्चित करना आवश्यक है। दलित उत्पीड़न का राजनीतिक परिपेक्ष्य वोट की राजनीति, सामाजिक-आर्थिक असमानता, और न्याय के लिए सतत संघर्ष का एक जटिल मिश्रण है।

संविधानिक प्रावधान - अनुच्छेद 15, 17, 46, अनुसूचित जाति-जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम (1989)।

राजनीतिक भागीदारी - संसद एवं विधानसभाओं में आरक्षण ने दलित प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किया।

दलित आंदोलन - डॉ. भीमराव आंबेडकर का नेतृत्व, दलित पैंथर्स, कुछ राजनीतिक पार्टियां जैसे संगठनों का उदय।

वर्तमान राजनीति - दलित वोट बैंक राजनीति का केंद्रीय हिस्सा बन चुका है, किंतु नेतृत्व स्तर पर दलितों का वास्तविक सशक्तिकरण सीमित है।

समीक्षात्मक अध्ययन बताता है कि संवैधानिक उपाय (आरक्षण, कानून) सूखी धरती पर बारिश की चंद बूँदों की तरह रहे हैं। दलितों का वास्तविक उत्थान तब तक संभव नहीं है जब तक कि मानसिकता में परिवर्तन न हो और सवर्ण स्नेहपूर्वक उन्हें न अपनाएँ, कानूनों का कार्यान्वयन जमीनी स्तर पर सख्ती से न हो तथा दलित समुदाय राजनीतिक और आर्थिक रूप से एकजुट होना।

सुझाव -

1. शिक्षा प्रणाली में दलित छात्रों के लिए विशेष सहायता और गुणवत्तापूर्ण संस्थानों तक पहुँच।
2. ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि सुधार और रोजगार गारंटी योजनाओं का प्रभावी कार्यान्वयन।
3. जातिगत अपराधों के मामलों में त्वरित न्याय और कठोर दंड।
4. दलित नेतृत्व को स्थानीय स्तर से सशक्त करना।
5. सामाजिक जागरूकता और जातिवाद उन्मूलन के लिए जन अभियान।

संदर्भः

1. आंबेडकर, बी.आर.- 'जाति भेद का उच्छेद' हिन्दी संस्करण, गौतम बुक सेंटर, द्वितीय संस्करण- 2021
2. घुरिये, जी0 एस0 2016. 'कास्ट एण्ड रेस इन इण्डिया', पंचम संस्क्रण सेज पब्लिः नई दिल्ली।
3. ओमवेट, गेल, 1994. 'दलित एवं डेमोक्रेटिक रिवाल्यूसन', सेज पब्लिः नई दिल्ली।
4. थोराट एण्ड न्यूमैन, 2012 'ब्लॉक्ड बाई कास्टः इकोनॉमिक डिस्क्रमिनेशन एंड सोशल एक्सक्यलूजन इन मार्डन इण्डिया', आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
5. लक्ष्मीकांत, एम, 2003 'भारतीय राजव्यवस्था', मैकग्रहिल पब्लि।
6. अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989

मालविकाग्निमित्रम् नाट्य में कालिदास की संगीत योजना

डॉ० हरेराम कुमार उपाध्याय

पीएच. डी., जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा

''मालविकाग्निमित्रम्'' नाटक की संगीत योजना कालिदास के अद्भुत नाट्य कैशल की परिचायिका है। कालिदास की प्रथम नाट्य रचना होने पर भी यह नाट्य शिल्प की दृष्टि से पूर्णत:परिपक्व है। भारतीय नाट्यकला में संगीत की महती भूमिका है।

संगीत के बिना नाट्यविद्या अकल्पनीय है। नाट्य प्रयोग को सफल तथा प्रभावोत्पादक बनाने में गीत, नृत्य और वाद्य का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। संगीत रत्नाकर में गीत, वाद्य और नृत्य तीनों के एकीकृत और समन्वित रूप को ही संगीत कहा गया है- ''गीतंवाद्यं तथा नृत्यं त्रयं-सङ्गीतमुच्यते।'' संगीत का अपर नाम तौर्यत्रिक भी है।

''मालविकाग्निमित्रम्'' में संगीत योजना सम्यक् ढ़ंग से हुई है। संगीत नाटक का प्राणभूत तत्त्व है। नाट्यशास्त्रमें आचार्य भरत ने नाट्य संग्रह के एकादश (II) तत्त्वों में अभिनयादि के समान ही संगीत को महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। नाट्यकला के साथ संगीत का आनुषंगिक सम्बन्ध है, इसे नाट्य की शय्या कहा गया है।

गीत या गीति का ही नाट्य प्रकार ध्रुवागीति है। नाटक के पाठ्य में अनिबद्ध को छोड़कर निबद्ध पाठ्य में स्थल विशेष पर आयोजित ध्रुवाओं का अपरिहार्य महत्त्व है। ध्रुवागीति के अतिरिक्त नान्दी तथा भरतवाक्य निबद्ध पाठ्य के अनिवार्य अंग है।

नृत्य आदिकाल से ही नाट्य का अविभाज्य अंग है। मूल शब्द नृत्त है। नृत्त का ही गीत तथा अभिनयादि से समायोजन हो जाने पर वह नृत्य हो जाता है जो पदार्थभिनय का कारक है। मधुर और उद्धत भेद से इसके दो रूप दृष्टिगत होत हैं- ताण्डव और लास्य। ''मालविकाग्निमित्र'' में द्वितीय अंक के अन्तर्गत मालविका का छलित नृत्य विशुद्ध शास्त्रीय है।

संगीत का प्रभाव मनुष्यों के अतिरिक्त अन्य जीव जन्तुओं पर भी पड़ता है। रंगशाला से मृदंग का गम्भीर घोष सुनकर मयूर मेघगर्जन समझ कर भ्रान्ति में नृत्य करने लगते हैं। मालविका के गायन तत्पश्चात् छलित नृत्य की प्रस्तुति में अपेक्षित नाट्यतत्त्वों क्रमश: सूचा (अवृर), नृत्त तथा शाखा, लय तथा रागबन्ध का परिचय प्राप्त होता है। इस नाटक में वाद्य प्रयोग में बार-बार मृदंग का ही नाम आता है। इस नाटक में प्रसंगवश मायूरी और मार्जना का प्रयोग मृदंग के प्रसंग में हुआ है। वस्तुत: कपलिदास ने मालविकाग्निमित्र नाटक की संगीत योजना में अत्यन्त साफल्य लाभ किया है।

नाटक में संगीत अत्यपेक्षित तत्त्व है। एकादश नाट्यसंग्रह में संगीत की भी गणना की गई है। नाट्यशास्त्र में अन्य शास्त्रों तथा कलाओं की भाँति संगीत शास्त्र पर भी बल दिया गया है। संगीत नाटक का सहजात सहचर है।

''मालविकाग्निमित्र'' कालिदास की प्रारम्भिक नाट्य रचना है तथापि नाट्यशिल्प की दृष्टि से अत्यन्त परिपक्व है। ''मालविकाग्निमित्र'' नाटक के आरम्भिक अंकों में संगीत का प्रचुर प्रयोग है। विशेषत: द्वितीय अंक इस सन्दर्भ में उल्लेख्य है।

भारतीय नाट्यकला में संगीत का स्थान अपरिहार्य है और संगीत के बिना नाट्यविद्या अकल्पनीय है। नाट्यप्रयोग को प्रभावोत्पादक तथा सफल बनाने में नाट्य (अभिनय) के साथ गीत, नृत्य और वाद्य का प्रयोग निश्चित रूप से महान् योगदान करता है। पाठ्य, अभिनय और रसादि का ग्रहण ब्रह्मा ने ऋग्, यजु: और अथर्ववेद संहिता से किया गया है। उसी प्रकार सामवेद से गीत लेकर पत्र्चमवेद 'नाट्यवेद' परिपूर्ण होता है।

संगीत रत्नाकर में नृत्य, गीत और वाद्य को संगीत कहा गया है-

गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते।[1]

आचार्य भरत ने नाट्योपकरणों में पाठ्य तथा अभिनयादि के समान ही गीत को अन्य नाट्यतत्त्वों जैसा महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। नाट्यकला के साथ संगीत का आनुषंगिक सम्बन्ध है। संगीत का अपर नाम तौर्यात्रिक है। कोशग्रन्थों में संगीत को इसी नाम से अभिहित किया गया है।

तौर्यत्रिकं नृत्यगीतवाद्यं नाट्यमिदं त्रयम्।[2]

तार्यत्रिकं नृत्तगीतवाद्यं नाट्यं च तत्त्रयम्।[3]

अभिनवभारतीकार अभिनवगुप्त ने गीत का उद्भव सामवेद से माना है- गीतिषु सामाख्या।[4] शाङ्र्गधरपद्धति में गीति का लक्षण इस प्रकार दिया गया है- वर्णद्यलङ्कृता गानक्रिया पदलयान्विता। गीतिरिति उच्यते हिसा.....।[5]

होने वाली मृदंग की ध्वनि मयूरों को भ्रमित कर देती है वे मेघ के गर्जन जैसी आवाज से बिना देखे ही वर्षाकाल समझ लेते हैं और नृत्य में मग्न हो जाते हैं।-

जीमूतस्तनितविशकिभिर्मयूरैरूदग्रीवैरनुरसितस्य पुष्करस्य।

निर्ह्रादिन्युपहितमध्यमस्वरोत्था मायूरी मदयति मार्जना मनांसिं।।[10]

उक्त पद्य में मायूरी और मार्जना जैसे शब्दों का प्रयोग है। संगीतशास्त्र की दृष्टि से इन दोनों की सार्थकता मृदंगवादन में दृष्टिगत होती है। मृदंगवादन में तीन प्रकार की मार्जनाएँ होती हैं। मायूरी, अर्घमायूरी तथा कार्मारवी।

''मालविकाग्निमित्र'' में वाद्य की दृष्टि से बार-बार मृदंग का ही नाम आता है। कालिदास ने अपने अन्य काव्यों में 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' के पंचम अंक में रानी हंस पदिका को गीत के साथ वीणावादन करते दिखाया है। वैतालिकों के गीत भी लयतालबद्ध हैं।

निष्कर्षत: कालिदास ने मालविकाग्निमित्र नाटक में जिस सांगीतिक वातावरण की सृष्टि की है उससे उनके संगीत शास्त्र विषयक अगाध पाण्डित्य का परिचय मिलता है। यहाँ नाट्य और संगीत दोनों का मंजुल समन्वयन सहज, रोचक तथा आकर्षक है। अवसर विशेष पर उन्होंने नृत्य, गीत तथा वाद्यादि का प्रयोग संतुलित किया है।

संदर्भ-सूची

1. संगीत रत्नाकर - 1/21
2. अमरकोश - 1/7/10
3. शब्द रत्नाकर - 1880, हलायुद्य-93, मेदिनी-26/34
4. अभिनव भारती टीका 1/37 पर उद्धृत
5. संगीत रत्नाकर - 1/8/14, 15
6. नाट्यशास्त्र -
7. दशरूपक- 1/9
8. दशरूपक - 1/10
9. मालविकाग्निमित्रम् -2/8
10. मालविकाग्निमित्रम् -1/21

ऋग्वेद में वर्णित व्रत विमर्श

डॉ० राजीव कुमार

अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, लंगट सिंह महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर

वैदिक काल से ही भारतीय संस्कृति में व्रतोपवास की परम्परा का प्रचुर प्रचलन रहा है। इस 'व्रत' शब्द की सामान्य रूप से यही अर्थवत्ता समझ में आती है कि यजमान अपनी इष्ट कामनाओं की पूर्ति की इच्छा से किसी देव विशेष के प्रसन्नार्थ 'व्रत' करने का संकल्प लेता है। 'व्रत' शब्द की गणना संस्कृत के उन शब्दों में होती है जिनका प्रचलन सहस्त्रों वर्ष पुराना है। किन्तु इस 'व्रत' शब्द की व्युत्पत्ति एवं अर्थ संबंधी विकास के विषय में विद्वानों के बीच गम्भीर मतभेद भी परिलक्षित होता है।[1]

ह्विटनी, मैक्समूलर, आप्टे ने 'व्रत' शब्द के अलग-अलग अर्थ किए हैं। ऋग्वेद में 'व्रत' शब्द जिन अर्थों में प्रयुक्त हुआ है उसके अर्थ को प्रायः उपर्युक्त विद्वानों द्वारा किए गए 'व्रत' शब्द के अर्थ के साथ संगति बैठ जाती है।

'सेंट पीटर्स वर्ग कोश' में व्रत को उत्पत्ति 'वृ' (वृञ्, वरणे, वरण करना, चुनना) से मानी गई है तथा उस कोश में इस शब्द के महत्वपूर्ण अर्थ इस प्रकार हैं-1. संकल्प, आदेश, विधि, निर्दिष्ट व्यवस्था 2. वशता, आज्ञापरता, सेवा, 3. स्वामित्व अथवा रिक्थ 4. व्यवस्था, निर्धारित उत्तराधिकार क्षेत्र 5. वृत्ति, व्यापार, आचारिक कर्म, प्रवृत्ति में संलग्नता, आचार अथवा रीति 6. धार्मिक कार्य, उपासना, कर्त्तव्यता 7. कोई अनुष्ठान, धार्मिक या तपस्या संबंधी कर्म या आचरण, सेवन, संकल्प पुनीत कर्म 8. सामान्य रूप से संकल्प, निश्चित हेतु 9. अन्य विशिष्ट अर्थ।

वैदिक साहित्य के अध्ययन में मैक्समूलर ने 'व्रत' शब्द की व्युत्पत्ति 'वृ' से की है, जिसका अर्थ है 'रक्षण करना' और प्रतिपादित किया है कि उसका प्रारम्भिक अर्थ इस भाव में था जिसे हम आवेष्टित् रक्षित्, पृथक रूप रक्षित के अर्थ में ले लेते हैं, आगे चलकर इसका अर्थ हुआ निर्णित निश्चित, विधि (कानून) विधान और पुनः कालान्तर में अर्थ विकास हुआ 'अधिपत्य या सत्ता'।

ह्विटनी ने मैक्समूलर की व्युत्पत्ति को असन्तोषजनक मानकर उसे सेंट पीटर्सवर्ग के कोश से निकाल दिया और घोषित किया कि उन्हें 'वृ' (वरण करना) से इसकी व्युपत्ति करना अमान्य है। उन्होंने यह भी कहा है कि 'वृ' से संकल्प अनुशासन (आदेश) अर्थ नहीं निकलता, केवल वरण करना या अधिक मान देना उपयुक्त ठहरता है। किन्तु उन्होंने यह स्वीकार किया है कि 'वरण करने' एवं 'अनुशासन' में सम्बन्ध अवश्य है। उन्होंने विरोध उपस्थित किया कि 'त' का आगम या प्रत्यय के रूप में प्रयोग बहुत ही कम होता है और कहा कि यदि कोई तुल्यार्थक शब्द है तो वह है 'मर्त' जो 'मृ' (मरना) से बना है। उन्होंने व्रत का 'वृत' (वृतु वर्त्तने, प्रवृत्त रहना या प्रारम्भ करना या आगे बढ़ना) से व्युत्पादन अधिक अच्छा माना है। यद्यपि उन्होंने यह माना है कि वृत् से 'अ' प्रत्यय के साथ व्रत की व्युत्पत्ति अपवाद रूप में ही है। उन्होंने सोचा कि 'व्रज' एवं 'व्रद' शब्द उनकी व्युत्पत्ति को संभाल लेते हैं और कहा कि व्रत शब्द-ऋग्वेद में गति सम्बन्ध क्रिया पदों, यथा 'चर' 'सश्च्' या 'सच्' के साथ बहुधा आता है।

प्रो. पी. एम. आप्टे[2] ने ह्विटनी की बात मानी है और कहा है कि 'वृत' से ही व्रत व्युत्पन्न हुआ है। उन्होंने बलपूर्वक प्रतिपादित किया है कि 'वृ' का वरण करना या चुनना या रक्षण करना या आवेष्टित करना अर्थ असंभव है। उन्होंने कहा कि ऋग्वेद में कोई व्रत शब्द ऐसा नहीं है जिससे संकल्प या इच्छा, आदेश आज्ञाकारिता अथवा निर्दिष्ट हेतु का अर्थ प्रकट हो सके। उनका मत है कि 'वृत्' का अर्थ न केवल आगे बढ़ना या प्रवृत्त रहना या आरम्भ करना है (जैसा कि ह्विटनी ने प्रतिपादित किया है) प्रत्युत इसका अर्थ अभिमुख होना अर्थात् घूम जाना, अपनी ओर अभिमुख होना, चतुर्दिक घूम जाना, एक

ही स्थान पर परिभ्रमण करना या आगे बढ़ना भी है। अतः 'व्रत' शब्द का अर्थ न केवल विधि, कर्म या क्रम या विधि, आचार विधि है, प्रत्युत इसका अर्थ है चक्राकार गति या परिभ्रमण तथा वृत्ताकार मार्ग भी।

किन्तु ह्विटनी एवं प्रो. आप्टे के मत त्रुटिपूर्ण हैं। 'वृत्' से व्रत की व्युत्पत्ति अमान्य है। उन पदों में जहाँ धातु 'वृत्' 'अभि', 'आ', 'नि', 'परि', 'वश', यावि नामक उपसर्गों के साथ प्रयुक्त हुई है उनमें 'वृत्' के मौलिक अर्थ को निकालने में हमें सहायता नहीं मिलती है क्योंकि उपसर्ग बहुधा धातु का अर्थ ही परिवर्त्तित कर देते हैं और यह सन्देहास्पद है कि 'वृत्' धातु अपने वास्तविक रूप में ही ऋग्वेद में 'आगे बढ़ना' (ह्विटनी के मतानुसार) के अर्थ में प्रयुक्त हुई है।[3] यह भी नहीं माना जा सकता है बिना उपसर्गों के प्रयुक्त 'वृत्' धातु ऋग्वेद में चक्राकार या वृत्ताकार घूमना या आगे बढ़ना (प्रो. आप्टे के मतानुसार) के अर्थ में आई है। ऋग्वेद में वृत् का प्रयोग इसके आगे या पीछे बिना उपसर्ग के बहुत कम हुआ है।

श्री आप्टे ने आरोप लगाया है कि विद्वानों ने बहुधा व्रत के अर्थों के लिए अपने को केवल विधि-विधान आदेश, यज्ञ, संकल्प, निर्दिष्ट हेतु कर्त्तव्य तक ही सीमित रखा है। उन्होंने ऋग्वेद में प्रयुक्त अर्थमार्ग या वृत्ताकार मार्ग की ओर अपना ध्यान नहीं दिया है। उनके मतानुसार ऋग्वेद में वर्णित दिव्य व्रतों का अर्थ है स्वर्गिक पथ, दिव्य फेरे, समय-समय पर स्वयं देवों द्वारा आकाश के चारों ओर फेरा लगाना, न कि किसी विविष्ट देवता द्वारा निर्धारित पुनीत विधियां या कानून।

आप्टे के मतानुसार व्रत शब्द के अर्थ संबंधी विकास के दो सामान्तर स्वरूप है-यथादिव्य स्वरूप तथा मानवीय स्वरूप। किन्तु व्रत शब्द के अर्थ में इस प्रकार का अन्तर नहीं स्वीकृत किया जा सकता। प्रो. आप्टे ने दिव्य स्वरूप के लिए छः तथा मानवीय स्वरूप के लिए चार अर्थात् व्रत के अर्थों को कुल मिलाकर दस दलों में बाँटा है। उन्होंने व्रत के लिए कुल मिलाकर 60 अंग्रेजी अर्थ दिये हैं जबकि ऋग्वेद में कुल 220 बार व्रत शब्द आया है। ऋग्वेद में प्रयुक्त व्रत शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार मिलती है-यह शब्द 'वृ' (वरण करना) धातु से बना है। इस धातु से 'वर' (दूल्हा जो किसी कन्या या उसके अभिभावक द्वारा कई व्यक्तियों में से चुना जाता है) शब्द निकला है।

वरण करना, वरण करने वाले व्यक्ति की इच्छा या संकल्प पर निर्भर रहता है। अतः 'वृ' का तात्पर्य इच्छा करना भी है। इस प्रकार जब व्रत शब्द 'वृ' से निकला है और उसके साथ 'त' लगा हुआ है तो व्रत का अर्थ हुआ जो संकल्पित है या केवल संकल्प या इच्छा। जो व्यक्ति शक्ति सम्पन्न या अधिकारी होता है उसकी इच्छा अन्य लोगों के लिए आदेश या कानून (विधि) होती है। भक्तजन विश्वास करते हैं कि देवों ने कुछ अनुशासन अथवा आदेश निर्धारित किये हैं जिनका वे स्वयं तथा अन्य जीवगण अनुसरण करते हैं। इससे विधि-विधान जीवगण अनुसरण करते हैं। इससे विधि-विधान या कानून का भाव स्पष्ट हो जाता है। किसी उच्चाधिकारी का आदेश आरोपित होता है और उसका अर्थ होता है आज्ञापालन करने की कर्त्तव्यता या अनुग्रह बन्धन अर्थात् परम्परानुगत आचारों या व्यवहारों का रूप पकड़ लेते हैं। जब लोग ऐसा विश्वास करते हैं या अनुभव करते हैं कि उन्हें कुछ कर्म देवों द्वारा निर्धारित समझ कर करने चाहिए तब धार्मिक उपासना एवं कर्त्तव्य के भाव की सृष्टि होती है। जब कोई व्यक्ति देवों के अनुग्रह की प्राप्ति के लिए अपने आचरण या भोजन पर विशिष्ट रोक लगाता है तो वह पुनीत संकल्प या धार्मिक आचार-कर्म का रूप धारण कर लेता है। इस प्रकार 'वृ' से व्युत्पन्न 'व्रत' शब्द के कतिपय अर्थ हैं-

आदेश या विधि (कानून), आज्ञापालन या कर्त्तव्यता धार्मिक या नैतिक व्यवहार, धार्मिक उपासना या आचरण, पुनीत या गम्भीर संकल्प या स्वीकरण तथा आचरण संबंधी कोई भी संकल्प। ऋग्वेद में जहाँ भी 'व्रत' शब्द आया है, उसका अर्थ उपर्युक्त अर्थों में ही बैठ जाता है।

संदर्भ

1. JBBRAS,–29 (1954), पृ0 1 स. 28
2. देखिये–डकन कॉलेज रिसर्च इन्स्टीच्यूट, पूना का बुलेटिन, तृतीय खण्ड, पृष्ठ 407–488.
3. स्वर्भानोरध यदिन्द्र माया अवो दिवो वर्त्तमान आह्वान्। ऋ. 05/40/6, रथं वामनुगायसं य इषा वर्त्तते सह। न चक्रमभि बाधते। ऋ. 08/5/34, नीचा वर्तन्त उपरि स्फुरन्त्यहस्तासो हस्तवन्तं सहन्ते। ऋ. 010/34/9
4. Ecclesia Divina or A Selection of Hymns from the Four Vedas/Bhumananda Sarasvati.
6. Fundamental Teaching of Vedas/Maurice Phillips.
7. Geographical Aspect of the Vedas/Bidyut Lata Ray.
8. The Holy Vedas : Rig Veda, Yajur Veda, Sama Veda, Atharva Veda/Bibek Debroy and Dipavali Debroy.
9. The Holy Vedas for All/P.D. Mishra.
10. Human Ecology in the Vedas/M. Vannucci.

तुलसीदास के पदों का सांगीतिक विश्लेषण

अमृता प्रियंवदा

सहायक प्राध्यापक, सुंदरवती महिला महाविद्यालय, तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

श्रीगुरु चरन सरोज रज, निजमन मुकुरु सुधारि।
बरनउं रघुबर बिमल जसु, जो दायक फल चारि।।
बुद्धिहीन तनु जानिके, सुमिरौं पवन-कुमार।
बल बुधि बिद्या देहु मोहिं, हरहु कलेस बिकार।।

हनुमान चालीसा लगभग हरेक भरतीय घर में सुना जाता होगा और अधिकांश लोगों ने संभवत: कंठस्थ भी किया होगा। इस हनुमान चालीसा के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास ही हैं जिन्होंने समस्त पीड़ा और रोगों को भगाने का अचूक उपाय हनुमान चालीसा के रूप में हमें दिया है। गोस्वामी तुलसीदास का नाम हिंदी भक्ति साहित्य में स्वर्णिम अक्षरों से अंकित है। तुलसीदास जी का संपूर्ण साहित्य राम नाम की महिमा से ओत प्रोत है।

सिय राम मय सब जग जानी,
करहु प्रणाम जोरी जुग पानी।।

राम चरित मानस भक्ति की पावन धरा होने के साथ ही स्वामी तुलसीदास की एक ऐसी कृति है जिसके उपदेश आज के समय में भी समाज का मार्गदर्शन कराते हैं और एक आदर्श स्थापित करने में सहायक होते हैं। तुलसी जन मानस के कवि थे। उन्होंने लोक भाषा ब्रज और अवधी में अपनी रचनाएं लिखीं जो जन जन की समझ में आया और घर घर राम के आदर्श और उनकी कथा गाई और सुनी जाने लगी। लोग जो पढ़ नहीं पाते थे वो भी उसको आत्मसात कर उसका पाठ करने लगे।

तुलसीदास जी के गीतों में संगीत स्वत: निहित है। विद्वानों ने तुलसी दस जी को संगीतज्ञ भी माना है और यह उचित भी है क्योंकि इनके गीतों में साहित्य के साथ साथ संगीत का सौन्दर्य, शास्त्रीय रागों एवं तालों का महत्त्व और संगीतात्मकता का बेबाकी से भान होता है। तुलसी दास जी के काव्य में संतुलित चिंतन, अनुभवों के चित्रण के साथ संगीत की धारा प्रवाहित होती है। गोस्वामी तुलसीदास संस्कृत और प्राकृत के भी अच्छे जानकार थे किन्तु लोक भाषा में लिखने से उन्हें जन साधारण की जीवनधारा से लोक संस्कृति के विभिन्न रूपों-संस्कार गीतों से लेकर उनके दैनिक जीवन में आने वाले सभी काव्यों से वैसे छंद प्राप्त हुए जो अपभ्रंश गीतों में भी मिलकर मुखरित हो गए हैं।

गीति काव्य में तुलसी जी के इन ग्रंथों का विशेष उल्लेख मिलता है-विनय पत्रिका, कृष्ण गीतावली, जानकी मंगल, पार्वती मंगल, नहछू आदि। डा.राजपति दीक्षित जी के अनुसार "इन ग्रंथों में सन्निविष्ट पदों का वास्तविक सौन्दर्य राग-रागिनियों का विशेषज्ञ सहृदय ही पा सकता है। इन कृतियों के छंदों द्वारा काव्य और संगीत का समन्वय तथा अन्योनाश्रय सम्बन्ध समझने में किसी विशेष प्रयास की अपेक्षा नही है।"

गीतावली ब्रजभाषा एवं अवधि भाषा में रचित सांगीतिक रचना है जिसमें राम के जीवन के कुछ मार्मिक भावों को तुलसीदास ने सूर के सूरसागर का अनुसरण कर लिखी गयी है, ऐसा प्रतीत होता है। गीतावली का वस्तु विभाजन सात कांडों में हुआ है। श्री रामचंद्र शुक्ल के अनुसार 'हृदय के त्रिविध भावों की व्यंजना गीतावली के मधुर पदों में देखने में आती हैं।

विनय पत्रिका भी ब्रज भाषा में रचित रचना है जिसमें तुलसी के विनय के पद हैं अत: इसे विनयावली भी कहा जाता है। विनय पत्रिका में 279 पद हैं जिन्हें 21 रागों में निबद्ध किया गया है। इसके प्राम्भिक 63 स्त्रोतों में श्री गणेश,पार्वती, शिव, काशी , चित्रकूट, हनुमान, सीता के साथ साथ उनके परम आराध्य श्री राम की स्तुति है। इस समय मुक्तक रचनाओं में विशेषकर गीतों और सवैयों में मूलत: ब्रज भाषा ही प्रयोग में लाया जाता था। भक्तिकालीन कवियों के समय श्रव्य विधा ही प्रचार में थी। रचना श्रव्यता के लिए यह आवश्यक था की रचनाकार भाषा की ध्वनिप्रवाह और गति को विशेष तौर पर लक्षित करें। इस कसौटी पर खरा उतरने वाला काव्य ही जन जन को स्वत: ही आत्मसात हो जाता है। तुलसी दास जी की पंक्तियाँ आज के समय में भी जन मन के मुख से उद्दृत हो जाती हैं। इसकी विशेषता ही उसमें मार्मिकता, सन्दर्भवत्ता के साथ साथ ध्वनि प्रवाह का अमूल्य योगदान है। चूँकि विनयपत्रिका की रचना उत्तर भारत में हुई है, इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि

इसका सम्बद्ध हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत से होगा। विनय पत्रिका में पदों को निबद्ध करने के लिए 20 रागों का प्रयोग किया गया है। राग आसावरी, बिलावल, विलास, भैरवी,मल्हार, मारू, रामकली, ललित, विभास, सारंग, सोरठ, सुहोंबिलाल, दंडक, कान्हड़ा, केदारा, जैतश्री, तोड़ी, नट, बसंत और कल्याण में विनय पत्रिका के पदों को निबद्ध किया गया है। तुलसीदास जी राग द्वारा चयनित राग रागिनियाँ रसानुकूल, समयानुकूल, भावानुकूल होने के साथ ही शास्त्र सम्मत भी हैं। अपनी कृतियों में संगीत का समुचित प्रयोग करके तुलसीदास जी ने भावनाओं के आवेग को प्रशस्त किया है।

संगीत शास्त्र में रागों के गायन वादन का समय निश्चित होता है और उसे बहुत महत्त्व दिया जाता है। समय का विशेष ध्यान रखने पर राग की रंजकता में वृद्धि होती है। तुलसी दस जी ने इन सभी बातों का ध्यान अपनी रचनाओं में रखा है।

उदहारण के तौर पर राग भैरव: यह प्रात: कालीन संधि प्रकाश राग है। इस राग का मुख्य भाव करुण प्रकृति का है और यह गंभीर रागों की श्रेणी में गिना जाता है। तुलसीदास जी की रचना

"राम राम रातू,राम राम जपु जीह" (वि. प. पद स. 65) इसी राग में निबद्ध है, जिसमे तुल्सदास जी अपनी जिह्वा और मन को राम नाम रटने को कहते है।

श्री रामचन्द्र कृपालु भजमन
हरण भव भय दारुणम्।
नव कंज लोचन कंज मुख कर
कंज पद कंजारुणम्।।
(वि. प. पद स. 45)

यह तुलसीदास जी की अत्यंत प्रचलित कृति है जिसे राग मल्हार और राग गौरी में निर्दिष्ट किया गया है। रामचंद्र का सौन्दर्य, उनकी कृपालुता तथा दुखभंजन स्वरुप का मनमोहक चित्रण इस राग में और भी भावमय प्रतीत होता है।

विनय पत्रिका तुलसीदास के समय पर लिखे गये श्रेष्ठतम गीतियों का संग्रह ग्रंथ है। इसमें कवि के आन्तरिक हृदय की अभिव्यक्ति हुई है। विनयपत्रिका में तुलसीदास ने अभिव्यंजना को प्रधानता दी है। गीति परम्परा में विनय पत्रिका की गिनती उत्कृष्ट ग्रंथों में होती है। इस ग्रंथ के प्रारम्भ में अनेक देवताओं की स्तुति स्रोत शैली में की गयी है।

जानकी मंगल तुलसीदास जी की कृति है जिसमे राम और सीता के विवाह का ऐसा वर्णन है मानो विवाह का संपूर्ण प्रसंग आँखों के सामने हो रहा हो। अवधी में लिखी गयी 120 छंदों की यह कृति मांगलिक अवसरों पर गाई जाती हैं।

तुलसी दास जी की सुप्रसिद्ध रचना रामचरितमानस में 9388 चौपाई, 1172 दोहे,87 सोरठ, 47 मन्त्र और 208 छंद हैं । राम चरित मानस को भारतीय साहित्य की सबसे महान कृत्यों में से एक माना गया है। संस्कृत के महान विद्वान होने के बावजूद उन्होंने इस महान काव्य के लिए लोक भाषा का चयन किया। इस ग्रन्थ की प्रसिद्धि का एक बहुत बड़ा कारण इसका गेय होना भी है। तुलसी के काव्य में संतुलित चिंतन, अनुभूति और कल्पना को संगीतात्मकता का निर्बाध प्रवाह मिलता है जो जन जन के मन में स्वत: ही अपनी अमिट छाप छोड़ता है। आत्मा के जिस भाव को तुलसीदास ने वाणी दी है वह मन में समस्त सौन्दर्य को मुखरित है। व्यक्तित्व का संगीत ही आत्म संगीत है जो जड़ को चेतना प्रदान करता है। इस काव्य में हृदय की वेदना को शांत करने की क्षमता है। तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में ब्रज और अवधी के अतिरिक्त बुन्देलखंडी, भोजपुरी, अरबी फारसी शब्दों का भी उदारता से प्रयोग किया है जिसका परिणाम यह हुआ है कि यह आज भी अत्यंत लोकप्रिय है।

राम के अनन्य भक्त तुलसीदास जी ने श्री कृष्ण गीतावली की रचना करके यह सिद्ध कर दिया कि राम और कृष्ण अभिन्न हैं। 'श्रीकृष्णगीतावली' गोस्वामी तुलसीदास जी का अति ललित व्रजभाषा में रचित बड़ा ही रसमय और अत्यन्त मधुर गीति-काव्य है। इसमें कुल 61 पद हैं, जिनमें 20 बाललीला के, 3 रूप-सौन्दर्य के, 9 विरहके, 27 उद्धव-गोपिका-संवाद या भ्रमरगीत के और 2 द्रौपदी - लज्जा - रक्षण के हैं । सभी पद परम सरस और मनोहर हैं। पदों में ऐसा स्वाभाविक सुन्दर और सजीव भावचित्रण है कि पढ़ते-पढ़ते लीला-प्रसङ्ग मूर्तिमान् होकर सामने आ जाता है। इसमें श्री कृष्ण का ऐसा स्वाभाविक, सुंदर और सजीव भाव चित्रण है कि सम्पूर्ण लीला प्रसंग मूर्तिमान होकर सामने आ जाता है। इस काव्य में भगवान् कृष्ण की महिमा का और कृष्ण लीला का सुन्दर गान किया गया है। उन्होंने गीतावली के 328 पदों में विभिन्न प्रकार के 18 रागों का कृष्णगीतावली के 61 मुक्तों में 10 रागों का प्रयोग किया है। उनके द्वारा प्रयुक्त रागों में आसावरी, कल्याण, कान्हरा,

केदार, जैतश्री, तोड़ी, धनाश्री, नट, बसंत, बिलावल, विहारा, भैरव, भैरवी, मल्हार, मारु, रामकली, ललित, विभास, सारंग, सौरठ आदि प्रधान है।

निम्न पदों मे गोपियाँ द्वारा कृष्ण की शिकायत का राग अवसारी में अत्यंत मनोरम प्रस्तुति है:

गोपी-उपालम्भ
(राग आसावरी)
तोहि स्याम की सपथ जसोदा! आइ देखु गृह मेरें।
जैसी हाल करी यहि ढोटा छोटे निपट अनेरें ।। 1 ।।
गोरस हानि सहौं, न कहौं कछु, यहि ब्रजबास बसेरें।
दिन प्रति भाजन कौन बेसाहै? घर निधि काहू केरें ।। 2 ।।
किएँ निहोरो हँसत, खिझे तें डाँटत नयन तरेरें।
अबहीं तें ये सिखे कहाँ धौं चरित ललित सुत तेरें ।। 3 ।।
बैठो सकुचि साधु भयो चाहत मातु बदन तन हेरें।
तुलसीदास प्रभु कहौं ते बातैं जे कहि भजे सबेरें ।। 4।।

ग्वालिनी यशोदा जी को उलाहना देती हुई कहती हैं- तुम्हें श्यामसुन्दर की शपथ है, तुम्हारे इस निपट अन्यायी छोटे-से लाडले ने मेरे घर की जैसी दुर्दशा की है उसे मेरे घर आकर देखो तो सही ।। 1 ।। दूध-दही-माखन की हानि तो सह लेती हूँ, कुछ भी नहीं कहती क्योंकि इसी व्रज की बस्ती में रहना है। पर नित्य नये बर्तन कौन खरीदे; क्या किसी के घर में धन का खजाना भरा है? ।। 2 ।। निहोरा करने पर हँसने लगता है, खीझने से आँखे तरेर कर डाँटता है। जाने अभी से तुम्हारे इस ललित लाल ने ये सब चरित्र कहाँ से सीख लिये हैं? ।। 3 ।। इस समय माँ के मुँह की ओर निहारता हुआ ऐसा सकुचाकर, सिमटकर स्थिर होकर बैठा है; मानो सबकी दृष्टि में साधु सजना चाहता है। तुलसीदास जी के शब्दों में ग्वालिनी श्रीकृष्ण से कहती हैं कि प्रभु जी! सबेरे जो कुछ कहकर आप भाग आये थे, क्या उन बातों को मैं कह दूँ ।। 4 ।।

विद्वानों के अनुसार इसकी रचना तुलसीदास जी ने अपनी वृन्दावन यात्रा के क्रम में की थी जिसमें इन्होंने कृष्ण की बाल्यावस्था और गोपी उद्धव संवाद का बहुत ही मार्मिक चित्रण किया है। भक्तिकाल में संगीत को जन मन के मानस पटल पर आच्छादित करने में स्वामी तुलसीदास जी ने अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भक्ति और संगीत का सम्बन्ध अनन्य एवं अन्योन्याश्रित है। पंडित ओमकारनाथ ठाकुर ने कहा है "भक्ति युगीन कवियों के पद अद्वितीय हैं जैसे शुद्ध भावनामय इनके पद हैं वैसा ही तन्मयकारी है इनका संगीत"। भक्ति और संगीत के शाश्वत सम्बन्ध को स्वीकार करते हुए स्वयं तुलसी ने अपनी भक्तिमय काव्य साधना में संगीत को महत्त्व दिया है- " चौथी भगति मम गुन गन करह कपट तजि गान "-(वि. प.)

तुलसी कृत छंद , प्रबंध, गीत, पद राग, ताल आदि सभी संगीत की पारिभाषिक शब्दावली के अंतर्गत ही गाते हैं । सारंग, मल्हार, सोरठ, मारू आदि शब्द उनके राग ज्ञान के परिचायक हैं। भाव, समय, ऋतू के अनुकूल रागों का प्रयोग उन्होंने अपने काव्यों में किया है। हालाँकि संगीत शास्त्र की दृष्टि से तुलसीदास जी के गीत शब्द प्रधान अधिक हैं स्वर प्रधान कम।

तुलसी काव्य में लोक गीतों की झलक भी मिलती है। किसी भी मांगलिक अवसर पर तुलसी के छंदों में लोक ध्वनियों का एहसास मिलता है। पुत्रोत्सव,हो या विवाह उत्सव या जीवन के सर्वाधिक महवपूर्ण क्षणों को तुलसी ने अपने पदों और छंदों को लोक संगीत के आधार पर खुल कर प्रकट किया है। बरवै रामायण, जिसके बारे में प्रसिद्ध है कि तुलसीदास ने इसे अपने मित्र रहीम की रूचि के अनुसार लिखा था, बरवै लोक छंद ही है। अवधी का यह छंद सावन के झूले और होली के गीतों से सम्बन्ध रखता है। तुलसीदास ने जिस गीतिकाव्य को प्रवाहित किया है वह भारत की प्राचीन गीतिकाव्य से सम्बन्ध रखती है। इस परंपरा का सम्बन्ध वैदिक युग से आरम्भ है। गीति काव्य का मूल स्रोत साम वेद है। इसमे मधुरता, गेयता आदि सभी गुण विद्यमान है।

जहाँ माधुर्य और करुणा हो संगीत वहीँ उपजता है। परुष या कटु तत्वों से इसका कोई मेल नहीं होता। गस्वामी तुलसीदास जी की लगभग समस्त रचनाएं भक्ति भावना से ओत प्रोत हैं जहाँ संगीत का सृजन बड़ी सरलता से हो जाता है। तुलसीदास जी ने अपनी रचनाओं से यह सिद्ध कर दिया है की रागों और कविता में बहुत घनिष्ट सम्बन्ध है। शारंगदेव जी ने संगीत रत्नाकर

में 'वग्गेय्कार ' को परिभाषित करते हुए कहा है –'वाक् और गेय दोनों को करता है वही वाग्गेयकार कहलाता है। वाक् का अर्थ है पद्य रचना और गेय का अर्थ है स्वर रचनाद्यतात्पर्य यह है की जिसे पद्य रचना और स्वर रचना दोनों का ज्ञान हो उसे प्राचीन विद्वानों ने वाग्गेयकार की संज्ञा दी थी। गोस्वामी तुलसीदास जी में एक उच्च कोटि के वाग्गेयकार के समस्त गुण मौजूद थेद्यसंगीत में प्रयुक्त होने वाले शुद्ध –विकृत 12 स्वरों के समायोजन से अलग अलग रस और भाव की निष्पत्ति होती हैद्य जैसे– भक्ति और करूँ रस के लिए रे_ ध_ (कोमल) वाले राग जैसे भैरव, कलिंगडा आदि राग उपयुक्त हैं। इसी प्रकार कोमल ग और नि वाले राग श्रृंगार रस के लिए उपयुक्त हैं। तुलसीदास ने उन सभी रागों को लिया है जो शांत और भक्ति रस को प्रकट करते हैं।

उपर्युक्त तत्थ्यों के आधार पर यह निः संकोच कहा जा सकता है कि गोस्वामी तुलसीदास भारतीय संस्कृति के सच्चे प्रतिनिधि थेद्यइनकी साहित्य साधना में लोक विचार एवं लोक जीवन शैली का प्रत्यक्ष दर्शन होता है। लोक भावना, भक्ति और संगीत के अनुपम समायोजन कर तुलसीदास जी ने न केवल अपनी कृत्यों को अमरता प्रदान किया अपितु शास्त्रीय संगीत के अमृत बूँद से जनमानस को भी तृप्ति पहुंचाई है।

संदर्भ

- विनय पत्रिका – पृ0सं0 45
- श्रीकृष्ण गीतावली –तुलसीदास – पृ0सं0 4
- आचार्य रामचन्द्र शुक्ला ख्र त्रिवेणी
- https://www.timesnowhindi.com › spirituality
- https://www.hindigyansagar.com ›
- https://ebooks.inflibnet.ac.in ›
- https://www.apnimaati.com ›

।उतपजं च्तपलंउअंकं

ोपेजंदज च्तवमिेवत

क्मचंतजउमदज वि डनेपब

ैनदकमतूंजप डीपसं डींअपकलंसंलं

ज्पसां डंदरीप ठींहंसचनत न्दपअमतेपजल

ब्वदजंबजः 8476031196

कृषि पद्धति में हो रहे परिवर्तनों का कृषि उत्पादन पर प्रभावः नालंदा जिला का एक भौगोलिक अध्ययन

सोनू कुमार

शोध-छात्र, भूगोल विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

प्रो० (डॉ०) विभा सिंह

पर्यवेक्षिका, भूगोल विभाग, गया कॉलेज, गया

सारांश

कृषि एक विविध और महत्वपूर्ण क्षेत्र है जो देष की अर्थव्यवस्था और जीविका के लिए केन्द्रीय है। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार 69 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है साथ हीं बिहार में 90 प्रतिशत लोग गाँव में निवास करती है और 80 प्रतिशत जनसंख्या कृषि कार्य पर निर्भर है। नालंदा, बिहार राज्य के 38 जिलों में से एक है। कृषि क्षेत्र में नालंदा जिला बिहार राज्य व पूरे भारत में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। पिछले दो दशकों में नालंदा जिले ने कृषि के कई पहलुओं में परिवर्तन देखा है जिसमें कृषि यंत्रीकरण का प्रयोग में विकास, फसल विविधिकरण, जल प्रबंधन, तकनीकी उन्नयन तथा जैविक कृषि का विस्तार प्रमुख है। इन परिवर्तनों को आगे बढ़ाने में केन्द्र और राज्य सरकार की नीतियों व योजनाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। प्रधानमंत्री किसान सम्मान निधि फसल बीमा योजना, मृदा स्वास्थ्य कार्ड, कृषि यंत्रीकरण, जैविक खेती प्रोत्साहन, सूक्ष्म सिंचाई योजना और विभिन्न कृषि विज्ञान केन्द्र के कार्यक्रमों व राज्य सरकार की मुख्यमंत्री निश्चय योजना, हर खेत तक सिंचाई, बिहार राज्य फसल सहायता योजना, बागवानी विकास योजना, जीविका सामुदायिक खेती कार्यक्रम, पशुपालन एवं डेयरी योजनाओं ने जिले में कृषि उत्पादन को बढ़ाया है। इन सभी नीतियों व योजनाओं से जिले के किसानों की आय, उत्पादकता, तकनीकी ज्ञान और जोखिम वहन क्षमता में सुधार आया है।

सूचक शब्दः- कृषि पद्धति, कृषि यंत्रीकरण, फसल विविधिकरण, तकनीकी उन्नयन

परिचय

भारत में कृषि प्रणाली लगातार परिवर्तनशील रही है और वर्ष 1960 के बाद यह बदलाव और अधिक तीव्र गति से हुआ है। कृषि पर उच्च जनसंख्या दबाव, बदलता जलवायु परिदृष्य, तकनीकों का विकास, रोजगार की आवश्यकता और सरकार द्वारा चलाई गई विभिन्न योजनाओं ने कृषि पद्धति के परिवर्तन में महत्वपूर्ण भूमिका रही जिससे कृषि पद्धति में व्यापक परिवर्तन हुआ है। बिहार राज्य एक कृषि प्रधान राज्य है, नालंदा जिला कृषि प्रधान क्षेत्रों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। जिले में पहले जहाँ कृषि कार्य परंपरागत तरीके से होती थी जिसमें हल-बैल से खेतों की जुताई, फसलों की कटाई में अधिक मानव श्रम का उपयोग, सिंचाई-तालाब नदियाँ, कुँओं के द्वारा किया जाता था। परंपरागत बीजों का उपयोग होता था, परंतु वर्तमान समय में कृषि भूमि की जुताई में ट्रैक्टरों का उपयोग, सिंचाई में डीजल और विद्युत पंपसेटों का प्रयोग, उन्नत व संश्लेषित बीजों का प्रयोग वैज्ञानिक तकनीकों का प्रयोग हो रहा है। धान की खेती में जीरो टिलेज, पैडी ट्रांसप्लांट, श्री विधि का उपयोग साथ ही इंडो इजराइल विधि से कृषि, जैविक कॉरिडोर के अंतर्गत जैविक कृषि, समेकित कृषि, व्यापारिक कृषि जिले के किसानों द्वारा किया जा रहा है। रसायनिक उर्वरकों व कीटनाशकों का प्रयोग श्री कृषि में किया जा रहा है जिसके कारण यहाँ की कृषि का स्वरूप अब आधुनिक कृषि की ओर मुड़ गया है। जिसके कारण फसलों के उत्पादन में वृद्धि देखने को मिला है। इन सभी परिवर्तनों के पीछे सरकारी हस्तक्षेप एवं योजनाओं का प्रभाव विषेष रूप से महत्वपूर्ण है।

अध्ययन क्षेत्र

नालंदा जिला बिहार के मध्य भाग में बसा एक महत्वपूर्ण जिला है और कृषि यहाँ की मुख्य आर्थिक गतिविधि है। भौगोलिक दृष्टि से इस जिला को दो भागों में विभाजित किया गया है। प्रथम भाग को उत्तर का मैदान तथा द्वितीय भाग को दक्षिण पूरब का पहाड़ी भाग। यह प्राचीन मगध की राजधानी और भगवान बुद्ध और महावीर के निवास स्थान के रूप में सीखने की जगह थी। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार यहाँ की कुल जनसंख्या 28,77,653 है। यह जिला 03 अनुमंडल, 20 ब्लॉक, 249 ग्राम पंचायत तथा 1001 ग्रामों में विभाजित है। यह 24 डिग्री 57 मिनट से 25 डिग्री 27 मिनट उत्तरी अक्षांष एवं 85 डिग्री 9 मिनट पूरब, 85 डिग्री 56 मिनट पूर्वी देषांतर तक विस्तृत है।

परिकल्पना

1. सरकारी कृषि योजनाओं ने नालंदा जिला में कृषि पद्धति परिवर्तन को सकारात्मक दिशा दी है।
2. सरकारी नीतियों का कृषि उत्पादन में वृद्धि पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है।

उद्देश्य

1. नालंदा जिले में कृषि पद्धति में हो रहे परिवर्तनों की पहचान करना।
2. कृषि पद्धति परिवर्तन और कृषि उत्पादन के बीच संबंध स्थापित करना।

विधि-तंत्र

इस अध्ययन में नालंदा जिले में कृषि पद्धति परिवर्तन पर सरकारी नीतियों और योजनाओं का उत्पादन पर प्रभाव को समझने के लिए वर्णनात्मक एवं विष्लेषणात्मक शोध-पद्धति अपनाई गई है। आंकड़ों का संग्रह प्राथमिक व द्वितीयक स्त्रोतों से किया गया है। प्राथमिक आंकड़ों के अंतर्गत किसानों से प्रष्नावली, व्यक्तिगत साक्षात्कार, खेतों के प्रत्यक्ष निरीक्षण के माध्यम से एकत्रित किए गए हैं जिसमें बहुस्तरीय नमूना पद्धति के अनुसार नालंदा जिले में कुल 03 अनुमण्डलों से विभिन्न आकार के 120 किसानों को शामिल किया गया है। द्वितीयक स्त्रोत के अंतर्गत जिला कृषि कार्यालय, आर्थिक सर्वेक्षण, कृषि विज्ञान केन्द्र हरनौत की रिपोर्ट व सरकारी योजनाओं के दस्तावेजों, पत्रिकाओं की सहायता ली गई है।

नालंदा जिले में कृषि पद्धति में परिवर्तन

नालंदा जिला कृषि क्षेत्र में बिहार राज्य के अग्रणी जिलों में से एक है। यहाँ की भौगोलिक विशेषताएँ, मृदा की उर्वरता, जल संसाधन, इसे एक प्रमुख कृषि क्षेत्र के रूप में स्थापित करता है। भारत में 1960 के दशक में हुए हरित क्रांति का प्रभाव यहाँ के कृषि पर भी पड़ा है, जिससे यहाँ की कृषि पद्धति में व्यापक और बहुआयामी परिवर्तन हुए है। ये परिवर्तन केवल वैज्ञानिक व तकनीकी प्रगति के कारण ही नहीं हुआ है अपितु सरकारी योजनाओं, बाजार की आवश्यकताओं, किसानों की जागरूकता, सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों से भी जुड़ा है जिसके कारण आज नालंदा की कृषि एक नई दिशा की ओर अग्रसर है, जहाँ परंपरागत कृषि से आगे आधुनिक तकनीक, नवाचार और उत्पादकता को प्राथमिकता दी जा रही है।

सिंचाई व्यवस्था में परिवर्तन

नालंदा जिले की कृषि पद्धति में सबसे बड़ा परिवर्तन सिंचाई के साधनों में हुआ है। पहले जिला में कृषि मानसुन पर निर्भर थी जिससे फसलों का उत्पादन अस्थिर रहता था। परंतु विगत कुछ वर्षों में निजी बोरवेल, नलकूप, डीजल पंप, बिजली चालित पंप सेटों की संख्या में वृद्धि हुआ है। इन सभी के अतिरिक्त प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना के तहत ड्रिप सिंचाई और स्प्रिंकल तकनीक का उपयोग कृषि कार्य में बढ़ा है। नहरों और तालाबों को पुनर्जीवन से भी सिंचाई क्षमता में सुधार हुआ है। तालिका 1.1 के अनुसार वर्ष 2018-19 में कुल 211.34 हजार हेक्टेयर भूमि नालंदा जिला में सिंचित हुआ था जिसमें 27.47 हजार हेक्टेयर नहरें 177.52 हजार हेक्टेयर नलकूपों, 195 हजार हेक्टेयर भूमि अन्य कुपों, 4.76 हजार हेक्टेयर क्षेत्रफल अन्य स्त्रोतों से सिंचित हुआ था। वहीं वर्ष 2022-23 में कुल 225.61 हजार हेक्टेयर भूमि जिले की सिंचित हुआ जो वर्ष 2018-19 की अपेक्षा 14.27 हजार हेक्टेयर भूमि अधिक सिंचित हुआ।

तालिका 1.1: नालंदा जिला में वर्षवार सिंचित क्षेत्रफल (क्षेत्रफल हजार हे0 में)

वर्ष	*नहरें*	*नलकूप*	*अन्य कूप*	*अन्य स्त्रोत*	*योगफल*
2018–19	27.47	177.52	1.59	4.76	211.34
2019–20	28.4	183.51	1.64	4.92	213.47
2020–21	28.34	184.23	1.66	4.98	219.21
2021–22	29.04	187.66	1.68	5.02	223.40
2022–23	29.33	189.51	1.69	5.07	225.61

स्त्रोत: आर्थिक सर्वेक्षण, वित्त विभाग, बिहार सरकार 2018–23

प्राथमिक सर्वेक्षण में जिले के तीन अनुमण्डलों हिलसा जो मुख्य रूप से ग्रामीण व कृषि आधारित है। बिहारषरीफ जो सबसे बड़ा और शहरीकरण है तथा राजगीर अनुमण्डल जो सबसे छोटा है परंतु पर्यटन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। तीनों अनुमण्डलों के 40–40 किसानों से पूछा कि आप खेतों की सिंचाई में किस प्रकार के साधन का प्रयोग करते हैं। तालिका 1.2 के अनुसार 20 प्रतिशत लोग तालाब, 21.66 प्रतिशत लोग नहरों के द्वारा, 44.16 ट्यूबवेल व बोरिंग के माध्यम से 6.66 प्रतिशत लोग ड्रिप सिंचाई का प्रयोग, जो बड़े–बड़े खेतों में तथा आधुनिक खेती में 7.50 प्रतिशत लोग स्प्रिंकल से खेतों की सिंचाई यहाँ के किसानों द्वारा किया जाता है।

तालिका 1.2: नालंदा जिला में किसानों द्वारा सिंचाई के विभिन्न साधनों का प्रयोग

सिंचाई उपकरण	*किसानों की संख्या*	*प्रतिशत*
तालाब	24	20
नहरें	56	21.66
ट्यूबवेल व बोरिंग	53	44.16
ड्रिप सिंचाई	8	6.66
स्प्रिंकल सिंचाई	9	7.50
कुल	120	100

स्त्रोत: शोधार्थी द्वारा संकलित

कृषि यंत्रीकरण का विस्तार

नालंदा जिले में कृषि में पहले जहाँ हल बैल, सिंचाई के साधनों में तालाब, कुआँ, कंरिग के माध्यम से खेतों की सिंचाई, फसलों की बुआई, कटाई के लिए मानव श्रम की आवश्यकता पड़ती थी जो कृषि यंत्रीकरण के कारण खेती को श्रम–साधन से पूँजी–सघन दिषा की ओर मोड़ दिया है। अब ट्रैक्टर, पावर–टिलर, रोटावेटर, रींपर, थ्रेसर, मल्चिंग मशीनें, स्प्रे–मशीनों का उपयोग यहाँ हो रहा है। सरकार द्वारा कृषि यंत्रों को खरीदने के लिए किसानों को सब्सिडी भी प्रदान करती है। तालिका 1. 3 के अनुसार वर्ष 2015–16 में 125 ट्रैक्टर पर सब्सिडी प्राप्त हुआ तो वहीं वर्ष 2023–24 में 2015–16 की तुलना में 135 ट्रैक्टर अधिक कुल 258 ट्रैक्टरों पर यहाँ के किसानों को सब्सिडी प्राप्त हुआ। कंबाइन हार्वेस्टर वर्ष 2015–16 में 6 तो वर्ष 2023–24 में 75 कंबाइन हार्वेस्टर पर सब्सिडी प्राप्त हुआ। पंप सेट की संख्या में 2015–16 की तुलना में वर्ष 2023–24 में 37 अधिक पंप सेटों पर सब्सिडी प्राप्त हुआ, तो पावर टिलर और शारीरिक शक्ति चलित औजार में कमी देखने को मिला। वर्ष 2015–16 में 14 थ्रेसर पर तो 2, 2018–19 में 92 तथा वर्ष 2023–24 में 43 थ्रेसरों पर यहाँ के किसानों को सब्सिडी प्राप्त हुआ।

तालिका 1.3: नालंदा जिला में सब्सिडी से प्राप्त कृषि उपकरण 2015–16, 2018–19, 2023–24

कृषि उपकरण	*2015–16*	*2018–19*	*2023–24*
ट्रैक्टर	123	208	258
कंबाइन हार्वेस्टर	6	41	75
पंप सेट	87	190	126
पावर टिलर	447	204	71
शारीरिक शक्ति चलित औजार	1081	580	815
थ्रेसर	14	92	43

स्त्रोत: आर्थिक सर्वेक्षण, वित्त विभाग, बिहार सरकार, 2015–24

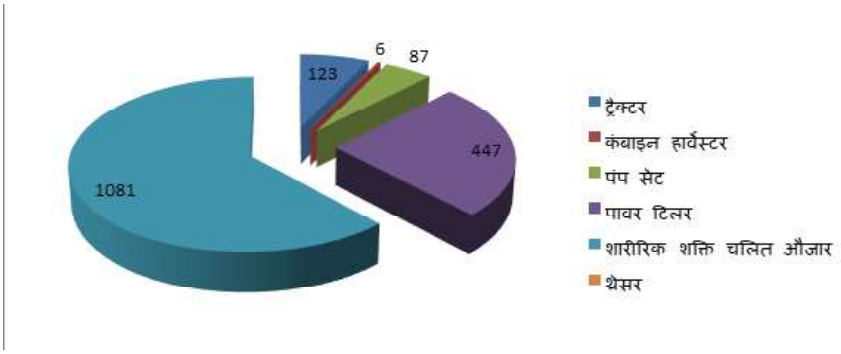

चित्र सं0-1.1: नालंदा जिला में सब्सिडी से प्राप्त कृषि उपकरण 2015-16, 2018-19, 2023-24

इस संबंध में प्राथमिक सर्वेक्षण के दौरान पता चला कि जो किसान समृद्ध व जिनके पास खेती की जमीन अधिक है उनको सब्सिडी पर कृषि उपकरण अधिक प्राप्त हुआ। छोटे किसानों की संख्या कम है तथा वे कृषि उपकरणों को किराये पर खेती के समय ले आते हैं। इस प्रकार जब हमने प्रश्न किया कि खेती में कृषि उपकरणों का प्रयोग करते है तो 140 किसानों में 108 किसानों ने माना वे खेती में कृषि उपकरणों का प्रयोग करते हैं। 12 किसानों ने माना कि खेत का आकार छोटा होने के कारण प्रयोग नहीं करते है।

तालिका 1.4: नालंदा में किसानों द्वारा कृषि उपकरणों का प्रयोग

कृषि उपकरणों का प्रयोग	*संख्या*	*प्रतिशत*
हाँ	108	90
नहीं	12	10
कुल	120	100

स्रोत: शोधार्थी द्वारा संकलित आंकडे

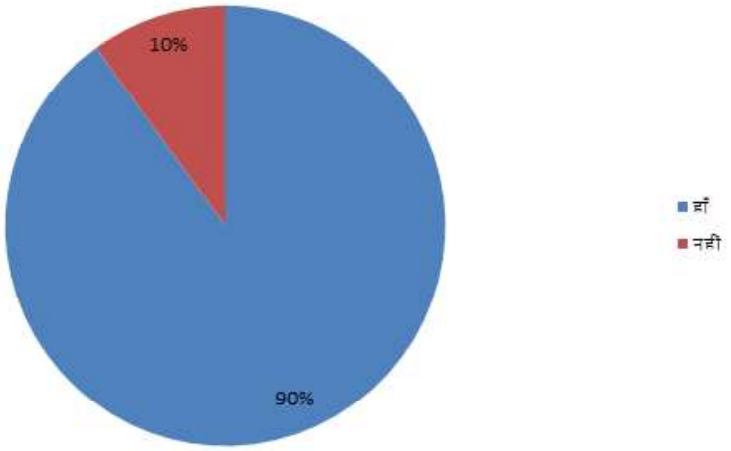

चित्र संख्या-1.2: नालंदा में किसानों द्वारा कृषि उपकरणों का प्रयोग

नालंदा कृषि में उर्वरकों के खपत में वृद्धि

वर्ष 1960 के दशक के बाद भारत के कृषि में परिवर्तन देखने को मिलता है। हरित क्रांति जिसका प्रभाव नालंदा के कृषि पर भी पड़ा। यहाँ के किसानों को खेती करने पर फसल उत्पादन अधिक नहीं होता था जिसके कारण जीवन निर्वाह कृषि ही जिले में होती थी। परंतु पिछले कई दशकों से सरकार की योजनाओं व नीतियों के कारण फसलों के उत्पादन में रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग किया जाने लगा है जिससे किसानों के फसलों के उत्पादन में वृद्धि देखने को मिलता है जिससे उनकी आय में वृद्धि हुई तथा आर्थिक व सामाजिक रूप से समृद्ध भी हुए। सरकार द्वारा रसायन उर्वरकों की सब्सिडी देकर किसानों के लिए उपलब्ध कराया जाता है। तालिका 1.5 के अनुसार करोना के कारण रसायन उर्वरकों के प्रयोग में थोड़ा कमी आयी है, परंतु उर्वरकों का प्रयोग निरंतर हो रहा है। वर्ष 2019-20 में यूरिया, डीएपी, एसएसपी, म्यूरिएट ऑफ पोटाष, अमोनियम

सल्फेट, मिश्रित उर्वरक का कुल 155.5 हजार टन का प्रयोग, तो वर्ष 2021–22 में 129.48 तथा वर्ष 2023–24 में 146. 64 हजार टन उर्वरकों का प्रयोग हुआ है। नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाष का प्रयोग वर्ष 2019–20 में 229.2 हजार टन, वर्ष 2021–22 में 189.54 हजार टन तो वर्ष 2023–24 में 214.46 हजार टन का प्रयोग यहाँ के किसानों के द्वारा प्रयोग हुआ है।

तालिका 1.5: नालंदा जिला में उर्वरकों की खपत (हजार टन में)

वर्ष	*यूरिया*	*डीएपी*	*एएसपी*	*म्यूरिएट ऑफ पोटाष*	*अमोनियम सल्फेट*	*मिश्रित*	*योग*	*नाइट्रोजन*	*फास्फोरस*	*पोटाष*	*योग एनपीके*	*कुल योग*
2019–20	108.7	22.7	9.2	3.7	1.4	9.8	155.5	55.8	14.6	3.3	73.7	229.2
2020–21	103.6	24.3	8.9	3.3	1.4	9.8	151.2	53.8	15.2	2.8	71.8	227
2021–22	83.01	16.47	10.37	0.39	1.16	18.07	129.48	44.06	13.59	2.41	60.06	189
2022–23	98.94	19.93	13.27	2.16	1.48	94.16	149.93	51.68	14.68	2.05	68.40	218
2023–24	105.19	17.17	10.01	1.34	1.30	11.63	146.64	53.69	12.17	1.47	67.82	214.4

स्त्रोत: आर्थिक सर्वेक्षण, वित्त विभाग, बिहार सरकार 2019–24

प्राथमिक सर्वेक्षण के दौरान हमने किसानों से प्रष्न किया कि क्या आप पहले की तुलना में पिछले 10–15 वर्षों से रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग अपने फसलों के उत्पादन के लिए करते है और इससे फसलों के उत्पादन में वृद्धि हुआ है तो जिले के 03 अनुमण्डलों के 120 किसानों में से 102 किसानों ने माना कि वे कृषि में रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग करते हैं परंतु अब धीरे–धीरे जिले में किसान रसायनिक उर्वरक की जगह जैविक खादों का प्रयोग करने लगे हैं।

तालिका–1.6: नालंदा जिला में रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग

रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग	*सख्या*	*प्रतिशत*
हाँ	102	85
नहीं	18	15
कुल	120	100

स्रोत: शोधार्थी द्वारा संकलित आंकड़े

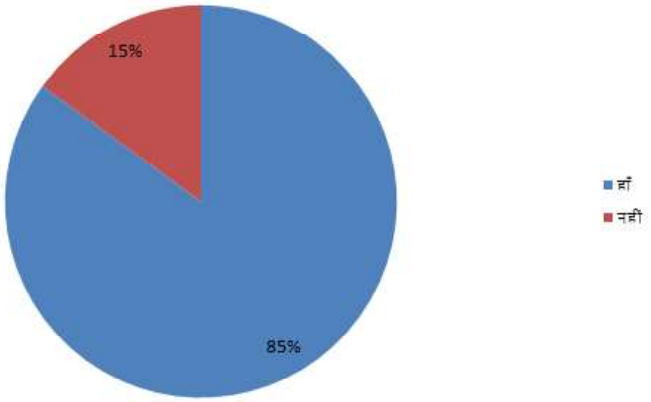

चित्र संख्या–1.3: नालंदा जिला में रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग

नालंदा जिला में कृषि पद्धति परिवर्तन व फसलों के उत्पादन

भारत में हरित क्रांति के बाद कृषि क्षेत्र में परिवर्तन आया। इस परिवर्तन में सरकारी नीतियों व योजनाओं का महत्वपूर्ण योगदान है। नालंदा जिले में भी इसका प्रभाव देखने को मिलता है क्योंकि यहाँ के किसानों द्वारा आधुनिक, वैज्ञानिक तकनीकों के द्वारा कृषि किया जा रहा है जिसके कारण कृषि पद्धति में परिवर्तन आया। किसान पारंपरिक फसलों की जगह व्यावसायिक फसलों का उत्पादन, समेकित कृषि, जैविक कृषि किया जा रहा है। इसके लिए सरकार द्वारा योजनाओं के माध्यम से किसानों को जागरूक करने का कार्य कर रही है। जैविक कॉरिडोर योजना, जलवायु के अनुकूल कृषि कार्यक्रम, श्री विधि, मिट्टी स्वास्थ्य कार्ड के द्वारा समय–समय पर मिट्टी जाँच, एकीकृत बीज ग्राम योजना आदि। इससे यहाँ के किसानों को लाभ हुआ

है। यह लाभ किसानों को उनके फसलों के उत्पादन में वृद्धि व आय में वृद्धि के रूप में हुआ है। तालिका 1.7 को अनुसरण करने से पता चलता है कि वर्ष 2019–20 की अपेक्षा वर्ष 2023–24 में 164.4 हजार टन अधिक चावल का उत्पादन हुआ। वही गेहूँ की बात करें तो वर्ष 2019–20 में 225.82 हजार टन का उत्पादन हुआ जो वर्ष 2023–24 में 84.48 हजार टन बढ़कर कुल उत्पादन गेहूँ का 310.3 हजार टन हुआ। मक्का जो एक मोटा अनाज है, इसके उत्पादन में भी वृद्धि देखने को मिलता है। वर्ष 2019–20 में 21.26 हजार टन व वर्ष 2023–24 में 28.5 हजार टन हुआ जो 2019–20 की अपेक्षा वर्ष 2023–24 में 6.9 हजार टन का मक्का उत्पादन में वृद्धि देखने को मिलता है। आलू उत्पादन में नालंदा जिला विष्व प्रसिद्ध है। वर्ष 2019–20 में 656.31 हजार टन, तो वर्ष 2022–23 में 887.02 हजार टन का उत्पादन, लेकिन वर्ष 2023–24 में 653.54 हजार टन का उत्पादन हुआ जो वर्ष 2022–23 से कम है। प्याज का उत्पादन में भी वृद्धि हुआ है। वर्ष 2019–20 में कुल 152.83 हजार टन, तो वर्ष 2023–24 में 178.39 हजार टन का उत्पादन हुआ जो वर्ष 2019–20 की अपेक्षा वर्ष 2023–24 में 25.56 हजार टन का वृद्धि हुआ।

तालिका 1.7: नालंदा जिला में वर्षवार विभिन्न फसलों का क्षेत्रफल, उत्पादन (क्षेत्रफल हजार हे0/उत्पादन हजार टन)

		2019–20	2020–21	2021–22	2022–23	2023–24
चावल	क्षेत्रफल	101.75	100.02	109.56	108.09	112.6
	उत्पादन	215.1	294.72	314.75	328.37	379.5
गेहूँ	क्षेत्रफल	89.13	78.27	85.3	83.98	91.6
	उत्पादन	225.82	247.22	269.89	288.67	310.3
मक्का	क्षेत्रफल	5.94	5.6	5.48	5.28	6.2
	उत्पादन	21.26	24.18	22.11	28.09	28.5
आलू	क्षेत्रफल	19.47	24.33	24.33	24.36	24.35
	उत्पादन	656.31	866.99	886.99	887.02	653.54
प्याज	क्षेत्रफल	6.03	8.59	8.17	8.18	7.79
	उत्पादन	152.83	257.7	244.95	244.98	178.39

स्त्रोत: आर्थिक सर्वेक्षण, वित्त विभाग, बिहार सरकार, 2019–24

प्राथमिक सर्वेक्षण के दौरान हमें पता चला कि जिले के किसानों द्वारा नई कृषि उपकरणों, सरकारी योजनाओं, रसायनिक उर्वरकों के प्रयोग से उनके फसलों के उत्पादन में वृद्धि हुआ है। छोटे किसानों का कहना था कि फसलों का उत्पादन में थोड़ा वृद्धि हुआ है। इसके पीछे का कारण उनके खेतों के जोतों का आकार का छोटा होना है। दूसरा जिसके कारण वे अधिकतर जीवन निर्वाह कृषि करते हैं ताकि उनके खाने के लिए वर्ष भर अनाज उपलब्ध हो जाए। वही जिनके पास जमीनें अधिक थी या क्षेत्रफल बड़ा था वो अपने जीविका के साथ–साथ आय के लिए भी फसलों का उत्पादन करते थे। ऐसे किसानों की संख्या अधिक थी। इसलिए अधिकतर किसान ये मानते है कि उनके फसलों के उत्पादन में वृद्धि हुआ है जिससे उनके आय में सुधार हुआ है। हमने किसानों से प्रश्न किया कि क्या नई कृषि पद्धति से कृषि करने से फसलों के उत्पादन में वृद्धि देखने को मिला है तो कुल 120 किसानों में से 106 किसानों ने माना कि उनके फसलों के उत्पादन में वृद्धि हुआ परन्तु 14 किसानों ने कहा कि थोड़ा–बहुत अंतर है, कभी कम और कभी थोड़ा ज्यादा, इसलिए वृद्धि में कोई अंतर नहीं हुआ है।

तालिका 1.8: नालंदा जिला में फसलों के उत्पादन में वृद्धि

वृद्धि	*संख्या*	*प्रतिशत*
हाँ	106	88.33
नहीं	14	11.67
कुल	120	100

स्रोत: शोधार्थी द्वारा संकलित आंकड़े

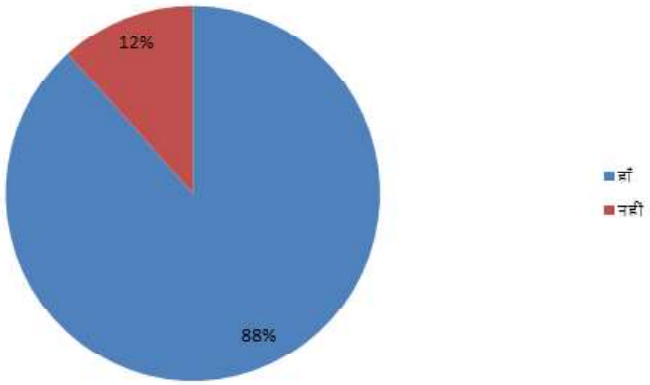

चित्र संख्या-1.4: नालंदा जिला में फसलों के उत्पादन में वृद्धि

निष्कर्ष:- भारत में हरित क्रांति का प्रभाव वर्ष 1960 दशक के बाद कृषि क्षेत्र में परिवर्तन शुरू हुआ। यह परिवर्तन कृषि उपकरण, कृषि विधियाँ, कीटनाषक, रसायनिक उर्वरक होने लगा, जिसके कारण कृषि पद्धति में परिवर्तन होने लगे। जिसमें सरकारी नीतियों व योजनाओं का योगदान भी है। इसका प्रभाव फसलों के उत्पादन में वृद्धि, कृषि क्षेत्र में रोजगार, देष का कृषि क्षेत्र में आत्मनिर्भर होना, देष के जीडीपी में योगदान देखने को मिलता है। बिहार राज्य के नालंदा जिला का योगदान अपने राज्य बिहार में है। यहाँ पहले कृषि परंपरागत तरीके से होता था परंतु पिछले कई दशकों से जिले की कृषि में परिवर्तन देखने को मिलता है। वर्तमान में यहाँ की कृषि में आधुनिक कृषि यंत्र का प्रयोग, रसायनिक उर्वरकों का प्रयोग, वैज्ञानिक तकनीकों का प्रयोग, परंपरागत कृषि से जैविक कृषि, व्यापारिक कृषि, समेकित कृषि, कई नवीन कृषि पद्धतियाँ नालंदा जिले में किसानों के द्वारा अपनाया जा रहा है। उदाहरण स्वरूप इंडो-इजराइल पद्धति, मल्चिंग पद्धति, श्री विधि, जैविक कृषि आदि। इसका परिणाम है कि जिले में फसलों के उत्पादन में वृद्धि देखने को मिलता है जिससे किसानों की आय में वृद्धि हुआ है साथ ही उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है।

संदर्भ

1. आर्थिक सर्वेक्षण, वित्त विभाग, बिहार सरकार
2. कुमार, अरूण (2014) नालंदा जिले के सतत् कृषि विकास के बदलते फसल संयोजक का प्रभाव, पी-एच0डी0 थीसिस, पटना विश्वविद्यालय, पटना
3. कुमार आलोक (2017) नालंदा जिला में कृषि का स्वरूप, इंटरनेशनल एजुकेशनल साइंटिफिक रिसर्च जर्नल्स, वॉल्यूम-3, पेज न0 62-63
4. कृषि जनगणना (2015-16): कृषि विभाग, भारत सरकार
5. दास, एम0 (2021): बिहार में डिजिटल तकनीक और कृषि: अवसर और चुनौतियाँ, पी-एच0डी0 थीसिस, पटना विश्वविद्यालय, पटना
6. सिन्हा, विष्वनाथ प्रसाद एवं नाजिम, मोहम्मद (2016) बिहार का भूगोल, राजेश पब्लिकेशन, नई दिल्ली
7. गुप्ता, डॉ0 अनिल कुमार (2016) ए ज्योग्राफिकल एनालिसिस ऑफ नालंदा जिला बिहार, कला प्रकाशन, वाराणसी

भारत छोड़ो आन्दोलन में बिहार के छात्रों का योगदान

राजेश पासवान

शोधार्थी, इतिहास विभाग, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर, बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

डॉ० अमित कुमार सांतकर

शोध-निर्देषक, सहायक प्राध्यापक, एस.एन.एस. कॉलेज, मोतिहारी, बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर

प्रसंग:- महात्मा गाँधी की गिरफ्तारी तथा मुम्बई में 8 अगस्त 1942 को अखिल भारतीय कंग्रेस कमिटि द्वारा भारत से ब्रिटिश सत्ता की वापसी एवं भारत को स्वतंत्रता प्रदान करने संबंधित प्रस्ताव ने सम्पूर्ण भारत में रजनीतिक जन-आंदोलन की ऐसी लहर पैदा की, जिसने अल्पावधि के लिए सम्पूर्ण ब्रिटिश प्रशासनिक व्यवस्था को पंगु बना डाला। कांग्रेस कमिटि के अधिवेषन में पारित प्रसिद्ध भारत छोड़ो प्रस्ताव में अहिंसक रूप से जितना संभव हो उतने बड़े स्तर पर जनसंघर्ष का आह्वान किया गया था। किंतु इसमें यह भी कहा गया था कि यदि कांग्रेस के सभी नेता गिरफ्तार हो जाए तो स्वाधिन्ता की इच्छा एवं प्रयास करने वाला प्रत्येक भारतीय स्वयं अपना मार्गदर्शक बने।

ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ अंतिम लड़ाई की दृढ़ इच्छाशक्ति तथा संकल्प ने पहली बार भारतीय जन समुदाय की नेतृत्व की बागडोर अपने हाथों में लेने के लिए विवष किया गया था और पहली बार परंपरागत संघर्ष की शैली को छोड़ वे स्वविवेकानुसार आर-पार की लड़ाई लड़ रहे थे। सच तो यह है कि भारतीय जनता के लिए विदेश शासन के जुए को अपने कंधों से उतार फेंकने की स्वत: स्फूर्त प्रेरणा का परिणाम था। भारत छोड़ो आन्दोलन, असहयोग आन्दोलनों तथा स्वनात्मक विरोध के आवरण में ब्रिटिश उपनिवेशवाद विरोधी भावनात्मक उठणता 1942 तक आते-आते अपने प्रकर्ष पर थी जिसको करो या मरो के साथ विस्फोट हुआ और देखते ही देखते संपूर्ण ब्रितानी शासन व्यवस्था जनाक्रोष के तप्त लावे के नीचे दब गया

1942 की महान अगस्त क्रांति में बिहार ने अपने प्राचीन गुण धर्म का निर्वाह किया। छात्र सक्रियता की दृष्टि से अगस्त क्रांति भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास का सर्वाधिक सशक्त और ज्योति परिच्छेद है। वस्तुत: बिहार में भारत छोड़ो आन्दोलन युवा वर्ग तथा छात्रों का आन्दोलन था। लंबे समय से संवैधानिक सुधार तथा स्वशासन की माँग को लेकर आन्दोलन कांग्रेस नेताओं की ब्रितानी शासन व्यवस्था द्वारा निरन्तर उपेक्षा तथा युद्धकाल की विषम परिस्थितियों में भी अंग्रेजों की हठधर्मिता, भारतीय युवा वर्ग के लिए राष्ट्रीय अपमान के समान थी। कांग्रेस के वरिष्ठ नेताओं की गिरफ्तारी ने आहत युवा मानसिकता को बुरी तरह झकझोर दिया और स्वत: स्फूर्त ढंग से उन्होंने आगे बढ़कर संघर्ष की बागडोर अपने हाथों में थाम ली। शिक्षण संस्थाओं में आदर्शमूलक पाठ तथा आधुनिक विचारों का अध्ययन करने वाली युवा पीढ़ी इस आन्दोलन में अभिकरण भी थी और निदशक भी। मुम्बई के तत्कालीन मुख्य सचिव की टिप्पणी भारतीय छात्र समुदाय की भूमिका को स्पष्ट रेखांकित करती है।

उन्होंने लिखा था ''छात्र समुदाय विषेष रूप से आन्दोलन के अग्र भाग में थे और नगरों में ये उपद्रव के प्रमुख कारक भी थे। ''बिहार के मुख्य सचिव की रिपोर्ट थी कि छात्र विशेषत: आरंभिक चरण में अत्यधिक सक्रिय थे तथा संगठन करने एवं तोड़-फोड़ में उन्होंने पहल की। 9 अगस्त 1942 को सूर्योदय से पूर्व अंग्रेजी प्रशासन के द्वारा कांग्रेस को गैरकानूनी संगठन घोषित कर उसके समस्त बड़े नेताओं की गिरफ्तारी कर ली गयी। पटना में गिरफ्तारी की खबर दाबानल की भाँति पलक झपकते पूरे नगर में फैल गई और बड़ी संख्या में लोग अपने प्रिय नेता को देखने सदाकत आश्रम पहुँच गये।

जेल के लिए प्रस्थान करने के क्रम में राजेन्द्र प्रसाद का स्वागत मुसलाधार वर्षा में भींगती असंख्य जनता ने राजेन्द्र प्रसाद जिंदाबाद और अंग्रेजों भारत छोड़ो के नारे से किया। बिहार नेशनल कॉलेज छात्रावास में राजेन्द्र बाबू की गिरफ्तारी की खबर पहुँचते ही बड़ी संख्या में छात्रों का जत्था सड़क पर उतर आया और वे रैली के रूप में पटना की सड़कों पर प्रदर्शन करने

निकल पड़े। समय के साथ-साथ इस रैली में पटना के लगभग सभी स्कूल, कॉलेज के छात्र सम्मिलित हो गए, जिनमें मदरसा शमशुल उलेमा नरूल हुदा के छात्र भी थे, देखते ही देखते पटना की सड़कों पर जन सैलाव उमड़ पड़ा। वन्दे मात्रम, हिन्दुस्तान आजाद करो तथा दुकान बंद करो के नारे लगाते छात्रों के विषाल समूह ने जेल के सामने विशाल प्रदर्षन किया। प्रदर्शनकारी छात्रों तथा अन्य नागरिकों की एक सभा दोपहर बाद पटना विश्वविद्यालय पुस्तकाल परिसर में हुई, जिसमें वक्ताओं ने छात्रों का आह्वान किया वे पढ़ाई का त्याग कर अपनी पूरी ऊर्जा आन्दोलन में लगाये। वकीलों से अपील की गयी कि वे अपनी प्रैक्टीस बंद कर दे। दुकानदारों से 10 अप्रैल को अपनी-अपनी दुकाने बंद रखने का अनुरोध किया गया।

सूचना मिलने पर पटना का आरक्षी अधीक्षक तथा जिलाधिकारी जब अस्पताल पहुँचे तो उन्होंने नर्सों के क्वार्टर के समक्ष इक्ट्ठा होकर छात्रों को नर्सों को हड़ताल में भागीदारी के प्रष्न पर विचार करते पाए। स्थिति की गंभीरता को देखते हुए पटना मेडिकल हॉस्पीटल के अधीक्षक कैप्टन घोष ने राजेन्द्र प्रसाद द्वारा जारी किया गया एक पत्र छात्रों को दिखाया, जिसमें अपील की गई थी, किसी भी आन्दोलनात्मक कार्यक्रम में अस्पताल के कामकाज को प्रभावित न किया जाए। उसी दिन पटना सिविल कोर्ट परिसर में छात्रों ने अंग्रेज विरोधी नारे लगाकर कोर्ट के सामान्य कामकाज को ठप कर दिया। पुलिस ने घटनास्थल पर पहुँचकर कुछ छात्रों को गिरफ्तार कर लिया गया। पटना के मिलर स्कूल तथा दयानन्द हाईस्कूल के अधिकांष छात्र आन्दोलन में शामिल थे। पटना अस्पताल, पटना कॉलेज, साइंस कॉलेज, राममोहन राय स्कूल, पटना कॉलेजिएट स्कूल के छात्रों ने कांग्रेस का झंडा फहराया। आन्दोलनकारी छात्रों की एक सभा बाँकीपुर लान में हुई, जिसमें यह निर्णय लिया गया कि सचिवालय पुलिस साईन न्यालय तथा प्रमुख शिक्षण संस्थाओं के समक्ष धरना का कार्यक्रम होगा।

मुजफ्फरपुर में ग्रीचर भूमिहार ब्राह्मन कॉलेज के छात्रों द्वारा सुबह सात बजे निकाला गया जुलूस संख्या की दृष्टि से उल्लेखनीय था। सरकारी रिपोर्ट के अनुसार इस जुलूस में पाँच हजार से अधिक प्रदर्षनकारी भाग ले रहे थे। पूरे शहर की परिक्रमा करने के बाद छात्रों ने जी.बी.बी. कॉलेज जिला स्कूल माड़वारी स्कूल आदि प्रमुख शिक्षण संस्थाओं में कांग्रेसी झंडा फहराया। छात्रों का जुलूस जब कमिश्नर के कार्यालय की ओर बढ़ा तब पुलिस हरकत में आयी तथा बल प्रयोग द्वारा भीड़ को तितर-बितर कर दिया।

बिहार के अन्य शहरों में भी छात्र बगावत की राह पर थी, 10 अगस्त को भागलपुर में छात्रों ने हड़ताल रखी, जूलूस निकाल कर न्यायालयों के समक्ष प्रदर्शन किया और जिला स्कूल तथा प्रमंडलीय शिक्षा अधीक्षके के कार्यालयों पर झंडा फहराये। 11 अगस्त को छपरा में छात्रों का एक बड़ा जत्था ब्रिटिश शासन विरोधी नारा लगाते हुए शहर में घूमा और बाद में छपरा कोर्ट पहुँच कर तोड़-फोड़ की तथा न्यायिक कार्य को बाधित कर दिया तथा यह घोषणा भी की गिरफ्तार नेताओं को रिहाई होने तक वे स्कूल और कॉलेज का बहिष्कार करेंगे। छपरा जिला के सिवान अनुमंडल के ए.वी. कॉलेज तथा तीन हाई स्कूलों में भी पूरी तरह हड़ताल रही। इसी प्रकार महाराजमंडल हाई स्कूल के छात्र अपने-अपने वर्गों से निकल आये तथा जुलूस निकाला।

11 अगस्त का दिन बिहार में लड़ी गयी आजादी की लड़ाई का अविस्मरणीय दिन था, इस दिवस को अगर स्वतंत्रता की बेड़ी पर की गयी कुछ नौजवानों की पराक्रमयुक्त शहादत का दिन कहा जाए तो कदाचित अनुचित न होगा। पटना में छात्रों की गतिविधियाँ सूर्योदय के साथ ही तेज हो गयी थी। सुबह 6 बजे पटना मेडिकल कॉलेज के परिसर में राष्ट्रीय झंडा फहराया गया। पिछले दो दिनों से शहर में चल रहे प्रदर्शन सरकारी भवनों पर तिरंगा फहराने की घटना तथा नारेबाजी से निपटने के लिए सरकारी तंत्र तैयार था। पूरे पटना शहर में सशस्त्र गोरखा बल तथा लाठी पार्टी की पुलिस की विशेष टुकड़ियाँ तैनात की गयी थी। पटना सिटी के कॉलेज इंडस्ट्रीज के समीप सड़क जाम कर रहे बीस छात्रों को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। एक अन्य घटना में पाँच हजार प्रदर्शनकारियों के समूह ने जिसमें अधिकांश छात्र थे, इसने सिटी कोर्ट में बलपूर्वक प्रवेश कर कांग्रेस का झंडा फहरा दिया। छात्रों का समूह ब्रिटिश शासन का प्रतीक सचिवालय भवन पर झंडा फहराना चाहते थे। वही अंग्रेजी सरकार सचिवालय की सुरक्षा के लिए तत्पर थी। फाटक के अन्दर और बाहर बड़ी संख्या में गोरखा जवान कार्यवाई की मुद्रा में तैयार थे। ताला जड़े बड़े फाटक के अन्दर अंग्रेजों तथा भारतीय अफसरों की टीम जिनमें जिलाधिकारी मिस्टर आर्चर डी.आई.जी. उदित नारायण पाण्डेय, डिप्टी कलक्टर विश्वम्भर चौधरी और डी.एस.पी. अली वषीर प्रमुख खड़े थे।

छात्रों के द्वारा सचिवालय भवन पर झंडा फहराने की संभावना के मद्देनजर सुरक्षा तथा दमन की पूरी तैयारी कर ली थी। ब्रिटिश साम्राज्य के स्थानीय प्रतीक चिन्ह सचिवालय भवन को छात्र शक्ति की गिरफ्त अथवा हमले से बचाने के लिए ब्रिटिश सरकार किसी भी हद तक जाने को तैयार थी। दोपहर के दो बजे छात्रों और नौजवानों का विषाल समूह सचिवालय के समक्ष इक्ट्ठा हो गया था। भीड़ ''अंग्रेजों भारत छोड़ो आन्दोलन'' झंडा ऊँचा रहे हमारा'' ''हम सचिवालय पर झंडा फहरायेंगे'' के

नारों से वातावरण का गुंजायमान कर रही थी। सवा दो बजे के आस-पास पूर्वी फाटक पर एक तिरंगा फहरा दिया गया, जिससे अधिकारियों में अफरा-तफरी मच गयी। वे शीघ्रताषीघ्र भीड़ पर काबू पाना चाहते थे। इसी बीच भीड़ से करतल ध्वनि का गुब्बारा उठा और सबकी निगाहे विधान मंडल भवन के उत्तरी छोर पर बने कंगूरे पर जा टिकी जहाँ एक तिरंगा लहरा रहा था। इस घटना ने ब्रिटिश सरकार के उच्च पदस्थ पदाधिकारियों को तिलमिला दिया। पटना कलक्टर मिस्टर आर्चर ने भीड़ के सम्मुख जाकर गरजते हुए उपस्थित जन समूह से प्रष्न किया। तुम क्या चाहते हो, एक छोटे छात्र ने आवेशपूर्ण जवाब दिया झंडा फहराना। उसने पुनः प्रष्न किया कौन झंडा फहराना चाहता है, जरा आगे आये, थोड़ी ही देर में भीड़ को चीकर ग्यारह छात्रों का दल कतार में खड़ा हो गया।

आर्चर ने कतार में शामिल छोटे छात्र को कड़ककर कहा झंडा फहराने से पहले अपना सीना खोल लो, अभी बात समाप्त भी नही हुई कि उक्त छात्र ने अपना कुरता फाड़कर अपना सीना आगे कर दिया। अहंकार और क्रोध से सुलगते आर्चर का संयम टूट पड़ा और उसके मुख से निकले 'फायर' के आदेश के साथ ही वातावरण गोलियों की तड़तराहट से गूंज उठा। अंधाधुंध गोलियाँ चलाने के परिणामस्वरूप घायल हुए छः छात्रों की तत्क्षण मृत्यु हो गयी और एक ने अस्पताल पहुँचकर दम तोड़ दिया।

''इस घटना में शहीद होने वाले छात्र थे''

1. उमाकान्त प्रसाद सिन्हा (राममोहन राय सेमिनरी पटना की कक्षा 8वीं के छात्र थे)
2. रामानन्द सिंह (राममोहन राय सेमिनरी पटना की कक्षा 11वीं का छात्र थे)
3. सतीष कुमार झा (पटना कॉलेजिएट स्कूल के कक्षा 11वीं का छात्र थे)
4. जगपति कुमार (बिहार नेशनल कॉलेज के द्वितीय वर्ष का छात्र थे)
5. देवीपद चौधरी (मिलर हाई स्कूल की कक्षा 9वीं के छात्र थे)
6. रामगोविन्द सिंह (पुनपुन हाई स्कूल की कक्षा 11वीं का छात्र थे)
7. राजेन्द्र सिंह (पुनपुन हाई स्कूल की कक्षा 11 वीं का छात्र थे)

गोलीकांड की खबर फेलते ही पटना की दुकानें स्वतः स्फूर्त बंद हो गयी। सरकार के प्रति लोगों के मन में घृणा तथा आक्रोश अपने चरम बिंदु पर था। छात्रों के ऊपर हुए बर्बर हमले के विरोध में सचिवालय कर्मियों ने गर्दनीबाग में एक जुलूस निकाला तथा सरकार विरोधी नारे लगाये। पटना मेडिकल कॉलेज परिसर में भी एक सभा हुई जहाँ जनता ने अपने गम गुस्से का खुलकर इजहार किया और नारे लगाये।

सरकार के अथक प्रयास के बावजूद विधानमंडल भवन पर झंडा स्वतः स्फूर्त उग्र चेतना की अभिव्यक्ति था। पटना गोलीकाण्ड की खबर को स्थानीय अखबारों ''इ इंडियन नेशन'' एवं ''सर्चलाईट'' ने प्रमुखता से छापा जबकि राज्यपाल ने रक्षा अधिनियम के तहत आदेश जारी किया था कि 11 अगस्त 1942 को प्रदर्षन तथा गोलीकाण्ड के संबंध में कोई भी क्षेत्रीय समाचार न तो हतांत छापेंगे और न पत्राचारों का उल्लेख करेंगे। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर पड़ रहे सरकारी नियंत्रण से असंतुष्ट होकर सर्चलाईट के संपादक मुरली मनोहर प्रसाद ने त्याग पत्र दे दिया। शीघ्र ही दोनों समाचार पत्रों के प्रकाशन को प्रतिबंधित कर दिया गया। पटना गोलीकाण्ड के समाचार से जेल में बंद सुधारवादी गाँधीवादी नेता तथा समाज के हर धर्म जाति तथा वर्ग के लोगों में ब्रिटिश सरकार के विरोध रोष तथा घृणा के भाव भर उठे।

12 अगस्त की शाम कांग्रेस मैदान में जगत नारायण लाल की अध्यक्षता में एक विराट जनसभा हुई जिसमें प्रस्ताव पारित किया गया कि रेल, सड़क, डाक, तार तथा अन्य सरकारी संस्थाओं पर अधिकार कर लिया जाए और सरकारी अभिलेखों को जला दिया जाए।

बिहार में उठी अगस्त क्रांति की आंधी ने देखते ही देखते सम्पूर्ण बिहार के संचार तंत्र तथा सम्पूर्ण भागों को बाधित कर डाला। दरभंगा के जिलाधिकारी ने मुख्य सचिव को सूचित किया कि सारे जिले में बलवाईयों तथा छात्रों के झुंड ने रेलवे को अपने कब्जे में ले लिया और बिना टिकट उस समय तक रेल में सफर करते रहे जब तक रेलवे ने पूर्णतः काम करना बंद न कर दिया। पटना सचिवालय गोलीकाण्ड के बाद स्वतः प्रेरित कार्रवाई व्यापक रूप से शुरू हो गयी।

अनेक स्थानों पर टेलीग्राम और टेलीफोन के तार काट दिये गये। सड़कों पर सिल्लों डाल-पात पत्थर आदि रखकर रूकावटें खड़ी कर दी गयी। सड़के काटी गयी, पुल तोड़े गये या उन्हें क्षति पहुँचायी गयी। रेलवे संचार अस्त-व्यस्त हो चुका था क्योंकि

अनेक स्थानों पर रेल की पटरियाँ उखाड़ी जा चुकी थी, मेन लाइन पर गाड़ियों का आना-जाना रूक गया था। पटना के फतुहा में डाक घर लुट लिया। बख्तियारपुर थाना पर आक्रमण करके रेलवे की सम्पत्ति नष्ट कर दी गयी। सदीषोपुर रेलवे स्टेषन और नौबतपुर डाकबंगला पर छात्रों की एक बड़ी भीड़ ने आक्रमण कर क्षति पहुँचाई। बिहार की तिरहुत प्रमंडल ने दो सप्ताह तक कोई सरकार की नहीं थी। सचिवालय गोलीकाण्ड के बाद पटना दो दिन तक बेकाबू रहा। उत्तर और मध्य बिहार के 30 प्रतिशत थानों पर जनता का राज हो गया था।

संदर्भ-सूची

1. डॉ0 कुमार अजीत, सुमीत रंजन, ''छात्र आन्दोलन का राजनीतिक परिप्रेक्ष्य'', समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली, 2007, पृष्ठ संख्या-63
2. शुक्ल रामलखन (सं0) ''आधुनिक भारत का इतिहास'' हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेषालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृष्ठ संख्या-591
3. दत्त के.के. ''बिहार में स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास भाग-3, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1974, पृष्ठ संख्या-59
4. सरकार सुमित, ''आधुनिक भारत'' राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1992, पृष्ठ संख्या-445
5. दत्त के.के., 'बिहार में स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास भाग-3, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1974, पृष्ठ संख्या-51
6. चन्द्र बिपिन (सं0) 'भारत का स्वतंत्रता संघर्ष हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृष्ठ संख्या-426
7. श्रीवास्तव नागेन्द्र मोहन लाल 'बिहार में राष्ट्रीयता का विकास' पटना, पृष्ठ संख्या-138
8. डॉ0 कुमार अजीत, सुमीत रंजन, 'छात्र आन्दोलन का राजनीतिक परिप्रेक्ष्य', समीक्षा प्रकाशन, दिल्ली, 2007, पृष्ठ संख्या-55
9. सरकार सुमित, 'आधुनिक भारत' राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1992, पृष्ठ संख्या-435
10. चन्द्र बिपिन (सं0) 'भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृष्ठ संख्या-425
11. इस्तीकन पी.एन., 'स्टूडेन्ट अनरेस्ट इन द यूनिवर्सिटीज ऑफ बिहार', पटना, पृष्ठ संख्या-1984
12. शर्मा नागेश्वर प्रसाद, 'बिहार के ढहते विश्वविद्यालय, पटना, 1957, पृष्ठ संख्या-1
13. सिन्हा एनः 'यूनिवर्सिटी एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया', पटना, 1979
14. सिन्हा सच्चिदानंद, 'सम एमीनेंट विहारी कॉन्टेम्पोरेरी लीडर्स', पटना, 1943
15. स्अर्न आर.डबलू., चेंजिंग इंडिया, दिल्ली, 1993

जलवायु परिवर्तन से आधुनिक कृषि पर प्रभावः नालंदा जिला का एक भौगोलिक अध्ययन

चंदन कुमार

शोध-छात्र, भूगोल विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

प्रो० (डॉ०) विभा सिंह

पर्यवेक्षिका, विभागाध्यक्ष, भूगोल विभाग, गया कॉलेज, गया

सारांश

जलवायु परिवर्तन से तात्पर्य पृथ्वी के बढ़ते हुए तापमान से है। सामान्यतः जलवायु परिवर्तन तापमान से है। सामान्यतः जलवायु परिवर्तन तापमान एवं मौसम के दीर्घकालिक बदलाव से है। ये बदलाव प्राकृतिक भी हो सकते हैं, जैसे- ज्वालामुखी विस्फोट, पृथ्वी के अक्ष में झुकाव इत्यादि। साथ ही साथ मानवीय गतिविधियों से भी जलवायु परिवर्तन होते हैं, जैसे-कोयला, गैस, तेल, इत्यादि जीवाश्म ईधनों के जलने के कारण। जलवायु वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया है कि पिछले 200 वर्षों में वैश्विक तापमान में वृद्धि हुई है।

पृथ्वी की सतह का औसत तापमान 19वीं सदी के उत्तार्द्ध के तुलना में लगभग 1.42 डिग्री सेल्सियस अधिक है। पिछले एक लाख वर्षों में से इसकी तुलना अधिक है।

संयुक्त राष्ट्र के रिपोर्ट के अनुसार जलवायु परिवर्तन का कारण जीवाश्म ईधनों से उत्सर्जित गैसे हैं।

इस शोध प्रपत्र में जलवायु परिवर्तन से होने वाले प्रभाव का नालंदा जिला में क्या प्रभाव पड़ रहा है इसका अध्ययन करना है। इस शोध पत्र में प्राथमिक व द्वितीयक स्त्रोतों से आँकड़ा एकत्रित किया जाएगा।

कूट शब्दः- जलवायु परिवर्तन, जीवाश्म ईधन, तापमान

परिचय

जलवायु परिवर्तन और कृषि का पारस्परिक संबंध है जो कि वैष्विक स्तर पर विद्यमान है। ग्लोबल वार्मिंग के कारण कृषि को प्रभावित करने वाली कई अवस्थाओं में प्रभावित होती है। जैसे कि तापमान, कार्बन डाइऑक्साइड, वर्षा, हिमनदीय प्रवाह आदि। ग्लोबल वार्मिंग से उत्पन्न जलवायु परिवर्तन के समग्र प्रभाव कृषि पर देखने को मिल रहा है। जलवायु परिवर्तन मुख्यतः जीवाश्म ईधन के दहन एवं अन्य कारणों से होता है, जो कि पृथ्वी के तापमान, वर्षा, जलचक्र को प्रभावित कर रहा है। जलवायु परिवर्तन के कारण वर्षा, लू एवं अन्य घटनाओं की आवृत्ति एवं तीव्रता में निरंतर परिवर्तन संभावित है जो कि कृषि तथा कृषि उत्पाद को प्रभावित करता है।

कृषि बिहार राज्य की अर्थव्यवस्था का मूल आधार है यहाँ की अधिकांष आबादी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से कृषि पर आश्रित है। बिहार के कुल 94163 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में 76 प्रतिशत भाग में खेती की जाती है और लगभग तीन चौथाई आबादी कृषि कार्य में संलग्न है। मिट्टी की विशेषता, वर्षा, तापमान और इलाके के आधार पर बिहार को चार मुख्य कृषि जलवायु क्षेत्र में बांटा गया है। प्रथम जोन में उत्तरी जलोढ़ मैदान, द्वितीय जोन में उत्तर पूरब जलोढ़ मैदान, तृतीय जोन-ए में दक्षिणी पूरब जलोढ़ मैदान तथा तृतीय जोन-बी में दक्षिणी पश्चिमी जलोढ़ मैदान है। प्रत्येक जोन की अपनी अनूठी संभावनाएँ है। जोन-3बी में जलवायु क्षेत्र में नालंदा जिला सम्मिलित है। नालंदा जिला में कृषि कार्य के लिए उपयुक्त मिट्टी, सिंचाई के साधन, कृषि अनुकूल मौसम तथा जुझारू और मेहनती किसान है जो कृषि के क्षेत्र में इस जिला को ख्याति प्रदान कराते हैं। यहाँ कृषि की अपार संभावनाएँ हैं। परंतु मौसम में बदलाव, कम वर्षा तथा जलवायु में परिवर्तन देखने को मिल रहा है जिसके कारण यहाँ के कृषि में उदासीनता नजर आ रही है।

अध्ययन क्षेत्र

नालंदा दक्षिणी बिहार का एक महत्वपूर्ण और उपजाऊ भूमि वाला जिला है। इसका कुल क्षेत्रफल 2367 वर्ग किलोमीटर है जिसे 20 प्रखंडों में विभाजित किया गया है। जैसा कि हम जानते है कि बिहार की जलवायु पर बंगाल की खाड़ी से उत्पन्न मानसून का अधिक प्रभाव देखने को मिलता है। इसलिए नालंदा की भूमि पर भी बंगाल की खाड़ी का मानसून का असर देखने को मिलता है। नालंदा जिला क्षेत्र का जलवायु पूर्णत: पर्वतों से घिरा है और यहाँ की वातावरण में अधिक गर्मी व ठंड पाई जाती है। यहाँ कई इलाकों में कभी-कभी वज्रपात एवं ओले भी पड़ते रहते हैं। इस प्रकार यहाँ की कृषि पर इन प्राकृतिक आपदाओं का कहर देखने को मिलता है। वर्तमान कुछ वर्षों से कम वर्षण और अधिक तापमान जो जलवायु परिवर्तन का संकेत है जिसका प्रभाव नालंदा के कृषि पर देखने को मिल रहा है। यहाँ के किसान सिंचाई के लिए मुख्य रूप से मानसून पर आश्रित रहते हैं परंतु नियमित वर्षा न होने से कृषि प्रभावित हुआ है। यहाँ धान, गेहूँ, आलू और हरी सब्जी का उत्पादन बड़े पैमाने पर होता है। विगत कुछ वर्षों से नालंदा जिला में स्मार्ट कृषि द्वारा मषरूम का उत्पादन, जैविक कृषि की ओर आकर्षित हो रहे हैं।

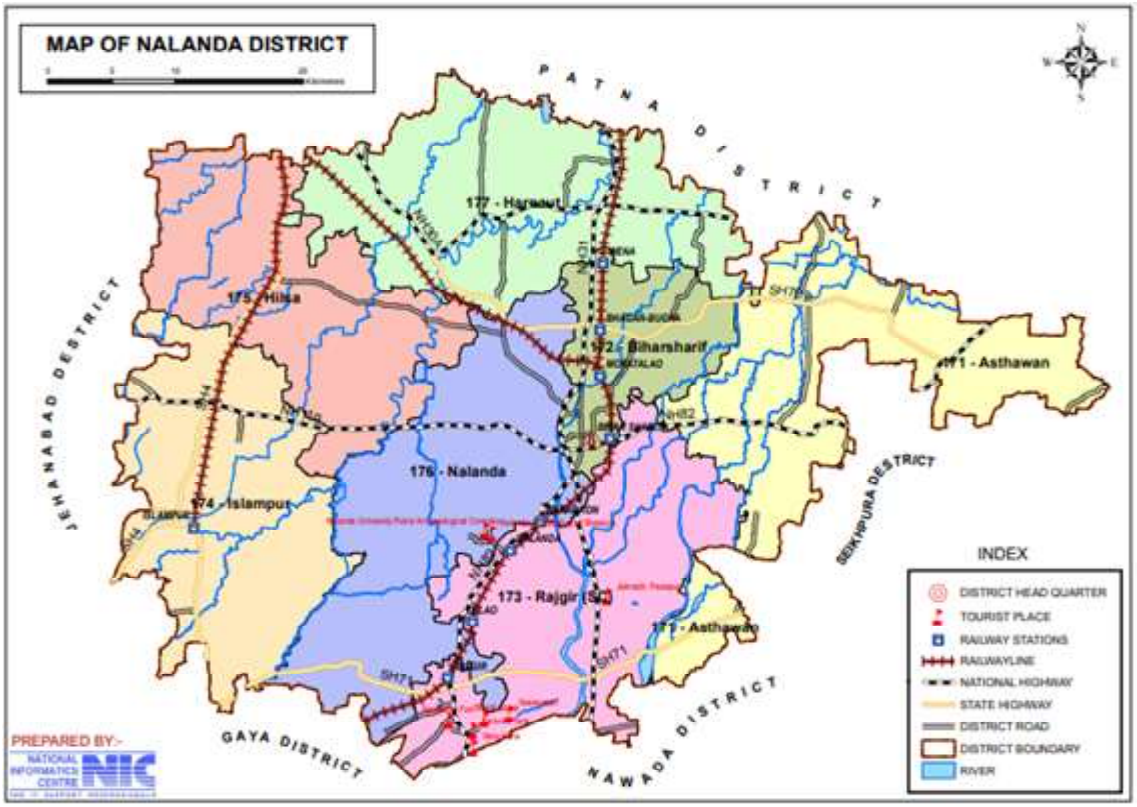

उद्देश्य:-

1. जलवायु परिवर्तन से नालंदा के कृषि पर प्रभाव का पता लगाना।
2. नालंदा जिला में जलवायु परिवर्तन से कृषि में बदलाव का अध्ययन करना।

विधि-तंत्र

प्रस्तावित अध्ययन में प्राथमिक तथा द्वितीयक आंकड़ों का सहारा लिया गया है। इसके अलावा विभिन्न सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थाओं से छपी पत्र-पत्रिकाएँ और पुस्तकों तथा इंटरनेट द्वारा कुछ आंकड़े को एकत्रित किया है। प्राथमिक आंकड़ों के लिए नालंदा जिला के इस्लामपुर और राजगीर प्रखंडों के लगभग 50-50 किसानों से मानसून के अभाव से उत्पन्न समस्या की जानकारी प्राप्त किया तथा खरीफ फसल पर पड़ने वाले प्रभाव की जानकारी प्राप्त हुआ है जिससे यह जानने को मिला कि अभी जो लगा हुआ फसल धान है उसकी उत्पादकता भी प्रभावित हो सकती है और अनुमानित उत्पादन से कम प्राप्त हो सकता है, जिससे किसानों को लाभ लागत से थोड़ा ही हो पाएगा। विगत कुछ वर्षों में यह देखा जा रहा है कि मानसून

सही समय से नही आ रहा है और तापमान भी उच्च बना रहा है। वर्ष 2023 में भी वर्षा काल न के बराबर रहा है जो कि जलवायु परिवर्तन का एक मुख्य कारण है।

कृषि पर जलवायु परिवर्तन के प्रभाव

कुछ जलवायु मॉडल विकसित किए जा चुके हैं जो कि सामाजिक और आर्थिक कारकों (जनसंख्या एवं कार्बन उत्सर्जन) को सम्मिहित करते हैं। इन कारकों के संयोजन एवं वैश्विक और क्षेत्राीय जलवायु विज्ञान की समझ के साथ विशेषज्ञों ने जलवायु परिदृश्य विकसित किये हैं जो कि जलवायु पैटर्न पर विभिन्न व्यवहारों के प्रभावों को प्रस्तुत करते हैं। जलवायु परिदृश्यों में खाद्य उत्पादन पर तापमान, वर्षा एवं मौसम तत्व के संभावित प्रभावों का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। ये परिदृश्य कृषि क्षेत्रों में प्रभावों और दुविधाओं का मूल्यांकन करके विभिन्न जलवायु प्रभावों को अनुकूल करने के लिए सर्वोत्तम कृषि/विधियों के मार्गदर्शन करने की क्षमता रखते हैं।

विश्व कृषि पर जलवायु परिवर्तन का मुख्यतः प्रभाव नकारात्मक होने की संभावना है। यद्यपि कुछ क्षेत्रों और फसलों को लाभ होगा लेकिन अधिकतर को नहीं होगा। वायुमण्डल में CO_2 की मात्रा बढ़ सकती है एवं जल उपयोग की क्षमता में सुधार हो सकता है लेकिन जलवायु प्रभाव विशेषतया लू, सूखा एवं बाढ़ में वृद्धि उपज क्षमता को कम कर सकते हैं। अप्रत्यक्ष जलवायु प्रभावों में घास-पात में अधिकता, रोगजनकों एवं विनाशकारी कीटाणुओं का विस्तार एवं फसल कृषिपरितंत्रा में दूसरे परिवर्तन सम्मिलित हैं।

मृदा प्रक्रियाः मृदा द्वारा कृषि समर्थन एवं भूमि उपयोग के वितरण, मृदा जल संतुलन में परिवर्तन द्वारा प्रभावित होते हैं। मृदा जल में कमी का बढ़ना यानि शुष्क मृदा का और अधिक शुष्क हो जाना, सिंचाई के लिए अधिक जल की आवश्यकता दर्शाते हैं, लेकिन नम क्षेत्रों में मृदा व्यवहार्यता एवं क्षरण जोखिम में सुधार हो सकता है।

फसलों की विकास अवधिः फसल विकास चक्र की अवधि का तापमान से सीधा सम्बंध होता है। तापमान में वृद्धि पौधों के विकास को गति देगी। वार्षिक फसल के लिए बुवाई और कटाई के बीच की अवधि छोटी होगी (मकई फसल की बुवाई अवधि एक से चार सप्ताह के मध्य कम हो सकती है)। इस प्रकार से फसल-चक्र का छोटा होना उत्पादकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाल सकता है।

फसल विकासः कार्बन डाइऑक्साइड वनस्पति के विकास के लिए आवश्यक है। वातावरण में बढ़ती हुई कार्बन डाइऑक्साइड की सांद्रता के सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार के प्रभाव हो सकते हैं। CO_2 के बढ़ने से प्रकाश संश्लेषण की दर में वृद्धि द्वारा सकारात्मक क्रियात्मक प्रभाव होने की संभावना है। वर्तमान के वातावरण में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा 380 भाग प्रति दस लाख ;चचउद्ध है। इसकी तुलना में ऑक्सीजन की मात्रा 210,000 ppm है। इसका तात्पर्य है कि पौधे प्रायः कार्बन डाइऑक्साइड की कमी से ग्रसित हो सकते है, क्योंकि एन्जाइम जो कि CO_2 को निर्धारित करते हैं वे प्रकाशीय श्वसन की प्रक्रिया में ऑक्सीजन को भी निर्धारित करते हैं। कार्बन डाइऑक्साइड में वृद्धि के प्रभाव सी 4 फसलों (जैसे कि मक्का) की तुलना में सी 3 फसलों (जैसे कि गेहूँ) पर अधिक होगा क्योंकि सी 3 फसलें कार्बन डाइऑक्साइड की कमी के प्रति अधिक संवेदनशील होती हैं। अध्ययनों से प्रदर्शित होता है कि बढ़ी हुई CO_2 की मात्रा से पौधों पर कम रंध्र विकसित होते हैं, जिससे कम जल का उपयोग होता है। यदि कार्बन डाइऑक्साइड का स्तर दोगुना हो जाता है तो तापमान और आर्द्रता की इष्टतम परिस्थितियों के तहत पैदावार में 36 प्रतिशत तक वृद्धि हो सकती है।

इसके अलावा कुछ अध्ययन संपूर्ण कृषि प्रणाली पर उच्च कार्बन डाइऑक्साइड की सांद्रता के प्रभावों का विश्लेषण करते हैं। अधिकांश मॉडल जलवायु परिवर्तन से सम्बंधित अन्य कारकों जैसे चरम मौसम की घटनायें, मौसमों के समय परिवर्तन इत्यादि से पृथक CO_2 और उत्पादकता के मध्य संबंध का अध्ययन करते हैं।

फसल गुणवत्ताः अध्ययन दर्शाते हैं कि CO_2 का उच्च स्तर पौधों में नाइट्रोजन लेने की मात्रा में कमी करता है जिसके परिणामस्वरूप फसलों में कम पोषण मात्रा होती है। यह मुख्य रूप से गरीब देशों की जनसंख्या पर प्रभाव डालेगा जो कि अधिक विविध आहार, अधिक भोजन खाने या संभवतः भोजन अनुपूरक लेने में कम सक्षम है। चारा फसलों में नाइट्रोजन की कम मात्रा, भेड़ों की उत्पादकता को प्रभावित करती है क्योंकि यह उनके पेट में पौधों को पचाने हेतु रोगाणुओं पर निर्भर करती है, जो कि नाइट्रोजन लेने की मात्रा पर निर्भर होती है।

क्षरण और मृदा उर्वरता: पिछले दशकों में देखा गया है कि गर्म वायुमंडलीय तापमान, अधिक चरम वर्षा की घटनाओं एवं तीव्र जल चक्र में वृद्धि कर रहे हैं। क्षरण एवं मृदा के निम्नीकरण होने की संभावना बढ़ रही है। मृदा की उर्वरता भी ग्लोबल वार्मिंग से प्रभावित हो जाएगी। जलवायु के चरम होने के परिणामस्वरूप वर्षा में बढ़त के कारण क्षरण खतरा अधिक होगा, यद्यपि वर्षा की तीव्रता मृदा को बेहतर जल प्रदान करती है। तापमान में वृद्धि खनिजों के उत्पादन में उच्च दर को प्रेरित करेगी एवं मृदा के कार्बनिक पदार्थ की मात्रा में कमी होगी लेकिन वायुमण्डलीय CO_2 की सांद्रता इसको बढ़ाने के लिए प्रवृत्त होगी।

कीट एवं रोग: ग्लोबल वार्मिंग से कुछ क्षेत्रों में वर्षा में वृद्धि होगी जो कि वायुमंडलीय आर्द्रता और नम मौसम की अवधि में वृद्धि करेगी। उच्च तापमान के साथ संयुक्त होने पर यह फंगल रोगों का विकास कर सकती है। इसी प्रकार उच्च तापमान और आर्द्रता के कारण कीट एवं रोग वेक्टर में वृद्धि हो सकती है।

(1) जलवायु परिवर्तन से नालंदा के कृषि पर प्रभाव

ग्लोबल वार्मिंग और जलवायु परिवर्तन एक वैश्विक समस्या है जो मानव सभ्यता के लिए संकट है। इसका सबसे ज्यादा प्रभाव किसानों पर पड़ता है। जलवायु परिवर्तन के लिए संकट है। इसका सबसे ज्यादा प्रभाव किसानों पर पड़ता है। जलवायु परिवर्तन से बिहार प्रदेष के किसान भी जूझ रहा है। विगत 3 वर्षों में वर्षा की मात्रा जुलाई 2021 में 258.3 मिलीमीटर, जुलाई 2022 में 134.7 मिलीमीटर और जुलाई 2023 में अब तक के 112.7 मिली मीटर बारिश दर्ज की गई है। वर्ष 2001–2010 के दशक में बिहार में औसतन 332.81 मिलीमीटर और 2011–2020 के दशक में भी हर साल औसतन 316 मिलीमीटर दर्ज की गई है। इस प्रकार देखा जाए तो निरंतर वर्षा में कमी तथा वर्षा के दिनों की संख्या में सिंचाई में समस्या तथा भूमिगत जल में कमी भी देखने को मिल रहा है।

जिला	कुल जनसंख्या	कुल श्रमिक मुख्य+सीमांत	किसान		खेतिहर मजदूर		घरेलू उपयोग के श्रमिक		अन्य श्रमिक	
			संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
नालंदा	2419759	912734	212768	23.31	511263	56.01	37930	4.16	150773	16.52

स्रोत: जनगणना भारत सरकार (2011)

(2) जिला में जलवायु परिवर्तन से कृषि में बदलाव

बिहार के किसान खेती में नई–नई प्रयोगों को आजमाने और अपनाने के लिए जाने जाते हैं। आधुनिक कृषि पद्धति को अपनाने हेतु यहाँ के किसानों ने कृषि एवं परंपरागत तरीके को अनाज की किस्म को बचाए रखा है, यह आधुनिकता के साथ परंपरा के सामंजस्याओं का अच्छा उदाहरण है। यही वजह है कि नोबेल पुरस्कार से सम्मानित अर्थशास्त्री ने नालंदा के किसानों को ग्रेटर देन साइंटिस्ट कहा था। वर्तमान परिदृश्य को देखकर नालंदा के किसान जैविक कृषि की ओर बढ़–चढ़कर भाग ले रहा है। जैविक कृषि में एक ओर जहाँ कम लागत में कृषि कार्य तथा पर्यावरण संरक्षण में सहायता मिलता है तो दूसरी ओर किसानों की आय बढ़ाने तथा लोगों तक पोषण युक्त भोजन पहुँचाने में सक्षम होता है। जैविक खेती के लिए बिहार सरकार ने गंगा से सटे जिलों में जैविक कॉरिडोर की शुरूआत की थी, जिसमें नालंदा के किसानों ने अपना ख्याति स्थापित किया है। नालंदा के किसानों ने अपना ख्याति स्थापित किया है। नालंदा के किसानों को जैविक खेती के लिए प्रषिक्षण देने तथा सहायता पहुँचाने के लिए कृषि विज्ञान केन्द्र हरनौत, नालंदा द्वारा शेरे फार्मर्स ग्रूप के रूप में पंजीकृत किया गया है। जैविक खेती में मुख्य रूप से हरी सब्जी की खेती की जा रही है जैसे– आलू, बैगन, गोभी, टमाटर आदि। वर्ष 2018 में आलू की उत्पादन 729 क्विंटल प्रति हेक्टेयर नालंदा के किसानों ने नीदरलैंड के विश्व कीर्तिमान को तोड़कर अपना रिकॉर्ड स्थापित किया है। वर्ष 2011–12 में धान के उत्पादन, वर्ष 2012–13 में गेहूँ के उत्पादन तथा वर्ष 2016–17 में मक्का के उत्पादन में भी अपना परचम लहराया था। इसके लिए भारत सरकार ने पाँच बार बिहार प्रदेश को कृषि कर्मण पुरस्कार से सम्मानित किया है।

निष्कर्ष

समय-समय पर बिहार सरकार कृषि के लिए जलवायु परिवर्तन से कृषि पर कम से कम प्रभाव हो उसके लिए कृषि रोड मैप बनाकर कृषि को बढ़ावा देने का प्रयास किया जा रहा है। अक्टूबर 2023 में चतुर्थ कृषि रोड मैप का शुभारंभ किया गया है जो सीमांत किसानों और महिला किसानों की आवश्यकताओं को विषेष ध्यान देकर कृषि कार्य को आगे बढ़ाना है। इस कृषि रोड मैप में वातावरण अनुकूल कृषि पर जोर दिया जाएगा ताकि जलवायु के परिवर्तन का कृषि पर कम से कम असर हो सके और कृषि नुकसानदेय न हो। जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिए क्लाइमेट रेजिडेंट एग्रीकल्चर महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती है।

संदर्भ-सूची

1. अर्थशास्त्र एवं सांख्यिकी, बिहार सरकार
2. कुमार, अरुण (2014) नालंदा जिले के सतत कृषि विकास के बदलते फसल संयोजक का प्रभाव, पी-एच0डी0 थीसिस, पटना विश्वविद्यालय, पटना।
3. कुमार, आलोक (2017) नालंदा जिला में कृषि का स्वरूप, इंटरनेशनल एजुकेशनल साइंटिफिक रिसर्च जर्नल, वॉल्यूम-3, पेज न0 62-63
4. गुप्ता, डॉ0 अनिल कुमार (2016) ए ज्योग्राफिकल एनालिसिस ऑफ नालंदा जिला बिहार, कला प्रकाशन, वाराणसी।
5. जनगणना भारत सरकार (2011)
6. पंडित, डॉ0 बाढू (2010): बिहार का भौगोलिक अध्ययन, साहित्य भवन, आगरा।
7. शर्मा, बी.एल. (1987): कृषि भूगोल, साहित्य भवन, आगरा।
8. सिन्हा, विश्वनाथ प्रसाद एवं नाजिम मोहम्मद (2016): बिहार का भूगोल, राजेश पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।

गीता के स्वधर्म का गाँधीवादी दृष्टिकोण

सचिन पाण्डेय

शोध छात्र, दर्शनशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय प्रयागराज

इस सिद्धान्त की व्याख्या करते हुए गाँधीजी ने कहा–यदि स्वदेशी का पालन करते हुए मृत्यु भी हो जाय तो श्रेष्ठ है, किन्तु विदेशी का सेवन और पालन भयानक है, देश और समाज के लिए घातक है। स्वदेशी का तात्पर्य यह है कि केवल अपने देश (भारत) में बनी हुई वस्तुओं का प्रयोग किया जाय। इसी प्रकार गाँधीजी गीता की अनेक शिक्षाओं को अपने राजनीतिक एवं सामाजिक आन्दोलनों एवं कार्यों के मुख्य मार्ग दर्शक सिद्धान्त के रूप में ग्रहण करते रहे।

गीता के प्रथम अध्याय का प्रारम्भ अर्जुन के विषाद से होता है। वह राज्य के लिए अपने कुल का नाश नहीं चाहता है। उसे राज्य के प्रति भी विराग हो गया। कोई मनुष्य कर्म करने से पूर्व कर्म के प्रयोजन एवं फल पर विचार करता है। यदि कर्म करना शुभपरिणाम देता है तो उसे मनुष्य स्वाभाविक रूप से करना चाहता है। इसके विपरीत यदि कर्म दु:खद या बुरे परिणाम वाला हो तो कोई व्यक्ति ऐसा कर्म नहीं करना चाहता है। अत: मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बुद्धिमान मनुष्य का यह कर्तव्य है कि वह सोच–समझकर एवं कर्म के विभिन्न पहलुओं पर विचार–विमर्श करके कर्म करे। प्राय: बुद्धिमान लोग ऐसा ही करते हैं।

वस्तुत: गीता में विभिन्न पात्रों के माध्यम से मानव–मनोविज्ञान एवं विवेक पर आधारित नैतिक आचरण की मीमांसा की गयी है। गीता का अर्जुन नैतिक मन है। वह कई विकल्पों पर विचार–विमर्श करता है। उसके बाद वह हानि–लाभ एवं शुभ–अशुभ परिणामों का आकलन करके कर्म करने का निश्चय करता है। कुरुक्षेत्र हमारा शरीर एवं व्यक्तित्व है। प्रत्येक बुद्धिमान मनुष्य अपने जीवन में प्रतिदिन इन परिस्थितियों का सामना करता रहता है। अर्जुन ने भी यही किया। वह अपने सम्बन्धियों एवं कुल के प्रति मोहग्रस्त हो जाता है। अब उसके सामने दो विकल्प हैं– एक युद्ध करना अर्थात् हिंसा और दूसरा विकल्प युद्ध न करना। उसने विचार–विमर्श करके यह समझा कि युद्ध न करने में ही परिवार की भलाई है क्योंकि युद्ध करना अनिष्ट है। मोह एवं विषादग्रस्त अर्जुन श्रीकृष्ण (जो विवेक के प्रतीक हैं) से प्रश्न करता है। अर्जुन के द्वारा उठाये गये प्रश्नों से यह सिद्ध होता है कि वह भ्रमित है। वह कहता है– मैं नहीं जानता हूँ कि मेरे लिए लड़ना श्रेयस्कर है अथवा न लड़ना। हम यह भी नहीं जानते हैं कि मेरी विजय होगी अथवा शत्रुओं की। हे कृष्ण! जो मेरे लिए श्रेयस्कर है, मुझे बताइये। इसी क्रम में अर्जुन कहता है कि महानुभाव गुरुजनों को मारने के बदले इस लोक में भिक्षा माँगकर अन्न खाना भी अच्छा है क्योंकि ये सब (राज्य एवं अन्य संसाधन) गुरुजनों को मार करके तो मेरे लिए रक्त से सने हुए अर्थ एवं कामरूप भोग ही हुए।[1]

गीता में प्रयुक्त स्वधर्म की व्याख्या गाँधीजी ने अपने युग के अनुरूप किया। यहाँ पर अर्जुन के मन में परिवार एवं समाज के प्रति लोकचेतना एवं कर्तव्य की भावना है, त्याग है एवं राज्य के सुखों के प्रति उदासीनता का भाव है। किन्तु अर्जुन का यह वैराग्य अथवा त्याग किसी तत्त्वज्ञान पर आधारित नहीं है। उसका विषाद और राज्य के सुखों के प्रति विमुख होना, अपने सगे सम्बन्धियों के प्रति प्रेमासक्ति, भावप्रवणता एवं मोह पर आधारित है। युद्ध का अन्तिम परिणाम क्या होगा? युद्ध में अन्तिम विजय के प्रति उसके मन में संशय और भय दोनों है। उसके मन में भय और संशय का कारण क्या है? कारण स्पष्ट है। यह कारण फलासक्ति है। श्रीकृष्ण कहते हैं कि उसे (अर्जुन को) सर्वप्रथम स्वार्थपरायण एवं संकीर्ण आवेगों पर विजय प्राप्त करनी होगी। सच्ची आध्यात्मिकता अथवा तत्त्वज्ञान में भय और संशय नहीं होता है।

जो मनुष्य शुभ और अशुभ का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करना चाहता है उसे सत् और असत् की मीमांसा करनी पड़ेगी। गीता में ज्ञान या तत्वज्ञान की समस्या के अन्तर्गत इस पर विमर्श किया गया है। सत् क्या है? असत् क्या है? कर्म क्या है? अकर्म क्या है? विकर्म क्या है? इन प्रश्नों के उत्तर न केवल साधारण लोगों के लिए, बल्कि महान विद्वानों के लिए भी जानना कठिन है। 'कर्म की गति अत्यन्त गूढ़ होती है' (गहना कर्मणो गति:),[2] यह कहकर श्रीकृष्ण ने समस्या को अधिक विशद् बना दिया। बिना तत्त्वज्ञान के कर्म के स्वरूप को नहीं समझा जा सकता है। तत्त्वज्ञान की व्याख्या करते हुए कहा गया है– 'नासतो विद्यते भाव: नाभावो विद्यते सत:', अर्थात् सत् अव्यय, अविनाशी और नित्य है। उसका कभी अभाव नहीं हो सकता है। जो असत् (छवजीपदह) है, उसका कभी भाव नहीं हो सकता है। उसकी कोई सत्ता नहीं हो सकती है जैसे आकाशकुसुम, बन्ध्या–पुत्र, शशक श्रृंग आदि। इस प्रकार गीता में सत् (Being or Reality) की अभिव्यक्ति का विवेचन किया गया है।

सत् द्विविध है: कूटस्थ नित्य और परिणामी नित्य। आत्मा कूटस्थ नित्य, अपरिणामी, अपरिवर्तनशील और अविनाशी है। गीता में इसे क्षेत्रज्ञ कहा गया है जो क्षेत्र अर्थात् प्राकृतिक शरीर का ज्ञाता है। यह चेतन और आनन्दस्वरूप है। इसके विपरीत शरीर क्षेत्र है। शरीर सहित समस्त प्राकृतिक पदार्थ क्षेत्र एवं ज्ञेय की श्रेणी में आते हैं। ये सब परिणामी नित्य हैं। आत्मा के विपरीत शरीर एवं अन्य प्राकृतिक पदार्थों का उद्भव, विकास, हास और नाश होता रहता है। वे परिवर्तनशील होते हैं। उनका रूपान्तरण होता रहता है। जैसे बीज से वृक्ष, वृक्ष से लकड़ी, लकड़ी से कोयला, कोयला से पुन: मिट्टी आदि रूपों में रूपान्तरण, परिवर्तन और परिणाम होता रहता है। इसे कोई रोक नहीं सकता है, यही प्राकृतिक पदार्थों की नियति है। यह नियति अमिट है। इसी प्रकार 'शरीर' भी प्राकृतिक होने के कारण जन्म और मृत्यु के चक्र से ग्रस्त है। जिसने जन्म लिया है, उसकी मृत्यु ध्रुव (अटल) है। मृत्यु को कोई रोक नहीं सकता है। भ्रमवश लोग यह भूल जाते हैं कि मृत्यु अपरिहार्य है। कोई उसे स्वीकार करे अथवा न करे, वह तो अपना कार्य करेगी। व्यक्ति की मृत्यु जीवन का एक कटु सत्य है। इसने हमारे अनेक श्रद्धेय एवं प्रिय लोगों को अनचाहे ही छीन लिया। हम लोग भी इससे बच नहीं सकते हैं। गीताकार इसी सत्य का उद्घाटन करते हैं-

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येदृर्थे न त्वम्शोचितुमर्हसि।।[3]

इस श्लोक का प्रथमार्द्ध (जिसने जन्म लिया है, उसकी मृत्यु भी अटल है) निर्विवाद है। इस बिन्दु पर आस्तिक और नास्तिक दोनों सहमत होंगे। परन्तु इसके दूसरे भाग (ध्रुवं जन्म मृतस्य च) पर विवाद हो सकता है। यह आस्था का विषय है। संशयवादी, नास्तिक, भौतिकवादी, पुनर्जन्म को न मानने वाले एवं सेमेटिक धर्मों के अनुयायी इसे विवादास्पद मान सकते हैं। इस प्रसंग में हम विवाद में न उलझ करके गीता के मूल मन्तव्य की चर्चा करेंगे। चूंकि मृत्यु अपरिहार्य है, इसलिए उसके विषय में शोक और चिन्ता करना निरर्थक होगा। यदि आप आत्मा को सत् मानते हैं तो वह जन्म, मरण, परिवर्तन, विकारों आदि से परे है। वास्तव में मृत्यु का भय ही मनुष्य को अत्याचार एवं शोषण, अन्याय एवं दमन को सहने के लिए विवश करता है। किन्तु हम जिस मृत्यु से बच नहीं सकते उसके भय से अत्याचार, शोषण और गुलामी को क्यों सहन करते हैं? वस्तुत: स्वयं को पापी, निर्बल और असहाय समझना मानव जीवन का सबसे बड़ा भ्रम है। ऐसी सोच वाले लोग संसार में निराशा और भय का वातावरण बनाते हैं। जब तक हमारे मन में आत्मविश्वास न हो तब तक हम संसार में आशा का संचार नहीं कर सकते हैं। जो अपने ऊपर विश्वास नहीं करता है, वही नास्तिक और निराशावादी है। वह न तो स्वयं का और न समाज का उद्धार कर सकता है।

इससे स्पष्ट है कि कूटस्थ नित्य आत्मा और परिणामी शरीर दोनों क्रमश: क्षेत्रज्ञ और क्षेत्र हैं। आत्मा और प्रकृति दोनों को क्रमश: ईश्वर की परा एवं अपरा प्रकृति कहा गया है। ईश्वर इन दोनों से परे और इन दोनों का नियन्ता है। तात्विक दृष्टि से आत्मा कुछ नहीं करता है। कर्म प्रकृति के द्वारा किये जाते हैं। जीवात्मा अहंकार के प्रभाव से मोहग्रस्त होकर अपने आप को समस्त कर्मों का कर्ता मान बैठता है, जबकि कर्म वास्तव में प्रकृति के गुणों के द्वारा सम्पन्न किये जाते हैं।

प्रकृते: क्रियमाणनि गुणै: कर्माणि सर्वश:।
अहंकार विमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते।।[4]

सृष्टि का विधान पुरुषोत्तम (ईश्वर) के द्वारा संचालित है। अर्जुन को केवल कर्म का निमित्त बनना है (निमित्त मात्रं भव सव्यसाचिन)। आत्मा परमात्मा के कार्यों का निमित्त मात्र है। वास्तविक नियन्ता ईश्वर है। ईश्वर ही एक मात्र सत्ता है, जिसकी दो प्रकृतियाँ हैं- परा एवं अपरा, अक्षर और क्षर। असत् की कोई तात्विक सत्ता नहीं है। इस दृष्टि से गीता की तत्वमीमांसा पर आधारित नैतिकता की चार प्रमुख मान्यताएँ हैं:

(1) आत्मा (क्षेत्रज्ञ) कूटस्थ नित्य, अजर और अमर है।
(2) भौतिक पदार्थ (क्षेत्र) परिणामी नित्य हैं।
(3) ईश्वर इन दोनों का नियामक, संचालक और अन्तर्यामी है।
(4) आत्मा ईश्वरीय इच्छा एवं कार्यों का निमित्त मात्र है। वही (ईश्वर) इस ब्रह्माण्ड का आदि, मध्य और अन्त है।

यह तत्व ज्ञान ही कर्म की समस्या का समाधान प्रस्तुत कर सकता है। कर्म क्या है? अकर्म क्या है? इस विषय में बुद्धिमान पुरुषों को भी मोह हुआ है। अत: कर्म, विकर्म (निषिद्ध कर्म) और अकर्म का भेद जानना चाहिए। इन कर्मों के स्वरूप का विवेचन आचरण की समस्या को गूढ़ बना देता है। जो पुरुष कर्म में अकर्म और अकर्म में कर्म देखता है उसकी गणना विवेकशील मनुष्यों में की जाती है। वही योगी और सम्पूर्ण कर्म करने वाला है।

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत।।[5]

कहने का तात्पर्य यह है कि जो व्यक्ति कर्म करते हुए भी कर्तृतापन का अहंकार नहीं रखता, उसका कर्म अकर्म है। इसके विपरीत कुछ लोग ऐसे होते हैं जो बाहर से कर्म का त्याग करते हुए भी मन से आसक्त रहते हैं। ऐसे लोगों के अकर्म भी बन्धनकारक कर्म ही हैं। मोहग्रस्त होकर कर्म करने से कर्तव्य का अभिमान होता है। जो व्यक्ति कर्म की इस गति को जानता है, वही बुद्धिमान है। जो यह भाव रखता है- 'मैं कर्तृता हूँ', वह कर्म और विकर्म का भेद भूल जाता है। वह उचित और अनुचित साधनों का भी विवेक नहीं कर पाता है। अतः अभिमान से रहित होकर कर्म करने वाला व्यक्ति स्वभावतः सात्विक और विनम्र होता है। वह अपना कर्तव्य समझकर कर्म करता है। किन्तु कर्म में अकर्म की स्थिति में भी नित्य कमों का परित्याग नहीं करना चाहिए। यज्ञ, दान और तप ये नित्य कर्म हैं। गाँधीजी के अनुसार संसार में समस्त प्राणियों के हित में जो कर्म किये जाते हैं वे ही यज्ञ हैं। सुपात्र मनुष्यों के पालन-पोषण के लिए किये गये कर्म दान हैं। नित्य आत्मा (सत्य) के साक्षात्कार के लिए किये गये कर्म तप हैं। इसीलिए गाँधीजी कहते हैं कि सत्य की उपासना ही मुझे राजनीति के क्षेत्र में खींच ले आयी। उनके लिए लोकहित में राजनीति की साधना ही तप है। राजनीति को साफ-सुथरी बनाकर लोकहित में नियोजित करना ही सच्चा तप है। इन कर्मों से विरति नहीं होनी चाहिए। ये सृष्टि के नियामक सिद्धान्त हैं। अतः महात्मा गाँधीजी के लिए राजनीति भी इसी भाव से किया गया नित्य कर्म है।

गीता में एक व्यावहारिक एवं यथार्थ समस्या की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है। उचित और अनुचित का ज्ञान हो जाने पर भी मनुष्य सत् कर्म की ओर प्रवृत्त क्यों नहीं होता है और दुष्कर्मों की ओर से निवृत्ति क्यों नहीं होती है? अर्जुन और श्रीकृष्ण का संवाद शिष्य (विद्यार्थी) और गुरु (शिक्षक) के संवाद के समान है। अर्जुन यह प्रश्न करता है कि यह पुरुष बलात् प्रेरित हुए की भाँति, न चाहता हुआ भी किसकी दुष्प्रेरणा से पाप करता है?

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः।।[6]

इसी प्रकार का उल्लेख महाभारत में एक अन्य स्थल पर भी किया गया है। दुर्योधन श्रीकृष्ण से कहता है- हे केशव ! युद्ध के बिना पाण्डवों को सुई के अग्रभाग के बराबर की जमीन भी नहीं दूँगा (सूच्यग्रं न दास्यामि युद्धेनबिना केशव !)। दुर्योधन यह जानते हुए भी कि यह आचरण धर्म या सदाचार के विपरीत है, उससे विरत नहीं होता है।[7] धर्म (Virtue) और अधर्म (Vice) को जानते हुए भी मनुष्य किस कारण से धर्म की ओर प्रवृत्त और अधर्म से निवृत्त नहीं हो पाता है? यह एक नैतिक प्रश्न है जो सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक है। आज सम्पूर्ण विश्व में भ्रष्टाचार, आतंकवाद, अत्याचार, शोषण एवं अन्य अनेक दुराचरण हो रहे हैं। लोग यह जानते हुए भी कि ये आचरण भ्रष्ट एवं अनुचित हैं, उस ओर से क्यों नही विरत हो रहे हैं? इसका विवरण महाभारत में इस प्रकार है- दुर्योधन यह जानता है कि अधर्म क्या है और धर्म क्या है। किन्तु वह अधर्म से निवृत्त नहीं हो पाता है और न धर्म की ओर प्रवृत्त हो पाता है। श्रीकृष्ण इस समस्या के मूल में जाते हैं और इसका सम्यक् विश्लेषण करते हैं। अर्जुन के प्रश्न का उत्तर देते हुए वे कहते हैं-

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।
महाशनो महापाप्मा विद्धयेनमिह वैरिणम्।।[8]

हमारे वास्तविक शत्रु रजोगुण से उत्पन्न होने वाले दुष्प्रेरक काम और क्रोध हैं। काम का पेट नहीं भरता है। यह महापापी है। इस लोक में इसे शत्रु समझो। मनुष्य न चाहते हुए भी किस प्रकार मनोविकारों के प्रभाव से पाप की ओर आकर्षित होता है, इसकी मनोवैज्ञानिक व्याख्या गीता के द्वितीय अध्याय में की गयी है। इन विकारों या मनोभावों में परस्पर तार्किक सम्बन्ध है। किस प्रकार एक मनोविकार दूसरे को प्रभावित और उत्पन्न करता है, इसका विवेचन किया गया है:

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते ।
संगात्स्ञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।।[9]
क्रोधादभवति संमोहः संमोहात्स्मृति विभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशातबुद्धिनाशो बुद्धिशात् प्रणश्यति।।[10]

विषयों का ध्यान या चिन्तन करने से मनुष्य के मन में उनके प्रति लगाव या आसक्ति उत्पन्न हो जाती है। हम जिन चीजों के बारे में सोचते हैं, जिनकी चर्चा करते हैं, जिनके सानिध्य में रहते हैं, उनके प्रति हमारे मन में आसक्ति पैदा हो जाती है। यह मनुष्य की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति है। ये विषय धन, सम्पत्ति, पद, प्रतिष्ठा, यश, स्त्री, पुत्र, मित्र आदि कुछ भी हो सकते हैं। उसके पश्चात दूसरा सोपान 'काम' अर्थात् उन विषयों को प्राप्त करने की कामना है। हम जिन वस्तुओं के प्रति आसक्त होते हैं उन्हें प्राप्त करने की कामना करते हैं। किन्तु कामनाओं में एक विरोधाभास यह पाया जाता है कि वे उपभोग करने से कभी तृप्त नहीं होती हैं।[11] भोग की कोई सीमा नहीं होती है क्योंकि काम कभी तृप्त नहीं होता है। जब मनुष्य की मनचाही कामनाएं तृप्त नहीं होती हैं तो स्वाभाविक रूप से क्रोध उत्पन्न होता है। जब तक हमारी इच्छाओं और आवश्यकताओं की तृप्ति होती रहती है तब तक चंचल मन उनके अधिक से अधिक उपभोग की ओर आकर्षित होता रहता है। किन्तु वे कभी पूर्ण रूप से तृप्त नहीं होती हैं। उनको प्राप्त करने की बार-बार इच्छा होती है। जब इच्छा की पूर्ति में कोई बाधक होता है तो क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोधावेश विवेक को नष्ट करके मूढ़ता (मोह) को उत्पन्न करता है। इससे मनुष्य उचित और अनुचित में विवेक नहीं कर पाता है। उसके परिणाम स्वरूप उसकी स्मृति भ्रमित हो जाती है। वह अनेक पाप एवं कदाचार कर बैठता है। स्मृति के भ्रान्त होने से मनुष्य की बुद्धि (विवेक और ज्ञान) का नाश हो जाता है। जिसकी बुद्धि और विवेक नष्ट हो गया वह मृतक तुल्य है। इसी प्रकार काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद, मात्सर्य, ईर्ष्या, द्वेष, पिशुनता, घमण्ड, कलह आदि मूलतः मानसिक विकृतियाँ (मनोरोग) हैं।[12] इनको दूर करने के लिए, इन्हें नियन्त्रित करने के लिए मन को वश में करने के लिए कहा गया है। मन को नियन्त्रित करके ही भोग की सीमा निश्चित की जा सकती है। भोग की सीमा का निर्धारण करने के लिए हमें अपनी आवश्यकताओं (छममके) को सीमित करना पड़ेगा। किन्तु इस सब के मूल में मन को अपने वश में करना है। कामेच्छा से उत्पन्न सभी विषयों से मन को हटाकर बुद्धि में स्थिर करना चाहिए। अन्त में बुद्धि को भी आत्मनिष्ठ बनाना चाहिए। आत्मनिष्ठ प्रज्ञा में संसार के भोग शान्त हो जाते हैं। उसके बाद स्थित प्रज्ञ की अवस्था में मनुष्य को पूर्ण शान्ति और चित्त की प्रसन्नता प्राप्त होती है।

किन्तु अर्जुन श्रीकृष्ण के द्वारा उपदिष्ट पद्धति से सन्तुष्ट नहीं होता है। वह संशय से ग्रस्त है क्योंकि 'मन को वश में करो' यह उपदेश देना तो सरल है परन्तु व्यवहार में चंचल मन को नियन्त्रित करना अत्यन्त कठिन है। मन की इस चंचलता से अनेक ऋषियों, मुनियों एवं साधकों का भी ध्यान और संयम भंग हो जाता है। अर्जुन कहता है-

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवदृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम।।[13]

हे कृष्ण! मन चंचल है, मनुष्य को मथ डालता है और यह बहुत प्रबल है। इस मन को वश में करना उसी प्रकार अत्यधिक कठिन है जिस प्रकार वायु को नियन्त्रित करना। मन की चंचलता के कारण समत्व रूपी योग की स्थिरता भंग हो जाती है। यह कोई सरल कार्य नहीं है। श्रीकृष्ण एक पारंगत शिक्षक (गुरु) की तरह अर्जुन की मनोदशा के अनुरूप यह स्वीकार करते हैं कि निःसन्देह मन को वश में करना अत्यन्त कठिन है। किन्तु अभ्यास अर्थात् शाश्वत साधना और वैराग्य से मन को नियन्त्रित किया जा सकता है।

असशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।[14]

इससे स्पष्ट है कि जिसका मन अपने वश में नहीं है उसके लिए योग साधना करना अत्यन्त कठिन है। किन्तु जो अपने मन को अपने वशीभूत करता है और जो यत्नवान है, वह उपाय द्वारा योग को साध सकता है। गीता के अनुसार आचरण से सम्बन्धित समस्या का समाधान आत्म-संयम से ही हो सकता है। काम पर विजय प्राप्त करने के लिए इन्द्रिय-निग्रह अनिवार्य है। इन्द्रियों को जीतने के लिए मन को वश में करना पड़ेगा। मन को बुद्धि से और बुद्धि को आत्मा के द्वारा वश में करना चाहिए। इस प्रकार युक्तिपूर्वक सतत् अभ्यास से आत्म-संयम का मार्ग प्रशस्त होता है। आत्म-संयम (आत्म-शुद्धि) की ओर क्रमिक रूप से बढ़ना चाहिए। आत्म-संयम से ही आत्म-साक्षात्कार हो सकता है। गीता में बाह्याडम्बर एवं अन्ध विश्वासों का कोई स्थान नहीं है। जो बाह्याचार जैसे तिलक, माला, अर्घ्य आदि का विधान किया भी गया है वे केवल भक्तिपरायण श्रद्धा का वातावरण बनाने के लिए हैं। ये बाह्य कर्मकाण्ड किसी योगी, भक्त एवं स्थिरप्रज्ञ के स्वरूप लक्षण नहीं हैं। अतः गीता का सन्देश अनासक्ति योग है जो कर्म करते हुए भी उसके फल का त्याग है। इसे निष्काम कर्मयोग के नाम से जाना जाता है।

कर्म अनिवार्य है। यह सृष्टि का विधान है। कर्म के बिना आज तक किसी ने सिद्धि नहीं प्राप्त की है। श्रीकृष्ण कहते हैं- "तीनों लोकों में न तो मेरा कुछ कर्तव्य शेष रहा है और न कोई अप्राप्त वस्तु प्राप्त करने को रह गयी है तो भी मैं कर्म करता रहता हूँ।"[15]

यदि ईश्वर भी कर्म की यान्त्रिक प्रक्रिया में है तो फिर साधारण मनुष्य कर्म से मुक्त कैसे हो सकता है? शारीरिक एवं मानसिक सभी चेष्टाएं कर्म के अन्तर्गत हैं। कर्म ही बन्धन का कारण है। प्रत्येक कर्म का कोई न कोई फल (परिणाम) अवश्य होगा। यहाँ पर प्रश्न यह है कि कर्म करते हुए मनुष्य बन्धनमुक्त कैसे हो सकता है? इस समस्या का समाधान जिस तरीके से गीता में किया गया है, संभवत: वह अन्यत्र कहीं नहीं है। गीता के अनुसार आसक्तिपूर्वक किये गये समस्त कर्म बन्धनकारक हैं। अत: फलासक्ति का परित्याग करके कर्म करना श्रेयस्कर है। गीता के अनुसार आसक्ति से रहित होकर कर्म करने से कर्म बन्धनकारक नहीं होते हैं।[16]

जो कर्मफल की आसक्ति को त्याग करके सदा सन्तुष्ट रहता है, जिसे किसी आश्रय की लालसा नहीं है, वह कर्म में अच्छी तरह प्रवृत्त होते हुए भी कुछ नहीं करता है। कहने का आशय यह है कि जो कर्म फलासक्ति से रहित होकर यान्त्रिक रूप में होते हैं, किये जाते हैं, उनमें कर्त्तापन का अभिमान नहीं होता है क्योंकि साधक या कर्मयोगी ईश्वरार्पणभाव से स्वयं को ईश्वरेच्छा का एक अंग मानकर कर्म करता है। यह संभव है कि उसे कर्म का फल मिले भी, परन्तु वह कर्म के फल के प्रति आसक्त नहीं होता है। इससे स्पष्ट है कि बन्धन का मूल कारण कर्म नहीं है, बल्कि फलासक्ति है। यदि कर्म के फल में आसक्ति, प्रलोभन आदि न हो तो कर्मयोगी में कर्तापन का अभिमान स्वत: समाप्त हो जायेगा। इस प्रकार जब अकर्तृत्व का भाव आ जायेगा तो कर्तव्य का फल उसके लिए बन्धन-कारक नहीं होगा। ईश्वरार्पण बुद्धि से कर्म करने पर 'अहं' शून्य हो जाता है। कर्ता का 'अहं' शून्य हो जाने से उसका प्रेरक ईश्वर हो जाता है। ईश्वर स्वयं आप्तकाम (पूर्ण) होने से बन्धनमुक्त है।

ईश्वरार्पण बुद्धि से कर्म करने वाला साधक निरहंकार, करुणापरायण, सुख-दु:ख, हानि-लाभ, यश-अपयश, शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वों में समान रहता है। वह सदैव क्षमाशील होता है। उसे जो कुछ सहजभाव से मिल जाय, वह उसी में सन्तोष रखने वाला होता है। उसके संकल्पयुक्त निश्चय कभी विचलित नहीं होते हैं क्योंकि उसके मन और बुद्धि आत्मनिष्ठ एवं ईश्वर को अर्पित कर दिये गये हैं। ऐसा कर्मयोगी शुभ-अशुभ, शत्रु-मित्र, हर्ष-विषाद आदि से मुक्त एवं समभाव (समत्व) दृष्टि से युक्त होता है। उसके लिए मान और अपमान, स्तुति और निन्दा न तो आह्लादक (प्रसन्नताकारक) हैं और न ग्लानिकारक होते हैं। ऐसा व्यक्ति शान्तचित्त, एकांतप्रिय, स्थिरबुद्धि तथा भक्तिभाव से युक्त होता है। किन्तु कर्म के फल का त्याग अर्थात् अनासक्ति के बिना इन्द्रिय-निग्रह एवं आत्मसंयम के बिना स्थिरप्रज्ञ की अवस्था प्राप्त नहीं हो सकती है। फलासक्ति के त्याग का अर्थ यह नहीं है कि साधक (कर्मयोगी) कर्म के परिणाम के बारे में असावधान (Careless) हो। कर्म के फल और साधन पर चिन्तन-मनन और उसका ज्ञान आवश्यक है। इस प्रकार कर्म के फल और उसके साधनों पर अनुशीलन करने एवं उनका ज्ञान होने पर भी फलासक्ति का परित्याग करने वाला ही निष्काम कर्मयोगी है। यहाँ फल-त्याग का यह अर्थ नहीं है कि निष्काम कर्मयोगी को फल नहीं मिलता है, बल्कि उसका आशय यह है कि निष्काम कर्मयोगी में फल के प्रति आसक्ति नहीं होती है। गाँधाजी कहते हैं कि वास्तव में देखा जाय तो फल-त्यागी को हजार गुना फल मिलता है। गीता के फल-त्याग में तो अपरिमित श्रद्धा की परीक्षा है।[17]

गीता का प्रसिद्ध कथन है- 'योग: कर्मसुकौशलम्' अर्थात् कर्म में कुशलता या निपुण (पारंगत) होना योग है। प्राय: लोग कर्म में पारंगत न होने पर भी उसका फल चाहते हैं। फलासक्ति के वशीभूत होकर मनुष्य कर्मकौशल के अभाव में भी गलत तरीके से शार्टकट (Short Cut) रास्ता अपनाता है। ऐसी कामना वाले मनुष्य का मन एवं बुद्धि प्राय: चंचल होती है। उनका ध्यान सदैव फल में लगा होता है। इसके कारण लोग प्राय: कर्त्तव्यमार्ग से च्युत (भ्रष्ट) हो जाते हैं। वे निष्ठा, ईमानदारी और कुशलतापूर्वक कर्म नहीं करते हैं। उनकी दृष्टि कर्म के संपादन से अधिक उसके अधिकतम फल को प्राप्त करने में लगी रहती है। ऐसा व्यक्ति फलासक्ति के कारण अपना धैर्य और मानसिक सन्तुलन खो देता है। वह अनुकूल फल न मिलने की स्थिति में क्रोधावेश के वशीभूत होकर अनुचित कर्म करने लगता है। इस प्रकार कर्म-कौशल समाप्त हो जाता है। कर्म-कौशल के लिए कर्मयोगी की मन:स्थिति स्वस्थ होनी चाहिए। इस स्वस्थ मन:स्थिति के लिए 'समत्व' को योग के लिए अपरिहार्य माना गया है- 'समत्वं योग उच्यते।' समत्व के अभाव में कर्ता योगी नहीं हो सकता है। इस प्रकार कर्म के फल की चिन्ता करने वाला व्यक्ति विषयान्ध हो जाता है। वह उचित-अनुचित का विवेक खो देता है। वह कर्म का अपने अनुकूल परिणाम प्राप्त

करने के लिए अनुचिr (Foul) साधनों का सहारा लेने लगता है। फलासक्ति के कारण उत्पन्न दुष्परिणामों से बचने के लिए गीता में अनासक्ति अर्थात् निष्काम कर्मयोग के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 गीता 2/5
2 गीता 4/16-17
3 गीता 2/27
4 वही/3/27
5 गीता 4/18
6 गीता 3/36
7 महाभारत - शान्ति पर्व, पृ0 482
8 गीता 3/37
9 गीता 2/62
10 गीता 2/63
11 मनुस्मृति 2/13
12 उत्तर काण्ड में दोहा 118 (क) से पूर्व
13 गीता 6/34
14 गीता 6/35
15 गीता 3/22
16 गीता 4/20
17 अनासक्तियोग, प्रस्तावना, पृ0 10

भारत-चीन सम्बंध के बदलते आयाम: मृदु शक्ति के रूप में भारतीय दृष्टीकोण के सन्दर्भ में

जया कुमारी

राजनीति विज्ञान विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

शोध-सार

'जोसेफ नाई' द्वारा लिखित पुस्तक: सॉफ्ट पॉवर अंतरराष्ट्रीय संबन्धों के सन्दर्भ में, सहयोग तथा किसी प्रकार के आकर्षण के द्वारा वांछित परिणाम प्राप्त करने की क्षमता सौम्य शक्ति या मृदु शक्ति Soft power कहलाती है। भारत में 'सॉफ्ट पॉवर' प्राचीन काल से ही कूटनीति का एक प्रमुख उपकरण रहा है और इतिहास में हमें इसके प्रयोग के कई उदाहरण देखने को मिले हैं। भारत के पहले प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू का विश्वास था कि भारत वैश्विक मामलों में एक बढ़ती और लाभकारी भूमिका निभाने के लिये बाध्य है। उन्होंने एक ऐसी कूटनीति का विकास किया जो 'हार्ड पॉवर' के सैन्ज्ञठ और आर्थिक कारकों द्वारा समर्थित नहीं थी। इसका सबसे मुख्य कारण यही था कि उन्हें और संपूर्ण राष्ट को गाँधी के अहिंसा के मार्ग पर गर्व था, जिसके माध्यम से हमने आजादी प्राप्त की थी। भारत के पूर्व प्रधानमंत्री इंद्र कुमार गुजराल ने वर्ष 1996 में बतौर विदेश मंत्री 'गुजराल सिद्धांत' का प्रतिपादन किया था, जिसे भारत की विदेश नीति में 'सॉफ्ट पॉवर' का प्रमुख उदाहरण माना जाता है, इस सिद्धांत के अनुसार, ''भारत को दक्षिण एशिया का सबसे बड़ा राष्ट्र होने के नाते अन्ज्ञठ एशियाई राष्टों जैसे- मालदीव, बांग्लाराष्ट, नेपाल, श्रीलंका और भूटान आदि के साथ सौहार्दपूर्ण संबंध बनाने होंगे" मौजूदा समय में भारत विदेशों में अपनी छवि को बढ़ाने के लिये अपने 'सॉफ्ट पॉवर' संसाधनों का उपयोग करने की दिशा में एक रणनीतिक दृष्टिकोण के रूप में देखा जा सकता है। आज बॉलीवुड, सूफी संगीत और योग जैसी तमाम चीजे जो भारतीय संस्कृति का हिस्सा हैं, विश्व के विभिन्न राष्टों तक पहुँच गई हैं। भारत की आध्यात्मिकता, योग, दर्शन, धर्म आदि के साथ-साथ अहिंसा, लोकतांत्रिक विचारों आदि ने भी वैश्विक समुदाय को आकर्षित किया है। भारत की 'सॉफ्ट पॉवर' कूटनीति में शामिल हैं: आयुर्वेद, बौद्ध धर्म, क्रिकेट, भारतीय प्रवासी, बॉलीवुड, भारतीय भोजन, गांधीवादी आदर्श और योग आदि। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति एवं अन्तर्राष्ट्रीय सम्बंधों में राजनीतिक और सामरिक सम्बंध महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, किन्तु दो राष्टों के मध्य चलने वाले आर्थिक प्रौद्योगिकी एवं सांस्कृतिक सम्बंधों के महत्व को कम नहीं आंका जा सकता है। जब दो राष्ट्रों के मध्य द्विपक्षीय सम्बंधों से मैत्री का श्रीगणेष होता है तों कई बार ऐसा भी होता है कि राजनीतिक मतभेदों के चलते भी अपने आर्थिक एवं सांस्कृतिक सम्बंधों को सामान्य बनाये रखने अथवा उनमें सुधार लाना पसंद करते हैं, ऐसा करने पर उनके राजनीतिक एवं सामरिक सम्बंधों के निर्माण के लिए मार्ग प्रषस्त होता है। कभी-कभी इन सम्बंधों में गत्यावरोध होने पर सीमा तक सामरिक और राजनीतिक सम्बंध प्रभावित होते हैं। भारत और चीन के मध्य को आर्थिक, प्रावधिक प्रोद्योगिकी एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में जिस प्रकार के सहयोग एवं आदान-प्रदान का विकास हुआ है और इन क्षेत्रों में सम्बंधों का निर्माण हुआ हैं, उनका अध्ययन अभीष्ठ है।

मूल-शब्द:- मृदु शक्ति, अंतरराष्ट्रीय, राष्ट्रीय, सामरिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक

प्रस्तावना

'सॉफ्ट पॉवर' शब्द का प्रयोग अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में किया जाता है जिसके तहत कोई राज्य परोक्ष रूप से सांस्कृतिक अथवा वैचारिक साधनों के माध्यम से किसी अन्ज्ञठ राष्ट के व्यवहार अथवा हितों को प्रभावित करता है। इसमें आक्रामक नीतियों या मौद्रिक प्रभाव का उपयोग किये बिना अन्य राज्यों को प्रभावित करने का प्रयास किया जाता है। 'सॉफ्ट पॉवर' की अवधारणा का सर्वप्रथम प्रयोग अमेरिका के प्रसिद्ध राजनीतिक विशेषज्ञ 'जोसेफ नाई' (श्नेमची छलम) द्वारा किया गया था। जहाँ एक ओर पारंपरिक 'हार्ड पॉवर' राज्य के सैन्ज्ञठ और आर्थिक संसाधनों पर निर्भर करती है, वहीं 'सॉफ्ट पॉवर' अनुनाइ के आधार पर कार्य करती है, जिसका लक्ष्य राष्ट के 'आकर्षण' को बढ़ाना होता है। 'सॉफ्ट पॉवर' ज्यादातर अमूर्त चीजों जैसे- योग,

बौद्ध धर्म, सिनेमा, संगीत, आध्यात्मिकता आदि पर आधारित होती है। 'सॉफ्ट पॉवर' की अवधारणा प्रस्तुत करने वाले 'जोसेफ नाई' के अनुसार, 'सॉफ्ट पॉवर' किसी भी राष्ट्र के तीन प्रमुख संसाधनों- संस्कृति, राजनीतिक मूल्य और विदेश नीति पर निर्भर करती है। मौजूदा समय में अधिकांश राष्ट 'सॉफ्ट पॉवर' और 'हार्ड पॉवर' के संयोजन का प्रयोग करते हैं, जिसे राजनीतिक विश्लेषकों ने 'स्मार्ट पॉवर' की संज्ञा दी है। जनसंचार, वैश्विक व्यापार और पर्यटन के मौजूदा दौर में 'सॉफ्ट पॉवर' की अवधारणा ने विश्व के विभिन्न राष्ट्रों की विदेश् नीति में विशिष्ट स्थान हासिल कर लिया है। अधिक-से-अधिक 'पॉवर' की तलाश में प्राचीन काल से ही युद्ध लड़े जा रहे हैं, किंतु समय के साथ 'पॉवर' के स्वरूप और मायने में परिवर्तन आया है। अब 'हार्ड पॉवर' के स्थान पर 'सॉफ्ट पॉवर' के प्रयोग को अधिक सहूलियत भरा माना जाता है। भारत अपनी बौद्धिक व सांस्कृतिक शक्ति अर्थात् 'सॉफ्ट पॉवर' का प्रयोग तब से कर रहा है, जब से राजनीतिक विशेषज्ञों ने इस अवधारणा का प्रतिपादन भी नहीं किया था। बीते कुछ समय में भारत ने अपनी 'सॉफ्ट पॉवर' के प्रयोग की रणनीति काफी व्यवस्थित की है और एक रणनीतिक उपकरण के रूप में इसका प्रयोग करने में सक्षम रहा है। ऐसे में 'सॉफ्ट पॉवर' का अध्ययन करते हुए यह जानना आवश्यक है कि इसने भारत की विदेश् नीति को आकार देने में किस प्रकार की भूमिका निभाई है। भारत तथा चीन के आर्थिक तथा व्यापारिक सम्बंध बहुत प्राचीन काल से रहे हैं। सभ्यता के विकास के साथ ये उत्तरोत्तर रूप से बढ़ते रहे हैं। भारत-चीन सम्बंध सदैव वस्तुओं के दोहरे आवागमन तथा आध्यात्मिक, सांस्कृतिक आदान-प्रदान पर रहे हैं। आधुनिक काल में भारत और चीन का सौभाग्य और दुर्भाग्य करीब-2 एक जैसा रहा। अंग्रेजों ने भारत और चीन दोनों राष्ट्रों को आर्थिक रूप से लूटने के लिए कुचक्र-जाल का सहारा लिया। भारत में पहले अप्रत्यक्ष बाद में प्रत्यक्ष शासन अपने हाथ में लिया, वहीं दूसरी ओर चीन में राजा के साथ मिलकर कारोबार के बहाने अप्रत्यक्ष शासन करने लगे। आधुनिक और समकालीन अवधि में, जिनजियांग प्रान्त में अंग्रेजों की दिलचस्पी के कारण जिनजियांग महत्वपूर्ण हो गया। क्योंकि यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है। ब्रिटिष भारत की जिनजियांग में दिलचस्पी में पूर्व दो भारतीय राजाओं गुलाब सिंह, जम्मू के डोगरा शासक और उनके पुत्र और उत्तराधिकारी रणबीर सिंह ने अपने साम्राज्य को जिनजियांग में ज्यादा ध्यान देना शुरू किया। भारत की विदेश् नीति के सन्दर्भ में ही नहीं अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के परिप्रेक्ष्य में भी भारत और चीन के सम्बंध बेहद महत्वपूर्ण हैं। ये दोनों राष्ट्र विष्व की सबसे बड़ी आबादी वाले राष्ट्र है बल्कि इसलिए भी दोनों राष्ट्र हजारों साल पुरानी संस्कृतियों के उत्तराधिकारी हैं। सदियों से चीन, भारत के पड़ोसी भौगोलिक क्षेत्रों को प्रभावित किया है और औपनिवेषिक साम्राज्य का दौर समाप्त होने के बाद 20वीं शताब्दी में 1960 के दषक तक एषिया और अफ्रिका के मुक्ति संग्राम में दोनों ने सहयोगी भुमिका निभाई। किन्तु भारत-चीन सीमा विवाद के विस्फोट के बाद यह दोनों राष्ट्र सहयोगी नहीं, बल्कि प्रतिद्वंदी बन गए और तभी से कई दषक तक दोनों के सम्बंध तनावपूर्ण और असमान्य रहे। राजनयिक सम्बंध भी कई वर्ष तक राजदूतों के स्तर पर सम्पादित नहीं हुए। 1962 के पश्चात् 1976 में ही यह सम्बंध कुछ सामान्य हुए। आज इस बात का उल्लेख जरूरी है कि भारत के लिए अंतर्राष्ट्रीय व्यापार जगत में चीन उसका प्रमुख साझेदार है।भारत और चीन के सम्बंधों का अध्ययन मुख्यतः चार कालखण्डों में विभाजित कर सकते है। भारत की आजादी से 1956 तक का दषक जिसमें ''हिन्दी चीनी'', भाई-भाई वाली गर्मजोषी देखने को मिली और 'नेहरू' ने बहुत जल्दबाजी में यह बात स्वीकार कर ली कि तिब्बत, चीन की सम्प्रभुता के अधीन है और एक स्वाधीन राष्ट्र नहीं है।

पंचशील समझौते होने के बाद 'नेहरू' को ऐसा लगा की चीन भारत के लिए कोई खतरा पैदा नही करेगा। 1957.58 तक इस बात को अनदेखा करना कठिन हो गया कि चीन हिमालयी सरहदों को विवादाग्रस्त समझता है। और जमीन के लाखों वर्ग किलोमीटर को अपना समझता है जिसे ब्रिटिष शासनकाल के मानचित्र में भारत का अभिन्न अंग समझते रहे है। 1962 में गुटनिरपेक्ष राष्ट्रों ने भारत की तुलना में चीन का साथ देना बेहतर समझा।

अगला कालखण्ड 1962.1976 तक चलता है। इन डेढ़ दषकों में चीन ने भारत की घेराबंदी पुख्ता तरीके से की उसने भारत के पारंपरिक शत्रु पाकिस्तान को अपने साथ लिया। भारत चीन का अगला चरण वह था जो पहले चीन ने आर्थिक उदारीकरण का मार्ग अपनाया और फिर भारत ने। चीन आर्थिक मामले में भारत से कई गूणा आगे निकल गया। और भारत चीन के बहुत से वस्तुओं पर आश्रित हो गया और जिसमें भारत को व्यापार घाटे का सामना करना पड़ रहा है।

समसामयिक दौर 21वीं शताब्दी के आरंभ से अब तक चला आ रहा है। इसमें दो परस्पर विरोधी तत्वों के बीच रस्साकशी चल रही है। एक ओर चीन अंतर्राष्ट्रीय मंच पर भारत का कद बौना बनाने में लगातार कोशिश करता आ रहा है। ऊर्जा सुरक्षा तथा खाध्य सुरक्षा के क्षेत्र में दोनों ही राष्ट्र प्रतिस्पर्द्धा के रूप में दोनों के ही बड़े बाजार को आकर्षित करते है और यहाँ भी एक तरह की प्रतिद्वंदिता है। दूसरी तरफ पिछले बीस साल में चीन और भारत के बीच आर्थिक सम्बंध बहुत घनिष्ठ हुए

है और भारत की चीन पर निर्भरता काफी बढ़ी है। भारत चीन के साथ ''शंघाई सहयोग संगठन" का सदस्य है और पर्यावरणीय सार्वभौमिक मुद्दो में उसके हितों के साक्ष्य चीन के साथ स्पष्ट नजर आता है। सात-आठ महीने से लगातार जारी डोकलाम संकट में यह बात स्पष्ट कर दी थी की चीन के तेवर शी-जीन पींग के नेतृत्व में नरम नहीं बल्कि जुझारू ही रहने वाले है। जब 2014 में शी-जीन पींग ने भारत की यात्रा की थी तब मोदी ने उनके स्वागत-सत्कार में कोई कसर नहीं छोड़ी थी। भारत में ऐसा महौल तैयार किया गया था कि मोदी और शी-जीन पींग के व्यक्तिगत रिष्ते असाधारण रूप से आत्मीय है और इनका लाभ भारत को अपने राष्ट्रीय हित साधन करने में निष्चित ही होगा। पर बहुत शीघ्र यह आषा निर्मुल साबित हो गई। चीन ने पाकिस्तान में रह रहे अंतर्राष्ट्रीय आंतकवादी करार किये जा चुके हाफिज सईद को बचाने के लिए अपनी राजनयिक दान को लगातार प्रयोग जारी रखा और भारत की 'परमाणुविक ईधन आपूर्ति समूह' की सदस्यता को भी आधार में लटकाये रखा है। पाकिस्तान सरकार के बेहिचक समर्थन करने में चीन ने कोई कसर नही छोड़ी है। जिस 'वन बेल्ट वन रोड' और चाइना, पाकिस्तान 'इकोनॉमिक कॉरिडोर' को चीन आने वाले दिनों में एषिया के लिए महत्वपूर्ण समझता है पर भारत अपने राष्ट्रीय हित के लिए खतरा मानता है। इतना ही नहीं कुछ समय पहले नेपाल और मालद्वीव में चीन ने भारत के राजनयिक प्रभाव को कम करने में या उसके प्रति शत्रुता का भाव रखने वाले तत्वों को प्रत्यक्ष या परोक्ष समर्थन देने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। भारत को अभी अमेरिका-चाइना के बीच उत्पन्न व्यापार युद्ध का लाभ उठाना ही उचित होगा। दोनों राष्ट्र एक दुसरे के सम्बंध को सुधारने के लिए वर्ष 2018 में चीन के राष्ट्रपति तथा भारतीय प्रधानमंत्री के बीच बुहान में भारत-चीन अनौपचारिक षिखर सम्मेलन का आयोजन किया गया। उनके बीच गहन विचार विर्मष हुआ और वैष्विक और द्विपक्षीय रणनीतिक मुद्दों के साथ-साथ घरेलु एवं विदेशी नीतियों के लिए उनसे सम्बंधित दृष्टिकोणों पर व्यापक सहमति बनी। उसके पश्चात् 2019 में दोनों राष्ट्रों के बीच चेन्नई में दूसरा औपचारिक षिखर सम्मेलन हुआ। चीन, जापान, कोरिया, स्लादीवोस्तक किरगिस्तान, कजाकिस्तान, भुटान आदी राष्ट्रों के क्षेत्रों पर अपना अधिकार जताते आया है। स्पष्ट है कि चीन दूर-दूर तक के इलाकों को लेकर बढ़-चढ़ कर दावे करता रहा है। यह विस्तारवादी मानसिकता और द्वेष में राष्ट्रवाद के दबावों को प्रदार्षित करता है। इस मानसिकता का असर भारत के साथ वास्तविक निाइंत्रण रेखा (LAC) पर चीन द्वारा समय-समय पर की गई हरकतों में नजर आता है। अप्रैल-मई, 2013 में देप्सांग के मैदानी इलाके, 2014 में चुमार, 2017 के डोकलाम विवाद और पष्चिमी सेक्टर तथा सिक्किम में हुई ताजा घटनाओं में यही प्रवृति नजर आती है। जिस दौरान चीन अपनी प्रगति पर ध्यान दे रहा था, उस दौरान वह भारत के साथ शांति बनाए रखने की अनेक व्यवस्थाओं पर सहमत हो गया था। जैसे- 1993 का शांति और स्थिरता समझौता, 1996 का सैन्नय क्षेत्र में आपसी विष्वास बढ़ाने वाले उपायों (CBM) पर सहमति, 2005 का सैनिकों द्वारा हथियार साथ नहीं रखने का प्रोटोकॉल और 2013 का सीमा पर गष्त कर रहे सैनिकों पर खुफिया निगरानी न करने का सीमा सुरक्षा सहयोग समझौता (Border defiance co-operation Agreement)। इनके अलावा सीमा पर शांति और स्थिरता बनाऐं रखने के लिए आपसी परामर्ष तथा समन्वय की भी व्यवस्था थी। 2012 में इस व्यवस्था की शुरूआत के बाद इसकी 15 बैठकें हो चुकी थी। इन सारे उपायों का उद्देष्य संघर्ष रोकना और सीमा पर यथास्थिति बनाए रखना था। लेकिन 15 जुन 2020 को 20 भारतीय जवानों के मारे जाने से दोनों राष्ट्रों के बीच यथास्थिति बदल गई। 1962 के संघर्ष, 1976 में सिक्किम सीमा और 1975 में अरूणाचल प्रदेश में तुलुंगला की झड़पों में ही आखिरी बार सैनिक हताहत हुए थे। लेकिन 2020 की घटनाओं ने दोनों राष्ट्रों के बीच सरहदों पर शांति और स्थिरता की स्थिति को ध्वस्त कर दिया। साथ ही (LAC) के करीब बड़ी संख्या में सेनाओं का जमाव भी पिछले प्रोटोकॉल्स में निर्धारित सीमाओं से बहुत ज्यादा हो गया।

साहित्यिक समीक्षाः

डॉ0 पुष्पेष पंतः 'अंतर्राष्ट्रीय सम्बंध' प्रकाशक Mchranl Hill Education _India¼ Private Limited.k~ 2019 में कहा है की भारत को अपने चुनावी राजनीति के दबाव को भूलकर चीन के साथ अच्छे सम्बंध बनाने की आवश्यकता है। भारत-चीन के बीच आंतरिक समस्याओं का शांतिपूर्ण समाधान तलाषने की कोशिश करने चाहिए। चुनावी राजनीति में भारत अक्सर विदेश नीति के चुनौतियों को भुला देता है।

डॉ0 तपन विस्वाल, 'अंतर्राष्ट्रीय सम्बंध' (2016) प्रकाशक य ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड में अपना मत रखा कि भारत को पहले पड़ोसी के नीति के अंतर्गत चीन के साथ सम्बंधों को उचित प्रक्रिया से सुदृढ़ एवं क्षेत्रीय सुरक्षा सषक्त करने की आवश्यकता है, तथा नेपाल एवं पाकिस्तान में चीन के विस्तारवादी दृष्टिकोण को रोकने की पहल अवश्य करनी चाहिए भारत द्वारा।

वीरेन्द्र सिंह वघेल, ''भारत को घेरता चीन'' 'आत्माराम एण्ड संस' नई दिल्ली-2017 में भारत में गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम चीन की तुलना में बहुत कम सफल हो सका। जबकि गरीबी व्यापक स्तर पर बढ़ती रही और आज राष्ट्र की 41.6 फीसदी जनसंख्या अंतर्राष्टीय गरीबी रेखा यानी 1.25 अमेरिकी डॉलर प्रतिदिन से नीचे रही है। भारत की गरीबी रेखा का अपना मापदण्ड़ है, जो योजना आयोग द्वारा ग्रामीण आबादी के लिए 26 रूपये प्रतिदिन प्रति व्यक्ति और शहरी क्षेत्र के लिए 32 रूपये प्रति व्यक्ति अनुशंसित हैं, वह हास्यास्पद हैं। इसकी तुलना में चीन की अन्तर्राष्टीय गरीबी रेखा की आबादी का अनुपात मात्र 10 फीसदी हैं।

अनिल आजाद पांडेय, '(हैलों चीन) राष्ट्र पुराना नई पहचान' कमराजल प्रकाशन, नई दिल्ली-2016, 20वीं सदी से 21वीं सदी तक कि अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में बुनिाइादी अन्तर यह माना जाता है कि जहॉ 20वीं सदी में सुरक्षा, सीमा विस्तार, विचारधारा जैसे मुद्दे, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में अहम स्थान रखते थे, वहॉ 21वीं सदी में आर्थिक व व्यापारिक कारक अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों पर अभिभावी हो गये हैं। समकालीक समय में दो राष्ट्र वैचारिक तथा राजनीतिक मतभेद होते हुए भी अपने द्विपक्षीय आर्थिक तथा व्यापारिक सम्बन्धों को अधिकाधिक विस्तृत एवं गहन बनाना चाहते हैं।

सी. पी. श्रीवास्तव. ''भारत तथा विश्व बदलता परिदृश्य किताब महल डिस्टीब्यूटर्स, नई दिल्ली,-2003' दक्षिण एशिया में भारत तथा चीन के मध्य सीमा विवाद तथा वैचारिक मतभेदों ने द्विपक्षीय सम्बन्धों की स्थापना तथा उन्हें मधुर बनाये रखने में एक व्यवधान के रूप में कार्य किया है लेकिन वर्तमान विश्व की आवश्यकताओं ने दोनों राष्ट्रों को एक दूसरे के नजदीक लाने में सेतु का कार्य किया है।

वी.आर.दीपक, ''इण्डिया एण्ड चाईना: 1904-2004, मानक पब्लिकेशन, नई दिल्ली 2005 भारत तथा चीन को 20वीं सदी के कटु अनुभवों को भुलाकर 21वीं सदी में अधिक सहयोगात्मक तथा रचनात्मक सम्बन्ध स्थापित करने चाहिए। दोनों राष्ट्रों को शांतिपूर्ण साधनों से अपनी द्विपक्षीय समस्याओं को सुलझाना चाहिए।

रूमेल. दहिया. तथा अशोक. कुमार. बहुरिया, ''इण्डियाज नेबरहुड: चौलेन्जेज इन द नैक्स्ट टू डेकेड्स'', पैन्टागन सिक्योरिटी पब्लिकेशर्स, 2012' में भारत के उसके पड़ोसी राष्ट्रों के साथ सम्बन्धों पर चर्चा की गई है। तथा इसमें भारत के नीति-निर्माताओं के समक्ष आने वाली विभिन्न चुनौतियों को रेखांकित किया गया है। साथ ही उन अवसरों की व्याख्या की गई है जिनको ध्यान में रखते हुए भारतीय विदेश नीति एवं सुरक्षा नीतियों को कम से कम नुकसान और अधिकाधिक लाभकारी रूप से निर्मित किया जा सके व अपनाया जा सके।

बहल. राघव, ''सुपर पावर'' भारतीय कछुआ या चीनी खरगोश, ''प्रभात पब्लिकेशन, नई दिल्ली 2010 सन् 2005 में भारत प्रगति की राह पर तेजी से चल पड़ा। अर्थव्यवस्था 9 प्रतिशत की दर से बढ़ने लगी, बाजारों में फिर से उछाल आ गया और चारों ओर खुोशनुमा माहौल दिखने लगा। जहॉ चीन में अब भी भारी निवेश हो रहा था, वही कम- से- कम कुछेक विदेशी स्वरों ने कहना शुरू कर दिया कि ''लोकतात्रिंक भारत विकास के मामले में चीन को पछाड़ देगा।'' ये आवाजें अपवाद थी। लेकिन भारत कम-से-कम खेल में शामिल हो पाया था। इस खेल से केवल भारत के राजनेता बाहर थे।

बिल. इमौट, ''राइवल्स:आउ द पॉवर स्टगल चाइना इण्डिया एण्ड जापान बिल सेप आवर नेक्स्ट डिकेड-2009'' में अंतर्राष्ट्रीय परिवर्तनों का उल्लेख किया गया है जिसमें आर्थिक तथा राजनीतिक शक्तियों को एशिया में स्थापित होना दर्शाया गया है इस पुस्तक में लेखक द्वारा बताया गया है कि भविष्य में एक राष्ट्र के बजाय एशिया के तीन बड़े राष्ट्रों चीन, भारत और जापान का विश्व में प्रभुत्व रहेगा। इसके साथ ही पूर्व के पश्चिम पर पड़ने वाले प्रभाव को इंगित करते हुए इन राष्ट्रों कि बढ़ती हुई शक्ति से क्या-क्या लाभ, तनाव तथा क्या-क्या खतरे हो सकते है, के बारे में भी एक प्रश्न चिन्ह पाठक के मस्तिष्क पटल पर छोड़ा है।

डेविड.स्मिथ, ''द डेगन एण्ड द एलीफेन्ट, चाइना, इण्डिया एण्ड द न्शठू वर्ल्ड ऑर्डर'', प्रोफाइल बुक्स पब्लिशर्स,-2008' भारत और चीन ने 21वीं सदी में आश्चर्यजनक रूप से विकास किया हैं। लेखक कहता हैं कि मुल प्रश्न दोनों राष्ट्रों के ढांचे तथा विश्व अर्थव्यवस्था में विश्व भु-राजनीति, शक्ति-संतुलन को बनाये रखना है। क्या चीन इस संतुलन को बनाये रखेगा? क्या चीन एक महाशक्ति बनेगा? और भारत जो विशाल और बढ़ती हुई जनसंख्या का स्वामी है, क्या वह विश्व में अपनी उपस्थिति दर्ज करा पाएगा? लेखक ने पूर्वी राष्ट्रों का विश्लेषण करके वैश्विक शक्ति के केन्द्र को बीजिंग ,दिल्ली और वांशिगटन के मध्य स्थित बताया है।

अध्ययन का उद्देश्यः-

- भारत-चीन के सम्बंध का बदलते आयाम का अवलोकन करना है।
- इस शोध अध्ययन उद्देष्य सर्वप्रथम भारत के क्षेत्रीय सुरक्षा के स्थिति का अवलोकन करना है।
- इस शोध अध्ययन से भारत-चीन के सम्बंध को मृदु शाक्ति के रूप में अवलोकन करना है।
- चीन की विस्तार वादी नीतियों में मुख्य कारकों का अध्ययन करना है।

अध्ययन महत्व

अनुनाइ और आकर्षण का प्रयोग कर सॉफ्ट पॉवर प्रतिस्पर्द्धा या संघर्ष के बिना अन्य राष्ट्रों के व्यवहार में परिवर्तन को संभव बनाता है। सॉफ्ट पॉवर की नीति के अंतर्गत विभिन्न राष्टों के मध्य सहयोग को बढ़ावा दिया जाता है, जिससे यह संबंधों को मजबूत कर विकास में योगदान करती है जबकि हार्ड पॉवर नीति में एक तरफा कार्रवाई, सैन्य क्षमता को बढ़ाना जैसे कदमों के कारण यह अत्यधिक महँगी, कठिन एवं चुनौतिपूर्ण हो गई है। 'सॉफ्ट पॉवर' में व्यापक स्तर पर अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों को प्रभावित करने की क्षमता होती है। प्राचीन काल में भी कौटिल्य और कामंदक जैसे विद्वानों ने राज्य के मामलों में सफलता हासिल करने के लिये 'सॉफ्ट पॉवर' के प्रयोग की वकालत की थी। 'हार्ड पॉवर' की अपेक्षा 'सॉफ्ट पॉवर' नीति में संसाधनों का प्रयोग लागत प्रभावी तरीके से हो सकता है। डिजिटल क्रांति के वर्तमान युग में राज्यों के बीच संपर्क एवं सद्भाव का महत्त्व बढ़ता जा रहा है, इस परिप्रेक्ष्य में 'सॉफ्ट पॉवर' रणनीतियाँ ही उचित मानी जा रही हैं। भारत और चीन के मध्य सम्बंध समयानुसार परिस्थितियों के अनुकुल बदलते रहा है।

निष्कर्ष

भारत के 'मृदु शक्ति' के के रूप में आध्यात्मिकता, योग, दर्शन, धर्म आदि के साथ-साथ अहिंसा, लोकतांत्रिक विचार आदि। भारत के पास संगीत, नृत्य, चित्रकला, मूर्तिकला, वास्तुकला, साहित्य, चिकित्सा आदि की व्यापक सांस्कृतिक विरासत है जिसने अनेक को प्रभावित किया है। वर्तमान समय में कोविड-19 के कारण विष्व व्यवस्था अस्त-व्यस्त है, सभी राष्ट्र अपने-अपने शासन व्यवस्था, आर्थिक स्थिति और स्वास्थ्य व्यवस्था को सुधारने में लगे थे। वैसे समय में भारत वैष्विक महामारी से निपटने के लिए आपसी सहयोग समन्वय एवं सहभागिता के रूप में अपने पड़ोसी रास्ट्रो को कोविड वैक्सीन वितरण कर रहा था। वही चीन का 'बेल्ट एंड रोड' पहल एक 'मृदु शक्ति' के प्रयोग का सबसे अच्छा उदाहरण है, जिसका उद्देश्य विकास के नाम पर छोटे राष्टों को चीन पर निर्भर बनाना है ताकि वे चीन की नीतियों का समर्थन करें। अनुनाइ और आकर्षण का प्रयोग कर मृदु शक्ति प्रतिस्पर्द्धा या संघर्ष के बिना अन्य राष्ट्रों के व्यवहार में परिवर्तन को संभव बनाता है। अतः इस दृष्टी से भारत और चीन के मध्य आपसी विवाद को कम किया जा सकता है।

भारत की 'सॉफ्ट पॉवर' कूटनीति की सम्बन्धित कुछ सुझाव

- भारत में 30 से अधिक बिलियन-डॉलर के सफल स्टार्टअप हैं, किंतु इसके बावजूद भी राष्ट्र में डिजिटल पहुँच काफी कम है और लाखों लोग बुनिाइदी डिजिटल प्रोद्योगिकी के जीवन व्यतीत कर रहे हैं जहॉ कुछ नीतिगत सुधार की आवश्यकता है।
- भारत में यूनेस्को के विश्व धरोहर स्थलों की संख्या काफी अधिक है, परंतु अभी भी राष्ट्र का पर्यटन क्षेत्र कुछ खास विकास नहीं कर पाया है। यह स्थिति हमें अपनी पर्यटन नीति पर गंभीरता से विचार करने के लिये प्रेरित करती है।
- सांस्कृतिक विकास के लिये बुनिाइदी ढाँचे की कमी की समस्या भी राष्ट की 'सॉफ्ट पॉवर' कूटनीति की एक बड़ी चुनौती है, जहॉ सुधार की आवश्यकता है।
- भारत सांस्कृतिक कूटनीति में निवेश की कमी, भ्रष्टाचार, लालफीताशाही, शहरी क्षेत्रों में बुनिाइदी ढाँचे की कमी और गंभीर प्रदूषण जैसी समस्याओं से नीतिगत सुधार की आवश्यकता है।
- बढ़ती बहुध्रुवीय विश्व व्यवस्था में भारत को खुद को स्थापित करने की आवश्यकता है। चूँकि 'हार्ड पॉवर' न तो भारत के नजरिये से सही है और न ही उसे एक सीमा से अधिक उपयोग नहीं किया जा सकता है, इसलिये 'सॉफ्ट पॉवर' ही भारत को वैश्विक पटल पर अपना स्थान हासिल करने में मदद कर सकती है। अतः आवश्यक है कि भारत अपनी

विदेश नीति में 'सॉफ्ट पॉवर' को उचित स्थान दे और और 'स्मार्ट पॉवर' का प्रयोग करते हुए वैश्विक जगत में अपनी एक नई पहचान स्थापित करे।

संदर्भ - सूची:

1 वार्षिक रिपोर्ट (1991-92) विदेशमंत्रालय भारत सरकार, दिल्ली
2 Nye, Joseph (April 2005) : 'Soft Power: The Means To Success In World Politics' PublicAffairs
3 खन्ना, एन0 एन0, अरोड़ा, लिपांक्षी एवं कुमार, लैसली (2006): 'भारत की विदेश नीति, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा0 ली0, दत, वी0 पी0: 'इंडिया फारेन पालिसी सिंह इंडिपेंडेंस, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली
4 सिंहल.(2006): डॉ0 एस0 सी0 'अंतर्राष्ट्रीय कानून' प्रकाशक: लक्ष्मी नारायण अग्रवाल,आगरा
5 दत्त (2007): वी0 पी0 ''इंडियन फॉरेन पॉलीसी सिंस डिपेंडेंस", प्रकाशक: नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली
6 मिश्रा, केश्व एवं भारद्वाज (2016) प्रवीण, 'बीसवीं सदीं में भारत-चीन सम्बंध' प्रकाशक: जेननेक्सट नई दिल्ली
7 बिस्वाल, डॉ0 तपन (2016): 'अंतर्राष्ट्रीय सम्बंध', ओरियंट ब्लैकस्वान,चेन्नई
8 पंत, डॉ0 पुष्पेष (2019): 'अंतर्राष्ट्रीय सम्बंध' प्रकाशक: एमसी ग्रो हील एजुकेशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली
9 बिस्वाल, डॉ0 तपन(2019): 'तुलनात्मक राजनीति' प्रकाशक ओरियंट, ब्लैकस्वॉन, चेन्नई
10 वार्षिक रिपोर्ट, (2018-19) विदेशमंत्रालय भारत सरकार, दिल्ली
11 कोंडापल्ली, डॉ0 श्रीकांत (2020): 'क्षेत्रीय सुरक्षा: भारत-चीन सम्बंध, योजना पत्रिका
12 वर्मा, डॉ0 संजय कुमार (2020): 'भारत-चीन सम्बंधन बदलता परिदृष्य' प्रकाशक: इवीनसेपब, दिल्ली

भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में उत्तरी बिहार की महिलाओं की भूमिका: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

आलोक कुमार

पीएच.डी. (शोधार्थी) सतत शिक्षा एवं विस्तार विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

हिमांशु सिंह

(शोधार्थी) पीएच.डी. सतत शिक्षा एवं विस्तार विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय

सारांश

भारती स्वतंत्रता आंदोलन की शुरूआत मुख्यतः 1917 के चम्पारण सत्याग्रह से होता है चूँकि आंदोलन का शाब्दिक अर्थ होता है पूर्व से चली आ रही पद्धति में सकारात्मक अमूल-चूल परिवर्तन लाना। महात्मा गाँधी के अहिंसक आंदोलन के कारण ही भारत के महिलाओं की तरह ही उत्तरी बिहार की महिलाएं भी स्वतंत्रता आंदोलन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। इनमें प्रमुख रूप से रामस्वरूपदेवी, जनकदुलारी देवी, शारदा देवी, सरस्वती देवी, आदि प्रमुख है। 1921 में महात्मा गांधी द्वारा सफल सत्याग्रह के बाद रचनात्मक कार्यों पर जोर देने का निर्णय लिया तर्क यह था कि इसके माध्यम से सम्पूर्ण भारत के लोगों को एकजुट किया जाए। इस कार्य में भी बिहार की महिलाओं का बहुमूल्य योगदान रहा। देशबंधु स्मारक कोष के माध्यम से धन संग्रह का कार्य किया। मुजफ्फरपुर, दरभंगा, छपरा, कोशी क्षेत्र के महिलाओं ने हजारों की संख्या में उपस्थित होकर उनका स्वागत करने के साथ-साथ आभूषणों को दान देने का कार्य किया। पटना महिला चरखा समिति से जुड़ी महिलाओं में 1942 की क्रांति को सफल बनाने का अथक प्रयास किया। छह अगस्त 1942 को ही महिलाओं का व्यापक पैमाने पर एक बड़ा जुलूस निकाला गया। भगवती देवी जो कि डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की बहन थी कि अध्यक्षता में एक विशाल सभा का आयोजन किया गया जिसमें सुंदरी देवी, राम प्यारी देवी आदि ने भाषाण दिया।

बीज शब्दः- अहिंसा, सत्याग्रह, स्वदेशी, पर्दा प्रथा, नमक कानून

परिचयः सम्पूर्ण भारत की आंदोलन की जननी उत्तरी बिहार का चम्पारण जिला रहा है। सन 1917 ई. में बिहार में महात्मा गाँधी के आगमन के साथ ही महिलाओं का झुकाव अहिंसक आंदोलनों के प्रति बढ़ गया। कस्तूरबा गाँधी, श्रीमती सरला देवी, प्रभावती देवी, राजवंशी देवी, सुनीता देवी, राधिका देवी और वीरांगना महिलाओं की प्रेरणा से सम्पूर्ण बिहार की महिलाओं में आजादी के प्रति रुचि बढ़ गया। गाँधी जी ने शांति की महिलाओं में आजादी के प्रति रुचि बढ़ गया। गाँधी जी ने शांति के माध्यम से क्रांति को साधने का प्रयत्न किया। 16 अप्रैल 1930 को महात्मा गाँधी द्वारा देशव्यापी प्रसिद्ध नमक सत्याग्रह का आयोजन किया गया। ऐसे आंदोलन में बिहार की महिलाएँ भी बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया तथा नमक कानून को भंग किया। सासाराम थाने के सामने बड़े पैमाने पर महिलाओं ने नमक बनाकर कानून तोड़ दिया था। सम्पूर्ण बिहार में शराबबंदी आंदोलन के साथ-साथ विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार किया गया। 4 जनवरी 1933 को महात्मा गाँधी के गिरफ्तारी दिवस के बाद जगह-जगह प्रदर्शन हुए। इसी क्रम में महिलाओं ने भी गिफ्तारी दी जिनकी जनसंख्या कुल जनसंख्या की आधी थी। इसमें प्रमुख थी डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की धर्मपत्नी रावंशी देवी तथा पटना जिला कांग्रेस कमिटी की चन्द्रवती देवी। अदालत द्वारा इन्हें 15 महीने की कठिन कारावास की सजा सुनाई गई। पटना स्थित चरख समिति के महिलाओं द्वारा स्वदेशी वस्त्रों को व्यापक पैमाने पर उपयोग तथा प्रचार करके आंदोलन को जीवंत बनाये रखने का कार्य किया। उत्तरी बिहार में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की बहन भगवती देवी की अध्यक्षता में महिलाओं का विशेष सभा का आयोजन किया गया। जिसमें मुख्य रूप से सुन्दरी देवी, राम प्यारी देवी आदि ने भाषण दिए। इन लोगों ने घर-घर जाकर भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के प्रचारक के रूप में कार्य किया तथा 12 अगस्त

को व्यापक पैमाने पर जुलूस निकालने का कार्य किया। 1942 के इस आंदोलन ने महिलाओं के आन्तरिक तथा बाह्य आंदोलन का कार्य किया। एक तरफ अब महिलाएँ पर्दे और घरों से बाहर निकलकर पुरुष के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने लगी तो वही दूसरी तरफ क्रूर ब्रिटिश शासन के खिलाफ आवाज बुलंद करने का कार्य किया। बड़े पैमाने पर महिलाएँ गिरफ्तार हुई, आंदोलन को कुचलने के क्रम में बड़ी संख्या में गोरे सिपाहिओं द्वारा महिलाओं का शोषण किया गया। इन सब के बावजूद महिलाओं ने बहादुरी तथा साहस को बनाए रखा तथा अंग्रेजी सत्ता के खिलाफ आंदोलन जारी रखने का कार्य किया। इसी के परिणाम स्वरूप हम 15 अगस्त 1947 का दिवस देखते हैं।

साहित्यिक अवलोकन

सुषमा कुमारी (मार्च 2019): लेखिका ने लघु लेख के द्वारा 1914 से 1930 ई. तक के सम्पूर्ण बिहार के महिलाओं की स्थिति का अति संक्षिप्त से परिचय दिया है। महात्मा गाँधी द्वारा प्रारम्भ किए गए आंदोलन के बाद बिहार की महिलाओं के शिक्षा, स्वास्थ्य तथा सामाजिक हैसियत में परिवर्तन आया। महिलाएँ शैक्षणिक परिवर्तन लाने, सार्वजनिक सेवाओं की स्थापना तथा समाज में उपस्थित कुरीतियों को दूर करने का कार्य किया।

प्रभा शंकर शुक्ल (दिसम्बर 2019): साहित्यिक भाषाओं के माध्यम से लेखक ने समाज एवं राष्ट्र निर्माण में महिलाओं की भूमिकाओं को स्पष्ट करने कार्य किया है। लेखक ने मुख्य ध्यान सुशिक्षा, जनजागरण एवं समाज सुधार में तत्पर चिन्तनशील नारी का प्रतीक बताया है। राष्ट्र के निर्माण के लिए महिलाएं त्याग, करूणा एवं प्रेम के माध्यम से संकल्पों एवं संस्कारों के प्रति सजग रहते हुए सामाजिक परिष्कार एवं राष्ट्र के उत्थान के लिए प्रयत्नशील कार्य किए है। नारी नेतृत्व में शैक्षिक उन्नयन, ग्राम सुधार एवं समाज सुधार का कार्य किया गया है।

अनुराग पाण्डेय (दिसम्बर 2022): लघु लेखानुसार 19वीं सदी के प्रारम्भ में भारतीय समाज के अन्दर सामाजिक और धार्मिक सुधार आंदोलन की शुरुआत होती है। आंदोलन का मुद्दा दो मुख्य केन्द्रों पर आधारित होता है, सर्वप्रथम महिला सुधार और महिलाओं के समान अधिकार एवं स्त्री जाति प्रथा उन्मूलन और छुआछूत प्रथा का अंत। अत: लेखक ने मुख्यत: समाज और धर्म सुधार आंदोलन लैंगिक एवं धार्मिक भेदभाव को खत्म कर, समानता के आधार आंदोलन लैंगिक एवं धार्मिक भेदभाव को खत्म कर, समानता के आधार पर एक समतामूलक समाज की स्थापना पर जोर देता था।

संदीप कुमार, चिन्टू कुमारी (जनवरी 2023): प्रस्तुत शोध आलेख का मुख्य केन्द्र बिन्दु बिहार राज्य की राजनीति में दलित महिलाओं की भागीदारी के विभिन्न रूपों को स्पष्ट करता है। 1980 के दशक में बिहार में महिलाएँ सामंती शोषण, दमन, दहजे हत्याओं आदि जैसे मुद्दों को अत्यधिक स्पष्ट करने का कार्य किया है। इन्हीं घटनाओं के खिलाफ में संगठन एवं व्यापक रूप से आंदोलन चलाने का कार्य किया गया।

स्वतंत्रता आंदोलन में उत्तरी बिहारी की कुछ प्रमुख महिलाओं का योगदान:-

प्रभावती देवी नारायण: प्रभावती देवी का विवाह 16 मई 1920 को जय प्रकाश नारायण से हुआ। ये एक प्रमुख भारतीय स्वतंत्रता सेनानी थी। चूँकि जयप्रकाश नारायण गाँधीवादी विचारधारा के समर्थक थे इसलिए उन्होंने विवाह के उपरान्त प्रभावती देवी को चरखा से बुनाई सीखने की सलाह दी। उन्होंने यह संकल्प किया कि जब तक हम देश को आजादी नहीं दिला देते तब तक संतान उत्पत्ति नहीं करेंगे। 1932 में जब विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार कर रही थी तो इसी क्रम में उन्हें गिरफ्तार किया गया और उन्हें लखनऊ के जेल डाल दिया गया। उन्हें गाँधी तथा राजेन्द्र प्रसाद के निर्देशन में बालिका स्वयंसेविका को संगठित करने का कार्य किया। प्रभावती देवी का स्वतंत्रता संग्राम में प्रमुख योगदान में से एक है गांधीवादी मॉडल पर महिलाओं को शामिल कर के पटना में महिला चरखा समिति की स्थापना करना। भारत छोड़ो आंदोलन में सक्रिय भागीदारी के कारण इन्हें गिरफ्तार करके भागलपुर जेल भे दिया गया था।

तारा रानी श्रीवास्तव: तारा रानी का जन्म उत्तर बिहार के सारण में एक साधारण से परिवार में हुआ और फूलेंदू बाबू के साथ उनका विवाह सम्पन्न हुआ था। प्रारम्भ में वे अपने पति के सहयोग से आसपास के महिलाओं को संगठित करके ब्रिटिश शासन के विरुद्ध मोर्चा निकालने का कार्य किया। 1942 के आंदोलन में इकना प्रमुख योगदान रहा। ब्रिटिश शासन का विरोध करते हुए इनकी योजना था कि सिवान पुलिस स्टेशन पर भारतीय ध्वज फराया जाए। इन्होंने भीड़ इकट्ठा करने में कामयाबी पायी और इंकलाब के नारे के साथ पुलिस स्टेशन की ओर मार्च किया। इसी क्रम में पुलिस ने लाठी चार्ज तथा फायरिंग किया

जिससे उनके पति को गोली लगी और वे शहीद हो गए। लेकिन वे स्वतंत्रता संग्राम का समर्थन जारी रखी। वे महिलाओं के अन्दर आत्मविश्वास तथा देश प्रेम की भावनाओं को जाग्रत करने के साथ-साथ समाज अन्दर उपस्थित कुरीतियों का भी विरोध किया।

बहुरिया रामस्वरूपा देवी:- बिहार की महिलाओं के इतिहास पर दृष्टि डाले तो यहाँ भी लक्ष्मीबाई की तरह हजारों देश भक्तों का जन्म हुआ है। इन्हीं में एक हुई रामस्वरूपा देवी। रामस्वरूपा देवी को बिहार की लक्ष्मीबाई के नाम से जाना जाता है। उस निडर और बहादुर महिला ने न तो कभी स्वयं को अंग्रेजों के समक्ष झुकने दिया न ही डरकर अपने प्रण से पीछे हटी। 18 अगस्त 1942 को इन्होंने छपरा के मढ़ौरा स्थित थाने में भारतीय ध्वज तिरंगा कहराया। आजाद भारत के 1952 के प्रथम चुनाव में रामस्वरूप देवी विधानसभा के लिए चुनी गई। वे हमेशा समाज के अन्दर नैतिक मूल्यों की रक्षा करती रही। उन्होंने महिला शिक्षा, नारी उत्थान के लिए अथक कार्य किया। पर्दा प्रथा, बाल विवाह आदि का उन्होंने बहिष्कार करने का कार्य किया।

निष्कर्ष

लघु शोध लेख के माध्यम से स्पष्ट है कि उत्तरी बिहार कि जितनी भी स्वतंत्रता सेनानी महिलाएँ थी उन्होंने सर्वप्रथम समाज में विद्यमान बाल विवाह, पर्दा प्रथा, जाति प्रथा आदि पर गांधीवादी तरीके से प्रहार किया। प्रारम्भ में इन्हें समाज के अन्दर उपस्थित कुरीतियों से सामना करना पड़ा जब इन्हें लगा कि समाज के अंदर उपस्थित बुराईयों तथा ब्रिटिश कुशासन का विरोध कराना चाहिए तो उनहोंने किया। प्रभावती देवी, रामस्वरूपा देवी, तारा रानी श्रीवास्तव जैसे उत्तरी बिहार की महिलाएँ सन 1917 से लेकर आजादी प्राप्त करने तक स्वतंत्रता संग्राम को अहिंसक तरीके से मजबूती प्रदान करने का कार्य किया। इनके अतुल्य योगदान के लिए आज भी हमारा उत्तरी बिहार का समाज ऋणी है। इन्हें आधुनिक समाज के माध्यम से एक मजबूत राष्ट्र के निर्माण का कार्य किया है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. के.के. दत्ता, बिहार में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी पटना, 2014, पृ. 115-120
2. सौमित्र मोहन, बिहार एक परिचय, एम.सी. ग्रोहिल प्रकाशन, पृ. 225-240
3. अमरजीत झा, बिहार: एक खोज, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 2021, पृ. 187-200
4. सुषमा कुमारी, सविनय अवज्ञा आंदोलन में महिलाओं की भूमिका: बिहार के विशेष संदर्भ में, मार्च-2019, पृ. 5-7
5. संदीप कुमार, चिन्टू कुमारी, बिहार की राजनीति में दलित महिलाओं की भागीदार, जनवरी-2023, पृ. 3-5

21वीं सदी में वैश्विक शक्ति-संतुलन और परिवर्तित विश्व व्यवस्था में चीन की उपस्थितिः एक अवलोकन

डॉ० कुमार रश्मि रंजन

वरीय सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, एम.एस.एस.जी.कॉलेज, अरेराज,पूर्वी चंपारण, बिहार

शोध आलेख का सारतत्व :

21वीं सदी की अंतरराष्ट्रीय राजनीति में सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन वैश्विक शक्ति-संतुलन का पुनर्संयोजन है, जिसमें चीन का तीव्र उदय केंद्रीय स्थान रखता है। पिछले तीन दशकों में चीन ने आर्थिक, सैन्य, तकनीकी और कूटनीतिक क्षेत्रों में उल्लेखनीय विस्तार किया है, जिसके परिणामस्वरूप वह अमेरिका के प्रभुत्व वाली एकध्रुवीय विश्व व्यवस्था को चुनौती देने वाली मुख्य शक्ति के रूप में उभरा है। चीन की निरंतर आर्थिक वृद्धि, वैश्विक व्यापार और निवेश में उसकी अग्रणी भूमिका तथा "बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव (BRI)" जैसी परियोजनाओं ने न केवल एशिया, बल्कि यूरोप, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका में भी उसकी उपस्थिति को मजबूत किया है। दूसरी ओर, चीन की सैन्य क्षमता, विशेषकर दक्षिण चीन सागर में उसकी गतिविधियाँ और इंडो-पैसिफिक क्षेत्र में रणनीतिक प्रतिस्पर्धा ने वैश्विक सुरक्षा संरचना को प्रभावित किया है। अमेरिका-चीन प्रतिस्पर्धा ने विश्व राजनीति को नए प्रकार की द्विध्रुवीयता की ओर धकेला है, जिसमें तकनीकी प्रतिस्पर्धा (5G, AI, सेमीकंडक्टर), व्यापार युद्ध और भू-राजनीतिक तनाव प्रमुख कारक हैं। वैश्विक संस्थाओं जैसे संयुक्त राष्ट्र, WTO और WHO में चीन की बढ़ती भूमिका से बहुपक्षीय व्यवस्था में शक्ति-संतुलन भी बदल रहा है। BRICS, SCO और AIIB जैसी संस्थाओं के माध्यम से चीन एक वैकल्पिक वैश्विक ढाँचा प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा है।भारत के लिए चीन का उदय अवसरों और चुनौतियों दोनों का मिश्रण है। सीमा विवाद, आर्थिक निर्भरता, और इंडो-पैसिफिक में रणनीतिक प्रतिस्पर्धा भारत की विदेश नीति के प्रमुख मुद्दे बन चुके हैं। कुल मिलाकर, चीन का उदय न केवल एशिया बल्कि संपूर्ण विश्व व्यवस्था के ढाँचे को पुनर्परिभाषित कर रहा है, जिससे 21वीं सदी की वैश्विक राजनीति लगातार बहुध्रुवीय और प्रतिस्पर्धात्मक होती जा रही है।

प्रमुख शब्दावलीः वैश्विक शक्ति-संतुलन, चीन का उदय, विश्व व्यवस्था, एकध्रुवीयता, बहुध्रुवीयता, अमेरिका-चीन प्रतिस्पर्धा, इंडो-पैसिफिक, बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव (BRI), भू-राजनीति, वैश्विक संस्थाएँ, BRICS, SCO, AIIB, आर्थिक शक्ति, सैन्य आधुनिकीकरण, दक्षिण चीन सागर, तकनीकी प्रतिस्पर्धा, व्यापार युद्ध, रणनीतिक संतुलन, भारतीय विदेश नीति आदि।

प्रस्तावना :

चीन का आर्थिक उदय 21वीं सदी की अंतरराष्ट्रीय राजनीति और वैश्विक अर्थव्यवस्था की सबसे निर्णायक घटनाओं में से एक है। विश्व अर्थव्यवस्था में उसकी भूमिका आज इतनी महत्वपूर्ण हो चुकी है कि उसके विकास, नीतियों या आर्थिक गतिविधियों में आने वाला कोई भी परिवर्तन वैश्विक व्यापार, निवेश, उत्पादन, मुद्रा बाजार और आपूर्ति श्रृंखलाओं पर त्वरित प्रभाव डालता है। चीन की तेज आर्थिक वृद्धि का आधार 1978 के बाद लागू की गई[1] आर्थिक सुधार नीतियाँ थीं, जिन्होंने उत्पादन, निर्यात, विदेशी निवेश और तकनीकी आधुनिकीकरण पर केंद्रित नई आर्थिक प्रणाली का निर्माण किया। इस सुधार प्रक्रिया ने 'विश्व फैक्ट्री' के रूप में चीन की पहचान को मजबूत किया और विनिर्माण क्षेत्र में उसकी क्षमता को विश्व में सर्वोच्च स्तर पर पहुँचा दिया। सस्ती श्रमशक्ति, विशाल घरेलू बाजार, बुनियादी ढाँचे में निवेश और राज्य-नियंत्रित पूंजीवाद के मॉडल ने चीन को विश्व के सबसे आकर्षक विनिर्माण और निवेश केंद्र के रूप में स्थापित किया।

चीन की निरंतर और प्रभावशाली आर्थिक वृद्धि का प्रभाव वैश्विक व्यापार पर अत्यंत व्यापक रहा है। चीन आज दुनिया का सबसे बड़ा निर्यातक और दूसरा सबसे बड़ा आयातक देश है। उसकी उत्पादक क्षमता ने इलेक्ट्रॉनिक्स, मशीनरी, उपभोक्ता

वस्तुओं, स्टील, कंस्ट्रक्शन सामग्री और ऑटोमोबाइल पार्ट्स सहित कई क्षेत्रों में उसे विश्व का प्रमुख आपूर्तिकर्ता बना दिया है।[2]

वैश्विक कंपनियों ने चीन को अपना विनिर्माण केंद्र बनाने के लिए बड़े पैमाने पर निवेश किया, जिससे चीन वैश्विक आपूर्ति श्रृंखला का अपरिहार्य हिस्सा बन गया। Apple, Samsung, Tesla जैसे अंतरराष्ट्रीय ब्रांडों के प्रमुख उत्पाद चीन में निर्मित होते हैं,[3] जिसने आर्थिक वैश्वीकरण की दिशा को प्रभावित किया है।

चीन की आर्थिक शक्ति का विस्तार केवल विनिर्माण तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उसने वैश्विक निवेश और अवसंरचना विकास में भी विशाल भूमिका निभाई है। उसकी सबसे बड़ी वैश्विक परियोजना बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव (BRI) है, जिसके माध्यम से एशिया, अफ्रीका, यूरोप और लैटिन अमेरिका के देशों में बंदरगाह, सड़कें, रेल मार्ग, औद्योगिक पार्क और ऊर्जा परियोजनाएँ स्थापित की जा रही हैं।[4] इस परियोजना के माध्यम से चीन न केवल आर्थिक प्रभाव बढ़ा रहा है, बल्कि रणनीतिक और राजनीतिक प्रभाव का भी विस्तार कर रहा है। कई विकासशील देशों की आर्थिक संरचना और व्यापार संबंध चीन पर निर्भर होते जा रहे हैं, जिससे अंतरराष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में उसकी केंद्रीयता और अधिक मजबूत हो रही है।

चीन की आर्थिक वृद्धि ने वैश्विक निवेश प्रवाह को भी प्रभावित किया है। चीनी कंपनियाँ आज विश्वभर में अधिग्रहण, निवेश और तकनीकी गठजोड़ में सक्रिय हैं। Huawei, Alibaba, Tencent, BYD और ज्पाज्वा जैसी कंपनियाँ वैश्विक प्रतिस्पर्धा का हिस्सा बन चुकी हैं।[5] विशेष रूप से तकनीकी क्षेत्र में चीन का तेज उदय विश्व में शक्ति-संतुलन का परिवर्तन दर्शाता है। चीन की 'मेड इन चाइना 2025' नीति ने उच्च-तकनीकी क्षेत्रों-जैसे रोबोटिक्स, एआई, 5G, जैव-प्रौद्योगिकी और सेमीकंडक्टर-में उसकी उभरती क्षमता को लक्ष्य बनाया है। इससे वैश्विक तकनीकी पारिस्थितिकी में नए संतुलन उत्पन्न हुए हैं, जिनका प्रभाव अमेरिका, यूरोप, जापान और भारत जैसी बड़ी अर्थव्यवस्थाओं पर भी महसूस किया जा रहा है।

चीन की आर्थिक नीतियाँ और उसका वैकल्पिक मॉडल विकासशील देशों के लिए प्रेरणा बन गया है। उसका राज्य-नियंत्रित बाजार मॉडल कई सरकारों को यह विश्वास दिला रहा है कि तेज आर्थिक विकास के साथ राजनीतिक स्थिरता संभव है, भले ही उस मॉडल में पश्चिमी उदार लोकतांत्रिक सिद्धांतों का अभाव हो। इस कारण विश्व में विकास के वैकल्पिक मॉडलों की चर्चा बढ़ी है और पश्चिम की आर्थिक नीतियों का वर्चस्व चुनौती में पड़ा है।

चीन का आर्थिक उदय वैश्विक संतुलन को प्रभावित करने के साथ-साथ कई चुनौतियाँ भी उत्पन्न करता है। कई देशों में चीन की आर्थिक उपस्थिति पर संदेह बढ़ा है, विशेषकर उन देशों में जो चीन के ऋण या निवेश पर अत्यधिक निर्भर हो गए हैं। इसे 'डेब्ट ट्रैप' या 'कर्ज-जाल कूटनीति' के रूप में आलोचना मिलती रही है। इसके अतिरिक्त, चीन के साथ व्यापार संतुलन में भारी असमानता, उसकी मुद्रा नीति, बौद्धिक संपदा अधिकारों का उल्लंघन और अति-उत्पादन जैसे मुद्दे भी वैश्विक अर्थव्यवस्था को प्रभावित करते हैं। चीन-अमेरिका व्यापार युद्ध इसका प्रमुख उदाहरण है, जिसने विश्व व्यापार और आर्थिक स्थिरता को प्रभावित किया।

चीन की आंतरिक चुनौतियाँ जैसे वृद्ध होती जनसंख्या, धीमी आर्थिक वृद्धि, रियल एस्टेट संकट, घरेलू मांग में गिरावट और वैश्विक दबाव-भविष्य में उसकी आर्थिक प्रगति की गति को प्रभावित कर सकती हैं।[6] फिर भी, चीन आज विश्व अर्थव्यवस्था की एक प्रमुख धुरी है, और उसके विकास-पथ में आने वाला हर परिवर्तन वैश्विक स्तर पर बदलाव लाने की क्षमता रखता है। यह स्पष्ट है कि चीन का आर्थिक उदय केवल उसकी घरेलू सफलता का परिणाम नहीं है, बल्कि यह वैश्विक आर्थिक ढाँचे की संरचना, प्रतिस्पर्धा और शक्ति-संतुलन को भी गहराई से बदल रहा है।

चीन की सैन्य शक्ति का विस्तार 21वीं सदी की वैश्विक रणनीति का सबसे महत्वपूर्ण तत्व है। चीन ने 1990 के दशक के बाद अपनी पीपुल्स लिबरेशन आर्मी (PLA) का व्यापक आधुनिकीकरण शुरू किया,[7] जिसके परिणामस्वरूप उसकी सैन्य क्षमता एक क्षेत्रीय सेना से बढ़कर विश्वस्तरीय शक्ति बनने की दिशा में अग्रसर हो चुकी है। च्स। के आधुनिकीकरण का उद्देश्य केवल रक्षा क्षमता बढ़ाना नहीं है, बल्कि चीन की शक्ति-प्रक्षेपण क्षमता को एशिया-प्रशांत क्षेत्र और उससे आगे तक विस्तारित करना है। इस आधुनिकीकरण में तकनीकी नवाचार, साइबर सुरक्षा, एआई-आधारित युद्धक प्रणालियाँ, मिसाइल रक्षा प्रणाली, नौसैनिक विस्तार और अंतरिक्ष आधारित हथियारों का विकास प्रमुख घटक हैं।

चीन की सैन्य रणनीति में नौसेना का विकास सबसे महत्वपूर्ण रहा है। PLA Navy आज विश्व की सबसे बड़ी नौसेना बन चुकी है। चीन द्वारा एयरक्राफ्ट कैरियर, मिसाइल विध्वंसक, पनडुब्बियाँ और एंटी-शिप बैलिस्टिक मिसाइलों का विकास उसकी ब्लू वॉटर नेवी बनने की आकांक्षा को दर्शाता है। दक्षिण चीन सागर में कृत्रिम द्वीपों का निर्माण और उनका सैन्यीकरण चीन

की समुद्री रणनीति का प्रमुख हिस्सा है।[8] इन कृत्रिम द्वीपों पर हवाई पट्टियाँ, मिसाइल प्रणालियाँ और नौसैनिक ठिकाने स्थापित किए गए हैं, जिनके माध्यम से चीन समुद्री मार्गों पर नियंत्रण स्थापित करना चाहता है। यह क्षेत्र विश्व व्यापार के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है और इसकी सुरक्षा पर किसी भी तरह का परिवर्तन वैश्विक अर्थव्यवस्था को प्रभावित कर सकता है।

दक्षिण चीन सागर विवाद में चीन की आक्रामकता ने एशिया-प्रशांत क्षेत्र में शक्ति-संतुलन को बदल दिया है। चीन इन जल क्षेत्रों पर ऐतिहासिक दावा करता है, जबकि वियतनाम, फिलीपींस, मलेशिया, इंडोनेशिया और ब्रुनेई जैसे देश भी इन्हीं क्षेत्रों पर दावा करते हैं।[9]

अमेरिका और जापान 'फ्रीडम ऑफ नेविगेशन' के नाम पर चीन की विस्तारवादी नीतियों का विरोध करते हैं। भारत भी इंडो-पैसिफिक क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण शक्ति है और इस विवाद का अप्रत्यक्ष प्रभाव उस पर भी पड़ता है, क्योंकि चीन का समुद्री नियंत्रण भारत की आर्थिक और रणनीतिक हितों को प्रभावित कर सकता है।

इंडो-पैसिफिक क्षेत्र में शक्ति-संतुलन तेजी से बदल रहा है। अमेरिका, जापान, भारत और ऑस्ट्रेलिया के बीच बने क्वाड (QUAD) समूह को चीन अपनी रणनीतिक चुनौती के रूप में देखता है। यह समूह समुद्री सुरक्षा, तकनीकी सहयोग और क्षेत्रीय स्थिरता को बढ़ावा देता है। चीन इसे 'एशियाई नाटो' के रूप में प्रचारित करता है[10]

और इसके माध्यम से उत्पन्न रणनीतिक दबाव का मुकाबला करने के लिए अपनी सैन्य और कूटनीतिक क्षमताएँ बढ़ा रहा है। इसके साथ ही, चीन रूस के साथ सैन्य सहयोग भी बढ़ा रहा है, जो अमेरिका के नेतृत्व वाले पश्चिमी गठबंधन के विपक्ष में एक सामरिक संतुलन प्रदान करता है।

चीन की मिसाइल क्षमता का विकास भी उसकी सैन्य शक्ति को विश्वस्तर पर स्थापित कर रहा है। हाइपरसोनिक मिसाइलें, एंटी-शिप बैलिस्टिक मिसाइलें, इंटरकॉन्टिनेंटल बैलिस्टिक मिसाइलें (ICBM) और एंटी-सैटेलाइट हथियार चीन को तकनीकी युद्ध क्षमताओं में अग्रणी बना रहे हैं।[11] इसके अलावा, उसकी साइबर और इलेक्ट्रॉनिक युद्ध प्रणाली भी अत्यंत उन्नत है, जो आधुनिक युद्ध के नए आयामों को दर्शाती है।

चीन के सैन्य विस्तार का एशिया-प्रशांत के क्षेत्रीय सुरक्षा वातावरण पर गहरा प्रभाव पड़ा है। जापान ने अपनी सैन्य नीतियों में बदलाव करते हुए रक्षा खर्च बढ़ाया है। ऑस्ट्रेलिया ने AUKUS समझौते के माध्यम से परमाणु पनडुब्बियों के विकास का मार्ग खोला है।[12] दक्षिण कोरिया और ताइवान ने भी अपनी सुरक्षा रणनीतियों में नए तत्व जोड़े हैं। ताइवान चीन की सैन्य रणनीति का एक संवेदनशील केंद्र है, और चीन ताइवान को 'पुनर्एकीकरण' हेतु आवश्यक होने पर सैन्य बल के उपयोग की घोषणा कर चुका है।

ताइवान पर किसी भी प्रकार की सैन्य कार्रवाई संपूर्ण एशिया-प्रशांत क्षेत्र में युद्ध को जन्म दे सकती है और विश्व अर्थव्यवस्था में गहरा संकट उत्पन्न कर सकती है।

चीन की सैन्य शक्ति का विस्तार केवल क्षेत्रीय स्तर पर नहीं, बल्कि वैश्विक स्तर पर भी प्रभाव डाल रहा है। अफ्रीका, मध्य एशिया और बागलादेश-पाकिस्तान क्षेत्र में बंदरगाहों और नौसैनिक सुविधाओं का विकास चीन की शक्ति-प्रक्षेपण रणनीति का हिस्सा है। जिबूती में चीन का पहला विदेशी सैन्य अड्डा स्थापित किया गया था,[13] जिससे उसकी वैश्विक सैन्य उपस्थिति मजबूत हुई। "स्ट्रिंग ऑफ पर्ल्स" रणनीति को कई विश्लेषक भारत के विरुद्ध घेराबंदी के रूप में देखते हैं।

21वीं सदी के आरंभ से ही वैश्विक शासन व्यवस्था में चीन की भूमिका लगातार विस्तृत होती गई है, और आज वह उन देशों में शामिल है जो विश्व राजनीति के बहुपक्षीय ढाँचे को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कर रहे हैं। संयुक्त राष्ट्र, विश्व व्यापार संगठन, विश्व स्वास्थ्य संगठन जैसी स्थापित संस्थाओं में चीन की सक्रियता ने यह स्पष्ट किया है कि वह केवल आर्थिक या सैन्य शक्ति के आधार पर ही नहीं, बल्कि वैश्विक संस्थागत नेटवर्क के माध्यम से भी प्रभाव बढ़ा रहा है। संयुक्त राष्ट्र में चीन की उपस्थिति उसके स्थायी सदस्यता अधिकारों और वीटो शक्ति के कारण पहले से ही महत्त्वपूर्ण थी, लेकिन पिछले दो दशकों में उसने शांति मिशनों में भागीदारी, फंडिंग और अंतरराष्ट्रीय एजेंसियों में नेतृत्वकारी पदों के माध्यम से अपने प्रभाव को व्यापक रूप से बढ़ाया है। चीन आज संयुक्त राष्ट्र शांति अभियानों में सैनिक उपलब्ध कराने वाले सबसे बड़े देशों में से एक है, जिससे उसका योगदान अंतरराष्ट्रीय सुरक्षा ढाँचे में निर्णायक हो चुका है।

विश्व व्यापार संगठन में चीन की सदस्यता (2001) एक महत्वपूर्ण मोड़ थी, जिसने न केवल उसकी अर्थव्यवस्था को वैश्विक व्यापार तंत्र में एकीकृत किया,[14] बल्कि उसे नियम-निर्माण की प्रक्रिया का भी एक मुख्य अभिनेता बना दिया। WTO

के मंच पर चीन अक्सर विकासशील देशों के हितों के मुद्दों पर आवाज उठाता रहा है, परंतु कई बार उस पर वैश्विक व्यापार नियमों को अपने हित में मोड़ने के आरोप भी लगते हैं। फिर भी, यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि चीन अब WTO की नीतिगत दिशा को प्रभावित करने में एक प्रमुख भूमिका निभा रहा है। इसी प्रकार, विश्व स्वास्थ्य संगठन में भी चीन की मौजूदगी अत्यंत उल्लेखनीय है। COVID-19 महामारी के दौरान ॅभ्ब् और चीन के संबंध वैश्विक बहस के केंद्र में रहे, जिनके आधार पर यह माना गया कि चीन WHO के निर्णयों और दिशा-निर्देशों को प्रभावित करने में सक्षम है। यह स्थिति चीन की कूटनीतिक सूझ-बूझ और वैश्विक संस्थाओं से उसके जुड़ाव की गहराई को भी दिखाती है।

बहुपक्षीय वैश्विक संस्थाओं के अलावा चीन ने कई ऐसे क्षेत्रीय और अंतरराष्ट्रीय संगठन भी विकसित किए हैं जो उसकी रणनीतिक आकांक्षाओं को साकार करने में सहायक हैं। BRICS, SCO (शांगाई सहयोग संगठन) और AIIB (एशियन इन्फ्रास्ट्रक्चर इन्वेस्टमेंट बैंक) जैसे मंच चीन की वैकल्पिक वैश्विक व्यवस्था का संकेत माने जाते हैं। BRICS के माध्यम से चीन ने ब्राजील, रूस, भारत और दक्षिण अफ्रीका के साथ मिलकर वैश्विक आर्थिक संरचना में सुधार और विकासशील देशों की भागीदारी बढ़ाने की दिशा में कार्य किया है।[15] इसी प्रकार, SCO का नेतृत्व भी चीन की भू-राजनीतिक दिशा को दर्शाता है, जिसमें सुरक्षा, आतंकवाद-निरोध, ऊर्जा सहयोग और क्षेत्रीय स्थिरता को महत्वपूर्ण विषयों के रूप में शामिल किया गया है। SCO की बैठकों, संयुक्त सैन्य अभ्यासों और क्षेत्रीय समन्वय प्रणालियों में चीन अपनी भूमिका को लगातार सशक्त बना रहा है[16] और इस मंच को मध्य एशिया में अपनी रणनीतिक उपस्थिति का आधार बना चुका है।

AIIB की स्थापना चीन की वैश्विक वित्तीय संरचना में बढ़ती महत्वाकांक्षा का स्पष्ट प्रमाण है। पश्चिमी देशों द्वारा संचालित IMF और विश्व बैंक के विकल्प के रूप में स्थापित यह संस्था एशिया में आधारभूत संरचना निर्माण पर केंद्रित है और दर्जनों देशों की भागीदारी इसमें चीन की निवेश-आधारित कूटनीति को मजबूत बनाती है। चीन की "सॉफ्ट पावर" रणनीति में यह बैंक एक शक्तिशाली साधन बन चुका है, जिसके माध्यम से वह आर्थिक सहयोग को बढ़ाते हुए भू-राजनीतिक प्रभाव पैदा कर रहा है।[17] AIIB की ऋण नीतियों, परियोजनाओं और शासन ढाँचे में चीन का प्रभुत्व स्पष्ट है, जिससे यह संस्था एक नई वैश्विक वित्तीय धुरी के रूप में उभर रही है। इन संस्थाओं के माध्यम से चीन ने बहुपक्षीय व्यवस्था के भीतर एक प्रकार का संतुलनकारी दबाव बनाया है। वह संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद जैसी पुरानी संरचनाओं में अपनी स्थिति का लाभ उठाता है,[18] जबकि BRICS और AIIB के माध्यम से विकसित हो रही नई संस्थागत संरचनाओं को दिशा देता है। इस प्रकार वह दोहरी भूमिका निभा रहा है - एक ओर वह पारंपरिक वैश्विक संस्थाओं का उपयोग कर अपनी उपस्थिति बढ़ाता है, दूसरी ओर वह नई संस्थाओं के माध्यम से पश्चिम-केंद्रित व्यवस्था को चुनौती भी देता है। यह वैश्विक शासन में शक्ति-संतुलन का एक नया स्वरूप है, जिसमें चीन एक निर्णायक अभिनेता के रूप में सामने आया है।

चीन की इस बढ़ती भूमिका के आलोचक यह तर्क देते हैं कि वह वैश्विक संस्थाओं की पारदर्शिता, जवाबदेही और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को कमजोर करता है। WHO और संयुक्त राष्ट्र के भीतर चीन के प्रभाव की आलोचना से यह स्पष्ट होता है कि उसकी सक्रियता वैश्विक नीति-निर्माण में कई बार असंतुलन पैदा कर सकती है। दूसरी ओर, समर्थक यह मानते हैं कि चीन बहुध्रुवीयता को सशक्त करता है और वैश्विक दक्षिण (Global South) को आवाज देता है, जिसे पश्चिमी प्रभुत्व के दौर में अक्सर अनदेखा किया गया था।[19] इस प्रकार, चीन की भूमिका को विरोधाभासी लेकिन प्रभावशाली कहा जा सकता है। स्पष्ट है कि चीन वैश्विक संस्थाओं को केवल एक सहयोगी मंच के रूप में नहीं देखता, बल्कि इन्हें अपनी रणनीतिक प्राथमिकताओं को आगे बढ़ाने के लिए महत्वपूर्ण उपकरण मानता है। वह वैश्विक शासन में अपने लिए अधिक स्थान बनाने और अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं की दिशा को अपने हितों के अनुरूप आकार देने में सफल हो रहा है। 21वीं सदी में वैश्विक व्यवस्था में होने वाले बड़े परिवर्तनों के पीछे चीन की यही संस्थागत रणनीति एक प्रमुख कारक है, जो आने वाले समय में और अधिक प्रभावशाली होती जाएगी।

भारत और चीन के संबंध एशिया की भू-राजनीति में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं, और 21वीं सदी में इन संबंधों की प्रकृति लगातार बदलती रही है।[20] दोनों देश ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और आर्थिक दृष्टि से जुड़े होने के बावजूद क्षेत्रीय प्रतिस्पर्धा, सुरक्षा चिंताओं और रणनीतिक हितों के कारण अनेक बार तनावपूर्ण स्थितियों से गुजरते रहे हैं। भारत-चीन संबंधों की जटिलता को समझने के लिए सीमा विवाद, आर्थिक संबंध, क्षेत्रीय भू-राजनीतिक प्रतिस्पर्धा और इंडो-पैसिफिक रणनीति जैसे कारकों का समग्र विश्लेषण आवश्यक है। भारत और चीन विश्व की दो सबसे बड़ी जनसंख्या वाले देश हैं और दोनों

की अर्थव्यवस्थाएँ तेजी से विकसित हो रही हैं, जिससे इनके बीच सहयोग की अत्यधिक संभावनाएँ मौजूद हैं, लेकिन ये संभावनाएँ अक्सर सामरिक अविश्वास और भू-राजनीतिक प्रतिस्पर्धा के कारण सीमित हो जाती हैं। सीमा विवाद भारत-चीन संबंधों का सबसे संवेदनशील पहलू है। 1962 के युद्ध के बाद से ही वास्तविक नियंत्रण रेखा (LAC) दोनों देशों के बीच तनाव का स्रोत बनी हुई है। समय-समय पर दोनों पक्षों के बीच सैन्य टकराव की घटनाएँ होती रही हैं, जिनमें 2017 का डोकलाम विवाद और 2020 का गलवान संघर्ष विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। गलवान की घटना ने न केवल द्विपक्षीय संबंधों में अविश्वास को गहरा किया,[21] बल्कि दोनों देशों के बीच सैन्य तैनाती और बुनियादी ढाँचे के निर्माण की गति को भी तेज कर दिया। सीमा मुद्दा केवल भौगोलिक विवाद नहीं है, बल्कि यह दोनों देशों की राष्ट्रीय सुरक्षा, स्वाभिमान और रणनीतिक चिंताओं से भी जुड़ा हुआ विषय है।आर्थिक क्षेत्र में भारत और चीन के संबंध अपेक्षाकृत अधिक जटिल हैं। चीन भारत का सबसे बड़ा व्यापारिक साझेदार है, लेकिन यह संबंध अत्यधिक असंतुलित है। भारत चीन से क,हीं अधिक आयात करता है, जबकि निर्यात बेहद कम है, जिससे बड़े व्यापार घाटे की स्थिति बनी रहती है। भारतीय उद्योगों में भी चीनी उत्पादों की प्रबल उपस्थिति है, विशेषकर इलेक्ट्रॉनिक्स, मशीनरी, रसायन और फार्मास्यूटिकल्स के मामलों में। इस आर्थिक निर्भरता के कारण भारत के सामने चुनौतियाँ भी हैं, जैसे घरेलू निर्माण पर प्रभाव और सामरिक क्षेत्रों में आत्मनिर्भरता की आवश्यकता। हालांकि, सहयोग की दृष्टि से यह भी उल्लेखनीय है कि चीन ने भारत में कई निवेश परियोजनाएँ शुरू की हैं, जिनमें तकनीक, विनिर्माण और डिजिटल क्षेत्र शामिल हैं। फिर भी, सीमा तनाव और सुरक्षा चिंताओं के कारण 2020 के बाद से भारत द्वारा चीनी तकनीकी कंपनियों पर प्रतिबंध और निवेश नियंत्रण अधिक सख्त हो गए हैं।

भू-राजनीतिक प्रतिस्पर्धा भारत-चीन संबंधों का तीसरा प्रमुख आयाम है। चीन की "स्ट्रिंग ऑफ पर्ल्स" रणनीति, जिसमें वह हिंद महासागर क्षेत्र में बंदरगाहों, आधारभूत संरचनाओं और साझेदार देशों के साथ रणनीतिक संबंध विकसित कर रहा है,[22] भारत की सुरक्षा दृष्टि से चिंताजनक मानी जाती है। पाकिस्तान में ग्वादर पोर्ट, श्रीलंका में हम्बनटोटा, और बांग्लादेश व म्यांमार में चीन के बढ़ते निवेश इसका उदाहरण हैं। दूसरी ओर, भारत भी दक्षिण एशिया और हिंद महासागर क्षेत्र में अपनी भूमिका को मजबूत कर रहा है, और क्षेत्रीय देशों के साथ आर्थिक, सैन्य और कूटनीतिक संबंधों को सुदृढ़ कर रहा है ताकि चीन के प्रभाव की प्रतिप्रतिस्पर्धा की जा सके।

इंडो-पैसिफिक रणनीति में भारत की सक्रिय भूमिका चीन-भारत संबंधों के भविष्य को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती है। अमेरिका, जापान और ऑस्ट्रेलिया के साथ गठित क्वाड समूह (QUAD) में भारत की भागीदारी चीन के दृष्टिकोण से एक चुनौती के रूप में देखी जाती है। चीन इसे अपनी क्षेत्रीय महत्वाकांक्षाओं के विरुद्ध एक संतुलनकारी गठबंधन के रूप में मानता है। वहीं, भारत इसे एक स्वतंत्र और मुक्त इंडो-पैसिफिक क्षेत्र सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक मानता है। इस क्षेत्र में नौसैनिक सहयोग, आधारभूत संरचना परियोजनाएँ और सामरिक संवाद भारत की भूमिका को मजबूत कर रहे हैं। यह प्रतिस्पर्धा केवल समुद्री सुरक्षा तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें तकनीकी सहयोग, आर्थिक आपूर्ति शृंखलाएँ और रणनीतिक निवेश भी शामिल हैं।इन चुनौतियों के बावजूद भारत और चीन दोनों ही देशों के लिए सहयोग एक आवश्यक वास्तविकता है। जलवायु परिवर्तन, वैश्विक स्वास्थ्य, आतंकवाद-निरोध, क्षेत्रीय स्थिरता और अंतरराष्ट्रीय आर्थिक संरचना जैसे विषयों पर दोनों देशों का सहयोग वैश्विक राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। BRICS और SCO जैसे मंचों में दोनों देश एक साथ कार्य करते हैं, जिससे यह संकेत मिलता है कि संबंधों में प्रतिस्पर्धा के साथ सहयोग की भी गुंजाइश बनी रहती है। दोनों देशों के लिए स्थिर संबंध न केवल क्षेत्रीय बल्कि वैश्विक शांति और विकास के लिए भी आवश्यक हैं।

भारत-चीन संबंधों की बदलती प्रकृति को समझते समय यह स्पष्ट होता है कि भविष्य में इन संबंधों की दिशा कई कारकों पर निर्भर करेगी - सीमा विवाद के समाधान की संभावनाएँ, आर्थिक निर्भरता में संतुलन, क्षेत्रीय भू-राजनीति में शक्ति-संतुलन, और भारत की इंडो-पैसिफिक रणनीति का प्रभाव। यदि दोनों देश आपसी विश्वास बढ़ाने के प्रयास करें और सहयोग के क्षेत्रों का विस्तार करें, तो संबंधों में सुधार संभव है। लेकिन यदि भू-राजनीतिक प्रतिस्पर्धा और सामरिक अविश्वास बढ़ता है, तो यह संबंध और अधिक तनावपूर्ण हो सकते हैं। स्पष्ट है कि भारत-चीन संबंध 21वीं सदी की एशियाई राजनीति के भविष्य को परिभाषित करने वाले सबसे निर्णायक कारकों में से एक हैं। इन संबंधों को केवल प्रतिस्पर्धा या संघर्ष के दृष्टिकोण से नहीं देखा जा सकता, बल्कि इन्हें जटिल, बहुआयामी और निरंतर परिवर्तित होती प्रक्रिया के रूप में समझना होगा, जिसमें सहयोग और संघर्ष दोनों ही साथ-साथ मौजूद हैं।

निष्कर्ष :

21वीं सदी में वैश्विक शक्ति-संतुलन का स्वरूप जिस तीव्रता से बदल रहा है, उसमें चीन का उदय निर्णायक भूमिका निभा रहा है। आर्थिक शक्ति, सैन्य विस्तार, तकनीकी क्षमता और संस्थागत सक्रियता के संयोजन ने चीन को एक ऐसी वैश्विक शक्ति के रूप में स्थापित किया है, जो अमेरिका-प्रधान विश्व व्यवस्था को चुनौती देने में सक्षम है। उसकी निरंतर आर्थिक वृद्धि, ठत्प् जैसी परियोजनाएँ, रक्षा आधुनिकीकरण, दक्षिण चीन सागर में आक्रामक रणनीति और इंडो-पैसिफिक में सक्रिय उपस्थिति ने अंतरराष्ट्रीय राजनीति को नई दिशा दी है। अमेरिका-चीन प्रतिस्पर्धा ने वैश्विक व्यवस्था को संभावित द्विध्रुवीयता की ओर धकेला है, जिससे व्यापार, तकनीक और सुरक्षा के क्षेत्र में अस्थिरता बढ़ी है। चीन का प्रभाव केवल शक्ति-राजनीति तक सीमित नहीं है; वह संयुक्त राष्ट्र, WTO, WHO, BRICS, SCO और AIIB जैसे मंचों पर भी नए संतुलन का निर्माण कर रहा है, जो वैश्विक शासन में उसकी संस्थागत पकड़ को मजबूत बनाता है। दूसरी ओर, भारत-चीन संबंधों की जटिलता सीमा विवाद, आर्थिक असंतुलन, क्षेत्रीय प्रतिस्पर्धा और इंडो-पैसिफिक रणनीति एशिया में शक्ति-संतुलन को निरंतर प्रभावित करती है। इन संबंधों में सहयोग और संघर्ष दोनों समाहित हैं, और इनकी दिशा आने वाली विश्व व्यवस्था के स्वरूप को भी प्रभावित करेगी। सार रूप में,चीन का उदय केवल एक राष्ट्र की वृद्धि की कहानी नहीं है, बल्कि यह 21वीं सदी की विश्व राजनीति के पुनर्गठन की प्रक्रिया का केंद्र है। यह परिवर्तन बहुध्रुवीय, प्रतिस्पर्धात्मक और जटिल वैश्विक व्यवस्था की ओर अग्रसर है, जिसमें संतुलन, सहयोग और रणनीतिक दूरदर्शिता सभी देशों के लिए आवश्यक होंगे।

सन्दर्भ सूची :

1 दीपक, बी. आर. (2017), समकालीन चीनः राजनीति और अर्थव्यवस्था, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ. 45
2 ब्रेमर, इयान (2020), विश्व शक्ति संतुलन और चीन, पेंग्विन बुक्स, नई दिल्ली, पृ. 61
3 फ्रैंकलिन, बैरी एवं श्वार्ट्ज, बेंजामिन (2019), चीन का उदय और वैश्विक राजनीति, रूटलेज प्रकाशन, लंदन, पृ. 89
4 दीपक, बी. आर. (2019), बेल्ट एंड रोड इनिशिएटिव और चीन की वैश्विक रणनीति, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ. 72
5 कुमार, अंजनी (2021), वैश्विक अर्थव्यवस्था में चीनी बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ, सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृ. 140
6 नॉटन, बैरी (2021), द चाइनीज इकॉनमीः ट्रांसशन्स एंड ग्रोथ चौलेंजस, एमआईटी प्रेस, कैम्ब्रिज, पृ. 215
7 तथैव,पृ. 221
8 दीपक, बी. आर. (2020), चीन की सुरक्षा नीति और सैन्य आधुनिकीकरण, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ. 98
9 तथैव,पृ. 113
10 दीपक, बी. आर. (2021), इंडो-पैसिफिक रणनीति और चीन की विदेश नीति, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ. 156-158
11 ऑफिस ऑफ द सेक्रेटरी ऑफ डिफेंस, मिलिट्री एंड सिक्योरिटी डेवलपमेंट्स इन्वॉल्वग द पि. आर. सी. (2023), पृ. 74
12 मेडकल्फ, रोरी (2020), इंडो-पेसिफिक एमपायर : चाइना, अमेरिका एंड द कांटेस्ट फॉर द वर्ल्ड 'स पीवोटल रीजन, मैन्टल पब्लिशिंग, मेलबर्न, पृ. 256-270
13 दीपक, बी. आर. (2021), चीन की वैश्विक सुरक्षा रणनीति, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ. 188
14 दीपक, बी. आर. (2017), समकालीन चीनः अर्थव्यवस्था और विश्व राजनीति, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ. 62-74
15 दीपक, बी. आर. (2019), चीन की बहुपक्षीय कूटनीति और उभरती वैश्विक व्यवस्था, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ. 201
16 शंघाई सहयोग संगठन सचिवालय (2019), शंघाई सहयोग संगठन : वार्षिक प्रतिवेदन, ैब्ब प्रकाशन, बीजिंग, पृ. 32-45
17 जिन, लिक्युन (2016), एशियन इन्फ्रास्ट्रक्चर इन्वेस्टमेंट बैंकः उद्देश्य और दृष्टिकोण, ाप्ठ प्रकाशन, बीजिंग, पृ. 1-12
18 स्टुएन्केल, ओलिवर (हिन्दी अनुवाद, 2018), उभरती शक्तियाँ और वैश्विक आर्थिक व्यवस्था, लेक्सिंगटन बुक्स, नई दिल्ली, पृ. 97
19 फुटर, एन्ड्रयू (2020), ॅभ्ब, वैश्विक स्वास्थ्य शासन और चीन, रूटलेज (हिन्दी संस्करण), नई दिल्ली, पृ. 89-103
20 दीपक, बी. आर. (2020), भारत-चीन संबंधः ऐतिहासिक और समकालीन दृष्टिकोण, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ. 45-61
21 सिंह, अजय (2020), स्ब्ब पर भारत-चीन संघर्ष और डोकलाम तथा गलवान घटनाएँ, सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृ. 71
22 मिश्रा, अनिल (2019), ग्वादर पोर्ट और हिंद महासागर में चीन का प्रभाव, मैकमिलन पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृ. 24

भारत में राष्ट्रीय सुरक्षा एवं शासकीय रणनीतिः एक अवलोकन

डॉ० धनंजय यादव

(असिस्टेंट प्रोफेसर) राजनीति विज्ञान विभाग, डी.ए.वी.कॉलेज, सिवान, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (सारण), बिहार

शोध आलेख का सारतत्व :

भारतीय वैदेशिक नीति में राष्ट्रीय सुरक्षा सदैव उसके मूल में रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही भारत ने अपनी विदेश नीति को इस प्रकार निर्मित किया कि वह एक ओर अंतर्राष्ट्रीय शांति और सहयोग की भावना को आगे बढ़ाए, वहीं दूसरी ओर अपनी राष्ट्रीय एकता और अखंडता की रक्षा भी सुनिश्चित करे। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अहिंसा, पंचशील और गुटनिरपेक्षता को भारतीय विदेश नीति का आधार बनाया, किंतु इसके साथ ही उन्होंने स्पष्ट किया कि भारत की स्वतंत्रता और सुरक्षा सर्वोपरि है। शीत युद्ध के दौर में जब विश्व दो ध्रुवों में विभाजित था, तब भी भारत ने किसी गुट का अंधानुकरण न करते हुए संतुलित दृष्टिकोण अपनाया, जिससे उसकी सुरक्षा और संप्रभुता पर कोई आंच न आए। भारत ने अपने मौलिक सिद्धांतों को बदले बिना अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियों के अनुसार अपनी नीतियों में लचीलापन लाया। यह नीति आज भी भारत की विदेश नीति की रीढ़ बनी हुई है। नरेन्द्र मोदी सरकार के काल में राष्ट्रीय सुरक्षा को लेकर दृष्टिकोण और अधिक सशक्त तथा व्यावहारिक हुआ है। इस दौर में भारत ने आत्मनिर्भरता, सीमाओं की सुरक्षा और आतंकवाद के विरुद्ध सख्त रुख अपनाकर यह संदेश दिया है कि राष्ट्रीय सुरक्षा केवल सैन्य शक्ति का विषय नहीं, बल्कि यह राजनीतिक, आर्थिक और कूटनीतिक सभी स्तरों पर समग्र रणनीति का हिस्सा है। मोदी सरकार ने वैदेशिक नीति को इस प्रकार ढाला है कि वह अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भारत के हितों की रक्षा करे और उसकी वैश्विक भूमिका को सुदृढ़ बनाए। इस प्रकार, भारत की विदेश नीति में राष्ट्रीय सुरक्षा का स्थान स्थायी और केन्द्रीय रहा है, जो समय के साथ और भी दृढ़ और व्यापक रूप में परिलक्षित हुआ है।

मूल शब्दः राष्ट्रीय हित, राष्ट्रीय सुरक्षा, सामूहिक सुरक्षा, विदेश नीति, कूटनीति, उत्तर-दक्षिण संवाद, दक्षिण-दक्षिण संवाद, आतंकवाद, क्षेत्रीय संगठन. अंतर्राष्ट्रीय संगठन, नवीन अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था, तालिबान, सीमा पार आतंकवाद।

प्रस्तावना :

भारत की वैदेशिक नीति में राष्ट्रीय सुरक्षा केन्द्रीय विषय है। भारत ने भी अपने वैदेशिक नीति के माध्यम से अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में राष्ट्रीय सुरक्षा को प्रभावी बनाने का प्रयास किया है। भारत की वैदेशिक नीनि की आधारभूत विशेषता तथा सिद्धान्त गुटनिरपेक्षता को माना जाता रहा है। वस्तुतः गुटनिरपेक्षता भारत की विदेश नीति का सबसे महत्वपूर्ण और विलक्षण सिद्धान्त माना जा सकता है। जिस समय अमरीका और पूर्व सोवियत संघ, दोनों महाशक्तियाँ शीत युद्ध की नीति का अवलम्बन कर रही थी तथा पूँजीवादी और साम्यवादी गुट अपनी-अपनी शक्ति को मजबूत बनाने के लिए विभिन्न राष्ट्रों के साथ गठजोड़ कर रहे थे, तब भारतीय नीति-निर्माताओं, विशेषतया पं. जवाहर लाल नेहरू ने विश्व शान्ति के साथ-साथ भारतीय सुरक्षा तथा आवश्यकताओं के हित में यही उचित समझा कि भारत को इस शक्ति राजनीति से अलग ही रखा जाय। गुटनिरपेक्ष संगठन की प्रथम शिखर सम्मेलन 1-6 सितम्बर, 1961 को बेलग्रेड (युगोस्लाविया) में आयोजित किया गया।[1] उस समय से लेकर अब तक 18 शिखर सम्मेलन सम्पन्न हुए हैं। यह उल्लेखनीय है कि भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के बनने के बाद दो गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन सम्पन्न हुए है। वर्ष 2016 में वेनेजुएला के 'पोरलामार' शहर में सम्पन्न हुआ है तथा वर्ष 2019 में बाकू (अजरबैजान) में सम्पन्न हुआ है। इन दोनों ही सम्मेलनों में नरेन्द्र मोदी ने भाग नहीं लिया है।

गुटनिरपेक्षता की नीति विकासशील देशों की राष्ट्रीय सुरक्षा के साथ-साथ विश्व समाज के प्रति भी समान रूप में सचेत एवं सक्रिय रही है। स्पष्टतः भारत की वैदेशिक नीति का लक्ष्य जिस प्रकार राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा है, ठीक उसी प्रकार गुटनिरपेक्षता की नीति और उद्देश्य भी है। यह अलग बात है कि समय व परिस्थिति के सन्दर्भ में गुटनिरपेक्षता का विकास

हुआ है। गुटनिरपेक्षता नीति के शुरुआती दिनों में साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद का विरोध तथा दक्षिण अफ्रीका के रंगभेद नीति का विरोध रहा, हालांकि शस्त्रीकरण को भी शुरू से ही गुटनिरपेक्षता ने राष्ट्रीय सुरक्षा और सामूहिक सुरक्षा के मार्ग में बाधा माना है। गुटनिरपेक्षता के विकास का द्वितीय चरण वर्ष 1973 से 1990-91 तक माना जाता है, जिसमें नवीन आर्थिक व्यवस्था तथा प्राकृतिक मित्र का सिद्धान्त प्रभावी रहा। यह उल्लेखनीय है कि 3-9 सितम्बर, 1979 को हवाना (क्यूबा) में छठा गुटनिरपेक्ष शिखर सम्मेलन सम्पन्न हुआ।[2] उसी सम्मेलन में क्यूबा के राष्ट्रपति फिदेल कास्त्रों ने पूर्व सोवियत संघ को विकासशील देशों का स्वाभाविक एवं प्राकृतिक मित्र कहा था, हालांकि उस समय भारत ने प्राकृतिक मित्र के सिद्धान्त को अस्वीकार कर दिया था। गुटनिरपेक्षता के विकास का तीसरा और वर्तमान चरण वर्ष 1992 से प्रारम्भ माना जाता है। इस चरण में गुटरिनरपेक्षता स्वयं अपनी प्रासंगिकता की खोज में संलग्न है, क्योंकि 1990 के दशक में अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के स्वरूप में व्यापक परिवर्तन हुआ है: शीतयुद्ध का अन्त हो गया है; वैचारिक तनाव तो खत्म हो गया है, परन्तु आतंकवाद ने विश्व समान के सामने राष्ट्रीय सुरक्षा और विश्व शांति व सौहार्द के मार्ग में सबसे बड़ा खतरा उत्पन्न का दिया है। गुटनिरपेक्षता की नीति में ही बदलाव नहीं हुआ है, बल्कि नेहरू से लेकर वर्तमान समय तक प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी तक का दृष्टिकोण भी बदलता रहा है। भारत के प्रधानमंत्रियों के दृष्टिकोण का परिवर्तन भारत के सामरिक एवं राष्ट्रीय हित को परिवर्तित परिप्रेक्ष्य में पूरा करना बताया जा सकता है। गुटनिरपेक्षता के प्रतिनिधि विचारक, निर्माणक तथा भारत के प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू ने गुटनिरपेक्षता को 'शांति का समर्थक' कहा तथा शांति और नि:शस्त्रीकरण पर बल दिया, जो विश्व शांति और राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए समान रूप में अनिवार्य था। नेहरू ने कहा था कि गुटनिरपेक्षता महाशक्तियों का विरोध नहीं, अपितु स्वतंत्रता के विस्तार की माँग है।[3] नेहरू के बाद इंदिरा ने गुटनिरपेक्षता के यथार्थवादी आयाम पर बल दिया। इंदिरा गाँधी ने गुटनिरपेक्षता की नीति के साथ सामूहिक सुरक्षा के साथ-साथ भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा, राष्ट्रीय एकता, अखण्डता एवं सम्प्रभुता जैसे मुद्दे को महत्वपूर्ण बताया। गुटनिरपेक्षता के 16वाँ शिखर सम्मेलन वर्ष 2012 में ईरान की राजधानी तेहरान में सम्पन्न हुआ, जिसमें मनमोहन सिंह के द्वारा शांति और न्याय पर बल दिया गया। उस समय यह कहा गया कि शांति एवं न्याय के पक्ष में प्रभावी पहल की आवश्यकता आज समस्त विश्व महसूस कर रहा है।[4] वर्ष 2016 में गुटनिरपेक्षता का सत्रहवों शिखर सम्मेलन लैटिन अमरीकी देश वेनेजुएला के पोर्लामर में सम्पन्न हुआ, जिसमें भारत का प्रतिनिधित्व उपराष्ट्रपति हामिद अंसारी ने किया।[5] यह प्रथम अवसर था नरेन्द्र मोदी के प्रधानमंत्रित्व काल में तथा उसमें उन्होंने भाग नहीं लिया।[6] वर्ष 2019 के शिखर सम्मेलन में भी नरेन्द्र मोदी ने भाग नहीं लिया। यह उल्लेखनीय है कि 1979 में कार्यवाहक प्रधानमंत्री चौधरी चरण सिंह ने भी गुटनिरपेक्ष सम्मेलन में भाग नहीं लिया था।[7] गुटनिरपेक्षता के प्रति भारत का दृष्टिकोण पूर्व की भाँति सकारात्मक ही रहा है, हालांकि नरेन्द्र मोदी ने भारत को अंतर्राष्ट्रीय पहचान दिलाने के लिए इसे केवल विकासशील देशों से सम्बद्ध करके नहीं रखना चाहते हैं। यदि अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के विश्लेषकों की बात माने तो नरेन्द्र मोदी गुटनिरपेक्षता की नीति से अलग होकर भारत की राष्ट्रीय हित की पूर्ति हेतु अमरीका के समीप अधिक जाना चाहते हैं। इसके बाद भी भारत का दृष्टिकोण विश्व शांति के प्रति पूर्व के समान प्रतिबद्ध है। भारत सीमापर आतंकवाद को मानवाधिकार हनन के लिए सबसे बड़ा खतरा मानता है। इन बातों को भारत के नरेन्द्र मोदी का दृष्टिकोण माना जा सकता है।

भारत की वैदेशिक नीति के मूल में नि:शस्त्रीकरण की अवधारणा हमेशा ही उपस्थित रही है, जो सामूहिक सुरक्षा तथा राष्ट्रीय सुरक्षा, दोनों के लिए ही महत्वपूर्ण है। वर्ष 1963 के आंशिक परमाणु परीक्षण निषेध संधि पर भारत ने हस्ताक्षर करके इस दिशा में अपनी प्रतिबद्धता को व्यक्त कर दिया था, हालांकि वर्ष 1968 के परमाणु अप्रसार संधि का भारत की आपत्ति का मूल कारण विभेदपूर्ण नि:शस्त्रीकरण की नीति ही थी। वर्ष 1996 में व्यापक परमाणु परीक्षण निषेध संधि (CTBT) की भी भेदभावपूर्ण स्थिति ने भारत को आपत्ति दर्ज करने पर बाध्य कर दिया। आज 183 देशों ने सी.टी.बी.टी. पर भले ही हस्ताक्षर कर दिया है. लेकिन भारत, पाकिस्तान और उत्तर कोरिया के द्वारा हस्ताक्षर नहीं किया गया है। भारत के अनुसार सी.टी.बी.टी. केवल विकासशील देशों के परमाणु कार्यक्रम को प्रतिबंधित करता है, जो अन्याय है तथा वास्तविक नि:शस्त्रीकरण से दूर है। इसलिए भारत ऐसे संधि पर हस्ताक्षर नहीं करता। भारत को विश्व शांति पर पूर्ण विश्वास है, परन्तु विभेदपूर्ण आचरण को यह ठीक नहीं मानता। भारत कहता है कि सी.टी.बी.टी. के द्वारा विकासशील देशों को तकनीकों से भी वंचित करने का प्रयास किया गया है। भारत का नि:शस्त्रीकरण, विश्व शांति, सामूहिक सुरक्षा में राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा को समावेशित करने पर अधिक बल है। परमाणु प्रसार रोकने के लिए परमाणु आपूर्तिकर्ता समूह (एन.एस.जी.) की स्थापना वर्ष 1974 में हुई,[8] जब भारत ने प्रथम पोखरन किया था। एन.एस.जी. का प्रावधान है कि जिन देशों ने एन.पी.टी., 1968 पर हस्ताक्षर किये हैं. उनको ही परमाणु ईंधन और तकनीक उपलब्ध कराया जायेगा।

भारत के प्रति प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के प्रधानमंत्रित्व काल में वैश्विक दृष्टिकोण में व्यापक परिवर्तन हुआ है। भारत भले ही सी.टी.बी.टी. पर हस्ताक्षर नहीं किया है, परन्तु नरेन्द्र मोदी के प्रयास से उसे एन.एस.जी. से रियायत मिल रही है। भारत विश्व का अकेला ऐसा देश बन गया है, जिसे परमाणु अप्रसार संधि पर हस्ताक्षर किए बिना 'ट्रिगर लिस्ट' से सामग्री प्राप्त करने की छूट प्रदान की गई है।[9] नरेन्द्र मोदी के प्रयास से भारत को एन.एस.जी. से लगातार महत्व प्राप्त हो रहा है। चौथा नाभिकीय सुरक्षा सम्मेलन 31 मार्च से 1 अप्रैल, 2016 को वाशिंगटन (USA) में आयोजित किया गया।[10] इस सम्मेलन पर मोदी के व्यक्तित्व का प्रभाव था। यह अलग बात है चीन के द्वारा लगातार भारत का विरोध किया जा रहा है। वासेनार समूह की स्थापना वर्ष 1996 हालैंड के वासेनार शहर में आयोजित हुई, जिसका उद्देश्य परम्परागत हथियारों के निर्यात तथा दोहरे तकनीकी इस्तेमाल को रोकना हैं। भारत इस संगठन का प्रभावी सदस्य है। इसके 41 सदस्यों में चीन को छोड़कर बाकि लगभग सभी सदस्य यही देश हैं जो एन.एस.जी. में है। चीन इसकी सदस्यता चाहता है, जिसका भारत अप्रत्यक्ष विरोध करता है। इसे नरेन्द्र मोदी की कूटनीतिक विजय ही कहा जायेगा। वर्ष 2016 में वाशिंगटन सम्मेलन आयोजित किया गया, जिसका मूल उद्देश्य परमाणु आतंकवाद को समाप्त करना रहा है। भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने उक्त सम्मेलन में भाग लेकर भारतीय दृष्टिकोण को प्रभावी रूप में प्रस्तुत किया है, जिससे भारत की अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में कूटनीतिक विजय प्राप्त हुई है। जुलाई, 2019 में नरेन्द्र मोदी के प्रयास से अमरीका ने भारतीयों के लिए बीजा व निवास को आसान बनाया है।

भारत की परमाणु नीति तथा सामरिक रणनीति हमेशा ही महत्वपूर्ण रही है। भारत की सामरिक नीति विश्व में अनोखा है, क्योंकि इसमें विश्व शांति व सौहार्द तथा राष्ट्रीय सुरक्षा की अवधारणा को समान रूप में महत्व प्रदान किया गया है। भारत के द्वारा अपनी सामरिक अभिक्षमता की वृद्धि के लिए लगातार प्रयास किया जाता रहा है तथा देश परमाणु ऊर्जा के विकास में भी लगातार कार्य करता रहा है। भारत के इसी प्रयास का प्रतिफल है कि वर्ष 1974 में प्रथम पोखरन तथा वर्ष 1998 में द्वितीय पोखरन सम्पन्न किया गया। द्वितीय पोखरन के परिणाम स्वरूप भारत ने परमाणु बम का सफल परीक्षण किया। ऐसे भारत परमाणु ऊर्जा के क्षेत्र में स्वतन्त्रता प्राप्ति के तुरन्त बाद से ही प्रयासरत रहा है। भारत अपनी सामरिक नीति के अन्तर्गत स्वतन्त्रता प्राप्ति से लेकर 1974 के पूर्व तक असैन्य परमाणु रिएक्टरों का आयात किया, जबकि 1974 से लेकर 20वीं शताब्दी के अन्तिम वर्ष तक कुछ अपवादों के साथ असैन्य परमाणु रिएक्टरों के आयात पर विराम लगाना शुरू किया। 21वीं शताब्दी के शुरू से ही पुनः भारत ने परमाणु ऊर्जा के आयात को प्रारम्भ कर दिया। मोदी के प्रधानमंत्री बनले के बाद सामरिक क्षेत्र में बहुत अधिक प्रगति दिख रही है।

नरेन्द्र मोदी के प्रधानमंत्री बनने के बाद 6 मार्च, 2017 को भारतीय नौ-सेना में सेवारत रहे विमानवाहक युद्धपोत आई.ए. एस. विराट को सेवामुक्त कर दिया, जो मई 1987 से कार्य कर रहा था।[11] 29 मार्च, 2017 को नौ सेना के समुद्री गश्ती विमान टीयू-142 एम को भी भारतीय नौ-सेना से हटा दिया गया।[12] नरेन्द्र मोदी के प्रधानमंत्रित्व काल में भारत के सामरिक सशक्तीकरण के दिशा में लगातार प्रयास हो रहा है। नरेन्द्र मोदी ने राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए लगातार राजनीतिक प्रतिबद्धता का परिचय दिया है। नरेन्द्र मोदी के शासन काल में स्वदेश निर्मित पनडुब्बी आई.एन.एस. खंडेरी का जलावतरण प्रारम्भ हुआ। पहली पनडुब्बी आई.एन.एस. कलवरी का जलावतरण अप्रैल, 2015 में किया तथा 12 जनवरी, 2017 को खंडेरी द्वितीय का जलावतरण मुम्बई के मझगाँव डॉक से अरब सागर में किया गया।[13] नरेन्द्र मोदी के प्रयास से ही पहली बार नागरिक उड्ड्डयन से सम्बन्धि प्रदर्शन का एयरो इंडिया को आयोजित किया गया। रक्षा मंत्रालय के तत्वाधान में 11-18 फरवरी, 2017 को 'एयरो इंडिया 2017' का आयोजन किया गया।[14]

नरेन्द्र मोदी के प्रधानमंत्री बनने के बाद से लगातार सीमापार आतंकवाद से राष्ट्रीय सुरक्षा को चुनौती मिल रही है। अबतक के आतंकी हमला में जम्मू-कश्मीर में उड़ी में सैन्य ठिकाने पर हमला सबसे बड़ा माना जा सकता है। वस्तुतः उड़ी में पाकिस्तान समर्थित आतंकवादियों ने 18 सितम्बर, 2016 को कश्मीर में उड़ी में भारतीय सेना पर हमला कर 18 सैनिकों को मारने के दुःसाहस किया, जिसका बदला भारतीय सेना ने 10 दिन के भीतर ले लिया। शीर्ष रणनीतिक निर्णय के तहत सेना में पूर्णतः सफल सर्जिकल स्ट्राइक (सीमित सैन्य कार्यवाही) 28 सितम्बर, 2016 की रात्रि में किया। इससे भारत के राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रति प्रतिबद्धता दिखती है।

जम्मू-श्रीनगर राष्ट्रीय राजमार्ग पर पुलवामा में 14 फरवरी, 2019 को पाक समर्थित बर्बर आतंकी हमले में सी.आर.पी.एफ. के 42 जवान शहीद हो गये। इस हमले के 13वें दिन 26 फरवरी, 2019 को भारतीय वायु सेना ने पाक सीमा के भीतर 80 किमी. भीतर जाकर बालाकोट में जैश-ए-मोहम्मद के कैम्यों को नेस्तनाबूद कर दिया। इससे भी मोदी सरकार की दृढ इच्छा शक्ति दृष्टिगोर होती है।

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के प्रयास से फ्रांस से 36 लड़ाकू राफेल विमानी की खरीद हेतु समझौता पर हस्ताक्षर सम्पन्न हुआ तथा नेत्र प्रणाली वायुसेना में शामिल हुई। स्वदेश निर्मित तेजस विमान भारतीय वायुसेना में शामिल किया गया। इसके अतिरिक्त भारतीय वायुसेना का सैन्याभ्यास आयरन फिस्ट-2016, एक्सो एटमॉस्फीयरिक इंटरसेप्टर मिसाइल परीक्षण, अग्नि-V एवं अग्नि-VI का सफल परीक्षण तथा राष्ट्रीय युद्ध स्मारक की स्थापना आदि महत्वपूर्ण कार्य नरेन्द्र मोदी के प्रधानमंत्रित्व काल में ही सम्पन्न हुआ है। फ्रांसीसी रक्षा मंत्री जीन यवेन ली द्रियान व भारतीय रक्षा मंत्री मनोहर पार्रिकर के अतिरिक्त राफेल की निर्माता कम्पनी डसॉल्ट के मुख्य कार्यकारी अधिकारी की उपस्थिति में 8.85 अरब डॉलर के इस सौदे पर हस्ताक्षर 23 सितम्बर, 2016 को किया गया था।

भारतीय वायुसेना की युद्धक क्षमता में विस्तार फरवरी 2017 में विकसित एयरबोर्न अलीं वर्निंग एण्ड कन्ट्रोल सिस्टम (AEW and C) को वायुसेना में शामिल करके किया गया। रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन क्त्क्ब् की प्रयोगशाला में विकसित इस प्रणाली को नेत्र नाम दिया गया है, जिसको ने 300 किमी के क्षेत्र में शत्रु के विमान एवं प्रक्षेपास्त्र आदि को जमीन, आकाश व समुद्र में खोजने की क्षमता है। स्वदेश निर्मित हल्के लड़ाकू विमान (Light Cobat Aircraft-LCA) 'तेजस' को 1 जुलाई, 2016 को भारतीय वायुसेना में औपचारिक रूप से शामिल किया गया है। यह हिन्दुस्तान एयरोनॉटिक्स को सौंपा गया है, जिनके लिए 45वीं स्क्वाड्रन, जिसे फ्लाइंग डैगर्स नाम दिया गया है, का गठन वायुसेना में किया गया था तथा लगभग दो वर्ष तक यानि वर्ष 2018 तक यह स्क्वाड्रन बेगलुरू से की जा रही है होगी तथा उसके पश्चात् इसे कोयम्बटूर के निकट सुलुर (Sulur) में स्थानान्तरित किया गया है।

मोदी के प्रधानमंत्रित्व काल में भारतीय नौ सेना ने अब तक का अपना सबसे बड़ा शक्ति प्रदर्शन अंतर्राष्ट्रीय बेड़ा समीक्षा बंगाल की खाड़ी में 6 फरवरी, 2016 को विशाखापतनम के तट पर किया था। अभी चीन से तनाव के कारण भी अक्टूबर, 2020 के प्रथम सप्ताह तक यह मजबूत स्थिति दिख रही है। भारतीय नौ-सैना ने अपनी सामुद्रिक सामरिक शक्ति को बढ़ावा देने के लिए मध्यम दूरी की सरफेस टु एयर मिसाइल बराक का विमान वाहक युद्धपोत आई.एन.एस. विक्रमादित्य से परीक्षण 21-23 मार्च, 2017 के दौरान किया। वस्तुतः इस युद्धपोत से मिसाइल बराक का यह पहला ही परीक्षण था।[20]

भारत के रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन ने इजरायल के सहयोग से भारत में विकसित की जा रही महत्वपूर्ण मिसाइल के दो सफल परीक्षण 20 सितम्बर, 2016 को व एक अन्य परीक्षण 21 सितम्बर, 2016 को किया गया। सतह से आकाश में LR-SAM मार करने वाली इस अत्याधुनिक मिसाइल का परीक्षण ओडिशा के बालासोर जिले के चाँदीपुर स्थित एकीकृत परीक्षण रेंज से मोबाइल लांचार के माध्यम से किए गए खतरे की चेतावनी देने वाले रडार व मल्टी फंक्शनल सर्दीलांस सिस्टम से युक्त इस मिसाइल ने खतरे का संकेत मिलते ही 'मानवरहित लक्ष्य विमान' को बंगाल की खाड़ी के ऊपर अपना निशाना बना लिया था। LR-SAM (Long Range Surface to Air Missilpe) मिसाइल इजरायल की बराक 8 मिसाइल है। भारत में इस मिसाइल का विकास इजरायल के सहयोग से हो रहा है।

भारत की रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन क्त्क्ब् ने मिसाइल विकास कार्यक्रम के तहत एक बड़ी उपलब्धि 11 फरवरी, 2017 को उस समय प्राप्त की, जब किसी 'आक्रामक मिसाइल को स्वदेशी एक्सो एटमॉस्फीयरिक इंटरसेप्टर के द्वारा आकाश में ही लगभग 100 किमी. ऊँचाई पर नष्ट करने में सफलता प्राप्त किया था। उस तरह की बैलिस्टिक मिसाइल सुरक्षा कवच (Balistic Missile Defence-BMD) की क्षमता अभी तक अमरीका रूस व इजरायल के पास ही मौजूद थी तथा ऐसी उपलब्धि वाला भारत विश्व का चौथा राष्ट्र हो गया है।[22]

भारतीय सेवा की सामरिक बल कमान व रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन ने देश की सुरक्षा व्यवस्था की मजबूती के लिए अग्नि- के उपयुक्त परीक्षण से पूर्व स्वदेश निर्मित विभिन्न मिसाइलों के परीक्षण नवम्बर, 2015 में किया था। इनमें रूस के सहयोग से निर्मित सुपर सोनिक क्रूज मिसाइल, ब्रह्मोस तथा रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन द्वारा विकसित एवं निर्मित स्वदेशी पृथ्वी-II, अग्नि। एवं अग्नि-IV के अतिरिक्त शत्रु की आक्रमक मिसाइल को उसके लक्ष्य तक पहुँचने से पूर्व आकाश में ही नष्ट करने वाली इंटरसेप्टर मिसाइल के परीक्षण शामिल हुआ था। इन परीक्षणों के तहत नवम्बर, 2015 में निर्णय लिया गया था। ब्रह्मोस मिसाइल का पहला परीक्षण हुआ था।

मोदी सरकार की दृढ इच्छा शक्ति से ही भारत व रूस के संयुक्त उद्यम के तहत भारत में निर्मित क्रूज मिसाइल ब्रह्मोस का यह परीक्षण राजस्थान के जैसलमेर जिले में पोखरण रेंज में 7 नवम्बर, 2015 को किया गया था।'पिनाका' (PINAKA) एक मल्टी बैरल रॉकेट लांचर है। भारत के रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन DRDO द्वारा विकसित इस लांचर का प्रयोग भारतीय सेना द्वारा किया जाता है। कारगिल युद्ध के समय भी इसका उपयोग सेना द्वारा किया गया था। मोदी सरकार में इसके विकसित संस्करण 'गाइडेड पिनाक' का सफल परीक्षण DRDO ने 24 जनवरी, 2017 को ओडिशा में चॉदीपुर स्थित एकीकृत परीक्षण रेंज (ITR) से किया, नवविकसित गाइडेड पिनाक की मारक क्षमता पहले से अधिक है तथा नेवीगेशन, गाइडेंस व कंट्रोल किट से युक्त होने के कारण यह अधिक शुद्धता के साथ लक्ष्य को निशाना बनाने में पूर्ण रूप में सक्षम है।

भारत ने स्वेदश निर्मित अपनी सर्वाधिक शक्तिशाली अन्तर्महाद्वीपीय मिसाइल अग्नि-V का एक सफल परीक्षण 25 दिसम्बर, 2016 को किया, जिसके एक सप्ताह बाद ही अग्नि-V का एक नया परीक्षण 2 जनवरी, 2017 को किया। यह दोनों परीक्षण ओडिशा में बालासोर के तट के निकट अब्दुल कलाम द्वीप (व्हीलर द्वीप) स्थित एकीकृत परीक्षण रेंज (ITR) से सम्पन्न किया गया। इससे भी मोदी की राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रति प्रतिबद्धता दृष्टिगोचर होती है। भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा के लिए बाह्य सीमाओं की सुरक्षा हेतु तथा सामरिक रणनीति हेतु सशक्तिकरण आवश्यक है। दूसरी ओर आन्तरिक सुरक्षा भी कम महत्वपूर्ण नहीं होता है। भारत में जहाँ बाह्य राष्ट्रीय सुरक्षा का प्राथमिक दायित्व रक्षा मंत्रालय पर होता है, वही आन्तरिक मामलों में राष्ट्रीय सुरक्षा का दायित्व गृह मंत्रालय के पास होता है। राष्ट्रीय सुरक्षा में रक्षा मंत्रालय तथा गृह मंत्रालय के मंत्री, प्रधानमंत्री के निर्देशन, समन्वयन और नियन्त्रण में कार्य करते हैं। आन्तरिक सुरक्षा के अन्तर्गत राष्ट्र की एकता एवं अखण्डता को सुनिश्चित करना, आन्तरिक शांति एवं सौहार्द को बनाए रखना, कानून-व्यवस्था को बनाए रखना आदि महत्वपूर्ण है, जिनमें राष्ट्रीय अभिकरणों के साथ-साथ राज्य की मशीनरी की भूमिका भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा के मार्ग में आतंकवाद के अतिरिक्त वामपंथ, उग्रवाद सम्प्रदायवाद और अलगाववाद जैसी समस्याएँ हैं। भारत के छतीसगढ़, मध्यप्रदेश, झारखण्ड, बिहार, आन्ध्र प्रदेश जैसे राज्यों में नक्सल गतिविधियाँ लगातार आन्तरिक रूप में राष्ट्रीय सुरक्षा को चुनौती प्रदान कर रही है। नरेन्द्र मोदी के प्रधानमंत्री बनने के पहले भी ऐसी गतिविधियाँ प्रबल रूप में राष्ट्रीय सुरक्षा के समाने चुनौती थी तथा उनके प्रधानमंत्री बनने के बाद भी यह चुनौती बनी हुई है। जम्मू-कश्मीर समस्या के साथ-साथ पूर्वोत्तर राज्यों की उग्रवाद भी राष्ट्रीय सुरक्षा के मार्ग में एक समस्या है। भारत में आतंकी गतिविधियों का लम्बा और डरावना इतिहास है, हालांकि भारत सरकार की प्रतिबद्धता इसको समाप्त करने में है तथा नरेन्द्र मोदी की सरकार ने सीमापार आतंकवाद तथा आन्तरिक आतंकवाद को समाप्त करने के लिए दृढ़ निश्चय कर रखा है। इसके लिए जम्मू-कश्मीर में 'ऑल आउट' ओपरेशन चलाया जा रहा है। नरेन्द्र मोदी की सरकार ने आतंकवाद को कमजोर करने के साथ-साथ भारत में आर्थिक भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए नोटबंदी का निर्णय लिया। भारत में आतंकी गतिविधियों को नियंत्रित करने के लिए नरेन्द्र मोदी के कुशल नेतृत्व से राष्ट्रीय जाँच एजेन्सी, नेटग्रिड, मैक, एन.एस.जी. के चार स्थापित नवीन केन्द्र आदि बेहतर ढंग से कार्य कर रहे हैं।

साल 2020 के बाद से नरेन्द्र मोदी सरकार ने राष्ट्रीय सुरक्षा को लेकर बहुआयामी और समग्र रणनीति अपनाई है। लद्दाख में चीन के साथ सीमा तनाव के बाद भारत ने सीमाई ढाँचे को मजबूत किया, सेना को अत्याधुनिक हथियारों से लैस किया और सीमा क्षेत्रों में आधारभूत संरचना के तीव्र विकास पर बल दिया। "आत्मनिर्भर भारत" अभियान के अंतर्गत रक्षा उत्पादन में स्वदेशीकरण को प्राथमिकता दी गई, जिससे बाहरी निर्भरता घटे और रक्षा क्षेत्र में आत्मबल बढ़े। आतंकवाद और साइबर हमलों जैसी नई चुनौतियों से निपटने हेतु डिजिटल सुरक्षा, खुफिया नेटवर्क और अंतरराष्ट्रीय सहयोग को भी सुदृढ़ किया गया। मोदी सरकार ने पड़ोसी देशों के साथ "Neighborhood First" नीति के माध्यम से सहयोग बढ़ाने और साथ ही सीमा पार आतंकवाद पर कड़ा रुख अपनाने की नीति जारी रखी। हिंद-प्रशांत क्षेत्र में "क्वाड" देशों के साथ रणनीतिक साझेदारी और वैश्विक स्तर पर भारत की भूमिका को सुरक्षा हितों से जोड़ा गया। आंतरिक सुरक्षा में जम्मू-कश्मीर में स्थायित्व, नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में विकास-प्रधान दृष्टिकोण तथा सीमा प्रबंधन में तकनीकी नवाचार को प्राथमिकता दी गई। इस प्रकार 2020 से अब तक मोदी सरकार की नीति ने राष्ट्रीय सुरक्षा को केवल सैन्य विषय न मानकर आर्थिक, तकनीकी, कूटनीतिक और सामाजिक सशक्तिकरण से जोड़ा है, जिससे भारत की सुरक्षा व्यवस्था अधिक सुदृढ़ और आत्मविश्वासी बनी है।

निष्कर्ष:

भारत ने हाल के वर्षों में अपनी वैदेशिक नीति के माध्यम से राष्ट्रीय सुरक्षा को अत्यधिक सशक्त बनाया है। नरेन्द्र मोदी सरकार ने अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भारत की छवि को आतंकवाद के विरुद्ध दृढ़ और मानवतावादी मूल्यों के समर्थक राष्ट्र के रूप में स्थापित किया है। विभिन्न वैश्विक संगठनों, सम्मेलनों और द्विपक्षीय वार्ताओं में भारत ने लगातार इस बात पर बल दिया

है कि आतंकवाद केवल एक देश की नहीं, बल्कि पूरी मानवता की समस्या है, और इसके विरुद्ध सभी देशों को एकजुट होकर कार्य करना चाहिए। भारत की कूटनीति का परिणाम यह हुआ कि विश्व के अनेक देशों ने पाकिस्तान द्वारा प्रायोजित आतंकवाद के खिलाफ भारत के रुख का समर्थन किया और उसे आतंकवाद से पीड़ित एक जिम्मेदार राष्ट्र के रूप में मान्यता दी।राष्ट्रीय सुरक्षा को केवल सीमाओं की रक्षा तक सीमित न रखते हुए मोदी सरकार ने इसे व्यापक दृष्टि से देखा है। इस नीति में घरेलू चुनौतियों – जैसे अलगाववाद, नक्सलवाद, भ्रष्टाचार, कालाधन, गरीबी, अशिक्षा और बेरोजगारी को भी सुरक्षा के प्रत्यक्ष अवरोधों के रूप में स्वीकार किया गया है। सरकार ने इन आंतरिक समस्याओं से निपटने के लिए प्रशासनिक सुधार, आर्थिक सशक्तिकरण, शिक्षा और कौशल विकास, तथा पारदर्शिता पर बल दिया है। इस प्रकार राष्ट्रीय सुरक्षा अब केवल रक्षा नीति का नहीं, बल्कि समग्र शासन प्रणाली का अभिन्न अंग बन गई है। निश्चित रूप से, नरेन्द्र मोदी सरकार की रणनीति ने यह स्पष्ट किया है कि राष्ट्रीय सुरक्षा तभी सुदृढ़ हो सकती है जब आंतरिक स्थिरता और वैदेशिक नीति के बीच समन्वय हो। भारत आज विश्व मंच पर दृढ़ता से अपने हितों की रक्षा कर रहा है और अपने नागरिकों की सुरक्षा, गरिमा तथा विकास के लिए सक्रिय, सक्षम और आत्मनिर्भर राष्ट्र के रूप में उभर रहा है। यही इस नीति की वास्तविक सफलता और दिशा है।

संदर्भ सूची :

1. राय, गांधी जी (2014), भारती भवन पब्लिशर्स एण्ड अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, द्वितीय संस्करण, पृष्ठ 134
2. तथैव, पृष्ठ–134 एवं 136
3. रावत, डॉ. मंदोदर (2011), अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, रावत प्रकाशन, हरियाणा, पृष्ठ–149
4. राय, गांधीजी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, पृष्ठ–141
5. दैनिक समाचार हिन्दुस्तान, पटना–14 सितम्बर, 2016
6. दैनिक समाचार हिन्दुस्तान, पटना–14 सितम्बर, 2016
7. रावत, डॉ. मदोदर (2011),अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, रावत प्रकाशन, हरियाणा, पृष्ठ–152
8. भसीन, अनीश (2017), अन्तर्राष्ट्रीय संगठन, प्रभात पेपरबैक्स प्रकाशन, प्रथम संस्करण , प्रष्ठ–245
9. तथैव, पृष्ठ–247
10. तथैव, पृष्ठ–247
11. प्रतियोगिता दर्पण अतिरिक्तांक, समसामयिकी वार्षिकी टवस.–प्प, 2017, पृष्ठ–52
12. तथैव, पृष्ठ–52
13. तथैव, पृष्ठ–52 तथा 53
14. तथैव, पृष्ठ–53

ग्रन्थ सूची (बिबलियोग्राफी)

1. Bajpai, K., Basit, S., & Krishnappa, V. (2014). India's grand strategy: History, theory, cases. Routledge.
2. Baru, S. (2016). India and the world: Essays on geopolitics and foreign policy. HarperCollins.
3. Chaturvedi, S. (2020). Modi's foreign policy: A new paradigm in Indian diplomacy. Sage Publications.
4. Ganguly, Š., Pardesi, M., & Scobell, A. (Eds.). (2018). The future of war and peace in Asia. Stanford University Press.
5. Hall, I. (2019). Modi and the reinvention of Indian foreign policy. Bristol University Press.
6. Joshi, M. (2021). Understanding Modi's foreign policy: Nationalism, security, and diplomacy. Routledge India.
7. Karnad, B. (2018). Staggering forward: Narendra Modi and India's global ambition. Penguin Random House.
8. Kaul, M. (2020). India's national security: Challenges and responses. Pentagon Press.
9. Malone, D. M., Mohan, C. R., & Raghavan, S. (Eds.). (2015). The Oxford handbook of Indian foreign policy. Oxford University Press.
10. Menon, S. (2016). Choices: Inside the making of India's foreign policy. Brookings Institution Press.
11. Pant, H. V. (2016). Indian foreign policy: An overview. Manchester University Press.
12. Pant, H. V., & Joshi, Y. (2019). The US–India nuclear pact: Policy, process, and great power politics. Oxford University Press.
13. Pant, H. V., & Sharma, S. (2020). India's national security: Annual review 2020. Observer Research Foundation.
14. Rajagopalan, R., & Sahni, V. (2022). India's changing national security strategy. Routledge.
15. Raghavan, S. (2020). The most dangerous place: A history of the United States in South Asia. Penguin Books.
16. Sikri, R. (2021). Challenge and strategy: Rethinking India's foreign policy. Sage Publications.
17. Saran, S. (2017). How India sees the world: Kautilya to the 21st century. Juggernaut Books.
18. Tharoor, S. (2021). Pax Indica: India and the world in the 21st century. Penguin Books.
19. Tellis, A. J., & Mirski, S. (Eds.). (2013). Crux of Asia: China, India, and the emerging global order. Carnegie Endowment for International Peace.
20. Vanaik, A. (2017). India in a turbulent world: Perspectives on India's foreign policy. Tulika Books.
21. Yadav, V. (2022). Modi's India: Hindu nationalism and the rise of ethnic democracy. Princeton University Press.

20वीं शताब्दी में बिहार में किसानों का अंग्रेजों के खिलाफ प्रतिरोध

डॉ० सुभाष चन्द्र सिंह

(पी-एच.डी.) तिलकामाँझी भागलपुर वि. वि., भागलपुर

शोध सारांश

प्लासी और बक्सर के युद्धों में विजय के बाद अंग्रेजों ने भारतीय सत्ता की बागडोर अपने हाथों में ले लिया और फिर औपनिवेशिक नीतियों के अनुसार भू राजस्व व्यवस्था में बदलाव किया।[1] अंग्रेजों की भूराजस्व नीति शोषण और दमनकारी थी, जिसके परिणाम स्वरुप किसानों का लंबा संघर्ष और बगावत का दौर शुरू हुआ। भारतवर्ष का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं था, जहाँ किसी न किसी रूप में प्रत्येक वर्ष किसानों का विद्रोह नही हुआ हो। किसानों के आंदोलन इसलिए भी महत्वपूर्ण हैं कि इन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। किसानों ने राष्ट्रीय आंदोलन की पृष्ठभूमि तैयार की, तब जाकर राष्ट्रीय आंदोलनों को एक नई दिशा और एक नई शक्ति मिली और अंततः भारत आजाद हुआ। कई किसान नेताओं ने राष्ट्रीय आंदोलनों में बढ़चढ़ कर हिस्सा लिया और कई राष्ट्रीय नेताओं जैसे-महात्मा गाँधी, सरदार वल्लभभाई पटेल आदि ने किसान आंदोलनों को समर्थन दिया। इस संदर्भ में किसान आंदोलनों के योगदानों को भुलाया नहीं जा सकता। खासकर चम्पारण सत्याग्रह के बाद किसानों में राष्ट्रीयता की भावना जागृत हुई। किसान आंदोलनों की एक लंबी श्रृंखला है, इसे 18वीं शताब्दी के किसान आंदोलन, 19वीं शताब्दी के किसान आंदोलन, 20वीं शताब्दी के किसान आंदोलन में बाँटकर अध्ययन करते हैं। फिर प्रत्येक क्षेत्र, प्रत्येक प्रातों में किसान आंदोलनों के भरमार हैं, जैसे-बिहार में किसान आंदोलन, उत्तरी प्रांत के किसान आंदोलन आदि। इस संदर्भ में बिहार में किसान आंदोलनों की रूपरेखा, उसकी प्रगति आदि विषयों पर गहन शोधपरक अध्ययन आवश्यक है।

शब्द कुंजी - किसान आंदोलन, भूराजस्व, सहजानंद सरस्वती, किसान सभा, चम्पारण सत्याग्रह, जमींदारी प्रथा।

भूमिका

बिहार में किसान आंदोलनों की रूपरेखा उसी दिन लिखी जा चुकी थी, जब बिहार, बंगाल और उड़ीसा (जो बंगाल के रूप में संयुक्त प्रांत था) में लॉर्ड कार्नवालिस के काल में परंपरागत भूराजस्व व्यवस्था की जगह स्थायी बंदोबस्त लागू कर दिया गया। इससे पूर्व जागीरदारी व्यवस्था लागू थी।[2] इस व्यवस्था के तहत किसानों से भूराजस्व, ऊपज का तीसरा हिस्सा लिया जाता था,[3] लेकिन स्थायी बंदोबस्त में किसानों को अपने जमीन से बेदखल करने की नीति अपनाई गई। इस व्यवस्था के अंतर्गत जमींदार वर्ग तैयार किया गया। भूराजस्व वसूलने के लिए भूमि की सबसे अधिक बोली लगाने वाले जमींदार को दी जाती थी। जमींदारों द्वारा अधिक से अधिक भूराजस्व वसूल किए जाने के कारण किसानों का शोषण बढ़ा और भूमि व कृषि में निवेश नहीं हुआ और कृषि अर्थव्यवस्था चरमरा गई।[4] औपनैवेशिक सत्ता के पूर्व प्राकृतिक या सामाजिक विपदा, जैसे अकाल और बाढ़ जैसी प्राकृतिक विपदा के समय किसानों को तात्कालिक सहायता मिल जाती थी और तत्काल राजस्व वसूली माफ कर दिया जाता था, लेकिन अब जमींदार बड़ी कठोरता एवं निर्दयतापूर्वक अकाल, महामारी के समय भी राजस्व वसूली जारी रखता था। 'सूर्यास्त नियम' के अनुसार जमींदारों को जमींदारी से बेदखल कर दिया जाता था। बदले हुए कानून से किसानों का शोषण, अत्याचार और दमन किया जाने लगा। ऐसी ही स्थिति में किसानों में जनाक्रोश, बगावत, विद्रोह और आंदोलन का दौर शुरू हुआ। बिहार बंगाल से संबंधित सन्यासी विद्रोह, संथाल विद्रोह, मुंडा विद्रोह आदि विद्रोह कहीं ना कहीं स्थायी बंदोबस्ती को लागू करने, जमींदारों के शोषण, किसानों को जमीन से बेदखल करने का हीं परिणाम था। 1855 ई. में मुंगेर, भागलपुर और पूर्णिया के रैयतों ने नील खेती के खिलाफ विद्रोह शुरू किया था। बिहार के संदर्भ में किसानों का सबसे महत्वपूर्ण आंदोलन चम्पारण सत्याग्रह था, जिसके बाद किसानों में एक नई दिशा और जागृति पैदा हुई। इस आंदोलन के बाद गाँधी जी किसानों के दिलों में बस गये। किसानों के दिलों में गाँधीजी भगवान बन गए। जब भी गाँधीजी ने आंदोलन की शुरूआत की, चाहे वह असहयोग आंदोलन हो या सविनय अवज्ञा आंदोलन सभी राष्ट्रीय आंदोलन में गाँधी जी के एक आह्वान पर किसान हड़ताल, धरना, प्रदर्शन, बहिष्कार में कूद पड़े थे। इन आंदोलन से किसानों को भी नया बल मिला और यह लगा कि ब्रिटिश सत्ता को गाँधीवादी माध्यमों से घुटनों पर लाया जा सकता हैं।

वास्तव में चम्पारण का किसान सत्याग्रह अंग्रेजों के खिलाफ पहली जीत थी। उत्तरी बिहार के बेतिया राज क्षेत्र में तीनकठिया नील खेती की पद्धति लागू थी, यानी किसानों के न चाहने के बावजूद 20 कट्ठा में तीन कट्ठे जमीन में नील की खेती करना अनिवार्य था। इसके अलावे किसान अपना नील बाहर नहीं बेच सकते थे। उसे बजार से कम मूल्य पर बागान मालिकों को बेचना पड़ता था। जिसके साथ दादनी प्रथा के तहत एग्रीमेंट था। इसके अलावे तावान, लोटा-डोरी, हल-बैल आदि तरह-तरह के कर वसूले जाते थे, यानि आर्थिक शोषण के कारण किसानों की दुर्दशा काफी खराब थी।

चम्पारण के किसानों की दयनीय स्थिति का आभास तब हुआ जब गाँधीजी कांग्रेस अधिवेशन में भाग लेने लखनऊ आए थे, तब राजकुमार शुक्ल ने गाँधीजी से मिलकर चम्पारण की दुर्दशा बताई।[6] 1917 ई. में गाँधीजी स्वयं चम्पारण आए और किसानों की दुर्दशा देखने के बाद आंदोलन चलाने का निर्णय लिया। 1917 ई. के इस चम्पारण सत्याग्रह में गाँधीजी के अलावे अन्य मध्यमवर्गीय बुद्धिजीवी, वकील, शिक्षक आदि जैसे डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, मजहरूल हक, ब्रजकिशोर प्रसाद, जे.पी. कृपलानी आदि प्रमुख थे। इस आंदोलन की सफलता से किसानों में एक नई जागृति आई, जिससे किसानों में राजनीतिक चेतना और राष्ट्रीयता की भावना में वृद्धि हुई। अब वे आगे के राष्ट्रीय आंदोलनों और किसान संघर्षों में संगठित रूप से भाग लेने लगे।

चम्पारण आंदोलन के बाद बिहार में किसान आंदोलन का नेतृत्व स्वामी सहजानंद सरस्वती ने अपने हाथों में ले लिया। स्वामी सहजानंद के नेतृत्व में किसान आंदोलन राष्ट्रीय आंदोलन में नया जोश और नई उर्जा का संचार करने वाला साबित हुआ। अब कांग्रेस की पहचान किसान आंदोलन के रूप में होने लगी और राष्ट्रीय राजनीति के केंद्र में आने के लिए माध्यम बनाकर बाबूवर्ग तथा मध्यमवर्गीय लोग, जैसे वकील, शिक्षक, समाजवादी लोग कांग्रेस में सम्मिलित होने लगे। इस क्रम में श्री कृष्ण सिंह, नेहरू, जयप्रकाश नारायण, राम मनोहर लोहिया, एन.जी. रंगा आदि लोग स्वामी सहजानंद के साथ मिलकर किसान आंदोलन को एक नई दिशा दिए। स्वामी सहजानंद के साथ समाजवादी और मार्क्सवादी विचारों के पोषक राहुल सांकृत्यायन, यदुनंदन शर्मा तथा रामवृक्ष बेनीपुरी जैसे लोग भी किसान आंदोलनों से जुड़कर इसे नई धार दी। किसानों का कांग्रेस से मोह भंग होने लगा था, क्योंकि कांग्रेस भी जमींदार वर्गों की ही मदद करती थी। अब तक बिहार प्रदेश किसान सभा की स्थापना 18 नवंबर 1929 ई. को हो चुकी थी। श्रीकृष्ण सिंह इसके सचिव और स्वामी सहजानंद अध्यक्ष बनाए गए।[7] इसी समय विधानसभा में एक जमींदार समर्थक विधेयक का विरोध कांग्रेस और स्वराज दल के इशारे पर हुआ। लेकिन सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान वर्गीय संघर्ष होने और वर्गीय एकता कमजोर होने के डर से आंदोलन को वापस ले गया।[8] सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान 'कर नहीं दो' का नारा दिया गया और 'चौकीदार कर' का विरोध गया। इस आंदोलन से किसान आंदोलन और अधिक मजबूत हुआ। जैसा कि अनुग्रह नारायण सिन्हा अपनी आत्मकथा में लिखते हैं कि सविनय अवज्ञा आंदोलन के दौरान किसान सभा द्वारा शुरू किया गया 'कर नहीं दो' आंदोलन में कांग्रेस का झंडा बुलंद किया गया।[9] किसान सभा के नेताओं को एक नया आत्मबल मिला।[10] 1931 ई. में मुंगेर के दियारा क्षेत्र में लगान और मालगुजारी कम करने और माफ करने का आंदोलन चला। कालिका प्रसाद सिंह ने इस मुद्दे को कौंसिल में रखा और अंततः लगान एवं मालगुजारी की दरों में कमी करने का निर्णय लिया गया।[11] 1931 ई. में ही जहानाबाद जिले में जमींदारों द्वारा किसानों के शोषण और दमन का विरोध किया गया और निंदा प्रस्ताव कौंसिल में लाया गया।

1934 ई. बिहार में भयंकर भूकंप आया। इस प्राकृतिक विपदा के समय जमींदारों ने किसानों से उनकी दयनीय स्थिति में भी लगान न सिर्फ जारी रखा, बल्कि लगान नहीं देने पर यातनाएँ दीं। गाँधीजी ने भी जमींदारों के पक्ष में ही अपना निर्णय देते हुए कहा कि किसानों और जमींदारों के पारस्परिक संबंध जमींदारों के हृदय परिवर्तन से अच्छे हो जाएँगे और मैं नहीं चाहता कि जमींदारी या तालुकदारी प्रथा मिटा दी जाय।[12] जबकि सहजानंद इस बात से सहमत नहीं थे और उन्होंने किसानों और जमींदारों के संबंध को चूहे और बिल्ली जैसा बताया।[13] स्वामी सहजानंद गाँधीजी की बातों से असहमति दिखाते हुए एक 'अखिल भारतीय किसान सभा' की स्थापना करने में लग गये। बिहार किसान सभा के निर्माण के पश्चात इन्दुलाल याज्ञिक तथा किसान बंधु एन.जी. रंगा के सहयोग से 'अखिल भारतीय किसान सभा' की स्थापना की।[14] इसका गठन 11 अप्रैल 1936 ई. को लखनऊ में हुआ और स्वामी सहजानंद को इसका सचिव तथा एन.जी. रंगा को महासचिव बनाया गया।

अब तक सहजानंद सरस्वती किसानों के सर्वमान्य नेता बन चुके थे। बिहार प्रांतीय किसान सभा के सदस्यों की संख्या 33,000 तक पहुँच चुकी थी। 1936 ई. में बड़हिया टाल, शेखपुरा में किसान नेता कार्यानंद शर्मा के नेतृत्व में 'बकास्त' जमीन को लेकर आंदोलन शुरू किया गया। 1937-38 में दरभंगा जिला में किसानों ने अपनी समस्यों को लेकर दरभंगा महाराज के खिलाफ बगावत कर दिया। सरकार ने भी इस आंदोलन को दबाने में दरभंगा महाराज का सहयोग किया। इन किसानों का मनोबल बढाघ्ने के लिए स्वामी सहजानंद, रामवृक्ष बेनीपुरी, कार्यानंद शर्मा, संपूर्णानंद ने प्रोत्साहित किया। सरकार ने जाँच आयोग का गठन किया।[15]

1937 ई. में भारत शासन अधिनियम के तहत कांग्रेस ने सरकार बनाने का निर्णय लिया, लेकिन सरकार बनते हीं कांग्रेस ने किसानों से किए वादों को भुला दिया। जमींदारी उन्मूलन संबंधी प्रस्तावों को पार्टी ने भुला दिया।[16] बिहार विधानसभा के अधिवेशन के पहले दिन 23,000 किसानों ने विधानसभा के समक्ष एकत्रित होकर नारा लगाया कि हमें पानी दो, हम प्यासे हैं, हमें रोटी दो, हम भूखे हैं, हमारे सभी कृषि ऋण माफ करो, हमें जमींदारों के शोषण से बचाओ।[17]

1942 ई. आते-आते किसान सभा और कांग्रेस के बीच फूट पड़ने लगी।[18] कांग्रेस ने किसान सभा के अधिवेशनों में भाग लेने पर प्रतिबंध लगा दिया। इधर किसान सभा ने जमींदारी उन्मूलन का प्रस्ताव पारित कर दिया। अंततः स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जमींदारी प्रथा का उन्मूलन कर दिया गया।

निष्कर्षः

कुल मिलाकर बिहार के राष्ट्रीय आंदोलनों के दौरान किसानों की दयनीय स्थिति आंदोलन का प्रमुख मुद्दा बना। किसानों ने अंग्रेजों के शोषण, अत्याचार, जमींदारों की मनमानी के खिलाफ लंबा, अनवरत संघर्ष किया, जिसके कारण भी राष्ट्रीय आंदोलन हुए। चम्पारण किसान आंदोलन के दौरान गाँधीजी एक राष्ट्रीय नेता और किसान हितैषी, किसानों के मसीहा के रूप में उभरे, जिससे गाँधीजी को आगे की रणनीति बनाने और उसकी सफलता में बिहार के किसानों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सहजानंद ने किसानों के नेता के रूप में पहचान बनाई। किसानों के हित के लिए तथा जमींदारी उन्मूलन के लिए लंबा संघर्ष किया और किसानों पर हो रहे अत्याचार, शोषण को कम करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। लगान वसूली में छूट उनके आंदोलनों का प्रमुख मुद्दा था। स्वामी सहजानंद जी ने किसानों को संगठित करने की प्रेरणा दी। किसान सभा ने प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रीय आंदोलनों को गति प्रदान किया, जिससे देश आजाद हो पाया। इस संदर्भ में किसानों के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूचीः-

1. बिपिन चंद्र, आधुनिक भारत का इतिहास, ओरिएंट ब्लैकस्वान, पृ. 77
2. सुभाष चंद्र कुशवाहा, अवध का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, पृ. 18
3. महेंद्र प्रताप, उत्तर प्रदेश में किसान आंदोलन, पृ. 31-33
4. पूर्वोक्त, पृ. 35-37
5. बंगाल ज्यूडिशियल क्रिमिनल प्रोसीडिंग्स, संख्या 77, 2 अक्टूबर 1856
6. महात्मा गाँधी, सत्य के साथ मेरे प्रयोग, पृ. 440
7. प्रियंका कुमारी, स्वामी सहजानंद सरस्वती और किसान आंदोलन, इंटरनेशनल जरनल ऑफ साइंटिफिक रिसर्च इन साइंस एंड टेक्नोलॉजी, पृ. 11
8. सुमित सरकार, मॉडर्न इंडिया, दिल्ली, 1983, पृ. 340
9. अनुग्रह नारायण, मेरे स्मरण, पृ. 171
10. कौशल किशोर शर्मा, अग्रेरियन मूवमेंट एंड कांग्रेस पॉलिटिक्स, नई दिल्ली, 1989, पृ. 114
11. नव शक्ति, 7 नवंबर 1936
12. स्वामी सहजानंद सरस्वती, किसान सभा के संस्मरण ;संपाद्ध राघव शरण शर्मा किसान आंदोलन का संक्षिप्त इतिहास, 2023 पृ. 51
13. स्वामी सहजानंद सरस्वती, किसान सभा के संस्मरण, न्यू लिटरेचर, इलाहाबाद, भूमिका, पृ. 19
14. राकेश कुमार सिंह, किसान आंदोलन के अग्रणी नेता सहजानंद सरस्वती, किसान विशेषांक, ई-पत्रिका अपनी नारी, अंक-25
15. बद्रीनाथ उपाध्याय, मेमोरियल टूल लेफ्टिनेंट गवर्नर ऑफ बिहार एंड उड़ीसा
16. सुमित सरकार, आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1992, पृ. 408
17. बी एल ग्रोवर एंड अन्य, आधुनिक भारत का इतिहास, पृ. 355
18. बिपिन चंद्रा, भारत का स्वतंत्रता संग्राम, पृ. 345

ग्रामीण महिलाओं में कृषि के लिए प्रौढ शिक्षा: आवश्यकता और रणनीतियाँ

साधना त्रिपाठी

शोधार्थी, शिक्षा शास्त्र विभाग, भगवन्त विश्वविद्यालय अजमेर राजस्थान

पी० पी० गोस्वामी

निर्देशिक, शिक्षा शास्त्र विभाग, भगवन्त विश्वविद्यालय अजमेर राजस्थान

प्रस्तावना-

कृषि में महिलाओं के लिए प्रौढ शिक्षा का मकसद ऐसे देशों और क्षेत्रों में महिलाओं को कृषि विस्तार में ज्यादा शामिल करना है, जहाँ महिलाओं को हाशिये पर रखा जाता है और सामाजिक-सांस्कृतिक और संस्थागत बाधाओं के कारण विस्तार तक उनकी पहुँच सीमित है। ऐसे कार्यक्रमों का महिलाओं की विस्तार में भागीदारी और घरों की कृषि पद्धतियों पर पड़ने वाले असर की जाँच करने वाले अध्ययन सीमित हैं। एक राष्ट्रव्यापी कृषि हस्तक्षेप कार्यक्रम के मामले का इस्तेमाल करते हुए, जिसका मकसद समुदाय-आधारित बीज गुणन पहल के जरिए महिलाओं की विस्तार सेवा तक पहुँच बढ़ाना था, हमारे अध्ययन में कृषि में महिलाओं के लिए प्रौढ शिक्षा आवश्यकता और रणनीतियाँ में विस्तार तक पहुँच में एक महत्वपूर्ण लैंगिक अंतर पाया गया है। हमने पाया कि महिलाओं को शामिल करने के सचेत प्रयास और स्पष्ट लक्ष्य वाला एक कृषि कार्यक्रम महिलाओं की विस्तार तक पहुँच में काफी सुधार करता है।

कृषि विकास और खेती करने वाले परिवारों के कल्याण को बेहतर बनाने में कृषि में महिलाओं के लिए प्रौढ शिक्षा एक अहम भूमिका निभाता है। दुनिया भर में कृषि विस्तार कार्यक्रमों की समीक्षा से पता चलता है कि अफ्रीका, एशिया और लैटिन अमेरिका के ज्यादातर विकासशील देशों में महिलाओं की विस्तार सेवाओं तक पहुँच पुरुषों की तुलना में काफी कम है। इनपुट और टेक्नोलॉजी तक पहुँच की कमी महिलाओं की उत्पादन और अपने परिवारों की भलाई को बेहतर बनाने की क्षमता को सीमित करती है। अफ्रीका से मिले अनुभवजन्य सबूतों से पता चलता है कि महिलाएं अपने पतियों की तुलना में काफी कम उपज पैदा करती हैं और कम मुनाफा कमाती हैं, जो वही फसलें उगाते हैं। अनुमान बताते हैं कि महिला किसानों की विस्तार तक बढ़ी हुई पहुँच विकासशील देशों में कृषि उत्पादन में 2.5-4 प्रतिशत की वृद्धि के माध्यम से खाद्य सुरक्षा में सीधे योगदान दे सकती है और इसके परिणामस्वरूप विश्व स्तर पर भूखे लोगों की संख्या में 12-17% की कमी आ सकती है (FAO 2011)।

महिला किसानों की कृषि विस्तार तक पहुँच कृषि शिक्षा के परिणामस्वरूप मानव पूंजी को बढ़ाती है और महिलाओं के लिए अनुकूल माहौल बनाती है। विस्तार तक पहुँच महिलाओं को नई या बेहतर उत्पादन तकनीक सीखने, प्रशिक्षण, इनपुट और सलाह प्राप्त करने, खुद को संगठित करने और इनपुट और बाजारों तक अपनी पहुँच को बेहतर बनाने में मदद करती है, जिससे वे आत्मविश्वासी बनती हैं, उनके निर्णय लेने की शक्ति बढ़ती है और उन्हें आय पर अधिक नियंत्रण मिलता है। ऐसी महिलाओं के नई कृषि टेक्नोलॉजी अपनाने की संभावना ज्यादा होती है, वे बढ़ी हुई खाद्य और पोषण सुरक्षा में योगदान देती हैं और अपनी कमाई का दस गुना ज्यादा हिस्सा पुरुषों की तुलना में अपने परिवार की भलाई में निवेश करती हैं।

कम आय वाले देशों में खाद्य सुरक्षा को बेहतर बनाने के लिए विकास परियोजनाएं तेजी से कृषि विस्तार को मजबूत करने पर जोर दे रही हैं। नतीजतन, दक्षिण एशिया, दक्षिण पूर्व एशिया और अफ्रीका में कृषि विस्तार प्रणालियों को पिछले दस सालों में बड़े पैमाने पर दानदाताओं से निवेश मिला है। इन निवेशों की एक आम विशेषता यह है कि वे लिंग-समावेशी कृषि विस्तार कार्यक्रम लागू करके महिला किसानों को शामिल करने पर ध्यान केंद्रित करते हैं। महिला लाभार्थियों का लक्षित अनुपात क्षेत्रों, देशों और संदर्भों में अलग-अलग होता है। औसतन, कुल लाभार्थी पोर्टफोलियो में कम से कम 304 प्रतिश्त महिलाओं की

भागीदारी को वर्तमान में एक सामान्य बात माना जाता है।

हालांकि कृषि विस्तार कार्यक्रमों में महिलाओं की बढ़ी हुई भागीदारी को उन देशों में व्यापक रूप से प्रोत्साहित किया जा रहा है जहां महिलाएं हाशिए पर हैं और विस्तार तक उनकी पहुंच सामाजिक-सांस्कृतिक और संस्थागत बाधाओं से बाधित है, ऐसे कार्यक्रमों के महिलाओं की विस्तार तक पहुंच और घरों के कल्याण पर तत्काल और मध्यम अवधि के प्रभाव के अध्ययन सीमित हैं। रगासा और माजुंडा (2018) और रगासा एट अल. (2019) दिखाते हैं कि मलावी में विस्तार सेवा का कृषि उत्पादकता और खाद्य सुरक्षा के साथ मजबूत और सकारात्मक संबंध है। रगासा एट अल. (2019) पाते हैं कि दो मुखिया वाले घरों में पुरुषों और महिलाओं द्वारा जानकारी तक संयुक्त पहुंच, अकेले महिलाओं को जानकारी देने की तुलना में खाद्य सुरक्षा प्राप्त करने में अधिक प्रभावी है। पैन एट अल. (2018) युगांडा में पाते हैं कि विस्तार तक पहुंच महिला किसानों की बेहतर खेती के तरीकों का उपयोग करने की संभावना को बढ़ाती है जो उनकी खाद्य सुरक्षा में योगदान देता है।

यह अध्ययन एक प्रतिनिधि घरेलू स्तर के क्रॉस-सेक्शन डेटासेट के आधार पर, महिलाओं को शामिल करने वाले कृषि विकास कार्यक्रम के कृषि विस्तार तक महिलाओं की पहुँच पर तत्काल प्रभाव का अनुभवजन्य सबूत पेश करती है। हम तिमोर-लेस्ते कृषि और मत्स्य पालन मंत्रालय द्वारा लागू किए गए सीड्स ऑफ लाइफ कार्यक्रम के हिस्से के रूप में शुरू की गई देशव्यापी सामुदायिक बीज गुणन पहल के प्लेसमेंट में बाहरी भिन्नता का उपयोग करके खेती के तरीकों पर विस्तार तक पहुँच के कारण होने वाले प्रभाव का अनुमान लगाते हैं। इस पहल की एक महत्वपूर्ण विशेषता लैंगिक समानता पर इसका स्पष्ट ध्यान था। कार्यक्रम ने बीज उत्पादन, गुणन और वितरण गतिविधियों के सभी स्तरों पर न्यूनतम 30% महिला प्रतिभागियों का लक्ष्य रखा (MAF 2013)। इससे कार्यक्रम वाले गाँवों में महिलाओं को उन गाँवों की महिलाओं की तुलना में विस्तार सेवा तक पहुँचने का अधिक मौका मिला, जहाँ SoL कार्यक्रम ने अभी तक अपनी सामुदायिक बीज उत्पादन गतिविधि शुरू नहीं की थी।

इस पृष्ठभूमि को देखते हुए, यह स्टडी दो शोध प्रश्नों की जाँच करती है:

1. क्या कृषि में महिलाओं के लिए प्रौढ शिक्षा कार्यक्रम जो महिलाओं को शामिल करने के लिए सचेत प्रयास करता है - जैसा कि SoL में है - महिलाओं की विस्तार तक पहुँच बढ़ाता है?
2. यदि हाँ, तो पुरुषों की तुलना में घरों के खेती के व्यवहार पर महिलाओं की विस्तार तक पहुँच के तत्काल प्रभाव क्या हैं?

हम खाद्य सुरक्षा या अन्य कल्याण संकेतकों के बजाय खेती के व्यवहार पर ध्यान केंद्रित करना चुनते हैं क्योंकि ऐसे प्रभावों को प्रकट होने में काफी समय लगता है। खेती के व्यवहार में बदलाव जैसे कि उगाई जाने वाली प्रमुख और छोटी फसलों की संख्या और बेहतर किस्म को अपनाना, वे रास्ते हैं जिनके माध्यम से व्यापक कल्याण प्रभाव प्रसारित होते हैं। इसलिए, खेती के व्यवहार में बदलाव कल्याण लाभ के शुरुआती संकेत हैं।

भारतीय ग्रामीण महिलाएँ हमेशा से कृषि उत्पादन प्रणाली में एक महत्वपूर्ण भागीदार रही हैं। फिर भी यह सच है कि भारत में अधिकांश किसान महिलाएँ हैं। अनुमानों से पता चलता है कि लगभग 78 प्रतिशत ग्रामीण महिलाएँ (34.554 प्रतिश्त महिला किसान और 43.464 प्रतिश्त कृषि मजदूर) पुरुषों के 68 प्रतिशत की तुलना में कृषि में सक्रिय रूप से शामिल हैं। महिलाएँ लगभग सभी कृषि गतिविधियों और बागवानी, डेयरी, मुर्गी पालन, रेशम उत्पादन और वानिकी जैसे संबंधित क्षेत्रों में बौद्धिक निर्णय लेने, पर्यवेक्षण और सक्रिय भागीदारी में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। हाल की रिपोर्टों के अनुसार, 50-60 प्रतिशत कृषि गतिविधियाँ महिलाओं द्वारा की जाती हैं और आज दुनिया के 44 प्रतिशत भोजन का उत्पादन महिलाएँ करती हैं।

उदाहरण के लिए, हिमालय में, एक शोध अध्ययन में पाया गया कि महिलाएँ एक साल में 3,488 घंटे काम करती हैं, जबकि पुरुष 1,064 घंटे काम करते हैं। ओडिशा की आदिवासी अर्थव्यवस्था में महिलाएँ प्रति वर्ष 105.4 दिन झूम खेती पर खर्च करती हैं, जबकि पुरुष उसी गतिविधि में केवल 50.11 दिन खर्च करते हैं। केरल, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल के तीन चावल उत्पादक राज्यों में महिलाएँ खेती की पूरी प्रक्रिया में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं।

यह अनिवार्य है कि महिलाएँ कृषि और संबंधित गतिविधियों में महत्वपूर्ण रूप से भाग लें। लेकिन यह तथ्य कृषि शैक्षिक गतिविधियों में परिलक्षित नहीं होता है, महिला किसानों और मजदूरों को प्रौद्योगिकी हस्तांतरण और कृषि प्रशिक्षण कार्यक्रमों में महत्व नहीं दिया जाता है। हाल के दिनों में, कृषि में महिलाएँ आधुनिक कृषि प्रौद्योगिकियों तक अपर्याप्त पहुँच का अनुभव

कर रही हैं और वे ज्ञान और कौशल की कमी से पीड़ित हैं। उमरानी और थंगामणि (1999) द्वारा किए गए शोध से यह निष्कर्ष निकला कि खेत में काम करने वाली महिलाओं में फसल उत्पादन, अनाज भंडारण, और पशु प्रबंधन से संबंधित कार्यों के बारे में 60-70 प्रतिशत प्रौद्योगिकियों के ज्ञान और कौशल की कमी है, जिनमें वे भाग ले रही थीं। यह मौजूदा स्थिति खेत में काम करने वाली महिलाओं के ज्ञान और कौशल में सुधार के लिए उचित विस्तार शैक्षिक उपायों की मांग करती है।

कृषि में महिलाओं के लिए प्रौढ शिक्षा आवश्यकता मूल्यांकन और लिंग विश्लेषण

कृषि में महिलाओं के लिए विस्तार शैक्षिक कार्यक्रमों की योजना बनाने और विकसित करने में महिलाओं की जरूरतों का मूल्यांकन पहला और सबसे महत्वपूर्ण कदम है। कृषि में लिंग विश्लेषण विभिन्न गतिविधियों में महिलाओं के योगदान और प्रभावी भागीदारी में उनकी बाधाओं को प्रदान करेगा। जरूरत का आकलन और जेंडर एनालिसिस से असरदार रिसर्च डिजाइन बनाने और खेती करने वाली महिलाओं की जरूरतों के हिसाब से सही टेक्नोलॉजी विकसित करने में मदद मिलेगी।

एक्सटेंशन सिस्टम लिंकेज को मजबूत करना

बड़ी संख्या में महिला एक्सटेंशन एजेंटों को काम पर लगाना और पुरुष एक्सटेंशन एजेंटों को मौजूदा या नए बने महिला समूहों के साथ काम करवाना। इससे खेती करने वाली महिलाओं को आधुनिक कृषि टेक्नोलॉजी तक पहुँचने में मदद मिलेगी।

महिला संपर्क किसान दृष्टिकोण

महिला किसानों को संपर्क किसान के रूप में चुना जाएगा, इससे खेती करने वाली महिलाओं का कृषि अनुसंधान और विस्तार प्रणाली के साथ संपर्क बढ़ेगा।

विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रम

कृषि और संबद्ध गतिविधियों में प्रशिक्षण कार्यक्रम खेती करने वाली महिलाओं की जरूरत और रुचि के आधार पर डिजाइन किए जाएँगे। आधुनिक कृषि ज्ञान और कौशल के माध्यम से प्रदान किया जाएगा।

पत्राचार पाठ्यक्रम

खेती करने वाली महिलाओं को पत्राचार पाठ्यक्रमों के माध्यम से कृषि शिक्षा प्रदान की जाएगी। इच्छुक खेती करने वाली महिलाओं की पहचान की जाएगी और पाठ्यक्रम संबंधित राज्य कृषि विश्वविद्यालयों के माध्यम से डिजाइन और वितरित किए जाएँगे।

आंतरिक और बाहरी प्रेरणा

कृषि में सफल महिलाओं की पहचान की जाएगी और उनके अनुभव टीवी, रेडियो और समाचार पत्रों जैसे जनसंचार माध्यमों के माध्यम से साझा किए जाएँगे। क्षेत्रवार उत्कृष्ट खेती करने वाली महिलाओं को प्रोत्साहन और पुरस्कार प्रदान किए जाने चाहिए।

असरदार प्रौद्योगिकी हस्तांतरण प्रणाली को डिजाइन करना और वितरित करना

असरदार, कुशल कृषि प्रौद्योगिकी हस्तांतरण कार्यक्रम सरकारी एजेंसी और NGO के माध्यम से विशेष रूप से खेती करने वाली महिलाओं को लक्षित करके डिजाइन और वितरित किया जाएगा।

निष्कर्ष

कृषि में महिलाओं के लिए प्रौढ शिक्षा ने गाँवों के पुरुषों और महिलाओं दोनों के लिए कृषि इनपुट, टेक्नोलॉजी, सलाह और ट्रेनिंग के अवसरों तक पहुँच बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। हम देखते हैं कि एक्सटेंशन सेवा में महिलाओं की ज्यादा भागीदारी के परिणामस्वरूप फसल बोने के व्यवहार पर महत्वपूर्ण तत्काल प्रभाव पड़ा है। विशेष रूप से, हम देखते हैं कि उन घरों में खेती की जाने वाली जमीनों की संख्या काफी अधिक है जहाँ एक महिला एक्सटेंशन एजेंट को जानती है, उन घरों की तुलना में जहाँ केवल एक पुरुष एक्सटेंशन एजेंट को जानता है। इसके अलावा, हम देखते हैं कि जिन घरों में महिलाएँ

एक्सटेंशन एजेंट को जानती हैं, वे काफी ज्यादा मुख्य और छोटी फसलें उगाते हैं। खेती करने वाली महिलाओं को सही एक्सटेंशन शिक्षा देने से ग्रामीण इलाकों में सामाजिक-आर्थिक बदलाव आएगा, जिससे हमारे देश की कुल ग्रोथ और खुशहाली बढ़ेगी।

संदर्भ

1. Shiva, V. Most farmers in India are women. FAO Publications, New Delhi, 1991, pp. 45.
2. Fourth World Conference on Women, Beijing, 1995. Country Report. Department of Women and Child Development, Ministry of HRD, GOI, New Delhi, 1995, pp. 78.
3. Anonymous. Agricultural-extension for women farmers: Wildeline, population and human resource development. World Bank, 1992, pp. 23.
4. Jiggins, J; R. K. Samanta and J.E.Olawoye Improving women farmers access to extension" services. in Swanson, B.E; R.P. Bentz and A.J. Sofranko (eds.). Improving Agricultural Extension A Reference Manual. FAO, Rome. 1997, pp. 34.
5. Saravanan, R. Problems of farm women and their empowerment. Third Concept, Vol. 15 (180), 2002, pp. 41-43.
6. Saravanan, R. and C. Resmy. Strategies for empowering women cultivators. Agricultural Extension Review, Vol. 13 (1), 2001, pp. 3-7.
7. Umarani, K. and K. Thangamani. Participation of women in agriculture and allied activities. Journal of Extension Education, Vol. 10 (3), 1999, pp. 89.

भारत-रूस द्विपक्षीय व्यापार: वर्तमान प्रवृत्तियाँ और भावी संभावनाएँ

प्रो० मनोज कुमार अग्रवाल

विभागाध्यक्ष-लेखा एवं विधि विभाग (वाणिज्य संकाय) एस.आर.के. (पी.जी.) कॉलेज, फिरोजाबाद (उ0प्र0)

सारांश (Abstract)

भारत और रूस के बीच पारंपरिक रूप से रणनीतिक व ऐतिहासिक रूप से सुदृढ़ सम्बन्ध रहे है। हाल के वर्षों में इन संबंधों का आर्थिक आयाम विशेष रूप से ऊभर कर सामने आया है। 2024-25 में द्विपक्षीय व्यापार ने रिकॉर्ड स्तर छुआ-लगभग US$ 68.7 बिलियन-जिसमें भारत का रूस से आयात भारी रहा और भारत के निर्यात बहुत कम रहे। यह वृद्धि मुख्यत: ऊर्जा (कच्चा तेल), उर्वरक व कुछ कच्चे माल के आयात के कारण है, जबकि भारतीय निर्यात (फार्मा, मशीनरी, कृषि उत्पाद आदि) तुलनात्मक रूप से कम रहे। इस शोध पत्र में इंडो-रूस व्यापार की संरचना, हाल की प्रवृत्तियाँ, प्रतिस्पर्धात्मक पहलू, जोखिम-मूल्यांकन और भविष्य के व्यावसायिक व नीतिगत अवसरों का समेकित विश्लेषण किया गया है।

मुख्य शब्द (Keywords): इंडो-रूस व्यापार, ऊर्जा आयात, निर्यात विविधीकरण, राष्ट्रीय मुद्राओं में व्यापार, समवर्ती आपूर्ति-श्रृंखलाएँ, व्यापार-घाटा, रणनीतिक साझेदारी।

1. प्रस्तावना (Introduction)

भारत-रूस संबंध राजनीतिक, सैन्य व आर्थिक आयामों से परस्पर जुड़े हुए हैं। शीत युद्ध के बाद से दोनों राष्ट्रों का सहयोग रक्षा, ऊर्जा व अंतरिक्ष क्षेत्रों में मजबूत रहा है। 2022 के बाद वैश्विक भू-राजनीति के कारण ऊर्जा-बाजारों में आने वाले उतार-चढ़ाव ने भारत-रूस व्यापार को नई दिशा दी। सस्ते रूसी ऊर्जा व उर्वरक की उपलब्धता ने भारत के आयात में वृद्धि की लेकिन निर्यात में वृद्धि बहुत कम रही परिणामस्वरूप भारत का व्यापार-घाटा बढ़ गया, जिससे दोनों अर्थव्यवस्थाओं के लिए अवसर और जोखिम दोनों उत्पन्न हुए। हाल के शिखर सम्मेलनों में दोनों देशों ने 2030 तक $100 बिलियन व्यापार लक्ष्य जैसे महत्वाकांक्षी लक्ष्य तय किये हैं, पर इसे व्यवहारिक रूप से साकार करने के लिए रणनीतिक नीतियाँ व व्यापार-बास्केट का विविधीकरण आवश्यक है।

2. अध्ययन के उद्देश्य (Objectives of the Study)

1. 2021-2025 की अवधि में इंडो-रूस द्विपक्षीय व्यापार प्रवृत्तियों का विश्लेषण करना।
2. व्यापार संरचना और प्रमुख उत्पाद-श्रेणियों की पहचान करना।
3. व्यापार-असंतुलन (trade imbalance) के कारणों तथा उसके अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों का मूल्यांकन करना।
4. व्यापार-नियमों, भुगतान-व्यवस्थाओं (मुद्राओं में निपटान) तथा लॉजिस्टिक्स पर होने वाले निहित प्रभावों का परीक्षण करना।
5. भविष्य के अवसर-नवीन बहु-क्षेत्रीय व्यापार, तकनीकी सहयोग, विनिर्माण और खाद्य-विकासात्मक निर्यात के लिए व्यवहार्य नीतियाँ सुझाना।

3. साहित्य-समीक्षा

1. कुमार 2018 एवं शर्मा (2020) ने अपने अध्ययनों में यह स्पष्ट किया है कि ऊर्जा क्षेत्र विशेष रूप से कच्चा तेल और प्राकृतिक गैस, भारत-रूस द्विपक्षीय व्यापार का प्रमुख घटक बनकर उभरा है। रूस से भारत के ऊर्जा आयात में वृद्धि के कारण द्विपक्षीय व्यापार का कुल मूल्य तेजी से बढ़ा है।

2. गुप्ता (2021) के अनुसार रूस से बड़े पैमाने पर ऊर्जा आयात के कारण भारत का व्यापार घाटा बढ़ा है। इस अध्ययन में सुझाव दिया गया है कि भारत के रूस के लिए अपने निर्यात आधार को व्यापक बनाना चाहिये विशेष रूप से फार्मास्यूटिकल्स, कृषि उत्पादों और सूचना प्राद्योगिकी के क्षेत्र में।
3. नीति आयोग, विश्व बैंक, UNCTAD की रिपोर्टो के अनुसार फार्मास्यूटिकल्स, हीरा उद्योग, कृषि प्रसंस्करण, रक्षा उत्पादन और दुर्लभ खनिज भविष्य में व्यापार वृद्धि के प्रमुख क्षेत्र हो सकते हैं।

इस प्रकार उपलब्ध साहित्य यह स्पष्ट करता है कि भारत-रूस द्विपक्षीय व्यापार ऐतिहासिक रूप से मजबूत रहा है वर्तमान में इसमें तीव्र वृद्धि देखी जा रही है और भविष्य में इसके और विस्तार की व्यापक सभावनायें मौजूद हैं। हाँलाकि व्यापार असंतुलन, भुगतान प्रणाली और लॉजिस्टक चुनौतियों जैसे मुद्दो पर और अधिक शोध की आवश्यकता है।

4. अनुसंधान-पद्धति (Research Methodology)

यह अध्ययन वर्णनात्मक तथा विश्लेषणात्मक है और द्वितीय समंकों पर आधारित है। द्वितीयक समंको को (सरकारी प्रेस नोट, Indian Embassy, (Moscow), MEA, PIB नोट्स, IBEF, Industry reports और UN COMTRADE एवं विश्लेषणात्मक रिपोर्टों (ICRA, think-tanks) से संकलित किया गया है।

5. विश्लेषण (Analysis)

कुल द्विपक्षीय व्यापार (FY2024-25)रू लगभग US+ 68.7 बिलियन। इसमें भारत का निर्यात लगभग US$ 4.88-4.91 बिलियन और आयात लगभग US$ 63.8 बिलियन के बीच रिपोर्ट किया गया है। यह स्पष्ट रूप से एक बहुत बड़ा असंतुलन (trade deficit) दर्शाता है।

5.1 वर्तमान प्रवृत्तियाँ (Trends over recent years)

ऊर्जा-आधारित आयात में तेज वृद्धि: 2021-2025 के बीच भारत का रूस से कच्चे तेल व ऊर्जा आयात तीव्रता से बढ़ा है। Trading Economics/UN Comtrade के आँकड़े बताते हैं कि 2024 में भारत का रूस-से क्रूड आयात US$ 52.7 बिलियन रहा। यह भारत-रूस कुल व्यापार में वृद्धि का मुख्य कारण था।

निर्यात का सीमित विस्तार: भारत का रूस को निर्यात केवल कुछ बिलियन डॉलर रहा। मुख्य निर्यातों में फार्मा, ऑर्गेनिक केमिकल्स, इंजीनियरिंग गुड्स व कृषि उत्पाद शामिल हैं। परन्तु इनका कुल मूल्य रूस-आयात के मुकाबले नगण्य है इसलिए व्यापार-घाटा बना रहना स्वाभाविक है।

वर्तमान व्यापार संरचना का असंतुलन: ऊर्जा व उर्वरक-आधारित आयात का भार कुल आयात में अत्यधिक रहा है। यह रूसी-ऑइल की सस्ती उपलब्धता व वैश्विक संकेतों से प्रभावित है।

5.2 सेक्टर-वार ब्रेकडाउन

(Crude Oil - Petroleum products का भारत के कुल रूसी-आयात में बहुमत रहा।

रूस से भारत को उर्वरकों की निरंतर जरूरत रही है विशेषकर खाद्य सुरक्षा हेतु।

रक्षा-सामग्री व सैन्य उपकरण में पारंपरिक साझेदारी बनी रही है।

इंजीनियरिंग एवं फॉर्मा क्षेत्रों में भारत के निर्यात है लेकिन कुल में छोटी हिस्सेदारी है।

5.3 भुगतान-तंत्र और मुद्रा-निपटान

हाल के वर्षों में दोनों देशों ने नेशनल-करेंसी में व्यापार निपटान पर चर्चा व प्रैक्टिस तेज की है-रूपया-रूबल/रूबल-रुपये निकट संपर्क बढ़े हैं ताकि बैंकिंग-संकट/US dollar पर निर्भरता घटे। दोनों देशों की सरकारों व बैंकिंग-संगठनों ने रोजमर्रा के व्यापार के लिये घरेलू मुद्रा विकल्पों की प्रक्रियाएँ तेज की हैं-Sberbank जैसी संस्थाओं ने भारतीय रुपये में खाता-खोलने व भुगतान-सुविधाओं का विस्तार किया है। यह कदम वैश्विक दबावों के संदर्भ में महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे भुगतान-लचीलापन बढ़ता है पर साथ ही वित्तीय जोखिम, विनिमय दर तथा बैंकिंग-सेटलमेंट जैसी चुनौतियाँ भी उत्पन्न होती है।

5.4 लॉजिस्टिक्स और सप्लाई-श्रृंखला प्रभाव

रूस-केंद्रित व्यापार में लॉजिस्टिक्स दूरी, सीमांत-कास्ट तथा सिआरल-रूट जैसी चुनौतियाँ उत्पन्न हुई है पर हाल की राजनैतिक समझौतों व कोऑपरेशन में कनेक्टिविटी (रास्ते/पोर्ट/रिंग-रूट) पर बल दिया जा रहा है ताकि सप्लाई-चेन बेहतर बन सके।

6. प्रमुख जोखिम और चुनौतियाँ

1. व्यापक व्यापार-घाटा: हालिया वर्ष में आयात अत्यधिक बढ़ने से व्यापार-घाटा बढ़ा, जो राजकोषीय/विनिमय दबाव ला सकता है। यह दीर्घकालिक स्थिति तब तक अस्थिर रहेगी जब तक निर्यात का पर्याप्त विस्तार न हो।
2. भू-राजनीतिक दबाव व बहुपक्षीय प्रतिबन्ध: रूस पर पश्चिमी प्रतिबन्धों के चलते तीसरे-पक्ष का दबाव/नियमन व्यापार पर अप्रत्याशित प्रभाव डाल सकता है-भारत के लिए जोखिम यह है कि तीसरे-देशों से जुड़ी सप्लाई-श्रृंखलाएँ प्रभावित हो सकती हैं।
3. मुद्रा-जोखिम व बैंकिंग प्रणाली: राष्ट्रीय मुद्राओं में व्यापार निपटान से कुछ पारिस्थितिक लाभ हैं, पर देनदारी/विनिमय दर उतार-चढ़ाव बढ़ सकते हैं- और बैंकिंग-प्रोसेसिंग में समन्वय की जरूरत अधिक होगी।
4. निर्यात-विविधीकरण की कमी: भारत के रूस को निर्यात छोटे व कम वैल्यू-एडेड हैं; यदि नई उच्च-मूल्य श्रृंखलाएँ नहीं बनतीं तो असंतुलन बना रहेगा।

7. भविष्य की संभावनाएँ-

7.1 व्यापार-बास्केट विविधीकरण

विनिर्माण सहयोग: रूस के भीतर कुछ क्षेत्रों में मैन्युफैक्चरिंग- आउटसोर्सिंग व टेक्नोलॉजी-हब स्थापित करने के लिए सहयोग सम्भव है; विशेषकर रक्षा-उद्योग, मशीन-बिल्डिंग और औद्योगिक उपकरणों में। विद्युतीय/ऊर्जा-साझेदारी: क्लीन-एनर्जी, हाइड्रोजन व बैटरी-कच्चे माल पर सहयोग दोनों देशों के लिए संभावनाएँ खोल सकता है।

7.2 कृषि व खाद्य प्रसंस्करण

रूस-आवश्यक कृषि उपकरण/टेक्नोलॉजी आयात कर सकता है।

7.3 फार्मा व हेल्थकेयर सहकारिता

भारत की फार्मा-क्षमता रूस के लिए उपयोगी है-जैसा कि FY2024.25 के डेटा में भारत के फार्मा-निर्यात का उल्लेख है; इसे बढ़ाने हेतु रासायनिक इनपुट्स व वॉयर-कनेक्शनों पर काम किया जा सकता है।

7.4 निवेश व बैंकिंग सहयोग

Sberbank व रूसी बैंक के माध्यम से वस्तु-निपटान, क्रेडिट-लाइन व रुबल-रुपये अकाउंट विस्तार से द्विपक्षीय व्यापार सुगम होगा इससे व्यापार-लिक्विडिटी बढ़ सकती है।

7.5 तकनीकी व एकेडेमिक साझेदारी

उच्च-तकनीकी R-D, स्पेस टेक व इंजीनियरिंग शिक्षा की समेकित परियोजनाओं से लम्बी अवधि के आर्थिक फायदों की संभावना हो सकती है।

8. प्रमुख निष्कर्ष (Findings)

1. रिकॉर्ड व्यापार परिदृश्य: द्विपक्षीय व्यापार ने 2024-25 में रिकॉर्ड US$68.7 बिलियन का व्यापार हुआ। यह वृद्धि ऊर्जा आधारित आयात के कारण प्रमुख थी।
2. गंभीर व्यापार-असंतुलन: भारत के निर्यात सतही रूप से बढ़े पर आयात का बहुलांश ऊर्जा व उर्वरक रहा-नतीजा बड़ा व्यापार-घाटा। यह दीर्घकालिक आर्थिक जोखिम उत्पन्न कर सकता है।

3. मुद्रा-विकल्प व बैंकिंग पहल: रूपया-रूबल निपटान और रूसी बैंकों की भारत में गतिविधियों के विस्तार ने व्यापार-निपटान को स्थिर करने का प्रयास किया पर साथ ही नियामक व विनिमय जोखिम भी बढ़े हैं।
4. निर्यात-विविधीकरण अपरिहार्य: यदि भारत-रूस संबंध सतत व संतुलित बनाना चाहते हैं, तो सेवाएँ (IT/ITeS), कृषि-उत्पाद, कृषि-प्रसंस्करण, और उच्च-मूल्य विनिर्माण को बढ़ावा देना होगा।
5. नीतिगत संवाद व इन्फ्रास्ट्रक्चर आवश्यक: लॉजिस्टिक्स, परमिट/एनपी-प्रोसेसिंग और बैंकिंग-हब पर दोनों देशों को सहयोग बढ़ाना होगा-विशेषकर लक्ष्य $100bn by 2030 के लिए।

9. नीतिगत-सुझाव

1. निर्यात-विविधीकरण के लक्ष्य: लक्ष्यित उद्योग (फार्मा, मशीनरी, कृषि-प्रोसेसिंग, IT सेवाएँ) के लिए आकर्षक समर्थन-पैकेज समझौते आवश्यक हैं।
2. योग्य-विनिर्माण सहयोग (Targeted manufacturing pacts): रक्षा-सहयोग के साथ मिलकर सह-उत्पादन क्लस्टर बनाये जाने चाहिए।
3. रूपया-रूबल क्लियरिंग-हबों का विस्तार: भुगतान-लचीलापन बढ़ाने हेतु केंद्रीय बैंक-स्तरीय समन्वय व जोखिम-नियमन का सुदृढ़ीकरण होना चाहिए।
4. फाइनान्स व इन्फ्रास्ट्रक्चर फंड: लॉजिस्टिक्स सुधार हेतु संयुक्त निवेश, समुद्री/रेल कूरियर शॉर्ट-कट, और सस्ती क्रेडिट-लाइन मुहैया करायी जानी चाहिए।
5. नवाचार व R&D भागीदारी: विश्वविद्यालय-उद्योग गठजोड़, टेक-ट्रांसफर मेकैनिज्म और क्लीन-एनर्जी प्रोजेक्ट्स हेतु संयुक्त निधि बनायी जानी चाहिए।
6. व्यापार शमनाधिक्य व नीति संवाद: टैरिफ/नॉन-टैरिफ बैरियर्स पर नियमित द्विपक्षीय चर्चा व ट्रेड-रेटिंग फोरम का गठन किया जाना चाहिए।

10. निष्कर्ष

इंडो-रूस द्विपक्षीय व्यापार ने हाल के वर्षों में तेजी से आकार लिया है-वर्तमान वृद्धि विशेषत: ऊर्जा-आयात के कारण है-पर यह वृद्धि असंतुलित रही है। दीर्घकालिक, टिकाऊ और परस्पर-लाभकारी व्यापार के लिये भारत और रूस को व्यापार-बास्केट का विविधीकरण, मुद्रा-निपटान के सुरक्षित तंत्र, लॉजिस्टिक्स-सुधार और तकनीकी/विनिर्माण सहयोग पर केंद्रित नीतियाँ अपनानी होंगी। यदि दिये गये नीति-सुझाव लागू किये जाएँ, तो दोनों देशों के लिये $100 बिलियन वाले आकांक्षी लक्ष्य को व्यवहार्य बनाना संभव है-पर सफलता के लिये रणनीतिक दृष्टि, निवेश-सहकर्मी और वैश्विक राजनीतिक परिस्थितियों की संवेदनशीलता को समझना आवश्यक होगा।

चयनित संदर्भ:-

- Additional news analyses (Economic Times, The Wire) on trade diversification and policy commentary.
- ICRA / think-tank reports on India-Russia trade and financial flows (Dec 2024).
- Reuters & media reports on banking initiatives (Sberbank, rupee-accounts) and policy developments (2025).
- Press Information Bureau (PIB), Govt. of India - Joint Statements & Trade Vision documents (2025).
- Trading Economics / UN COMTRADE - India imports from Russia (crude oil) data 2024.
- IBEF (India Brand Equity Foundation) - India-Russia Trade Overview (FY25).
- Embassy of India, Moscow - Brief on India-Russia Economic Relations (official summary; FY2024-25 figures).
- कुमार आर (2018) भारत-रूस आर्थिक सम्बंध: एक विश्लेषण नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस।
- शर्मा, एस. (2020)- "भारत-रूस द्विपक्षीय व्यापार की संरचना और प्रवृत्तियाँ" इण्डियन जर्नल ऑफ इंटरनेशनल इकोनमिक्स, 12(2) 45-60।
- गुप्ता, पी. (2021)- भारत का विदेशी व्यापार, नई दिल्ली: मैक्ग्रा हिल।

आत्महत्या एक सामाजिक तथ्य

डॉ० मो० इरशादुल हक

जे०पी०एस०एस० पी०जी० कालेज, प्रयागराज

समीक्षा (Abstract)

आत्महत्या एक सामाजिक व्याधिकी (Social Pathology) है। यह एक ऐसी समस्या है, जिसका दुष्परिणाम समाज को ही उठाना पड़ता है, यद्यपि समाज किसी व्यक्ति को आत्महत्या करने के लिए नहीं कहता। लेकिन समाज की परिस्थितियाँ उसे विवश करती है, और वह आत्महत्या कर बैठता है। इसलिए आत्महत्या व्यक्तिक कम सामाजिक घटना अधिक है। ''एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका'' में आत्महत्या को स्वेच्छापूर्वक और जानबूझकर की जाने वाली आत्महनन की क्रिया कहा गया है। मृत्यु तो कई प्रकार के होते हैं, लेकिन यह बहुत ही आश्चर्य की बात है कि ऐसी मृत्यु जिसका कारण स्वयं मरने वाला ही हो। आत्महत्या कहलाता है। जब व्यक्ति अपने दैनिक-जीवन की समस्याओं को हल करने में असफल हो जाता है, तो उसमें निराशा हताशा पैदा होती है और वह ''आत्म'' का हनन कर लेता है। आत्महत्या में महत्वकांक्षा और निराशा दो तत्व विद्यमान होते हैं। आत्महत्या व्यक्तिगत पक्ष के साथ-साथ सामाजिक पक्ष भी है। इसीलिए प्रसिद्ध समाजशास्त्री और दार्शनिक दुर्खीम ने अपनी पुस्तक 'स्म ेनपबपकम' में आत्महत्या को सामाजिक घटना माना है। इसलिए आत्महत्या की व्याख्या समाजशास्त्रीय होनी चाहिए न कि व्यक्तिगत। ऐसा देखा जाता है कि कुछ लोग सामाजिक परिस्थितियों के प्रति उदासीन होते हैं, इसलिए आत्महत्या करते है। जबकि कुछ लोग निष्ठावान होते हैं, इसलिए आत्महत्या करते है।

आत्महत्या के अध्ययन से पता चलता है कि अविवाहित, विधवा, विधुर लोग विवाहित की तुलना में अधिक आत्महत्या करते है। दूसरी ओर धर्म का नियंत्रात्मक प्रभाव भी लोगों को आत्महत्या को रोकने में सहायक होता है। चूंकि आत्महत्या को व्यक्तिगत कम सामाजिक घटना अधिक माना जाता है। इसलिए आत्महत्या के तीन प्रकार भी समाज में देखने को मिलते हैं। अहमवादी, परार्थवादी तथा विसंगत-आत्महत्या। चाहे आत्महत्या व्यक्तिगत हो या सामाजिक घटना इसके लिए सामाजिक, पारिवारिक वैयक्तिक आर्थिक, धार्मिक भौगोलिक और मनोवैज्ञानिक कारण उत्तरदायी है। अन्त में सारांश के तौर पर यह कहना जरूरी है कि केवल कानून बना देने और समझाने बुझाने से आत्महत्या का निवारण नहीं हो सकता बल्कि इसके लिए व्यक्ति में जीवन की ललक तथा जीवन के प्रति आकर्षण पैदा करना होगा।

Keywords: आत्महत्या एक सामाजिक घटना

आत्महत्या एक साधारण शब्द है। लेकिन इसे समाज शास्त्रीय दृष्टिकोण से समझना जरूरी होता है। क्योंकि मनुष्य इस संसार के समस्त प्राणियों में सर्वोत्तम प्राणी है। मनुष्य को जो भौतिक-सुख सुविधाएँ प्राप्त है, उससे अन्य प्राणी वंचित है। फिर भी मनुष्य अपने शरीर को समाप्त कर देता है। नि:संदेह यह आश्चर्य की बात है। फिर भी कोई देश और समाज ऐसा नहीं है, जहाँ आत्महत्या (Suicide) नहीं होता है। अमेरिका और फ्रांस जैसे विकसित देशों में भी आत्महत्या एक सामान्य घटना है। मृत्यु कई प्रकार की होती है, लेकिन ऐसी मृत्यु जिसका कारण स्वयं मरने वाला ही हो ''आत्महत्या'' (Suicide) कही जाती है।

मृत्यु का कोई भी स्वरूप दु:ख का प्रतीक है। मृत्यु-मृत्यु में अन्तर होता है। स्वभाविक मृत्यु से व्यक्ति इतना दुखी नहीं होता, जितना आत्महत्या से। सदियों से व्यक्ति अपने और समाज से पूछता है कि आखिर व्यक्ति आत्महत्या क्यों करता है। क्या वह पूर्णतया वैयक्तिक घटना है, अथवा समाज की भी इसमें कोई भूमिका है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। मनुष्य की मनोवृत्ति, विचार, विश्वास, आदर्श, मूल्य सामाजिक अन्तर्क्रियाओं और अर्न्तसम्बन्धों के माध्यम से निर्मित होते है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि बगैर किसी अर्न्तद्वन्द्व के अमुक व्यक्ति ने आत्महत्या कर ली। अर्न्तद्वन्द्व दो वस्तु के मध्य तथा व्यक्ति और सामाजिक धारणाओं के मध्य होता है। इस अर्न्तद्वन्द्व में जब व्यक्ति स्वयं से परास्त हो जाता है और इतना टूट जाता है कि अन्तत: वह आत्महत्या कर लेता है।

आत्महत्या एक सामाजिक, बुराई और सामाजिक तथा वैयक्तिक विघटन का रूप है। जब व्यक्ति अपने दैनिक जीवन की समस्याओं को हल करने में असमर्थ हो जाता है, तो उसमें निराशा हताशा उत्पन्न होती है। जब वह असफलताओं पर नियंत्रण स्थापित नहीं कर पाता तो अपनी 'आत्मा' का हनन कर लेता है। इसे 'आत्महत्या' कहते हैं। आत्महत्या के दो रूप है-(1)

आत्महत्या जिसमें व्यक्ति अपना अन्त चाहता है।[2] आत्महत्या जिसमें व्यक्ति दूसरों की श्रद्धा चाहता है। आत्महत्या के लिए महत्वकांक्षा, निराशा दो तत्व आवश्यक रूप से उत्तरदायी है।

साधारणत: आत्महत्या को एक व्यक्तिगत पक्ष माना जाता है। क्योंकि व्यक्ति अपनी स्वेच्छा से अपनी मौत की योजना बनाता है। लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। क्योंकि आत्महत्या का एक सामाजिक पक्ष भी है। व्यक्ति जिन क्रियाओं को सामाजिक दबाव में आकर करता है वे क्रियाएँ सामाजिक क्रियाएँ कहलाती है। आत्महत्या का एक सामाजिक पक्ष भी है। क्योंकि सामाजिक परिस्थितियों के दबाव में आकर ही व्यक्ति आत्महत्या करता है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री दुर्खीम ने कहा है कि बाहर से व्यक्तिगत क्रिया दिखाई देने वाले आत्महत्या वास्तव में एक सामाजिक पक्ष है। दुर्खीम ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक ष्स्म. नपबपकमष् में आत्महत्या से सम्बन्धित अनेक आंकड़ा प्रस्तुत करते हुए आत्महत्या को एक सामाजिक घटना माना है। उन्होंने आत्महत्या से सम्बन्धित स्वीकृत सिद्धान्तों जैसे निर्धनता, निराशा, प्रेम में असफलता को नकारते हुए कहा कि आत्महत्या एक सामाजिक घटना है। दुर्खीम ने कहा आत्महत्या को व्यक्तिगत कारण मानना एक भूल है। यदि व्यक्तिगत कारण को आत्महत्या के लिए उत्तरदायी मान लिया जाएगा तो ऐसी स्थिति में आत्महत्या की प्रकृति को समझना कठिन हो जायेगा। ऐसा देखा जाता है कि कोई व्यक्ति सम्पन्नता के बीच तो कोई निर्धनता के बीच आत्महत्या करता है तो कोई इसलिए आत्महत्या करता है कि विवाह-विच्छेद के कारण परिवार टूट गया है। इन बातों से पता चलता है कि आत्महत्या का कोई विशिष्ट कारण नही है अधिक से अधिक यह कह सकते है कि हताशा, निराशा दु:ख आत्महत्या का कारण है। लेकिन यह बात वास्तविकता की कसौटी पर सही नहीं उतरता। क्योंकि कुछ लोग भयंकर कठिनाईयों के बावजूद जिन्दा रहते है जबकि कुछ मामूली सी कठिनाई से घबराकर आत्महत्या कर लेते है। वास्तविक अनुसंधान आत्महत्या के समाजशास्त्रीय पक्ष के सामने ला खड़ा करता है। इसलिए आत्महत्या की व्याख्या समाजशास्त्रीय आधार पर की जा सकती है, न कि व्यक्तिगत आधार पर। मनुष्य को सामाजिक परिस्थितियाँ ही आत्महत्या के लिए प्रेरित करती है। कुछ लोग सामाजिक कर्तव्यों के प्रति उदासीन होते है, इसलिए आत्महत्या करते है। जबकि कुछ लोग इतने निष्ठावान होते है कि वे प्राणों की आहूति देने में पीछे नहीं रहते और आत्महत्या कर लेते हैं।

आत्महत्या एक सामाजिक घटना है (Suicide is a Social Phenomena)

प्रसिद्ध फ्रांसीसी समाजशास्त्री और दार्शनिक इमाईल दुर्खीम (Emile Durkhiem) ने समाज में हो रहे आत्महत्या की घटनाओं पर सिद्धान्त प्रस्तुत किया है। दुर्खीम ने कहा कि आत्महतया एक सामाजिक घटना है। उन्होंने सामाजिक एकता (Social Slidirity) के संदर्भ में स्पष्ट करते हुए कहा कि समाज का स्थायित्व सामाजिक एकता पर निर्भर करता है। जब समाज में संगठन बना रहता है, तो समाज में एकता बनी रहती है। लेकिन जब समाज में एकता भंग होने लगती है तब व्यक्ति अपने-आपको पृथक महसूस करने लगता है। इससे व्यक्ति में कुण्ठा की भावना आती है, और वह आत्महत्या कर बैठता है। इस प्रकार आत्महत्या एक सामाजिक घटना है, जो सामाजिक एकीकरण के अभाव का प्रतिफल है। ऐसा देखने को मिलता है कि आदिम और सरल समाजों में एकता, सहयोग, संगठन अधिक पाया जाता है। इसलिए आदिम समाज में आत्महत्या की घटना कम होती है। जबकि आधुनिक जटिल समाज में एकता, सहयोग और संगठन का अभाव पाया जाता है, इसलिए ऐसे समाजों में आत्महत्या अधिक होती है। सामाजिक-एकता के कारण ही व्यक्ति अपने आपको समाज और परिवार में सुरक्षित महसूस करता है। लेकिन जब वह अपने आप में असुरक्षा महसूस करता है, तो उसमें निराशा, हताशा आती है। जिसकी अंतिम परिणति आत्महत्या के रूप में देखने को मिलती है।

आत्महत्या पर अध्ययन करने से पता चला है कि प्राय: ऐसा देखा जाता है कि अविवाहित, विधवा, विधुर लोग अधिक आत्महत्या करते है। ऐसा इसलिए है कि ऐसे व्क्ति पर सुखी पारिवारिक जीवन का स्वस्थ्य प्रभाव नहीं पड़ता, जो वास्तव में उन पर पड़ना चाहिए। ठीक इसके विपरीत वैवाहिक जीवन व्यक्ति को प्रेम, स्नेह, मोह-माया के बन्धन में बांधे रखता है। इसलिए ऐसे लोगों में आत्महत्या की घटना उन लोगों की तुलना में कम देखने को मिलता है, जो सुखी पारिवारिक जीवन से वंचित है। यह नहीं कहा जा सकता कि सुखी पारिवारिक जीवन का प्रभाव परिवार का मोह माया स्नेह प्रेम जैसे बातों से प्रभावित लोग आत्महत्याएं नहीं करते है वे भी करते हैं लेकिन उनका प्रतिशत पारिवारिक सुख से वंचित लोगों से कम होता है।

दूसरी ओर आत्महत्या के अध्ययन से पता चलता है कि धर्म भी आत्महत्या को रोकने में सहायक होता है। धर्म का नियंत्रणात्मक प्रभाव यह बताता है कि आत्महत्या पाप और धर्म द्वारा निषिद्ध है। धर्म यह बताता है कि जो व्यक्ति आत्महत्या

करते हैं उन्हे नरक में स्थान प्राप्त होता है। इस प्रकार धर्म का बाध्यमूलक और नियंत्रात्मक प्रभाव व्यक्ति पर पड़ता है। लेकिन धर्म का बाध्यमूलक प्रभाव सभी व्यक्ति और समुदाय पर एक समान नहीं पड़ता। यही कारण है कि कैथोलिक सम्प्रदाय के तुलना में प्रोटस्टेण्ट सम्प्रदाय के लोग अधिक आत्महत्या करते है। क्योंकि प्रोटस्टेण्ट लोग व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर बल देते हैं। समाज में आत्महत्याएं तीन प्रकार की देखने को मिलती है-

(1) अहमवादी-आत्महत्या (Egoistic Suicide)-अहमवादी आत्महत्या समाज में तब होती है, जब व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध पूरी तरह से टूट जाता है। व्यक्ति समाज में अपने-आपको अकेला महसूस करने लगता है। यह स्थिति व्यक्ति के 'अहम' (Ego) के ठेस पहुंचाती है, इस प्रकार के अपमान से बचने के लिए व्यक्ति आत्महत्या का सहारा लेता है।

(2) परार्थवादी आत्महत्या (Altruistic Suicide)-परार्थवादी आत्महत्या अहमवादी-आत्महत्या के ठीक विपरीत प्रकृति है। परार्थवादी आत्महत्या तब होती है, जब व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध इतना घनिष्ठ हो जाता है जिससे वह अपने अस्तित्व को बचाने के लिए आत्महत्या की ओर प्रवृत होता है। परार्थवादी-आत्महत्या दो आधारों पर की जाती है-(I) नैतिक आधार, (II) मनावैज्ञानिक आधार

नैतिक आधार पर की गई आत्महत्या किसी महान उद्देश्य की पूर्ति के लिए की जाती है, जबकि मनोवैज्ञानिक-आत्महत्या व्यक्ति अपने कर्तव्य ज्ञान के कारण दूसरे के हितार्थ बलि देता है। अविवाहित लड़की द्वारा जब पिता के प्रति अपने नैतिक कर्तव्य के बोध के कारण आत्महत्या करती है तो ऐसी आत्महत्या नैतिक आधार पर परार्थवादी-आत्महत्या है। दूसरी ओर पत्नी द्वारा अपने पति को सुखी और शान्त रखने के लिए जब आत्महत्या की जाती है तो इसे मनोवैज्ञानिक आधार पर परार्थवादी-आत्महत्या कहते है।

(3) विसंगत-आत्महत्या (Anomic Suicide)-जब समाज में उत्पन्न विसंगति के कारण आत्महत्याएँ होती है, तो इसे विसंगत आत्महत्या (Anomic Suicide) कहा जाता है। विसंगति एक आदर्श विहीनता की अवस्था और नियमों का उल्लंघन है। इस प्रकार की स्थिति समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जाने के फलस्वरूप उत्पन्न होती है।

आत्महत्या का कारण

समाज में जो आत्महत्याएँ होती है। उसके लिए सामाजिक आर्थिक, धार्मिक, भौगोलिक, पारिवारिक, सामुदायिक परिस्थितियाँ उत्तरदायी है। भारत जैसे देश में आत्महत्या का प्रमुख कारण गरीबी, बेरोजगारी, शारीरिक व्याधिकी, धार्मिक प्रथाएँ आदि प्रमुख है। यहाँ गांव की तुलना में शहरों तथा स्त्रियों की तुलना में पुरुषों, वृद्धों की तुलना में युवकों में आत्महत्या की दर उँची है। आत्महत्या के प्रमुख कारण इस प्रकार है:-

(1) वैयक्तिक कारण (Individual Cause)-आत्महत्या के लिए वैयक्तिक कारण उत्तरदायी है। वैयक्तिक कारणों में शारीरिक-मानसिक दोष जैसे लूला लंगड़ा होना, मानसिक तनाव एवं विकार जैसे चिन्ता, भय, स्नायु तनाव, मानसिक-अस्थिरता, निराशा आदि भी व्यक्ति को आत्महत्या के लिए प्रेरित करती है।

(2) पारिवारिक कारण (Familial Cause)-जब व्यक्ति का पारिवारिक जीवन संघर्षमय और तनाव पूर्ण होता है, तो परिवार का व्यक्ति पर अस्वस्थ प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति की शान्ति और सुरक्षा भंग हो जाती है। उसके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं हो पाता है और ऐसा परिवार विघटित व्यक्तित्व को जन्म देता है। पारिवारिक परिस्थितियाँ जो व्यक्ति को आत्महत्या करने के लिए प्रेरित करती है। पारिवारिक कारणों में टूटा-परिवार, पारिवारिक कलह, दाम्पत्य जीवन में असामंजस्य आदि प्रमुख है।

(3) सामाजिक कारण (Social Cause)-समाज में विघटन और समस्याओं में वृद्धि होने पर आत्महत्या के दर में वृद्धि होती है। इसलिए आत्महत्या के लिए सामाजिक कारण भी उत्तरदायी माने जाते है। इन सामाजिक कारणों में दोषपूर्ण सामाजीकरण, सामाजिक कुरीतियाँ, सामाजिक विघटन आदि प्रमुख है। सामाजिक विघटन से पारिवारिक और व्यक्तिक-विघटन भी बढ़ जाता है। सामाजिक नियंत्रण शिथिल हो जाता है। नवीन परिस्थितियों से अनुकूलन की समस्या उत्पन्न हो जाती है। ये दशाएँ आत्महत्या के लिए उत्तरदायी है।

(4) आर्थिक कारण (Economic Cause)-आत्महत्या के लिए बेरोजगारी निर्धनता तथा विषम आर्थिक परिस्थितियाँ उत्तरदायी मानी जाती है। जब व्यक्ति के पास बेरोजगारी होती है। अर्थात् काम की क्षमता कार्यकुशलता और शक्ति होने के बावजूद

रोजगार नहीं मिल पाता और वह दिन भर बेकार रहता है जिससे वह अपने आपको अपमानित महसूस करता है। बेकारी से परिवार में निर्धनता आती है। निर्धनता के कारण वह अपने बच्चों तथा परिवार के सदस्यों की आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाता। ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर वह अपने आपको दोषी मानने लगता है और मुक्ति पाने के लिए आत्महत्या की ओर प्रवृत हो जाता है। दूसरी ओर व्यक्ति के समक्ष विषम आर्थिक स्थिति उत्पन्न होती है और वह जब इन विषम परिस्थिति से अनुकूलन स्थापित नहीं कर पाता तो वह आत्महत्या कर लेता है।

(5) धार्मिक-कारण (Relgious Cause)-आत्महत्या के लिए धार्मिक विश्वास, पाप-पुण्य की भावना, स्वर्ग और नरक के विचार जैसे धार्मिक-कारण तथा धार्मिक रूढ़िया भी उत्तरदायी मानी जाती है। धर्म में इस प्रकार की रूढियॉ एवं विश्वास पाए जाते हैं, जो सामाजिक विचलन को बर्दाश्त (सहन) नहीं करते और पाप तथा इश्वरीय प्रकोप से बचने के लिए व्यक्ति आत्महत्या कर लेते हैं। इन धार्मिक रूढ़ियों के बावजूद हिन्दू, इस्लाम और कैथोलिक सम्प्रदाय में आत्महत्या को पाप मानकर इससे बचने का आदेश दिया गया है।

(6) भौगोलिक कारण (Geographical Cause)-भौगोलिक कारणों का आत्महत्या के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध तो नहीं है। फिर भी भौगोलिक दशाओं जैसे जलवायु, तापमान भूकम्प, बाढ़ अकाल का प्रभाव मानव के जीवन पर पड़ता है। जब व्यक्ति भौगोलिक परिस्थितियों से सामजंस्य स्थापित नहीं कर पाता तो वह आत्महत्या कर लेता है।

(7) मनोवैज्ञानिक कारण (Psychological Cause)-आत्महत्या के लिए अनेक मनोवैज्ञानिक कारण जैसे अत्याधिक क्रोध, भावुकता, मानसिक बीमारियाँ चिन्ता, उन्माद, मानसिक-दुर्बलता, कुण्ठा, निराशा, अत्याधिक संवेदनशीलता आदि उत्तरदायी है।

इस प्रकार आत्महत्या के लिए ये सभी उक्त कारण उत्तरदायी है। इन कारणों के अतिरिक्त नगरीकरण, व्यवसाय की प्रकृति परिस्थितिशास्त्रीय दशा, परीक्षा में असफलता आत्महत्या को बढ़ावा देते है। स्पष्ट है कि आत्महत्या एक जटिल तथ्य है। जिसके लिए कई परिस्थितियाँ उत्तरायी है।

आत्महत्या वैयक्तिक और सामाजिक विघटन की चरम अभिव्यक्ति है। लेकिन यहां एक ध्यान देने की बात यह है कि सामाजिक और वैयक्तिक विघटन में सुधार की तो सम्भावना रहती है, लेकिन जब व्यक्ति आत्महत्या करके स्वयं को समाप्त कर देता है, फिर सुधार किसमें किया जाए। राष्ट्र निर्माण के लिए जरूरी है कि समाज के आधार अर्थात व्यक्ति को स्वस्थ एवं सबल बनाया जाए। आत्महत्या का निवारण केवल कानून बना देने और समझाने-बुझाने से नहीं होगा बल्कि ऐसे उपाए अपनाने होंगे, जो व्यक्ति में जीवन की ललक तथा जीवन के प्रति आकर्षण पैदा कर सके और वह मृत्यु के बजाय जीवन को महत्व दे।

संदर्भ सूची-

1. सामाजिक विघटन- एम0एल0 गुप्ता/डी0डी0 शर्मा
2. समाजशास्त्र- डा0 वी0एन0 सिंह जनमेजय सिंह
3. सामाजिक विचारक-डा0 एम0एम0 लवानिया/शशि के0 जैन
4. सामाजिक विचारक-आर0एन0 मुखर्जी।

रोजगार सृजन में पर्यटन उद्योग का योगदान

डॉ० गिरजा शंकर गुप्ता

सहा. प्राध्यापक (वाणिज्य) दुर्गा महाविद्यालय, रायपुर (छ.ग.)

उमा गुप्ता

सहा. प्राध्यापक (प्राणीशास्त्र) शासकीय डी.बी. कन्या महा. रायपुर

सारंशः-

किसी भी राष्ट्र के आर्थिक विकास में सबसे महत्वपूर्ण घटक होता है उस राष्ट्र का औद्योगिक विकास। किन्तु औद्योगिक विकास ने समूचे विश्व में पर्यावरण की समस्या को जन्म दे दिया है। आज की परम आवश्यकता यही है कि विकास ऐसा हो जो पर्यावरण को संरक्षण दे सके। इस दृष्टि से अपवाद-स्वरूप पर्यटन उद्योग ही एक मात्र ऐसा उद्योग है जो पर्यवरण को संरक्षण प्रदान करता है। किसी ने ठीक ही कहा है कि यह बिना चिमनी व धुएं का एक ऐसा उद्योग हे जिसमें सेवा तथा सौहार्द का उपयोग 'इनपुट' के रूप में किया जाता है। उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के युग में पर्यटन का स्थान प्रमुख वैश्विक आर्थिक क्षेत्रों में सर्वप्रमुख है। विभिन्न देशों में पर्यटन को उद्योग एवं प्रमुख रोजगार क्षेत्र के रूप में विकसित किया जा रहा है संचार के साधनों के विकास एवं विस्तार के साथ-साथ पर्यटन की विदेशी आय अर्जन में भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। पर्यटन द्वारा वृहद औद्योगीकरण के आधुनिक युग में सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास, पिछड़े क्षेत्रों के विकास तथा लघु एवं कुटीर उद्योगो को संरक्षण प्रदान किया जा रहा है। इस प्रकार पर्यटन का अर्थव्यवस्था के समन्वित विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है।

कुंजी शब्दः- उदारीकरण एवं वैश्वीकरण, लघु एवं कुटीर उद्योग, परिवहन एवं संचार, विदेषी मुद्रा, आर्थिक एवं समाजिक, राष्ट्रीय सदभावना, केन्द्रीय पर्यटन सलाहकार समिति, विदेषी पर्यटक, पुनगर्ठन, रोजगार के अवसर, स्वदेषी पर्यटक, प्रषिक्षित अधिकारी, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक ज्ञान, संतुलित आधारभूत संरचना

प्रस्तावनाः-

उन्नीसवीं सदी में फ्रांस और स्विजरलैण्ड ने पर्यटन को आर्थिक साधन के रूप में औद्योगिक आधार पर विकसित किया। इसके पश्चात द्वित्तीय विश्व युद्ध के बाद पर्यटन समूचे विश्व में एक आर्थिक सामाजिक पहलू के रूप में उभरा है। आज विश्व में तेल उद्योग के बाद पर्यटन ने दूसरा स्थान ले लिया है। किसी भी राष्ट्र के लिए पर्यटन उद्योग की अलग ही महत्ता होती है। यह अजीबो गरीब उद्योग है, न तो इसमें अधिक पूँजी निवेश की आवश्यकता होती है और न ही इससे पर्यावरण असंतुलन जन्म लेता है। यह जहाँ एक ओर रोजगार के नये अवसर पैदा करता है वहीं दूसरी और लघु एवं कुटीर उद्योग के रूप में दस्तकारी, हाथकरघा तथा कलात्मक वस्तुओं से सम्बद्ध उद्योगों को विकसित करता है। साथ ही परिवहन एवं संचार के साधनों के विस्तार की संभावनायें विद्यमान रहती है। पर्यटन उद्योग की खासियत यह है कि संसाधनों के कम उपयोग तथा बिना निर्यात किये ही अच्छी खासी विदेशी मुद्रा का अर्जन किया जा सकता है। यह कहना कदापि अतिश्योत्तिपूर्ण न होगा कि राष्ट्रीय एकता तथा अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव एवं मैत्री को बढ़ावा पर्यटन उद्योग द्वारा ही संभव है।

भारतीय पर्यटन प्रगति की ओर तेजी से अग्रसर हो रहा है उसके कुछ कारण है, एक तो यह है कि पर्यटन आज दूसरे क्षेत्रों की तुलना में निवेश की प्रति इकाई पर अधिकतम रोजगार उपलब्ध करवा रहा है। अतः यह बेरोजगारी से सम्बन्धित समस्या का सर्वश्रेष्ठ निदान हो सकता है। दूसरा यह है कि पर्यटन स्थलों का दूरदराज के क्षेत्रों में स्थित होने के कारण अनेकों अलग-थलग पड़े क्षेत्रों की प्रगति भी स्वतः ही हो रही है। तीसरा यह है कि आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया ने विदेशों में बसे लोगों में भारत के प्रति रूचि दर्शाई है। इसके परिणामस्वरूप व्यापार से सम्बन्धित पर्यटन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है इस वृद्धि को 30 से 40 प्रतिशत तक आंका गया है। आखिरी कारण यह है कि पर्यटन द्वारा हमें बहु उपयोगी, बहुवांछित विदेशी मुद्रा प्राप्त होती है। पर्यटन इस तरह से केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार और पूरे राष्ट्र के एजेण्डा में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात पर्यटन उद्योग एक महत्वपूर्ण आर्थिक एवं सामाजिक पहलु के रूप में उभरा है आज न केवल भारत बल्कि सम्पूर्ण विश्व की नजर पर्यटन उद्योग को विकसित करने में लगी हुई है क्योंकि यह एक श्रम अभिमुख सेवा है जो देश की अर्थ व्यवस्था को गति देने व देश की बेरोजगारी जैसी समस्या का निदान करने में एक औषधि के रूप में प्रयुक्त की जा सकती है। पर्यटन उद्योग में रोजगार वृद्धि की पर्याप्त सम्भावनाएं है। इस व्यवसाय में प्रबन्धकों से लेकर कर्मचारियों, हस्ताशिल्प कारीगरों, परिवहन सेवाओं, होटलों एवं रेस्तराओं आदि जैसे कई व्यवसायों को काम मिलता है। पर्यटन उद्योग से विदेशी मुद्रा की प्राप्ति होती है। पर्यटन उद्योग से लोगों को अन्य भागों कि संस्कृति व विरासत को देखने के पर्याप्त अवसर मिलते है। पर्यटन से राष्ट्रीय सदभावना को प्रोत्साहन मिलता है। इस प्रकार पर्यटन उद्याग 21वीं सदी के प्रमुख उद्योगों में से एक हो गया है। भारत सरकार ने पर्यटन उद्योग को विकसित करने के लिए 1948 में पर्यटन आवगमन कमेटी की स्थापना की। पर्यटन आवागमन शाखा की एक इकाई का सृजन परिवहन मन्त्रालय में किया गया और दो पर्यटन कार्यालय नई दिल्ली व मुम्बई में स्थापित किये गये। सन् 1950 में केन्द्रीय पर्यटन सलाहकार समिति की नियुक्ति और 1952 में एक विदेशी पर्यटक कार्यालय न्यूयार्क में खोला गया। 1955-56 में परिवहन मन्त्रालय के अन्तर्गत पर्यटन आवागमन शाखा का विस्तार कर उसका नया नाम पर्यटक विभाग रखा, ताकि पर्यटन विभाग एक स्वतन्त्र विभाग बन कर देश में पर्यटन उद्योग को पूर्ण समता के साथ विकसित कर सकें।

सन् 1958 में पुनर्गठन की एक योजना के अन्तर्गत पर्यटन विभाग में पर्यटन शाखा का विकास करके परिवहन एवं संचार मन्त्रालय के अन्तर्गत पर्यटन विभाग का प्रारम्भ किया गया। यह विभाग पर्यटन के प्रमुख निदेशक के अधीन कार्य करता है। पर्यटन के नये विभाग में तीन कमेटियों का गठन 1958 में किया गया। इनका कार्य पर्यटकों को प्रोत्साहित करना था। मार्च 1963 में पर्यटन उद्योग को प्रोत्साहित करने के लिए लक्ष्मीकान्त झा की अध्यक्षता में अस्थाई समिति गठित की गई इस समिति ने एक 15 सूत्रीय योजना का सुझाव दिया जिसमें होटलों में ठहरने की दरो के सम्बन्ध में तथा सुविधाओं एवं अन्य उपायों के सम्बन्ध में सुझाव दिया गया ताकि भारत में पर्यटन के आवागमन में वृद्धि हो सके।

सन् 1965 में झा समिति के सुझावों के आधार पर पर्यटन उद्योग के विकास के सम्बन्ध में एक समन्वय समिति की नियुक्ति की गई इस प्रकार अन्त में परिवहन मन्त्रालय व पर्यटन विभाग का पुर्नगठन करके नया नाम परिवहन एवं पर्यटन विभाग किया गया। 18 सितम्बर 1966 को पर्यटन विभाग को नागरिक उड्डयन विभाग से जोड़ दिया गया और 1966 में भारतीय पर्यटन विकास निगम की स्थापना की गई। यह निगम सार्वजनिक क्षेत्र में अर्ध स्वायत्त संस्था के रूप में कार्यरत है, जो पर्यटन विभाग से निकट सम्पर्क रखती है। यह संस्था होटलों और यात्री आवास की एक श्रृंखला को नियन्त्रित रखती व चलाती है इसमें पर्यटकों के लिए परिवहन सुविधाओं की व्यवस्था की जाती है उनके लिए मनोरंजन की भी व्यवस्था की जाती है। अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डों पर शुल्क मुक्त दुकानों की स्थापना की जाती है इसके अलावा नये राज्यों और केन्द्र प्रशासित प्रदेशों में पर्यटन कार्यालयों की स्थापना करके पर्यटन उद्योग को विकसित करने का भारत सरकार ने प्रयास किया है।

भारतीय पर्यटन उद्योग का यह दुखद पहलु रहा है, कि इस उद्योग का विकास भी अन्य उद्योगों की भांति केन्द्रीयकृत हुआ है। अधिकांश पर्यटन स्थलों में पाँच सितारा होटल संस्कृति विकसित हुई है जिसमें कैबरे डॉस तथा पाप-मयूजिक पर्यटकों को मनोरंजन के रूप में परोसा जाता है। विदेशी पर्यटक भारत इसलिये नहीं आते है क्योंकि उन्हें वैसा ही वातावरण यहाँ नहीं मिलता जैसा कि उनको अपने देश में मिल रहा है। वे अपनी उब तथा निरसता दूर करने भारत आते हैं। विश्व के पर्यटकों के एक बड़े वर्ग की सौच में बदलाव आया है। पर्यटक आज आरामदेय होटलों में रहने के बजाय प्रकृति के समीप रहकर प्राकृतिक सुन्दरता का आन्नद प्राप्त करना चाहते हैं। ऐसे पर्यटकों के लिए तम्बू की कॉलोनियाँ तथा कॉटेज स्थापित करना आदर्श सिद्ध होगा। साथ ही मनोरंजन के रूप में भारतीय शास्त्रीय संगीत तथा लोक नृत्य आदि प्रस्तुत किये जाये तो उससे ने केवल भारतीय संस्कृति की अस्मितता की रक्षा हो सकेगी अपितु पश्चिमी जगत में इसका प्रसार हो भी सकेगा।

पर्यटन उद्योग अभी तक विदेशी पर्यटकों तथा स्वदेशी पर्यटकों के उच्च वर्ग को ही आकर्षित कर सका है। यदि पर्यटन स्थलों में आवास तथा भोजन आदि की सुविधायें सस्ती सुलभ हो जाये तो मध्यम तथा निम्न वर्ग भी पर्यटन सविधाओं का लाभ प्राप्त कर सकेगा। रोजगार के अवसरों में विस्तार करने हेतु सरकार द्वारा स्थानीय, लघु एवं कुटीर उद्योगों लिए आवश्यक सुविधा मुहैया करनी होगी, इससे क्षेत्रीय बाजार को भी लाभ मिल सकेगा। वर्तमान में पर्यटन स्थलों में एक नई प्रवृत्ति विकसित हुई है इन स्थलों के व्यवसायियों तथा पेशेवर लोगों द्वारा पर्यटकों से वस्तुओं एवं सेवाओं के विनियम में अनुचित रकम वसूली जाती है और विदेशी पर्यटकों को ठगने तथा लूटने के समुचे प्रयास किये जाते हैं। विगत वर्षों में यह भी देखने में आया है

कि महिला पर्यटकों से अश्लील हरकतें की जाती है यह बड़ी खेदजनक स्थिति है हम भूल जाते है कि विदेशी पर्यटक हमारा मेहमान होता है हमारी संस्कृति सदैव से अतिथि सत्कार को सर्वोपरि मानती है। इसलिए विदेशी पर्यटकों के प्रति न केवल सद्व्यवहार किया जाये बल्कि सेवा भाव होना चाहिये ताकि पर्यटक बार-बार भारत आने की इच्छा करें और हमारी संस्कृति की अमिट छाप के चिन्ह उस पर पड़ सकें।

विदेशी पर्यटकों में प्राय: तीन वर्ग के पर्यटक अब तक भारत आते रहे है एक तो वे पर्यटक जो मौज मस्ती के लिए आते हैं, दूसरे वर्ग में वे पर्यटक है जो किसी देश समाज की संस्कृति को समझना चाहते है, और कुछ समय से पर्यटकों का एक नया वर्ग जुड़ गया है- हनीमून मनाने विदेश जाने वाला वर्ग। विश्व के कतिपय राष्ट्रों जैसे अमरीका, जापान तथा यूरोपिय राष्ट्रों में ऐसे पर्यटकों की संख्या निरन्तर बढ़ रही है। भारत पहले व दूसरे वर्ग के पर्यटकों को संतुष्ट कर सका है। तीसरे वर्ग के पर्यटकों को संतुष्ट करने हेतु पर्वतीय क्षेत्रों में यातायात, ठहरने की सुविधा व भोजन व पीने के पानी आदि सुविधाओं के विकास के साथ ही इन क्षेत्रों में व्यापक प्रसार प्रचार की आवश्यकता है। उत्तर भारत में हिमालय की वादियों तथा बर्फ से ढकी चोटियों प्रचार की आवश्यकता है। उत्तर भारत में हिमालय की वादियों तथा बर्फ से ढकी चोटियों में पर्यटकों क विकास की प्रचुर संभावनाएं विद्यमान है, यदि ठीक और गंभीर प्रयास किये जाये तो लक्ष्यद्वीप, गोवा, शिमला, कल्ल मनाली, ऊटी तथा अन्य स्थलों को भी विकसित कर और आकर्षक बनाया जा सकता है। यद्यपि पर्यटन की दृष्टि से भारत बहुत सम्भावना पूर्ण राष्ट्र है परन्तु विश्व पर्यटन की प्रगति की तुलना में यह देश अपेक्षित प्रगति नहीं कर पाया है। अनेक प्रयासों के बावजूद भी संसार के कुल पर्यटकों के 1 प्रतिशत से भी कम पर्यटक भारत आते हैं वर्ष 2022 में पर्यटन उद्योग से विश्व को 1000 अरब डालर की प्राप्ति हुई जिसमें भारत का अंश 17.18 अरब रूपये (0.1 प्रतिशत) था। जिसे एक दयनीय प्रतिशत ही कहा जायेगा। अत: यह विडम्बना कही जायेगी कि पर्यटन के इतने आकर्षक स्थल होते हुये भी भारत में पर्यटकों की संख्या न तो तेजी से बढ़ी है और न ही विदेशी मुद्रा अर्जन में विशेष वृद्धि हो पाई है।

आज भी देश को पर्यटन के क्षेत्र में अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ रहा है यथा रेल एवं सड़क यातायात की पर्याप्त सुविधाओं की कमी देश के विशाल क्षेत्रफल को देखते हुये पर्यटन सम्बन्धी पूछताछ एवं सूचना केन्द्रों की अपर्याप्तता, देश के हवाई अड्डों का अन्तर्राष्ट्रीय उड़ानों के योग्य न होना, विद्युत आपूर्ति में अनियमितता, विदेशी पर्यटकों के लिए आधुनिक एवं उच्च स्तरीय सुविधाओं का अभाव, राष्ट्र के सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक महत्व के स्थलों की अपर्याप्त सुरक्षा व्यवस्था का अभाव आदि। अत: देश में पर्यटन के महत्व को देखते हुये पर्यटन के क्षेत्र में विद्यमान वर्तमान बाधाओं को दूर करने के लिए यथासम्भव प्रयास किया जाना चाहिये इसके लिए जहाँ एक ओर देश में फैले पर्यटन केंन्द्रों को तीव्र एवं सुविधाजनक परिवहन साधनों से जोड़ना जरूरी है वहीं दूसरी ओर देश के प्रमुख हवाई अड्डों को अन्तर्राष्ट्रीय उड़ानों से जोड़ना अति आवश्यक है।

इसके साथ-साथ पर्यटन से सम्बन्धित सभी संस्थानों में योग्य अनुभवी एवं प्रशिक्षित अधिकारियों व कर्मचारियों की नियुक्ति की जानी चाहिये। विदेशी पर्यटकों के साथ धोखाधड़ी एवं दुर्व्यवहार करने वाले दोषी व्यक्तियों के विरूद्ध तुरन्त कठोर कार्यवही होनी चाहिये। देश में स्थित पुराने किलों, मन्दिरों एवं भवनों में उद्धत भित्ति चित्रों व नक्काशी के कार्यों को आकर्षक बनाऐं रखने के लिए पर्याप्त सुरक्षा व्यवस्था होनी चाहिए। पर्यटकों को कुशल एवं प्रभावी सेवाएँ देने हेतु टैक्सी चालकों, होटल प्रबन्धकों एवं कस्टम अधिकारियों के लिए समय-समय पर पर्यटन प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए। देश के महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में पर्यटन प्रबन्ध में डिप्लोमा पाठ्यक्रमों की समुचित व्यवस्था की जानी चाहिये ताकि विश्राम घरों एवं सूचना केन्द्रों पर ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक ज्ञान रखने वाले प्रशिक्षित गाइड्स नियुक्त किये जा सके। स्वदेशी पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए पर्यटन केन्द्रों पर एक, दो और तीन व पाँच सितारा होटलों का अधिकाधिक विस्तार किया जाना चाहिये ताकि मध्यम तथा उच्च वर्ग के लोगों को उचित कीमत पर आवास, भोजन, यातायात मनोरंजन की सुविधायें उपलब्ध हो सके। संतुलित आधारभूत संरचना के विकास और समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को बनाए रखना अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए राज्य में पर्यटन कीसंभावनाओं का विशेष उल्लेख करते हुये सभी राज्यों द्वारा मास्टरप्लान बनाये जाने चाहिये। इस प्रकार के प्रयास का उद्देश्य यह सुनिश्चित करना होगा की इससे पर्यटन का विकास हो। सामन्जस्य स्थापित हो और दौहरी योजनाऐं न बने। नगरयोजना पर उचित ध्यान देते हुये सांस्कृतिक केन्द्रों के लिए एकीकृत योजना शुरू किये जाने की आवश्यकता है। जिसमें किलो, महलों और पुरानी हवेलियों पर विशेष रूप से ध्यान दिया जान चाहिए।

निष्कर्ष-

अत: स्पष्ट है कि पर्यटन अब ऐसे उद्योग के रूप में जाना जाता है जिससे अनेक सामाजिक और आर्थिक फायदे हैं। इससे राष्ट्रीय एकता और अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव को बढ़ावा मिलता है इसके अलावा पर्यटन से रोजगार के अवसर बढ़ाने और विदेशी मुद्रा अर्जित करने में भी मदद मिलती है। लेकिन इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सिर्फ सरकारी मशीनरी ही पर्याप्त नहीं है बल्कि विभिन्न विभागों व राज्य सरकारों में समन्वय व सामन्जस्य, मजबूत राजनैतिक इच्छा शक्ति और इन सबसे अधिक आम आदमी की भागीदारी शामिल है, जो कि पर्यटकों को विदेशी मुद्रा देने वाली मशीन न समझे बल्कि उन्हें भारत का गौरवमय इतिहास और साँस्कृतिक विरासत की जानकारी दे। साथ ही एक भारतीय होने के नाते अपने अतीत की साँस्कृतिक धरोहर के संरक्षण में भी सहयोग दें। पर्यटन क्षेत्रों के माध्यम से अधिकतम् आय अर्जित करने के लिए सर्वप्रथम सुदृढ़ पर्यटन नीति का निर्माण आवश्यक है साथ ही पर्यटन विकास मंडल को उचित अधिकार एवं पर्याप्त वित्तीय सुविधाएं उपलब्ध कराना भी आवश्यक है। साथ ही पर्यटन क्षेत्रों में विकास को सुदृढ़ बनाने के लिए निजी क्षेत्रों को भी प्रोत्साहित करना आवश्यक है जिसके लिए कुछ अद्योसंरचना विकास क्षेत्रों को निजी क्षेत्रों के लिए संरक्षित किया जा सकता है राष्ट्र के पर्यटन क्षेत्रों के विकास के लिए व्याप्त संबंधित अनियमिताओं को दूर कर सुदृढ़ नियोजन एवं क्रियान्वयन द्वारा राष्ट्र में नवीन संगठित आय क्षेत्र का पर्यटन उद्योग के रूप में विकास किया जा सकता है। निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि पर्यटन क्षेत्रों के माध्यम से अधिकतम आय अर्जित करने के लिये सर्वप्रथम सुदृढ़ पर्यटन नीति का निर्माण आवश्यक है। जिससे भारतीय अर्थव्यवस्थाओं में पर्यटन उद्योग का विकास कर रोजगार अवसरों का सृजन किया जा सके।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1) आर्थिक विकास एवं नियोजन-एस.पी. सिंह संस्करण 2020 एस. चंद पब्लिकेशन, नई दिल्ली
2) आर्थिक समीक्षा - 2020-21 भारत सरकार
3) भारत 2021, सूचना एवं मसारण मंत्रालय, भारत सरकार
4) वार्षिक प्रशासकीय प्रतिवेदन, पर्यटन विभाग, छत्तीसगढ़ शासन, रायपुर (2019-20, 2020-21)
5) प्रधान डॉ. अशोक - जनजातीय जनांकिनी
6) नया दौर छत्तीसगढ़ जनसंर्पक विभाग मुदण छत्तीसगढ़ संवाद ।

भारत में मतदान व्यवहार के निर्धारकः एक अध्ययन

अमित कुमार

सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान), एम. एस. एम. समता महाविद्यालय, जंदाहा, वैशाली, बी. आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार

सारांशः

शासन की लोकतांत्रिक प्रणाली में निर्वाचन एक सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है जो सत्ता का निर्धारण सुनिश्चित करती है। समकालीन वैश्विक शासन व्यवस्था में लोकतंत्र को उसकी अनेक कर्मियों के बावजूद शासन व्यवस्था के रूप में निर्विवाद रूप से स्वीकार किया जाता है। भारत की लोकतांत्रिक प्रणाली विश्व में सर्वाधिक मतदाताओं की भागीदारी के साथ नियमित निर्वाचन की साक्षी रही है। अतः निर्वाचन के समय मतदान की विशेष भूमिका होती है लोकतंत्र में निर्वाचक उत्तरदायी और जवाबदेह सरकार बनाना, नेतृत्व में परिवर्तन, लोकतंत्र की निरंतरता, सामाजिक और राजनीतिक एकीकरण को सुगम बनाने तथा लोकतांत्रिक प्रक्रिया का स्वामित्व ग्रहण करने के उद्देश्य से मतदान करते है स लोकतांत्रिक व्यवस्था में राजनीतिक दल, विद्वजनो, शोधकर्ताओं, चुनाव आयोग द्वारा विभिन्न चुनावी प्रक्रिया के अंतर्गत मतदाताओं के द्वारा किए गए मतदान व्यवहार का अध्ययन किया जाना प्रासंगिक और रोचक अध्ययन का विषय बन जाता है स प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र की अपनी विविधताएं होती है और उसी के अनुरूप स्थानीय मांगों का निर्धारण भी किया जाता है स मतदान व्यवहार का अध्ययन कर यह अंदाजा लगाया जा सकता है कि कोई राजव्यवस्था स्थानीय, क्षेत्रीय, राज्य और राष्ट्रीय स्तर पर किस हद तक संतुष्ट कर पाई है स मतदाताओं की शिकायतें, समस्याओं, अपेक्षाओं और समर्थनों को जानने का सर्वाधिक व्यावहारिक अध्ययन मतदान व्यवहार का अध्ययन ही है स जो कि किसी भी राजनीतिक दल को सत्ता में बने रहने के लिए प्रेरित करती है और लोकतांत्रिक व्यवस्था का यह मूल भी है अधिकतम जनता की अधिकतम हितो, मांगों को पूरी किया जाए।

कुंजी शब्दः वैश्विक, लोकतांत्रिक, लोकतंत्र, राजनीतिक दल, मांग, निर्वाचन, जवाबदेह, निर्वाचक।

प्रस्तावनाः

भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था संपूर्ण वैश्विक शासन व्यवस्था के लिए एक मिशाल है। आजादी के पश्चात ही भारतीय संविधान सभा ने भारत के लिए लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था को सर्वमान्य रूप से स्वीकार किया स संविधान सभा द्वारा लिया गया फैसला करीब 75वर्ष बीतने के बाद भी उत्कृष्टता के साथ सही सिद्ध हुआ है। लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था की सबसे बड़ी चुनौतीपूर्ण कार्य चुनाव को। समय तथा निष्पक्षता के साथ शांतिपूर्ण संपन्न कराना है। चुनाव को सुचारू रूप से संचालित कराने के लिए भारतीय संविधान के भाग 15 में अनुच्छेद 324 से 329 तक में निर्वाचन आयोग के गठन तथा चुनाव कराने की महत्वपूर्ण दायित्वों का विस्तृत वर्णन किया गया है। भारतीय संविधान में व्यस्क मताधिकार के सिद्धांत को अपनाया गया है। साथ ही गुप्त मतदान प्रणाली भी निर्धारित की गई जिससे यह स्पष्ट नहीं हो पाता है कि कौन किसे अपना मत दे रहा है। साथ ही भारत एक विविधताओं से भरा देश है जहां राज्य से राज्यों के बीच ही नहीं बल्कि एक ही राज्य के दो जिलों तथा गांव में भी भाषायी, जातीय, धर्म, रहन-सहन में भी विविधताएं पाई जाती है। यही कारण है कि जब चुनाव की बात आती है तो व्यक्ति-व्यक्ति के बीच मतदान को लेकर या मत प्रयोग को लेकर अलग-अलग दृष्टिकोण पाए जाते हैं। चुनाव के दौरान मतदाता के मतदान के लिए अलग-अलग निर्धारक तत्व होते हैं जिसके आधार पर मतदाता अपने मत का प्रयोग करते हैं। यह मतदान के निर्धारक तत्व ही होते हैं जो मतदाता को सत्ता पक्ष या विपक्ष या निर्दलीय उम्मीदवार के पक्ष में मतदान करने को प्रेरित करता है। मतदाता द्वारा चुनाव में अपने मत के माध्यम से जो भावना व्यक्त की जाती है वह राजनीतिक व्यवहार ही मतदान व्यवहार कहलाता है। संक्षेप में कहे तो हम कह सकते हैं मतदान व्यवहार से तात्पर्य मतदाता के मत को प्रभावित करने वाली उस कारक से है जो किसी मतदाता को सत्ता के पक्ष या विपक्ष में मतदान के लिए प्रभावित करता है। मतदान

व्यवहार के इन निर्धारित कारकों में जाति, धर्म, राजनीतिक दल, भाषा, नेतृत्व, क्षेत्रवाद, विकास, भ्रष्टाचार, आयु, लिंग, वैदेशक संबंध, तत्कालीन परिवेश, गठबंधन उम्मीदवार का व्यक्तिगत व्यवहार, योग्यता, आदि को सम्मिलित किया जा सकता है।

मतदान व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारक :

व्यवहारवादी क्रांति के पश्चात लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में मतदान के अध्ययन का प्रचलन बढ़ा वैसे-वैसे मतदाताओं के द्वारा मतदान के लिए उन निर्धारित तत्वों का अध्ययन पर भी जोर दिया जाने लगा जो उन्हें मतदान हेतु प्रेरित करते थे। एल्डसर्वेल्ड ने सन् 1951 में पहली बार मतदान व्यवहार की अवधारणा का प्रतिपादन किया। इनके अनुसार इसमें तीन तत्वों का अध्ययन किया जाना चाहिए, पहला: मतदान का परिणाम, दूसरा: मतदान का रुख तथा तीसरा: मतदान करने या नहीं करने के कौन से कारक प्रभावी हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात अब तक अनेकों लोकसभा तथा विधानसभा का निर्वाचन सफलतापूर्वक संपन्न हो चुके है। कुछ चुनाव परिणामों को छोड़ दे तो हम पाते हैं कि लगभग सभी चुनाव में मतदान का परिणाम तथा रुख और कारक बदलते रहे है। ऐसे में यहां मतदान को प्रभावित करने वाले या यूं कहें कि मतदान के उभरते तत्वों का अध्ययन करना समाचीन प्रतीत होता है।

मतदान व्यवहार में जाति की भूमिका:

स्वतंत्रताप्राप्ति के पश्चात प्रथम आम निर्वाचन से ही भारत में मतदान व्यवहार में जाति अब भी एक प्रमुख निर्धारक तत्व रहा है। लेकिन बदलते समय के साथ इसने अपना स्वरूप परिवर्तित किया है। अब जाति के साथ अन्य मुद्दे भी मिलकर मतदाताओं के निर्णय को आकर देते है। पिछले कुछ वर्षो से यह देखा जा रहा है कि लोकसभा व विधानसभा चुनाव में कई राज्यों में 'अपनी जाति की वोट' की प्रवृति तो मजबूत तो हुई है लेकिन विशेषकर शहरों और युवा में यह प्रभाव आंशिक रूप से कमजोर भी हुआ है। भारत की ऐतिहासिक व संरचनात्मक पृष्ठभूमि भारतीय समाज में जाति ने लंबे समय तक सामाजिक पहचान, पेशा और दर्जे को तय किया, इसलिए राजनीति में भी पहचान की सबसे मजबूत इकाई जाति ही बनी रही। संविधान में आरक्षण और राजनीतिक प्रतिनिधित्व (SC/ST के लिए आरक्षित सीटें, OBC आरक्षण आदि) ने पिछड़ी जातियों को शक्ति दी, जिससे उनकी राजनीतिक जागरूकता और संगठित दावेदारी बढ़ी। जाति आधारित मतदान के तरीके कई इलाकों में मतदाता को ऐसे उम्मीदवार या दल को प्राथमिकता देते हैं जिसे "अपनी जाति का" या अपनी जाति के हितों का प्रतिनिधि माना जाता है, जिससे कुछ सीटों पर जाति.विशेष का वोट लगभग एकमुश्त किसी दल को मिल जाता है।

सर्वेक्षणों से पता चलता है कि विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों और उत्तर भारत के राज्यों (जैसे उत्तर प्रदेश, बिहार) में जाति पहचान, पार्टी पसंद और वोट के बीच गहरा संबंध बना हुआ है। दलों की चुनावी रणनीति और सोशल इंजीनियरिंग क्षेत्रीय और राष्ट्रीय दोनों प्रकार के दल टिकट वितरण, गठबंधन और प्रचार रणनीति में जातीय गणित का उपयोग करते हैं, ताकि विभिन्न OBC, दलित, सवर्ण और स्थानीय प्रभावशाली जातियों को साथ लाकर "वोट-बैंक" बनाया जा सके। उदाहरण के तौर पर 2024 के चुनावों में कई दलों ने पारंपरिक कोर जातियों से आगे बढ़कर गैर.यादव OBC, गैर-जाटव दलित या क्षेत्रीय मध्यम जातियों को अधिक टिकट देकर "सोशल इंजीनियरिंग" की, जिससे कई जगह उनके नतीजे बेहतर हुए। प्रतिनिधित्व और सशक्तिकरण जाति-आधारित राजनीतिक लामबंदी से दलित, आदिवासी और OBC समुदायों का विधानसभाओं व लोकसभा में संख्यात्मक प्रतिनिधित्व बढ़ा, जिससे उनके मुद्दे - आरक्षण, भेदभाव, भूमि अधिकार, शिक्षा व कल्याण योजनाएं - नीतिगत विमर्श के केंद्र में आए। कई अध्ययनों के अनुसार हाशिये के समूहों के लिए यह राजनीति सामाजिक व आर्थिक न्याय के साधन के रूप में भी देखी जाती है, खासकर वहां जहां पहले उनकी राजनीतिक आवाज कमजोर थी। बदलते रुझान और भविष्यहाल के विश्लेषण संकेत देते हैं कि जाति की भूमिका स्थायी है, पर उसके साथ वर्ग, शहरीकरण, शिक्षा, और "लाभार्थी राजनीति" (जैसे मुफ्त राशन, आवास, स्वास्थ्य बीमा) भी निर्धारक बन रहे हैं, जिससे कुछ पारंपरिक जातीय वोट-बैंक टूट रहे हैं। फिर भी जाति जनगणना, आरक्षण की सीमा, और पिछड़ी जातियों के अधिकार जैसे मुद्दों की केंद्रीयता से स्पष्ट है कि निकट भविष्य में भारतीय मतदान व्यवहार में जाति एक महत्त्वपूर्ण, यद्यपि परिवर्तित रूप में, प्रभावी कारक बनी रहेगी।

मतदान व्यवहार में धर्म की भूमिका:

भारतीय मतदान व्यवहार में धर्म की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। हाल के दशकों में हिंदू-मुस्लिम ध्रुवीकरण, "हिंदू वोट" की उभरती धारणा और अल्पसंख्यक समुदायों के रणनीतिक मतदान ने धर्म की भूमिका को और दृश्यमान कर दिया है। धर्म

एक राजनीतिक पहचान के रूप में भारतीय समाज की धार्मिक विविधता ने राजनीतिक दलों को धार्मिक पहचान के आधार पर समर्थन जुटाने के लिए प्रेरित किया है। कई दल उम्मीदवार चयन, प्रचार-रणनीति और मुद्दों की भाषा तय करते समय किसी इलाके की धार्मिक संरचना (बहुसंख्यक-अल्पसंख्यक) को प्रमुख मानदंड के रूप में देखते हैं। धर्म कई बार "एथनिसिटी" की तरह काम करता है, यानी धार्मिक समूह स्वयं को एक सामूहिक राजनीतिक समुदाय के रूप में देखने लगते हैं। प्राय: ऐसा देखने को मिलता है कि जब किसी धार्मिक समूह की संख्या किसी क्षेत्र में घनी और निर्णायक हो, तब धार्मिक ध्रूवीकरण के आधार पर "धर्म-आधारित वोट" को संगठित करना अपेक्षाकृत आसान हो जाता है। हिंदू मतदाताओं में ध्रुवीकरण 1990 के बाद के दौर में राम मंदिर, धर्मांतरण, "सांस्कृतिक राष्ट्रवाद" जैसे मुद्दों के सहारे विशेषकर भाजपा ने हिंदू पहचान को राजनीतिक रूप से संगठित करने की कोशिश की है। कई राज्यों में, खासकर उत्तर भारत और कर्नाटक जैसे प्रांतों में, हिंदू बहुसंख्यक के भीतर धार्मिक संबोधन के साथ जातीय समीकरण (जैसे लिंगायत, वोक्कालिगा आदि) को जोड़कर मतदान को प्रभावित किया गया है। अध्ययनों में "इमर्जिंग हिंदू वोट" की चर्चा यह दिखाती है कि कुछ क्षेत्रों में मतदाता स्वयं को पहले हिंदू और बाद में जाति या क्षेत्रीय पहचान के रूप में देखने लगे हैं, जिससे बहुधा एक खास पार्टी के पक्ष में एकतरफा झुकाव पैदा होता है।

फिर भी पूरे देश में हिंदू मत एकरूपी नहीं है; विभिन्न राज्यों और जातीय समूहों में विकास, कल्याण योजनाओं और स्थानीय नेतृत्व की छवि भी निर्णायक बनी रहती है। मुस्लिम व अन्य अल्पसंख्यक मतदाताओं को प्राय: "वोट बैंक" के रूप में देखा जाता है, लेकिन शोध दर्शाता है कि उनके भीतर भी वर्ग, क्षेत्र, पंथ और जाति के आधार पर विविधता मौजूद है। 2019 के बाद कुछ राज्यों में सांप्रदायिक ध्रुवीकरण और सुरक्षा.भावना के कारण मुस्लिम वोट अपेक्षाकृत अधिक समन्वित होकर उन दलों की ओर झुका है जिन्हें सेक्युलर माना जाता है। आंकड़ों से पता चलता है कि हालिया लोकसभा चुनावों में मुस्लिम मतदान-दर औसत से थोड़ी कम रही, लेकिन जहाँ उन्हें अपने वोट को "निर्णायक" मानने का अहसास हुआ, वहाँ उनकी भागीदारी कहीं अधिक दर्ज हुई। मुस्लिम मतदाता अक्सर "नुकसान कम से कम" करने की रणनीति अपनाते हैं, यानी उस प्रत्याशी को प्राथमिकता देते हैं जिसे वे साम्प्रदायिक ताकतों को रोकने के लिए सबसे सक्षम मानते हैं।धर्म, जाति और अन्य कारकों का अंतर्संबंध भारतीय संदर्भ में धर्म और जाति एक-दूसरे से गहराई से जुड़े हैं, इसलिए मतदान व्यवहार को केवल धर्म से समझना अधूरा है। कई बार एक ही धर्म के भीतर जातीय या क्षेत्रीय पहचान अधिक प्रबल हो जाती है, जिससे मतदान. पैटर्न धार्मिक रेखाओं की बजाय जातीय और स्थानीय मुद्दों के अनुरूप बनते हैं। धार्मिक मुद्दों के साथ.साथ कल्याण योजनाएँ, आर्थिक स्थिति, नेतृत्व की विश्वसनीयता और क्षेत्रीय दलों की उपस्थिति भी निर्णायक रहती है। दीर्घकाल में समावेशी विकास, नागरिकता.आधारित अधिकारों की चेतना और बहुलतावादी राजनीतिक संस्कृति ही धर्म की विभाजक राजनीति को सीमित कर सकती है।

मतदान व्यवहार में मीडिया का प्रभाव:

बीते एक दशक में भारत के न सिर्फ सामाजिक बल्कि राजनीतिक क्षेत्र में भी सोशल मीडिया ने अपनी गहरी छाप छोड़ी है और यह प्रभाव गुणोत्तर बढ़ता जा रहा है। भारत में मतदान व्यवहार पर मीडिया की भूमिका बहुआयामी है, जो सूचना प्रसार से लेकर धारणा निर्माण तक फैली हुई है। पारंपरिक मीडिया जैसे टीवी और अखबार एजेंडा सेटिंग करते हैं, जबकि सोशल मीडिया युवा मतदाताओं को लक्षित कर तेजी से प्रभाव डालता है। पारंपरिक मीडिया का योगदान टीवी चौनल और समाचार पत्र चुनावी कवरेज के माध्यम से मुद्दों को प्राथमिकता देते हैं, जैसे 2014 में विकास और भ्रष्टाचार पर फोकस ने भाजपा की छवि मजबूत की। ये मुख्यत: शहरी मध्यम वर्ग को प्रभावित करते हैं, जहां उच्च मीडिया एक्सपोजर वाले मतदाता राष्ट्रीय मुद्दों पर अधिक झुकाव दिखाते हैं।

बीते एक दशक में सोशल मीडिया ने राजनीतिक और सामाजिक परिदृश्य को गहराई से प्रभावित किया है। सोशल मीडिया का परिवर्तनकारी प्रभाव 2014 के बाद लगातार बढ़ा है। फेसबुक, व्हाट्सएप, ट्विटर और यूट्यूब जैसे प्लेटफॉर्म चुनावी रणनीतियों का केंद्र बन गए हैस सोशल मीडिया ने राजनीतिक दलों को डेटा-आधारित लक्षित प्रचार सक्षम किया, जिससे युवा मतदाताओं की भागीदारी बढ़ी। इसने वायरल कंटेंट और ट्रेंड्स छवि निर्माण में सहायता प्रदान की है जिसके उदाहरण उम जवव आन्दोलन, किसान आंदोलन, नागरिकता संशोधन अधिनियम विरोध, तीन तलाक, वक्फ कानून आदि है।

सोशल मीडिया आज भारतीय राजनीति, चुनावी रणनीतियों, राजनीतिक प्रचार और जनमत निर्माण का एक शक्तिशाली माध्यम बन चुका है स साथ ही साथ सोशल मीडिया के नकारात्मक प्रभाव भी मतदान व्यवहार पर पड़ा है जैसे कि फेक न्यूज, दुष्प्रचार, आंकड़ों का गलत प्रयोग ने।

चुनावी घोषणा पत्र का मतदान व्यवहार पर प्रभाव-

भारत में चुनावी घोषणा पत्र मतदान व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारकों में से एक महत्वपूर्ण है। घोषणा पत्र मतदाताओं को यह बताते हैं कि यदि पार्टी सत्ता में आती है तो वह क्या करेगी और कौन सी नीतियां लागू करेगी। यह मतदाताओं को दलों के विचारों और दृष्टिकोणों को समझने में मदद करता है, जिससे वे एक सूचित निर्णय ले पाते हैं। राजनीतिक दलों के घोषणा पत्र मतदान व्यवहार को कई तरीकों से प्रभावित करते हैं, लेकिन यह प्रभाव जटिल है और विभिन्न अन्य कारकों पर भी निर्भर करता है। घोषणा पत्र मतदाताओं को आकर्षित करने और चुनाव जीतने के लिए एक महत्वपूर्ण उपकरण के रूप में कार्य करते हैं। विभिन्न अध्ययनों से पता चलता है कि घोषणा पत्र जाति, धर्म, स्थानीय मुद्दों और वर्तमान घटनाओं जैसे कारकों के साथ जुड़कर मतदाताओं को आकर्षित करता है। अनेकों उदाहरण है जिससे स्पष्ट होता है इसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण तमिलनाडु विधानसभा चुनावों (2011 और 2016) में AIADMK के घोषणा पत्र है जिसमें शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि और गरीबी उन्मूलन जैसे वादों से मतदाताओं को प्रभावित किया गया फलस्वरूप पार्टी को भारी जीत मिली।अन्य उदाहरण में दिल्ली विधानसभा चुनाव से लिया जा सकता है जब वर्ष 2020 में आम पार्टी की जीत में चुनावी घोषणा पत्र ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सामान्यत: ये वादे जाति-आधारित समुदायों (SC/ST), अल्पसंख्यकों और स्थानीय मुद्दों को लक्षित करते है, जो मतदान व्यवहार के प्रमुख निर्धारक हैं। लैंगिक आधार पर अध्ययन बताते हैं कि महिलाएं और पुरुष घोषणा पत्र के विशिष्ट वादों (जैसे रोजगार, शिक्षा) से प्रभावित होते हैं। कई विश्लेषकों के अनुसार, घोषणा पत्रों का प्रभाव सीमित रहता है क्योंकि अधिकांश घोषणा पत्र औपचारिकता बनकर रह जाते हैं। चुनावी घोषणा पत्र का मतदान व्यवहार पर प्रभाव इतना गहरा है कि अब तो निर्दलीय उम्मीदवार भी अपना घोषणा पत्र द्वारा, अपने जितने के बाद किए जाने वाले, कार्यों की घोषणा करके मतदाताओं को आकर्षित करने का प्रयास करते है।

मतदान व्यवहार पर धन का प्रभाव:

भारत में धन का मतदान व्यवहार पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है, खासकर गरीब मतदाताओं पर वोट खरीदने के रूप में। कुछ क्षेत्रों में मतदाताओं को सीधे नकद, शराब, या अन्य सामानों के रूप में प्रलोभन दिए जाते हैं। यह व्यवहार गरीब और वंचित मतदाताओं के मतदान व्यवहार को विशेष रूप से प्रभावित करता है। राजनीतिक दल और उम्मीदवार चुनावों में भारी धन खर्च करते हैं, जिसमें वोटरों को नकद, शराब या सामान बांटना शामिल है। 2024 लोकसभा चुनावों में दलों का व्यय 1 लाख करोड़ रुपये के आसपास था। यद्यपि वोट खरीदना हमेशा सफल नहीं होता क्योंकि हाल के शोध से पता चलता है कि 80% कार्यकर्ता मानते हैं कि कैश कम प्रभावी है। 2014 चुनावों में एंटी-वोट बाइंग रेडियो कैंपेन ने वोट-खरीदने वाली पार्टियों के वोट शेयर को 3.5-7.1% घटा दिया। प्रतिस्पर्धा बढ़ने से पार्टियां अनिश्चित रहती हैं और धन बांटने वाले कार्यकर्ता खुद पैसा रख लेते हैं। हालांकि, शोध बताते हैं कि यह प्रभाव सीमित और घटता जा रहा है, क्योंकि कई मतदाता पैसे लेने के बाद भी वादे पर खरे नहीं उतरते।

चुनाव आयोग (ECI) द्वारा व्यय सीमाएं निर्धारित की जाती हैं और प्रवर्तन एजेंसियां अवैध धन प्रवाह को रोकने की कोशिश करती हैं, लेकिन एसोसिएशन फॉर डेमोक्रेटिक रिफॉर्म्स (ADR) जैसी संस्थाओं की रिपोर्ट बताती हैं कि इन प्रयासों की सफलता सीमित रही है। 2024 के लोकसभा चुनावों में भी पार्टियों द्वारा हजारों करोड़ रुपये खर्च किए गए, जिसमें एक बड़ा हिस्सा चुनाव प्रचार पर खर्च हुआ।

भारतीय मतदान व्यवहार में शीर्ष नेताओं की भूमिका:

भारतीय लोकतंत्र में मतदान व्यवहार को प्रभावित करने वाले अनेक कारक हैं, जिनमें शीर्ष नेताओं (Top Leaders) की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है। भारत जैसा विविधतापूर्ण देश, जहाँ साक्षरता, सामाजिक संरचना और राजनीतिक चेतना में भिन्नता है, वहाँ नेताओं का व्यक्तित्व और छवि मतदाताओं पर गहरा प्रभाव डालती है। पूरे स्वाधीनता संघर्ष प्रकरण का तथा आजाद भारत के विगत 60 वर्षों के इतिहास का तथ्यावलोकन करने से यह स्पष्ट जानकारी होती है की करिश्मावादी व्यक्तित्व

वाले नेताओं द्वारा मतदाताओं के मतदान व्यवहार को अपनी पार्टी के साथ बांध कर रखने में कितनी कारगर भूमिका निभाई गई है। इस राजनीतिक कारक के प्रभाव का इस्तेमाल राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय दोनों दलों के नेताओं द्वारा किया जाता है। भारत के राजनीतिक परिदृश्य में राष्ट्रीय स्तर के करिश्मा वादी नेताओं में पंडित नेहरू, महात्मा गांधी और वर्तमान में नरेंद्र मोदी आदि का नाम शुमार है और क्षेत्रीय स्तर के करिश्मा वादी नेताओं में दक्षिण के एन. टी.रामा राव, जयललिता, महाराष्ट्र के बाल ठाकरे उत्तर भारत में बिहार के लालू प्रसाद यादव, नीतीश कुमार, उत्तर प्रदेश में मायावती एवं मुलायम सिंह यादव आदि के नाम प्रमुख है।

राष्ट्रीय स्तर पर शीर्ष नेता पार्टी का चेहरा होते हैं। उनकी लोकप्रियता या अलोकप्रियता सीधे पार्टी के मत प्रतिशत को प्रभावित करती है। कई चुनावों में "नेतृत्व आधारित मतदान" (Leader-centric voting) देखा जाता है। शीर्ष नेताओं का व्यक्तित्व, भाषण शैली और करिश्मा मतदाताओं को आकर्षित करता है। कई बार मतदाता पार्टी की नीतियों से अधिक नेता की छवि देखकर वोट देते हैं। जैसे- "मजबूत नेता", "ईमानदार नेता" या "विकास पुरुष" की छवि। शीर्ष नेता अपने विकास मॉडल, विचारधारा और नीतिगत वादों के माध्यम से मतदाताओं को प्रभावित करते हैं। आर्थिक विकास, राष्ट्रीय सुरक्षा, सामाजिक न्याय जैसे मुद्दों पर उनका रुख मतदान निर्णय को दिशा देता है। कई नेता राष्ट्रवाद, पहचान, संस्कृति या ऐतिहासिक प्रतीकों के माध्यम से भावनात्मक जुड़ाव बनाते हैं, जो मतदान व्यवहार को प्रभावित करता है। कभी-कभी मतदाता स्थानीय उम्मीदवार की बजाय शीर्ष नेता के नाम पर वोट देते हैं। इसे अक्सर "लहर (Wave)" कहा जाता है, जहाँ शीर्ष नेता का प्रभाव क्षेत्रीय कारकों पर भारी पड़ता है।

निष्कर्ष

लोकतंत्र के संबंध में अब्राहम लिंकन का विचार और दर्शन लोकतंत्र को जनता द्वारा और जनता के लिए शासन के रूप में वर्णित करता है जिसे मतदान द्वारा ही वास्तविक रूप दिया जा सकता है। स्वस्थ लोकतंत्र तथा एक उत्तरदाई सरकार की स्थापना के लिए चुनाव आवश्यक है किंतु साथ ही या समझने की भी आवश्यकता है कि समय-समय पर केवल चुनाव करवाना ही पर्याप्त नहीं है यदि भारत के लोकतंत्र से व्यापक सामाजिक अपेक्षाओं को साकार करना है तो भारत में राजनीतिक व्यवस्था के सुधार द्वारा अंतर निहित लोकतांत्रिक नींव को सुदृढ़ करना होगा और यह सुदृढ़ होगा मतदाताओं के मतदान व्यवहार के गहराई से विश्लेषण से स भारतीय मतदान व्यवहार के विषय में निश्चित प्रवृत्तियां खोजना एक व्यावहारिक स्थिति नहीं है। समय एवं बदलती परिस्थितियों ने न सिर्फ देश की आर्थिक और समाजित स्थितियों को ही प्रवर्तित किया है साथ ही मतदाताओं को मतव्यवहार को भी और यह परिवर्तन निरंतर जारी है।

मतदान व्यवहार के निर्धारक तत्व मतदाताओं के वोटिंग निर्णयों को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक हैं, जो सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक आयामों से जुड़े होते हैं। ये तत्व भारत जैसे विविधतापूर्ण लोकतंत्र में विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं, जहां जाति, धर्म और क्षेत्रीय मुद्दे प्रमुख भूमिका निभाते हैं। प्रमुख सामाजिक तत्वजाति भारत में मतदान व्यवहार का सबसे मजबूत निर्धारक है, क्योंकि मतदाता अक्सर अपनी जातिगत पहचान के आधार पर उम्मीदवार या दल का चयन करते हैं। धर्म भी प्रभावशाली है, जहां धार्मिक समुदाय अपने हितों की आर्थिक रक्षा के लिए एकजुट होकर वोट देते हैं। इसके अलावा, भाषा, क्षेत्रवाद और लिंग जैसे कारक मतदाताओं की प्राथमिकताओं को आकार देते हैं। आर्थिक स्थिति मतदान को प्रभावित करती है, संपन्न मतदाता अधिक सक्रिय होते हैं, जबकि गरीब दिहाड़ी मजदूर दैनिक आय के कारण मतदान छोड़ सकते हैं। शिक्षित मतदाता हित-आधारित निर्णय लेते हैं, जबकि अशिक्षित भावनात्मक अपीलों पर निर्भर रहते हैं। राजनीतिक दल, नेतृत्व की छवि और स्थिरता की चाह मतदान व्यवहार को निर्देशित करते हैं। मतदाता अक्सर सक्षम नेताओं या स्थिर सरकार देने वाले दलों को प्राथमिकता देते हैं। सत्तारूढ़ दल का प्रदर्शन (जैसे भ्रष्टाचार या विकास) असंतोष पैदा कर विपक्ष को लाभ पहुंचाता है। समसामयिक मुद्दे, राष्ट्रीय एवं स्थानीय मुद्दे जैसे महंगाई, बेरोजगारी, अपराध और कानून-व्यवस्था मतदाताओं को प्रभावित करते हैं। ये मुद्दे प्रत्यक्ष रूप से किसी दल या उम्मीदवार के पक्ष-विपक्ष में वोटिंग को प्रेरित करते हैं। आधुनिक समय में सोशल मीडिया भी इन मुद्दों को तेजी से फैलाकर व्यवहार बदल रहा है। ये तत्व परस्पर जुड़े होते हैं और चुनाव-विशेष परिस्थितियों के अनुसार बदलते रहते हैं, जिससे मतदान व्यवहार गतिशील बनता है। कुल मिलाकर, भारत में ये निर्धारक लोकतंत्र की विविधता को प्रतिबिंबित करते हैं।

संदर्भ सूची:

1. शर्मा, ब्रजकिशोर, 'भारत का संविधान: एक परिचय' छटा संस्करण 2009 पी.एच. आई. लर्निंग पृष्ठ सं, 338; 341 ।
2. कोठारी, रजनी 'कास्ट पॉलिटिक्स इन इंडिया', ओरिएंट लेंगमैन, दिल्ली पृष्ठ सं 70;75।
3. कुमार, संजय(2013), 'भारत में मतदान व्यवहार: अध्ययन का इतिहास और उभरती चुनौतियां', प्रतिमान, 1, पीपी 321;345।
4. रावलोत, डॉ. प्रेमसिंह और सुश्री कुसुम लता पुरोहित, 'राजनीति में मतदान व्यवहार का स्वरूप', इंटरनेशनल जर्नल ऑफ हिन्दी रिसर्च, वैल्यू 7, इश्यू.4,2021 पृष्ठ सं: 35;77
5. कुमारी मिथिलेश, 'भारत में चुनाव और मतदान व्यवहार', शृंखला एक शोधपरक वैचारिक पत्रिका, वैल्यू: 5, इश्यू: 4, दिसंबर 2017.
6. मंडल, ललन कुमार 'भारत में मतदान व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारकों का विश्लेषणात्मक अध्ययन', IJCRT, वॉल्यूम 11, इश्यू मार्च 23, क 23-29.
7. गुप्ता, ललित कुमार 'सोशल मीडिया एवं मतदान व्यवहार: प्रभाव एवं चुनौतियां, I E R J, vol 11, इश्यू:4, अप्रैल 25 पृष्ठ 129;134।
8. पाण्डेय, डॉ. संजय, भारत में मतदान व्यवहार के निर्धारक, I J N R D, vol 10, इश्यू 3, मार्च 2025, पृष्ठ 524;538।
9. दीवान, डॉ.एस.एस., 'भारतीय राजनीति एवं मतदान व्यवहार', I E R J, vol 9, इश्यू 7, जुलाई 23, पृष्ठ 63;64।
10. शर्मा, डी. आर., भारतीय शासन और राजनीति, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2023।

मृणाल पाण्डे के साहित्य में नारी चेतना की अभिव्यक्ति

कु० जया पाण्डेय

शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, दिग्विजयनाथ स्तानकोत्तर महाविद्यालय, गोरखपुर

सारांश

हिन्दी साहित्य में महिला साहित्यकारों की बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका रही है। मृणाल पाण्डे उन महिला साहित्यकारों में अपना एक विशेष स्थान रखती है। मृणाल पाण्डे की रचनाओं में स्त्री जीवन के प्रत्येक पहलु पर प्रकाश डाला गया है।

इनकी रचनाओं में हर वर्ग की स्त्रियों के संघर्षों का वर्णन हुआ है। इनकी स्त्रियाँ जहाँ एक तरफ हर प्रकार के शोषण का शिकार हो रही है वहीं दूसरी ओर इस शोषण के प्रति उनमें विद्रोह की भावना भी जाग रही है। इनकी रचनाओं में स्त्री-अस्तित्व सामाजिक असमानता, पितृसत्ता की बिडंबनाएँ तथा स्त्री की आत्म-सम्मान का संघर्ष अत्यंत गहराई से उभरता है। वहीं दूसरी तरफ नारी चेतना की अभिव्यक्ति विभिन्न रूपों में देखने को मिलती है। इनका साहित्य केवल स्त्री-संवेदना ही नहीं, बल्कि स्त्री की सामाजिक ख्र सांस्कृतिक चेतना और परिवर्तन की आकांक्षा को भी स्वर देता है।

मुख्य शब्द -मृणाल पाण्डे, नारी चेतना, अभिव्यक्ति, आत्मसम्मान, स्वतंत्रता, संघर्ष, पितृसत्तात्मक

हिन्दी साहित्य में स्त्री की उपस्थिति प्रारम्भ से रही है, परन्तु लम्बे समय तक वह केवल साहित्य में 'विषय' के रूप में वर्णित रही 'वक्ता' के रूप में नहीं। पुरुष साहित्यकारों द्वारा स्त्री जीवन की समस्याओं और उनके संघर्षों को अपने अनुभवों के माध्यम से व्यक्त किया गया। स्वतंत्रता आन्दोलन एवं आधुनिक शिक्षा के प्रभाव से स्त्रियों ने स्वयं को अभिव्यक्ति करना प्रारम्भ किया, स्त्री अब विचार नहीं विचारक के रूप में उभरी।

बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में स्त्री विमर्श और नारी चेतना जिस रूप में साहित्य में प्रवेश किया वह अभूतपूर्व है। साहित्य में स्त्रियों की स्थिति, उनके संघर्ष और उनके प्रति होने वाले अत्याचारों तथा उसके विरोध में जो चेतना अभिव्यक्त हुई उसे ही 'नारी चेतना' का नाम दिया गया। नारी को अपने अधिकारों के प्रति सजग करना, अपने आत्मसम्मान की रक्षा के लिए प्रेरित करना एवं अपने कर्तव्यों के पालन हेतु जो चेतना महिला साहित्यकारों ने अपनी रचनाओं में व्यक्त किया उसे ही साहित्य में नारी चेतना की अभिव्यक्ति कहा गया।

आधुनिक काल में स्त्रियों के जीवन मूल्यों में व्यापक परिवर्तन दिखायी देते हैं। आधुनिक महिला उपन्यासकारों ने अपनी रचनाओं में इसी परिवर्तन को व्यापक रूप से अपनी स्त्री पात्रों के माध्यम से व्यक्त किया है। परंपरागत एवं आधुनिक जीवनमूल्यों के बीच संघर्ष करती हुई स्त्री की मानसिक स्थिति का चित्रण बहुत ही मनोवैज्ञानिक ढंग से किया गया है। 'मृणाल पाण्डे' का नाम उन लेखिकाओं में प्रमुख रूप से लिया जाता है जिसके साहित्य में सामाजिक धार्मिक, मानसिक, पारिवारिक एवं शारीरिक शोषण से पीड़ित स्त्री के संघर्ष को प्रमुखता से स्थान दिया गया है। मृणाल पाण्डे के साहित्य में नारी चेतना केवल विरोध का स्वर नहीं, बल्कि आत्मसाक्षात्कार और आत्मसम्मान की पहचान है। मृणाल जी ने अपने साहित्य में कामकाजी नारी की समस्याओं, स्त्री पुरुष के बदलते सम्बन्ध, स्त्री की तनावग्रस्त मानसिकता एवं मुक्ति की कामना को बड़ी सूक्ष्मता से अंकित किया है।

मृणाल पाण्डे एक सफल उपन्यासकार कहानीकार, नाटककार, निबन्धकार के साथ एक सफल पत्रकार भी हैं। मृणाल पाण्डे के साहित्य में स्त्री केवल संवेदना का प्रतीक बनकर नहीं रह गयी है अपितु वह संघर्ष, आत्मबोध और स्वतंत्र अस्तित्व के रूप में उभरी है। मृणाल जी ने अपने साहित्य नारी जीवन की तमाम विशिष्टताओं और जटिलताओं को बड़ी बारीकी से प्रस्तुत किया है। मृणाल पाण्डे ने अपने साहित्य में स्त्री को पुरुष निर्भर, अस्तित्व से मुक्त कर आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर दिखाया। इनकी स्त्रियाँ अपने भीतर की अस्मिता को पहचानती हैं और समाज द्वारा निर्मित सीमाओं को चुनौती देती है।

स्त्री चिंतन मृणाल पाण्डे के साहित्य का केन्द्र बिन्दु है। स्त्री चिंतन के सन्दर्भ में मृणाल जी लिखती हैं- अकसर हितैषीगण और मित्र मुझसे कहते हैं कि अपनी लेखनी और शोध का विषय प्राय: स्त्रियों की स्थिति और समस्याओं तक ही सीमित रखकर मैं अपने लेखक और शोध दोनों ही क्षेत्रों के साथ अन्याय कर रही हूँ। इन सुधीजन को यह सहज-सी बात न जाने क्यों नजर नहीं आती कि स्त्रियों की स्थिति, समस्याओं और उनके दिलों की नाल तो हमेशा से सीधे और बड़े स्पष्ट रूप में पूरे मानव-जगत और कार्य-व्यापारों के मूल से जुड़ी हुई है। स्त्रियाँ और उनकी समस्याएँ किसी और लोक की या चिन्तन जगत की उपज नहीं हैं और चूँकि दुनिया भर में सर्वहारा वर्ग का अधिकांश हिस्सा स्त्रियों और बच्चों का ही है, अत: उसकी परख किए बिना विश्व में राजनीतिक, आर्थिक या समाजशास्त्रीय किसी भी क्षेत्र के असन्तुलन व विश्व गुरुओं का ब्यौर नहीं बिठाया जा सकेगा। मैं ही नहीं, किसी भी ऐसे लेखक या लेखिका के लिए, जो किसी भी देश और समाज की राजनीति, अर्थशास्त्र, कला अथवा सामाजिक ढाँचे को समझना ख़ समझाना चाहें, स्त्रियों की इस विशाल दुनिया से सीधा और ईमानदार साक्षात्कार करना एक अनिवार्य और पहली शर्त है।"[1]

मृणाल पाण्डे के कथा साहित्य में नारी चेतना बहुआयामी स्वरूप में अभिव्यक्त हुई है। मृणाल पाण्डे की नायिकाएँ आत्मसम्मान को सर्वोपरि मानती हैं, वे स्वतंत्रता के लिए प्रयासरत हैं। वे चाहती हैं कि वे आत्मसम्मान के साथ पूरी स्वतंत्रता के साथ जीवन यापन करें 'रास्तों में भटकते हुए' उपन्यास में मंजरी की माँ का स्वाभिमान अपने पुत्र के आगे हाथ फैलाने अथवा साहचर्य की याचना से रोकता है-

माँ के घर के पर्दे भले ही सस्ती छींट के हो, वह उन्हे नियमित रूप से धोकर इस्तरी करवाने भेजती है फिर छल्लों को मजबूती से दुरुस्त करके उनके टाँगा जाता है। बाहर सड़क से घर की खिड़की कोई देखे तो भीतर बैठी माँ के हाड़ ख़ माँस कतरते उस गर्वीले द्रारिदय का कोई सुरग नहीं पा सकता।"[2]

मृणाल पाण्डे की नायिकाएँ आर्थिक रूप से आत्मनिर्भरता चाहती हैं। उनका स्वाभिमान पुरुषों पर आर्थिक रूप से आश्रित होने को स्वीकृति नहीं देता। स्त्री जीवन की विसंगतियाँ, उनकी आन्तरिक पीड़ा तथा महिला पत्रकारों के साथ होने वाले शोषण को मृणाल पाण्डे ने अपने साहित्य में मुख्य रूप से स्थान दिया है। मृणाल पाण्डे स्वयं एक पत्रकार हैं। इनके उपन्यास 'रास्तों पर भटकते हुए' की नायिका मंजरी भी एक पत्रकार है। मंजरी भी शोषण का शिकार होती है। वह पत्रकारिता के क्षेत्र में व्याप्त भ्रष्टाचार के विरूद्ध है। अन्तत: वह पत्रकारिता भी छोड़ देती है।

मृणाल पाण्डे के साहित्य में पितृसत्ता के विरूद्ध प्रतिरोध की चेतना की अभिव्यक्ति हुई है। इनकी नायिकाएँ पितृसत्तात्मक समाज का विरोध करते हुए समानता की माँग करती हैं। स्त्रियों ने हर स्तर पर पितृसत्तात्मक समाज का विरोध किया है। चाहें माँ द्वारा अपने बेटा का पत्नी द्वारा अपने पति का प्रेमिका द्वारा प्रेमी का हर एक स्त्री ने पुरुष का प्रतिरोध किया है। विरोध का स्वर बहुत ऊँचा तो नहीं है फिर भी उसके लक्ष्य में चूक नहीं है। मंजरी कहती हैं कि ख़ "सिलबिले किस्म के स्नेह प्रदर्शन के लिए मेरे जीवन में जगह नहीं रही। ..... बंटी की माँ जैसी जटिलता भरी जिन्दगी और कराह भरे प्रेम-व्यापारों के प्रति मुझमें कोई उत्सुकता या करूणा नहीं उपजती थी। औरतों की ऐसी कमजोरी जो उन्हें अपने ही आततायी के चरण थामकर लौटने और उसकी अनुनय विनय करने के बाध्य करे देखकर, मुझे उबकाई आती है। पहले घर से भागकर मूर्ख किस्म का प्रेम करेंगी, फिर दोगला प्रेमी दगा दे जाए और एक अदद हरामी औलाद गोद में आन पड़ी, तो सिर कटी मुर्गी की तरह दड़बे के इस कोने तक मौत छींटती हुई दौड़ेगी।"[3]

मृणाल पाण्डे ने अपनी कहानियों में विधवा समस्या सतीप्रथा अनमेल विवाह, बाल विवाह, दहेज प्रथा, यौन ख़ शोषण आदि समस्याओं को उठाया है। अपनी कहानियों द्वारा मृणाल पाण्डे ने पुरुषवादी सोच का पूरी तरह से विरोध किया है। इनकी नायिकाएँ स्वयं के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए जद्दोजहद करती हुई दिखायी देती हैं। इनकी कहानी में जहाँ एक ओर स्वयं को केवल पुरुष के भोग और घर परिवार तथा बच्चे पैदा करने की मशीन समझे जाने वाली स्त्रियों का चित्रण है जो इसका विरोध नहीं करती हैं। वहीं दूसरी ओर ऐसी स्त्रियों का भी चित्रण मिलता है जिनमें विद्रोह का स्वर मिलता है जो स्वयं को मशीन न समझकर एक स्वतंत्र अस्तित्व रखने वाला प्राणी समझती हैं।

मृणाल पाण्डे ने अपनी निबन्धों में की स्त्रियों की वर्तमान स्थिति का बखूबी वर्णन किया है।

मृणाल पाण्डे के निबन्धों में स्त्री जीवन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। कैसे स्त्री को प्रताड़ित और शोषित किया जाता है। आर्थिक व राजनीतिक व सामाजिक विषमताओं का सामना करती है। हर स्तर पर उन्हें संघर्ष करना पड़ता

है। मृणाल पाण्डे ने उनके संघर्ष को आवाज दी है। मृणाल पाण्डे स्त्री स्वतंत्रता और लैंगिक बराबरी के लिए सदैव आवाज उठाती हैं उन्हें विश्वास है कि 'एक दिन स्त्रियों की जीत पक्की है।'[4]

सन्दर्भ सूची -

1. पाण्डे, मृणाल : स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 2019, पृष्ठ संख्या 5 (भूमिका से)
2. पाण्डे, मृणाल :रास्ते पर भटकते हुए. राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 43
3. पाण्डे, मृणाल : रास्ते पर भटकते हुए, राधाकृष्ण प्रकाशन,नई दिल्ली 2010, पृष्ठ संख्या 102
4. पाण्डे, मृणाल : स्त्री लम्बा सफर, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली 2015, पृष्ठ संख्या 128

सन्दर्भ ग्रन्थ -

1. स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक ख्र मृणाल पाण्डे
2. रास्ते पर भटकते हुए ख्र मृणाल पाण्डे
3. रास्ते पर भटकते हुए ख्र मृणाल पाण्डे
4. स्त्री लम्बा सफर ख्र मृणाल पाण्डे
5. परिधि पर स्त्री ख्र मृणाल पाण्डे
6. स्त्री : देह की राजनीति से देश की राजनीति तक ख्र मृणाल पाण्डेय
7. जहाँ औरतें गढ़ी जाती हैं ख्र मृणाल पाण्डे
8. पटरंग पुराण ख्र मृणाल पाण्डे
9. ध्वनियों के आलोक में स्त्री ख्र मृणाल पाण्डे

रीतिकाल की प्रमुख प्रवृतियां

डॉ० अभिनय कुमार

हिन्दी विभाग, सहायक प्राध्यापक, रामेश्वर महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर

हिन्दी साहित्य के इतिहास में रीतिकाल का क्रम स्पष्ट करते हुए प्रख्यात प्रगतिवादी कवि त्रिलोचन शास्त्री ने लिखा है ''रीतियुग उसी मध्ययुग का उत्तरार्द्ध है जिसका पूर्वार्द्ध सामाजिक चेतना से संपन्न और कर्तव्य की उदासीकृत भक्ति रचनाओं वाला युग था और उसके बाद वह भारतेन्दु युग आता है जो नए जागरण का पहला प्रभाव था। इस प्रकार काव्य की दृष्टि से रीतिकाल दो उजालों के बीच एक अंधेरे का युग था। जिस तरह सिद्धि-योग और वीरगाथाओं की परंपरा के बाद भक्तिधारा आकस्मिक तौर पर नहीं, बल्कि कुछ ठोस सामाजिक कारणों से प्रवाहित हुई थी फिर भी उसमें विद्वानों को आश्चर्यचकित किया, उसी तरह भक्तिकाव्य के प्रकाशपुंज के बाद रीतिकाव्य का अंधकार भी हठात् विस्मित करता है फिर भी उसकी एक परंपरा पहले से विद्यमान थी और उसके उभार के ठोस सामाजिक कारण भी थे।

रीतिकाल से पूर्व भक्तियुग में भी रीति की एक क्षीण धारा साफ दिखाई पड़ती है। कृपाराम की ''हिततरंगिणी'' की प्राचीनता पर हजारी प्रसाद द्विवेदी ने प्रश्नचिन्ह् लगा दिया है अतः उसे छोड़ दिया जाय तो भी इस सिलसिले में बलभद्र मिश्र के ''नखशिख'', मोहनलाल मिश्र के ''श्रृंगार-सागर'', करनेस के कर्णाभरण ''श्रुतिमरण और भूपभूषण, पुहकर के रसरतन, सुंदर के सुंदरसिंगार, मुबारक के अलंकशतक'' आदि कृतियों की चर्चा की जा सकती है। केशवदास ने तो 'रसिकप्रिया' और कविप्रिया में विस्तृत काव्यांश-विवेचन और उदाहरणों के तौर पर अपनी रचनाएं प्रस्तुत करके रीतिकाव्य की दागवेल ही डाल दी थी फिर भी रीति कवियों ने जिस सांस्कृतिक सामग्री का उपयोग किया, वह इन कृतियों से भी पहले विद्यमान थी। रीतिकाव्य का पहला सांस्कृतिक स्त्रोत है नाट्यशास्त्र का नायिका भेद, दूसरा काव्यशास्त्र का अलंकार-विवेचन, और तीसरा वात्स्यायन का कामसूत्र। इसके अतिरिक्त कृष्णभक्ति काव्य के अंतर्विरोधों पर भी ध्यान देना होगा। 'सूरसागर' में श्रृंगार के अनेक गुढ्य प्रसंग तो हैं ही, राधाकृष्ण का मानमनुहार, अभिसार और दुती प्रसंग भी है। कहीं-कहीं तो सूर के 'श्याम' और बिहारी के लाल दोनों एक रंग में रंग उठे हैं। उदाहरण के लिए देखिए-

''अंजन अधर, कपोलनि बंदन, पीक पलक छवि देखि डरी।
'सूर' श्याम रतिचिन्ह दिखावन मेरे आए भलें हरी।''

''पलक पीक, अंजनुअधर, धरे महावरू भाल।
आजु मिले सुभली करी, भले बने हो लाल॥'' (बिहारी)

कवि नंददास ने भी राधाकृष्ण लीला के जहां-तहां संकेत देते हुए नायिका भेद विषयक 'रसमंजरी' की रचना की। ये तमाम सांस्कृतिक परंपराएं, स्त्रोत और अंतर्विरोध रीतियुग से पूर्व क्यों प्रभावशाली न हो सके और क्या कारण है कि अठारहवीं शताब्दी में साहित्य की मुख्य प्रवृति भक्ति न रहकर रीति हो गई। सूरसागर और बिहारी सतसई, नंददास और देव के बीच अंतराल क्यों है? भक्ति आंदोलन एक जन-आंदोलन की सांस्कृतिक अभिव्यक्ति था, इसीलिए जिस प्रकार उस युग के प्रायः सभी संघर्षों और विद्रोहो की दिशा भक्ति आंदोलन की ओर मुड़ जाती थी उसी प्रकार उस युग के लोकगीत प्रेमाख्यान, राजस्तुति आदि सभी काव्य-परंपराएं भक्ति के रंग में रंग उठी। जब तक भक्ति का प्रवाह सशक्त था तब तक दरबारी रीति परंपरा उभरने नहीं पाये, उसका अस्तित्व भर कायम था। यह सब इसलिए हो सका क्योंकि भक्तिधारा एक जन-आंदोलन से जुड़ी हुई थी। जैसा कि हम पिछले अध्याय में देख चुके हैं, मध्यकाल की ऐतिहासिक सीमाओं के कारण इस आंदोलन को भी सीमाबद्ध होना पड़ा। पूंजीवाद के पूर्वगामी तत्त्व अभी इतने विकसित नहीं हुए थे कि वे यूरोप की तरह यहां भी सामंतवाद के विरुद्ध फ्रांस की राज्यक्रांति जैसी निर्णायक लड़ाई चला सकें। उसका कोई राजनीतिक रूप से सचेतन नेतृत्व न होने के कारण यह लाजिमी था कि भक्ति आंदोलन असफल हो। महाराष्ट्र और पंजाब में जो सशक्त जातीय संगठन कायम हुआ, आगे चलकर उस पर नई सामंती शक्तियों ने अधिकार कर लिया और हिन्दी भक्तिधारा का क्या हुआ? निर्गुण संतों के नाम पर जो पंथ चले उनमें

मठों का चक्कर चल पड़ा। कबीर पंथ में सोने, उठने, दातून करने, तूंबा धोने आदि के मंत्र जपे जाने लगे। द्विवेदी जी के शब्दों में, जिस धर्मवीर ने पीर, पैगंबर, औलिया आदि के भजन-पूजन का निषेध किया था, उसी की पूजा चल पड़ी, जिस महापुरुष ने संस्कृत को कूपजल कहकर भाषा के बहते नीर को मान दिया था उसी की स्तुति में आगे चलकर संस्कृत भाषा में अनेक स्त्रोत लिखे गए और जिसने बाह्याचारों के जंजाल को भस्म कर डालने के लिए अग्नि तुल्य वाणियां कहीं, उसकी उन्हीं वाणियों से नाना बाह्याचारों की क्रियाएं संपन्न की जाने लगी। संत साहित्य में केवल निस्सार पहेली-बुझौवल और पृष्टपेषण शेष रह गया। क्रांतिकारी संत साहित्य की इस अधोगति पर अपनी तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए द्विवेदी जी ने लिखा है, ''अठारहवीं शताब्दी के संत कवियों में मतानुगतिकता की मात्रा बढ़ती गई और संप्रदाय-स्थापना की स्पर्धा उत्तरोत्तर बढ़ाव पर ही रही। जो संत काव्य जगत के समस्त आडंबरों को ध्वस्त करके सहज भगवत प्रेम का पथ प्रशस्त करने का व्रत लेकर चला था, वह अंत तक संप्रदायिक प्रतिद्वंद्विता, निरर्थक प्रहेलिका-क्रीड़ा और व्यर्थ के शब्द जाल का शिकार हो गया। अठारहवीं शताब्दी के अंत तक उसकी क्रांतिकारी भावना समाप्त हो गई और वह भी अन्य निहित स्वार्थ वाले मठों के समान अपने ही बनाए बंधनों में क्रमशः जकड़ता गया। जिन लोगों ने माया को ललकारने का साहस किया था उनके अनुयायी भाषा के घरोंदों में बंद हो गए। आखिरी खेमे के संतों में भक्तिभावना और धर्म बुद्धि कितनी मात्रा में थी, यह बता पाना कठिन है। पर सहज मार्ग पर पड़ी रहने वाली गंदगी को दूर करके सहज सत्य तक पहुंचने का मार्ग प्रशस्त करने के लिए जिस श्रेणी के साहसिक मनोभाव की आवश्यकता होती है वह क्रमशः क्षीण होता गया और इसीलिए वे ऐसे साहित्य की सृष्टि न कर सके जो मनुष्य को नया आलोक देता है और कठिनाईयों और विपत्तियों से जूझने की प्रेरणा देता है। यह साहित्य केवल शाब्दिक माया जाल प्रस्तुत करता है और मनुष्य की स्वतंत्र चिंतन शक्ति को अवरुद्ध करता है। कृष्ण भक्ति में भी राधा, गोपी आदि से जो कृष्ण की उपासना चल पड़ी वह यों ही नहीं। वल्लभ संप्रदाय में जो ''सेवा का मकान'' बांधा गया था, उसमें शुक्ल जी के अनुसार भोग तथा विलास की प्रभूत सामग्री के प्रदर्शन की प्रधानता रही। मंदिरों की प्रशंसा ''केसर की चक्कियां चले हैं'' कहकर होने लगी। भोग विलास के इस आकर्षण का प्रभाव सेवक-सेविकाओं पर कहां तक अच्छा पड़ सकता था। इसका प्रभाव यह पड़ा कि आगे चलकर भक्तगण कृष्ण को मधुर भाव से ही रिझाने में व्यस्त हो गए और धनुर्धर राम की वीर मूर्ति भी इस स्त्रैण रंग में रंग दी गई। एक पत्नी व्रत राम सरयू के तीर पर झाऊ वृक्ष की झाड़ी भीतर करने लगे रति धीर। सारांश यह है कि भक्तियुग में दरबारी रीतिकाव्य परंपरा के बीच विद्यमान थे लेकिन भक्ति के प्रतिकूल प्रभाव में वह अंकुरित भी न हो सके लेकिन जब ठोस सामाजिक कारणों से भक्ति आंदोलन असफल हो गया तो संस्कृति के क्षेत्र में सामंती प्रवृतियों ने जोर मारा। एक ओर स्वयं भक्तिकाव्य सामंती प्रवृतियों का शिकार हुआ और दूसरी ओर रीतिकाव्य के शीशमहल में दरबारी संस्कृति की रंगारंग छायाएं जगमगा उठी।

रीतिवाद की परंपरा

रीतिकवियों का भरण-पोषण न कबीर, रैदास आदि की तरह स्वयं के उत्पादक श्रम से होता था, न तुलसी-सूर की तरह जनता के बीच वे अपनी आजीविका के लिए छोटे-बड़े सामंतों पर आश्रित थे और वे उनके दरबारों में वैसे ही शोभा पाते थे, वैसे ही उनके मनोविनोद के साधन थे जैसे चित्रकार, संगीतकार आदि अन्य कलावंत सामंतों के मनोविनोद के लिए कवियों ने उसके अनुरूप सांस्कृतिक सामग्री जुटाई। द्विवेदी जी के शब्दों में, ''जिस प्रकार के मालिकों का मनोरंजन इन कवियों और कलावंतों को करना पड़ता था, उस वर्ग को संतुष्ट करने के लिए जिस प्रकार के जीवन से परिचित होना आवश्यक है। वह इन कवियों को प्रत्यक्ष रूप से ज्ञात नहीं था। उसके लिए उन्हें पुस्तकी विद्या की आवश्यकता थी। दो मूलों से ज्ञान प्राप्त हो सकता था—रति रहस्य आदि कामशास्त्रीय ग्रंथों से और दशरूपक, रसमंजरी आदि नायिका भेद के वर्णन करने वाले ग्रंथों से। फिर उकिृवैचित्य के लिए अलंकार शास्त्र के अन्य अंगों की भी उन्हें आवश्यकता थी। नायिका-भेद, रति-रहस्य के चित्र और अलंकार प्रदर्शन-रीतिकाव्य की ये प्रधान विशेषताएं हैं। इन साधनों से संपन्न होकर रीति कवियों ने जो श्रृंगारिक रचनाएं की उनके मूल में उनके आश्रयदाताओं की कुत्सित रूचि ही काम कर रही थी। आचार्य शुक्ल के शब्दों में, ''श्रृंगार के वर्णन को बहुतेरे कवियों ने अश्लीलता की सीमा तक पहुंचा दिया था। इसका कारण जनता की रुचि नहीं, आश्रयदाता राजा-महाराजाओं की रुचि थी जिनके लिए कर्मण्यता और वीरता का जीवन बहुत कम रह गया था।

प्राय: विद्वान रीतिकाव्य की अति शृंगारिकता का दोष मुसलमानों की विलास-प्रियता पर थोप देते हैं। डॉ. नगेन्द्र रीति काव्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि स्पष्ट करते हुए लिखते हैं–हिन्दु पदाक्रांत थे और मुसलमान विलास-जर्जर। लेकिन आगे बताते हैं कि जहांदार शाह की रखैल लालकुंवर ही सम्राट और अमीरों का जनता में अपमान नहीं करती थी बल्कि ऐसा ही व्यवहार राजपूताने के मारवाड़ नरेश विजयसिंह की पासबनी नाम की वेश्या भी उसके और उसके सामंतों के साथ करती थी। जाहिर है कि मुसलमान अमीरों के साथ-साथ हिन्दू सामंत भी विलास जर्जर थे। दीन प्रजा सर्वथा त्रस्त होकर त्राहि-त्राहि कर उठी थी। मजदूरों और कारीगरों को यों ही बेकार के लिए पकड़ लिया जाता था। उनकी मजदूरी अक्सर कोड़े से मिलती थी। निश्चय ही कोड़े खाने वाले कारीगरों-मजदूरों में मुसलमान भी थे। इसलिए विलास प्रियता को केवल मुसलमानों की थाती मान लेना उचित नहीं है। वस्तुस्थिति यह है कि रीतिकालीन कवियों के आश्रयदाताओं में हिन्दू और मुसलमान दोनों समुदायों के सामंत थे।

डॉ. नगेन्द्र शाहजहां के वैभव-विलास के सिलसिले में बनियर को उद्धृत किया है और देव और बिहारी की काव्य पंक्तियों से उसकी तुलना भी की है। बेगमों की बहुमूल्य पोशाकों, जवाहिरातों इत्र आदि का जिक्र किया है और बताया है कि ''रीतिकाव्य की वासकसरज्जाओं को इनसे सीधी प्रेरणा मिलती होगी। उन्होंने मुगल अंत:पुर की कूटनियों का जिक्र किया है और बताया है कि रीतिकाव्य की दुतियां बहुत कुछ इनका ही प्रतिबिम्ब है। दिल्ली दरबार का अनुकरण अन्य छोटे राजाओं, अमीरों, सामंतों के दरबारों में होने लगा। उनका सारा समय भोग विलास में बीतता था, जिसका विवरण नगेन्द्र जी के अनुसार, ''दबे और अन्य कवियों के अष्टयामों में अत्यंत स्पष्ट रूप से मिलता है।

यहां स्पष्ट है कि रीतिकाव्य का सामंती वर्ग आधार ही उसका नियामक था। लेकिन इस बात को एक किनारे रख डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं, घोर सामाजिक और राजनीतिक पतन के इस युग में जीवन बाह्य अभिव्यक्तियों से निराश होकर घर की चाहर-दीवारी में ही अपने को अभिव्यक्त कर सकता था–घर में इस समय न धर्माचरण था, न शास्त्र चिंतन, अतएव अभिव्यक्ति का एक ही माध्यम था–काम। बाह्य जीवन की असफलताओं से आहत मन नारी के अंगों में मुंह छिपाकर बिसुध-विभोर हो जाता है। यहां डॉ. नगेन्द्र ने सामंतों की कामुकता को पूरे युग की सामान्य प्रवृति कह दिया है। इस विश्लेषण पर टिप्पणी करते हुए डॉ. राम विलास शर्मा ने लिखा है,–''रीतिकालीन कवि शृंगार की शराब में गम गलत करने वाले कवियों में थे न उनका कामक्षेत्र घर की चाहरदीवारी तक सीमित था। डॉ. नगेन्द्र ने काम-वासना को जीवन की मूल प्रवृति मानकर इस विषय में ऋग्वेद और फ्रायड को एक करके और समूचे युग को निराशा और पतन का युग कहकर दरबारी कविता के सामंती वर्ग-आधार को छिपा दिया है, उन राजाओं-महाराजाओं को ''गुड कॉनडक्ट'' का सर्टिफिकेट दे दिया है जिनके लिए कर्मण्यता और वीरता का जीवन बहुत कम रह गया था।

संदर्भ

1. हिन्दी साहित्य का आदिकाल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, तृ. सं. 1961, वि. रा. प., पटना।
2. स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य, रामविलास शर्मा, प्र. सं. 1956, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी।
3. बिहारी सतसई (लाल चंद्रिका टीका से युक्त) सं. सुधाकर पाण्डेय, सं. 2038 वि., नागरी प्र. सभा, काशी।
4. नयी कविता और अस्तित्ववाद, राम विलास शर्मा, प्र. सं. 1978. राजकमल प्रकाशन।
5. जायसी ग्रंथावली, सं. रामचन्द्र शुक्ल, 14वां सं. सं. 2028 वि. ना. प्र. सं. काशी।

रेणु की आंचलिकता: यथार्थ, कल्पना और लोक का सृजनात्मक समन्वय

डॉ० प्रभात शर्मा

एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, श्यामलाल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय 110007

प्रस्तावना

हिन्दी कथा-साहित्य की विकास-यात्रा में सन् 1954 कोई सामान्य वर्ष नहीं, बल्कि एक ऐतिहासिक विभाजक रेखा की तरह है। यह वह संधिकाल था जब आजादी के ठीक बाद का भारतीय समाज 'मोहभंग' की पीड़ा से गुजर रहा था। प्रेमचंद युगीन 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' अपनी तमाम खूबियों के बावजूद एक घिसे-पिटे खांचे में बदलने लगा था। दूसरी ओर अज्ञेय और जैनेन्द्र का 'मनोविश्लेषणवाद' व्यक्ति के भीतरी कुंठित अंतर्मन की गुत्थियों में इतना उलझ गया था कि उसके लिए सामाजिक सरोकार गौण हो चले थे। इन दोनों विपरीत ध्रुवों स्थूल सामाजिकता और सूक्ष्म वैयक्तिकता के बीच भारतीय 'जनपदीय जीवन' और उसकी धड़कनें कहीं ओझल हो रही थीं।

ऐसे में फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास 'मैला आँचल' (1954) का प्रकाशन एक साहित्यिक विस्फोट की तरह हुआ। इसने न केवल हिन्दी उपन्यास की बनी-बनायी संरचना को ध्वस्त किया, बल्कि उसे महानगरों के ड्राइंग-रूमों से निकालकर बिहार के पूर्णिया जिले की धूल-भरी पगडंडियों पर ला खड़ा किया। रेणु का साहित्य महज एक अंचल विशेष की गाथा नहीं है, वह उस 'असली भारत' की खोज है जो आंकड़ों और सरकारी फाइलों से परे, अपनी पूरी विसंगतियों, राग-विराग और अदम्य जिजीविषा के साथ सांस लेता है। रेणु ने प्रगतिवादी आग्रहों और मनोविश्लेषणवादी जटिलताओं के बीच 'लोक' का वह रास्ता चुना, जहाँ यथार्थ और कल्पना का द्वंद्व नहीं, बल्कि एक सृजनात्मक समन्वय घटित होता है। उनका यह उपन्यास सिद्ध करता है कि बिहार के एक पिछड़े जिले के एक छोटे से भू-भाग 'मैरीगंज' के भीतर से संपूर्ण मानवता के सुख-दुःख, राष्ट्रीय चिंताएं और वैश्विक संवेदनाओं की परख की जा सकती है।

आंचलिकता: अर्थ और अवधारणा

'आंचलिकता' शब्द की जड़ें 'अंचल' शब्द में निहित हैं। सामान्यतः अंचल का अर्थ किसी प्रदेश के एक छोटे से भू-भाग अथवा हिस्से से होता है, लेकिन साहित्यिक संवेदना के स्तर पर, और विशेषकर रेणु के संदर्भ में, यह शब्द भूगोल से आगे बढ़कर 'माँ के आँचल' की स्मृति दिलाता है- जिसमें सुरक्षा, स्नेह, दूध और धूल की गंध, सभी कुछ एक साथ मौजूद होता है। वस्तुतः आंचलिकता का मूल अभिप्रेत है-किसी क्षेत्र विशेष को 'नायक' के पद पर प्रतिष्ठित करना। जब कोई रचनाकार किसी जनपद के रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज, अंधविश्वास, भाषा और लोकगीतों को इस तल्लीनता से उकेरता है कि वह स्थान पृष्ठभूमि न रहकर स्वयं कथा का मुख्य पात्र बन जाए, तो वह आंचलिक साहित्य कहलाता है।

डॉ. नगेन्द्र ने इसे परिभाषित करते हुए ठीक ही लिखा है कि आंचलिकता में "जनपद का जीवन अपने समस्त सुख-दुःख, आचार-विचार और विश्वासों के साथ मूर्त हो उठता है।"[1] रेणु के लिए यह आंचलिकता कोई शिल्पगत तकनीक भर नहीं थी, बल्कि यह उनके लिए एक नैतिक और रचनात्मक आग्रह था। 'मैला आँचल' की भूमिका में उनकी स्वीकारोक्ति उनके जीवन-दर्शन को स्पष्ट करती है: "यह है 'मैला आँचल', एक आंचलिक उपन्यास। कथानक है पूर्णिया। पूर्णिया-बिहार राज्य का एक जिला... इसमें फूल भी है, शूल भी; धूल भी है, गुलाब भी; कीचड़ भी है, चंदन भी; सुंदरता भी है, कुरूपता भी. .. मैं किसी से दामन बचाकर नहीं निकल पाया।"[2] यह कथन स्पष्ट करता है कि रेणु अंचल को केवल संवारना नहीं चाहते, बल्कि उसे उसकी सम्पूर्ण कुरूपता और सुंदरता के साथ, उसके संपूर्ण यथार्थ के साथ स्वीकारते हैं। डॉ. नामवर सिंह के शब्दों में कहें तो, आंचलिक उपन्यासों में 'अंचल साधन नहीं, साध्य होता है।' अर्थात् अंचल कथा को आगे बढ़ाने का उपकरण मात्र नहीं, बल्कि स्वयं कथा का केंद्रीय प्रयोजन बन जाता है।

हिन्दी औपन्यासिक साहित्य में आंचलिकता

यद्यपि 'मैला आँचल' को हिन्दी का प्रथम और सर्वाधिक प्रतिष्ठित आंचलिक उपन्यास होने का गौरव प्राप्त है, किन्तु आंचलिकता के बीज हिन्दी साहित्य की उर्वर भूमि में पहले से मौजूद थे। प्रेमचंद के 'गोदान' और 'रंगभूमि' में अवध और बनारस के ग्रामीण जीवन का जो गहरा रंग है, वह आंचलिकता के करीब है, लेकिन वहां समस्या और पात्र केंद्र में हैं, अंचल की अपनी स्वतंत्र सत्ता गौण है। हिन्दी उपन्यासों मे आंचलिकता का पहला स्पष्ट प्रस्फुटन शिवपूजन सहाय के उपन्यास 'देहाती दुनिया' (1926) में देखा जा सकता है, जहाँ उन्होंने 'ठेंठ देहातीपन' को सुरक्षित रखने का आग्रह किया था। रेणु के समकालीन और अग्रज नागार्जुन ने 'रतिनाथ की चाची' (1948) और 'बलचनमा' (1952) के माध्यम से मिथिला अंचल को एक सशक्त स्वर दिया।

परन्तु 1954 में रेणु के आगमन ने इस प्रवृत्ति को एक 'आंदोलन' का रूप दे दिया। आंचलिकता ने हिन्दी उपन्यास को नगरीय जीवन की कृत्रिमता और मध्यवर्गीय संकीर्णता से मुक्त कर उसे भारतीय जीवन की विशाल और वैविध्यपूर्ण धरती से जोड़ा। 'रेणु के यहाँ गाँव केवल पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि इतिहास रचने वाली इकाई है।' इस धारा ने बाद में शिवप्रसाद सिंह, शैलेश मटियानी, राही मासूम राजा और रामदरश मिश्र जैसे समर्थ रचनाकारों को प्रेरित किया, जिन्होंने अलग-अलग जनपदों की गाथा को अपना स्वर दिया।

आंचलिक उपन्यास का ढांचा और रेणु का शिल्प विधान

'मैला आँचल' की भूमिका में जब रेणु ने अपने उपन्यास को आंचलिक उपन्यास की संज्ञा दी थी तो निश्चित ही उनका उद्देश्य उपन्यास विधा के भीतर एक नई श्रेणी का निर्माण करना नहीं था। उन्हें तो यह विश्वास भी नहीं था की हिन्दी का आलोचना जगत इस शब्द को स्वीकार भी करेगा। रेणु ने 1961 में राजेन्द्र अवस्थी के लेख पर टिप्पणी करते हुए लिखा है: "आंचलिक उपन्यास का लेबल चिपकाते समय मुझे आंचलिक उपन्यास की इतनी विस्तृत परिभाषा भी नहीं मालूम थी। बाद मे, आलोचनाओं को पढ़कर मैंने परिभाषा सीखी है।" लेकिन इतना स्पष्ट है की रेणु ने उपन्यास के क्लासिकीय ढांचे को तोड़कर अपना एक नया शिल्प गढ़ा, जिसे 'आंचलिक ढांचा' कहा जा सकता है। उनकी रचनाओं, विशेषकर 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' में यह ढांचा पाँच मुख्य आधारों पर टिका है:

(क) पिछड़े अंचल की नायकत्व रूप में प्रतिष्ठा: रेणु के उपन्यासों में 'व्यक्ति' नायक नहीं है, बल्कि 'पिछड़ा हुआ अंचल' स्वयं नायकत्व धारण कर लेता है। उपन्यास के भीतर मैरीगंज गाँव केवल देश का एक पिछड़ा इलाका नहीं, बल्कि एक जीते-जागते प्राणी का रूप धारण कर लेता है, जो सांस लेता है, बीमार पड़ता है, संघर्ष करता है और उत्सव मनाता है। रेणु ने जानबूझकर अपने उपन्यासों में ऐसे अंचल क्षेत्रों को चुना जो विकास की मुख्यधारा से कटे हुए थे। ऐसे पिछड़े हुए गाँव को राष्ट्र के पिछड़े गांवों का प्रतीक मानकर वह उसे अपने उपन्यास का कथानक बनाते है। उपन्यास की शुरुआत में ही वे लिखते हैं: "पन्द्रह-बीस साल पहले, रोतहट स्टेशन से सात कोस पूरब... मैरीगंज जाने के लिए बैलगाड़ी का ही एकमात्र सहारा था... यह गाँव सभ्यता और संस्कृति से कोसों दूर था।"[3] यहाँ लेखक का उद्देश्य अंचल की इसी सांस्कृतिक और आर्थिक विपन्नता को नायकत्व प्रदान करना था। डॉ. प्रशांत या बावनदास जैसे चरित्र आते-जाते हैं, लेकिन मैरीगंज अपनी सम्पूर्णता में स्थिर बना रहता है।

(ख) स्थानीयता की अनिवार्यता और कथानक का विखंडन: पारंपरिक उपन्यासों में एक सुगठित कथानक होता है जो आदि से अंत तक उपन्यास में चलता है। लेकिन आंचलिक उपन्यास में 'स्थानीयता' इतनी महत्वपूर्ण हो जाती है कि एकरेखीय कथानक का ढांचा चरमरा जाता है। रेणु के यहाँ कोई एक कहानी नहीं चलती, बल्कि असंख्य छोटी-छोटी घटनाएं-मलेरिया का प्रकोप, मठ की राजनीति, संथालों का संघर्ष-सब एक साथ चलते हैं। आलोचकों ने इसे 'कथानक का अभाव' कहा, लेकिन वास्तव में यह 'जीवन का बिखराव' है। रेणु मानते हैं कि स्थानीय रंग के बिना तस्वीर पूरी नहीं हो सकती, भले ही उसमें कथा-तत्व क्षीण हो जाए।

(ग) जीवन की समग्रता और विविधता: रेणु का आंचलिक खांचा जीवन को टुकड़ों में नहीं, बल्कि उसको 'समग्रता' में देखता है। जाति-व्यवस्था, धर्म, राजनीति, अंधविश्वास, लोक-चिकित्सा और उत्सव सब एक साथ गुंथे हुए हैं। मैरीगंज में कायस्थ, ब्राह्मण, यादव, संथाल सभी के अपने टोले और अपनी उप-कथाएँ हैं। मठ के चित्रण में आध्यात्म और

व्यभिचार का अद्‌भुत मिश्रण है: "मठ में बीजक का पाठ हो रहा था और बाहर खंजड़ी बज रही थी।"[4] रेणु के साहित्य में गांवों की विविधता को जितनी सजीवता और स्वाभाविकता के साथ उठाया गया है, वैसा वर्णन प्रेमचंद के उपन्यासों में भी दुर्लभ है। यह विविधता ही रेणु के यथार्थ को बहुआयामी बनाती है।

(घ) पात्रों की बहुलता: रेणु के यहाँ नायक पूरा 'जनपद' है, इसलिए उनके उपन्यासों में पात्रों की बाढ़ सी आ जाती है। डॉ. प्रशांत, बावनदास, बलदेव, कालीचरण, कमली, लक्ष्मी, महंत सेवादास जैसे दर्जनों पात्र अपनी भूमिका निभाते हैं और भीड़ में खो जाते हैं। यह पात्र-बहुल संरचना आंचलिकता की अनिवार्य शर्त है ताकि कोई एक व्यक्ति अंचल के विराट व्यक्तित्व को ढक न ले। बावनदास जैसा गांधीवादी पात्र भी अंचल की निष्ठुरता का शिकार होकर नदी में बहा दिया जाता है: "भारत माता रोती ही रह गई और बावनदास की लाश तस्करों ने नदी में बहा दी।"[5]

(ङ) लोकभाषा का रसायन: रेणु के शिल्प की सबसे बड़ी शक्ति उनकी भाषा है। उन्होंने खड़ी बोली के व्याकरण को तोड़े बिना उसमें मैथिली, अंगिका और संथाली शब्दों का ऐसा रसायन घोला कि भाषा में 'मिट्टी की गंध' बस गई। लोकगीत उनके यहाँ केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि कथा को आगे बढ़ाने वाले सूत्रधार हैं। चूंकि स्वयं लेखक इसी अंचल विशेष का हिस्सा है अत: लेखक की भाषा पूर्णिया की भाषा है, जहां तत्सम शब्द तद्‌भव मे बदल जाते है। अंग्रेजी, संस्कृत, उर्दू और राजनीतिक नारे तक लोकभाषा का संस्कार ग्रहण कर लेते है। टीशन (स्टेशन), पबली (पब्लिक), पुलोगराम (प्रोग्राम), डागडर (डॉक्टर), रमैन (रामायण), अंडोलन (आंदोलन), उरदी (वर्दी), गिरफ्फ (गिरफ्तार), जमाहिरलाल (जवाहरलाल), इनकिलास जिन्दाबाद (इंकलाब जिन्दाबाद), गन्नी महतमा (गांधी महात्मा) आदि अनेक उदाहरण देखे जा सकते है।

रेणु की रचनाओं में यथार्थ का स्वरूप

फणीश्वरनाथ रेणु की आंचलिकता को महज 'रोमैंटिसिज्म' या अतीत के गौरव का भावुक गान मान लेना एक बड़ी भूल होगी। उनकी रचनाओं की बुनियाद उस कठोर, खुरदरे और नंगे यथार्थ पर टिकी है जो भारतीय ग्रामीण जीवन की सबसे बड़ी विडंबना है। रेणु ने अपने कालजयी उपन्यास का नाम 'मैला आँचल' ही इसलिए चुना क्योंकि वे समाज में फैले उस 'मैलेपन'- जिसमें गरीबी, बीमारी, अंधविश्वास और जातिवाद जैसी विद्रूपताएँ थीं को छिपाना नहीं चाहते थे। उनका यथार्थवाद इकहरा नहीं, बल्कि बहुआयामी है। वह जीवन की अनुभूत सच्चाई बनकर सामने आता है, जिसे लेखक ने स्वयं भोगा और जिया है।

रेणु के उपन्यासों में सामाजिक यथार्थ का सबसे क्रूर और नग्न रूप जातिवाद के विष के रूप में उभरता है। मैरीगंज गाँव अंग्रेजों की गुलामी से तो 1947 में आजाद हो जाता है, लेकिन जाति की बेड़ियों से उसे मुक्ति नहीं मिलती। वहाँ व्यक्ति की पहचान उसके मानवीय गुणों से नहीं, बल्कि उसके 'टोले' से होती है-चाहे वह राजपूत टोला हो, कायस्थ टोला हो या यादव टोला। रेणु दिखाते हैं कि किस प्रकार आधुनिक राजनीतिक चेतना भी जातिवाद के पुराने ढांचे में ही ढल जाती है। उपन्यास में एक जगह बेहद तीखे व्यंग्य के साथ यह यथार्थ सामने आता है जब एक पात्र पूछता है: "किस पार्टी के हो? ...अभी तो तीन ही दल हैं राजपूत, कायस्थ और यादव। बाकी सब खिचड़ी पार्टी है।"[6]

यह संवाद सिद्ध करता है कि रेणु का यथार्थवाद प्रेमचंद की तरह 'आदर्शोन्मुखी' नहीं है। वे हृदय-परिवर्तन में विश्वास नहीं करते, न ही कोई सुखांत समाधान देते हैं, बल्कि सामाजिक विद्रूपता को ज्यों-का-त्यों पाठक के सामने रख देते हैं। जातिगत पूर्वाग्रह इतना गहरा है कि एक भंडारे के दौरान उच्च जाति के बच्चे निम्न जाति के बच्चों को यह कहकर अलग कर देते हैं- 'उधर मत जाना, छुआ जाएगा।' यह छोटी सी घटना उस 'छुआछूत' के यथार्थ को उकेरती है जो कानूनों से नहीं, सामाजिक भेदभाव से संचालित होता है।

सन् 1947 के बाद भारतीय जनमानस में जो स्वप्नभंग हुआ, रेणु उसके सबसे संजीदा चितेरे हैं। उनके यहाँ गांधीवादी मूल्यों का ह्रास बावनदास की मृत्यु में दिखता है और अवसरवादी राजनीति का उदय कालीचरण और अन्य नए नेताओं के रूप में होता है। रेणु दिखाते हैं कि कैसे स्वार्थ और भ्रष्टाचार ने स्वराज्य के सपनों को 'काले कारनामों' में बदल दिया। बावनदास का यह कथन उस दौर के राजनीतिक यथार्थ का सबसे प्रामाणिक दस्तावेज है: "भारतमाता ग्रामवासिनी नहीं रही... वह तो अब दफ्तरों में फाइलों के बीच में रहती है।"[7] रेणु स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद के गाँव को किसी रोमानी चश्मे से नहीं देखते। उनके लिए आजादी के बाद भी गाँव का जीवन 'मैला' ही है। डॉक्टर प्रशांत जैसे शिक्षित और आदर्शवादी पात्र की असफलता

इस यथार्थ को और तीखा बनाती है। रेणु स्पष्ट लिखते हैं कि 'आजादी का मतलब यह नहीं कि सब कुछ बदल गया; बहुत कुछ वैसा ही रह गया है'।

रेणु के अंचल में 'मलेरिया' और 'कालाजार' केवल चिकित्सीय बीमारियाँ नहीं हैं, बल्कि वे गरीबी के रूपक हैं। डॉ. प्रशांत जब गाँव आते हैं, तो वे पाते हैं कि यहाँ के लोगों के चेहरों पर जो पीलापन है, वह केवल बीमारी का नहीं, बल्कि सदियों के शोषण और कुपोषण का है। यह 'जैविक यथार्थ' रेणु की आंचलिकता को एक ठोस धरातल देता है।

रेणु की रचनाओं में कल्पना का वितान

यद्यपि रेणु यथार्थ के आग्रही हैं, लेकिन उनकी रचनाएं किसी संवाददाता की रिपोर्ट नहीं है। यदि ऐसा होता, तो उनके उपन्यास नीरस दस्तावेज बन जाते। रेणु यथार्थ के कठोर पत्थरों पर 'कल्पना' की हरी दूब उगाते हैं। उनकी कल्पनाशीलता कथा को एक ऐसा जादुई स्पर्श देती है, जिसे पश्चिमी साहित्य में 'जादुई यथार्थवाद' कहा जाता है, लेकिन रेणु के यहाँ यह पूरी तरह भारतीय है। नामवर सिंह ने रेणु की इसी विशेषता को रेखांकित करते हुए कहा है कि "रेणु के यहाँ कल्पना यथार्थ को धुँधलाती नहीं, और अधिक उजला करती है।"[8]

रेणु इतिहास और कल्पना को मिलाकर नए मिथक गढ़ने में माहिर हैं। 'मैला आँचल' में उन्होंने 'नीलहे साहब' (मार्टिन) और उसकी पत्नी मैरी की एक काल्पनिक कथा रची है। मैरी, जो मलेरिया से मर जाती है और मार्टिन जो उसकी याद में संघर्ष करता है, इस कथा को रेणु ने 'फ्लैशबैक' (पूर्व दीप्ति) तकनीक से इतना जीवंत कर दिया है कि यह ऐतिहासिक सत्य प्रतीत होता है। गाँव के लोग मानते हैं कि पुरानी कोठी में साहब की आत्मा भटकती है। यह अंधविश्वास हो सकता है, लेकिन साहित्यिक दृष्टि से यह रेणु की कल्पना है जो वीरान खण्डहरों को 'ममरिया' और 'ब्रह्मपिसाच' की कहानियों से जीवित कर देती है।

रेणु की कल्पना प्रकृति को एक चरित्र में बदल देती है। कमला नदी, कोसी मैया, या परती जमीन- ये सब मूक दर्शक नहीं हैं। 'परती परिकथा' में परती जमीन एक ऐसी नायिका की तरह है जो सदियों से प्यासी है और प्रतीक्षा कर रही है। रेणु का वर्णनात्मक शिल्प अक्सर काव्यात्मक हो उठता है: "बरसात की रात में मैरीगंज जैसे साँस लेने लगता है।"[9] यहाँ गाँव का मानवीकरण कल्पना का परिणाम है, किन्तु यह कल्पना यथार्थ से कटी हुई नहीं है, बल्कि गाँव के लोगों की सामूहिक अनुभूति का हिस्सा है।

'मैला आँचल' मे डायन संबंधी अंधविश्वास और उसके अमानवीय पहलू का बड़ा मार्मिक और रोमांचकारी अंकन हुआ है। गाँव वालों ने पारबती की मां को डायन घोषित कर रखा है। वह ग्रामीणों द्वारा सामाजिक बहिष्कार और अत्याचार की शिकार है। कालाजार के फैलने पर उसका दायित्व डायनों पर गढ़ दिया जाता है। गाँव में अंधविश्वास अनेक रूपों में फैला हुआ है। पूरा मैरीगंज ही अंधविश्वासों में जी रहा होता है। अगर किसी को कोई साँप काट लेता है तो उसे प्रेतनी की करतूत करार दिया जाता है। कमला नदी को लेकर लोगों के बीच में अनेक मिथक ओर रूढ़ियाँ प्रचलित है। मलेरिया सेण्टर की दवाओं का निर्माण गाय के खून से होना बता कर तथा सूई भोंककर जहर देकर मार डालने की बात भी गाँव मे फैलती है। भूत-प्रेतों पर गाँव वालों के अटल विश्वास को भी उपन्यास में दिखाया गया है। सच यह है की रेणु अपना कल्पना वितान अंचल में फैले वास्तविक विश्वासो की दीवारों पर खड़ा कर युगीन यथार्थ को और अधिक पैना और तीक्ष्ण बना देते है।

कठोर यथार्थ के बीच रेणु मानवीय संवेदनाओं और प्रेम के लिए कल्पना का सहारा लेते हैं। डॉ. प्रशांत और कमली का प्रेम-प्रसंग यथार्थ की पथरीली जमीन पर खिला हुआ एक कोमल फूल है। कमली की बीमारी शारीरिक भी है और मनोवैज्ञानिक भी, जिसे रेणु अपनी कल्पना से एक करुण आख्यान में बदल देते हैं। यहाँ उनकी भाषा शुद्ध गद्य नहीं रह जाती: "पिया कोठिरिया में आए... कमली की आँखों में जैसे सदियों की नींद भरी थी, जो अब टूटने को थी।"[10] आलोचक नलिन विलोचन शर्मा ने बहुत सटीक टिप्पणी की थी कि रेणु के यहाँ यथार्थ और कल्पना पानी और तेल की तरह अलग-अलग नहीं तैरते, बल्कि वे दूध और पानी की तरह एकाकार हो जाते हैं। जब बावनदास मरता है तो रेणु यह नहीं लिखते कि वह मर गया, वे लिखते हैं कि "भारतमाता रोती रह गई और बावनदास की लाश तस्करों ने नदी में बहा दी।" इस प्रकार, रेणु की कल्पना यथार्थ की चोट को कम नहीं करती, बल्कि उसे और गहरा व मर्मस्पर्शी बना देती है।

रेणु की रचनाओं में लोक-तत्व

रेणु की आंचलिकता का तीसरा और संभवतः सबसे जीवंत आधार 'लोक' है। रेणु के लिए 'लोक' केवल ग्रामीण भीड़ या अनपढ़ जनता का पर्याय नहीं है, बल्कि वह एक सतत और अखंड सांस्कृतिक प्रवाह है, जिसमें भाषा, गीत, विश्वास, त्योहार और सामूहिक स्मृति स्पंदित होती है। हिंदी आलोचना में अक्सर 'शास्त्र' और 'लोक' का द्वंद्व दिखाया जाता है, लेकिन रेणु ने अपनी रचनाओं में 'लोक' को शास्त्र से भी ऊँचा दर्जा दिया। उनके यहाँ लोक केवल विषय नहीं है, वह माध्यम भी है और दृष्टि भी।

रेणु के उपन्यासों को यदि 'संगीत-प्रधान' कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। उनके यहाँ लोकगीत केवल वातावरण बनाने या मनोरंजन के लिए नहीं आते, वे कथा को गति देने वाले सूत्रधार की भूमिका निभाते हैं। 'मैला आँचल' में खंजड़ी, ढोलक और मृदंग की थाप पूरे उपन्यास की धड़कन बनकर धड़कती है। चाहे विद्यापति की लाचारी हो, बिरहा हो, या होली का हुड़दंग गीत पात्रों की मनोदशा और सामाजिक स्थिति को व्यक्त करते हैं। उदाहरणस्वरूप, जब अंचल में उदासी छाती है, तो निर्गुण गीत गूंजते हैं, "अरे, राम बिना... कुहुक-कुहुक कोयलिया..."[11] और जब विद्रोह या उत्साह होता है, तो 'जोगिरा' गाया जाता है। हजारीप्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही कहा था कि "लोकगीत समाज की सामूहिक आत्मा की अभिव्यक्ति होते हैं,"[12] और रेणु ने इसी आत्मा को अपने साहित्य में सुरक्षित किया है।

गरीबी, अशिक्षा और अज्ञानता के बावजूद, मैरीगंज के जीवन में एक अद्‌भुत 'जिजीविषा' और 'उत्सवधर्मिता' दिखाई देती है। यह उत्सवधर्मिता केवल संयोग नहीं, बल्कि अस्तित्व को बचाए रखने का एक सचेत तंत्र (Mechanism) है। गाँव के लोग अपने कष्टों से उबरने के लिए जीवन को ही उत्सव बना लेते हैं। रेणु ने गाँव की लोक-संस्कृति के विविध रूपों को उपन्यास में गूंथकर इसे सजीव किया है। महंत सेवादास की मृत्यु पर 'समदाउन' और 'निर्गुनिया' जैसे वैराग्य के गीत गाए जाते हैं, तो फसल कटते समय 'चाचर' गीत गूंजता है। जब वर्षा नहीं होती, तो इंद्र देवता को मनाने के लिए स्त्रियाँ 'जट-जटिन' का खेल खेलती हैं, जिसमें वे गाँव के प्रभावशाली लोगों पर तीखे व्यंग्य करती हैं। रोचक बात यह है कि जिन लोगों का नाम इन व्यंग्य गीतों में नहीं लिया जाता, वे बुरा मान जाते हैं; यह दर्शाता है कि लोक-निंदा भी वहाँ सामाजिक स्वीकृति का एक रूप है।

रेणु का सबसे बड़ा और साहसिक प्रयोग भाषा के स्तर पर है। उन्होंने तत्कालीन परिष्कृत और मानकीकृत 'आभिजात्य भाषा' के वर्चस्व को चुनौती देते हुए जन-सामान्य की भाषा को 'सर्जनात्मक भाषा' का दर्जा दिया। वे पात्रों के मुख से 'स्वराज' को 'सुराज' और 'इंकलाब जिंदाबाद' को 'इकिलाप जिंदाबाद' कहलवाते हैं। यह अशुद्धि नहीं, बल्कि उच्चारण का वह यथार्थ है जो ग्रामीण मनोविज्ञान को पकड़ता है।

शीर्षकों की सार्थकता और आंचलिक दृष्टि

रेणु के उपन्यासों के नामकरण की प्रक्रिया पर गौर करें तो हम पाते हैं कि उनके शीर्षक स्वयं में एक 'सांस्कृतिक वक्तव्य' होते हैं। 'मैला आँचल' एक प्रतीकात्मक शीर्षक है। इस शीर्षक में विरोधाभास और स्वीकारोक्ति का अद्‌भुत संगम है। 'आँचल' जहाँ ममता, सुरक्षा और पवित्रता का प्रतीक है, वहीं 'मैला' शब्द गरीबी, जहालत और ऐतिहासिक शोषण का। यह शीर्षक स्पष्ट करता है कि आजादी के बाद भी गाँव का आँचल पूरी तरह उजला नहीं हो सका है। रेणु जी अपने एक लेख 'नरकवास के दिन' में मैला आँचल के नामकरण पर प्रकाश डालते हुए कहते है की उन्होंने यह शीर्षक पंत जी के 'ग्राम्या' काव्य संग्रह में संकलित कविता 'भारत माता' नामक शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियों के आधार पर रखा था। वें लिखते हैं, "ऐसा लगता है कहीं पतवार खो गई है। मैला आँचल और भी मैला हो गया है।"[13] इस प्रकार, शीर्षक ही उपन्यास की वैचारिक दिशा तय कर देता है।

'परती परिकथा' शीर्षक भी एक रूपक है। 'परती' का अर्थ है उपेक्षित और बंजर भूमि, जबकि 'परिकथा' यानी कल्पना और स्वप्न। एक बंजर जमीन की भी अपनी 'परिकथा' हो सकती है, यह सोचना ही रेणु की मौलिकता है। यह शीर्षक उस आंचलिक दृष्टि को सामने लाता है, जहाँ उपेक्षित अंचल के भीतर भी उर्वर संभावनाएं छिपी हुई हैं। 'जुलूस' शीर्षक आधुनिक राजनीति की भीड़-मानसिकता और सामूहिक भटकन को दर्शाता है। वहीं 'दीर्घतपा' भारतीय परंपरा में तप और साधना से जुड़कर यह बताता है कि आंचलिक जीवन केवल अभाव का नहीं, बल्कि नैतिक संघर्ष का भी क्षेत्र है।

निष्कर्ष

समग्रत: कहा जा सकता है कि फणीश्वरनाथ रेणु की आंचलिकता हिन्दी साहित्य की एक अभूतपूर्व घटना है। उन्होंने 'मैला आँचल' के माध्यम से साहित्य के 'अभिजात्य दुर्ग' को तोड़कर उसे जनसामान्य के जीवन से संस्पर्श कराया। रेणु की आंचलिकता यथार्थ, कल्पना और लोक-तत्व का एक अद्‌भुत 'कोलाज' है। यथार्थ के स्तर पर वे निर्मम हैं क्योंकि वे गरीबी और शोषण को छिपाते नहीं, कल्पना के स्तर पर वे भावुक हैं क्योंकि वे उसी गरीबी में मानवीयता के फूल खिला देते हैं, और लोक के स्तर पर वे उत्सवधर्मी हैं क्योंकि वे अपनी माटी के गीतों को अमर कर देते हैं।

आज भूमंडलीकरण के दौर में, जब स्थानीय संस्कृतियाँ मिट रही हैं, रेणु का साहित्य हमें अपनी जड़ों की याद दिलाता है। यह एक चेतावनी है कि हम 'ग्लोबल' बनने की होड़ में कही अपना स्थानीय स्वाभिमान न खो दें। डॉ. प्रशांत का यह कथन आज भी हमारे लिए दिशा-सूचक है: "मुझे इसी अंचल में रहकर, इसी धूल-मिट्टी में अपनी प्रयोगशाला बनानी है"[14]। हिंदी उपन्यास के इतिहास में रेणु उस 'बरगद' की तरह हैं, जिसकी जटाएं धरती में धंसकर उसे और मजबूत बनाती हैं। निर्मल वर्मा मानते है कि रेणु के आंचलिक साहित्य ने हिन्दी उपन्यासों को नई दिशा प्रदान की है वे लिखते हैं, "मैला आँचल और परती परिकथा महज उत्कृष्ट आँचलिक उपन्यास नहीं हैं, वे भारतीय साहित्य में पहले उपन्यास हैं जिन्होंने अपने जमित ढंग से, झिझकते हुए भारतीय उपन्यास को एक नयी दिशा दिखाई थी"[15]।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, हिंदी साहित्य की भूमिका, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009.
2. नगेंद्र (संपा.), हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, 2012.
3. रेणु, फणीश्वरनाथ, मैला आँचल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पेपरबैक संस्करण, 2006.
4. रेणु, फणीश्वरनाथ, रेणु रचनावली (खण्ड-5), राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995.
5. सिंह, नामवर, आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998.
6. शर्मा, रामविलास, आस्था और सौंदर्य, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004.
7. नामवर सिंह, कहानी: नई कहानी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1966

Footnote

1. नगेंद्र (संपा.), हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा, 2012, पृष्ठ 667.
2. फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आँचल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पेपरबैक संस्करण-2006, पृष्ठ 7 (भूमिका)
3. फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आँचल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पेपरबैक संस्करण-2006, पृष्ठ 11
4. फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आँचल, पृष्ठ 58
5. फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आँचल, पृष्ठ 298
6. फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आँचल, पृष्ठ 108
7. फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आँचल, पृष्ठ 295
8. नामवर सिंह, कहानी: नई कहानी, पृष्ठ 120
9. फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आँचल, पृष्ठ 25
10. फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आँचल, पृष्ठ 203
11. फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आँचल, पृष्ठ 163
12. हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य की भूमिका, पृष्ठ 182
13. फणीश्वरनाथ रेणु, 'नरकवास के दिन', पृष्ठ 128
14. फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आँचल, पृष्ठ 304
15. https://jankipul.com/nirmal-verma-on-renu.html

एस आर हरनोट का कथा साहित्यः पर्यावरण संरक्षण का दस्तावेज

डॉ० राजन तनवर

एसोसिएट प्रोफेसर, राजकीय महाविद्यालय अर्की, जिला सोलन हि. प्र.

शोध सार – पर्यावरण शब्द का शाब्दिक अर्थ – चारो ओर या आस – पास होता है। सृष्टि के समस्त जीवों का पर्यावरण के साथ अटूट संबंध रहा है। पर्यावरण भौतिक, जैविक और सांस्कृतिक तत्वों का समिश्रण है। पर्यावरण मनुष्य जीवन का अभिन्न अंग है। सृष्टि के सभी जीव पर्यावरण के बिना अधूरे हैं। पर्यावरण को संरक्षित किए बिना मानव जीवन का अस्तित्व खतरे में है। सभ्य मानव के साथ – साथ प्रकृति के अन्य जीवों ने भी अपने सामर्थ्यानुसार पर्यावरण को स्वच्छ बनाए रखने के प्रयास किए हैं। कथाकार हरनोट की आभी कहानी की प्रमुख पात्र आभी नाम की अतिलघु चिड़िया कुल्लू जिले के जलोरी पास से लगभग 5 किलोमीटर दूर स्थित सरेऊलसर झील को स्वच्छ बनाए रखने का कार्य करती है। पहाड़ों की प्राकृतिक छटा को मनमोहक बनाने में कुदरत ने विषेश रंग बिखेरे हैं किंतु स्वार्थी मनुष्य इन्हें दुषित करने, इनका नाश करने में कोई कसर नहीं छोड़ रहा है। स्वार्थी मानवों को सबक सिखाने के लिए हरनोट ने आभी जैसी अतिलघु अस्तित्व के जीव के निस्वार्थ प्रकृति प्रेम से प्रभावित होकर पर्यावरण संरक्षण को अपने जीवन का आधार बनाया है। वर्तमान समय में समस्त विश्व पर्यावरण के दूषित होने की समस्याओं से जूझ रहा है। सभी मनुष्य किसी न किसी रूप में इसे बिगाड़ने में कसर नहीं छोड़ रहे हैं।

हरनोट की पर्यावरण को स्वच्छ बनाए रखने की चिंता इनके पर्यावरणधर्मी साहित्य नदी रंग जैसी लड़की एवं हिडिंब उपन्यासों सहित माफिया मिट्टी के लोग, बेजुबान दोस्त, लिटन ब्लॉक गिर रहा है, नदी गायब है, सड़ान, लाल होता दरखत, एक नदी तड़फती है तथा आभी कहानी में मिलता है। हिडिंब एवं नदी रंग जैसी लड़की उपन्यास में ऐसे अनेक प्रसंग हैं जिसमें पर्यावरण और पारिस्थितिकी की यथास्थिति का गंभीरता से आकलन है।

बीज शब्दः पर्यावरण, माफिया, मिट्टी, सड़ान, नदी, बेजुबान, गायब, दरखत, चिड़िया, लिटन ब्लॉक, भिखारी, झील, नागिन, आभी, चिड़िया, डायनामईट, खालें, स्लिपर ,असमान्य मानसिकता, गुलेल, खुंखार, बिगड़ैल, विषाकत, अंध जड़ आस्थाएं।

मूल आलेखः हरनोट ऐसे रचनाकार हैं जो कि अंत्यजों, स्त्रियों एवं पर्यावरण के संरक्षण को अपने सृजन का आधार बनाते हैं। समस्त चराचर की पीड़ा की अनुभूती इनके साहित्य का मूलाधार है। जब ये अंत्यजों की पीड़ा का उल्लेख करते हैं तो इनकी स्वानुभूती स्पष्ट झलकती है। ऐसा प्रतीत होता है कि मानो उन दुखों, कष्टों को इन्होंने स्वयं भोगा हो। जब ये स्त्री जीवन की पीड़ा को उजागर करते हैं तो उसकी समस्यायों का निदान करते हुए उन स्त्रियों को सशक्त बनाकर ही छोड़ते हैं तथा पुरूष के समकक्ष या उससे भी आगे बढ़ाकर उन्हें प्रथम पंक्ति में खड़ा करते हुए नजर आते हैं।

यद्यपि मानव सभ्यता के अस्तित्व में आते ही पर्यावरण के संरक्षण के प्रयास आरंभ हो गए थे। वैदिक काल से लेकर आज तक प्रकृति प्रेमियों ने पर्यावरण को स्वच्छ बनाए रखने के लिए अपना संपूर्ण जीवन लगा दिया। हरनोट ऐसे रचनाकार हैं जिन्होंने अपने कथा साहित्य में मनुष्यों के साथ – साथ पक्षियों की पर्यावरणीय चिंता को भी उजागर किया है। इनकी आभी कहानी की प्रमुख पात्र आभी नामक चिड़िया जो अपना लघु अस्तित्व होने के उपरांत समस्त मानवता के लिए पर्यावरण को स्वच्छ बनाए रखने का ऐसा संदेश देती है कि सर्व शक्ति सपन्न सजग मानव आभी चिड़िया के आगे स्वयं को बौना महसूस करता है तथा पर्यावरण विनाश के लिए उसकी आतुरता शर्मसार हुए बिना नहीं रहती। आभी चिड़िया कुल्लू जिले के जलोरी पास से लगभग 5 किलोमीटर दूर स्थित सरेऊलसर झील को स्वच्छ बनाए रखने के लिए सूर्य की प्रथम रश्मि के उदय होने के साथ ही व्यस्त हो जाती है। मन्दिर के साथ बनी प्राकृतिक झील एवं बुढ़ी नागिन की सेवा में वह एवं उसकी पीढ़ियां सदियों से व्यस्त रही हैं। हवा के साथ गिरे तिनकों तथा पत्तों को तुरंत अपनी चोंच से उठाकर दूर फेंक देती है। सुभह से शाम तक वह इस कार्य में व्यस्त रहती है। इसके अतिरिक्त वह वन्य जीवों के हथियारों तथा वन माफिया पर भी नजर रखती है जो इन सुंदर जीवों को अपने निहित स्वार्थ के लिए मौत के घाट उतार देते हैं तथा वनों का अंधाधुंध कटान करके प्रकृति तथा पर्यावरण को दूषित कर रहे हैं। हरनोट ने आभी चिड़िया का मानवीकरण किया है तथा उसकी सजगता से मनुष्यों को सीख

लेने का संदेश दिया है यथा – ''यहॉ आए लोग नहीं जानते कि ये छोटी नन्हीं – आभियां कितनी बीती सदियों से इस झील और बूढ़ी नागिन मॉ की सेवा में हैं। वे नहीं जानते कि उनकी इन हरकतों से जंगल और पहाड़ बर्बाद हो रहे हैं। वे नहीं जानते कि उनकी गाड़ियों के शोर से जंगली जानवरों के एकांत खत्म हो गए हैं और वे दूर कहीं अपनी – अपनी खोहों में डर के मारे दुबके पड़े हैं। उन्हें नहीं पता कि बूढ़ी नागिन मॉ की ऑखें डीजल और पैट्रोल के धुंए से बैठने लगी हैं। वे नहीं जानतें कि तपस्या में लीन देवदारू अपनी उमर के आखरी पड़ाव में हैं और कब अपना जीवन खत्म कर जमींदोज हो जाएंगे। उन्हें नहीं पता बान अब वैसा हरियाता नहीं है जैसे पहले सजता संवरता था। उनके लिए बुरांस का खिलना कोई मायने नहीं रखता। वे इस बात से अनभिज्ञ हैं कि गॉव की ग्वालने अपनी पीठ पर किल्टा लिए बुरांस के फूल तोड़ने नहीं आतीं। वे डरने लगी हैं कि कहीं वे आदमीनुमा जानवरों के वहशीपन का शिकार न हो जाएं।''[1]

आभी वनों एवं वन्य जीवों का विनाश होते नहीं देख सकती। वह मनुष्यों के प्रकृति के प्रति निर्मम रूख से आहत है। अपनी शारीरिक लघुता के कारण वह वन माफिया गिरोह एवं शिकारियों का विरोध नहीं कर पाती। वह झील के तट पर पानी पीने के लिए आने वाले जीव जंतुओं और जानवरों को स्वच्छ निर्मल जल उपलब्ध करवाना चाहती है। हरनोट आभी का मानवीकरण करते हुए लिखते हैं कि – ''आभी अर्जी लिखना नहीं जानती। शिकायत करना नहीं जानती। उसे नहीं पता इस जंगल का गार्ड – चौकीदार कौन है। उसे नहीं पता इस आरक्षित वन क्षेत्र का रेंज अफसर कौन है। उसे पंचायत के प्रधान का भी नहीं पता। वह किसी दारोगा या चौकीदार को भी नहीं जानती। उसे नहीं पता कि प्रदेश का वन मंत्री कौन है। वह केवल इतना जानती हैं कि सुबह होने से पहले उसे झील के निर्मल जल में स्नान करना है। नहा धोकर बुढ़ी नागिन के दरवाजे बैठकर गीत गाना है और फिर दिन भर उसे झील के पानी के ऊपर तिनके और पत्ते उठाने है ताकि झील का पानी गंदा न हो जाए। चॉद उसमें आकर डुबकिया लगा सके। बाघ, जंगली भालू, और दूसरे जानवर आए तो उन्हें और उनके नन्हों को जी भर पानी पीने को मिले।''[2]

लेखक की माफिया कहानी में वनों का अवैध कटान तथा कटान के बाद काला बाजारी में तस्करों, गॉव के आपूर्तिकर्ताओं तथा वन विभाग के भ्रष्ट अधिकारियों की संयुक्त संलिप्तता को दिखाया गया है। हमारे समाज एवं परिवेश में कुछ लोग ऐसे हैं जिन्हें केवल अपने निजी स्वार्थों को ही पुरा करना होता है। भ्रष्ट तरीके से उनकी जेब में पैसा आना चाहिए। समाज और राष्ट्र हित से उनका कोई सरोकार नहीं होता।

लेखक ने बालक चुन्नी के माध्यम से उसके पिता परसिया जो वन विभाग में सेवादार के पद पर कार्यरत है। जानवरों को मारकर उनकी खालों को बेचने की तस्करी में सलिप्त है। लेखक ने परसिए के बेटे चुन्नी के माध्यम से उसके भ्रष्टाचार का रहस्य उजागर करवाया है। पिता – पुत्र की सोच में अंतर है पुत्र चुन्नी वन्य जीवों से अत्यंत प्रेम करता है जबकि पिता उनकी खालों की तस्करी करता है। छोटा बालक होने के कारण वह पिता का विरोध नहीं कर पाता। परसिए के काले कारनामों का उसकी मॉ और पत्नी को भी पता है किंतु उसकी मॉ भी उसका विरोध नहीं कर पाती – ''चुन्नी ने दाव लगाकर एक बार गोशाला के इन कमरों को खोला था। उस दिन उसका बापू रेंज दफ्तर डाक लेकर गया था और मॉ कंडे में दरिया के पार कहीं खजूर लाने गयी थी। चुन्नी के हाथ चाबी लग गई थी। उसने दादी को भी नहीं बताया। जब कमरे में गया तो उसकी घिग्घी बंध गयी। घबराकर दरवाजे पर ही मौन खड़ा रहा। फिर धीरे से भीतर चला गया। वहॉ भालू , खरगोश, बाघ और कई छोटे जानवरों की खालें सुखाने के लिए रखी थीं। कुछ बड़े लकड़ी के बक्से में होंगी। उसकी चाबी चुन्नी को नहीं पता। उसने उन खालों को अपने हाथ से सहलाया। देखने के बाद उसने कमरा बंद कर दिया। फिर दूसरा खोला। वह ऊपरी मंजिल का बड़ा हाल था। इसी के नीचे बकरियॉ थी। इस कमरे में देवदार, खैर और कई अन्य लकड़ियों के तख्तें, कड़ियॉ और मोटे स्लिपर थे। बहुत – सी लकड़ियों के चुन्नी नाम नहीं जानता था। वह समझ नहीं पाया कि यह बापू क्यों करता है?''[3]

हरनोट ने बेजुबान दोस्त कहानी में एक ऐसे असमान्य मानसिकता वाले किशोर का वन्य जीवों की रक्षा में असाधरण प्रेम को दर्शाया है जिससे सभी नफरत करते हैं। उसे पागल समझते हैं। बाल्यकाल से ही वह पर्यावरण सजग एवं वन्य जीवों से प्रेम करने वाला बालक है। दूसरी कक्षा में पढ़ते हुए जब वह अपने सहपाठी साथी को गुलेल से चिड़िया को मारते हुए देखता है तो उस दृश्य को देखकर उसका मन आहत हो जाता है। क्रोध में आकर किशन उस बालक को बहुत पीटता है तथा उसी की गुलेल से उसकी ऑख फोड़ देता है। किशन को पाठशाला से निकाल दिया जाता है। सभी उससे नफरत करने लगते हैं कोई उससे बात करना उचित नहीं समझता। इस घटना के बाद किशन का और अधिक झुकाव प्रकृति के अन्य जीवों की ओर बढ़ जाता है। वह अपने पालतु पशुओं सहित गॉव भर के पशुओ को चराने का काम करता है। खूंखार – बिगड़ैल

पशु जिन्हें कोई अपने वश में नहीं कर पाते किशन सहजता से उन्हें नियंत्रण में कर लेता। जीवों के प्रति उसके अगाध प्रेम से सभी हैरान रहते हैं। उसके कोट की जेबों में पक्षियों ने घौंसले बना दिए हैं वन्य एवं पालतु जीवों का संरक्षण ही उसके जीवन का उद्देश्य बन गया है – ''गॉव के किसानों के कई गाय – बैल इतने खराब थे कि खूंटे से खुलते ही पखले को सींग से मारने उसके पीछे भाग जाते। पर मजाल है कि किशन के साथ कभी ऐसा हुआ हो। कोई बैल या पशु कितना ही सींगमार क्यों न होता, किशन को देखकर ऐसे सहज हो जाता जैसे वह उसी का पाला हो। यही नहीं गॉव के खूंखार किन्नौरी कुत्ते जो हमेशा काटने के डर से बंधे रहते, किशन को देख उनकी ऑखों में प्यार सा उमड़ पड़ता। अब तो वह जिस बैल, कुत्ते, भेड़ – बकरी या बिल्ली तक को प्यार से बुलाता वे उसके पास चले आते और किशन उनसे बतियाता रहता। उसके घर में दो बैल , तीन गाय और कुछ भेड़ – बकरियॉ थीं। उनका तो वह सगा हो गया था। गाय कभी दूध न देती और बिगड़ जाती तो उसकी अम्मा किशन को बुला लिया करती। किशन जैसे ही गौ शाला की दहलीज पर जाता गाय चुपचाप दूध देने लग जाती। घर वालों को उसकी हरकतों पर कई बार अचरज भी होता। गॉव के बच्चे और बड़े अब घर – बाहर और खेत – खलियान में यह ध्यान रखते कि किसी जानवर या पक्षी को किशन के सामने न भगाए या मारे। यदि किशन ने ऐसा करते हुए देख लिया तो उसकी खैर नहीं। वह किसी को कुछ भी कर सकता था। यहॉ तक कि उसके सामने अपने पशुओं या कुत्ते तक को कोई फटकार नहीं लगा सकता था।''[4]

आधुनिक मनुष्य विकास की इबारत प्रकृति को तहस – नहस करके लिखना चाह रहा है। वह वनों का कटान करके वन माफिया बनकर जीवों को उनके घरों से बेघर कर रहा है। वन्य प्राणियों को मारकर उनकी खाल की तस्करी कर रहा है। उन स्थानों पर बहुमंजिला अट्टालिकाएं बनाकर गॉवों की वन्य भूमि को नगरों में परिवर्तित करके फलैट संस्कृति अपनाकर अपनेपन से दूर होता जा रहा है। धन – संपति का एकत्रीकरण ही केवल उसका उद्देश्य रह गया है। विकास की इस अंधी दौड़ में वह प्राकृतिक संसाधनो के समूल नाश करने पर आमदा है। सड़क मार्गों के चौड़ीकरण तथा पक्के घरों के निर्माण कार्य से वह स्वयं को तो सभ्य बनाने की होड़ में लगा है किंतु उसे इस बात का भान नहीं है कि वह आने वाली पीढ़ियों को इस धरा पर विषाकत भोजन , विषाकत वायु और विषाकत जल छोड़कर जा रहा है। विकास की इस अंधी दौड़ में उसने नदियों के बहाव को परिवर्तित कर दिया है। और अधिक जल विद्युत परियोजनाओं के निर्माण कार्य ने प्राकृतिक नदी – नालों को सुखा दिया है। उनके जल प्रवाह को सुरंगों में तब्दील करके परंपरागत घराटों , कयारों तथा खेती योग्य भूमि को बंजर भूमि में बदल दिया है। कृषि योग्य भूमि जिसमें पहले सिंचाई की सुविधा थी – धान तथा अन्य नकदी फसलें उगती थीं वे बंजर बन चुकी हैं।

नदी गायब है' कहानी का नायक टीकम जब सुबह – सुबह घराट से आटा पीसने के लिए पानी की कुहल छोड़ने जाता है तो वह हथप्रभ रह जाता है कि जो स्थानीय नदी वर्ष भर बहती रहती थी अचानक गायब हो गयी है । पहले तो उसे अपनी ऑखों पर ही विश्वास नहीं हुआ वह ऑखों को बार – बार मलकर पुनः देखता है कि कहीं वह गलघ्त तो नहीं देख रहा है। उसकी ऑखों में फरख तो नहीं पड़ गया है। दौड़ता – दौड़ता वह गॉव की ओर भागता है तथा बहकी अवस्था में घरों के दिखते ही खेत की मुंडेर से आवाजेंघ लगानी शुरू कर देता है । वह हॉफता हुआ घर के पास पहुंचता है। उस समय तक सारे गॉव के लोग एकत्रित हो जाते हैं। वह सहज होकर सभी को अपनी बात बतानी शुरू करता है कि – ''मैं रोज की तरह नदी के किनारे घराट में पहुंचा। गेहूं – फाफरा की बोरी एक किनारे उतार कर रख दी और चक्की चलाने को कूहल फेरने चला गया। लेकिन उसमें पानी नहीं था। मैंनें सोचा कूहल कहीं से टूट गयी होगी। मैं नदी की तरफ हो लिया। वहॉ पहुंचा तो हतप्रभ रह गया। कुछ समझ नहीं आया कि जिस नदी का पानी कभी सूखा ही नहीं वह रात – रात मे कैसे सूख गयी। कुछ देर मैं ऐसे ही खड़ा रहा। कई बार ऑखें मली कि धोखा तो नहीं हो रहा है। लेकिन नहीं पिता, नहीं दादा, वह धोखा नहीं था। नदी सचमुच गायब हो गयी है। उसका पानी सूख गया है।''[5]

अंध जड़ आस्थाएं किसी भी समाज को भीतर तक खोखला कर देती हैं। धर्म की आड़ में अध्यात्म, पूजा – पाठ का ढिंढोरा पीटते ही आम जनसमुदाय भेड़ों की भांति उस स्थान पर एकत्रित हो जाते हैं जहॉ मानवीय स्तर पर चेतना का प्रदूशण फैलाया जाता है। अध्यात्म के नाम पर उनकी तार्किकता मृत प्राय हो जाती है। उनकी सोच पर अंकुश लग जाता है। उन्हें केवल मात्र तथाकथित धर्माचार्य का कथन ही सत्य लगता है। मानवीय स्तर पर चेतना का प्रदूषण पर्यावरण प्रदूषण से भी घातक होता है। यह धीमे नशे की भांति असंख्य जीवन लील लेता है। परिवार बर्बाद कर देता है तथा समाज को अंध आस्थाओं में घुसेड़ कर तहस – नहस करके ही छोड़ता है।

ऐसे नकली धर्माचारी शासन - प्रशासन को भी अपने वश में कर लेते हैं। अधिकतर प्रशासक इन धर्माचारियों के पीठू बन जाते हैं। प्रशासन की आड़ में ऐसे तथाकथित धर्म के ठेकेदार हमारे वनों की शान बाघ ,चीता एवं शेर की खाल को अपना आसन बनाते हैं। हमारे राजनेता एवं प्रशासक अपने हाथ बांधे उनके चरणों में नतमस्तक होते हैं। कोई इनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता! ऐसे लोग सरेआम महात्मा भगवान दास के रूप में भूमि में सुरंग खोदने की भांति देश को भी खोखला कर देते हैं।

हरनोट की 'सड़ान' कहानी का मुख्य पात्र सेवा निवृत फौजी अधिकरी नीरम नेगी एक ऐसे ही महात्मा भगवान दास एवं उसके चेले - चांटों का पर्दाफाश करता है जो धर्म की आड़ में आध्यात्मिक सड़यंत्र करके उसके घर के नीचे रात्रि के समय डाईनामाइट के विस्फोट से सुरंग की खुदाई का कार्य करते हैं। वे लोगों में ऐसा भ्रम फैलाते हैं कि सुरंग में माता वैष्णों देवी की तथाकथित पिण्डियों को एक शक्तिपीठ के रूप में स्थापित किया जा रहा है ताकि श्रद्धालुओं में अंध आस्था जगाकर धन कमाया जा सके। महात्मा भगवान दास लोगों में एक और भ्रम फैलाता हैं कि देवी ने उसे स्वपन में दर्शन दिए और उसे आदेश हुआ था कि वह सुंरग निर्माण करके शक्तिपीठ स्थापित करे।

हरनोट ने इस कहानी में लोगों की अंध आस्था की पराकाष्ठा चित्रित की है - जब वे सुरंग के ऊपर निर्मित सीवरेज टैंक से रिसने वाले जल को मॉ वैष्णों द्वारा प्रसाद स्वरूप प्रदत पवित्र जल मानकर उसका आचमन करते हैं तथ बोतलों में भरकर अपने घरों को ले जाते हैं।

सेवा निवृत सेना अधिकरी नीरम नेगी ने जब इस रहस्य को जाना तो उसे बहुत दुख हुआ कि अंध आस्था में लीन व्यक्ति की तार्किकता क्षीण हो जाती है उसे दुर्गंध से भी सुगंध ही आती है यथा - ''घर के नीचे ठीक उस गुफा के ऊपर एक गंदे पानी का टैंक बना था जिसमें आधे शहर की गंदगी इकट्ठी होती थी। उसकी नजर उस पर चली गई। नीचे की तरफ एक दरार सी दिखी। ऊपर चढ़ने के बजाय वह टैंक की तरफ चला गया। गुफा में हुए बलास्टों से टैंक फट गया था और गंदा पानी बाहर निकल कर एक छोटी सी कूहल से बिल्कुल गुफा के ऊपर जा कर उसके भीतर रिस रहा था। देवी के चमत्कार का राज खुल गया। वह हतप्रभ सा काफी देर तक वहीं सिर पकड़ कर बैठा रहा। केली और पारव को जब उसने इस बात को बताया तो वे यह सोचकर हक्के - बक्के रह गए थे कि लोग उस गंदे पानी को देवी का अमृत मानकर पीए जा रहे हैं।''[6]

लिटन ब्लॉक गिर रहा है कहानी में हरनोट ने लिटन ब्लॉक भवन जो बंदरों , कुत्तों एवं भिखारियों का आश्रय स्थल बन चुका था। यद्यपि 1876 से 1880 के मध्य यह भवन बॉयसराय लॉड लिटन का आवास स्थल रहा था। सरकार ने इस भवन को वर्ष 2010 में असुरक्षित घोषित कर दिया। परिणाम स्वरूप इस भवन के खाली करवाने से बंदरों और कुत्तों को तो विशेष फरक नहीं पड़ा था किंतु भिखारियों को अपना आश्रय ढूंढने में बहुत मशक्ष्कत करनी पड़ी। इस भवन में रहने वाले नमसू और कुबड़ी भिखारी युगल के आशियाने को उजाड़ने वाले पुलिस और प्रशासन के लोगों ने पर्यावरण संरक्षण में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका प्रदर्शित की कि उन्होंने प्लॉस्टिक के फटे तिरपाल , प्लास्टिक के टुटे - फुटे कपों, बोतलों का नमसू और कुबड़ी का घर उजाड़ कर पर्यावरण को दूषित करने वाली वस्तुओं का सही निपटान कर दिया यथा - ''प्रशासन के कर्मचारियों के साथ डयूटी बजाते पुलिस वालों ने तिरपाल को खींच कर इस बड़े पर्यावरण विरोधी अभियान का श्री गणेश किया था। नमसू और कुबड़ी ने अपना यह घर चार - पॉच रेलिंग के पाइपों में प्लास्टिक की रस्सियॉ बॉध कर बनाया था। वे रात को तिरपाल को खोलकर उसे अपने ऊपर ओढ़ लेते और दिन को लपेट कर उसमें अपना सारा सामान बॉध देते। वही उन्हें बारिश , ठंड और हवा से बचाता। इसमें उनके वे फटे - पुराने कपड़े, प्लास्टिक के कप प्लेटें और बोरियां होती। जो कुबड़ी दिन भर की मेहनत से बाजार और गली - कुचों से उठा - उठा कर लाती रहती।

उसमें नमसू के दो फटे हुए पाजामें, एक कोट (जिसका एक बाजू आधा था और जिसे वह सर्दियों में पहनता था) दो तीन बिना बटन के कुरते , उसकी बीबी कुबड़ी की तीन बिना नाड़े की सलवारे , दो जनाना कुरते और एक चिथड़ा - चिथड़ा गर्म कम्बल रखा रहता। उसी में एक टुटे हुए शीशे का टुकड़ा और पॉच - छः दांतों वाली कंघी भी थी।

जिस दिन उनका वह घर उजड़ा, उस प्लास्टिक के तिरपाल के साथ वह सारा सामान भी प्रशासन के लोगों ने कचरा गाड़ी में ठूंस दिया था। दूसरे दिन लोगों ने जब अखबार देखा तो नमसू और कुबड़ी के उस प्लास्टिक के तिरपाल और दूसरी चीजों के फोटो प्रमुखता से छपे थे।''[7]

पहाड़ों में गृह निर्माण शैली वर्षों तक अपनी विशिष्ट पहचान के साथ पॉव पसारती रही तथा आगे बढ़ती रही। मिट्टी के कच्चे मटकंधे जलवायु एवं स्वास्थ्य की दृष्टि से बेहतर आवास होते थे। वर्तमान समय में ऐसे आवास विलुप्त प्राय हैं या केवल

मात्र इन मटकंधों में गौशालाएं रह गयी हैं। सत्तर के दशक के बाद ऐसे मकानों के निर्माण में निरंतर कमी आयी है। कंकर पत्थर के मकानों ने पर्यावरणीय माप दंडो को रौंधकर गर्मी में गर्म और सर्दी में और सर्द होकर मनुष्य को बेहाल करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं दिया है। झूठी शानो - शौकत की ईच्छा पाले मनुष्य परंपरागत आवासों को छोड़ता जा रहा है तथा कंकर - पत्थर वाले मकानों में जीवन बसर करने को बाध्य है।

मटकंधें के मकान जर्जर अवस्था में गिराए जाने पर मिट्टी में मिट्टी मिल जाती थी। सीमेंट - कंकर ईट के मकान तो गिराए जाने के बाद भी भूमि की उर्वरता को खत्म कर रहे हैं। यदि इसके मलवे को नदी नालों में फेंक दिया जाता है तो पानी का बहाव रूक जाता है तथा बाड़ खेती योग्य भूमि को बहा के ले जाती है।

मिट्टी के लोग कहानी में एस आर हरनोट ने गॉव के बालदू मिस्त्री तथा उसके परिवार के संधर्ष को दिखाया है। बालदू की पत्नी रामेशरी चाची तथा बेटी अमरो खजूर के झाड़ू तथा मांजड़ी बनाकर आस - पास के क्षेत्र में बेचकर बालदू की आर्थिक मदद करती हैं। बालदू से अब घर बनवाने का कार्य कोई नहीं करवाता। बालदू मिस्त्री जब मिट्टी के मटकंधें बनाने का कार्य करता था । उस समय दूर - दूर तक उसके जैसा मिट्टी के घर बनाने वाला कोई दूसरा नहीं था। चौधरी हरि सिंह तथा उसके बेटे ने बालदू को तरह - तरह के प्रलोभन दिए कि वह अपनी सड़क के पास वाली घासणी की जमीन उन्हें दे दे तथा उन पैसों से पक्का सीमेंट तथा कंकर ईट का आलीशान मकान बनवा ले । उनके प्रलोभन के झांसे में न तो बालदू की पत्नी रामेशरी चाची आयी और न बालदू।

बेटी अमरो ने पिता बालदू के समक्ष योजनाबद्ध तरीके से अपने लिए ही कच्चे मकान बनाने का आग्रह किया। उस घर का प्रारूप अमरो ने स्वयं तैयार किया। पत्नी, बेटी एवं बेटों ने बालदू की घर बनाने में पूरी मदद की। जब अमरो द्वारा तैयार प्रारूप के अनुसार घर का निर्माण पूर्ण हुआ तो उस घर को देखने के लिए दूर - दूर से लोग आने लगे। चौधरी हरि सिंह और उसके बेटे को जैसे सांप सूंघ गया । सरकारी अधिकारियों - कर्मचारियों ने भी उसका मुआयना किया। प्रिंट मिडिया में बालदू की भवन निर्माण कला की खबर छायी रही । दूसरे दिन जैसे ही अखबार चौधरी के बेटे के हाथ लगा वह खबर देखकर बुत की भांति अडिग हो गया - '' चौधरी ने ध्यान से सामने देखा और हथप्रभ रह गया। बालदू का नया बना घर चमक रहा था। उसे लगा जैसे आज का सूरज पूर्व की पहाड़ियों से नहीं बल्कि बालदू की खपरैल के बीच से उग रहा हो। वह भी उसी मुद्रा में जड़ हो गया। उन दोनों को इस तरह ऑगन में बुत की तरह खड़े देख एक - एक सदस्य उनके पास पहुंचे और उन जैसे हो गये। कुछ देर बाद जैसे बाप - बेटा नींद से जागे। दोनों ने अपनी आलिशान कोठी की तरफ देखा.....फिर दूर - दूर तक छोटे चौधरी ने अपने बनाए मकानों को याद किया... उस मिट्टी...गोबर और खपरैल से बने बालदू के घर के आगे सभी बौने लग रहे थे। उसके गुस्से और अपमान की कोई इंतहा नहीं रही। उसने अखबार को दोनों हाथों के बीच पूरे जोर से मसला और लाइटर से आग लगा दी, मानो बालदू के घर को जला दिया हो।''[8]

इसी तरह से हरनोट के 'नदी रंग जैसी लड़की' उपन्यास की नायिका सुनमा देई सशक्त महिला के रूप में ही उभर कर सामने नहीं आती अपितु पर्यावरण एवं प्रकृति को बचाए रखने में भी कम योगदान नहीं देती। सुनमा देई को राष्ट्र प्रेम, खेती बाड़ी, जल एवं पर्यावरण को बचाए रखने के गुण संस्कार रूप में अपने पिता से स्वतंत्रता से पूर्व प्राप्त हुए थे। सुनमा देई का सारा जीवन प्रकृति की गोद में बीतता है। नदी के तट पर बॉध बनने से असंख्य ग्रामीणों की भूमि जलमगन होने से बचाने के लिए वह प्रयास करती है। विस्थापित लोगों के पुनर्वास के लिए वह सरकार के विरूद्ध खड़ी हो जाती है। रचनाकार ने नदी के प्रतीक रूप में शतु नाम की बालिका को दादी सुनमा देई की सखी के रूप में चितित्र किया है। सुनमा देई जब भी हताश निराश होती है। शतु उसी पल प्रगट हो जाती है। सुनमा देई अपने जीवन के प्रत्येक पल को पर्यावरण को संरक्षित करने में लगाती है। बांध बनाने वाले कामगारों को जब कंपनी के अधिकारी कोरोना काल में काम से निकाल देते हैं तो वह उन्हें सार्वभौमिक मॉ की तरह अपनाती है। उन्हें आश्रय देकर भोजन - पानी की व्यवस्था ही नहीं करती अपितु अपनी शेष भूमि को भी उनके नाम करके नदी की ओर चल पड़ती है यथा - ''दादी ऑगन से मजदूरों के परिवार के मुखिया को आवाज देती है। वह झटपट उनके पास चला आता है। हाथ में उठाया लिफाफा उसे पकड़ाकर चुपचाप पगडण्डी से नीचे उतर जाती है। उसमें मजदूरों के नाम की वसीयत है। उन्होंने अपनी सारी जगह -जमीन , घर और पैसा उनके नाम कर दिया है। मुखिया की समझ में कुछ नहीं आता कि यह सब क्या है ..... दादी सुनमा इतनी रात अकेली कहॉ जा रही है? वह उन्हें तब तक उतरते हुए देखता रहता है जब तक वे उसकी ऑखों से ओझल नहीं हो जातीं। चलते - चलते दादी का हाथ कुरते की जेब में जाता है। जेब खाली है।

दादी अपने खेत में पहुंचती है तो एक मीठी आवाज कानों में पड़ती है,

''आ गयी दादी ? ''

दादी कुछ नहीं कहती। हल्की सी मुस्कान देती है। शतु ने इससे पहले कभी उनके चेहरे पर ऐसी डूब और जड़ता नहीं देखी है। ठहराव और विराम नहीं देखा है। यह स्थायित्व भीतर के खालीपन से है , जो अपार है। उनके सर्वस्व के त्याज्ञ का अनन्त विस्तार है।.... वह जैसे अब नदी हो रही है। नदी के जल में मिलकर चॉदनी हो रही है।

शतु नाव से उतरकर दादी का हाथ पकड़ लेती है,

''आओ दादी आओ। आज तुम नाव के चप्पू पकड़ो। नाव तुम्हें ही चलानी है।

दादी नाव में बैठती है। चप्पू पकड़ती है। प्रश्नाकुल ऑखें लड़कियों पर स्थिर हो जाती हैं। दादी कुछ पूछना चाहती है। बोलने से पहले ही शतु सभी का बारी - बारी से परिचय करवाने लगती है,

शतु की सहेलियॉ है दादी, यानी मेरी सहेलियॉ। पहली यमु, दूसरी विपु, तीसरी इरा, चौथी चंद्रा, पॉचवीं गिरि, छटवीं स्पिति और सातवीं पब्बु। और भी बहुत सी हैं दादी , पर पता नहीं कहॉ - कहॉ हैं?''[9]

आम जन मानस की नजरों में शालीनता का मुखौटा ओढ़े राजनेता , उन्हीं आम लोगों के पास अपने से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं देख सकता। यदि उसे उनकी कोई भूमि, वस्तु या और कुछ जच जाता है तो वह तब तक शांत नहीं बैठता जब तक उसे प्राप्त नहीं कर लेता। उस निर्धन व्यक्ति से उस लुभावनी वस्तु को प्राप्त करने के लिए वह नीचे से ऊपर तक पूरी सरकारी मशीनरी को व्यस्त कर देता है। अपनी इच्छा पूर्ति के लिए वह किसी भी हद तक गिर जाता है। उसकी शक्ति की आड़ में उसके मुंह लगे किसी भी होनी - अनहोनी को अंजाम दे देते हैं। ऐसे राजनेता के करिंदे अपने नेता को खुश करने के लिए उस लुभावनी वस्तु के मालिक के पुत्र को जहर देकर मार देते हैं, पत्नी को विक्षिप्त बनाकर मरने के लिए छोड़ देते हैं तथा बेटी को उसे बेचने के लिए बाध्य कर देते है।

हरनोट के हिडिंब उपन्यास का मुख्य पात्र शावणू प्रकृति एवं पर्यावरण का संरक्षक है। उसे उपनी जमीन के साथ - साथ पूरी प्रकृति से बहुत प्रेम है। उसे बहुत पीड़ा होती है जब पहाड़ों पर विकास के नाम पर डायनामईट चलाकर भूमि को खंगाला जाता हैं। ऐसे ही कारण है कि अवैध खनन ने नदियों के बहाव को परिवर्तित कर दिया है। भारी वर्षा के कारण उसके घर के सामने ही विशाल झील बन जाती है।

सदंर्भ

1 नदी गाएब है पर्यावरणीय चेतना की कहानियॉ: एस आर हरनोट, संपादक उषारानी राव पृ.154,
2 नदी गाएब है पर्यावरणीय चेतना की कहानियॉ: एस आर हरनोट संपादक उषारानी राव पृ.156
3 दारोश तथा अन्य कहानियां: एस आर हरनोट, पृ.44
4 प्रतिधि कहानियां: एस आर हरनोट, पृ.17
5 नदी गाएब है पर्यावरणीय चेतना की कहानियॉ: एस आर हरनोट, संपादक उषारानी राव पृ.102
6 दारोश तथा अन्य कहानियां: एस आर हरनोट, पृ.114
7 लिटन ब्लॉक गिर रहा है: एस आर हरनोट, पृ.130-131
8 प्रतिनिधि कहानियां: एस आर हरनोट, पृ.154
9 नदी रंग जैसी लड़की: एस आर हरनोट, पृ.235

सशस्त्र बल (विशेष शक्तियां) अधिनियम (AFSPA) और पूर्वोत्तर भारत में मानवाधिकार: बदलते परिदृश्य एवं वैकल्पिक सुरक्षा मॉडलों का विश्लेषण

सुशील कुमार

सहायक प्राध्यापक (राजनीति विज्ञान विभाग) बी0एम0डी0 कॉलेज, दयालपुर (वैशाली)

सारांश

सशस्त्र बल (विशेष शक्तियां) अधिनियम (AFSPA)1958 पिछले सात दशकों से भारत की आंतरिक सुरक्षा नीति का एक महत्वपूर्ण कानूनी उपकरण रहा है। परंतु वर्तमान परिदृश्य में नागरिक सुरक्षा की बढ़ती मांग एवं उग्रवाद की घटनाओं में कमी को देखते हुए इसकी प्रासंगिकता पर प्रश्न चिन्ह उत्पन्न हुआ है।

प्रस्तुत आलेख AFSPA अधिनियम के उपयोग से उत्पन्न मानवाधिकारों के उल्लंघन की स्थिति एवं राज्य की सुरक्षा अनिवार्यता के बीच के द्वंद्व का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। साथ ही इस आलेख में राज्य सुरक्षा हेतु AFSPA के क्रमिक निरस्त्रीकरण और अन्य वैकल्पिक सुरक्षा मॉडलों यथा मानव सुरक्षा और विकास आधारित मॉडलों पर प्रकाश डाला गया है।

कुंजी-शब्द- मानवाधिकार, सुरक्षा, उग्रवाद, सशस्त्र बल (विशेष शक्तियां) अधिनियम, विकास, पूर्वोत्तर

प्रस्तावना

स्वतंत्रता के बाद से ही पूर्वोत्तर भारत अपनी विशिष्ट भौगोलिक अवस्थिति एवं निर्जातीय जटिलता के कारण संघर्ष का केंद्र बना रहा है। फलस्वरूप राष्ट्रीय सुरक्षा एवं एकता बरकरार रखने के उद्देश्य से 1958 में AFSPA को अधिनियमित किया गया।

उल्लेखनीय है कि AFSPA अधिनियम की धाराओं का उपयोग 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन को कुचलने के लिए किया गया था।

AFSPA के कानूनी प्रावधानों का विश्लेषण

- धारा 3 (अशांत क्षेत्र की घोषणा)- इस धारा के अंतर्गत राज्य के राज्यपाल या प्रशासक या केंद्र सरकार किसी क्षेत्र को 'अशांत' घोषित कर सकते हैं। इस घोषणा के बाद इन क्षेत्रों में सशस्त्र बलों की तैनाती हो जाती है।
- धारा 4- इस अनुभाग के अंतर्गत सुरक्षा बलों को घातक बल प्रयोग करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। इसके अंतर्गत वे किसी भी व्यक्ति को चेतावनी के बाद गोली मार सकते हैं तथा बिना वारंट के गिरफ्तार कर सकते हैं। साथ ही उन्हें किसी भी परिसर में प्रवेश करने तथा तलाशी लेने की शक्ति प्राप्त हो जाती है।
- धारा 6- इस धारा के कारण सुरक्षा बलों की जवाबदेही सुनिश्चित करने में बहुत समस्या होती है, क्योंकि इसके अंतर्गत उनके खिलाफ कानूनी कार्यवाही या जांच केंद्र सरकार की पूर्व मंजूरी के बिना शुरू नहीं की जा सकती है।

उपरोक्त धाराएं मानवाधिकार के लिए चुनौतियां पेश करती रही है। अक्सर पूर्वोत्तर क्षेत्रों में फर्जी मुठभेड़ (Extra judicial killing), मनमानी गिरफ्तारियां एवं महिलाओं के प्रति हिंसा एवं अपराध के आरोप लगते रहे हैं।

उदाहरणस्वरूप:-

- जस्टिस संतोष हेगड़े समिति ने 2013 में मणिपुर में फर्जी मुठभेड़ के छह मामलों की जांच की और पाया की वे वास्तव में फर्जी थे।

- दिसंबर 2021 में नागालैंड के मोन जिले की घटना इसका नवीनतम उदाहरण है जहां 14 निर्दोष नागरिकों को फर्जी मुठभेड़ में मार दिया गया था।
- यौन हिंसा- मणिपुर में 2004 में मनोरमा देवी की हिरासत में बलात्कार एवं हत्या का मामला राष्ट्रीय ही नहीं बल्कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सामने आया। इसके विरोध में मणिपुर की महिलाओं के 'नग्न प्रदर्शन' ने अंतरराष्ट्रीय मीडिया का ध्यान खींचा।

बदलते सुरक्षा परिदृश्य में ।थ्च। की प्रासंगिकता:-

सरकार के शांति प्रयासों एवं विभिन्न विकास परियोजनाओं के कारण पूर्वोत्तर क्षेत्र में शांति बहाल हो रही है।

- उग्रवादी घटनाओं में कमी- केंद्रीय गृह मंत्रालय की 2025 की 'ईयर एवं रिव्यू' रिपोर्ट के अनुसार उग्रवादी घटनाओं में 70% तक की कमी आई है।
- शांति प्रयासों की सफलता- 'बोडो समझौता', 'कार्बी आंगलोंग समझौता' और 'NSCN' के विभिन्न गुटों के साथ शांति समझौता के कारण पूर्वोत्तर भारत में संघर्ष एवं उपद्रव की घटनाओं को विराम लगा है।
- विकास योजनाओं का क्रियान्वयन:- पीएम डिवाइन (PM-DevINE) एवं 'पूर्वोत्तर विकास और संरचना विकास योजनाओं' (NESIDS) द्वारा पूर्वोत्तर में विकास की गति तेज हुई है। यहां के युवाओं को रोजगार के नए-नए अवसर प्रदान किये जा रहे हैं साथ ही पूर्वोत्तर भारत की आधारभूत संरचनाओं का विकास किया जा रहा है।

इन बदलते परिदृश्य में पूर्वोत्तर भारत के त्रिपुरा (2015) और मेघालय (2018) ने AFSPA को पूरी तरह से हटा लिया है। इसके अलावा 2022 एवं 2023 में नागालैंड, असम, मणिपुर और अरुणाचल प्रदेश के कई जिलों में ।थ्च। को हटा दिया गया है।

चुनौतियां एवं भविष्य की संभावना है (वैकल्पिक सुरक्षा मॉडल):-

चुनौतियां-

उत्तर पूर्व भारत में ।थ्च। को हटाने से राष्ट्रीय सुरक्षा के समक्ष विभिन्न चुनौतियां पेश आ सकती हैं:-

i. सुरक्षा तंत्र में कमजोरी- इस अधिनियम के अभाव में सेना बिना वारंट के तलाशी एवं गिरफ्तारी नहीं कर पाएगी, जिसका फायदा उग्रवादी उठा सकते हैं।
ii. खुफिया तंत्र पर नकारात्मक प्रभाव- वर्तमान में सेना और असम राइफल्स का अपना एक 'इंटेलिजेंस नेटवर्क' है। सेना के पीछे हटने से यह तंत्र कमजोर होगा।
iii. स्थानीय पुलिस की क्षमता में कमी- राज्य पुलिस सेना की तुलना में कई मोर्चों पर कमतर पाई गई है। स्थानीय पुलिस के पास उग्रवादियों का सामना करने के लिए उचित संसाधनों एवं प्रशिक्षण की कमी पाई गई है।
iv. निष्पक्षता पर प्रश्नचिह्न-जातीय संघर्षों के दौरान स्थानीय पुलिस पर पक्षपात करने के आरोप लगाते रहे हैं।
v. उग्रवादी समूहों के पुनर्गठन की संभावना- पूर्वोत्तर क्षेत्र से सेना के पूरी तरह हटाने से उग्रवादी घने जंगलों एवं दुर्गम क्षेत्रों में अपनी पैठ बढ़ा सकते हैं एवं इन क्षेत्रों में युवाओं की जबरन भर्ती भी बढ़ सकती है।
vi. अंतर्राष्ट्रीय सीमा की सुरक्षा पर संकट- पड़ोसी देशों म्यांमार, चीन एवं बांग्लादेश से भारत की लगभग 5500 किलोमीटर सीमा लगती है। AFSPA के बिना सेना के लिए इन सीमावर्ती क्षेत्रों से घुसपैठ को रोकना कठिन हो सकता है। अवैध हथियारों, ड्रग्स और मानव तस्करी के सिंडिकेट उन क्षेत्रों को अपना ट्रांजिट रूट बना सकते हैं जहां AFSPA हटाया गया हो।
vii. जातीय संघर्ष एवं हिंसा की पुनरावृत्ति- पूर्वोत्तर भारत की विभिन्न जातीय समूह में स्वायत्तता एवं भूमि विवाद को लेकर अक्सर विवाद होता रहा है। 2023 से मणिपुर में जारी हिंसा इसका नवीनतम उदाहरण है। यदि AFSPA हटता है तो जातीय तनाव को नियंत्रित करना नागरिक प्रशासन के लिए मुश्किल पैदा कर सकता है।

वैकल्पिक सुरक्षा मॉडलः

वर्तमान समय में एक ऐसे सुरक्षा मॉडल की संभावना तलाशी जा रही है, जो सुरक्षा एवं मानवाधिकारों के बीच संतुलन स्थापित कर सके। कुछ प्रमुख संभावित मॉडल निम्न हो सकते हैंः-

- सामुदायिक पुलिसिंग- 'त्रिपुरा का प्रयास मॉडल' एवं 'असम का प्रहरी प्रोजेक्ट मॉडल' इसके सफल उदाहरण हैं। इसके अंतर्गत स्थानीय लोग और पुलिस मिलकर उग्रवादी का सामना करते हैं एवं सूचनाओं का आदान-प्रदान करते हैं।
- जीवन रेड्डी मॉडल- 2005 में जीवन रेड्डी समिति ने AFSPA को रद्द करने के साथ ही इसके आवश्यक प्रावधानों को गैर कानूनी गतिविधियां (रोकथाम) अधिनियम (UAPA) में शामिल करने का सुझाव दिया था ताकि सुरक्षा बलों को कानूनी आधार भी मिले लेकिन जवाबदेही के साथ।
- राज्य पुलिस का सुदृढ़ीकरण- नागरिक शासन मजबूत करने के उद्देश्य से अब सुरक्षा का जिम्मा सेना से हटाकर राज्य पुलिस को देने पर विचार हो रहा है क्योंकि पुलिस को असीमित छूट नहीं होती और वे Crpc के तहत कार्य करती है।
- हाइब्रिड सुरक्षा मॉडल- इसके अंतर्गत देश की आंतरिक सुरक्षा की पूर्ण जिम्मेदारी स्थानीय पुलिस और CRPF को सौंपी जाएगी एवं सेना केवल अंतर्राष्ट्रीय सीमाओं की सुरक्षा करेगी।

निष्कर्ष-

यद्यपी AFSPA अधिनियम को लागू करने का उद्देश्य राज्य में शांति एवं अखंडता को बनाए रखना था, और यह अपने उद्देश्य में काफी हद तक सफल भी रहा परंतु इसके दुरुपयोग और मानवाधिकारों के उल्लंघन के आरोप के कारण स्थानीय जनता और सरकार के बीच 'विश्वास की कमी' पैदा हुई।

अब सुरक्षा एजेंसियां और केंद्र सरकार को भी लगने लगा है कि केवल बल प्रयोग द्वारा पूर्वोत्तर भारत में शांति नहीं लाई जा सकती। यही कारण है कि आज असम, मणिपुर और नागालैंड के अधिकांश जिलों से ।थ्च्। को चरणबद्ध तरीके से हटाया जा रहा है।

वर्तमान में पूर्वोत्तर भारत में ष्वैकल्पिक सुरक्षा मॉडलष् को अपनाया जाने लगा है।

अब केवल बल-प्रयोग द्वारा उग्रवाद को खत्म करने पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है बल्कि उग्रवाद की जड़ों (जैसे बेरोजगारी, गरीबी और पहचान के संकट) पर भी प्रहार किया जा रहा है।

भारत सरकार के 'एक्ट ईस्ट पॉलिसी' के तहत पूर्वोत्तर भारत में बुनियादी ढांचाओं का निरंतर विकास हो रहा है। इससे यहां के युवा अब हथियार उठाने की बजाए मुख्य-धारा की गतिविधियों में शामिल हो रहे हैं।

अंततः वर्तमान परिदृश्य में पूर्वोत्तर भारत में सशस्त्र बल विशेषाधिकार अधिनियम (AFSPA) और मानवाधिकार के प्रश्नो के विश्लेषण करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि स्थाई समाधान केवल बल प्रयोग द्वारा संभव नहीं है।

वस्तुतः मानव अधिकारों के प्रश्नों और सुरक्षा आवश्यकताओं के बीच संतुलन स्थापित करने हेतु पूर्वोत्तर भारत में चरणबद्ध तरीके से AFSPA को हटाना होगा तथा इसके जगह मानवाधिकारों के प्रति संवेदनशील सुरक्षा ढांचे का विकास करना होगा।

संदर्भ

1. भारत सरकार, गृह मंत्रालय की रिपोर्ट 2025-26
2. संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार परिषद की 'वार्षिक रिपोर्ट'
3. जस्टिस बीख पीख जीवन रेड्डी समिति, AFSPA समीक्षा प्रतिवेदन
4. The Armed force (special power) Act, 1958, Act No. 28 of1958.
5. Report of the supreme court& appointed Santosh Hegde Committee on Extra& judicial killing in Manipur (2013).
6. The Hindu] Indian eñpress (News Archives for specific incidents like oting incident, Manorama case)-

आदी जनजाती की लोककथाओं में कबाङ का महत्व

डॉ० उसुम जोङके

गेस्ट लेक्चरर, जवाहरलाल नेहरू महाविद्यालय, पासीघाट, अरुणाचल प्रदेश

मनुष्य जैसे-जैसे छोटे-छोटे समूह से समाज के रूप में परिवर्तित होता गया वैसे-वैसे उसे विनियमित करने के लिए एक संगठन की आवश्यकता हुई। यहीं संगठन सभा और संस्थाओं के नाम से जानी जाती है। समाज की मूलभूत आवश्यकता आपस में शांति बनाए रखना है। जिसके लिए कुछ व्यवस्था की आवश्यकता पड़ती है। अरुणाचल प्रदेश के विभिन्न जनजातियों की अपनी-अपनी सामाजिक व्यवस्था देखने को मिलती है। विभिन्न जनजातियों के बीच ग्राम परिषद को अलग-अलग नामों से जाना जाता है। आदी जनजाति में 'कबाङ', आका जनजाति में 'मेला', अपातानी जनजाति में 'बुलियाङ', ताङसा जनजाति में 'खापोङ', नोक्ते जनजाति में 'ङोथुम', वांचो में 'वाङसु-वाङसा', मिश्मी में 'फाराई' और शेरदुकपेन में 'जाङ' कहें जाते हैं।

आदी जनजाति में आदिकाल से ही अपनी प्रशासनिक व्यवस्था प्रणाली चली आ रही है, जिसे 'कबाङ' कहा जाता है। 'कबाङ' पंचायत का पर्याय है। 'कबाङ' आदी जनजाति की सामाजिक संस्था है जिसका स्वरूप शुद्ध रूप से लोकतान्त्रिक है। यह एक ऐसा संगठन है जो न्यायिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक व्यवस्था को लोकतान्त्रिक रूप देने में तथा उसे सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। 'कबाङ' का स्वरूप बहुत जटिल नहीं है। इसका कोई स्थायी सदस्य नहीं होता है। मूल रूप से गाँव के गाँव बूढ़ा एवं बड़े-बुजुर्ग ही आवश्यकता के अनुसार 'कबाङ' के सदस्य के रूप में नियुक्त किए जाते हैं। कोई एक विशिष्ट व्यक्ति या किसी एक वर्ग द्वारा 'कबाङ' संचालित नहीं होती है।

'कबाङ' शब्द बहुअर्थी है। जो बैठक, सम्मेलन, विचार-विमर्श आदि के अर्थ में प्रयोग होता आया है। आदी जनजाति में प्राप्त पौराणिक कथाओं में 'कबाङ' का उल्लेख मिलता है जहाँ 'कबाङ' न्याय, ज्ञान और निष्पक्षता का प्रतीक है। 'कबाङ' के संदर्भ में जोगेन्द्र नाथ ने अपनी पुस्तक 'कबाङ' शब्द का अर्थ व्यापक है और यह अपने भीतर सामाजिक नैतिक महत्व को समेटे हुए हैं'।[1]

'कबाङ' शब्द आमतौर पर प्रशासनिक व्यवस्था के अर्थ में समझा जाता है जो आदी समाज को संचालित और संगठित रखने में अहम भूमिका निभाती है। परंतु 'कबाङ' शब्द का अर्थ व्यापक है। यह केवल न्याय प्रणाली तक ही सीमित नहीं है अपितु 'कबाङ' एक ऐसी सभा है जहां समाज और गाँव से संबंधित सामाजिक-सांस्कृतिक गतिविधियाँ एवं समस्याओं पर निर्णय लिए जाते हैं। समाज और गाँव से जुड़े कोई भी विषय 'कबाङ' का विषय हो सकता है। उदाहरण स्वरूप पर्व-त्योहार, खेती-बाड़ी, लड़ाई-झगड़े, पति-पत्नी, गाँव की उन्नति, चोरी-चकारी, आखेट-शिकार आदि जैसे विषय कबाङ के विषय हो सकते हैं। इन सभी विषय से संबंधित समस्याओं को लेकर 'कबाङ' में निर्णय लिए जाते हैं।

'कबाङ' मुख्य रूप से तीन प्रकार के होते हैं- 'दोलुङ कबाङ', 'बाङगो कबाङ' और 'बोगुम-बोकाङ कबाङ'। कबाङ का विभाजन क्षेत्र और सीमाओं के आधार पर होता है। 'दोलुङ कबाङ' कबाङ का पहला चरण है। यह केवल गाँव या ग्राम स्तर तक ही सीमित है। गाँव में होने वाले विवादों से लेकर सामाजिक-सांस्कृतिक गतिविधियों से संबंधित सभी निर्णय 'दोलुङ कबाङ' के अंतर्गत लिए जाते हैं। 'बाङगो कबाङ' कबाङ का दूसरा चरण है। इसके अधिकार क्षेत्र में कई गाँव आते हैं या ब्लॉक आते हैं। 'बोगुम-बोकाङ कबाङ' कबाङ का सबसे बड़ा और अंतिम चरण है। इसके अंतर्गत कई गाँव, उपजनजातियाँ और जनजातियाँ आ जाती हैं। यह आलोच्य उपजनजातीय समाजों का मुख्य और उच्चतम संगठन है। इन तीनों चरणों के अतिरिक्त कबाङ की कुछ छोटी इकाइयाँ भी देखने को मिलती हैं, यथा 'अराङ कबाङ' और 'रोपिन/ओपिन कबाङ'। अराङ कबाङ मूल रूप से पारिवारिक कबाङ को कहा जाता है वहीं 'रोपिन/ओपिन कबाङ' गोत्र या कुल से संबंधित होते हैं। डॉ. गिन्दु बोराङ ने अपनी पुस्तक में आदी जनजातीय समाज के संदर्भ में 'कबाङ' के चार प्रकार बताये हैं-" अराङ या ओपिन कबाङ, दोलुङ कबाङ, बाङगो कबाङ और बोगुम-बोकाङ कबाङ आदी (पादाम) समाज में परंपरागत रूप से सदियों से चली आ रही हैं।"[2]

बानी दाङगेन ने भी अपनी पुस्तक में 'कबाङ' की प्रकारों को विवेचित करते हुए लिखते हैं- "कबाङ की संरचना या संविधान तीन स्तरीय है- प्रत्येक इकाई पूर्ण स्वायत्तता के साथ कार्य करती है। कबाङ की इन प्रकारों में से कबाङ बोगुम बोकाङ कबाङ सबसे बड़ा माना जाता है।"[3]

कबाङ का इतिहास आदी जनजाति के मूल की तरह ही बहुत प्राचीन है। इसका उद्‌भव कब और कैसे हुआ इस पर ठीक-ठीक जानकारी उपलब्ध नहीं है। आदी जनजातीय समाज में इस संस्था का विकास किस प्रकार हुआ यह आज भी अनभिज्ञ है। परंतु इतना तो अवश्य कह सकते हैं कि कबाङ का अस्तित्व अति प्राचीन है जो सदियों से पूर्वजों द्वारा समाज को संचालित करने के लिए अपनाती आ रही है। आदी जनजाति में 'कबाङ' की उत्पत्ति का वर्णन लोककथाओं में देखा जा सकता है। लोक कथाओं के अनुसार 'कबाङ' का प्रतिष्ठापन 'तूमी लोनमो' नामक व्यक्ति ने किया था। सृष्टि के क्रमिक विकास में 'कोङकी बोते' नामक व्यक्ति ने 'तूमी लोनमो' को समाज में कबाङ की प्रतिस्थापना के लिए नियुक्त किया। 'कबाङ' की जिम्मेदारी 'तूमी लोनमो' के कंधे पर रख दिया गया ताकि समाज को व्यवस्थित और संगठित किया जा सके। इसीलिए 'तूमी लोनमो' को 'कबाङ आबु' का पहला प्रतिनिधि माना जाता है। आगे चलकर कबाङ की महत्ता बलवति हुई और आज तक आदी समाज में इसकी महत्ता कम नहीं हुई।

आदी जनजाति में प्रायः जीवन के तमाम पहलुओं से संबंधित कबाङ लड़ते हुए देखें जा सकते हैं। 'कबाङ' के लिए एक सुनिश्चित दिन रखा जाता है। उस दिन कबाङ के सदस्यों को बुलाया जाता है फिर दोनों पक्षों की ओर से पूरी बातों को सुनने के बाद कबाङ के सदस्य अपना निर्णय सुनाते है। कबाङ के सदस्य वस्तुतः निर्णायक मण्डल के रूप में कार्य करते हैं। दोनों पक्षों में से जो गलत होता है उसे दंडित किया जाता है। कई बार गलती करने वाले को जुर्माना भी भरना पड़ता है। जुर्माने के रूप में रूपए-पैसे से लेकर मिथुन तक दिया जाता है। आपसी क्लेश के कारण किसी व्यक्ति की हत्या कर दिये जाने पर पुराने जमाने में जुर्माना के तौर पर मिथुन दिये जाते थे। यह जुर्माना 'मिदुम' के नाम से जाना जाता है। 'मिदुम' अर्थात् किसी व्यक्ति के जान के बदले लिया जाने वाला जुर्माना। बाकी जुर्मानाओं के लिए 'आजेङ' शब्द का प्रयोग उपयोग में लाया जाता है। 'मिदुम' देने के दौरान 'मिदुम' देने वाला व्यक्ति दूसरे पक्ष के व्यक्ति को जब मिथुन सौंपता है तब वह मिथुन के गले में 'रिकी' नामक गंध युक्त लता बांध देता है। यही रिवाज है। इस रिवाज से संबंधित 'दादी बोते क मिदुम पिन्नाम' (दादी बोते द्वारा जुर्माना देना) नामक लोककथा प्रचलित है। लोककथा इस प्रकार है-"दादी होमी नामक समुदाय के लोगों ने मिथुन पालन का कार्य करते थे। इसी समुदाय के व्यक्ति जिसका नाम 'दादी बोते' था, के पास बहुत संख्या में मिथुन थे। इतनी भारी संख्या में मिथुनों को देखकर अङो-ताकार समुदाय के लोगों के मन में मिथुन के लिए लालच आ गया। यह लालच इतना बढ़ गया कि 'अङो ताकार' समुदाय के लोग 'दादी बोते' के मिथुनों में से एक बछड़ा चुराने की योजना बना डाली। योजना के तहत उन लोगों ने एक लौकी को स्त्री का वस्त्र और आभूषण पहनाया और उसे उस नदी के किनारे पत्थर के ऊपर बैठा दिया जिस नदी के किनारे से 'दादी बोते' रोज आना-जाना करते थे ताकि दादी बोते की नजर उस स्त्री रूपी लौकी पर पड़े। अगले दिन रोज की तरह नदी के किनारे से गुजरते हुए दादी बोते की नजर उस स्त्री पर पड़ जाती है। वह उसे आवाज देने लगी परंतु स्त्री की ओर से कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई। 'दादी बोते' उसे आवाज देते हुए उसके ओर पास गया। परंतु अब भी स्त्री ठस से मस नहीं हुई। कोतूहलवश दादी बोते ने अपनी छड़ी से उस स्त्री को छूकर देखा और इसी के साथ-साथ वह स्त्री रूपी लौकी नदी में गिर पड़ी। इस प्रकार दादी बोते अङो-ताकार समुदाय के लोगों द्वारा रचे गए षडयंत्र के शिकार हो गए। अङो-ताकार समुदाय के लोग उस स्त्री रूपी लौकी को अपनी समुदाय के लड़की के रूप में बताते हुए दादी बोते पर उसकी हत्या का आरोप लगाने लगा। वे दादी बोते से उस स्त्री की हत्या के जुर्माने के रूप में एक मिथुन माँगने लगा। इस षडयंत्र से अंजान दादी बोते जुर्माना देने के लिए तैयार हो जाता है और अङो-ताकार के लोगों को जुर्माने के रूप में 'रिकी' नामक गंध युक्त लता बांधकर एक मिथुन दे देते हैं।"[4] प्रस्तुत लोककथा में आदी समाज में कबाङ के महत्व को दर्शाया गया है। समाज में किसी भी प्रकार की घटित घटना या समस्याओं का समाधान कबाङ द्वारा ही दिया जाता है। जिस प्रकार प्रस्तुत लोककथा में दादी बोते कबाङ में अङो-ताकार के लोगों को 'मिदुम' के रूप में मिथुन देने का निर्णय लेता है। इस प्रकार देखा जा सकता है की आदी समाज में कबाङ के फैसले को महत्व दिया जाता है।

आदी समाज में कबाङ से संबंधित एक और लोककथा प्रचलित है, जहाँ कबाङ के महत्व को भलीभाती चित्रित किया गया है- 'असो तोमीन पितयाङ' (मिथुन के स्वामित्व की लड़ाई) नामक एक बहुत ही लोक प्रचलित लोककथा है। इस लोककथा के अनुसार दादी होमी समुदाय के लोग मिथुन पालक के रूप में जाने जाते थे। लोकमान्यता के अनुसार दादी होमी

समुदाय के पूर्वजों द्वारा 'लिङगन होबो' नामक विशालकाय जीव के कलेजे को निकाला गया था। उस निकाले गए कलेजे को उन्होंने जमीन में रोप दिया। कुछ दिनों बाद उस स्थान पर एक लौकी का पौधा उग आया। लौकी का पौधा बड़ा हुआ और उसमें एक लौकी का फल लग गया। उस फल से एक कीड़ा निकला। वहीं कीड़ा बड़ा होकर मिथुन के रूप में परिवर्तित हो गया। उस मिथुन का पालन-पोषण 'दादी होमी' समुदाय के लोगों की देख-रेख में होने लगा। मिथुन के बड़े होने पर दादी होमी समुदाय के लोग गौरवान्वित हो उसे 'दादी-रोपुङ अ पुबो' और 'दादी लेके गोमिक' नाम से पुकारने लगे। मिथुन घास चरते चरते 'कोली रिकबी' और 'कोतोङ रिकलोङ' नामक जगह में चले गए। इस प्रकार भोजन के लिए इधर-उधर घूमते हुए वह 'दोन्यी-पोलो' नामक स्थान तक पहुँच गए। यहाँ भी पहुँचकर मिथुन यहाँ-वहाँ घास चरने लगा। पहली बार मिथुन को देखकर 'दोन्यी-पोलो' नामक स्थान के लोग आश्चर्य चकित हुए। वे मिथुन को 'जीने-रोपुङ अ पुबो', 'पोलो रोपाङ अ पाबो' नाम से पुकारने लगे। 'दोन्यी-पोलो' नामक स्थान में मिथुन द्वारा घास चरने के कारण वहाँ के निवासी मिथुन पर अपना स्वामित्व जताने लगे। दादी होमी समुदाय के लोगों को जब इस बात की जानकारी मिली तो वे काफी रुष्ट हुए। दोन्यी पोलो नामक स्थान के लोग भी मिथुन पर अपना अधिकार छोड़ना नहीं चाहते थे। जिसके कारण 'दोन्यी-पोलो' और 'दादी होमी' नामक स्थान के लोगों के बीच युद्ध हो गयी। इस लड़ाई को सुलझाने के लिए 'कबाङ' बुलाई गई। 'कबाङ' की साक्षी के लिए 'दोन्यी-पोलो' नामक स्थान के 'जीने गोरूङ ए पित्तू' नामक जगह पर 'केयूम मेदङ हेने' और 'हुसेङ मेदुङ हेने' नामक व्यक्तियों को बुलाया गया। पूरी सच्चाई को जानने के बाद कबाङ द्वारा यह निर्णय लिया गया कि मिथुन का असली मालिक दादी होमी नामक समुदाय के लोग ही है।"5 मिथुन से संबंधित विषयों को लेकर आज भी गाँवों में अक्सर कबाङ करते हुए देखें जा सकते हैं। मिथुन द्वारा दूसरे के खेतों को नष्ट कर दिये जाने पर या एक मिथुन पर दो लोगों द्वारा अधिकार जमाने आदि समस्यों को सुझाने हेतु 'कबाङ' बुलाई जाती है।

देखा जा सकता है कि आदी जनजातीय समाज को संतुलित रखने के लिए 'कबाङ' की भूमिका महत्वपूर्ण भूमिका है। नियत तिथि में 'कबाङ' के सदस्यों के साथ-साथ साक्षी के रूप में गाँव के अन्य बड़े-बुजुर्गों को बुलाया जाता है। 'कबाङ' समस्याओं को सुलझाने का कार्य तो करता ही है साथ ही समाज में आपसी भाईचारे को बनाए रखने में भी सहायक सिद्ध होती है। लोककथाओं में समाज के जो रूप दिखाई पड़ते हैं वहीं रूप आदी समाज में आज भी देखने को मिलती है। लोककथा वस्तुत: लोक समाज का ही प्रतिबिंब है।

कबाङ से संबंधित 'मिसुम मियाङ क लाकने तक्सी नाम' नामक लोककथा भी प्रचलित है। लोककथा इस प्रकार है-"मिसुम-मियाङ नामक एक समुदाय था। इस समुदाय के लोग गहने और आभूषण बनाने में पारंगत थे। इनके द्वारा बनाए गए आभूषणों में 'दोकपुन-दोकने','पोङकु-पोदात' नामक मालाओं का विशेष महत्व है। उस समय 'मिसुम मियाङ' समुदाय के अलावा किसी अन्य समुदाय के लोगों को यह कला नहीं आती थी। अन्य समुदाय के लोग उन आभूषणों को लालसा भरी नजरों से देखते थे। इसलिए 'बांजी-बानमाङ' समुदाय के लोगों ने उन आभूषणों की चोरी करने की योजना बनाई। वे अपनी योजना में सफल भी हुई। जैसे ही इस बात का पता मिसुम मियाङ समुदाय को लगा वे अत्यंत दुखी हुए। इस चोरी के पीछे बांजी बानमाङ समुदाय के लोगों पर सबसे अधिक इन लोगों का शक गया। वे बांजी बानमाङ के लोगों पर चोरी का आरोप लगाने लगे परंतु बांजी बानमाङ समुदाय के लोग इस बात को मानने के लिए तैयार ही नहीं थे। वे इस आरोप को झूठा साबित करने में लग गए। परंतु 'मिसुम मियाङ' समुदाय के लोग भी कहाँ हार मानते। वे अपने आरोप को सही साबित करने के लिए सबके सामने अपने हाथ के अंगूठे को प्रमाण के रूप में काट देते है। ऐसा माना जाता है कि यही कटा हुआ अंगूठा 'केकिर' नामक अदरक की एक प्रजाति के रूप में बदल गयी। इस प्रकार मिसुम मियाङ समुदाय के लोग जीत गए और बांजी बानमाङ समुदाय के लोगों को झूठा एवं दोषी होने के साथ-साथ हार का भी सामना करना पड़ा।"[6] प्रस्तुत लोककथा में महंगे धातुओं और गहनों की चोरी हो जाने पर 'कबाङ' बुलाने की परंपरा देखने को मिलती है। देखा जा सकता है कि कबाङ न्याय का केंद्र है। इसीलिए जब भी किसी भी प्रकार की समस्या लोगों के बीच आता है तो उसका निवारण कबाङ द्वारा ही किया जाता है।

निष्कर्षत: आदी जनाजती में 'कबाङ' का महत्व सुविदित है। लोककथाओं से यह भी पता चलता है कि 'कबाङ' किस तरह आदी समाज के बीच कार्य करती है। यह लोककथाएँ आदी समाज के पारपरिक मूल्यों, शासन प्रणाली और नैतिक मान्यताओं को भी उजागर करती है। यह कबाङ केवल समाज के लिए निर्णय नहीं लेता, बल्कि यह सामाजिक जीवन का केंद्र भी हैं।

संदर्भ

1) जोगेन्द्र नाथ, द कबाङ : अबोरिगिनल सेल्फ- गवर्नमेंट ऑफ द आदिस ऑफ अरुणाचल प्रदेश, प्रोसीडिंग ऑफ नेफा, 1990, पृष्ठ-111
2) डॉ. गिन्दु बुराङ, चेंजिंग सोशियल एण्ड कल्चरल इंस्टीट्यूशन ऑफ आदी (पादाम) ऑफ अरुणाचल प्रदेश, हिमालयान पुब्लिशर्स, 2013, पृष्ठ-160
3) श्री बानी दाङगन, द कबाङ, ए यूनिक इंडिजेनस पॉलिटिकल इंस्टीट्यूशन ऑफ द आदिस, हिमालयान पुब्लिशर्स, न्यू दिल्ली-ईटानगर, 2014, पृष्ठ-49
4) श्री अकुम याओ, लोककथाकार, कोमकार गाँव, अपर सियाङ, अरुणाचल प्रदेश
5) श्री अकुम याओ, लोककथाकार, कोमकार गाँव, अपर सियाङ, अरुणाचल प्रदेश
6) श्री अकुम याओ, लोककथाकार, कोमकार गाँव, अपर सियाङ, अरुणाचल प्रदेश

भारत छोड़ो आंदोलन (1942) में हाजीपुर सब-डिवीजन के किसानों की भूमिका: एक ऐतिहासिक अध्ययन

नागेश्वर कुमार

सहायक प्राध्यापक, (इतिहास विभाग, बी. एम. डी कॉलेज, दयालपुर(वैशाली)

शोध-सारांश

भारत छोड़ो आंदोलन (1942) भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का वह निर्णायक चरण था, जिसमें जनसाधारण-विशेषकर किसान, मजदूर, विद्यार्थी और युवा वर्ग-ने स्वत:स्फूर्त, संगठित तथा उग्र प्रतिरोध के माध्यम से औपनिवेशिक सत्ता की जड़ों को गहराई तक हिला दिया। यह आंदोलन केवल अखिल भारतीय नेतृत्व की रणनीति तक सीमित नहीं था, बल्कि इसकी वास्तविक शक्ति स्थानीय स्तर पर सक्रिय ग्रामीण जनता से उत्पन्न हुई। बिहार में, विशेषत: तत्कालीन मुजफ्फरपुर जिला और उसके अधीन हाजीपुर सब-डिवीजन (वर्तमान वैशाली जिला) में किसानों की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण, निर्णायक और बलिदानपूर्ण रही।

प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान हाजीपुर सब-डिवीजन के किसानों की भूमिका का विस्तृत एवं ऐतिहासिक विश्लेषण करना है। इस क्षेत्र में किसान केवल आंदोलन के सहभागी नहीं थे, बल्कि वे नेतृत्वकर्ता, योजनाकार और औपनिवेशिक प्रशासन के प्रत्यक्ष विरोधी के रूप में उभरे। रेल लाइनें उखाड़ना, तार काटना, डाकघरों एवं थानों पर अधिकार करना, जेल तोड़ना, राष्ट्रीय ध्वज फहराना तथा कई स्थानों पर समानांतर 'कांग्रेसी शासन' की स्थापना जैसे कार्यों में किसानों की अग्रणी भूमिका स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

इस अध्ययन में यह प्रतिपादित किया गया है कि हाजीपुर-वैशाली क्षेत्र में किसान प्रतिरोध आकस्मिक भावनात्मक उभार का परिणाम नहीं था, बल्कि उसके पीछे पूर्ववर्ती किसान आंदोलनों, कांग्रेस संगठन, किसान सभा, खादी आश्रमों, विद्यालयों तथा स्थानीय नेतृत्व की सशक्त भूमिका थी। साथ ही, ब्रिटिश सरकार द्वारा अपनाई गई क्रूर दमन-नीति-गोलियाँ चलाना, गाँव जलाना, सार्वजनिक अपमान, यातनाएँ तथा सामूहिक दंड-ने किसानों की राजनीतिक चेतना को और अधिक तीव्र कर दिया।

यह शोध आलेख भारत छोड़ो आंदोलन को 'असफल प्रयास' मानने वाली पारंपरिक धारणा को चुनौती देता है और यह निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि 1942 का आंदोलन स्वतंत्रता की अंतिम विजय की सामाजिक-राजनीतिक आधारभूमि तैयार करने वाला व्यापक जनांदोलन था, जिसमें हाजीपुर-वैशाली क्षेत्र के किसानों का योगदान ऐतिहासिक, निर्णायक और अविस्मरणीय रहा।

शब्द-कुंजी:- भारत छोड़ो आंदोलन, बिहार, मुजफ्फरपुर, हाजीपुर सब-डिवीजन, वैशाली, किसान आंदोलन, औपनिवेशिक दमन, ग्रामीण प्रतिरोध।

विषय-परिचर्चा

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान ब्रिटिश साम्राज्य की सैन्य, आर्थिक और नैतिक विफलताएँ भारत में उसके औपनिवेशिक शासन की वैधता को गम्भीर रूप से कमजोर कर गई। मलाया, सिंगापुर और बर्मा जैसे एशियाई मोर्चों पर ब्रिटिश सेनाओं की पराजय ने यह स्पष्ट कर दिया कि जिस शक्ति को अजेय माना जाता था, वह स्वयं संकटग्रस्त है। इससे भारतीयों के मन में ब्रिटिश प्रभुत्व की मिथ्या श्रेष्ठता टूट गई। दूसरी ओर, युद्ध के दबाव में भारत के संसाधनों का अत्यधिक दोहन, महँगाई और खाद्यान्न संकट ने जनजीवन को अस्तदृव्यस्त कर दिया। ब्रिटिश प्रशासन द्वारा भारतीय जनता की सुरक्षा और कल्याण की उपेक्षा, विशेषत: बर्मा सीमा से आए शरणार्थियों और संभावित जापानी आक्रमणों के संदर्भ में, शासन की नैतिक साख को भी गहरा आघात पहुँचा। परिणामत: "भारतीय जनता को असुरक्षित छोड़ देने की सरकारी नीति ने व्यापक असंतोष को जन्म दिया ,जो जल्द ही व्यापक जनदृआक्रोश में बदल गया।"[1]

क्रिप्स मिशन की असफलता ने भारतीय नेतृत्व और जनता के सामने यह निर्विवाद रूप से स्पष्ट कर दिया कि ब्रिटिश सरकार भारत को स्वतंत्रता देने के प्रति गंभीर नहीं थी, बल्कि उसे केवल "द्वितीय विश्वयुद्ध में अपने साम्राज्यवादी हितों की पूर्ति के साधन के रूप में देख रही थी।"[2] डोमिनियन स्टेटस का अस्पष्ट व भविष्यगत वादा भारतीय आकांक्षाओं का अपमान था, क्योंकि उसमें न तो तात्कालिक सत्ता-हस्तांतरण का संकेत था और न ही भारतीयों को वास्तविक निर्णय-निर्माण की भूमिका दी गई थी। इस निराशा और आक्रोश की पृष्ठभूमि में महात्मा गांधी ने अगस्त 1942 में 'करो या मरो' का ऐतिहासिक आह्वान किया, जिसने स्वतंत्रता संग्राम को एक निर्णायक मोड़ प्रदान किया। यह आह्वान केवल राजनीतिक नेतृत्व का नहीं, बल्कि समूचे राष्ट्र के आत्मसम्मान और स्वाधीनता की पुकार बन गया, जिसने देशभर में व्यापक जनविद्रोह को जन्म दिया।

भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान बिहार एक अत्यंत सक्रिय और निर्णायक केंद्र के रूप में उभरा। 9 अगस्त 1942 को जब कांग्रेस के शीर्ष राष्ट्रीय और प्रांतीय नेताओं को एक साथ गिरफ्तार कर लिया गया, तब बिहार में आंदोलन कमजोर पड़ने के बजाय और अधिक उग्र, व्यापक तथा जनोन्मुखी बन गया। डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, डॉ. श्रीकृष्ण सिंह और अनुग्रह नारायण सिंह की गिरफ्तारी के बाद "ग्रामीण अंचलों में स्थानीय युवाओं, किसानों और छात्रों के नेतृत्व में स्वत:स्फूर्त संगठन उभर आए। इसने आंदोलन को औपचारिक नेतृत्व की सीमाओं से मुक्त कर दिया और उसे जमीनी सामाजिक शक्ति में बदल दिया।"[3] बिहार के किसानों ने इसमें अग्रणी भूमिका निभाई, क्योंकि औपनिवेशिक शोषण, लगान-व्यवस्था और प्रशासनिक दमन से वे पहले से ही आक्रोशित थे। परिणामस्वरूप रेलवे, डाक, पुलिस थानों और सरकारी प्रतिष्ठानों पर हमले हुए, जिससे ब्रिटिश शासन को बिहार में सबसे गंभीर चुनौती का सामना करना पड़ा।

1942 में वर्तमान वैशाली जिला प्रशासनिक रूप से मुजफ्फरपुर जिले का ही एक भाग था और हाजीपुर सब-डिवीजन के अंतर्गत हाजीपुर, लालगंज, महुआ, पातेपुर, महनार, राघोपुर और बिदुपुर जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्र सम्मिलित थे। "गंगा-गंडक के दियारा क्षेत्र में बसे इन गाँवों के किसान न केवल आर्थिक रूप से संघर्षशील थे, बल्कि सामाजिक रूप से संगठित और राजनीतिक रूप से अत्यंत सजग भी थे।"[4] लंबे समय से चल रहे बकाश्त और किसान आंदोलनों ने यहाँ सामूहिक प्रतिरोध की परंपरा विकसित कर दी थी। किसान सभा, कांग्रेस की स्थानीय इकाइयों, राष्ट्रीय विद्यालयों तथा खादी आश्रमों के माध्यम से स्वतंत्रता आंदोलन की विचारधारा पहले से ही जनमानस में गहराई तक पैठ बना चुकी थी। इसी संगठित सामाजिक आधार ने 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन को इस क्षेत्र में तीव्र, अनुशासित और प्रभावशाली जनउभार का रूप प्रदान किया।

हाजीपुर सब-डिवीजन में भारत छोड़ो आंदोलन की तीव्र शुरुआत 10 अगस्त 1942 से ही दिखाई देने लगी थी। जैसे ही राष्ट्रीय नेतृत्व की गिरफ्तारी की खबर फैली, ग्रामीण अंचलों के किसान और युवा स्वत:स्फूर्त रूप से सड़कों पर उतर आए। "आंदोलनकारियों ने औपनिवेशिक सत्ता के प्रत्यक्ष प्रतीकों को निशाना बनाते हुए रेल पटरियाँ उखाड़ दीं, स्टेशनों को आग के हवाले किया, तार-लाइनें काट दीं और सड़क संपर्क को बाधित कर दिया।"[5] चकसिकंदर, भगवानपुर, सराय, महनार और बिदुपुर जैसे क्षेत्रों में रेलवे तथा डाक व्यवस्था को पूरी तरह ठप कर देना केवल आक्रोश की अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि ब्रिटिश शासन की संचार और नियंत्रण प्रणाली पर एक सुनियोजित, रणनीतिक आघात था। इन कार्रवाइयों ने प्रशासन को यह स्पष्ट संदेश दे दिया कि अब सत्ता का आधार केवल सैन्य बल से भी सुरक्षित नहीं रह गया है।

वैशाली अंचल में किसान प्रतिरोध ने भारत छोड़ो आंदोलन को एक विशिष्ट उग्रता, व्यापकता और सामाजिक गहराई प्रदान की। यह आंदोलन यहाँ केवल राजनीतिक विरोध नहीं रहा, बल्कि औपनिवेशिक शोषण के विरुद्ध ग्रामीण समाज का संगठित विद्रोह बन गया। महुआ क्षेत्र में किसानों ने सामूहिक रूप से लगान न देने और तहसील के बहिष्कार का निर्णय लेकर ब्रिटिश प्रशासन की आर्थिक नींव को सीधी चुनौती दी। यह कर-अस्वीकार आंदोलन केवल असहयोग का प्रतीक नहीं था, बल्कि सत्ता की वैधता को खुली अस्वीकृति भी थी। "पातेपुर और भगवानपुर में ग्राम पंचायतों के माध्यम से 'राष्ट्रीय नियम' लागू किए गए, जिनके अंतर्गत सरकारी आदेशों की अवहेलना, ब्रिटिश अधिकारियों का सामाजिक बहिष्कार और राष्ट्रवादी अनुशासन का पालन अनिवार्य बनाया गया।"[6] इससे स्थानीय समाज में एक समानांतर राष्ट्रवादी सत्ता-संरचना उभर आई।

इस संघर्ष का सबसे रक्तरंजित और मार्मिक अध्याय बिदुपुर गोलीकांड था, "जहाँ 25 अगस्त को एक शांतिपूर्ण किसान जुलूस पर पुलिस ने गोलीबारी की जिसमें निम्नलिखित सात निहत्थे किसान- 1-रामावतार राय, 2-हरवंश राय, 3-रामखेलावन राय, 4-बुधन पासवान, 5-सकलदेव राय, 6-हेमराज राय, एवं 7-रोशन राय शहीद हो गए।"[7] इस घटना ने पूरे वैशाली क्षेत्र को झकझोर दिया और आंदोलन को और अधिक उग्र रूप प्रदान किया। इसके पश्चात् किसानों ने आसपास के गाँवों में थानों, डाकघरों, राजस्व अभिलेखों और अन्य औपनिवेशिक प्रतीकों को निशाना बनाकर प्रतिशोधात्मक कार्रवाइयाँ कीं। राघोपुर दियारा

क्षेत्र आंदोलनकारियों का सुरक्षित आश्रय और रणनीतिक केंद्र बन गया, जहाँ से गुप्त सभाएँ, संदेश-प्रेषण और संगठित प्रतिरोध का संचालन होता रहा। इस प्रकार वैशाली के किसानों ने स्वतंत्रता संग्राम को न केवल जन-आधारित बनाया, बल्कि उसे ग्रामीण शक्ति की निर्णायक अभिव्यक्ति भी प्रदान की।

हाजीपुर, लालगंज और राघोपुर क्षेत्रों में किसानों की कार्रवाइयों ने भारत छोड़ो आंदोलन को प्रत्यक्ष सत्ता-चुनौती का रूप दे दिया। इन इलाकों में आंदोलनकारियों ने थानों पर आक्रमण कर वहाँ राष्ट्रीय ध्वज फहराया, जो औपनिवेशिक प्रभुत्व के प्रतीकों पर खुला आघात था। विशेष रूप से "राघोपुर थाना का पूर्ण रूप से नष्ट किया जाना ब्रिटिश प्रशासन के विरुद्ध किसानों के तीव्र आक्रोश और निर्भीक प्रतिरोध को दर्शाता है।"[8] इसी क्रम में हाजीपुर जेल को तोड़कर राजनीतिक बंदियों को मुक्त कराया गया, जिसने यह संकेत दिया कि जनता अब केवल विरोध नहीं, बल्कि सत्ता-परिवर्तन की चेतना से प्रेरित होकर कार्य कर रही थी। ये घटनाएँ बताती हैं कि आंदोलन अब नेतृत्व-निर्देशित न रहकर एक व्यापक जनविद्रोह में परिवर्तित हो चुका था, जिसमें ग्रामीण समाज ने औपनिवेशिक शासन की वैधता को खुली चुनौती दी।

आंदोलन की तीव्रता और व्यापकता से भयभीत होकर अंग्रेजी शासन ने बिहार, विशेषतः वैशाली-हाजीपुर अंचल में "दमन की अत्यंत क्रूर नीतियाँ अपनाई। शांतिपूर्ण जुलूसों पर अंधाधुंध गोलियाँ चलाई गईं, जिससे अनेक निहत्थे किसान और ग्रामीण शहीद हुए। कई गाँवों को आग के हवाले कर दिया गया, ताकि जनता में आतंक और भय का वातावरण बनाया जा सके। आंदोलनकारियों और उनके परिवारों को सार्वजनिक रूप से अपमानित किया गया तथा सामूहिक दंड की नीति के तहत पूरे गाँवों पर जुर्माने, लूट और जबरन गिरफ्तारियाँ थोपी गईं।"[9] इन दमनात्मक कार्रवाइयों का उद्देश्य जनप्रतिरोध को तोड़ना और औपनिवेशिक सत्ता की खोई हुई साख को बल प्रयोग द्वारा पुनः स्थापित करना था। किंतु इन अत्याचारों ने जनता को झुकाने के बजाय और अधिक आक्रोशित कर दिया, जिससे आंदोलन को नैतिक वैधता और जनसमर्थन दोनों प्राप्त हुए।

"बिदुपुर, बिठौली और कन्हौली जैसे गाँवों में हुआ भीषण दमन भारत छोड़ो आंदोलन की बलिदानी और संघर्षशील प्रकृति का जीवंत प्रमाण है। इन क्षेत्रों में औपनिवेशिक सत्ता ने गोलीबारी, गिरफ्तारियों और सामूहिक दंड के माध्यम से जनविद्रोह को कुचलने का प्रयास किया, परंतु ग्रामीण समाज का साहस नहीं टूट सका। बेनी भगत, मदन झा और रासबिहारी सिंह जैसे प्रतिबद्ध कार्यकर्ताओं की शहादत ने आंदोलन को नैतिक ऊँचाई प्रदान की और स्थानीय जनता को और अधिक दृढ़ बना दिया।"[10] ये शहीद केवल व्यक्ति नहीं थे, बल्कि वे उस जन-आकांक्षा के प्रतीक थे जो स्वतंत्रता के लिए किसी भी बलिदान को स्वीकार करने को तैयार थी। उनकी कुर्बानी ने वैशाली अंचल के किसानों और युवाओं में राष्ट्रीय चेतना को और प्रखर किया तथा स्वतंत्रता संग्राम को अपराजेय जन-आंदोलन का स्वरूप प्रदान किया। आंदोलनरत किसानों को केवल ग्रामीण समाज का ही नहीं, बल्कि विद्यार्थियों, शिक्षकों और आश्रम कर्मियों का भी सक्रिय और संगठित सहयोग प्राप्त हुआ। राष्ट्रीय विद्यालयों के छात्र संदेशवाहक, पर्चा-वितरक और जुलूसों के अग्रदूत बने, जबकि शिक्षक आंदोलन को वैचारिक दिशा और अनुशासन प्रदान करते रहे। खादी आश्रमों और गांधीवादी केंद्रों ने आश्रय, भोजन, औषधि तथा गुप्त बैठकों के लिए सुरक्षित स्थल उपलब्ध कराए। "इस बहुस्तरीय सहयोग ने आंदोलन को केवल उग्र जनविद्रोह तक सीमित नहीं रहने दिया, बल्कि उसे संगठित, नैतिक और उद्देश्यपूर्ण स्वरूप प्रदान किया।"[11] प्रचार, संपर्क और समन्वय की इस मजबूत व्यवस्था के कारण औपनिवेशिक दमन के बावजूद आंदोलन लगातार जीवित और प्रभावशाली बना रहा, जिससे उसकी सामाजिक जड़ें और भी गहरी होती चली गईं।

यद्यपि भारत छोड़ो आंदोलन अपने तत्कालिक उद्देश्य-ब्रिटिश शासन की शीघ्र समाप्ति-को प्राप्त नहीं कर सका, फिर भी उसने औपनिवेशिक सत्ता की नैतिक, राजनीतिक और प्रशासनिक वैधता को अपूरणीय क्षति पहुँचाई। 1942 के बाद ब्रिटिश शासन भारत में केवल बल और दमन के सहारे टिका हुआ प्रतीत होने लगा, उसकी सहमति और स्वीकार्यता समाप्त हो चुकी थी। हाजीपुर-वैशाली अंचल के किसानों की भूमिका इस ऐतिहासिक परिवर्तन को विशेष रूप से रेखांकित करती है। यहाँ के ग्रामीण समाज ने यह प्रमाणित कर दिया कि स्वतंत्रता संग्राम की वास्तविक शक्ति नगरों के अभिजात नेतृत्व में नहीं, बल्कि गाँवों की संगठित चेतना और साहस में निहित थी।

किसानों द्वारा कर-अस्वीकार, तहसील-बहिष्कार, औपनिवेशिक प्रतीकों पर आक्रमण और समानांतर 'राष्ट्रीय शासन' की स्थापना ने यह स्पष्ट कर दिया कि ब्रिटिश सत्ता को अब जमीनी स्तर पर स्वीकृति प्राप्त नहीं रही। दमन, गोलीबारी और सामूहिक दंड के बावजूद आंदोलन का जीवित रहना इस बात का संकेत था कि भय का शासन अपनी प्रभावशीलता खो चुका है। हाजीपुर और वैशाली के किसान केवल राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए नहीं, बल्कि सामाजिक सम्मान, आर्थिक न्याय और स्वशासन की आकांक्षा से प्रेरित होकर संघर्षरत थे।

इस प्रकार "भारत छोड़ो आंदोलन ने भले ही तत्काल सत्ता-हस्तांतरण नहीं कराया, परंतु उसने ब्रिटिश शासन को नैतिक रूप से पराजित कर दिया। ग्रामीण भारत, विशेषत: बिहार के किसान, इस ऐतिहासिक परिवर्तन के वास्तविक वाहक सिद्ध हुए।"[12]

निष्कर्ष

भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान मुजफ्फरपुर जिले के हाजीपुर सब-डिवीजन में किसानों की भूमिका भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में एक अत्यंत निर्णायक और प्रेरक अध्याय के रूप में सामने आती है। इस क्षेत्र के किसानों ने केवल आंदोलन का समर्थन ही नहीं किया, बल्कि उसे नेतृत्व, संगठनात्मक शक्ति और संघर्षशील दिशा भी प्रदान की। रेल पटरियों को उखाड़ना, डाक व्यवस्था को ठप करना, थानों पर आक्रमण करना और जेल तोड़कर राजनीतिक बंदियों को मुक्त कराना यह स्पष्ट करता है कि यह आंदोलन मात्र प्रतीकात्मक विरोध नहीं था, बल्कि औपनिवेशिक सत्ता को प्रत्यक्ष चुनौती देने वाला जन-विद्रोह था।

हाजीपुर-वैशाली अंचल के किसानों ने अपने संगठित साहस और राजनीतिक चेतना के बल पर यह सिद्ध कर दिया कि ब्रिटिश शासन अब जमीनी स्तर पर अपनी वैधता खो चुका था। अंग्रेजी प्रशासन द्वारा अपनाई गई गोलीबारी, गाँव जलाने, सार्वजनिक अपमान और सामूहिक दंड जैसी दमनकारी नीतियाँ किसानों के संकल्प को तोड़ने में असफल रहीं। इसके विपरीत, इन अत्याचारों ने आंदोलन को और अधिक व्यापक, उग्र और नैतिक रूप से सशक्त बना दिया। शहीदों की कुर्बानी और ग्रामीण समाज की एकजुटता ने स्वतंत्रता की आकांक्षा को एक सामूहिक संकल्प में परिवर्तित कर दिया।

हाजीपुर-वैशाली का अनुभव यह प्रमाणित करता है कि भारत छोड़ो आंदोलन की वास्तविक ऊर्जा शहरों की राजनीति से नहीं, बल्कि गाँवों के संगठित किसान समाज से उत्पन्न हुई थी। 1942 का यह जनविद्रोह 1857 के बाद अंग्रेजी शासन के विरुद्ध सबसे व्यापक और गहन ग्रामीण प्रतिरोध था, जिसने औपनिवेशिक सत्ता की नींव को भीतर से हिला दिया और स्वतंत्रता की अंतिम विजय के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ निर्मित कीं। अत: यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि भारतीय स्वतंत्रता का इतिहास हाजीपुर-वैशाली के किसानों के योगदान के बिना न तो पूर्ण है और न ही न्यायसंगत।

सन्दर्भ -

1. चंद्र, बिपिन - इंडियाज स्ट्रगल फॉर इंडिपेंडेंस, पेंगुइन बुक्स, न्यू दिल्ली, 1989, पृ. 451-465।
2. सरकार, सुमित - आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013 (संशोधित संस्करण), पृ. 399-419।
3. सिंह, रामचन्द्र - बिहार में 1942 की क्रांति, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना, 1985, पृ. 61-84।
4. गुप्त, प्रो. राजेश्वर - वैशाली की गौरव गाथा, (स.) अभिद्या प्रकाशन, मुजफ्फरपुर, 2018, पृ. 121-170।
5. बिहार (हिन्दी मासिक) - भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में बिहार का योगदान, विशेषांक, 1998, पृ. 45-67।
6. ओझा, अरुण कुमार - ग्रामीण भारत और स्वतंत्रता संघर्ष, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2004, पृ. 201-218।
7. मुनीश, मुनीश्वर राय -बज्जिकांचल का स्वतंत्रता संग्राम, अभिधा प्रकाशन, दिल्ली, मुजफ्फरपुर, 2005, पृ. 95-100।
8. सिंह, शिवपूजन - 1942 की जनक्रांति, साहित्य सदन, पटना, 1987, पृ. 88-102।
9. दत्त, डॉ. के. के. - बिहार में स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास (भाग-3), बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 1998, पृ. 28-60।
10. दास, प्रमोद - भारत छोड़ो आंदोलन रू बलिदान और संघर्ष, शांति प्रकाशन, पटना, 2006, पृ. 133-149।
11. मिश्र, केदारनाथ - छात्र आंदोलन और स्वतंत्रता संग्राम, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010, पृ. 91-108।
12. सरकार, सुमित - मॉडर्न इंडिया 1885-1947, मैकमिलन इंडिया, न्यू दिल्ली, 1983, पृ. 412-428।

आदी जनजाति की लोकगाथाओं में निहित लोक विश्वास व आस्थाएँ

अकिन बोको

हिन्दी विभाग, राजीव गाँधी विश्वविद्यालय, रोनो हिल्स दोईमुख, अरुणाचल प्रदेश

आदी लोकगाथा और आदी लोक विश्वास व आस्था-मान्यताओं का बहुत गहरा संबंध है। आदी लोकगाथाओं में कई जड़-चेतन से संबंधित लोक विश्वास व मान्यताएँ उपलब्ध होती हैं जो आदी समाज को सुचारु रूप से संचालित करने में मददगार होती हैं। दरअसल सृष्टि निर्माण से लेकर वर्तमान काल तक के जितने भी आदी समुदाय से संबंधित जीवन सफर की गतिविधियाँ हैं, उन सभी की झाँकियाँ आदी लोकगाथाओं में मिल जाती है। आज भले ही आदी समाज आधुनिकीकरण की तेज रफ्तार के साथ मिलकर बहुत आगे निकल चुका हो परंतु आज भी आदी लोकगाथाओं में ऐसी कई प्रासंगिक लोक विश्वास व लोक मान्यताएँ प्राप्त हैं जिन्हें वे दृढ़ता के साथ पालन करते हैं। उन लोक विश्वास व लोक मान्यताओं के आधार पर ही आदी समुदाय के सामाजिक जीवन में संयोजन व सहयोग की भावनाएँ उत्पन्न हो पाती हैं और उन्हीं से परंपरा और संस्कृति भी आगे बढ़ पाती हैं। उन्हीं से ही पर्व-त्योहार की अवधारणाएँ भी आरंभ होती हैं। जब भी लोक विश्वास या लोक मान्यता की बात होती है तो सृष्टि निर्माण का विषय सबसे पहले मुख्य केंद्र के रूप में आता है कि सृष्टि का निर्माण किस तरह हुआ? इस विषय में प्रत्येक समुदाय, धर्म या वैज्ञानिक जगत के लोग अपने-अपने तरीके से अपना मत देते हैं। परंतु उन सभी मतों में से वैज्ञानिक जगत का मत सर्वाधिक मान्यता प्राप्त है जिसे 'बिग बैंग थ्योरी' के नाम से जाना जाता है। आदी समुदाय के यहाँ सृष्टि निर्माण प्रक्रिया को लेकर अपना मत उपलब्ध है जिसे 'कयुम-करो आबाङ' आदी लोकगाथा में क्रमबद्ध तरीके से वर्णन किया जाता है। आदी लोगों की यह मान्यता है कि सृष्टि का निर्माण 'कयुम-करो' अर्थात् शून्यता से आरंभ हुआ। पूरा ब्रह्मांड जब शून्यावस्था में था तब प्रथम बार फुटबॉल के समान गोलाकार का एक तत्व उड़ता हुआ नजर आया। उस गोलाकार तत्व के भीतर में से 'सेदी-मेलो' अर्थात् सृष्टिकर्ता की उत्पत्ति हुई। उस शून्यावस्था का वर्णन 'कयुम-करो आबाङ' नामक आदी लोकगाथा की निम्नलिखित पंक्तियों में इस तरह व्यक्त किया जाता है-

''गोलअ कयुम अ सपी अ,
गोलअ कामाङ अ सपी अ,
गोलअ योकमो कोइ कअ,
गोलअ गीतअ ताइङ अम,
गोलअ ज्ञापित दाकलाङ,
गोलअ गीतअ बली अम,
गोलअ पापी अ लनबितो,
गोलअ गीतअ कअ आयुम अ,
गोलअ सुमबुम नाको,
गोलअ गीतअ पापी अम,
गोलअ... लोयी अ बितो... गोलअ..."[1]

भावार्थ: 'कयुम-करो' अर्थात् शून्यता ने अपनी शून्यावस्था में एक गोलाकार तत्व को जन्म दिया अर्थात् उस शून्यता में गोलाकार का वह तत्व दिखाई देने लगा जो इधर-उधर लटकता-उड़ता फिर रहा था।

इस तरह उस गोलाकार तत्व के अंदर 'सेदी-मेलो' अर्थात् सृष्टिकर्ता ने जन्म लिया। फिर 'सेदी आनअ'(स्त्री) और 'मेलो आबु'(पुरुष) ने उस गोलाकार तत्व के भीतर ही कई जड़-चेतन को जन्म दिया। वे सभी उस गोलाकार तत्व के भीतर रहते-रहते कसा हुआ घुटन सा महसूस होने लगे। इसलिए उस गोलाकार तत्व को रहने योग्य विस्तार बनाने हेतु उन लोगों ने फटा दिया। अंततः उस गोलाकार तत्व को सेदी-मेलो के लोग सृष्टि के रूप में तब्दील कर देते हैं। अतः सृष्टि का निर्माण हो जाता है। उस सृष्टि निर्माण प्रक्रिया का वर्णन इस प्रकार है-

''गोलअ गीतअ आयुम अ,
गोलअ सुमबुम नादम,
गोलअ गीतअ यअरङ अ,
गोलअ तापेत दोदम,
गोलअ सेदी दिङोर अ,
गोलअ ओरनअ दअ,
गोलअ सेदी अ पारुङ अ,
गोलअ गीतुङ किङ,
गोलअ गीतअ याया अम,
गोलअ ओरया लनतो,
गोलअ आमोङ अ पाङको अ,
गोलअ तालङ अ पाङको अ,
गोलअ... बिङु सीकाई... गोलअ...."[2]

भावार्थः जब वह गोलाकार तत्व 'सेदी-मेलो' द्वारा निर्मित जड़-चेतन के लिए छोटा होकर कसा हुआ घुटने लगा तो 'सेदी-मेलो' से उत्पन्न 'सेदी दिङोर ओरनअ' ने 'सेदी पारुङ गीतुङ' नामक कुल्हाड़ीनुमा तत्व से उस गोलाकार तत्व को बीचोबीच से एक ही झटके में फाड़ दिया जिसका एक टुकड़ा नीचे धरती के रूप में फैल गया तथा दूसरा आकाश के रूप में ऊपर लटक गया। अतः धरती और आसमान का निर्माण हुआ।

आदी मान्यता में उस फटे हुए तत्व के दो टुकड़ों में से धरती को 'सेदी' तथा आकाश को 'मेलो' के रूप में चित्रित किया जाता है। इसी तरह उस धरती पर शनैः शनैः प्राकृतिक उपादान भी निर्मित होने लगे। सबसे पहले 'सेदी-मेलो' के भीतर से निकलने वाली श्वासें हवा के रूप में तब्दील होकर वातावरण में बहने लगीं। तत्पश्चात् 'सेदी-मेलो' की नाक से निकलने वाला पानी 'सेदी लोयिङ आसी' तथा 'मेलो लोबो सिकोल' नदियों के रूप में बहने लगा। ऐसे हो होकर सृष्टि में मौजूद प्राणी व जीव-जंतु भी धीरे-धीरे उत्पन्न होते गए। संसार के सभी गोचर-अगोचर प्राणी व चीजों की उत्पत्ति कथाएँ आदी लोकगाथाओं में छिपी हुई हैं। इसलिए आदी लोकगाथाएँ गायन के मामले में अनायास ही बहुत लंबे आकार ग्रहण कर लेती हैं। इसकी वजह यह है कि इसमें जिस चीज का भी वर्णन होता है उसे क्रमबद्ध तरीके से बारीकियों में पेश किया जाता है। इसलिए आदी संस्कृति के कोई भी पहलू उनकी लोकगाथाओं से अछूता नहीं है। इसमें आदी जनजाति से संबंधित कई लोक विश्वास व लोक मान्यताओं का तर्क संगत उल्लेख मिलता है। मनुष्य की उत्पत्ति से लेकर उनके वर्तमान समय तक की जीवन यात्रा और आदी समुदाय से जुड़े सभी लोक विश्वास, लोक मान्यताएँ, लोक मत आदि का सहज वर्णन उनकी लोकगाथाओं में ही मिल जाता है। आदी लोगों का यह विश्वास है कि मनुष्य जाति की उत्पत्ति 'कयुम-करो' अर्थात् शून्यता से आरंभ हुई। कयुम-करो के समय न कोई धरती थी न आकाश, न कोई जंगल-नदी न पत्थर-पहाड़। पूरा ब्रह्मांड शून्यावस्था में था। उस शून्यावस्था में 'सेदी-मेलो' की उत्पत्ति के बाद 'दिलिङ' नामक पत्थरनुमा तत्व की उत्पत्ति होती है। आगे जाकर उस 'दिलिङ' के वंशज के रूप में 'तानी' अर्थात् मानव जाति की उत्पत्ति होती है-

''गोलअ सेदी रअलाङ अ,
गोलअ दिलिङ रअलाङ अ,
गोलअ पारकाङ तअ,
गोलअ मी तूतुम अ,
गोलअ रबुम लनदो,
गोलअ मिमाङ ङोमबाङ अ,
गोलअ रुकराक लनदो,
गोलअ दिलिङ पका अम,
गोलअ लकया तोनाम अ,
गोलअ लीतुङ तातकिन अ,
गोलअ बारजिन लनदो,

गोलअ लीमाङ ताकोक अ,
गोलअ... बातगोक लनदो... गोलअ..."[3]

भावार्थ: सृष्टि की निर्माणावस्था के दौर में 'सेदी-मेलो' के बाद 'सेदी दिलिङ' नामक पत्थरनुमा तत्व के भीतर से अजीब सी आवाजें निकलने लगी। तभी 'सेदी कोङकी बाबु' ने उस पत्थरनुमा 'दिलिङ' को खोलके देखा तो वहाँ से 'सेदी दिलिङ लीतुङ(पुरुष) और लीमाङ(स्त्री)' की उत्पत्ति हुई जिससे स्त्री-पुरुष में शारीरिक संबंध रखने का सिलसिला आरंभ होता है।

'लीतुङ-लीमाङ' से ही मानव जाति के वंशज का विस्तार भी आरंभ होता है। 'लीतुङ' के वंशजों की गिनती इस प्रकार है- लीतुङ - तूये - येपअ - पदोङ - दोनी अर्थात् मनुष्य जाति। 'दोनी' यानी 'आबोतानी' से ही वास्तविक मानव जाति का विस्तार होता है जिसका वंशज वर्तमान समय में अरुणाचल प्रदेश राज्य में कुल छः समुदायों में विभाजित है- न्यिशी, आदी, गालो, तागिन, आपातानी और मिशिङ। मनुष्य की उत्पत्ति गणना में 'लीतुङ-लीमाङ' से पहले वाली गिनती को मनुष्य के रूप में नहीं गिना जाता है। बल्कि उन्हें अगोचर व आध्यात्मिक जीव के रूप में माना जाता है। मनुष्य के शरीर व पूर्ण अस्तित्व का आविर्भाव 'दोनी' से माना जाता है। 'पदोङ नानअ' के संतानों में 'दोनी' सबसे आखिरी संतान था। उन्होंने 'दोनी' को वृद्धावस्था में जन्म दिया था। इसलिए वह (दोनी) कुपोषण का शिकार बन जाता है। तब 'कोङकी नानअ' (मनुष्य के भाग्य निर्णायक) ने 'दोनी' को 'कोङकी-कोमाङ' नामक मिट्टी से खिलाकर बड़ा किया था। 'कोङकी-कोमाङ' मिट्टी खाने की वजह से आज भी हर इंसान पैदा होते समय और मरते समय पेट से 'कोङकी-कोमाङ' की ही मल त्यागते हैं, ऐसे माना जाता है। आज भी वृद्धावस्था में बच्चा पैदा करना माँ तथा नवजात शिशु दोनों के लिए ही खतरे से खाली नहीं होता है। 'पदोङ नानअ' भी वृद्धावस्था में 'दोनी' को जन्म देने के कारण प्रसव पीड़ा से जूझते हुए कई कठिनाइयों का सामना करती है और नवजात शिशु 'दोनी' को कुपोषण का शिकार बनकर बचपन में कई समस्याओं से गुजरना पड़ा था। इस बात का आभास 'दोनी आजी दोयिङ आबाङ' आदी लोकगाथा की इन पंक्तियों से मिलता है-

''कयुम पदोङ अ - गोइ काकोल,
नानअ बी - गोइ काकोल,
अजो ताओअम - गोइ काकोल,
क्योमो दोकाला - गोइ काकोल,
आजी कीपोङ अम - गोइ काकोल,
योमदोङ गकाकुनअ - गोइ काकोल,
आजी दीरी अम - गोइ काकोल,
दीलन काकुनअ - गोइ काकोल,
पदोङ दोनी अ - गोइ काकोल,
आजी मअ - गोइ काकोल,
आजी दीरी अम - गोइ काकोल,
दीलन तोकु - गोइ काकोल"[4]

भावार्थः सारे संतानों को जन्म देने के बाद वृद्धावस्था में पहुँचकर 'पदोङ नानअ' पुनः गर्भवती हो गई। जिसके चलते प्रसव के दौरान कई तकलीफों का सामना करने के बाद जैसे-तैसे संतानों में से सबसे कनिष्ठ नवजात शिशु के रूप में 'दोनी' अर्थात् मनुष्य जाति के पूर्वज (आदी समुदाय के अनुसार) को जन्म दिया।

प्रकृति की गोद में बसने के कारण आदी जनजाति में प्रकृति से संबंधित कई लोक विश्वास और लोक मान्यताएँ उपलब्ध हैं, जो लोकगाथाओं के जरिये आज भी लोगों में सुने और समझे जाते हैं। आदी जनजाति में जब भी प्रकृति की बात करते हैं तो सबसे आगे 'दोञी-पोलो' अर्थात् सूर्य-चंद्र के नाम आ जाते हैं। सूर्य-चंद्र ही उनका परम शक्ति व परम सत्य है। आदी जनजाति के यहाँ अन्य समुदायों की भाँति कोई विशेष धर्म शास्त्र, धर्म गुरु आदि तो नहीं है परंतु जिन शक्ति को हृदय के अंतरतम से सर्वशक्तिमान मानकर पूजा-अर्चना की जाती है वे हैं सूर्य और चंद्र। उनका मानना है कि मानव जगत में हो रहे सभी क्रिया-कलाप व गतिविधियों को 'दोञी-पोलो' (सूर्य-चंद्र) निहारते हैं। इसलिए मानव समाज में हो रहे न्याय-अन्याय, सही-गलत आदि कार्यों को वे भलीभाँति जानते हैं। अतः आदी समुदाय में यदि जो भी किसी समस्या, मुकदमा आदि का फैसला नहीं हो पा रहा हो तो उसका अंतिम निर्णय सूर्य-चंद्र पर ही छोड़ देते हैं। सूर्य-चंद्र ही इन सब कार्यों का परम निर्णायक होता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि आदी समुदाय के लोग सूर्य-चंद्र को 'सेदी-मेलो'(सृष्टिकर्ता) से उत्पन्न 'रम्म्याङ म्यानअ'

की दो आँख के रूप में स्वीकारते हैं। इसलिए आदी समुदाय के लोग प्रकृति को अपना अभिन्न हिस्सा मानते हुए उनसे निकटतम का संबंध स्थापित करने के लिए हमेशा से यथासंभव प्रयासरत हैं। सर्वशक्तिमान सूर्य को 'दोञी आनअ' अर्थात् सूर्य माता और चंद्र को 'पोलो आबु' अर्थात् चंद्र पिता कहकर संबोधित किया जाता है। इस प्रकार आदी लोगों के यहाँ सूर्य-चंद्र की उत्पत्ति संबंधी कथाएँ भी उपलब्ध होती हैं जिन्हें 'कयुम-करो आबाङ' आदी लोकगाथा में बहुत ही बारीकियों के साथ बतलाया जाता है।

कहा जाता है कि 'सेदी-मेलो' (सृष्टिकर्ता) से उत्पन्न 'सेदी रम्म्याङ म्यानअ' के पास रोशनी निकालने की एक अद्‌भुत शक्ति मौजूद थी जो अंधेरे में रोशनी प्रदान कर सकने की क्षमता रखती थी। 'सेदी-मेलो' से उत्पन्न 'सेदी रअसिङ योकमो' और 'मेलो रेमान रमपी' के अनुरोध से उन्होंने पूरी धरती (तब पूरी धरती अंधेरे से भरी हुई थी) को अपनी उस शक्ति से रोशनी प्रदान करना चाहा। परंतु उसकी उस अद्‌भुत शक्ति से 'सेदी-मेलो' से उत्पन्न 'सेदी तुमदी मोनअ', 'सेदी जमी मोनअ' और 'मेलो जेम्याङ मोयोङ' ईर्ष्या भाव जताने लगे। इस प्रकार धीरे-धीरे उसकी रोशनी सिमटने लगी और उसका देहांत हो गया। फिर 'सेदी-मेलो' से उत्पन्न 'सेदी इरकी योकमो' ने उसके मृत शरीर से दोनों आँख निकालकर 'सेदी लोयिङ आसी' और 'मेलो लोबो सिकोल' नामक ताजगी भरी नदी में धोकर पूरी तरह साफ किया। उसी तरह 'सेदी रम्म्याङ म्यानअ' की वे दोनों आँखें साफ-सुथरा व ताजा पानी में धोने के कारण चमक उठी और पूरी धरती को फिर से चमकाने लगी-

''गोलअ सेदी गीतअ सिम,
गोलअ गीतअ लोङुम अम,
गोलअ मिकपी लोङुम अम,
गोलअ सनसु बोमकाइ,
गोलअ मेलो कोनअ सिम,
गोलअ कोनअ लातबोङ अम,
गोलअ... ततोङ अ बोमकाइ... गोलअ..."[5]

भावार्थः इसी तरह 'सेदी रम्म्याङ म्यानअ' की वे दोनों आँखें पूरी धरती को एक के बाद एक होकर अपनी चमक से रोशनी प्रदान करती गई।

सृष्टि निर्माण के आरंभ में पूरी धरती केवल गीली मिट्टी से ही भरी हुई थी। 'सेदी रम्म्याङ म्यानअ' की उन दोनों आँखों ने उस गीली धरती को चौबीसों घंटे लगातार अपनी रोशनी के ताप से सुखाना आरंभ किया। अंततः

''गीतअ लङुल अ लङाल नम,
कोनअ रपिम अ रप्योम नम,
आसी लोतोल अम बातोल लनतो,
आमोङ लोतोल अम बातोल लनतो,
गीतअ तगुङ अ तगङ बिकाइ''[6]

अर्थात् नर्म और गीली धरती को सेदी 'रम्म्याङ म्यानअ' की आँखों ने लगातार अपनी रोशनी की गर्मी से जलाकर सुखा दिया। इसी तरह धरती पूरी तरह सूखकर उर्वर हो गई। उस उर्वर धरती पर एक के बाद एक होकर कई पेड़-पौधे उगने लगे। सबसे पहले 'सीरी', 'सीलोक', 'एयुम' और 'रामी' के पेड़ उग आए। इसलिए आदी जनजाति में इन पेड़ों को ताकत, मजबूत और धनी के प्रतीक माना जाता है। तत्पश्चात् 'सेदी-मेलो' के मृत शरीर से 'असोङ' और 'तापी'(जंगली रस्सी जिससे घर निर्माण में लकड़ी आदि बाँधा जाता है) की उत्पत्ति हुई। उसके बाद 'सेदी-मेलो' के मृत शरीर के हाथों से 'रिदिन'(पवित्र धागा) नामक जंगली लता की उत्पत्ति हुई। 'सेदी-मेलो' के हाथों से उग आने के कारण आदी समुदाय में इस जंगली लता को 'सेदी-मेलो' के हाथों का प्रतीक स्वरूप पवित्र माना जाता है और इससे धागा बनाकर सुरक्षा हेतु नवजात शिशु या किसी बीमार व्यक्ति के हाथ-पाँव में बाँधा जाता है। इसी तरह धरती कई रंगीन पेड़-पौधों से सज गई और रहने के योग्य बनती गई। अतः इस धरती पर शनैः शनैः सभी पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, कीड़े-मकौड़े, टिड्डी, चींटी आदि पैदा होते गए। 'सेदी-मेलो' से उत्पन्न सभी जड़-चेतन सारी तकलीफ और चिंताओं से विमुक्त होकर आराम से रहने लगे। यह सब 'सेदी रम्म्याङ म्यानअ' की उन दोनों आँखों की वजह से संभव हो पाया। इसलिए खुश होकर उनका आभार व्यक्त करने हेतु 'सेदी-मेलो' के संतान 'सेदी दिलिङ' और 'सेदी दिगिर' ने उन दोनों आँखों के नाम इस प्रकार रख दिये-

''सेदी दिलिङ लाङ सेदी दिगिर,
आमिन बीदुङ अम पुङकानअ,
मिकपी बीदुङ अम पुङकानअ,
आयो लोपोङअ सोङकानअ,
दिगिर इरबो अ बोमोङ कोलाङ,
दिगिर इरबो अ बो कोपअ,
आमिन बीदुङ अम पूलनतो"[7]

भावार्थः जिस प्रकार नवजात शिशु के जन्म के समय माँ-बाप खुश होकर उस नवजात शिशु का नाम शौक से रख देते हैं उसी प्रकार 'सेदी दिलिङ' और 'सेदी दिगिर' ने 'सेदी रम्म्याङ म्यानअ' की उन दो आँखों से खुश होकर धन्यवाद ज्ञापित करने हेतु उनको नाम देना आरंभ किया। अंततः उन दोनों का नाम 'बोमोङ'(सूर्य) तथा 'बो'(चंद्र) रख दिया।

आदी जनजाति की यह मान्यता है कि 'बोमोङ'(सूर्य) और 'बो'(चंद्र) ने इस धरती को रहने योग्य बनाया। इनके चलते ही संसार के सारे प्राणी, जीव-जन्तु, पेड़-पौधे आदि की उत्पत्ति हुई। उन दोनों ने ही उस पानी से भरी हुई गीली धरती को अपने ताप से सुखाकर उर्वर बनाया। जिस प्रकार हिंदुओं में भगवान शिवजी की तीसरी आँख स्वीकारते हैं उसी प्रकार आदी जनजाति के लोग 'बोमोङ' और 'बो' को 'सेदी रम्म्याङ म्यानअ' की अद्‌भुत व पवित्र आँख मानकर सूर्य-चंद्र को परम सत्य के रूप में स्वीकारते हैं। क्योंकि सूर्य-चंद्र में संसार की सभी गतिविधियों को देखने-परखने की शक्ति विद्यमान है।

आदी समाज में ऐसे कई लोक विश्वास, लोक आस्था-मान्यताएँ भरे-पड़े हैं। जैसे पशु-पक्षी संबंधित लोक विश्वास, पेड़-पौधों से संबंधित लोक विश्वास, नदी-नालों और पत्थर-चट्टानों से संबंधित लोक विश्वास, भूत-प्रेत संबंधित लोक विश्वास, देवी-देवता और कई आध्यात्मिक जीवों से संबंधित लोक विश्वास आदि। मिथुन आदी समाज में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। पर्व-त्योहार हो या शादी-ब्याह , कई सामाजिक व सांस्कृतिक गतिविधियों में मिथुन बहुत काम आता है। इसे लोग कभी बलि के रूप में, तो कभी शान से काटा जाता है। मिथुन की उत्पत्ति के बारे में आदी लोगों का यह विश्वास है कि यह 'लीमिर सोबो/कीलिङ सोबो' नामक एक पत्थरनुमा तत्व से उत्पन्न हुआ था। कहा जाता है कि 'दादी बोतअ'(मिथुन के देवता) जगत के लोगों ने जंगली पेड़-पौधों से उस पत्थरनुमा तत्व को शरीर के पूरे अंग लगाकर मिथुन का रूप प्रदान किया। अंत में उसको काटकर उसके शरीर के अंगों में से अंडकोष को 'दोयिङ बनअ बदुम', 'दादी बनअ बदुम' तथा 'जिनअ बनअ बदुम' नामक तिराहा पर फेंक दिया। उस अंडकोष से लौकी का एक पौधा अंकुरित हुआ। इस तरह लौकी के भीतर से मिथुन की उत्पत्ति मानी जाती है-

''लीमिर सोबो कअ सोबो तुम बुम अ - नअनअ रबी यो,
नयिङ बलुङ पअ दूबुक दुङकू - नअनअ रबी यो,
नयाङ बलाङ पअ दुङार दुङकू - नअनअ रबी यो"[8]

भावार्थः 'लीमिर सोबो' अर्थात् उस पत्थरनुमा तत्व का अंडकोष पेड़-पौधे के रूप में पुनः उग आने लगा।

''कयुम लीमिर अ सोबो कअ - नअनअ रबी यो,
सोबो तुमपी अ गनी कोआइ - नअनअ रबी यो,
तापुम जेमाङ अम जेलन दुङकु नअ - नअनअ रबी यो"[9]

भावार्थः 'लीमिर सोबो' के अंडकोष से उत्पन्न लौकी का पौधा बड़ा हुआ और उससे एक बड़ी सी लौकी निकली। फिर उस लौकी के अंदर से एक कीड़ा के रूप 'लीमिर सोबो' का अंडकोष पुनः उत्पन्न हुआ।

लौकी के भीतर से उत्पन्न कीड़ा बिना गुदा, नाक और दाँत के निकला। अंततः 'नीनुर-लोमाङ' नामक धातु-कर्मी ने अपनी क्षमतानुसार उस पर गुदा और नाक लगा दिये तथा 'बिसी-यादा'(प्रसिद्ध लोहार) ने उस पर दाँत लगा दिया। आगे उसी कीड़े ने बड़ा होकर मिथुन का रूप धारण कर लिया तथा उनके संरक्षक के रूप में 'दादी बोतअ'(मिथुन के देवता) ने 'दादी सोमी' को तैनात कर दिया। आदी निवास इलाकों में कई ऐसे पेड़-पौधे उगे हुए हैं जो 'लीमिर सोबो' नामक मिथुन के शरीर के विभिन्न अंगों के आकार समान दिखते हैं, जिन्हें उस पशु से उत्पन्न माना जाता है। जैसे ताकुक नामक पेड़ उनके जीव से, ओगोक पेड़ उनके खुर से, ताकपी घास उनके कान से, लौकी उनके अंडकोष से, लताएँ उनके अंतड़ी से उत्पन्न हुआ माना

जाता है। इस प्रकार देखा जाये तो मिथुन और मानव जाति के बीच सदियों का संबंध है। खासकर आदी समुदाय में मिथुन केवल पर्व-त्योहार, पूजा-अनुष्ठान, शादी-ब्याह आदि के दौरान उपयोग के लिए ही नहीं बल्कि दोनों के मध्य पारिवारिक व आंतरिक रूप से भी अटूट का संबंध है। इस बात का प्रमाण यह है कि जब मिथुन के मालिक अपने दैनिक जीवन में लगातार व्यस्त रहने या किसी कारणवश बहुत दिन या महीनों तक अपने मिथुन को जंगल से ढूँढ लाने का समय नहीं निकाल पाते हैं, ऐसे में मिथुन अपने आप मालिक के घर आ जाते हैं। यह 'आगुङ-आगाम' यानी सुख-समृद्ध और स्वास्थ्य जीवन का भी प्रतीक माना जाता है। जिस घर-परिवार में मिथुन की संख्या अधिक पायी जाती है उस घर-परिवार में 'आगुङ-आगाम' अवश्य होता है, ऐसा माना जाता है। अतः मिथुन आदी संस्कृति का एक प्रमुख व अभिन्न हिस्सा है। इसे आदी संस्कृति से अलग नहीं किया जा सकता है।

पर्व-त्योहार 'कोजुम-कोजे' नामक आध्यात्मिक संसार के लोगों द्वारा मानव जाति को सिखाया गया संस्कृति के वह महत्त्वपूर्ण पहलू है, जिसे मानव जाति के लोग आज भी अपने जीवन के अभिन्न हिस्से के रूप में अपनाते-मनाते आ रहे हैं। आदी लोगों की यह भी मान्यता है कि जब 'कोजे बाबु'(कोजुम-कोजे संसार के पुरुष जाति का द्योतक शब्द) शिकार के लिए 'अतकु'(फंदा) बना रहा था, तब 'कोजुम नानअ'(स्त्रियों का द्योतक शब्द) की माहवारी का समय चल रहा था। इसी वजह से 'कोजे बाबु' को शिकार में खाली हाथ घर लौटना पड़ा। इसलिए आज भी आदी जनजाति में यह मान्यता चालित है कि जहाँ पुरुष जन शिकार के लिए तैयारियाँ कर रहे होते हैं , वहाँ स्त्रियों का प्रवेश वर्जित माना जाता है। वरना आखेट-शिकार में खाली हाथ लौटने की संभावना रहती है। 'कोजुम-कोजे' जब 'पिमेङ' त्योहार में जंगल के सभी पशु-पक्षियों को बुलाने के लिए केंचुए को भेजा तो वह खाली हाथ लौट आया। 'कोजुम-कोजे' ने गुस्से में आकर केंचुए के दाँतों निकाल दिये। इसलिए केंचुए का दाँत नहीं होता है, ऐसा माना जाता है। 'कोजुम-कोजे' के सारे पशु-पक्षियों को त्योहार में आमंत्रित कर खा-पी चुकने के बाद मिथुन और सुअर के कच्चे मांस को अपने-अपने घर ले जाते समय 'पगा' नामक चिड़िया कच्चे मांस को अपने सिर पर उठाकर ले गयी थी , इसलिए पगा चिड़िया का सिर लाल होता है। पशु-पक्षियों से संबंधित ऐसी कई मान्यताओं का आदी लोकगाथाओं में उल्लेख मिलता है-

''कयुम कुङगुम अ सोबो मअ,
सोबो तारोङ अम तकदोदम,
करो काङगाम अ येकरा मअ,
येकरा लोपोर अम पोरदो दम,
रअसिङ किरङु अ ङुदु बुलु,
सोबो तारोङ अम कोतन पअ इलाङ,
पङु अकोङ अ कोलिङ काई,
रअयाङ किरगा अ गापो बुलु,
येकरा तारोङ अम दुमलुप पअ इलाङ,
पगा दुमपोङ अ तुकलिङ काई,
पदोङ दोपुक अ पुकसो बुलु,
यिलुम दुरिक अम रिकगअ काकुन अ,
यिलुम दुरिक अम कुपतोङ मोतो,
दलो पुकतु असिङ अम कुपकात ला,
पुकतु यालिङ अ लीलिङ काई,
दलो कयुम बारूम अ कबो बुलु,
फुकतु तीबअ अम तिङकोलो,
कबो आङकङ अ कअलिङ काई''[10]

भावार्थः जब 'कोजुम-कोजे'(प्रथम बार त्योहार मनाने वाला आध्यात्मिक जगत) के लोग अपने त्योहार में 'कुङगुम सोबो'(मिथुन) और 'काङगाम येकरा'(सूअर) को काटकर सभी पशु-पक्षियों को दावत पर आमंत्रित कर पूरी तरह

खिलाने-पिलाने के बाद सभी को अपने-अपने घर ले जाने के लिए मिथुन-सूअर के कच्चे मांस बाँटे। इसी तरह कच्चे मांस ले जाते समय 'पङु' नामक पक्षी ने मांस को अपने पिछवाड़े पर लादकर ले जाने का काम किया। इसलिए 'पङु' पक्षी का पिछवाड़ा लाल हो गया, 'पगा' नामक पक्षी मांस को टोपी की तरह सिर पर रखकर ले जाने के कारण उसका सिर लाल हो गया, 'पुकसो' नामक पक्षी कच्चे मांस के खून को ले जाते समय 'पुकतु' नामक पेड़ के ऊपर मांस का खून गिरने के कारण 'पुकतु' पेड़ के पत्ते लाल हो गए और उस पेड़ पर रेंगने की वजह से 'लीबो' नामक चूहे की छाती लाल हो गई।

आज भी आदी जनजाति में जब भी कोई पर्व-त्योहार का आयोजन होता है तो आस-पड़ोस के गाँव या अपने रिश्ते-नाते के लोगों को आमंत्रित अवश्य किया जाता है। पर्व-त्योहार के दौरान अपने आस-पड़ोस के लोगों को पशु-पक्षियों के कच्चे मांस बाँटने की परंपरा भी आज तक आदी समुदाय के लोग अवश्य निभाते चले आ रहे हैं। भले ही गाँव वाले अपने-अपने घरों में मिथुन-सूअर काटकर कच्चे मांस उपलब्ध कराते हों, फिर भी पर्व-त्योहारों में अपने-अपने संबंधियों के साथ एक दूसरे को कच्चा मांस बाँटना लोग नहीं छोडते हैं जो 'कोजुम-कोजे' द्वारा सिखाया गया नियम है।

कृषि आधारित समाज में पर्व-त्योहार भी कृषि और प्रकृति से जुड़े हुए होते हैं। शादी-ब्याह भी 'उनञिङ/आरान' त्योहार के दौरान ही होता है, जो मार्च के महीने में मनाया जाता है। आदी जनजाति के शादी-ब्याह में 'लीबो/लीपो'(गिलहरी) का बहुत मायने रखता है। जब भी कोई शादी रचाई जाती है तो उसमें लड़की वालों को अनिवार्य रूप से गिलहरी प्रदान किया जाता है। यूं कहे कि गिलहरी के बिना शादी कभी सम्पन्न नहीं हो सकती। वर्तमान संदर्भ में कहें तो यह विवाह के दौरान लड़के वालों की ओर से लड़की वालों को दिया जाने वाला दहेज अथवा लड़की को लड़के द्वारा पहनाई जाने वाली अंगूठी या लड़की के माथे पर लगाए जाने वाले सिंदूर के समान माना जा सकता है। क्योंकि लड़के की तरफ से लड़की के परिवार को गिलहरी प्रदान करने के बाद लड़की(दुल्हन) को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार करने का पूरा अधिकार लड़के(दुल्हा) को मिल जाता है। शादी-ब्याह के दौरान गिलहरी आदान-प्रदान करने की परंपरा का आरंभ 'पदोङ नानअ' और 'यीदुम बोतअ'(आबोतानी के माता-पिता) के समय से ही माना जाता है। बस यह तय नहीं करता है कि गिलहरी कितनी देनी है। यह लड़के वालों द्वारा अपने हिसाब से दिया जाता है। ऐसा माना जाता है कि 'यीदुम बोतअ' ने पहले पहल 'पदोङ नानअ' से विवाह प्रस्ताव के लिए गिलहरी को भेजा था, तब जाकर 'पदोङ नानअ' ने उनके विवाह प्रस्ताव को स्वीकार किया था। इसीलिए आज भी विवाह के दौरान लड़की वालों को गिलहरी अनिवार्य रूप से दिया जाता है। यह मानकर कि स्त्री-पुरुष के वैवाहिक जीवन संबंध की व्यवस्था प्रथम बार गिलहरी द्वारा कर दी थी। इसलिए आदी समुदाय में गिलहरी को प्रेमदूत का प्रतीक माना जाता है।

संदर्भ सूची

1. कयुम-करो दोयिङ-आबाङ, लोकगायक श्री ओकेप लगो, गाँव दामरो बोगा, जिला अपर सिआङ, अरुणाचल प्रदेश, साक्षात्कार दिनांक- 24/09/2022
2. वहीं
3. वहीं
4. दोनी आजी दोयिङ-आबाङ, लोकगायक श्री पुनदोरोङ बोको, गाँव कोमकार बुकसाङ, जिला अपर सिआङ, अरुणाचल प्रदेश, साक्षात्कार दिनांक- 18/05/2023
5. कयुम-करो दोयिङ-आबाङ, लोकगायक श्री ओकेप लगो, गाँव दामरो बोगा, जिला अपर सिआङ, अरुणाचल प्रदेश, साक्षात्कार दिनांक- 24/09/2022
6. वहीं
7. वहीं
8. लीमिर-लीबोम आबाङ, लोकगायक श्री कोती बोको, गाँव कोमकार रासिङ, जिला अपर सिआङ, अरुणाचल प्रदेश, साक्षात्कार दिनांक- 30/09/2022
9. वहीं
10. कोजुम-कोजे दोयिङ-आबाङ, लोकगायक श्री ओसुप ताराम, गाँव कोमकार बुकसाङ, जिला अपर सिआङ, अरुणाचल प्रदेश, साक्षात्कार दिनांक- 19/08/2019

रक्षा उद्योग में सहयोग और तकनीकी हस्तांतरण: नवोत्पाद और वैश्विक सुरक्षा को बेहतर बनाने वाले कारक

डॉ० राजेश कुमार सारस्वत

अध्यक्ष: रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, किशोरी रमण (पी.जी.) कॉलेज, मथुरा

सारांश

रक्षा उद्योग में सहयोग और तकनीकी हस्तांतरण सैन्य क्षमताओं को बढ़ाने, आयात पर निर्भरता कम करने और राष्ट्रीय और वैश्विक सुरक्षा को मजबूत करने में अहम भूमिका निभाते हैं। अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के जरिए, देश आधुनिक तकनीक, टेक्निकल एक्सपर्टीज और डेवलपमेंट खर्च बाँट सकते हैं, जिससे न केवल दक्षता बढ़ती है बल्कि रक्षा क्षेत्र में नवोन्मेष भी बढ़ता है। इस सहयोग से रोजगार सृजन, लोकल इंडस्ट्री डेवलपमेंट और रिसर्च तथा डेवलपमेंट (R&D) में बढ़े हुए निवेश सहित बड़े आर्थिक फायदे भी मिलते हैं।

हालांकि, सहयोगात्मक प्रोजेक्ट्स की सफलता सुनिश्चित करने के लिए अलग-अलग राष्ट्रीय हित, तकनीकी सहयोग और इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी प्रोटेक्शन जैसी चुनौतियों का समाधान करने की जरूरत है। यह शोध पत्र रक्षा क्षेत्र में सहयोग और तकनीकी हस्तांतरण की प्रक्रिया और प्रभाव जानने और बताने का प्रयास करता है।

नतीजे दिखाते हैं कि अंतर्राष्ट्रीय सहयोग, अनुसन्धान को आसान बना सकता है और अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा डायनामिक्स को बढ़ा सकता है। सहयोग और तकनीकी हस्तांतरण का असर बढ़ाने के लिए, ट्रांसपेरेंसी, प्रोसेस स्टैंडर्डाइजेशन, सरकारी प्रोत्साहन, लोकल वर्कफोर्स स्किल डेवलपमेंट, इंफ्रास्ट्रक्चर को बेहतर बनाने और इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी प्रोटेक्शन में सुधार की जरूरत है। इन चुनौतियों का सामना करके, रक्षा उद्योग में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और तकनीकी हस्तांतरण सैन्य और इकोनॉमिक क्षमताओं को और ज्यादा असरदार तरीके से मजबूत कर सकता है, जिससे बेहतर नेशनल और वैश्विक सुरक्षा में मदद मिलेगी।

मूल शब्द: अंतर्राष्ट्रीय सहयोग, तकनीकी हस्तांतरण, रक्षा उद्योग, वैश्विक सुरक्षा

परिचय

आज के दौर में, राष्ट्रीय सुरक्षा किसी देश की पहचान बनाए रखने के लिए एक मूलभूत जरूरत है। राजनीति, अर्थव्यवस्था और सेना विभिन्न सुरक्षा खतरों से निपटने में मुख्य ताकतें हैं। राष्ट्रीय सुरक्षा की बदलती गतिशीलता ने खतरों की अवधारणा को बदल दिया है।

साइबर सुरक्षा, पर्यावरणीय स्थिरता और ऊर्जा सुरक्षा जैसे पहलू ऐसे चर के रूप में उभरे हैं जिन पर देश की स्थिरता और सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए ध्यान देने की आवश्यकता है। वैश्विक सुरक्षा के संदर्भ में, रक्षा प्रौद्योगिकी का विकास और एकीकरण महत्वपूर्ण माना जाता है।[1]

इस नीति का उद्देश्य तालमेल बनाना और राष्ट्रीय संसाधनों के उपयोग को अनुकूलित करना, रक्षा उद्देश्यों के लिए राष्ट्रीय उद्योग के विकास का समर्थन करना और स्थानीय तकनीकी क्षमताओं को विकसित करके आयात पर निर्भरता कम करना है। कच्चे माल और घटकों की उत्पादन क्षमता बढ़ाने, आत्मनिर्भरता बनाने और तेजी से जटिल और बहुआयामी खतरों का जवाब देने के लिए क्रॉस-सेक्टर सहयोग पर जोर दिया जाता है, जिससे राष्ट्रीय स्थिरता और सुरक्षा का समर्थन होता है । रक्षा प्रौद्योगिकी कूटनीति के एक माध्यमिक कार्य के रूप में भी कार्य करती है और राजनीतिक प्रभाव डालती है।

मजबूत रक्षा क्षमताओं वाले राष्ट्र की उपस्थिति, वैश्विक सुरक्षा नीति मानदंडों के रूप में अंतर्राष्ट्रीय रक्षा कूटनीति के स्तर को बढ़ाती है।[2]

राष्ट्रीय सुरक्षा के प्रति एक महत्वपूर्ण प्रतिबद्धता रक्षा प्रौद्योगिकी में बढ़े हुए निवेश से चिह्नित होती है, जो रक्षा समझौतों और सहयोगों के माध्यम से क्षेत्रीय और वैश्विक स्थिरता का निर्माण करती है। इसलिए, नैतिक पहलुओं, अंतर्राष्ट्रीय कानून और वैश्विक सुरक्षा और शांति पर इसके प्रभावों पर विचार करते हुए रक्षा प्रौद्योगिकी विकसित करना आवश्यक है। इसे प्राप्त करने के लिए, देशों और अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों के बीच सहयोग महत्वपूर्ण है ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि तकनीकी प्रगति सामूहिक सुरक्षा और कल्याण में सुधार के साथ संतुलित हो।

रक्षा उद्योग में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और प्रौद्योगिकी हस्तांतरण साझेदारी और ज्ञान साझाकरण के माध्यम से उन्नत प्रौद्योगिकी तक पहुँचने के उद्देश्य से रणनीतिक तंत्र हैं। इस तरह के सहयोग विकासशील देशों के रक्षा क्षेत्रों में स्थानीय उद्योगों को बढ़ाने के साधन के रूप में प्रचलित हैं।

सैन्य-तकनीकी सहयोग सैन्य उपकरणों के विकास और व्यापार में शामिल विभिन्न संस्थाओं की जिम्मेदारियों को एकीकृत करता है, जिससे संयुक्त अनुसंधान, उत्पादन और आधुनिकीकरण के प्रयासों को बढ़ावा मिलता है। इसके अलावा, सैन्य क्षेत्र से नागरिक क्षेत्र में प्रौद्योगिकी हस्तांतरण गैर-सैन्य उद्योगों में नवाचार को प्रोत्साहित कर सकता है, जिससे तकनीकी अंतर को पाटकर एक प्रतिस्पर्धी अर्थव्यवस्था को बढ़ावा मिलता है।[3]

यह अध्ययन इस बात का विश्लेषण करने पर केंद्रित है कि अंतर्राष्ट्रीय सहयोग सैन्य क्षेत्र में नवाचार को कैसे सुविधाजनक बना सकता है और अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा गतिशीलता को मजबूत करने में इसके योगदान का मूल्यांकन करता है। इस शोध से पाठकों को इस बारे में अतिरिक्त संदर्भ मिलने की उम्मीद है कि अंतर्राष्ट्रीय सहयोग सैन्य क्षेत्र में नवाचार को कैसे सुविधाजनक बनाता है और अंतर्राष्ट्रीय सुरक्षा गतिशीलता को मजबूत करता है।

कार्यप्रणाली (Methodology)

यह अध्ययन एक गुणात्मक वर्णनात्मक कार्यप्रणाली का उपयोग करता है, जिसका उद्देश्य रक्षा क्षेत्र में सहयोग और प्रौद्योगिकी हस्तांतरण की प्रक्रियाओं और प्रभावों का पूरी तरह से पता लगाना और उनका वर्णन करना है। इस शोध का मुख्य उद्देश्य यह पहचानना है कि ये सहयोग सैन्य उद्योग के भीतर वैश्विक सुरक्षा और नवाचार को कैसे प्रभावित करते हैं। एक गुणात्मक वर्णनात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया है, जिसे जांच के तहत घटनाओं की गहरी और व्यापक समझ हासिल करने के लिए उपयुक्त माना जाता है। यह दृष्टिकोण शोधकर्ता को सांख्यिकीय सामान्यीकरण की आवश्यकता के बिना अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और प्रौद्योगिकी हस्तांतरण की गतिशीलता और जटिलताओं में गहराई से जाने की अनुमति देता है।

कुसवंतो एट अल. (2022) के अनुसार, यह दृष्टिकोण रक्षा उद्योग में क्रॉस-कंट्री सहयोग के तंत्र और परिणामों में व्यापक अंतर्दृष्टि प्रदान करने में अत्यधिक प्रभावी है, जिससे यह पता लगाने में मदद मिलती है कि ये सहयोग वैश्विक सुरक्षा चुनौतियों का सामना करने की क्षमता को कैसे बढ़ा सकते हैं।[4]

परिणाम और चर्चा

टियन एट अल. (2024) द्वारा संकलित स्टॉकहोम अंतर्राष्ट्रीय पीस रिसर्च इंस्टीट्यूट (SIPRI) की रिपोर्ट के अनुसार, 2023 में वैश्विक सैन्य खर्च लगभग +1.9 ट्रिलियन तक पहुँच गया। इस कुल खर्च में से, लगभग 25% अंतर्राष्ट्रीय सहयोग परियोजनाओं में निवेश किया गया था, जो रक्षा क्षमताओं को बढ़ाने में देशों के बीच सहयोग के महत्व को उजागर करता है। अकेले नाटो (NATO) सदस्य देशों ने रक्षा पर लगभग +1.1 ट्रिलियन खर्च किए, जिसमें फंड का एक बड़ा हिस्सा सहयोगी परियोजनाओं के लिए आवंटित किया गया था। इन परियोजनाओं में संयुक्त हथियार प्रणालियों का विकास और संयुक्त सैन्य अभ्यास शामिल हैं, जिनका उद्देश्य इंटरऑपरेबिलिटी और परिचालन प्रभावशीलता को मजबूत करना है। यह डेटा अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के माध्यम से सामूहिक रक्षा को मजबूत करने के लिए नाटो (NATO) देशों की प्रतिबद्धता, साथ ही तालमेल और संसाधन साझाकरण के माध्यम से सैन्य खर्च दक्षता को अधिकतम करने के उनके प्रयासों को रेखांकित करता है।[5]

यूरोपीय रक्षा एजेंसी (EDA) बताती है कि यूरोपीय संघ में कुल रक्षा बजट का 20% से अधिक सहयोगी परियोजनाओं के लिए आवंटित किया गया है। ऐसे सहयोगी कार्यक्रमों के सबसे प्रमुख उदाहरणों में से एक जॉइंट स्ट्राइक फाइटर (JSF) F-35 है, जो दुनिया की सबसे बड़ी और सबसे जटिल रक्षा परियोजनाओं में से एक है। इस कार्यक्रम में नौ मुख्य भागीदार देश शामिल हैं: संयुक्त राज्य अमेरिका, यूनाइटेड किंगडम, इटली, नीदरलैंड, तुर्की, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, डेनमार्क और नॉर्वे। JSF F-35

कार्यक्रम को एक मल्टी-रोल फाइटर विमान बनाने के लिए डिजाइन किया गया है जो विभिन्न आधुनिक खतरों से निपटने में सक्षम है।

इस कार्यक्रम में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग अनुसंधान और विकास, उत्पादन से लेकर परीक्षण और प्रशिक्षण तक विभिन्न पहलुओं को शामिल करता है। प्रत्येक भागीदार देश न केवल फंडिंग के मामले में बल्कि प्रौद्योगिकी और विशेषज्ञता साझा करने में भी योगदान देता है, जो बदले में प्रत्येक देश की सैन्य क्षमताओं को बढ़ाता है। JSF F-35 जैसी सहयोगी परियोजनाओं का एक मुख्य लाभ लागत दक्षता है।[6]

अनुसंधान और विकास लागत साझा करके, भागीदार देश अपने व्यक्तिगत वित्तीय बोझ को कम कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, यह सहयोग प्रौद्योगिकी हस्तांतरण की सुविधा प्रदान करता है जो सभी संबंधित पक्षों को लाभ पहुँचाता है, रक्षा उद्योग में नवाचार और तकनीकी क्षमता सुधार को बढ़ावा देता है। हालांकि, इस तरह की सहयोगी परियोजनाओं को भी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है, जिसमें विभिन्न राष्ट्रीय हितों वाले विभिन्न देशों के बीच समन्वय और तकनीकी और प्रबंधकीय मुद्दों की जटिलताएँ शामिल हैं। इन सहयोगी परियोजनाओं में आने वाली चुनौतियों पर विचार करना भी महत्वपूर्ण है। राजनीतिक हितों और राष्ट्रीय नीतियों में अंतर तनाव पैदा कर सकते हैं और फैसला लेने की प्रक्रिया को धीमा कर सकते हैं। इसलिए, प्रोजेक्ट्स की सुचारू प्रगति और सफलता सुनिश्चित करने के लिए सभी पक्षों से एक स्पष्ट ढांचा और मजबूत प्रतिबद्धता आवश्यक है।

प्रौद्योगिकी हस्तांतरण प्रक्रिया

सेजल और गियुमेली (2022) के अनुसार, रक्षा उद्योग में प्रौद्योगिकी हस्तांतरण एक जटिल प्रक्रिया है जिसमें प्रौद्योगिकी, ज्ञान, कौशल और विनिर्माण विधियों को एक इकाई या देश से दूसरे देश में स्थानांतरित किया जाता है। इस प्रक्रिया में कई प्रमुख कदम शामिल हैं जो अंतर्राष्ट्रीय समझौतों और विनियमों द्वारा नियंत्रित होते हैं।

प्रौद्योगिकी हस्तांतरण प्रक्रिया में पहला कदम जरूरतों की पहचान करना है। प्राप्त करने वाला पक्ष अपनी रक्षा प्रौद्योगिकी या क्षमताओं से संबंधित विशिष्ट जरूरतों की पहचान करने के लिए एक गहन विश्लेषण करता है, जिसमें सामना किए जाने वाले खतरों और मौजूदा तकनीकी कमियों का मूल्यांकन शामिल है।[7]

इसके बाद, प्रौद्योगिकी धारक (प्रदाता) और जरूरतमंद पक्ष (प्राप्तकर्ता) के बीच अन्वेषण और बातचीत होती है। इन वार्ताओं में हस्तांतरित की जाने वाली प्रौद्योगिकी के दायरे, बौद्धिक संपदा अधिकारों, मूल्य निर्धारण और प्रौद्योगिकी हस्तांतरण की शर्तों के बारे में चर्चा शामिल है, जिसका लक्ष्य पारस्परिक रूप से लाभकारी समझौते पर पहुंचना है। एक बार समझौता हो जाने के बाद, अगले चरण में समझौतों और अनुबंधों का मसौदा तैयार करना शामिल है। औपचारिक समझौते और हस्ताक्षरित अनुबंध हस्तांतरित की जाने वाली प्रौद्योगिकी, कार्यान्वयन समय-सीमा, लागत और प्रदान किए जाने वाले प्रशिक्षण और तकनीकी सहायता के बारे में स्पष्ट प्रावधानों की रूपरेखा तैयार करते हैं।

नॉलेज हस्तांतरण फेज में तकनीकी प्रदाता के एक्सपर्ट्स द्वारा पाने वाले के स्टाफ को ट्रेनिंग देना शामिल है। यह ट्रेनिंग कोर्स, इम्प्लीमेंटेशन प्रोसेस के दौरान मेंटरशिप, या ऑन-साइट ट्रेनिंग के रूप में हो सकती है। यह कदम यह सुनिश्चित करता है कि पाने वाले को हासिल की गई तकनीकी की गहरी समझ हो और वह इसे कुशलता से चला सके। इस प्रोसेस में डॉक्यूमेंट्स और टेक्निकल डेटा का हस्तांतरण भी शामिल है। तकनीकी प्रोवाइडर हस्तांतरण की गई तकनीकी की सही समझ और उपयोग सुनिश्चित करने के लिए पाने वाले को स्पेसिफिकेशन्स, ब्लूप्रिंट्स और ऑपरेशनल मैनुअल सहित व्यापक टेक्निकल डॉक्यूमेंटेशन प्रदान करता है।[8]

पूरी तकनीकी हस्तांतरण प्रोसेस के दौरान, यह सुनिश्चित करने के लिए निगरानी और मूल्यांकन किया जाता है कि हस्तांतरण योजना के अनुसार हो और तकनीकी को सही ढंग से लागू किया जाए। इस निगरानी में यह सुनिश्चित करने के लिए नियमित निगरानी और प्रदर्शन मूल्यांकन शामिल हैं कि सभी तकनीकी और परिचालन पहलुओं को पूरा किया जाए।

तकनीकी हस्तांतरण होने के बाद, प्रोवाइडर लगातार रखरखाव और सहायता प्रदान करता है। यह सहायता यह सुनिश्चित करने के लिए महत्वपूर्ण है कि पाने वाला तकनीकी का प्रभावी ढंग से उपयोग कर सके और किसी भी आने वाली समस्या का समाधान कर सके। निरंतर सहायता से, पाने वाला लगातार अपनी क्षमताओं को बढ़ा सकता है और यह सुनिश्चित कर सकता है कि तकनीकी प्रासंगिक और कार्यात्मक बनी रहे।[9]

बदलता राष्ट्रीय और वैश्विक सुरक्षा परिदृश्य

हाल के वर्षों में, विभिन्न अनुभवजन्य डेटा ने तकनीकी नवाचारों और अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के कारण राष्ट्रीय और वैश्विक सुरक्षा में महत्वपूर्ण वृद्धि दिखाई है। मुख्य संकेतकों में से एक वैश्विक आतंकवाद की घटनाओं में कमी है। वैश्विक टेररिज्म डेटाबेस (GTD) के अनुसार, आतंकवाद की घटनाएं 2014 में लगभग 17,000 घटनाओं के साथ चरम पर थीं, लेकिन 2020 तक घटकर लगभग 10,000 हो गई।

यूरोप में, आतंकवादी हमले 2016 में 142 घटनाओं से घटकर 2020 में 119 घटनाएं हो गए। यह गिरावट काफी हद तक बेहतर खुफिया समन्वय और बेहतर कानून प्रवर्तन प्रयासों के कारण है।

इसके अलावा, अंतर्राष्ट्रीय जलक्षेत्र में समुद्री डाकू हमलों में कमी भी वैश्विक सुरक्षा में सुधार को दर्शाती है। अंतर्राष्ट्रीय समुद्री ब्यूरो (IMB) ने बताया कि वैश्विक समुद्री डाकू हमले 2011 में 439 घटनाओं से घटकर 2021 में 132 हो गए, जिसमें दक्षिण पूर्व एशिया अभी भी समुद्री डाकू हमलों के लिए सबसे अधिक प्रवण क्षेत्र के रूप में पहचाना जाता है (अंतर्राष्ट्रीय समुद्री ब्यूरो, 2015)। यह सुधार बढ़े हुए अंतर्राष्ट्रीय समुद्री गश्ती और उन्नत समुद्री निगरानी प्रौद्योगिकी के उपयोग के कारण है।[10]

परिष्कृत पहचान प्रौद्योगिकियों के माध्यम से समुद्री सुरक्षा को बढ़ाना और समुद्री सुरक्षा आवश्यकताओं की पहचान करना समुद्री सुरक्षा में सुधार के प्रभावी कदम हैं। रिमोट मॉनिटरिंग सिस्टम (RMS), ऑटोमेटेड शिप आइडेंटिफिकेशन सिस्टम (ASAS) जैसी एडवांस्ड तकनीकी और समुद्री गश्त के लिए ड्रोन का इस्तेमाल खतरनाक जहाजों का पता लगाने और उन्हें रोकने में ज्यादा असरदार बनाता है, जिससे अधिकारियों को इन जहाजों की लोकेशन और उनमें किए गए बदलावों के बारे में ज्यादा व्यापक और अप-टू-डेट जानकारी मिलती है।[11]

रक्षा उद्योग में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के फायदे

रक्षा उद्योग में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग से कई महत्वपूर्ण फायदे होते हैं, खासकर संसाधनों की कमी को दूर करने और ज्ञान और तकनीकी को शेयर करके तालमेल बनाने में। ऐसे सहयोग से सीमित रक्षा बजट वाले देशों को भी एडवांस्ड तकनीकी विकसित करने में मदद मिलती है।

उदाहरण के लिए, F-35 जॉइंट स्ट्राइक फाइटर प्रोजेक्ट में, नौ देशों ने डेवलपमेंट लागत में योगदान दिया, इसलिए हर देश को पूरा वित्तीय बोझ नहीं उठाना पड़ा। इसी तरह, एयरबस ।400M एटलस प्रोजेक्ट, जिसमें कई यूरोपीय देश शामिल हैं, हर देश को ज्यादा किफायती कीमत पर अत्याधुनिक तकनीकी हासिल करने की अनुमति देता है।

फाइनेंसिंग के अलावा, अंतर्राष्ट्रीय सहयोग देशों के बीच तकनीकी विशेषज्ञता और तकनीकी के हस्तांतरण को भी आसान बनाता है। सभी देशों के पास एडवांस्ड रक्षा तकनीकी विकसित करने के लिए जरूरी तकनीकी विशेषज्ञता या इंफ्रास्ट्रक्चर नहीं होता है। हालांकि, सहयोग के माध्यम से, देश एक-दूसरे के साथ विशेषज्ञता और तकनीकी शेयर कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, यूरोफाइटर टाइफून प्रोग्राम यूनाइटेड किंगडम, जर्मनी, इटली और स्पेन की तकनीकी विशेषज्ञता को मिलाकर एक बेहतर फाइटर एयरक्राफ्ट बनाता है।

एक और उदाहरण स्कॉर्पीन पनडुब्बी प्रोजेक्ट है, जहाँ फ्रांस ने तकनीकी और विशेषज्ञता प्रदान की, जबकि भारत ने श्रम और मैन्युफैक्चरिंग सुविधाओं का योगदान दिया, जिससे न केवल भारत की रक्षा क्षमताओं को मजबूती मिली, बल्कि उनके स्थानीय उद्योग का भी विकास हुआ।[12]

रक्षा में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग क्षेत्रीय और वैश्विक सुरक्षा को बढ़ाने में भी योगदान देता है। खुफिया जानकारी और निगरानी तकनीकी को शेयर करके, देश सीमा पार सुरक्षा खतरों से निपटने के लिए मिलकर काम कर सकते हैं। नाटो (NATO) का एयरबोर्न वार्निंग एंड कंट्रोल सिस्टम (AWACS) इस सहयोग का एक बेहतरीन उदाहरण है, जिसमें 18 NATO सदस्य देशों की भागीदारी शामिल है। यह सिस्टम महत्वपूर्ण हवाई निगरानी प्रदान करता है और इसका उपयोग विभिन्न NATO मिशनों में हवाई खतरों का पता लगाने और उनका जवाब देने के लिए किया गया है।

कुल मिलाकर, रक्षा उद्योग में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग कई महत्वपूर्ण फायदे प्रदान करता है, जिसमें लागत बचत, बढ़ी हुई तकनीकी विशेषज्ञता, तेज इनोवेशन और मजबूत औद्योगिक क्षमता शामिल है। ज्ञान और तकनीकी को शेयर करने से उत्पन्न

तालमेल न केवल भाग लेने वाले देशों की रक्षा क्षमताओं को बढ़ाता है, बल्कि क्षेत्रीय और वैश्विक सुरक्षा में भी सुधार करता है। अंतर्राष्ट्रीय सहयोग को बढ़ावा देना जारी रखकर, देश भविष्य की तेजी से जटिल होती रक्षा चुनौतियों का सामूहिक रूप से सामना कर सकते हैं।

रक्षा उद्योग में सहयोग और तकनीकी हस्तांतरण का आर्थिक प्रभाव

रक्षा उद्योग में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और तकनीकी हस्तांतरण का राष्ट्रीय और वैश्विक दोनों स्तरों पर महत्वपूर्ण आर्थिक प्रभाव पड़ता है। यह प्रक्रिया न केवल रक्षा क्षमताओं को बढ़ाती है, बल्कि रोजगार सृजन, औद्योगिक विकास और रिसर्च एंड डेवलपमेंट (R&D) में बढ़े हुए निवेश जैसे विभिन्न तरीकों से आर्थिक विकास को भी बढ़ावा देती है।

राष्ट्रीय स्तर पर, रक्षा परियोजनाओं में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग से अक्सर विकास से लेकर उत्पादन चरणों तक, रोजगार के बड़े नए अवसर पैदा होते हैं। उदाहरण के लिए, यूरोफाइटर टाइफून परियोजना में विभिन्न देशों के हजारों कर्मचारी शामिल हैं, जिससे रोजगार पैदा होता है और रक्षा क्षेत्र में कार्यबल के कौशल में सुधार होता है।[13]

इसके अलावा, प्रौद्योगिकी हस्तांतरण प्राप्तकर्ता देशों को अपने स्थानीय उद्योगों को विकसित करने की अनुमति देता है।

उदाहरण के लिए, भारत ने स्कॉर्पीन पनडुब्बी परियोजना से प्रौद्योगिकी हस्तांतरण के माध्यम से, सफलतापूर्वक अपनी विनिर्माण और तकनीकी क्षमताओं को विकसित किया, जिससे आयात पर निर्भरता कम हुई और उसके घरेलू औद्योगिक आधार को मजबूती मिली।

रक्षा सहयोग में भाग लेने वाले देश अक्सर अपनी उत्पादन क्षमता को इस हद तक बढ़ा लेते हैं कि वे अन्य देशों को रक्षा उत्पाद निर्यात कर सकें, जैसा कि दक्षिण कोरिया ने अपने लड़ाकू विमानों और युद्धपोतों के साथ दिखाया है। विश्व स्तर पर, अंतर्राष्ट्रीय सहयोग अनुसंधान और विकास (R&D) में बड़े निवेश को बढ़ावा देता है। जटिल रक्षा परियोजनाओं के लिए लगातार अनुसंधान और नवाचार की आवश्यकता होती है।

OECD की एक रिपोर्ट के अनुसार, रक्षा सहयोग में शामिल देश आमतौर पर अपने R&D बजट में काफी वृद्धि करते हैं। उदाहरण के लिए, F-35 जॉइंट स्ट्राइक फाइटर कार्यक्रम ने R&D निवेश में अरबों डॉलर का निवेश किया है, जिससे न केवल रक्षा उद्योग बल्कि अन्य प्रौद्योगिकी क्षेत्रों को भी फायदा हुआ है।

इसके अलावा, अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और प्रौद्योगिकी हस्तांतरण एक मजबूत और अधिक एकीकृत औद्योगिक पारिस्थितिकी तंत्र बनाकर स्थायी आर्थिक विकास का समर्थन करते हैं। प्रौद्योगिकी और ज्ञान साझा करके, देश उत्पादन दक्षता बढ़ा सकते हैं और नवाचार में तेजी ला सकते हैं, जिससे अंततः समग्र आर्थिक विकास होता है।

संक्षेप में, रक्षा उद्योग में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और प्रौद्योगिकी हस्तांतरण राष्ट्रीय और वैश्विक दोनों स्तरों पर महत्वपूर्ण आर्थिक योगदान प्रदान करते हैं। रोजगार सृजन, स्थानीय औद्योगिक विकास, बढ़े हुए निर्यात और R&D में निवेश के माध्यम से, ये सहयोग न केवल रक्षा क्षमताओं को मजबूत करते हैं बल्कि स्थायी आर्थिक विकास को भी बढ़ावा देते हैं। अंतर्राष्ट्रीय सहयोग को बढ़ावा देना जारी रखकर, देश भविष्य की तेजी से जटिल रक्षा चुनौतियों का सामूहिक रूप से सामना कर सकते हैं।

रक्षा उद्योग में सहयोग और प्रौद्योगिकी हस्तांतरण की प्रभावशीलता बढ़ाने के लिए नीतियां और सिफारिशें

रक्षा उद्योग में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग महत्वपूर्ण लाभ प्रदान करता है, लेकिन इसके प्रभाव को अधिकतम करने के लिए, उचित नीतियों और सिफारिशों की आवश्यकता है।

सबसे पहले, सहयोगी देशों के बीच पारदर्शिता और विश्वास बढ़ाना महत्वपूर्ण है। सरकारों और अंतर्राष्ट्रीय संगठनों को संयुक्त ऑडिट, नियमित प्रगति रिपोर्ट और स्पष्ट संघर्ष समाधान तंत्र के माध्यम से पारदर्शिता तंत्र को मजबूत करना चाहिए। मानकीकृत और नियमित रिपोर्टिंग के साथ-साथ स्वतंत्र निगरानी समितियों के साथ, देशों के बीच विश्वास बनाए रखा जा सकता है, और सहयोगी परियोजनाएं अधिक सुचारू रूप से आगे बढ़ सकती हैं।

दूसरा, तकनीकी हस्तांतरण प्रोसेस का स्टैंडर्डाइजेशन किया जाना चाहिए ताकि यह पक्का हो सके कि सभी पार्टियों के पास एक जैसे सुरक्षा प्रोटोकॉल, इंटेलेक्चुअल प्रॉपर्टी राइट्स और ट्रेनिंग प्रोसीजर हों। यह NATO और यूरोपियन यूनियन जैसी अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के साथ मिलकर ऐसे स्टैंडर्ड बनाकर हासिल किया जा सकता है जिन्हें सदस्य देश बड़े पैमाने पर अपना सकें।

इसके अलावा, सरकारों को अंतर्राष्ट्रीय सहयोगी परियोजना में शामिल कंपनियों को प्रोत्साहन देना चाहिए। इन प्रोत्साहनों में टैक्स में छूट, R&D सब्सिडी और खास मानदंड पूरे करने वाले प्रोजेक्ट्स के लिए फाइनेंशियल सपोर्ट शामिल हो सकता है, जिससे ज्यादा कंपनियाँ ऐसे कोलैबोरेशन में हिस्सा लेने के लिए प्रोत्साहित होंगी। चुनौतियों से निपटने और कोलैबोरेशन के फायदों को ज्यादा से ज्यादा करने के लिए, कई सिफारिशों को लागू किया जाना चाहिए। जिसमे सबसे उपर है लोकल वर्कफोर्स के लिए ट्रेनिंग और स्किल डेवलपमेंट को मजबूत करना।

टेक्निकल स्किल्स और प्रोजेक्ट मैनेजमेंट पर फोकस करने वाले ट्रेनिंग और एजुकेशन प्रोग्राम यह पक्का करने के लिए बहुत जरूरी हैं कि लोकल वर्कफोर्स सहयोगी परियोजना को सपोर्ट करने के लिए तैयार हो। हायर एजुकेशन संस्थानों और रक्षा उद्योग के बीच पार्टनरशिप डिफेंस इंजीनियरिंग और प्रोजेक्ट मैनेजमेंट में इंटर्नशिप और स्कॉलरशिप सहित संबंधित कोर्स और ट्रेनिंग दे सकती है।[14]

इसके अलावा, यह सुनिश्चित करने के लिए कि देशों के पास सहयोगी परियोजनाओं को समर्थन देने के लिए पर्याप्त सुविधाएं हों, बुनियादी ढांचे और उत्पादन क्षमता में सुधार करना महत्वपूर्ण है। कुशल और आधुनिक उत्पादन क्षमता सुनिश्चित करने के लिए विनिर्माण बुनियादी ढांचे और प्रौद्योगिकी में निवेश की आवश्यकता है। सरकारों और निजी क्षेत्र को उन्नत उत्पादन सुविधाएं बनाने के लिए सहयोग करना चाहिए, जैसे कि रक्षा क्षेत्र के लिए आधुनिक सुविधाओं और नवीनतम प्रौद्योगिकी तक पहुंच के साथ विशेष औद्योगिक क्षेत्र विकसित करना।

बौद्धिक संपदा अधिकार (IPR) संरक्षण भी एक चुनौती है, जिसे संबोधित किया जाना चाहिए। IPR संरक्षण के बारे में चिंताएं प्रौद्योगिकी हस्तांतरण में बाधा बन सकती हैं। इसलिए मजबूत IPR सुरक्षा लागू करना और यह सुनिश्चित करना महत्वपूर्ण है कि, सभी संबंधित पक्ष इन नियमों का पालन करें। रक्षा सहयोग परियोजनाओं में IPR संरक्षण पर बाध्यकारी अंतर्राष्ट्रीय समझौते स्थापित करना और प्रभावी कानून प्रवर्तन सभी संबंधित पक्षों के लिए सुरक्षा प्रदान करेगा।[15]

अंत में, अंतर्राष्ट्रीय सहयोग की सफलता के लिए सरकारों और निजी क्षेत्र के बीच सहयोग को बढ़ावा देना आवश्यक है। सार्वजनिक-निजी भागीदारी रक्षा उद्योग में प्रौद्योगिकी हस्तांतरण और नवाचार को सुविधाजनक बना सकती है।

सरकारों और निजी क्षेत्र के बीच संवाद के लिए मंच और प्लेटफॉर्म स्थापित करना और दोनों पक्षों को शामिल करने वाली सहयोगी परियोजनाओं के लिए प्रोत्साहन प्रदान करना तालमेल को मजबूत करेगा और सहयोगी परियोजनाओं की सफलता सुनिश्चित करेगा।

निष्कर्ष रूप में, रक्षा उद्योग में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और प्रौद्योगिकी हस्तांतरण को उनकी प्रभावशीलता को अधिकतम करने के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण की आवश्यकता है। पारदर्शिता बढ़ाकर, प्रक्रियाओं का मानकीकरण करके, प्रोत्साहन प्रदान करके, स्थानीय कौशल को मजबूत करके, बुनियादी ढांचे में सुधार करके, IPR की रक्षा करके, और सार्वजनिक-निजी भागीदारी को बढ़ावा देकर, देश चुनौतियों का समाधान कर सकते हैं और सहयोग के लाभों को पूरी तरह से महसूस कर सकते हैं। यह न केवल रक्षा क्षमताओं को बढ़ाएगा बल्कि स्थायी आर्थिक विकास और नवाचार को भी बढ़ावा देगा, यह सुनिश्चित करेगा कि देश सामूहिक रूप से भविष्य की तेजी से जटिल रक्षा चुनौतियों का सामना कर सकें।[16]

निष्कर्ष

रक्षा उद्योग में सहयोग और प्रौद्योगिकी हस्तांतरण सैन्य क्षमताओं को बढ़ाने, आयात पर निर्भरता कम करने और राष्ट्रीय और वैश्विक सुरक्षा को मजबूत करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अंतर्राष्ट्रीय सहयोग के माध्यम से, देश उन्नत प्रौद्योगिकी, तकनीकी विशेषज्ञता और विकास लागत साझा कर सकते हैं, जो न केवल दक्षता बढ़ाते हैं बल्कि रक्षा क्षेत्र में नवाचार को भी बढ़ावा देते हैं। इसके अलावा, यह सहयोग महत्वपूर्ण आर्थिक लाभ लाता है, जिसमें रोजगार सृजन, स्थानीय उद्योग विकास और अनुसंधान और विकास (R&D) में बढ़ा हुआ निवेश शामिल है। हालांकि, सहयोगी परियोजनाओं की सफलता सुनिश्चित करने के लिए अलग-अलग राष्ट्रीय हितों, तकनीकी समन्वय और बौद्धिक संपदा संरक्षण जैसी चुनौतियों का समाधान किया जाना चाहिए। रक्षा उद्योग में सहयोग और प्रौद्योगिकी हस्तांतरण की प्रभावशीलता को बढ़ाने के लिए, कई उपायों की आवश्यकता है।

संयुक्त ऑडिट तंत्र और नियमित प्रगति रिपोर्ट के माध्यम से पारदर्शिता और विश्वास बढ़ाना आवश्यक है। सुरक्षा और बौद्धिक संपदा अधिकारों पर स्पष्ट प्रोटोकॉल के साथ मानकीकृत प्रौद्योगिकी हस्तांतरण प्रक्रियाओं को विकसित करना भी

महत्वपूर्ण है। सरकारों को भाग लेने वाली कंपनियों को टैक्स में छूट और R&D सब्सिडी जैसे प्रोत्साहन प्रदान करने चाहिए। इसके अलावा, प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से स्थानीय कार्यबल के कौशल को विकसित करना और बुनियादी ढांचे और उत्पादन क्षमता में सुधार करना महत्वपूर्ण है।

यह सुनिश्चित करने के लिए कि सभी पक्ष इन मानकों का पालन करें, बाध्यकारी अंतर्राष्ट्रीय समझौतों के साथ बौद्धिक संपदा संरक्षण को मजबूत करना आवश्यक है। अंत में, प्रौद्योगिकी हस्तांतरण और नवाचार को सुविधाजनक बनाने के लिए सरकारों और निजी क्षेत्र के बीच साझेदारी को बढ़ावा देना महत्वपूर्ण है। इन उपायों को लागू करके, देश रक्षा उद्योग में अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और प्रौद्योगिकी हस्तांतरण के लाभों को पूरी तरह से प्राप्त कर सकते हैं। यह न केवल सैन्य क्षमताओं को बढ़ाएगा बल्कि स्थायी आर्थिक विकास और नवाचार को भी बढ़ावा देगा, यह सुनिश्चित करेगा कि देश भविष्य की तेजी से जटिल रक्षा चुनौतियों का सामूहिक रूप से सामना कर सकें।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

1. अकिमकिना, डी., ख्रुस्तालेव, ई., बारानोवा, एन., और लॉगिनोवा, डी. (2021). सैन्य-औद्योगिक परिसर का प्रौद्योगिकी हस्तांतरण नागरिक उद्योग की विज्ञान तीव्रता बढ़ाने में एक कारक के रूप में। SHS वेब ऑफ कॉन्फ्रेंस (वॉल्यूम 114, पृष्ठ 01027) में। EDP साइंसेज।
2. बाना, एस. (2016). द ग्रेट स्कॉर्पीन लीक: भारत के पनडुब्बी कार्यक्रमों के लिए संभावनाएं।
3. दा सिल्वा, एल. ई., कराबाग, एस. एफ., और बर्गग्रेन, सी. (2017). अंतर्राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी हस्तांतरण में सहयोग: ज्ञान सीमाओं और सीमा वस्तुओं की भूमिका।
4. डेंट, ई. बी. (2024). नॉर्थ अमेरिकन एविएशन का नाटकीय परिवर्तन और 1941–1945 में नैतिक पुनर्शस्त्रीकरण का प्रभाव। लेबर हिस्ट्री, 65(1), 104–120. https://doi.org/10.1080/0023656X.2023.2243442
5. एबाये, एस. ई. एन. (2024). जबरन कूटनीति, सैन्य रणनीति और विदेश नीति अनुमान। इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इंटरनेशनल रिलेशन्स, मीडिया एंड मास कम्युनिकेशन स्टडीज, 10(1), 23–37.
6. फार्कस, टी. (2023). यूरोपीय रक्षा उद्योग के लिए चुनौतियाँ। SISY 2023 - IEEE 21st इंटरनेशनल सिम्पोजियम ऑन इंटेलिजेंट सिस्टम्स एंड इन्फॉर्मेटिक्स, प्रोसीडिंग्स, 457–462. https://doi.org/10.1109/SISY60376.2023.10417901
7. गिरी, बी., और स्मिथ, ए. (2019). सपोर्टिंग एटलस: यूरोप के सैन्य एयरलिफ्टर की सेवा के लिए फ्रांसीसी-ब्रिटिश सहयोग। यूरोपियन रिव्यू ऑफ इंटरनेशनल स्टडीज, 6(2), 115–134.
8. मैथ्यूज, आर., और अल-सादी, आर. (2023). यूरोफाइटर टाइफून सहयोगी आपूर्ति श्रृंखला की संगठनात्मक जटिलता। डिफेंस एंड पीस इकोनॉमिक्स, 34(2), 228–243.
9. मिगोन, ए., हाउलेट, ए., और हाउलेट, एम. (2023). प्रोक्योरमेंट और राजनीति: कनाडा और ऑस्ट्रेलिया में रक्षा अधिग्रहण की रणनीतियाँ (पृ. 156). स्प्रिंगर नेचर.
10. सेजल, एम. ए., और गियुमेली, एफ. (2022). प्रौद्योगिकी हस्तांतरण और रक्षा क्षेत्र की गतिशीलता: नीदरलैंड का मामला. यूरोपियन सिक्योरिटी, 31(4), 558–575.
11. START (नेशनल कंसोर्टियम फॉर द स्टडी ऑफ टेररिज्म एंड रिस्पॉन्स टू टेररिज्म). (2022). ग्लोबल टेररिज्म डेटाबेस 1970 - 2020 [डेटा फाइल]. https://www.start.umd.edu/gtd
12. टियान, नान, दा सिल्वा, डी. एल., लियांग, एक्स., स्कारजाटो, विश्व सैन्य व्यय में रुझान, 2023. (2024). SIPRI फैक्ट शीट, "स्टॉकहोम इंटरनेशनल पीस इंस्टीट्यूट SIPRI डेटाबेस," से लिया गया: https://www.sipri.org/databases
13. वैन वेगेन, डब्ल्यू. (2023). सफलता की विरासत और समुद्री सर्वेक्षण में रुझानों का अनुमान लगाना. हाइड्रो इंटरनेशनल, 27(5), 49–51.
14. वेनेबल, जे. (2020). F-35A दुनिया का सबसे प्रभावी, लागत प्रभावी फाइटर है: वायु सेना को अब इसके अधिग्रहण में तेजी लाने की जरूरत है. हेरिटेज फाउंडेशन इश्यू ब्रीफ, (5042).
15. यिंग, एम. (2020). क्लोज एयर सपोर्ट में AWACS की भूमिकाओं पर शोध. मॉडर्न डिफेंस टेक्नोलॉजी, 48(5), 50.
16. योंगवेई, डब्ल्यू. (2024). बड़े-छोटे मॉडलों के लिए एज-क्लाउड सहयोग और विकास में प्रगति. जर्नल ऑफ इमेज एंड ग्राफिक्स, 29(6), 1510–1534. https://doi.org/10.11834/jig.240011

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में राष्ट्रवादी मुस्लिम नेताओं की भूमिका: विशेषत: मौलाना हसरत मोहानी और ख़ान अब्दुल गफ्फार ख़ान के संदर्भ में

गौरव यादव

पीएच.डी. रिसर्च स्कॉलर (NET, JRF) इतिहास विभाग श्री जगदीशप्रसाद झाबरमल टिबड़ेवाला विश्वविद्यालय (JJTU) झुंझुनू, राजस्थान

सारांश

यह दस्तावेज भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में दो प्रमुख राष्ट्रवादी मुस्लिम नेताओं मौलाना हसरत मोहानी और खान अब्दुल गफ्फार खान के जीवन और योगदान का विवरण देता है। मौलाना हसरत मोहानी एक क्रांतिकारी कवि और पत्रकार थे, जिन्होंने 1921 में कांग्रेस अधिवेशन में सबसे पहले 'पूर्ण स्वतंत्रता' (Swaraj) की मांग उठाई थी एवं वे देश के विभाजन के सख्त खिलाफ थे, जिसके कारण उन्होंने संविधान के अंतिम मसौदे पर हस्ताक्षर करने से भी इनकार कर दिया था।

वहीं खान अब्दुल गफ्फार खान, जिन्हें 'सीमांत गांधी' के रूप में जाना जाता है, ने 'खुदाई खिदमतगार' संगठन की स्थापना की और पठानों को गांधीजी के अहिंसक आंदोलन से जोड़ा इसके साथ ही उन्होंने विभाजन का कड़ा विरोध किया क्योंकि उन्होंने इसे अपने लोगों के लिए विनाशकारी माना। यह लेख इन नेताओं की देशभक्ति और धर्मनिरपेक्षता को रेखांकित करता है।

मुख्य शब्द: मुस्लिम राष्ट्रवादी नेता, मुस्लिम लीग, कांग्रेस, साम्प्रदायिकता, विभाजन कारी नीतियां, हसरत मोहानी, खान अब्दुल गफ्फार खान।

शोध का उद्देश्य :

शोध का उद्देश्य राष्ट्रवादी मुस्लिम नेता हसरत मोहानी एवं खान अब्दुल गफ्फार खान के जीवन पर संक्षिप्त प्रकाश डालना है, जिन्होंने सांप्रदायिकता एवं विभाजन कारी राजनीति को नकारा और मानवता को सर्वोपरि रखा एवं एक भारत, अखण्ड भारत की कट्टर वकालत की।

वर्तमान दौर में जब डिजिटल स्पेस में झूठी एवं प्रोपेगेंडा युक्त खबरों का बोलबाला है, तब इस लेख के माध्यम से प्रकाश पड़ता है कि आजादी की लड़ाई सभी धर्म व वर्ग के लोगों ने लड़ी।

साहित्यवलोकन- इस लेख को पूर्ण करने हेतु प्राथमिक स्रोतों के साथ साथ द्वितीयक स्रोतों पर भी विशेष जोर दिया गया है प्राथमिक स्रोतों के अंतर्गत जहाँ 'द फ्रंटियर गांधी: माई लाइफ एंड स्ट्रगल', 'दीवान ए हसरत' एवं 'इंतिखाब एक कलाम हसरत मोहानी, का उपयोग किया गया है वहीं द्वितीयक स्रोतों में मित्तल (Mittal) - विपक्षी दल, चोपड़ा पी.एन., हिंदुस्तान टाइम्स (Hindustan Times), 20 फरवरी 1981, Mathur, Y.B ग्रोथ ओफ मुस्लिम पॉलिटिक्स इन इंडिया जैसे अन्य स्रोतों का प्रयोग किया गया।

प्रस्तावना

यह दस्तावेज भारत के स्वतंत्रता संग्राम में राष्ट्रवादी मुस्लिम नेताओं के अमूल्य और ऐतिहासिक योगदान पर प्रकाश डालता है इसीलिए इसमें विशेष रूप से मौलाना हसरत मोहानी और सीमांत गांधी (खान अब्दुल गफ्फार खान) के जीवन और संघर्षों का विस्तृत विवरण है। इन नेताओं ने हमेशा धर्म से ऊपर उठकर राष्ट्रहित को सर्वोपरि रखा और 'पूर्ण स्वराज' की मांग से

लेकर 'खुदाई खिदमतगार' जैसे आंदोलनों का नेतृत्व किया अतः यह लेख उनके बलिदान, ब्रिटिश शासन के प्रति उनके कड़े विरोध और हिंदू-मुस्लिम एकता के प्रति उनकी अटूट प्रतिबद्धता को दर्शाता है, जो आज भी प्रेरणा का स्रोत है।

मौलाना हसरत मोहानी

मौलाना हसरत मोहानी, जिनका निधन तीस साल पहले हुआ था और जो राजनीतिक क्षितिज पर उस समय चमके थे जब गांधीजी एक उभरते हुए सितारे थे, अब पूरी तरह से भुला दिए गए हैं, यहां तक कि उस शहर में भी जहां वे रहते थे यानी कानपुर। सैयद फजुल हसन का जन्म 1878 में उन्नाव जिले के मोहन में हुआ था। उन्हें उनके उपनाम, हसरत मोहानी से जाना जाता था। उन्होंने अपनी प्रारंभिक शिक्षा फतेहपुर में प्राप्त की। थोड़े ही समय में उन्हें फारसी, उर्दू और अरबी का ज्ञान दिया गया। बाद में उन्हें बैचलर ऑफ आर्ट्स की डिग्री के लिए एम.ए.ओ. कॉलेज, अलीगढ़ में दाखिला दिलाया गया। अलीगढ़ में वे अपनी साहित्यिक रुचि के कारण बहुत लोकप्रिय हुए। एक कवि और अच्छे वक्ता होने के नाते उन्हें एक उच्च सम्मानित साहित्यिक संस्था 'अंजुमन उर्दू-ए-मुअल्ला' का सचिव चुना गया। वे अलीगढ़ के पहले मुस्लिम स्नातक थे जो भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में शामिल हुए और भारत के स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय रूप से भाग लिया। ब्रिटिश सरकार की दमनकारी नीति ने उनके विद्रोही स्वभाव को उद्वेलित कर दिया। उन्हें 1902 में कॉलेज से निष्कासित कर दिया गया और कॉलेज का 'प्रथम युवा विद्रोही' करार दिया गया। एम.ए.ओ. कॉलेज में, उन्होंने एक मुशायरा आयोजित किया और देश के विभिन्न स्थानों से कवियों को आमंत्रित किया। किसी ने प्रिंसिपल थियोडोर मॉरिसन को रिपोर्ट कर दी कि ब्रिटिश सरकार के खिलाफ कुछ विद्रोही कविताएं सुनी गई हैं, जिससे छात्र समुदाय पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। इसलिए, उन्हें मॉरिसन द्वारा तुरंत बुलाया गया और स्पष्टीकरण मांगा गया, हसरत मोहानी ने कहा, ष्सर, हमारे कवि हमारे समाज में मानवता के महान आदर्शों के लिए खड़े हैं। शालीनता की कमी के लिए उनकी निंदा की जा सकती है।" 1903 में, उन्होंने एक मासिक पत्रिका 'उर्दू-ए-मुअल्ला' शुरू की। एम. ए.ओ. कॉलेज, अलीगढ़ से एक शानदार शैक्षणिक करियर के बाद, वे 1907 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में शामिल हो गए। एक प्रतिनिधि के रूप में हसरत मोहानी नियमित रूप से कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में शामिल हुए जो 1904 में बॉम्बे, 1905 में बनारस, 1906 में कलकत्ता में आयोजित हुए। वे तिलक के गरमपंथी (उग्रवादी) आंदोलन में शामिल होने वाले उत्तर भारत के पहले मुस्लिम थे। उन्होंने 1907 में सूरत में नरमपंथियों और गरमपंथियों के बीच हुए संघर्ष में गरमपंथियों का पक्ष लिया। वे लोकमान्य तिलक के कट्टर अनुयायी थे, इसके अलावा वे कुछ अन्य क्रांतिकारी समूहों में भी शामिल हुए।

हसरत मोहानी का मुख्य कार्य मुस्लिम जनता में जिम्मेदारी की भावना पैदा करके और स्वतंत्रता संग्राम में भागीदारी के लिए उन्हें तैयार करना था। उन्होंने अपनी उर्दू पत्रिका का प्रकाशन फिर से शुरू किया। त्रिपोली युद्ध (1911-12) और बाल्कन युद्ध (1912-13) के समय, हसरत मोहानी ने अपने दम पर धन इकट्ठा किया और मई 1913 में अंजुमन हिलाल अहमर के अध्यक्ष को भेजा। उसी समय अबुल बारी ने अंजुमन खुद्दाम-ए-काबा की स्थापना की जिसमें हसरत मोहानी ने प्रमुख भूमिका निभाई और 19 मई, 1913 को उर्दू-ए-मुअल्ला में इसका संविधान प्रकाशित किया। हसरत मोहानी को प्रेस एक्ट के तहत अपनी प्रेस और उर्दू-ए-मुअल्ला के लिए सुरक्षा राशि के रूप में 3000 रुपये जमा करने के लिए कहा गया, लेकिन हसरत मोहानी आवश्यक राशि जमा करने में विफल रहे, इसलिए ब्रिटिश सरकार ने पत्रिका सहित उनकी प्रेस को जब्त कर लिया। 1916 में ब्रिटिश सरकार को सूचना मिली कि हसरत मोहानी और अबुल कलाम आजाद को 'भारत की अनंतिम सरकार' के बरकतउल्ला द्वारा बुलाया गया था और दोनों नेता काबुल जा रहे थे, इसलिए फजल-उल-हसन को हसरत मोहानी के साथ संयुक्त प्रांत सरकार द्वारा झांसी जिले के ललितपुर में नजरबंद कर दिया गया। नजरबंदी आदेश का पालन न करने पर हसरत मोहानी को दो साल की कैद की सजा सुनाई गई। उन्हें 22 मई, 1918 को रिहा कर दिया गया, लेकिन कुछ महीनों के लिए मेरठ में घर में नजरबंद रखा गया और अंततः दिसंबर 1918 में सभी प्रतिबंध हटा दिए गए। उन्होंने छह बार गिरफ्तारी दी और कुल मिलाकर 1908 से 1916 तक लगभग पांच साल जेल में बिताए।

मुस्लिम लीग ने 1916 में मजहरुल हक की अध्यक्षता में बॉम्बे में अपना अधिवेशन आयोजित किया। हसरत मोहानी ने जिन्ना के साथ मिलकर हिंदू-मुस्लिम एकता के लिए ठोस प्रयास किए, जिस पर कांग्रेस और लीग दोनों सहमत हुए। 19 नवंबर, 1919 को खिलाफत आंदोलन पर चर्चा के लिए दिल्ली में मुसलमानों और हिंदुओं की एक संयुक्त बैठक आयोजित की गई। हसरत मोहानी ने भी इस बैठक में भाग लिया। बैठक में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का प्रस्ताव अपनाया गया, लेकिन हसरत मोहानी ने इस तथ्य पर बहुत जोर दिया कि केवल ब्रिटिश निर्मित वस्तुओं का बहिष्कार किया जाना चाहिए। लेकिन हसरत मोहानी के इस कदम का गांधीजी ने इसे अव्यावहारिक बताते हुए विरोध किया। सम्मेलन ने सरकार के शांति समारोह

का बहिष्कार करने के मौलाना हसरत मोहानी के प्रस्ताव पर सर्वसम्मति से सहमति व्यक्त की। 1919 में उन्होंने लखनऊ में आयोजित ऑल इंडिया मुस्लिम कॉन्फ्रेंस में भाग लिया। उन्होंने खिलाफत आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया। जब शुक्रवार, 17 अक्टूबर को खिलाफत दिवस के रूप में मनाने के लिए तय किया गया, तो हसरत मोहानी ने उनके और अब्दुल बारी द्वारा हस्ताक्षरित एक उर्दू पोस्टर तैयार किया जिसे कलकत्ता में प्रदर्शित किया गया। तुर्की शांति की शर्तें 15 मई, 1920 को बॉम्बे में प्रकाशित हुईं। उस समय उन्होंने कहा कि यदि प्रिंस ऑफ वेल्स ने अपनी प्रस्तावित भारत यात्रा रद्द नहीं की, तो वह जहां भी जाएंगे वहां हड़ताल का आयोजन किया जाएगा। यह बात अवध खिलाफत सम्मेलन में कही गई थी। 1920 में, नागपुर में कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में असहयोग कार्यक्रम चर्चा के लिए आया। उन्होंने गांधीजी के असहयोग प्रस्ताव का समर्थन किया। 1921 में असहयोग आंदोलन अपने चरम पर था और कांग्रेस पर गांधीजी का प्रभुत्व था। कांग्रेस नेताओं ने 4 अक्टूबर 1921 को ब्रिटिश सरकार के साथ असहयोग के संबंध में एक घोषणापत्र जारी किया। हसरत मोहानी ने घोषणापत्र का समर्थन किया और हस्ताक्षर किए। दिसंबर 1921 में, हकीम अजमल खान के नेतृत्व में अहमदाबाद में कांग्रेस की बैठक हुई। अहमदाबाद कांग्रेस की उल्लेखनीय विशेषता मौलाना हसरत मोहानी का प्रस्ताव था।

उन्होंने इस सत्र में अपने ऐतिहासिक प्रस्ताव को निम्नलिखित शब्दों के साथ पेश किया: "भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का उद्देश्य स्वराज या पूर्ण स्वतंत्रता की प्राप्ति है, जो भारत के लोगों द्वारा सभी वैध और शांतिपूर्ण तरीकों से विदेशी नियंत्रण से मुक्त हो।" पहली बार उन्होंने स्वराज शब्द को "पूर्ण स्वतंत्रता" के रूप में स्पष्ट किया और कांग्रेस द्वारा इसे अपने उद्देश्य के रूप में अपनाने पर जोर दिया। उनके प्रभावशाली भाषण ने दर्शकों को झकझोर दिया और ऐसा लग रहा था कि प्रस्ताव पारित हो जाएगा, लेकिन गांधीजी इसके खिलाफ मजबूती से खड़े रहे और इसे खारिज कर दिया गया। गांधीजी के अनुयायियों के विरोध के बावजूद, इसे साल-दर-साल दबाया जाता रहा जब तक कि इसे 1927 में मद्रास अधिवेशन में एक प्रस्ताव के रूप में स्वीकार नहीं किया गया और 1929 में लाहौर में इसे मूल सिद्धांत में शामिल नहीं कर लिया गया। हसरत मोहानी ने ऑल इंडिया मुस्लिम लीग के सत्र की भी अध्यक्षता की जो उसी स्थान यानी अहमदाबाद में आयोजित किया गया था। इस सत्र में उन्होंने स्वराज से संबंधित प्रस्ताव रखा और हार गए। उन्होंने एक भाषण दिया जिसे सरकार ने राजद्रोही बताया। उन्हें सरकार के खिलाफ विद्रोह करने के आरोप में गिरफ्तार किया गया था। लेकिन उन्होंने हाई कोर्ट में अपील की। हाई कोर्ट ने उन्हें दोषी नहीं पाया इसलिए उन्हें रिहा कर दिया गया। यह सब देखकर उन्होंने कांग्रेस छोड़ दी और मुस्लिम लीग में शामिल हो गए, लेकिन वे इसमें खुश नहीं थे, क्योंकि वे अक्सर इसके शक्तिशाली नेताओं के साथ अपने अपरंपरागत विचारों के कारण भिड़ जाते थे।

वे 1925 में कानपुर में आयोजित कम्युनिस्टों के अखिल भारतीय सम्मेलन की स्वागत समिति के अध्यक्ष थे। अब उन्होंने खुद को 'मुस्लिम कम्युनिस्ट' कहा। साम्यवाद के इस प्रचार के लिए, उन्होंने विभिन्न अखबारों में लगभग एक दर्जन लेख लिखे। जब नेहरू रिपोर्ट ने 1928 में भारत के लिए डोमिनियन स्टेटस (अधिराज्य का दर्जा) की सिफारिश की, तो हसरत मोहानी ने नेहरू रिपोर्ट की सिफारिशों की आलोचना की। नेहरू रिपोर्ट पर विचार करने के लिए अगस्त 1928 में लखनऊ में एक सर्वदलीय सम्मेलन आयोजित किया गया था। उन्होंने नेहरू रिपोर्ट का विरोध किया, लेकिन अंततः इसे बहुमत से पारित कर दिया गया। उन्होंने 3 नवंबर, 1928 को कानपुर में आयोजित सर्वदलीय सम्मेलन में भी भाग लिया। उन्हीं वर्षों में उन्होंने 'यंग मुस्लिम एसोसिएशन' की स्थापना की और 'मुस्तकिल' नामक एक नया अखबार शुरू किया, जो 1929 तक दैनिक समाचार पत्र के रूप में जारी रहा। 1931 में, कानपुर में सांप्रदायिक दंगे हुए जिसमें उन्होंने अन्य नेताओं के साथ मिलकर हिंदू-मुस्लिम एकता और शहर में कानून और व्यवस्था की बहाली के लिए काम किया। भारत सरकार अधिनियम 1935 के पारित होने के बाद, हसरत मोहानी ने अन्य नेताओं की मदद से 'आजाद पार्टी' की स्थापना की और इसका मुख्य उद्देश्य 'पूर्ण स्वतंत्रता और हिंदू-मुस्लिम एकता' था, लेकिन यह लंबे समय तक नहीं चला। वे न केवल घरेलू मामलों में बल्कि अंतर्राष्ट्रीय मामलों में भी रुचि रखते थे। 1938 में काहिरा में फिलिस्तीनी सम्मेलन आयोजित किया गया, उन्होंने महमूद अलुहा पाशा के निमंत्रण पर सम्मेलन में भाग लिया।

हसरत मोहानी ने पाकिस्तान की योजना का विरोध किया, जब इसे मुस्लिम लीग की कार्यसमिति के सामने पेश किया गया और जिन्ना को इसके विनाशकारी परिणामों की चेतावनी दी। वे 1946 में यूपी विधान सभा के लिए चुने गए, और वे संविधान सभा के सदस्य थे। वे एकमात्र ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने संविधान के अंतिम मसौदे पर हस्ताक्षर करने से इनकार कर दिया, जब इसे उनके सामने रखा गया। ऐसा इसलिए था क्योंकि वे विभाजन और ब्रिटिश राष्ट्रमंडल की सदस्यता के विरोधी थे। 3 जून,

1947 की विभाजन योजना की घोषणा के तुरंत बाद, उन्होंने मुस्लिम लीग से इस्तीफा दे दिया क्योंकि वे देश की एकता और अखंडता की कीमत पर स्वतंत्रता नहीं चाहते थे। अब वे कांग्रेस और मुस्लिम लीग से पूरी तरह तंग आ चुके थे। 13 मई, 1951 को लखनऊ में उनका निधन हो गया।

मौलाना हसरत मोहानी भारत के मुसलमानों के लिए प्रेरणा का एक बड़ा स्रोत थे। उन्हें ग्वालियर में प्रोफेसरशिप और ब्रिटिश कोर्ट द्वारा जज के पद की पेशकश की गई थी, लेकिन उन्होंने स्वीकार करने से इनकार कर दिया क्योंकि वे अपने देश की सेवा करना चाहते थे। वे स्वभाव से क्रांतिकारी थे और इस वजह से वे जो उचित और सही समझते थे, उसके बारे में अपने विचार व्यक्त करने से कभी नहीं रुके।

खान अब्दुल गफ्फार खान

अब्दुल गफ्फार खान, जिन्हें लोकप्रिय रूप से बादशाह खान या सीमांत गांधी (फ्रंटियर गांधी) के रूप में जाना जाता है, का जन्म हशतनगर, जिसे अब अष्टनगर या 'आठ कस्बों' के रूप में जाना जाता है, के उत्तमनजई गांव में खान बेहराम खान के घर 1890 में हुआ था। जब वे पांच या छह साल के थे, तो उन्हें एक मुल्ला से सबक लेने के लिए मस्जिद में भर्ती कराया गया था। समय के साथ उन्होंने पवित्र कुरान पढ़ना समाप्त कर दिया। जब उन्होंने कुरान के पाठ समाप्त कर लिए, तो उन्हें पेशावर के म्युनिसिपल बोर्ड हाई स्कूल में भेजा गया। तब वे आठ वर्ष के थे। पेशावर में प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद, वे पेशावर के एडवर्ड मेमोरियल मिशन हाई स्कूल में शामिल हो गए। जब वे दसवीं कक्षा में थे, तो वे सैन्य सेवा की चमक-दमक से प्रभावित हुए, और एक कमीशन के लिए भारत के कमांडर-इन-चीफ को एक आवेदन भेजा। सेना में उनका चयन हो गया जिसमें वे शामिल हो गए। लेकिन किसी घटना के कारण उन्होंने सेना से इस्तीफा दे दिया और समाज सुधारक के रूप में काम करना शुरू कर दिया। 1910 में उन्होंने उत्तमनजई में एक स्कूल खोला और 'दार-उल-उलूम' की स्थापना की जिसका कार्य शिक्षा को लोकप्रिय बनाना और गांव में स्कूल खोलना था। 1913 में आगरा में आयोजित मुस्लिम लीग के वार्षिक सत्र में, उन्होंने सत्र में भाग लिया। दिसंबर 1915 में हशतनगर के सीधे-सादे पठान एक मस्जिद में इकट्ठा हुए और घोषित किया कि वे वहां के ष्बादशाहष् हैं। इस प्रकार वे बादशाह बन गए, जिस नाम से उन्हें आम तौर पर पुकारा जाता है।

1919 में रॉलेट बिल पास हुआ। इस समय अब्दुल गफ्फार खान ने रॉलेट एक्ट और लॉयड जॉर्ज द्वारा भारत को स्वशासन देने के झूठे आश्वासन के खिलाफ एक बैठक आयोजित की। 6 अप्रैल 1919 को उन्होंने एक बैठक को संबोधित किया और रॉलेट एक्ट की निंदा करते हुए एक प्रस्ताव पारित किया गया। इसलिए उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और छह महीने की कैद के बाद रिहा कर दिया गया। खिलाफत आंदोलन पर चर्चा करने के लिए दिल्ली में एक खिलाफत सम्मेलन आयोजित किया गया था, अब्दुल गफ्फार खान ने सम्मेलन में भाग लिया जिसमें आजाद, अजमल खान और अली बंधुओं जैसे कई प्रमुख नेता मौजूद थे। जब गांधीजी ने अपना असहयोग आंदोलन शुरू किया, तो उन्होंने इसमें सक्रिय भाग लिया। उन्होंने पूरे प्रांत का दौरा किया और सभी पठानों से असहयोग आंदोलन का समर्थन करने की अपील की। मुख्य आयुक्त सर जॉन मैफी ने उन्हें अपनी ब्रिटिश विरोधी गतिविधियों को रोकने के लिए चेतावनी दी थी लेकिन उन्होंने इस चेतावनी को नहीं सुना और अपना काम हमेशा की तरह जारी रखा। दिसंबर 1921 में उन्हें फिर से गिरफ्तार कर लिया गया और तीन साल के कठोर कारावास की सजा सुनाई गई। उन्हें 1924 में रिहा कर दिया गया। 1924-28 तक उन्होंने खुद को राजनीतिक गतिविधियों से अलग रखा। 1927 तक पख्तून भाषा में कोई पत्रिका नहीं थी, इसलिए पख्तूनों को एक समूह में एकजुट करने के लिए उन्होंने मई 1928 में एक मासिक 'पख्तून' शुरू किया। यह तब तक जारी रहा जब तक कि इसे सरकार द्वारा प्रतिबंधित नहीं कर दिया गया, जो पख्तूनों के बीच इसकी बढ़ती लोकप्रियता को देखकर घबरा गई थी।

जनवरी 1929 में उन्होंने पूर्व राजा अमानुल्लाह, जिन्हें ब्रिटिश साजिश के कारण बाहर निकाल दिया गया था, को समर्थन देने के लिए अफगानिस्तान में एक मिशन भेजने हेतु कुछ समर्थन जुटाने के लिए सीमांत (फ्रंटियर) का दौरा किया। उन्होंने कोहाट के आदिवासियों से पूर्व राजा के लिए एकजुट होने और लड़ने की अपील की। लेकिन सरकार ने उन्हें अफगानिस्तान जाने की अनुमति नहीं दी। इसलिए अब्दुल गफ्फार खान ने पूर्व राजा अमानुल्लाह की ओर से प्रचार करने के लिए पेशावर में 'अंजुमन-ए नौजवान सरहद' नामक एक सोसायटी बनाई। इसका मुख्य उद्देश्य प्रांत के युवाओं के माध्यम से मजदूरों और किसानों को पूंजीपतियों और साम्राज्यवादियों के अभिशाप के खिलाफ संगठित करना था। अंजुमन सोसायटी को शक्तिशाली बनाने के लिए, उन्होंने 'खुदाई खिदमतगार' नामक एक संगठन की स्थापना की। 1929 में लाहौर में कांग्रेस का अधिवेशन

आयोजित किया गया, अब्दुल गफ्फार खान ने अधिवेशन में सक्रिय रूप से भाग लिया और एक प्रस्ताव पेश किया कि ''सीमांत लोगों को भारत के अन्य प्रांतों के लोगों के समान अधिकार होंगे,'' और उन्होंने हकीम अब्दुल जलील द्वारा प्रस्तावित प्रस्ताव का समर्थन किया कि फ्रंटियर क्राइम रेगुलेशन को समाप्त किया जाना चाहिए। 26 जनवरी, 1930 को उन्होंने अपने अनुयायियों के साथ पूरे प्रांत में स्वतंत्रता दिवस मनाया। वहां उन्होंने एक बैठक आयोजित की जिसमें 'पूर्ण स्वतंत्रता' का प्रस्ताव पारित किया गया। इसमें सरकार को करों का भुगतान न करना शामिल था।

जब गांधीजी ने सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू किया तो उन्होंने इसमें सक्रिय रूप से भाग लिया और 23 अप्रैल 1930 को उत्तमनजई में आयोजित एक बैठक में, उन्होंने बैठक को संबोधित किया, और लोगों को इस आंदोलन में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया। अंग्रेजों के खिलाफ इन तेजी से बढ़ती खतरनाक गतिविधियों को देखकर, सरकार घबरा गई, इसलिए आंदोलन को संगठित करने के लिए कार से पेशावर पहुंचने से पहले ही उन्हें उनके अन्य सहयोगियों के साथ गिरफ्तार कर लिया गया। 1931 में लॉर्ड इरविन और गांधीजी के बीच दिल्ली समझौते पर हस्ताक्षर किए गए जिसके द्वारा सविनय अवज्ञा आंदोलन को वापस ले लिया गया। 10 मार्च 1931 को उन्हें जेल से रिहा कर दिया गया।

जब उन्हें जेल से रिहा किया गया तो उन्होंने उत्तर पश्चिम प्रांत का दौरा किया और कई भाषण दिए। उन्होंने लोगों को आश्वस्त किया कि अंग्रेज कांग्रेस के साथ-साथ पठानों के भी आम दुश्मन हैं। 1931 में उन्होंने बेकी में एक भाषण दिया, और कहा "तब तक आराम मत करो जब तक आजादी हासिल न हो जाए। यदि तुम बहादुर हो तो युद्ध के मैदान में आओ और अंग्रेजों से लड़ो जो हमारी सभी परेशानियों का कारण हैं।" दूसरे गोलमेज सम्मेलन की विफलता के बाद, नेहरू ने एक नया ब्रिटिश विरोधी आंदोलन शुरू किया। अब्दुल गफ्फार खान ने इसमें सक्रिय रूप से भाग लिया और इसलिए अपने भाई के साथ उन्हें उत्तर पश्चिम सीमांत प्रांत में गिरफ्तार कर लिया गया। उन्हें हजारीबाग जेल में कैद किया गया। तीन साल की कैद पूरी करने के बाद उन्हें 27 अगस्त, 1934 को रिहा कर दिया गया। उन्हें सीमांत प्रांतों और पंजाब में प्रवेश करने से प्रतिबंधित कर दिया गया था। एक भाषण में उन्होंने लोगों को प्रोत्साहित किया और उन्हें याद दिलाया कि यह शर्मनाक है कि कुछ विदेशी भारत के 35 करोड़ लोगों पर शासन कर सकते हैं। यहां तक कि 35 करोड़ गधे भी इतनी आसानी से नहीं दबेंगे। उनका भाषण हमेशा "जालिम हुकूमत बर्बाद- खुदाई खिदमतगार जिंदाबाद, अप विद नेहरू, डाउन विद किंग जॉर्ज" (नेहरू की जय, किंग जॉर्ज का नाश हो) जैसे नारों के साथ समाप्त होता था। उन्होंने अंग्रेजों के खिलाफ विभिन्न स्थानों पर कई उग्र भाषण दिए और सरकार की नीतियों की आलोचना की। इसलिए, उन्हें फिर से गिरफ्तार कर लिया गया और 1936 में रिहा कर दिया गया लेकिन फिर से सीमांत प्रांत में जाने से मना कर दिया गया। केवल अगस्त 1937 में, जब प्रांतीय विधानसभा के चुनाव समाप्त हो गए, तब उन्हें प्रांत लौटने की अनुमति दी गई।

अगस्त 1942 में गांधीजी ने भारत छोड़ो आंदोलन शुरू किया। 9 अगस्त को गांधीजी और कार्य समिति और ए.आई.सी.सी. के अन्य सभी सदस्यों को गिरफ्तार कर लिया गया। पूरे भारत में गंभीर गड़बड़ी फैल गई, सीमांत प्रांत में अब्दुल गफ्फार खान के नेतृत्व में आंदोलन चल रहा था, जब कांग्रेस नेताओं की गिरफ्तारी की खबर बॉम्बे पहुंची, तो उन्होंने 10 अगस्त 1942 को एक बैठक को संबोधित किया, और भारत छोड़ो प्रस्ताव को पूर्ण समर्थन देने का संकल्प लिया। खान के प्रयासों के परिणामस्वरूप 14 अगस्त 1942 को पेशावर में शराब की दुकानों पर धरना शुरू हुआ। उन्होंने तार काटने और रेलवे स्लीपरों को हटाने की अनुमति दी। ऐसा नैतिक साहस विकसित करने और दूसरों को प्रेरणा प्रदान करने के लिए किया गया था। हालाँकि, सरकार ने आंदोलन को बुरी तरह कुचल दिया। और जब वे 27 अक्टूबर 1942 को पचास खुदाई खिदमतगारों के एक जत्थे के साथ मरदान की जिला अदालत पर छापा मारने जा रहे थे, तो उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और मरदान जेल में बंद कर दिया गया। यहाँ से उन्हें अक्टूबर 1943 में हरिपुर जेल में स्थानांतरित कर दिया गया जब अधिकांश राजनीतिक कैदियों को पहले ही रिहा कर दिया गया था। 1945 में उन्हें रिहा कर दिया गया। 1945-46 में चुनाव होने थे। ब्रिटिश सरकार ने ए.एम.यू. अलीगढ़ और इस्लामिया कॉलेज कलकत्ता के मुस्लिम छात्रों को अपना समर्थन दिया। लेकिन अंततः चुनाव अभियान में अब्दुल गफ्फार खान की भागीदारी के कारण रेड शर्ट्स ने बहुमत के साथ चुनाव जीता। उन्होंने 1946 में कैबिनेट मिशन योजना सम्मेलन में कांग्रेस प्रतिनिधि के रूप में भी भाग लिया। वे 1946 के चुनाव जीतकर सत्ता में वापस आए, और पाकिस्तान के गठन के बाद एम.ए. जिन्ना द्वारा बर्खास्त किए जाने तक मुख्यमंत्री बने रहे। जब देश का विभाजन हुआ तो बादशाह खान ने गांधीजी से कहा 'हम बर्बाद हो गए, आपने हमें भेड़ियों के सामने फेंक दिया है।' विभाजन के बाद वे ज्यादातर जेल में रहे।

निष्कर्ष

निष्कर्षत:, मौलाना हसरत मोहानी और खान अब्दुल गफ्फार खान जैसे नेताओं ने भारत की स्वतंत्रता के लिए अद्वितीय बलिदान दिए। इन्होंने 'पूर्ण स्वराज' की नींव रखी और विभाजन व सांप्रदायिकता का कड़ा विरोध किया अत: निर्विवाद रूप से इनका जीवन हिंदू-मुस्लिम एकता और राष्ट्रप्रेम का एक आदर्श उदाहरण है।

संदर्भ सूची (REFERENCE LIST)

1. चोपड़ा पी.एन. (Chopra P.N.) (1979)
2. मित्तल (Mittal) - विपक्षी दल (Opposition parties)
3. हिंदुस्तान टाइम्स (Hindustan Times), 20 फरवरी 1981, 17.2, 73, 746इ
4. व्च.बपज, पृष्ठ 74-75
5. बैमफोर्ड पी.सी. (Bamford P.C.)
6. जे.एम. (J.M.), पृष्ठ 212
7. जैदी (Zaidi), 1961
8. एन.ए.आई. (N.A.I.), पृष्ठ 153.2
9. तेंदुलकर डी.जी. (Tendulkar D.G.), Abdul Ghaffar Khan (Bombay 1967)
10. माथुर वाई.बी. (Mathur Y.B.), ग्रोथ ओफ मुस्लिम पॉलिटिक्स इन इंडिया
11. 'द फ्रंटियर गांधी: माई लाइफ एंड स्ट्रगल' -अब्दुल गफ्फार खघन अच्छा
12. 'दीवान ए हसरत' -हसरत मोहानी
13. 'इंतिखाब एक कलाम हसरत मोहानी'-हसरत मोहानी

दलित राजनीति और डॉ. अम्बेडकर: एक व्यापक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० गोरख नाथ सिंह

समाज शास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोध गया

शोध सार

भारतीय राजनीतिक इतिहास में दलित राजनीति का उदय केवल सत्ता प्राप्ति का संघर्ष नहीं है, बल्कि यह हजारों वर्षों से चली आ रही सामाजिक दासता, बहिष्कार और 'श्रेणीबद्ध असमानता' (Graded Inequality) के विरुद्ध एक बौद्धिक और संरचनात्मक विद्रोह है। इस विद्रोह के केंद्र में डॉ. भीमराव रामजी अम्बेडकर का राजनीतिक दर्शन स्थित है, जिन्होंने न केवल दलित मुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया, बल्कि आधुनिक भारतीय राष्ट्र-राज्य की नैतिक और संवैधानिक नींव भी रखी। समकालीन दलित राजनीति चाहे वह उत्तर प्रदेश में बहुजन समाज पार्टी (BSP) का सोशल इंजीनियरिंग हो, महाराष्ट्र में वंचित बहुजन अघाड़ी (VBA) का प्रयोग हो, या दक्षिण भारत में उप-वर्गीकरण (Sub-categorçation) के लिए मडिगा समुदाय का आंदोलन हो सभी की जड़ें अम्बेडकरवादी विचारधारा के विभिन्न आयामों में खोजी जा सकती हैं।

मूल शब्द:- राजनीतिक, जीवन, दर्शन, सामाजिक, दलित, नैतिक, संवैधानिक।

प्रस्तावना:

डॉ. अम्बेडकर का राजनीतिक जीवन और दर्शन एक रेखीय यात्रा नहीं थी, बल्कि यह निरंतर प्रयोग और रणनीतिक बदलावों की एक श्रृंखला थी। महाड़ सत्याग्रह के सामाजिक प्रतिरोध से लेकर गोलमेज सम्मेलनों में राजनीतिक प्रतिनिधित्व की मांग तक, और अंततः संविधान निर्माण से लेकर बौद्ध धर्म में धर्मांतरण तक प्रत्येक चरण ने दलित चेतना (Dalit Consciousness) को एक नया आकार दिया। वर्तमान में, जब दलित राजनीति आंतरिक अंतर्विरोधों, हिंदुत्व के वर्चस्व और वैश्वीकरण की चुनौतियों का सामना कर रही है, तब अम्बेडकर के मूल सिद्धांतों और उनके बाद के राजनीतिक प्रयोगों (कांशीराम, दलित पैंथर्स, रिपब्लिकन पार्टी) का गहरा विश्लेषण अनिवार्य हो जाता है।

दलित राजनीति के ऐतिहासिक विकास, इसके संस्थागतकरण के संकट, क्षेत्रीय विविधताओं, और समकालीन चुनौतियों का एक विस्तृत और सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत करती है। इसमें अम्बेडकर के दर्शन से लेकर 2024 के सुप्रीम कोर्ट के उप-वर्गीकरण निर्णय तक की यात्रा को समाहित किया गया है।

अम्बेडकरवादी राजनीति की दार्शनिक और ऐतिहासिक नींव

डॉ. अम्बेडकर की राजनीति का मूल उद्देश्य केवल औपनिवेशिक शासन से मुक्ति नहीं था, बल्कि भारतीय समाज की आंतरिक औपनिवेशिकता जाति व्यवस्था से मुक्ति था। उन्होंने स्पष्ट किया कि राजनीतिक स्वतंत्रता तब तक अर्थहीन है जब तक सामाजिक लोकतंत्र स्थापित नहीं होता।

महाड़ सत्याग्रह: सामाजिक सुधार से मानवाधिकार की ओर

1927 का महाड़ सत्याग्रह दलित राजनीतिक इतिहास का वह प्रस्थान बिंदु (Departure Point) है, जहाँ अम्बेडकर ने 'याचिका' की राजनीति को त्यागकर 'अधिकार' की राजनीति को अपनाया। चवदार तालाब का पानी पीना केवल प्यास बुझाने का प्रयास नहीं था, बल्कि यह एक घोषणा थी कि अछूत भी मानव हैं और उन्हें सार्वजनिक संसाधनों पर समान अधिकार है। अम्बेडकर ने इस आंदोलन की तुलना 1789 की फ्रांसीसी क्रांति से की थी, जो स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के सिद्धांतों पर आधारित थी। इसी दौरान मनुस्मृति का दहन किया गया, जो प्रतीकात्मक रूप से प्राचीन हिंदू कानून को खारिज करने और एक नई समतामूलक संहिता की मांग करने का क्रांतिकारी कदम था।

महाड़ आंदोलन ने दो महत्वपूर्ण सबक दिए:

- सवर्ण हिंदुओं का "हृदय परिवर्तन" (जैसा कि गांधी मानते थे) एक भ्रांति है।
- सामाजिक अधिकारों की रक्षा के लिए राजनीतिक सत्ता और कानूनी सुरक्षा कवच अनिवार्य है।

पूना पैक्ट और राजनीतिक प्रतिनिधित्व का द्वंद्व

गोलमेज सम्मेलनों (1930–32) के दौरान अम्बेडकर ने दलितों के लिए 'पृथक निर्वाचक मंडल' (Separate Electorates) की मांग की। उनका तर्क था कि दलित एक अलग राजनीतिक इकाई हैं, और संयुक्त चुनाव में सवर्ण बहुल वोट बैंक कभी भी एक वास्तविक दलित प्रतिनिधि को नहीं चुनेगा, बल्कि केवल एक ऐसे व्यक्ति को चुनेगा जो सवर्णों का आज्ञाकारी हो। ब्रिटिश सरकार ने 'कम्युनल अवार्ड' के माध्यम से इसे स्वीकार भी कर लिया था।

हालाँकि, महात्मा गांधी के आमरण अनशन ने अम्बेडकर को भारी दबाव में डाल दिया। 1932 का पूना पैक्ट, जो गांधी और अम्बेडकर के बीच एक समझौता था, ने पृथक निर्वाचक मंडल को समाप्त कर दिया और इसके बदले में 'आरक्षित सीटों' (Reserved Seats) की व्यवस्था दी। अम्बेडकर ने इसे दलितों के राजनीतिक सशक्तिकरण के लिए एक बड़ा धक्का माना। बाद में उन्होंने विश्लेषण किया कि आरक्षित सीटों की व्यवस्था ने ऐसे दलित नेताओं को जन्म दिया जो अपनी पार्टी के हाईकमान के प्रति वफादार थे, न कि अपने समुदाय के प्रति। कांशीराम ने बाद में अपनी प्रसिद्ध पुस्तक द चमचा एज (The Chamcha Age) में इसी व्यवस्था की आलोचना की, यह तर्क देते हुए कि पूना पैक्ट ने स्वतंत्र दलित नेतृत्व को पंगु बना दिया।

श्रम मंत्री के रूप में अम्बेडकर: राष्ट्र निर्माता

अक्सर संविधान निर्माता के रूप में सीमित कर दिए जाने वाले अम्बेडकर, 1942 से 1946 तक वायसराय की कार्यकारी परिषद में श्रम सदस्य थे। इस दौरान उन्होंने भारत के आधुनिकीकरण की नींव रखी। दामोदर घाटी परियोजना, हीराकुंड बांध, और केंद्रीय जल आयोग की स्थापना उनके विजन का परिणाम थी। उनका मानना था कि औद्योगिकीकरण और शहरीकरण जाति व्यवस्था की जड़ों को कमजोर करेंगे। श्रम कानूनों में सुधार, महिलाओं के लिए मातृत्व अवकाश, और काम के घंटे कम करनाकृये सभी कदम दलितों और शोषित वर्गों को आर्थिक सुरक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से उठाए गए थे। यह काल दर्शाता है कि उनकी राजनीति केवल "पहचान" तक सीमित नहीं थी, बल्कि "संसाधन वितरण" और "श्रमिक अधिकारों" पर भी केंद्रित थी।

संविधान सभा और सामाजिक न्याय का संस्थानीकरण

संविधान सभा में डॉ. अम्बेडकर की भूमिका केवल एक प्रारूपकार की नहीं थी, बल्कि एक ऐसे वास्तुकार की थी जो एक गैर-लोकतांत्रिक सामाजिक ढांचे पर एक लोकतांत्रिक राजनीतिक अधिरचना (Superstructure) का निर्माण कर रहा था।

अनुच्छेद 17 और अछूतपन का उन्मूलन

अनुच्छेद 17, जो अछूतपन को समाप्त करता है, भारतीय इतिहास का सबसे क्रांतिकारी कानूनी प्रावधान है। संविधान सभा की बहसों में अम्बेडकर और अन्य दलित सदस्यों ने स्पष्ट किया कि अछूतपन केवल एक सामाजिक बुराई नहीं, बल्कि एक अपराध है जिसे दंडित किया जाना चाहिए। उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि संसद को (अनुच्छेद 35 के तहत) अछूतपन के आचरण के लिए दंड निर्धारित करने की शक्ति मिले, ताकि स्थानीय राज्य सरकारें (जो अक्सर प्रभुत्वशाली जातियों के प्रभाव में होती हैं) कानूनों को कमजोर न कर सकें।

आरक्षण: प्रतिनिधित्व या गरीबी उन्मूलन?

अनुच्छेद 16(4) पर हुई बहसों में अम्बेडकर ने स्पष्ट किया कि आरक्षण का उद्देश्य 'गरीबी उन्मूलन' नहीं, बल्कि 'सत्ता में हिस्सेदारी' (Representation) है। उन्होंने तर्क दिया कि प्रशासन में ऐतिहासिक रूप से कुछ वर्गों का एकाधिकार रहा है, और जब तक पिछड़े वर्गों को प्रशासन में प्रवेश नहीं मिलता, तब तक 'कानून के समक्ष समानता' (Article 14) एक छलावा मात्र रहेगी। हालाँकि, उन्होंने यह भी चेतावनी दी थी कि आरक्षण की मात्रा इतनी अधिक नहीं होनी चाहिए कि वह 'अवसर की समानता' के सामान्य सिद्धांत को ही नष्ट कर दे। यह संतुलन आज भी न्यायिक व्याख्याओं का विषय बना हुआ है।

संवैधानिक नैतिकता (Constitutional Morality)

अम्बेडकर ने जॉर्ज ग्रोट के 'संवैधानिक नैतिकता' के सिद्धांत को भारतीय संदर्भ में पेश किया। उनका मानना था कि भारत में लोकतंत्र केवल 'टॉप-ड्रेसिंग' है, जबकि अंदर की मिट्टी अलोकतांत्रिक है। इसलिए, संविधान के प्रति निष्ठा और मनमाने सत्ता प्रयोग पर रोक ही लोकतंत्र को बचा सकती है। उन्होंने चेतावनी दी थी कि "भक्ति" या नायक-पूजा राजनीति में तानाशाही का मार्ग प्रशस्त करती है, जो आज की व्यक्ति-केंद्रित राजनीति में अत्यंत प्रासंगिक है।

स्वतंत्रता के बाद का संकट: रिपब्लिकन पार्टी और दलित पैंथर्स

स्वतंत्रता के बाद, अम्बेडकर ने 'शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन' (SCF) को भंग कर 'रिपब्लिकन पार्टी ऑफ इंडिया' (RPI) की परिकल्पना की। उनका उद्देश्य एक ऐसी पार्टी बनाना था जो केवल दलितों की न हो, बल्कि सभी शोषित वर्गों (SC, ST, OBC) और प्रगतिशील लोगों का गठबंधन हो।

RPi~ का उदय और विखंडन

1957 में स्थापित RPI ने शुरुआत में अच्छी सफलता प्राप्त की, विशेषकर महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश में। 1957 के चुनावों में इसे लोकसभा में 9 सीटें मिलीं। लेकिन अम्बेडकर के निधन के बाद, पार्टी नेतृत्व के झगड़ों का शिकार हो गई। दादासाहेब गायकवाड़ और बी.सी. कांबले के बीच वैचारिक और व्यक्तिगत मतभेद गहरे हो गए।

- गायकवाड़ गुट: इनका मानना था कि दलितों के मुद्दों को हल करने के लिए सत्ताधारी कांग्रेस के साथ समझौता करना व्यावहारिक है (यशवंतराव चव्हाण के साथ गठबंधन)।
- कांबले गुट: इन्होंने कांग्रेस का कड़ा विरोध जारी रखा और शुद्धतावादी दृष्टिकोण अपनाया।

इस विभाजन ने RPI को कमजोर कर दिया। कांग्रेस ने अपनी "को-ऑप्शन" (Co-option) नीति के तहत RPI के नेताओं को मंत्री पद और टिकट देकर पार्टी को भीतर से खोखला कर दिया। 1970 के दशक तक, RPI कई धड़ों (RPI-A, RPI-G, आदि) में बंट गई और एक स्वतंत्र राजनीतिक ताकत के रूप में समाप्त हो गई।

दलित पैंथर्स: आक्रोश की राजनीति

RPi~ की निष्क्रियता और महाराष्ट्र के गांवों में दलितों पर बढ़ते अत्याचारों ने 1972 में 'दलित पैंथर्स' को जन्म दिया। नामदेव ढसाल और राजा ढाले जैसे युवा कवियों और कार्यकर्ताओं ने अमेरिकी 'ब्लैक पैंथर्स' से प्रेरणा लेकर एक उग्र आंदोलन शुरू किया। दलित पैंथर्स ने 'दलित' शब्द की परिभाषा को व्यापक बनाया इसमें केवल अनुसूचित जातियां नहीं, बल्कि सभी मजदूर, भूमिहीन किसान और शोषित वर्ग शामिल थे। यह अम्बेडकरवाद और मार्क्सवाद का एक अनूठा मिश्रण था। पैंथर्स ने चुनाव लड़ने के बजाय सड़कों पर संघर्ष और साहित्य के माध्यम से चेतना जगाने का रास्ता चुना। उनकी भाषा आक्रामक थी और उन्होंने सत्ता प्रतिष्ठान को सीधे चुनौती दी। हालाँकि, वैचारिक मतभेदों (अम्बेडकरवाद बनाम मार्क्सवाद) और राज्य के दमन ने इस आंदोलन को भी जल्द ही बिखेर दिया, लेकिन इसने दलित साहित्य और चेतना को एक नई धार दी।

उत्तर भारत में क्रांति: कांशीराम और बहुजन समाज पार्टी

जबकि महाराष्ट्र में दलित राजनीति विखंडित हो रही थी, उत्तर भारत में एक मूक क्रांति आकार ले रही थी। कांशीराम ने RPi~ की विफलताओं का गहन अध्ययन किया और एक नई रणनीति तैयार की।

बामसेफ (BAMCEF) से बसपा तक

कांशीराम का मानना था कि राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने के लिए पहले एक मजबूत सामाजिक संगठन और आर्थिक आधार की आवश्यकता है।

- BAMCEF (1978): सरकारी कर्मचारियों का एक गैर-राजनीतिक संगठन। कांशीराम ने उन्हें "ब्रेन बैंक" और "मनी बैंक "कहा। इनका काम समाज को शिक्षित करना और आंदोलन के लिए संसाधन जुटाना था।
- DS-4 (1981): दलित शोषित समाज संघर्ष समिति। यह एक अर्ध-राजनीतिक मंच था जिसने "ठाकुर, बामन, बनिया छोड़; बाकी सब हैं डी-एस-फोर" जैसे नारों के माध्यम से बहुजन पहचान को गढ़ा।

BSP (1984): अंततः 1984 में बहुजन समाज पार्टी की स्थापना हुई

कांशीराम का मुख्य रणनीतिक योगदान 'बहुजन' अवधारणा का व्यावहारिक प्रयोग था। उनका तर्क था कि SC, ST, OBC और अल्पसंख्यक मिलकर देश की 85% आबादी हैं, लेकिन वे 15% सवर्णों (मनुवादी) द्वारा शासित हैं। यदि यह 85% एक हो जाए, तो वे शासक बन सकते हैं। उत्तर प्रदेश में, जहाँ दलित (विशेषकर जाटव/चमार) और ओबीसी (यादव, कुर्मी) बड़ी संख्या में हैं, यह रणनीति बेहद सफल रही। 1993 में सपा-बसपा गठबंधन ने भाजपा की राम मंदिर लहर को रोक दिया।

मायावती और 'सर्वजन' का प्रयोग

1995 के गेस्ट हाउस कांड के बाद सपा-बसपा गठबंधन टूट गया। मायावती के नेतृत्व में, बसपा ने अपनी रणनीति बदली। सत्ता प्राप्ति के लिए उन्होंने किसी भी दल (भाजपा सहित) के साथ गठबंधन करने में संकोच नहीं किया। 2007 में, सतीश चंद्र मिश्रा के माध्यम से उन्होंने 'दलित-ब्राह्मण' भाईचारे का प्रयोग किया। नारा बदला: "हाथी नहीं गणेश है, ब्रह्मा विष्णु महेश है" और "ब्राह्मण शंख बजाएगा, हाथी बढ़ता जाएगा"।

इस 'सर्वजन हिताय' रणनीति ने 2007 में बसपा को पूर्ण बहुमत दिलाया। लेकिन विश्लेषकों का मानना है कि इसी रणनीति ने लंबी अवधि में बसपा को नुकसान पहुँचाया। सवर्णों को टिकट देने और उनके मुद्दों को उठाने से बसपा का मूल 'बहुजन' कैडर निराश हुआ। साथ ही, गैर-जाटव दलितों और अति-पिछड़ों को लगा कि पार्टी में अब केवल जाटव और ब्राह्मणों का वर्चस्व है, जिससे वे धीरे-धीरे भाजपा की ओर खिसक गए।

क्षेत्रीय विविधताएँ और आंतरिक संघर्ष

दलित राजनीति पूरे भारत में एक समान नहीं है। क्षेत्रीय जाति संरचनाओं और इतिहास ने विभिन्न राज्यों में अलग-अलग राजनीतिक समीकरणों को जन्म दिया है।

महाराष्ट्र: वंचित बहुजन अघाड़ी (VBA)

महाराष्ट्र में, प्रकाश अम्बेडकर (डॉ. अम्बेडकर के पोते) ने 'वंचित बहुजन अघाड़ी' (VBA) के माध्यम से एक नया प्रयोग किया है। उन्होंने दलितों के साथ-साथ उन छोटे ओबीसी समूहों (जैसे धनगर, माली) को जोड़ने का प्रयास किया है जिन्हें मराठा-वर्चस्व वाली कांग्रेस-एनसीपी ने उपेक्षित किया था। ओवैसी की AIMIM के साथ उनका गठबंधन (2019 में) एक महत्वपूर्ण कदम था, जिसने दलित-मुस्लिम एकता का नया मॉडल पेश किया। हालाँकि, VBA पर अक्सर "वोट कटवा" और "भाजपा की बी-टीम" होने का आरोप लगता है, क्योंकि इसके कारण कांग्रेस-एनसीपी गठबंधन को कई सीटों पर हार का सामना करना पड़ा। प्रकाश अम्बेडकर का तर्क है कि स्थापित धर्मनिरपेक्ष दलों ने दलितों को केवल वोट बैंक माना है, सत्ता में भागीदार नहीं।

तमिलनाडु: वीसीके (VCK) और द्रविड़ राजनीति

तमिलनाडु में, 'विदुथलाई चिरुथैगल काची' (VCK) का नेतृत्व थोल. थिरुमावलवन करते हैं। यहाँ दलित राजनीति को द्रविड़ आंदोलन की जटिलता का सामना करना पड़ता है। द्रविड़ पार्टियां (DMK/ADMK) ब्राह्मणवाद का विरोध करती हैं, लेकिन राज्य में दलितों पर अत्याचार करने वाली जातियां (थेवर, वन्नियार, गौंडर) अक्सर इन्हीं द्रविड़ पार्टियों का आधार होती हैं।

थिरुमावलवन ने 'तमिल राष्ट्रवाद' और 'दलित मुक्ति' को जोड़ने का प्रयास किया है। वे 'सनत धर्म' के खिलाफ मुखर हैं और मनुस्मृति पर प्रतिबंध की मांग करते हैं। लेकिन टब्ज़ के सामने सबसे बड़ी चुनौती दलित एकता की है। तमिलनाडु के दलित मुख्य रूप से तीन समूहों में बंटे हैं: पैल्लर (देवेंद्र कुला वेल्लालर), परैयार (VCK का मुख्य आधार), और अरुंधतियार। पैल्लर समुदाय का एक बड़ा हिस्सा अब भाजपा की ओर झुक रहा है, जो हिंदू पहचान पर जोर देती है, जबकि अरुंधतियार अपने लिए अलग कोटे की मांग करते हैं।

आंध्र प्रदेश और तेलंगाना: मडिगा दंडोरा और उप-वर्गीकरण

समकालीन दलित राजनीति का सबसे विस्फोटक मुद्दा 'उप-वर्गीकरण' (Sub-categorçation) है, जिसका केंद्र आंध्र प्रदेश और तेलंगाना है। यहाँ 'माला' और 'मडिगा' दो प्रमुख दलित जातियां हैं। मडिगा समुदाय का आरोप है कि आरक्षण का अधिकांश लाभ माला समुदाय ने उठा लिया है क्योंकि वे शैक्षिक रूप से पहले से आगे थे।

मंदा कृष्णा मडिगा के नेतृत्व में 'मडिगा रिजर्वेशन पोराटा समिति' (MRPS) ने 'दंडोरा' आंदोलन चलाया, जिसमें SC को ए, बी, सी, डी समूहों में बांटने की मांग की गई। यह आंदोलन इस तर्क पर आधारित है कि दलित एक 'सजातीय' (Homogeneous) समूह नहीं हैं। इस आंदोलन ने 'दलित एकता' के मिथक को तोड़ दिया है। भाजपा ने मडिगा समुदाय के इस असंतोष को भुनाने के लिए उप-वर्गीकरण का समर्थन किया है, जिससे पारंपरिक कांग्रेस/बीआरएस के वोट बैंक में सेंध लगी है।

बिहार: पासवान बनाम रविदास/चमार

बिहार में, दलित राजनीति राम विलास पासवान की 'लोक जनशक्ति पार्टी' (LJP) और नीतीश कुमार की 'महादलित' राजनीति के इर्द-गिर्द घूमती है। राम विलास पासवान ने 'दुसाध' (पासवान) समुदाय को एक मजबूत राजनीतिक ब्लॉक में

बदल दिया। उन्होंने अपनी स्थिति का लाभ उठाते हुए केंद्र में किसी भी गठबंधन (चाहे UPA हो या NDA) के साथ रहकर सत्ता में भागीदारी सुनिश्चित की।

दूसरी ओर, नीतीश कुमार ने 'महादलित' श्रेणी बनाकर पासवानों को अलग-थलग करने की कोशिश की। उन्होंने दुसाध जाति को छोड़कर अन्य सभी दलित जातियों को 'महादलित' घोषित किया और उनके लिए विशेष योजनाएं चलाई। हालाँकि, बाद में राजनीतिक दबाव में पासवानों को भी इसमें शामिल कर लिया गया। वर्तमान में, चिराग पासवान अपने पिता की विरासत को आगे बढ़ा रहे हैं, लेकिन उन्हें भी तेजस्वी यादव (RJD) की ओर से चुनौती मिल रही है, जो अब "ए टू जेड" (सभी जातियों) की बात कर रहे हैं।

सुप्रीम कोर्ट का 2024 निर्णय और विखंडन का वैधीकरण

अगस्त 2024 में, सुप्रीम कोर्ट की सात-जजों की बेंच ने पंजाब राज्य बनाम दविंदर सिंह मामले में ऐतिहासिक फैसला सुनाया, जिसने दलित राजनीति के भविष्य को हमेशा के लिए बदल दिया है। कोर्ट ने अपने 2004 के ई.वी. चिन्नैया फैसले को पलटते हुए कहा कि राज्यों को अनुसूचित जातियों (SC) के भीतर उप-वर्गीकरण (Sub-classification) करने का संवैधानिक अधिकार है।

निर्णय का विश्लेषण:, अनुच्छेद 341 बनाम समानता

मुख्य न्यायाधीश डी.वाई. चंद्रचूड़ और न्यायमूर्ति गवई के बहुमत के निर्णय ने माना कि अनुच्छेद 14 (समानता का अधिकार) 'असमानों के बीच समानता' की अनुमति नहीं देता। यदि आंकड़ों से सिद्ध होता है कि SC सूची के भीतर कुछ जातियां (जैसे पंजाब में वाल्मीकि या आंध्र में मडिगा) अन्य जातियों (जैसे मजहबी सिख या माला) की तुलना में बहुत पिछड़ी हैं, तो राज्य उनके लिए अलग कोटा निर्धारित कर सकता है।

न्यायमूर्ति गवई ने एक विवादास्पद टिप्पणी में SC/ST के लिए भी 'क्रीमी लेयर' (Creamy Layer) लागू करने की बात कही। उनका तर्क था कि एक आईएएस अधिकारी के बच्चे और एक मैला ढोने वाले के बच्चे को एक ही श्रेणी में रखना अन्यायपूर्ण है।

इसके विपरीत, न्यायमूर्ति बेला त्रिवेदी ने अपनी असहमति (Dissent) में कहा कि अनुच्छेद 341 के तहत राष्ट्रपति द्वारा जारी सूची को राज्य नहीं बदल सकते। उनका मानना था कि इससे राजनीतिक तुष्टिकरण और 'फूट डालो और राज करो' की नीति को बढ़ावा मिलेगा।

राजनीतिक निहितार्थ

यह निर्णय 'दलित पहचान' के विखंडन को वैधता प्रदान करता है:

- वोट बैंक का बिखराव: अब हर राज्य में राजनीतिक दल अलग-अलग दलित उप-जातियों को लुभाने के लिए कोटे का वादा करेंगे। इससे राष्ट्रीय स्तर पर एक एकजुट दलित वोट बैंक बनाना असंभव हो जाएगा।
- भीतरी संघर्ष: आरक्षण के लाभ के लिए दलित जातियों के बीच आपसी प्रतिस्पर्धा बढ़ेगी, जिससे सवर्ण वर्चस्व के खिलाफ उनका संयुक्त संघर्ष कमजोर हो सकता है।
- भाजपा को लाभ: भाजपा, जो पहले से ही गैर-जाटव और गैर-माला दलितों पर ध्यान केंद्रित कर रही थी, अब इस फैसले का उपयोग क्षेत्रीय क्षत्रपों (जैसे मायावती) को कमजोर करने के लिए करेगी।

उभरते आयाम और वैचारिक बहस

समकालीन दलित राजनीति केवल चुनाव जीतने तक सीमित नहीं है; यह अर्थव्यवस्था, धर्म और जेंडर के मोर्चे पर भी नए सवालों से जूझ रही है।

दलित पूंजीवाद (Dalit Capitalism) बनाम मार्क्सवादी आलोचना

1991 के उदारीकरण के बाद, चंद्रभान प्रसाद और मिलिंद कांबले (DICCI के संस्थापक) जैसे बुद्धिजीवियों ने 'दलित पूंजीवाद' का सिद्धांत प्रतिपादित किया। उनका तर्क है कि बाजार अर्थव्यवस्था जाति-निरपेक्ष है। एक ग्राहक यह नहीं पूछता कि शर्ट बनाने वाली कंपनी का मालिक किस जाति का है। वे दलितों को "नौकरी मांगने वाला" के बजाय "नौकरी देने वाला" बनने का आह्वान करते हैं। वे वैश्वीकरण को मनुवाद के खिलाफ एक हथियार मानते हैं।

आलोचना: प्रख्यात विद्वान आनंद तेलतुम्बड़े और सूरज येंगड़े ने इस सिद्धांत की तीखी आलोचना की है। तेलतुम्बड़े का तर्क है कि 'दलित पूंजीवाद' एक विरोधाभास है। भारत में पूंजीवाद सस्ता श्रम चाहता है, और यह श्रम दलित और आदिवासी ही प्रदान करते हैं। उनका कहना है कि उदारीकरण ने सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector) को सिकोड़ दिया है, जिससे आरक्षण के अवसर कम हो गए हैं। यह केवल मुट्ठी भर 'दलित बुर्जुआ' पैदा कर रहा है जो अपने समुदाय के संघर्षों से कट गए हैं। यह नवउदारवाद के साथ अम्बेडकर के मौलिक आर्थिक दर्शन (जो राजकीय समाजवाद के पक्षधर थे) का विश्वासघात है।

दलित नारीवाद (Dalit Feminism)

दलित आंदोलन पर अक्सर यह आरोप लगता है कि यह पितृसत्तात्मक है। दलित महिलाएं 'तिहरे उत्पीड़न' (Triple Burden) का शिकार हैं:

- सवर्णों द्वारा जातिगत उत्पीड़न।
- जमींदारों द्वारा वर्ग शोषण (मजदूर के रूप में)।
- दलित पुरुषों द्वारा पितृसत्तात्मक उत्पीड़न (घरेलू हिंसा आदि)।

बेबी कांबले, उर्मिला पवार और गोपाल गुरु जैसे विद्वानों ने 'दलित नारीवादी दृष्टिकोण' (Dalit Feminist Standpoint) पेश किया है। उनका तर्क है कि मुख्यधारा का नारीवाद (जो सवर्ण महिलाओं का है) जाति को नजरअंदाज करता है, और मुख्यधारा का दलित आंदोलन जेंडर को नजरअंदाज करता है। वीसीके और आरपीआई जैसी पार्टियों में महिलाओं की नेतृत्व में अनुपस्थिति इस संकट को दर्शाती है। मायावती एक अपवाद हैं, लेकिन उन्होंने भी पार्टी संरचना में महिलाओं के मुद्दों को संस्थागत रूप नहीं दिया।

भीम आर्मी और नई आक्रामकता

उत्तर प्रदेश में बसपा की निष्क्रियता ने एक निर्वात पैदा किया, जिसे चंद्रशेखर आजाद 'रावण' और उनकी 'भीम आर्मी' ने भरा है। भीम आर्मी पारंपरिक राजनीति से अलग, एक आंदोलनकारी संगठन है। सहारनपुर जातीय हिंसा के दौरान उनका प्रतिरोध और सीएए (CAA) विरोध प्रदर्शनों में जामा मस्जिद की सीढ़ियों पर संविधान लहराना ये प्रतीक नई पीढ़ी को आकर्षित करते हैं।

आजाद समाज पार्टी (ASP) के गठन के साथ चंद्रशेखर चुनावी राजनीति में भी उतर चुके हैं। नगीना लोकसभा सीट (2024) से उनकी जीत ने साबित कर दिया है कि युवा दलित अब 'सुरक्षित' राजनीति के बजाय 'साहसी' राजनीति को पसंद कर रहे हैं। वे सोशल मीडिया का प्रभावी उपयोग करते हैं और मुस्लिम समुदाय के साथ सीधा संवाद स्थापित करते हैं, जो बसपा के खिसकते जनाधार को अपनी ओर खींच रहा है।

भगवाकरण और अम्बेडकर का विनियोजन (Appropriation)

RSS और भाजपा ने अम्बेडकर को अपने 'सामाजिक समरसता' (Samajik Samrasta) अभियान का केंद्रीय प्रतीक बना लिया है। वे अम्बेडकर को एक 'हिंदू सुधारक' के रूप में पेश करते हैं जिन्होंने समाज को जोड़ने का काम किया, न कि तोड़ने का। मोदी सरकार द्वारा अम्बेडकर से जुड़े पांच स्थलों को 'पंचतीर्थ' के रूप में विकसित करना इसी रणनीति का हिस्सा है।

यह अम्बेडकर के वास्तविक दर्शन के साथ सीधा टकराव है। 1956 में अम्बेडकर का बौद्ध धर्म अपनाना हिंदू धर्म का पूर्ण बहिष्कार था। उनकी '22 प्रतिज्ञाएं' स्पष्ट रूप से हिंदू देवी-देवताओं की पूजा को वर्जित करती हैं। आलोचकों का कहना है कि भाजपा अम्बेडकर की मूर्ति को तो पूजती है, लेकिन उनके विचारों (जाति विनाश) को नकारती है। यह 'प्रतीकों का सम्मान और विचारों की हत्या' की रणनीति है।

निष्कर्ष:

डॉ. अम्बेडकर ने अपने अनुयायियों से कहा था, "मैं इस कारवां को बड़ी मुश्किल से यहाँ तक लाया हूँ... यदि तुम इसे आगे नहीं ले जा सकते, तो इसे यहीं छोड़ देना, लेकिन इसे पीछे मत जाने देना।" आज, यह कारवां एक दोराहे पर खड़ा है। एक ओर, दलित राजनीति का संस्थागत विखंडन हो रहा है। उप-वर्गीकरण के फैसले के बाद, दलित पहचान अब मडिगा, माला, जाटव, वाल्मीकि, और महार जैसी छोटी-छोटी अस्मिताओं में बंटने की कगार पर है। यह राष्ट्रीय स्तर पर एक मजबूत

सौदेबाजी की शक्ति (Bargaining Power) को कम कर सकता है। दूसरी ओर, वैचारिक मंथन गहरा हो रहा है। एक नया शिक्षित मध्यम वर्ग (Digital Dalit) उभर रहा है जो 'कास्ट मैटर्स' (Caste Matters) जैसी पुस्तकों और सोशल मीडिया के माध्यम से वैश्विक स्तर पर जातिवाद के खिलाफ आवाज उठा रहा है। यह वर्ग न तो बसपा की पुरानी शैली से संतुष्ट है और न ही भाजपा के हिंदुत्व से पूरी तरह सहमत है।

भविष्य की दलित राजनीति इस बात पर निर्भर करेगी कि क्या उभरता नेतृत्व चाहे वह चंद्रशेखर आजाद हों, प्रकाश अम्बेडकर हों, या दक्षिण के नेताकृइन बिखरे हुए टुकड़ों को जोड़कर एक नया 'नव-बौद्ध' या 'प्रबुद्ध भारत' का विजन दे पाते हैं, या फिर वे अलग-अलग राजनीतिक दलों के लिए केवल 'वोट बैंक' बनकर रह जाते हैं। अम्बेडकर का संविधान उन्हें हथियार देता है, लेकिन उस हथियार को चलाने की इच्छाशक्ति राजनीतिक चेतना पर निर्भर करेगी।

संदर्भ सूची

1. अम्बेडकर, बी. आर. (1936). जाति का विनाश (Annihilation of Caste). यह उनकी सबसे प्रभावशाली कृति है, जिसमें उन्होंने जाति व्यवस्था के धार्मिक और राजनीतिक आधारों की आलोचना की है।
2. अम्बेडकर, बी. आर. (1948). द अनटचेबल्स: हू वर दे एंड व्हाई दे बिगेम अनटचेबल्स? (The Untouchables% Who Were They and Why They Became Untouchables?).
3. अम्बेडकर, बी. आर. (1945). व्हाट कांग्रेस एंड गांधी हैव डन टू द अनटचेबल्स (What Congress and Gandhi have done to the Untouchables). यह पुस्तक दलित राजनीति और कांग्रेस के अंतर्विरोधों को समझने के लिए महत्वपूर्ण है।
4. महाराष्ट्र सरकार. डॉ. बाबासाहेब अम्बेडकर: राइटिंग्स एंड स्पीचेस (Writings and Speeches of Dr- Babasaheb Ambedkar). यह कई खंडों (Volumes) में प्रकाशित है, जो उनके संपूर्ण राजनीतिक जीवन का दस्तावेजीकरण करता है।
5. अम्बेडकर, बी. आर. (1947). स्टेट्स एंड माइनॉरिटीज (States and Minorities). इसमें उन्होंने अल्पसंख्यकों के लिए संवैधानिक सुरक्षा और आर्थिक अधिकारों का खाका पेश किया है।
6. कीर, धनंजय (1954). डॉ. अम्बेडकर: लाइफ एंड मिशन (Dr.Ambedkar: Life and Mission). यह डॉ. अम्बेडकर की सबसे प्रमाणिक जीवनियों में से एक मानी जाती है।
7. ओमवेट, गेल (1994). दलित्स एंड द डेमोक्रेटिक रिवोल्यूशन (Dalits and the Democratic Revolution). यह पुस्तक औपनिवेशिक भारत में अम्बेडकरवादी आंदोलन और दलित राजनीति के उदय का विश्लेषण करती है।
8. जफ्रलो, क्रिस्टोफ (2005). डॉ. अम्बेडकर एंड अनटचेबिलिटी (Dr. Ambedkar and Untouchability). जफ्रलो ने अम्बेडकर की राजनीतिक रणनीति और सामाजिक लामबंदी का गहरा विश्लेषण किया है।
9. रोड्रिग्स, वैलेरियन (2002). द एसेंशियल अम्बेडकर (The Essential Ambedkar). यह डॉ. अम्बेडकर के विचारों का एक व्यापक संकलन और विश्लेषण है।
10. जेलियट, एलेनोर (1992). फ्रॉम अनटचेबल टू दलित (From Untouchable to Dalit). यह लेख संग्रह दलित आंदोलन के सांस्कृतिक और राजनीतिक पहलुओं पर प्रकाश डालता है।
11. तेल्तुम्बड़े, आनंद (2018). द रेडिकल अम्बेडकर (The Radical Ambedkar). यह पुस्तक अम्बेडकर के विचारों की समकालीन प्रासंगिकता और उनके क्रांतिकारी पहलुओं को रेखांकित करती है।
12. बद्री नारायण (2011). द मेकिंग ऑफ द दलित पब्लिक स्फीयर (The Making of the Dalit Public Sphere). यह उत्तर भारत, विशेषकर उत्तर प्रदेश की दलित राजनीति पर आधारित एक महत्वपूर्ण अध्ययन है।
13. जोधका, सुरिंदर एस. (2015). जाति: समकालीन भारत में (Caste in Contemporary India). यह पुस्तक आधुनिक राजनीति में जाति की बदलती भूमिका और दलित पहचान के राजनीतिकरण को समझाती है।
14. इलौया, कांचा (1996). व्हाई आई एम नॉट ए हिंदू (Why I am not a Hindu). यह पुस्तक दलित-बहुजन दृष्टिकोण से भारतीय समाज और राजनीति का विश्लेषण करती है।
15. थोरत, सुखदेव और आर्यमा (2007). अम्बेडकर इन रेट्रोस्पेक्ट (Ambedkar in Retrospect). यह संकलन अम्बेडकर के आर्थिक और राजनीतिक विचारों का अकादमिक मूल्यांकन प्रस्तुत करता है।

अमेरिका और ईरान के बीच जारी संघर्षः कारण, प्रभाव और भविष्य

डॉ० अंजू कुमारी

राजनीति विज्ञान विभाग, तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

शोध सार

संयुक्त राज्य अमेरिका और इस्लामी गणराज्य ईरान के बीच जारी संघर्ष मध्य पूर्व की भू-राजनीति का सबसे जटिल और खतरनाक आयाम बन चुका है। यह प्रतिद्वंद्विता केवल दो राष्ट्रों के बीच की सैन्य होड़ नहीं है, बल्कि यह दो भिन्न राजनीतिक दर्शनों, क्षेत्रीय प्रभुत्व की आकांक्षाओं और ऐतिहासिक अविश्वास की एक लंबी गाथा है। 1979 की क्रांति से लेकर 2026 के वर्तमान सैन्य तनाव और 'इस्तांबुल शिखर सम्मेलन' की कूटनीतिक कोशिशों तक, इस संघर्ष ने वैश्विक ऊर्जा बाजारों, सुरक्षा सिद्धांतों और अंतरराष्ट्रीय कूटनीति के स्वरूप को गहराई से प्रभावित किया है। अमेरिका और ईरान के बीच वर्तमान शत्रुता को समझने के लिए उस ऐतिहासिक मोड़ का विश्लेषण अनिवार्य है जिसने बीसवीं सदी के मध्य में फारस की खाड़ी की सुरक्षा संरचना को बदल दिया था। इस संघर्ष की वैचारिक और रणनीतिक जड़ें 1953 के तख्तापलट में निहित हैं, जिसने ईरानी जनमानस में विदेशी हस्तक्षेप के प्रति एक स्थायी भय और आक्रोश पैदा किया।

मूल शब्द - जनमानस, तख्तापलट, शत्रुता, रणनीतिक, ऊर्जा, सुरक्षा सिद्धांतों।

प्रस्तावना

ईरान के आधुनिक इतिहास में 1953 का वर्ष एक अमिट छाप छोड़ गया। सीआईए (CIA) और ब्रिटिश एमआई6 (MI6) द्वारा समर्थित एक गुप्त ऑपरेशन के माध्यम से ईरान के लोकतांत्रिक रूप से निर्वाचित प्रधानमंत्री मोहम्मद मोसादेघ को अपदस्थ कर दिया गया। मोसादेघ का मुख्य अपराध एंग्लो-ईरानी तेल कंपनी का राष्ट्रीयकरण करना था, जिसे पश्चिमी शक्तियों ने अपने आर्थिक हितों के लिए खतरे के रूप में देखा। इस हस्तक्षेप ने मोहम्मद रजा शाह पहलवी को एक पूर्ण निरंकुश शासक के रूप में बहाल किया, जिससे ईरान में संयुक्त राज्य अमेरिका का प्रभाव अभूतपूर्व रूप से बढ़ गया। शाह के शासनकाल के दौरान, अमेरिका ने ईरान को मध्य पूर्व में अपना प्रमुख रणनीतिक स्तंभ बनाया, लेकिन साथ ही शाह की दमनकारी नीतियों और 'सावाक' (SAVAK) जैसी गुप्त पुलिस के अत्याचारों ने जनता के बीच अमेरिका विरोधी भावनाओं को जन्म दिया।

शाह द्वारा शुरू की गई 'व्हाइट रिवोल्यूशन' (सफेद क्रांति) ने ईरान का आधुनिकीकरण करने का प्रयास तो किया, लेकिन इसने धार्मिक संस्थानों और ग्रामीण समुदायों को अलग-थलग कर दिया। भूमि सुधारों और पश्चिमी संस्कृति के बढ़ते प्रभाव ने शिया मौलवियों के प्रभाव को कम करने का लक्ष्य रखा था, जिसका अयातुल्ला रुहोल्लाह खोमेनी जैसे नेताओं ने कड़ा विरोध किया।

1979 की इस्लामी क्रांतिः एक नया भू-राजनीतिक प्रतिमान

1978 और 1979 के बीच ईरान एक ऐसी क्रांति की चपेट में आया जिसने विश्व व्यवस्था को हिलाकर रख दिया। भ्रष्टाचार, आर्थिक प्रबंधन और शाही फिजूलखर्ची के खिलाफ व्यापक आक्रोश ने विभिन्न समूहों मार्क्सवादियों, उदारवादियों और इस्लामवादियों को एक साथ ला दिया। 11 फरवरी 1979 को राजशाही के पतन ने न केवल 2500 साल पुरानी राजशाही को समाप्त किया, बल्कि एक ऐसे शासन की स्थापना की जो अपनी पहचान ही अमेरिका के विरोध पर आधारित करता था।

क्रांति के तत्काल बाद, नवंबर 1979 में तेहरान में अमेरिकी दूतावास पर कब्जे और 52 अमेरिकी राजनयिकों को 444 दिनों तक बंधक बनाने की घटना ने दोनों देशों के बीच राजनयिक संबंधों को हमेशा के लिए समाप्त कर दिया। इस संकट ने वाशिंगटन में ईरान को एक 'दुष्ट राष्ट्र' के रूप में स्थापित किया, जबकि ईरान के लिए अमेरिका 'ग्रेट सैटन' (महान शैतान) बन गया।

परमाणु गतिरोधः जेसीपीओए (JCPOA) से 2025 के सैन्य संघर्ष तक

ईरान का परमाणु कार्यक्रम पिछले दो दशकों से अमेरिका-ईरान संघर्ष का केंद्र बिंदु रहा है। जहाँ ईरान का दावा है कि उसका कार्यक्रम पूर्णतः शांतिपूर्ण और ऊर्जा सुरक्षा के लिए है, वहीं अमेरिका और उसके सहयोगियों का मानना है कि यह परमाणु हथियार विकसित करने का एक मुखौटा है।

जेसीपीओए (JCPOA) का उत्थान और पतन

2015 में, ओबामा प्रशासन के दौरान, ईरान और विश्व शक्तियों के बीच 'संयुक्त व्यापक कार्य योजना' (JCPOA) पर सहमति बनी। इस समझौते के तहत ईरान ने अपने परमाणु कार्यक्रम पर कड़े प्रतिबंधों को स्वीकार किया, जिसमें यूरेनियम संवर्धन को 3.67ः तक सीमित करना और सेंट्रीफ्यूज की संख्या को कम करना शामिल था। बदले में, ईरान को अंतरराष्ट्रीय प्रतिबंधों से राहत देने का वादा किया गया था।

हालांकि, 2018 में डोनाल्ड ट्रम्प प्रशासन ने इस समझौते को "अब तक का सबसे बुरा सौदा" बताते हुए इससे अमेरिका को अलग कर लिया और 'मैक्सिमम प्रेशर' (अधिकतम दबाव) की नीति शुरू की। इसके जवाब में, ईरान ने चरणबद्ध तरीके से अपनी प्रतिबद्धताओं को तोड़ना शुरू किया। 2023 तक, ईरान ने 60% शुद्धता तक यूरेनियम का संवर्धन शुरू कर दिया था, जो हथियारों के ग्रेड (90%) के काफी करीब है।

2025 का निर्णायक मोड़ और प्रत्यक्ष युद्ध

2024 और 2025 के दौरान स्थिति और भी गंभीर हो गई। जून 2025 में, इजराइल और ईरान के बीच बढ़ते तनाव के बीच, संयुक्त राज्य अमेरिका ने ईरानी परमाणु सुविधाओं पर प्रत्यक्ष हवाई हमले किए। 22 जून 2025 को अमेरिकी सेना ने ईरानी ठिकानों पर 'बंकर बस्टर' बम गिराए, जिससे नातान्ज और फोर्डो जैसे केंद्रों को महत्वपूर्ण क्षति पहुँची। इन हमलों के जवाब में, ईरान ने 18 अक्टूबर 2025 को आधिकारिक रूप से जेसीपीओए समझौते को पूर्णतः समाप्त घोषित कर दिया। अंतरराष्ट्रीय परमाणु ऊर्जा एजेंसी (IAEA) ने चेतावनी दी कि ईरान के पास अब चार परमाणु विस्फोटकों के लिए पर्याप्त समृद्ध यूरेनियम मौजूद है।

आर्थिक युद्ध और सामाजिक पतनः 'अधिकतम दबाव' का प्रभाव

अमेरिका द्वारा लगाए गए प्रतिबंधों का उद्देश्य केवल परमाणु कार्यक्रम को रोकना नहीं था, बल्कि ईरान की अर्थव्यवस्था को इस हद तक पंगु बनाना था कि शासन को अपनी क्षेत्रीय और आंतरिक नीतियों को बदलने के लिए मजबूर होना पड़े। विश्लेषण से पता चलता है कि इन प्रतिबंधों का प्रभाव ईरान के सामाजिक ताने-बाने पर विनाशकारी रहा है।

मुद्रा का पतन और मुद्रास्फीति

2025 और 2026 की शुरुआत में ईरानी रियाल का मूल्य अभूतपूर्व रूप से गिर गया है। जनवरी 2025 में जो मुद्रा दर 700,000 रियाल प्रति डॉलर थी, वह दिसंबर 2025 तक गिरकर 1.4 मिलियन रियाल प्रति डॉलर के पार पहुँच गई। इस मुद्रा संकट ने देश में 'हाइपर-इंफ्लेशन' जैसी स्थिति पैदा कर दी है। खाद्य वस्तुओं की कीमतों में 72% की वार्षिक वृद्धि दर्ज की गई है, जिससे आम नागरिक अपनी बुनियादी जरूरतों को पूरा करने में असमर्थ हैं।

मध्यम वर्ग का ह्रास और स्वास्थ्य संकट

एक अध्ययन (Synthetic Control Method का उपयोग करते हुए) के अनुसार, प्रतिबंधों के कारण ईरान का मध्यम वर्ग उन देशों की तुलना में 28 प्रतिशत अंक छोटा हो गया है जो समान विकास स्तर पर थे। सिविल सर्वेंट, शिक्षक और छोटे व्यवसायी अब 'कामकाजी गरीब' _Working Poor) की श्रेणी में आ गए हैं। इसके अलावा, प्रतिबंधों ने चिकित्सा क्षेत्र को भी बुरी तरह प्रभावित किया है। यद्यपि मानवीय सामान तकनीकी रूप से प्रतिबंधों से बाहर हैं, लेकिन बैंकिंग प्रतिबंधों के कारण दवाओं का आयात कठिन हो गया है, जिससे कैंसर और मिर्गी जैसी गंभीर बीमारियों की दवाओं की कीमतों में 300% तक की वृद्धि हुई है।

'प्रतिरोध अर्थव्यवस्था' और भ्रष्टाचार का तंत्र

ईरान के सर्वोच्च नेता अली खामेनेई ने 'प्रतिरोध अर्थव्यवस्था' (Resistance Economy) का आह्वान किया है, जिसका उद्देश्य घरेलू उत्पादन बढ़ाना और विदेशी निर्भरता कम करना है। हालांकि, इस नीति ने एक विशाल 'छाया अर्थव्यवस्था' (Shadow Economy) को जन्म दिया है। तेल निर्यात का एक बड़ा हिस्सा अब 'शैडो फ्लीट' (Shadow Fleet) के माध्यम से बेचा जाता है, जो अंतरराष्ट्रीय रडार से बचकर चीन को तेल की आपूर्ति करता है। इस अपारदर्शी व्यवस्था ने शासन के करीब रहने वाले कुलीन वर्ग (Elite) के लिए भ्रष्टाचार के नए अवसर पैदा किए हैं, जबकि आम जनता को इसका लाभ नहीं मिल रहा है।

2024-2026 की सैन्य गतिशीलता: प्रत्यक्ष संघर्ष का नया युग

2024 से 2026 का कालखंड अमेरिका-ईरान संघर्ष में एक ऐतिहासिक बदलाव का गवाह रहा है। यह संघर्ष अब केवल 'प्रॉक्सी युद्धों' (जैसे हमास, हिजबुल्लाह) तक सीमित नहीं रह गया है, बल्कि इसमें सीधे हमले शामिल हो गए हैं।

2024 के आपसी प्रहार

अप्रैल 2024 में इजराइल द्वारा दमिश्क में ईरानी वाणिज्य दूतावास पर हमले के जवाब में ईरान ने पहली बार अपनी मुख्य भूमि से इजराइल पर 300 से अधिक मिसाइलें और ड्रोन दागीं। इसके बाद अक्टूबर 2024 में ईरान ने 180 बैलिस्टिक मिसाइलें दागीं, जिसके जवाब में इजराइल ने ईरान के वायु रक्षा प्रणालियों और मिसाइल उत्पादन केंद्रों को बड़े पैमाने पर निशाना बनाया। इन घटनाओं ने साबित कर दिया कि दशकों पुरानी 'छाया युद्ध'(Shadow War) अब प्रत्यक्ष युद्ध में बदल चुकी है।

जनवरी 2026 का विद्रोह और 'हेल्प इज ऑन द वे'

दिसंबर 2025 के अंत में, ईरान में आर्थिक बदहाली के कारण बड़े पैमाने पर विरोध प्रदर्शन शुरू हुए। तेहरान के ग्रैंड बाजार से शुरू हुई यह आग पूरे देश में फैल गई। जनवरी 2026 की शुरुआत तक, मानवाधिकार समूहों का अनुमान है कि सुरक्षा बलों की कार्रवाई में 12,000 से अधिक प्रदर्शनकारी मारे गए हैं, जिनमें से 36,500 से अधिक मौतें केवल दो दिनों (8-9 जनवरी) के दौरान होने की अपुष्ट रिपोर्टें हैं।

राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रम्प ने इस स्थिति को देखते हुए "हेल्प इज ऑन द वे0184 (मदद रास्ते में है) का नारा दिया। उन्होंने चेतावनी दी कि यदि ईरानी शासन ने अपने लोगों का कत्लेआम नहीं रोका, तो अमेरिका प्रत्यक्ष हस्तक्षेप करेगा। जनवरी 2026 के मध्य तक, अमेरिकी सेंट्रल कमांड (CENTCOM) ने कतर में अपने अल-उदीद एयर बेस पर सैन्य मुद्रा में बदलाव किया और गैर-जरूरी कर्मियों को हटा दिया, जो एक संभावित हमले की पूर्व सूचना मानी जा रही है।

'बोर्ड ऑफ पीस' और ट्रम्प का नया क्षेत्रीय सिद्धांत

2026 में अमेरिका की मध्य पूर्व नीति एक नए और विवादास्पद निकाय के इर्द-गिर्द घूम रही है 'बोर्ड ऑफ पीस' (Board of Peace)।

बोर्ड ऑफ पीस (BoP) का गठन और अधिदेश

15 जनवरी 2026 को राष्ट्रपति ट्रम्प ने 'बोर्ड ऑफ पीस' के गठन की घोषणा की। यद्यपि इसकी शुरुआत गाजा में युद्धविराम और पुनर्निर्माण के लिए की गई थी, लेकिन इसका वास्तविक अधिदेश कहीं अधिक व्यापक है। ट्रम्प इसे संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के एक वैकल्पिक और अधिक व्यावहारिक मंच के रूप में देखते हैं। इस बोर्ड की संरचना अनूठी है:

- अध्यक्ष: डोनाल्ड ट्रम्प (आजीवन अध्यक्ष)।
- सदस्यता शुल्क: स्थायी सदस्य बनने के लिए देशों को 1 बिलियन डॉलर का योगदान देना होता है।
- सदस्य देश: वर्तमान में अर्जेंटीना, तुर्की, कतर, सऊदी अरब और वियतनाम सहित 26 देश इसके संस्थापक सदस्य हैं।

विशेष रूप से, ब्रिटेन, फ्रांस और जर्मनी जैसे यूरोपीय देशों ने इस बोर्ड का हिस्सा बनने से इनकार कर दिया है, क्योंकि वे इसे संयुक्त राष्ट्र की भूमिका को कम करने के प्रयास के रूप में देखते हैं।

ईरान के लिए 'बोर्ड ऑफ पीस' का अर्थ

ट्रम्प प्रशासन का तर्क है कि ईरान के साथ किसी भी नए समझौते को 'बोर्ड ऑफ पीस' के माध्यम से ही पारित किया जाना चाहिए। अमेरिका की मांग है कि ईरान को परमाणु संवर्धन को शून्य (Zero Enrichment) पर लाना होगा, अपने मिसाइल कार्यक्रम को समाप्त करना होगा और क्षेत्रीय सशस्त्र समूहों के लिए अपना समर्थन बंद करना होगा। यदि ईरान इन शर्तों को मानता है, तो बोर्ड के माध्यम से उसे आर्थिक सहायता और पुनर्निर्माण का वादा किया गया है, अन्यथा सैन्य कार्रवाई की धमकी दी गई है।

'प्रतिरोध की धुरी' (Axis of Resistance) का बिखराव

ईरान की क्षेत्रीय शक्ति का मुख्य स्रोत उसके सहयोगी सशस्त्र समूह रहे हैं। हालांकि, 2024-2026 के बीच इस नेटवर्क ने अपनी सबसे बड़ी हार का सामना किया है।

हमास और हिजबुल्लाह की स्थिति

अक्टूबर 2025 के समझौते के तहत हमास को गाजा में निशस्त्रीकरण के लिए मजबूर होना पड़ा है, हालांकि समूह ने अभी भी पूर्ण समर्पण नहीं किया है। हिजबुल्लाह, जिसे ईरान का सबसे शक्तिशाली सहयोगी माना जाता था, 2024 के इजरायली हमलों में अपने शीर्ष नेतृत्व को खोने के बाद काफी कमजोर हो गया है। लेबनानी सेना अब दक्षिणी लेबनान के उन क्षेत्रों में अपना नियंत्रण बढ़ा रही है जहाँ कभी हिजबुल्लाह का वर्चस्व था।

सीरियाई रणनीतिक क्षति

ईरान के लिए सबसे बड़ा झटका सीरिया में बशर अल-असद शासन का पतन रहा है। 2024 में असद के जाने के बाद, ईरान ने लेबनान और भूमध्य सागर तक अपना जमीनी गलियारा खो दिया है। सीरिया अब ईरान समर्थक समूहों के लिए एक सुरक्षित ठिकाना नहीं रह गया है, जिससे पूरे 'प्रतिरोध की धुरी' की रसद व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई है।

हुथी और लाल सागर का मोर्चा

हुथी समूह (यमन) इस नेटवर्क में एकमात्र ऐसा समूह है जो अभी भी प्रभावी प्रतिरोध दिखा रहा है। अंतरराष्ट्रीय सैन्य हमलों के बावजूद, उन्होंने यमन के अधिकांश हिस्से पर नियंत्रण बनाए रखा है और लाल सागर में वाणिज्यिक जहाजों पर हमले जारी रखे हैं। जनवरी 2026 में, हुथियों ने फिर से चेतावनी दी कि यदि अमेरिका ने ईरान पर हमला किया, तो वे लाल सागर में "नरक के द्वार" खोल देंगे।

वैश्विक गठबंधन: रूस और चीन की संदेहास्पद भूमिका

अमेरिका के दबाव के बीच, ईरान ने रूस और चीन की ओर अपनी निर्भरता बढ़ाई है, लेकिन ये संबंध भी सीमाओं से मुक्त नहीं हैं।

रूस-ईरान सामरिक संधि (2025)

17 जनवरी 2025 को रूस और ईरान ने 20-वर्षीय 'व्यापक सामरिक भागीदारी संधि' पर हस्ताक्षर किए। यह संधि रक्षा, ऊर्जा और साइबर सुरक्षा में सहयोग की बात करती है। संधि के अनुच्छेद 12 और 22 क्रमशः क्षेत्रीय सुरक्षा और ऊर्जा सहयोग पर केंद्रित हैं। हालांकि, यह एक औपचारिक सैन्य गठबंधन नहीं है। विशेषज्ञों का कहना है कि रूस ईरान को सैन्य उपकरण तो दे सकता है, लेकिन वह अमेरिका के साथ सीधे युद्ध में ईरान की रक्षा करने के लिए बाध्य नहीं है।

चीन का आर्थिक लाभ

चीन ईरान का सबसे बड़ा व्यापारिक भागीदार बना हुआ है। वह ईरान के तेल का 90% आयात करता है, लेकिन वह इसके लिए भारी छूट (Discount) प्राप्त करता है। चीन की भूमिका मुख्य रूप से एक आर्थिक अवसरवादी की रही है, न कि एक रणनीतिक रक्षक की। वह ईरान को अमेरिकी प्रतिबंधों के खिलाफ एक ढाल के रूप में उपयोग करता है, लेकिन स्वयं को अमेरिकी प्रतिबंधों के जोखिम में डालने से बचता है।

भविष्य का मार्ग: इस्तांबुल शिखर सम्मेलन और कूटनीति के अंतिम क्षण

जैसे-जैसे 2026 की शुरुआत हो रही है, दुनिया की नजरें तुर्की पर टिकी हैं, जहाँ एक अंतिम कूटनीतिक प्रयास किया जा रहा है।

6 फरवरी 2026: इस्तांबुल वार्ता

अमेरिकी दूत स्टीव विटकॉफ और ईरानी विदेश मंत्री अब्बास अरागची के बीच 6 फरवरी 2026 को इस्तांबुल में एक अत्यंत महत्वपूर्ण बैठक होने की उम्मीद है। इस बैठक में तुर्की, कतर और ओमान के विदेश मंत्री भी उपस्थित रह सकते हैं।

- ईरान की पेशकश: ईरान ने संकेत दिया है कि वह अपने 400 किलोग्राम उच्च संवर्धित यूरेनियम को किसी तीसरे देश (शायद रूस) को सौंपने और संवर्धन को 3.67% तक कम करने के लिए तैयार है।
- अमेरिका की मांग: ट्रम्प प्रशासन ने स्पष्ट किया है कि केवल परमाणु रियायतें काफी नहीं हैं; मिसाइल कार्यक्रम और प्रॉक्सी नेटवर्क पर भी प्रतिबंध लगाने होंगे।

कतर और ओमान की मध्यस्थता

कतर और ओमान ने 'यूक्रेन और गाजा समाधान' के मॉडल पर आधारित एक प्रस्ताव तैयार किया है, जिसमें चरणबद्ध तरीके से प्रतिबंध हटाने और सुरक्षा आश्वासनों की बात कही गई है। ओमान के सुल्तान हैथम बिन तारिक ने व्यक्तिगत रूप से ट्रम्प और ईरानी नेतृत्व के बीच संदेशों का आदान-प्रदान किया है।

परिणाम और भविष्य के परिदृश्य

इस संघर्ष का भविष्य तीन प्रमुख परिदृश्यों के बीच झूल रहा है:

- ग्रैंड बार्गेन (Grand Bargain): यदि ईरान अपनी सैन्य महत्वाकांक्षाओं को छोड़ने का कठोर निर्णय लेता है, तो एक नया 'इस्तांबुल समझौता' हो सकता है, जिससे ईरान वैश्विक अर्थव्यवस्था में वापस आ सके।
- दंडात्मक सैन्य हमले (Decapitation Strikes): यदि वार्ता विफल होती है, तो अमेरिका ईरान के कमांड-एंड-कंट्रोल केंद्रों, आईआरजीसी मुख्यालयों और परमाणु स्थलों पर बड़े पैमाने पर हवाई हमले कर सकता है।
- आंतरिक पतन (Internal Collapse): निरंतर आर्थिक दबाव और प्रदर्शनों के कारण शासन के भीतर फूट पड़ सकती है, जिससे एक आंतरिक सत्ता परिवर्तन की स्थिति बन सकती है।

निष्कर्ष

अमेरिका और ईरान के बीच का संघर्ष अब अपने अंतिम दौर (Endgame) में पहुँचता प्रतीत हो रहा है। 2026 के आरंभिक महीने यह तय करेंगे कि यह क्षेत्र एक व्यापक क्षेत्रीय युद्ध की आग में झुलसेगा या एक नई सुरक्षा व्यवस्था का उदय होगा। जहाँ 'बोर्ड ऑफ पीस' जैसी पहलें अंतरराष्ट्रीय कूटनीति के स्थापित नियमों को चुनौती दे रही हैं, वहीं ईरान के भीतर जारी जन-आक्रोश शासन की स्थिरता के लिए सबसे बड़ा खतरा बन गया है। ऐतिहासिक अविश्वास और वर्तमान सैन्य वृद्धि ने कूटनीति के लिए बहुत कम जगह छोड़ी है। 'इस्तांबुल शिखर सम्मेलन' शायद शांति का आखिरी मौका है। यदि यह विफल होता है, तो मध्य पूर्व की सीमाओं और शक्ति संतुलन में ऐसे बदलाव आ सकते हैं जिनकी कल्पना 1979 के क्रांतिकारियों या वाशिंगटन के रणनीतिकारों ने कभी नहीं की थी। भविष्य का रास्ता अब केवल विएना या न्यूयॉर्क की फाइलों में नहीं, बल्कि तेहरान की सड़कों और फारस की खाड़ी के युद्धपोतों की गड़गड़ाहट के बीच तय होगा।

संदर्भ सूची

1. Amanat, A. (2017). Iran: A modern history. Yale University Press.
2. Axworthy, M. (2013). Revolutionary Iran: A history of the Islamic Republic. Oxford University Press.
3. Council on Foreign Relations. (2026). The evolving landscape of the US-Iran conflict 2024-2025. CFR Press.
4. Geranmayeh, E. (2025). After the strikes: Navigating a new Middle East order. European Council on Foreign Relations.
5. International Crisis Group. (2025). The 12-day war and its aftermath in the Persian Gulf. Crisis Group Reports.
6. Kiriakou, J. C., & Porter, G. (2020). The CIA insider's guide to the Iran crisis: From CIA coup to the brink of war. Skyhorse Publishing.

7. Murray, D. (2010). US foreign policy and Iran: American-Iranian relations since the Islamic revolution. Routledge.
8. Parsi, T. (2017). Losing an enemy: Obama, Iran, and the triumph of diplomacy. Yale University Press.
9. Pollack, K. M. (2004). The Persian puzzle: The conflict between Iran and America. Random House.
10. Sadjadpour, K. (2024). The axis of resistance: Iran's regional strategy and US interests. Carnegie Endowment for International Peace.
11. Tabatabai, A. M. (2020). No-win war: The paradox of US-Iran relations. Columbia University Press.
12. Takeyh, R. (2021). The last Shah: America, Iran, and the fall of the Pahlavi dynasty. Yale University Press.
13. Thomas, C. (2025). Iran: Background and U.S. policy (Report No. R47321). Congressional Research Service.

"डिजिटल युग में इंटरएक्टिव विज्ञापनः उपभोक्ता की खरीद मंशा पर एक अध्ययन"

सोमेश कुमार

(वाणिज्य विभाग)

सारांश (Abstract) :

वर्तमान डिजिटल युग में इंटरएक्टिव विज्ञापन उपभोक्ताओं की सहभागिता बढ़ाने और उनकी खरीदारी की मंशा को प्रभावित करने का एक प्रभावी माध्यम बनकर उभरा है। यह अध्ययन इंटरएक्टिव विज्ञापन के प्रमुख कारकों-जैसे इंटरएक्टिविटी, प्रासंगिकता, मनोरंजनात्मकता तथा सूचनात्मकता-की भूमिका का विश्लेषण करता है और यह समझने का प्रयास करता है कि ये कारक उपभोक्ता सहभागिता के माध्यम से खरीद निर्णयों को किस प्रकार प्रभावित करते हैं। इंटरएक्टिव विज्ञापन विपणन संप्रेषण का एक उन्नत रूप है, जो ब्रांड और उपभोक्ता के बीच द्वि-दिशात्मक संवाद स्थापित करता है तथा सोशल मीडिया, वेबसाइटों और मोबाइल एप्लिकेशन जैसे डिजिटल प्लेटफार्मों के माध्यम से उपभोक्ताओं को व्यक्तिगत और अनुभवात्मक सहभागिता प्रदान करता है।

इस शोध में एक संकल्पनात्मक ढांचा विकसित किया गया है, जो इंटरएक्टिव विज्ञापन के कारकों, ग्राहक सहभागिता और खरीदारी की मंशा के बीच संबंधों को स्पष्ट करता है। अध्ययन के निष्कर्ष दर्शाते हैं कि प्रभावी इंटरएक्टिव विज्ञापन न केवल उपभोक्ताओं का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता है, बल्कि ब्रांड के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण का निर्माण कर उनके खरीद निर्णयों को भी प्रभावित करता है। इसके अतिरिक्त, इंटरएक्टिव विज्ञापन उपभोक्ताओं के साथ दीर्घकालिक संबंध स्थापित करने और ब्रांड मूल्य को सुदृढ़ करने में सहायक सिद्ध होता है। यह अध्ययन विपणनकर्ताओं एवं शोधकर्ताओं के लिए उपयोगी अंतर्दृष्टि प्रदान करता है, जिससे वे आधुनिक इंटरएक्टिव विज्ञापन रणनीतियों के माध्यम से उपभोक्ता सहभागिता को बढ़ाकर खरीदारी की मंशा को प्रभावी रूप से प्रोत्साहित कर सकें।

प्रमुख शब्द (keywords): इंटरएक्टिव विज्ञापन रणनीतियाँ, उपभोक्ता सहभागिता, उपभोक्ता खरीदारी की मंशा

प्रस्तावना (Introduction) :

आज के डिजिटल युग में, इंटरएक्टिव विज्ञापन ने ब्रांड और उपभोक्ता के बीच जुड़ाव के तरीके को पूरी तरह बदल दिया है और उपभोक्ताओं की खरीदारी की मंशा को नए आकार देने के अवसर प्रस्तुत किए हैं। इंटरएक्टिव विज्ञापन की विशेषता यह है कि यह ब्रांड और उपभोक्ता के बीच द्वि-दिशात्मक संवाद की सुविधा प्रदान करता है। सोशल मीडिया, वेबसाइट और मोबाइल एप्लिकेशन जैसे विभिन्न डिजिटल प्लेटफार्मों पर यह विज्ञापन रूप तेजी से प्रचलित हो रहा है। इस प्रकार का विज्ञापन उपभोक्ताओं को सक्रिय रूप से ब्रांड सामग्री के साथ जुड़ने, प्रतिक्रिया देने और पउउमतेपअम अनुभव में भाग लेने का सुअवसर देता है। उपभोक्ता व्यवहार और खरीदारी की मंशा पर इंटरएक्टिव विज्ञापन की प्रभावशीलता ने विपणन विशेषज्ञों और शोधकर्ताओं दोनों का ध्यान आकर्षित किया है।

इंटरएक्टिव विज्ञापन के कारक-जैसे इंटरएक्टिविटी, प्रासंगिकता, मनोरंजनात्मकता और सूचनात्मकता-खरीदारी की मंशा को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इंटरएक्टिविटी उपभोक्ताओं को विज्ञापन प्रक्रिया में भाग लेने की अनुमति देती है, जिससे उनकी सहभागिता और ब्रांड के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण बढ़ता है। प्रासंगिकता यह सुनिश्चित करती है कि विज्ञापन संदेश उपभोक्ता की आवश्यकताओं और रुचियों के अनुरूप हों, जिससे उत्पाद या सेवा को खरीदने की संभावना बढ़ती है। मनोरंजनात्मकता उपभोक्ताओं का ध्यान आकर्षित करती है और ब्रांड के साथ उनके अनुभव को और अधिक सकारात्मक बनाती है। वहीं, सूचनात्मकता उपभोक्ताओं को महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करती है, जिससे वे अधिक उचित और समझदारीपूर्ण खरीद निर्णय ले सकते हैं।

हालांकि इंटरएक्टिव विज्ञापन पर शोध का क्षेत्र लगातार बढ़ रहा है, फिर भी इंटरएक्टिव विज्ञापन के विभिन्न कारकों का खरीदारी की मंशा पर विशिष्ट प्रभाव अभी भी पूरी तरह स्पष्ट नहीं हुआ है। यह अध्ययन इस अंतर को भरने का प्रयास करता है और इंटरएक्टिविटी, प्रासंगिकता, मनोरंजनात्मकता तथा सूचनात्मकता के प्रभाव को उपभोक्ताओं की खरीदारी की मंशा पर विश्लेषित करता है। इन कारकों के प्रभाव को समझकर विपणन विशेषज्ञ अधिक प्रभावी इंटरएक्टिव विज्ञापन रणनीतियाँ विकसित कर सकते हैं, जो उपभोक्ताओं की सहभागिता बढ़ाएँ और खरीदारी की मंशा को अधिक सुदृढ़ करें।

उद्देश्य (Objectives)

1. इंटरएक्टिव विज्ञापन के प्रमुख कारकों–जैसे इंटरएक्टिविटी, प्रासंगिकता, मनोरंजनात्मकता एवं सूचनात्मकता–की पहचान करना।
2. इन इंटरएक्टिव विज्ञापन कारकों का उपभोक्ता सहभागिता (Customer Engagement) पर पड़ने वाले प्रभाव का विश्लेषण करना।
3. उपभोक्ता सहभागिता और खरीदारी की मंशा के बीच संबंध का अध्ययन एवं विश्लेषण करना।
4. इंटरएक्टिव विज्ञापन के विभिन्न कारकों का उपभोक्ताओं की खरीदारी की मंशा पर प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रभाव का मूल्यांकन करना।
5. विपणनकर्ताओं के लिए प्रभावी इंटरएक्टिव विज्ञापन रणनीतियों के विकास हेतु सुझाव प्रस्तुत करना, जिससे खरीदारी की मंशा को और अधिक बढ़ाया जा सके।

साहित्य समीक्षा (Literature Review) :

विज्ञापन की प्रभावशीलता और उसका उपभोक्ता व्यवहार पर प्रभाव लंबे समय से मार्केटिंग विशेषज्ञों एवं शोधकर्ताओं के लिए अध्ययन का विषय रहा है। पारंपरिक विज्ञापन जहाँ एक–तरफा संचार तक सीमित था, वहीं हाल के वर्षों में शोध का झुकाव इंटरएक्टिव विज्ञापन की ओर बढ़ा है, जो उपभोक्ताओं और ब्रांड के बीच सक्रिय एवं द्वि–दिशात्मक संवाद को प्रोत्साहित करता है। डिजिटल तकनीकों और ऑनलाइन मीडिया प्लेटफार्मों के विकास के साथ इंटरएक्टिव विज्ञापन ने उपभोक्ता सहभागिता को बढ़ाने तथा खरीदारी की मंशा को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

इंटरएक्टिव विज्ञापन को एक प्रभावी विपणन उपकरण के रूप में देखा जाता है, क्योंकि यह उपभोक्ताओं को केवल संदेश प्राप्त करने तक सीमित नहीं रखता, बल्कि उन्हें विज्ञापन प्रक्रिया में भाग लेने का सुवसर भी प्रदान करता है। पूर्ववर्ती अध्ययनों में यह पाया गया है कि ग्राहक सहभागिता, प्रभावी संचार, डिजिटल मीडिया प्लेटफार्म और इंटरएक्शन जैसे तत्व खरीदारी की मंशा को सकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं।

इंटरएक्टिविटी इंटरएक्टिव विज्ञापन का एक प्रमुख घटक है, जो यह दर्शाता है कि उपभोक्ता विज्ञापन सामग्री के साथ किस हद तक सहभागिता कर सकता है। शोध साहित्य के अनुसार, अधिक इंटरएक्टिव विज्ञापन उपभोक्ताओं में रुचि और संलग्नता बढ़ाते हैं, जिससे ब्रांड के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित होता है और खरीदारी की मंशा मजबूत होती है (Rodgers एवं Thorson, 2000)। ऑनलाइन क्विज, गेम्स, पोल्स और क्लिक–आधारित फीचर्स जैसे इंटरएक्टिव तत्व उपभोक्ता अनुभव को समृद्ध बनाते हैं और निर्णय–निर्माण प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। (Wang ,oa Sun, 2010)।

प्रासंगिकता भी इंटरएक्टिव विज्ञापन की प्रभावशीलता का एक महत्वपूर्ण कारक है। प्रासंगिक विज्ञापन संदेश उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं, रुचियों और प्राथमिकताओं के अनुरूप होते हैं, जिससे उनका ध्यान आकर्षित करना आसान हो जाता है। साहित्य से यह स्पष्ट होता है कि व्यक्तिगत और अनुकूलित (Personalized) विज्ञापन सामग्री उपभोक्ताओं के मन में अधिक प्रभाव छोड़ती है और खरीदारी की मंशा को बढ़ाने में सहायक होती है (Li et al., 2002)।

मनोरंजनात्मकता इंटरएक्टिव विज्ञापन को आकर्षक और यादगार बनाने में अहम भूमिका निभाती है। अध्ययन दर्शाते हैं कि मनोरंजक, रचनात्मक और आनंददायक विज्ञापन उपभोक्ताओं में सकारात्मक भावनाएँ उत्पन्न करते हैं, जिससे वे ब्रांड के प्रति अधिक जुड़ाव महसूस करते हैं। कहानी–आधारित, हास्यपूर्ण और दृश्यात्मक रूप से आकर्षक इंटरएक्टिव विज्ञापन उपभोक्ताओं की सहभागिता बढ़ाने और उनकी खरीदारी की मंशा को प्रभावित करने में प्रभावी पाए गए हैं। (Dahlén et al., 2009)।

इसी प्रकार, सूचनात्मकता इंटरएक्टिव विज्ञापन का एक अन्य महत्वपूर्ण आयाम है। उपभोक्ता ऐसे विज्ञापनों से अधिक प्रभावित होते हैं जो उन्हें उत्पाद या सेवा से संबंधित उपयोगी, स्पष्ट और विश्वसनीय जानकारी प्रदान करते हैं। उत्पाद प्रदर्शन, ग्राहक समीक्षाएँ, डेमो वीडियो और ट्यूटोरियल जैसे इंटरएक्टिव फीचर्स विज्ञापन की सूचनात्मक गुणवत्ता को बढ़ाते हैं, जिससे उपभोक्ता का विश्वास बढ़ता है और खरीदारी की मंशा पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।(Ha et al., 2007)।

समग्र रूप से, पूर्व शोध यह संकेत देते हैं कि इंटरएक्टिव विज्ञापन के विभिन्न कारक–इंटरएक्टिविटी, प्रासंगिकता, मनोरंजनात्मकता और सूचनात्मकता–उपभोक्ता सहभागिता को सुदृढ़ करते हैं तथा खरीदारी की मंशा को सकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं। यह साहित्य समीक्षा वर्तमान अध्ययन के लिए सैद्धांतिक आधार प्रदान करती है और प्रस्तावित परिकल्पनाओं को समर्थन देती है।

ग्राहक सहभागिता एवं खरीदारी की मंशा (Customer Engagement and Purchase Intention) :

ग्राहक सहभागिता खरीदारी की मंशा को आकार देने वाला एक महत्वपूर्ण कारक मानी जाती है। जब उपभोक्ता किसी ब्रांड के साथ सक्रिय रूप से जुड़ते हैं, तो उनके मन मस्तिष्क के भीतर उस ब्रांड और उसके उत्पादों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित होता है, जिससे खरीदारी की मंशा में वृद्धि होती है। पूर्व शोधों से यह सिद्ध हुआ है कि अधिक संलग्न उपभोक्ता न केवल ब्रांड के प्रति अधिक विश्वास प्रकट करते हैं, बल्कि विज्ञापित उत्पादों को खरीदने के प्रति भी अधिक इच्छुक होते हैं (Brodie et al., 2013)। उदाहरण स्वरूप, Verhagen et al. (2015) के अध्ययन में यह पाया गया कि इंटरएक्टिव प्लेटफार्मों के माध्यम से जुड़ने वाले उपभोक्ता, उन प्लेटफार्मों पर प्रदर्शित उत्पादों को खरीदने की अधिक संभावना रखते हैं।

संचार एवं खरीदारी की मंशा (Communication and Purchase Intention) :

प्रभावी संचार व्यवस्था उपभोक्ताओं की खरीदारी की मंशा को प्रभावित करने में निर्णायक भूमिका निभाता है। स्पष्ट, विश्वसनीय और प्रेरक संप्रेषण उत्पाद या सेवा के मूल्य प्रस्ताव को उपभोक्ताओं तक प्रभावी रूप से पहुँचाने में सहायक होता है, जिससे उनके खरीद निर्णय प्रभावित होते हैं। शोध यह दर्शाते हैं कि जब विज्ञापन संदेश सरल और प्रभावशाली होते हैं, तो उपभोक्ताओं में उत्पाद को अपनाने की प्रवृत्ति बढ़ती है (MacKenzie et al., 2015)। Huang और Chen (2018) के अध्ययन में यह निष्कर्ष निकाला गया कि इंटरएक्टिव विज्ञापन में प्रभावी संचार उपभोक्ताओं की खरीदारी की मंशा को सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है।

मीडिया प्लेटफॉर्म एवं खरीदारी की मंशा (Media Platforms and Purchase Intention)

मीडिया प्लेटफॉर्म का चुनाव भी खरीदारी की मंशा को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण तत्व है। विभिन्न मीडिया प्लेटफॉर्म उपभोक्ताओं को अलग–अलग स्तर की इंटरएक्टिविटी और सहभागिता प्रदान करते हैं, जिससे ब्रांड के प्रति उनकी धारणा और दृष्टिकोण प्रभावित होता है (Choi ,oa Rifon, 2012)।विशेष रूप से, सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म उपभोक्ताओं को वास्तविक समय में ब्रांड और उत्पादों के साथ संवाद करने का अवसर प्रदान करते हैं। पूर्व अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि सोशल मीडिया आधारित इंटरएक्टिव विज्ञापन उपभोक्ताओं की सहभागिता को बढ़ाते हैं, जिसके परिणाम स्वरूप खरीदारी की मंशा में वृद्धि होती है (Phelps et al., 2014)।

इंटरएक्शन एवं खरीदारी की मंशा (Interaction and Purchase Intention)

इंटरएक्टिव विज्ञापन प्रमुखतया उपभोक्ता सहभागिता और इंटरएक्शन को प्रोत्साहित करता है, जो खरीदारी की मंशा को सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। जब उपभोक्ता किसी विज्ञापन के साथ सक्रिय रूप से जुड़ते हैं–जैसे क्लिक करना, प्रतिक्रिया देना या सहभागिता करना–तो वे ब्रांड और उसके उत्पादों के प्रति अधिक अनुकूल दृष्टिकोण विकसित करते हैं (Kim ,oa Johnson, 2016)। Li et al. (2018) के अध्ययन में यह पाया गया कि ऑनलाइन विज्ञापनों में इंटरएक्टिव तत्वों की उपस्थिति उपभोक्ताओं की खरीदारी की मंशा को उल्लेखनीय रूप से बढ़ाती है।

परिकल्पना (Hypothesis) :

H_0: इंटरएक्टिव विज्ञापन के तत्व–जैसे ग्राहक सहभागिता, प्रभावी संचार, मीडिया प्लेटफॉर्म और इंटरएक्शन–उपभोक्ताओं की खरीदारी की मंशा को सकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं।

H_1 : उपभोक्ताओं की ब्रांड सहभागिता (Customer Engagement) इंटरएक्टिव विज्ञापन के माध्यम से बढ़ती है, जिससे उनकी खरीदारी की मंशा में वृद्धि होती है।

शोध पद्धति (Methodology) :

इस अध्ययन की प्रकृति मात्रात्मक (Quantitative) और क्रॉस-सेक्शनल (Cross-Sectional) है। मात्रात्मक शोध में संख्यात्मक डेटा का संग्रह और विश्लेषण किया जाता है ताकि प्रस्तावित हाइपोथेसिस का परीक्षण किया जा सके और शोध प्रश्नों के उत्तर प्राप्त किए जा सकें।

इस अध्ययन में डेटा सर्वेक्षण (Survey) के माध्यम से एकत्र किया गया और सांख्यिकीय विधियों (Statistical Methods) का उपयोग करके विश्लेषण किया गया, जिससे इंटरएक्टिव विज्ञापन के कारकों और उपभोक्ता की खरीदारी की मंशा के बीच संबंधों का समुचित मूल्यांकन किया जा सके। अध्ययन के लिए 317 प्रतिभागियों को चुना गया, जो मुख्य रूप से सारंगढ़ क्षेत्र के आसपास के थे।

प्रतिभागियों की चयन प्रक्रिया में सुविधाजनक नमूना पद्धति (Convenience Sampling) का प्रयोग किया गया। यह एक non-probability sampling technique है, जिसमें प्रतिभागियों का चयन उनके आसान उपलब्ध होने और शोधकर्ता तक उनकी पहुँच के आधार पर किया जाता है। इस अध्ययन में प्रतिभागियों को विभिन्न ऑनलाइन प्लेटफार्म और सोशल मीडिया चौनल के माध्यम से शामिल किया गया, जिससे उनके लिए अनुसंधान में भाग लेना सुविधाजनक हो गया।

डेटा विश्लेषण में सहसंबंधात्मक (Correlational) विश्लेषण का प्रयोग कर यह समझने का प्रयास किया गया कि चयनित इंटरएक्टिव विज्ञापन कारक और उपभोक्ता की खरीदारी की मंशा के बीच किस प्रकार का संबंध है। हाइपोथेसिस का परीक्षण करने के लिए मल्टीपल रिग्रेशन (Multiple Regression Analysis) का उपयोग किया गया।

विश्लेषण के परिणाम दर्शाते हैं कि सभी हाइपोथेसिस समर्थित हैं, अर्थात् ग्राहक सहभागिता, प्रभावी संप्रेषण, मीडिया प्लेटफॉर्म और इंटरएक्शन उपभोक्ता की खरीदारी की मंशा को सकारात्मक रूप से प्रभावित करते हैं। इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि इंटरएक्टिव विज्ञापन रणनीतियाँ उपभोक्ता सहभागिता बढ़ाने और खरीदारी की मंशा को सुदृढ़ करने में प्रभावी सिद्ध हो सकती हैं।

डेटा विश्लेषण और निष्कर्ष (Data Analysis and Results)

उत्तरदाताओं की जनसांख्यिकीय प्रोफाइल (Demographic Profile of Respondents, N=317)

जनसांख्यिकीय वस्तु	*घटक*	*प्रतिशत*
लिंग	पुरुष	64
	महिला	36
आयु	20 वर्ष से कम	12
	21-30 वर्ष	35
	31-40 वर्ष	40
	40 वर्ष से अधिक	13
शैक्षिक योग्यता	स्नातक	30
	अंडरग्रेजुएट	45
	अन्य	25
पेशा	विद्यार्थी	25
	व्यवसायी	35
	नौकरीपेशा	30
	अन्य	15

स्रोतः प्राथमिक डेटा**:** उत्तरदाताओं की जनसांख्यिकीय प्रोफाइल (N = 317) नमूना जनसंख्या की संरचना और विशेषताओं को व्यवस्थित रूप से स्पष्ट करती है। लिंग के आधार पर, अधिकांश उत्तरदाता पुरुष थे (64%), जबकि महिलाओं की भागीदारी 36% रही। आयु-वितरण के संदर्भ में, सर्वाधिक उत्तरदाता 31-40 वर्ष के आयु वर्ग से संबंधित थे (40%), इसके पश्चात 21ख्र30 वर्ष का आयु वर्ग रहा (35%)। वहीं, 20 वर्ष से कम आयु के उत्तरदाता 12% तथा 40 वर्ष से अधिक आयु के उत्तरदाता 13% पाए गए।

शैक्षिक योग्यता के आधार पर, नमूने में स्नातक-पूर्व (अंडरग्रेजुएट) उत्तरदाताओं की संख्या सर्वाधिक रही (45%), इसके बाद स्नातक स्तर के उत्तरदाता 30% थे। जबकि 25 % उत्तरदाताओं की शैक्षिक योग्यता अन्य श्रेणियों में आती थी।

पेशा के अनुसार, सबसे बड़ा वर्ग व्यवसायी का था (35%), इसके बाद पेशा (30%) तथा छात्र (25%) शामिल थे। इसके अतिरिक्त, 15% अन्य व्यवसायों से संबद्ध पाए गए।

कारक विश्लेषण (Factor Analysis) : इंटरएक्टिव विज्ञापन से संबंधित अंतर्निहित कारकों (Underlying Factors) की पहचान करने के उद्देश्य से इस अध्ययन में Principal Component Analysis (PCA) पद्धति का प्रयोग किया गया। कारकों की व्याख्या को अधिक स्पष्ट और सार्थक बनाने के लिए Varimañ Rotation लागू किया गया। कारक विश्लेषण से पूर्व डेटा की उपयुक्तता की जाँच की गई, जिसमें Kaiser–Meyer–Olkin (KMO) माप स्वीकार्य स्तर से अधिक पाया गया तथा Bartlett's Test of Sphericity सांख्यिकीय रूप से सार्थक ($p < 0.05$) रहा। इससे यह सिद्ध होता है कि एकत्रित डेटा कारक विश्लेषण के लिए उपयुक्त है।

कारक विश्लेषण के परिणामस्वरूप कुल चार प्रमुख कारक निकाले गए, जिन्होंने संयुक्त रूप से कुल विचरण (Total Variance) का 76.95% स्पष्ट किया। सभी मापन कथनों (Items) के फैक्टर लोडिंग मान 0.70 से अधिक पाए गए, जो प्रयुक्त मापन पैमाने की उच्च विश्वसनीयता और आंतरिक संगति (Internal Consistency) को दर्शाते हैं।

निकाले गए प्रमुख कारकों का विवरणः

कारक 1: ग्राहक सहभागिता (Customer Engagement) **:** इस कारक में वे सभी तत्व सम्मिलित हैं जो उपभोक्ता और विज्ञापन के बीच संचार सहभागिता तथा प्रतिक्रिया के स्तर को दर्शाते हैं। परिणाम संकेत देते हैं कि अधिक इंटरएक्टिव विज्ञापन उपभोक्ता का ध्यान आकर्षित करते हैं और उन्हें ब्रांड के साथ जुड़ने के लिए प्रेरित करते हैं।

कारक 2: प्रभावी संचार (Effective Communication) **:** इस कारक के अंतर्गत विज्ञापन संदेश की स्पष्टता, उपयोगिता और प्रासंगिकता से संबंधित चर शामिल हैं। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि स्पष्ट एवं प्रभावी संचार उपभोक्ता की समझ को बेहतर बनाता है और उसकी खरीद की मंशा को सकारात्मक दिशा प्रदान करता है।

कारक 3: मीडिया प्लेटफॉर्म की प्रभावशीलता (Media Platform Effectiveness) **:** यह कारक विभिन्न डिजिटल और सोशल मीडिया प्लेटफॉर्म की भूमिका को प्रतिबिंबित करता है। परिणाम दर्शाते हैं कि उपयुक्त मीडिया प्लेटफॉर्म का चयन विज्ञापन की पहुँच और प्रभावशीलता को बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान देता है।

कारक 4: इंटरएक्शन (Interaction) **:** इस कारक में उपभोक्ता द्वारा विज्ञापन के साथ की जाने वाली प्रत्यक्ष क्रियाएँ, जैसे क्लिक करना, प्रतिक्रिया देना और साझा करना, शामिल हैं। यह कारक उपभोक्ता के व्यवहारिक इरादों और खरीदारी की मंशा को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण पाया गया।

मल्टीपल रिग्रेशन विश्लेषण द्वारा हाइपोथेसिस परीक्षण :

इंटरएक्टिव विज्ञापन के कारकों का उपभोक्ता की खरीदारी की मंशा पर प्रभाव जाँचने हेतु मल्टीपल रिग्रेशन विश्लेषण (Multiple Regression Analysis) का प्रयोग किया गया। इस विश्लेषण में ग्राहक सहभागिता, प्रभावी संप्रेषण, मीडिया प्लेटफॉर्म की प्रभावशीलता तथा इंटरएक्शन को स्वतंत्र चर (Independent Variables) के रूप में तथा खरीदारी की मंशा को आश्रित चर (Dependent Variable) के रूप में लिया गया।

रिग्रेशन विश्लेषण के परिणाम दर्शाते हैं कि सभी स्वतंत्र चर उपभोक्ता की खरीदारी की मंशा पर सकारात्मक और सांख्यिकीय रूप से सार्थक प्रभाव डालते हैं ($p < 0.05$)। मॉडल का व्याख्यात्मक सामर्थ्य (R^2) संतोषजनक पाया गया, जो यह

संकेत देता है कि चयनित इंटरएक्टिव विज्ञापन कारक उपभोक्ता की खरीदारी की मंशा में होने वाले परिवर्तन को प्रभावी रूप से स्पष्ट करते हैं।

चर्चा एवं निहितार्थ (Discussion and Implications) :

इस अध्ययन के निष्कर्ष यह स्पष्ट करते हैं कि इंटरएक्टिव विज्ञापन उपभोक्ता की खरीदारी की मंशा को प्रभावित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। शोध परिणामों से यह सिद्ध होता है कि ग्राहक सहभागिता, प्रभावी संप्रेषण, उपयुक्त मीडिया प्लेटफॉर्म तथा इंटरएक्शन–ये सभी कारक खरीदारी की मंशा पर सकारात्मक प्रभाव डालते हैं और अध्ययन में प्रस्तावित हाइपोथेसिस का समर्थन करते हैं।

कारक विश्लेषण से यह ज्ञात हुआ कि पहचाने गए चारों कारक खरीदारी की मंशा में होने वाले परिवर्तन का पर्याप्त भाग स्पष्ट करते हैं, जिससे उनकी व्यावहारिक उपयोगिता सिद्ध होती है। साथ ही, इन कारकों के बीच पाए गए सकारात्मक संबंध यह दर्शाते हैं कि ये तत्व परस्पर जुड़े हुए हैं और सामूहिक रूप से उपभोक्ता व्यवहार को दिशा देते हैं। मल्टीपल रिग्रेशन विश्लेषण ने भी यह पुष्टि की कि इन कारकों की प्रभावशीलता बढ़ने के साथ उपभोक्ता की खरीदारी की मंशा में भी वृद्धि होती है।

व्यावहारिक स्तर पर, ये निष्कर्ष विपणकों और विज्ञापनदाताओं को यह संकेत देते हैं कि इंटरएक्टिव विज्ञापन अभियानों की सफलता के लिए ग्राहक–केंद्रित दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है। इंटरएक्टिव और वैयक्तिकृत सामग्री, स्पष्ट एवं प्रासंगिक संदेश, उपयुक्त डिजिटल प्लेटफॉर्म का चयन तथा उपभोक्ताओं के साथ सक्रिय संवाद–ये सभी तत्व प्रभावी विज्ञापन रणनीतियों के निर्माण में सहायक हो सकते हैं। इस प्रकार, इंटरएक्टिव विज्ञापन रणनीतियों का सुविचारित उपयोग उपभोक्ता सहभागिता और खरीदारी की मंशा को सुदृढ़ करने में सहायक सिद्ध हो सकता है।

निष्कर्ष (Conclusion)

अंततः, यह अध्ययन इंटरएक्टिव विज्ञापन के उन कारकों की महत्वपूर्ण भूमिका को रेखांकित करता है, जो ग्राहक सहभागिता (Customer Engagement) और खरीदारी की मंशा (Purchase Intention) को प्रभावित करते हैं। इंटरएक्टिव विज्ञापन की विशेषता इसकी गतिशील और द्विपक्षीय प्रकृति है, जो ब्रांड को उपभोक्ताओं को वैयक्तिकृत और आकर्षक अनुभव प्रदान करने में सक्षम बनाती है।

इस अध्ययन के निष्कर्ष दर्शाते हैं कि इंटरएक्टिविटी, प्रासंगिकता, मनोरंजन और सूचना–संपन्नता (Interactivity, Relevance, Entertainment, Informativeness) जैसे कारक ग्राहक सहभागिता को बढ़ावा देने वाले प्रमुख घटक हैं और ये खरीदारी की मंशा को आकार देने में निर्णायक भूमिका निभाते हैं। परिणाम यह भी स्पष्ट करते हैं कि इंटरएक्टिव विज्ञापन उपभोक्ता का ध्यान आकर्षित करने, ब्रांड धारणा को सुदृढ़ करने और अंततः खरीदारी निर्णय को प्रभावित करने में प्रभावी है।

विपणक इन निष्कर्षों का उपयोग करके ऐसी रणनीतियाँ विकसित कर सकते हैं, जो उपभोक्ताओं को अधिक प्रभावी ढंग से शामिल करें और खरीदारी की मंशा को बढ़ाएँ। यह अध्ययन इंटरएक्टिव विज्ञापन के महत्व को समझने में योगदान देता है और विपणक के लिए व्यावहारिक सुझाव प्रदान करता है, जिससे वे ग्राहक सहभागिता बढ़ाने और बिक्री को प्रेरित करने के लिए इंटरएक्टिव विज्ञापन का अधिक प्रभावी उपयोग कर सकते हैं।

संदर्भ (References)

1. Brodie, R. J., Hollebeek, L. D., Juric, B., & Ilic, A. (2013)। ग्राहक सहभागिता: अवधारणात्मक क्षेत्र, मूल प्रस्ताव और अनुसंधान के लिए निहितार्थ। Journal of Service Research, 14(3), 252–271। https://doi.org/10.1177/1094670510375599
2. Choi, S. M., & Rifon, N. J. (2012)। यह मेल है: सेलिब्रिटी छवि और उपभोक्ता आदर्श स्व के बीच अनुरूपता का प्रभाव। Psychology & Marketing, 29(9), 639-650। https://doi.org/10.1002/mar.20550
3. Rodgers, S., & Thorson, E. (2000)। इंटरएक्टिव विज्ञापन मॉडल: उपयोगकर्ता ऑनलाइन विज्ञापनों को कैसे देखते और संसाधित करते हैं। Journal of Interactive Advertising, 1(1), 3-23। https://doi.org/10.1080/15252019.2000.10722047
4. Huang, L., & Chen, C.&H. (2018)। विज्ञापन से उत्पन्न भावनाएँ ऑनलाइन उपभोक्ता मंशा को कैसे प्रभावित करती हैं? एक दोहरी–प्रक्रिया दृष्टिकोण। Internet Research, 28(3), 660-680। https://doi.org/10.1108/IntR-03-2017-0123

5. Ha, L., & McCann, K. (2008)। ऑफलाइन और ऑनलाइन मीडिया में विज्ञापन अव्यवस्था का एक एकीकृत मॉडल। International Journal of Advertising, 27(4), 569-592। https://doi.org/10.2501/S0265048708080245
6. Li, H., Daugherty, T., & Biocca, F. (2002)। 3-D विज्ञापन का उत्पाद ज्ञान, ब्रांड दृष्टिकोण और खरीदारी मंशा पर प्रभाव: उपस्थिति की मध्यस्थ भूमिका। Journal of Advertising, 31(3), 43-57। https://doi.org/10.1080/00913367.2002.10673680
7. Phelps, J. E., Lewis, R., Mobilio, L., Perry, D., & Raman, N. (2014)।वायरल मार्केटिंग या इलेक्ट्रॉनिक वर्ड-ऑफ-माउथ विज्ञापन: उपभोक्ता प्रतिक्रियाओं और ईमेल साझा करने की प्रेरणाओं का परीक्षण। Journal of Advertising Research, 44(4), 333-348। https://doi.org/10.1017/S0021849904040355
8. Verhagen, T., van Dolen, W., & van der Heijden, B. (2015)।डिजिटल ग्राहक अनुभव: एक अनुसंधान एजेंडा। Journal of Interactive Marketing, 29, 1-4। https://doi.org/10.1016/j.intmar.2014.10.001
9. MacKenzie, S. B., Lutz, R. J., & Belch, G. E. (1986)।विज्ञापन के प्रति दृष्टिकोण की मध्यस्थता: विज्ञापन प्रभावशीलता का परीक्षण। Journal of Marketing Research, 23(2), 130-143। https://doi.org/10.1177/002224378602300203
10. Katz, E. (1986)।विज्ञापन मनोरंजन की अवधारणा। Journal of Marketing Research, 23(2), 130-143? https://doi.org/10.1177/002224378602300203

पं0 दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद का ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ० राकेश कुमार

पंडित दीनदयाल उपाध्याय भारतीय जनसंघ के प्रमुख नेता प्रखर विचारक और राष्ट्रवादी दार्शनिक थे।दीनदयाल उपाध्याय जी के द्वारा स्थापित एकात्म मानवाद की अवधारणा पर आधारित राजनीतिक दर्शन भारतीय जनसंघ (वर्तमान भारतीय जनता पार्टी) का दिया हुआ एक उपहार है। उनके अनुसार, एकात्म मानववाद प्रत्येक मनुष्य के शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का एक एकीकृत कार्यक्रम होता हैं उन्होंने कहा कि भारत एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में पश्चिमी अवधारणाओं जैसे व्यक्तिवाद, जनतंत्र समाजवाद, साम्यवाद और पूँजीवाद पर निर्भर नहीं हो सकता। उनका विचार था कि भारतीय विचारधारा पश्चिमी विचारधाराओं से प्रभावित थी और उस विचारधाराओं से इनको घुटन महसूस होती है। परिणामस्वरूप भारतीय मौलिक विचारधारा का विकास और विस्तार में बहुत बाधा है। एकात्म मानववाद, भारत के रूप में पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने तत्कालीन राजनीति और समाज को उस दिशा में मुड़ने की सलाह दी है जो सौ प्रतिशत भारतीय है जिससे भारतीय समाज को आगे ले जाया जा सकता है।

शब्द कुंजी: राजनीतिक दर्शन, व्यक्तिवाद, जनतंत्र, समाजवाद, साम्यवाद, पूँजीवाद, एकात्म मानववाद,

प्रस्तावना- पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी का जन्म 25 सितंबर सन 1916 को हुआ था।इन्होंने ने अपना सम्पूर्ण जीवन राष्ट्र के विकास में योगदान देने के लिए निरतंर कार्य किया। इन्होंने प्राचीन भारतीय सभ्यता को आगे बढ़ाने के लिएएकात्क मानववाद जैसे विचार को समाज में प्रसार करने का सबसे पहले प्रयास किया। एकात्म मानववाद मानव जीवन के सम्पूर्ण स्तर के सम्बन्ध का दर्शन है। यह एक विचारधारा हैं पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने देश और दुनिया के सामने इस विचारधारा को प्रस्तुत किया, जब हमारा देश आजाद हुआ तब इस बात पर विवाद चल रहा था, कि भारतीय पूँजीवाद को अपनाए या समाजवाद के रास्ते को, दोनों ही रास्तों को खोजने वाल विदेशी थे।[1]

पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी के मस्तिष्क में देश की परिस्थिति में यह विचार विकसित हुए थे। तब पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने कहा हमारी ऐसी कौन सी मजबूरी है कि हम विदेशी विचारधारा को ही चुनें और जिन विचारधाराओं की बहस में एक भी भारतीय ना हो और ना ही हम उन परिस्थितियों में विकसित हुए हैं। उन्होंने हस्तक्षेप करते हुए भारतीय प्रजा को झकझोरा तथा आवाहन किया कि हम अपने पुरातन जीवन के मूल्यों से युक्त रास्ते पर चलें जाए तथा पूँजीवाद और साम्यवाद के स्थान पर एकात्मवाद को सामने रखा। पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने कबीरदास के सार को सुना रहे, -सार-सार को गहि रहै, थोथा देई उड़ाय' की तरह पाश्चात्य दुर्गुणों को छोड़ सद्गुणों को आधार बनाया। हमारा आधार एकात्मकता है, कि हमारे यहाँ भी छुआछूत जातिवाद आदि अनेक दुर्गुण उत्पन्न हुए पर 'जाति पूछे नहिं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई' कहकर इस विभेद को पाटने का प्रयास किया है।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद- भारतीय संस्कृति एकात्मवादी है जो कि जीवन के विभिन्न अंगों के दृश्य भेद स्वीकारते हुए उनके स्तर में एकता की खोज की और उनमें समन्वय की स्थापना करती है। परस्पर विरोध और संघर्ष के स्थान परवह पूरकता, अनुकूलता और सहयोग के आधार पर चलती है। एकात्म मानव विचार भारतीय और बाह्य सभी चिंतन की धाराओं का सम्यक आकलन करके चलता है। उसकी शक्ति और दुर्बलताओं को परखता है और एक ऐसा मार्ग प्रशस्त करता है जो मानव को उसके अब तक के चिंतन अनुभव और उपलब्धि की मंजिल की ओर बढ़ा सके।

एकात्मवाद एक ऐसी धारणा है जो सर्पिलाकार मंडल आकृति, द्वारा स्पष्ट की जा सकती है। जिसके केंद्र में व्यक्ति, व्यक्ति से जुड़ा घेरा घर-परिवार, परिवार से जुड़ा घेरा समाज जाति, फिर राष्ट्र और विश्व और फिर अनंत ब्रह्मांड को अपने में समाए हुए हैं। एक से जुड़कर दूसरे का विकास किया जाता है। हमारी सम्पूर्ण व्यवस्था का केंद्र मानव का होना चाहिए। जो कि "यत् पिंडे तत् ब्रह्मांडे" के न्याय अनुसार समष्टि का जीवंत प्रतिनिधि एवं उसका उपकरण है। भौतिक उपकरण और मानव के सुख का साधन भी है साध्य नहीं। जिस व्यवस्था में पुरूषार्थ चतुष्ट्यशील सम्पूर्ण मानव के स्थान पर एकांगी मानव का कोई विचार

किया जाएगा, अधूरी है। हमारा आधार एकात्म मानव है जो अनेक एकादश समाष्टि का एक साथ प्रतिनिधित्व करने की क्षतमा रखता है। एकात्म मानववाद के आधार पर हमें जीवन के सभी व्यवस्थाओं का विकास करना होगा।[2]

एकात्म यानी जिसको बाँटा नहीं जा सकता है। अर्थात ना बाँटी जा सकने वाली इकाई को एकात्म कहते हैं। समाज आपस में इस प्रकार जुड़े हुए हैं कि उन्हें अलग-अलग नहीं किया जा सकता है। मानव व्यक्ति के रूप में समाज का अंग होता है, और व्यक्ति, परिवार, अपने ग्राम शहर या मोहल्ले के बिना नहीं रह सकता है। ग्राम शहर के आगे भी देश-दुनियाँ की ईकाइयां हैं। व्यक्ति उन सभी समुदाय का हिस्सा है, इनसे स्वतंत्र नहीं। एकात्म मानववाद का सुख व्यक्ति व समाज में बँटा हुआ नहीं वरन् एकात्म होता है।

तुलसीदास की भाँति "कीरति भनिति भूति भलि सोई, सुरसरि सम सब कहं हित होई'' अर्थात् सबकी सुख में ही अपना सुख मिलता है। मानव केवल एक व्यक्ति मात्र नहीं है शरीर, मन, आत्मा और बुद्धी का समुच्चय हैं यह केवल "मैं'' तक सीमितनहीं "हम'' से सम्बन्ध रखता है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय कहते हैं मानव केवल व्यक्तिगत समाज के रूप में ही एकात्म नहीं है, वह इस संसार यानी प्रकृति का भी अविभाज्य अंग है। अत: मानव यदि प्रकृति के साथ अनुचित व्यवहार करेगा तो दुखी हो जाएगा। भारतीय परम्परा प्रकृति को माता का दर्जा देती है, प्रकृति को प्रदुषित करना पाप है। इसमें सृष्टि केवल व्यक्ति और समाज से नहीं बनती बल्कि प्रकृति के भी सापेक्षिक सहयोग तथा संतुलन से बनती है। अत: मानव को प्रकृति के साथ समुचित व्यवहार करना सीखना चाहिए। व्यक्ति जीवन पर्यंत जितने कर्म करता है उतने संस्कार उस पर होते हैं या जो विचार आते हैं उन सबका उस पर एक संकलित परिणाम होता है। इस संकलित परिणाम से उसके व्यक्तित्व का निर्माण होता है, परन्तु आत्मा में कोई वस्तु नहीं जुड़ती है।

उसी प्रकार राष्ट्र की संस्कृति में ऐतिहासिक कारणों तथा वातावरण से उत्पन्न स्थिति के सामूहिक परिणामों से बहुत बातें जुड़ जाती हैं, और वह संस्कृति में सम्मिलित कर ली जाती है। उदाहरण के लिए महाभारत युद्ध में कौरवों की पराजय कर पांडवों की विजय हुई पर पांडवों की जीत की वजह से हमने उसे अपना धर्म माना। जबकि कहा जा सकता था कि सीधी-सीधी राज्य की लड़ाई थी। विभीषण ने जो किया उसे सब अच्छा कहते हैं, देशद्रोह, राजद्रोह या भातृ द्रोह नहीं युधिष्ठिर के लिए सम्मान दुर्योधन के लिए अनादर राजनीतिक कारणों से नहीं करते थे। उसे हम अपनी संस्कृति से जोड़ने चले गए। वह हमारे अनुसार चलने वाली बातों को संस्कार व उसके प्रतिकूल चलने वाली बातों को हमने विकृत कह दिया। जो हामरे अनुकूल नहीं हो सकती उन बातों को हमने छोड़ दिया उस इतिहास को हमने अपना नहीं माना। अत: हमारी चेतना या संस्कार ही वस्तु को मान्य अथवा अमान्य ठहराते हैं यही राष्ट्र की आत्मा है।[3]

एकात्म मानववाद पंडित दीनदयाल उपाध्याय के मुम्बई में 22 से 25 अप्रैल 1965 में चार भागों में दिए गए भाषण का सार है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय पूँजीवाद और समाजवाद दोनों विचारधाराओं को भारत के लिए अनुपयुक्त और अव्यावहारिक मानते थे। उनका स्पष्ट मानना था कि भारत को सुचारू से चलाने के लिए नीति निर्देशक सिद्धान्त भारतीय दर्शन के आधार पर ही हो सकता है। वे पश्चिमी जगत में जन्में सिद्धान्तों के विरूद्ध मानव और समाज को विभाजित करके देखने के पक्षधर नहीं थे। उनके अनुसार मानव अस्तित्व के चार अवयव होते हैं। शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा जिनके माध्यम से जीवन के चार मौलिक उद्देश्यों काम अर्थ धर्म और मोक्ष को प्राप्त किया जाता है। इनमें से किसी की भी अवहेलना नहीं की जा सकती लेकिन मनुष्य और समाज के लिए धर्म आधारभूत होता है और मोक्ष अंतिम लक्ष्य है। उनका मानना था कि पश्चिमी पूँजीवादी और समाजवादी सिचन्त मात्र शरीर और मन की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं लेकिन उनका लक्ष्य मात्र संसारिक इच्छाओं की पूर्ति और धनार्जन है। जबकि मानव और समाज के सम्पूर्ण विकास के लिए आवश्यक है कि भारतीय दर्शन के चार लक्ष्यों पुरूषार्थों के अनुरूप व्यक्ति और समाज की भौतिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो।[4]

उन्होंने कहा था कि मनुष्य का शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा ये चारों अंग ठीक रहेंगे, तभी मनुष्य को चरम सुख और वैभव की प्राप्ति हो सकती है। जब किसी मनुष्य के शरीर के किसी अंग में कांटा चुभता है तो मन को कष्ट होता है। बुद्धि हाथ को निर्देशित करती है कि तब हाथ चुभे हुए स्थान पर पल भर में पहुँच जाता है और कांटे को निकालने की चेष्टा करता है यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। सामान्यत: मनुष्य शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा इन चारों की चिंता करता है। मानव की इसी स्वाभाविक प्रवृत्ति को पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने एकात्म मानववाद की संज्ञा एकात्म मानववाद में में व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज और समाज से राष्ट्र और फिर मानवता और चराचर सृष्टि का विचार किया गया है। एकात्म मानववाद इन सब इकाइयों में अंतर्निहित परस्पर पूरक सम्बन्ध देखता है। भारतीय चिंतन जिस तरह से सृष्टि और समष्टि को एक समग्र रूप

में देखता है। वैसे ही पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने मानव समाज औरप्रकृति व उसे सम्बन्ध को समग्र रूप में देखा। पंडित दीनदयाल उपाध्याय की पुस्तक एकात्म मानववाद (1968) में एक उनके राजनीतिक चिंतन को मूल सिद्धान्तों का पता लगा सकता है। स्वतंत्रता के लगभग दो दशक वाद पंडित दीनदयाल उपाध्याय के सामने एक बहुत ही बुनियादी समस्या थी। उन्होंने पूछा, अब जब हम स्वतंत्र हैं, तो हमारी प्रगति की दिशा क्या होगी? इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर कोई गम्भीर विचार नहीं दिया गया था और शायद ही कोई कह सकता है कि एक निश्चत दिशा थी और सही फैसला किया। एकात्म मानववाद के रूप में पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने भारत की तत्कालीन राजनीति और समाज को उस दिशा में मुड़ने की सलाह दी है, जो सौ फीसदी भारतीय है।[5]

एकात्म मानववाद के इस वैचारिक दर्शन का प्रतिपादनपंडित दीनदयाल उपाध्याय ने मुंबई में 22 से 25 अप्रैल, 1965 में चार अध्यायों में दिए गए भाषण में किया। इस भाषण में उन्होंने एक मानव के सम्पूर्ण सृष्टि से सम्बन्ध पर व्यापक दृष्टिकोण रखने का काम किया था। वे मानव को विभाजित करके देखने के पक्षधर नहीं थे। वे मानव मात्र का हर उस दृष्टि से मूल्यांकन कने की बात करते हैं,जो उसके सम्पूर्ण जीवनकाल में छोटी अथवा बड़ी जरूरत के रूप में सम्बन्ध रखता है। दुनिया के इतिहास में सिर्फ मानव मात्र के लिए अगर किसी एक विचार दर्शन ने समग्रता में चिंतन प्रस्तुत किया है तो वो एकात्म मानववाद का दर्शन है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय समाजवाद और साम्यवाद को कागजी और अव्यावहारिक सिद्धान्त के रूप में देखते थे।[6]

उनका स्पष्ट मानना था कि भारतीय परिप्रेक्ष्य में ये विचार न तो भारतीयता के अनुरूप हैं और न ही व्यावहारिक ही हैं। भारत को चलाने के लिए भारतीय दर्शन ही कारगर वैचारिक उपकरण हो सकता है चाहे राजनीति का प्रश्न हो, चाहे अर्थव्यवस्था का प्रश्न हो अथवा समाज की विविध जरूरतों का प्रश्न हो, उन्होंने मानवमात्र से जुड़े लगभग प्रत्येक प्रश्न की समाधानयुक्त विवेचना अपने वैचारिक लेखों में की है। भारतीय अर्थनीति कैसी हो, इसका स्वरूप क्या हो, इन सारे विषयों को पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने भारतीय अर्थनीति विकास की दिशा में रखा है।[7]

एकात्म मानववाद पर पंडित दीनदयाल उपाध्याय का मत था कि एक राष्ट्र की संस्कृति स्वतंत्रता का आधार बनना चाहिए, अर्थात् राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए आन्दोलन बस एक के लिए कम हो जाएगा स्वार्थी और सत्ता चाहने वाले व्यक्तियों द्वारा हाथापाई करना, भारत में स्वतंत्रता तभी सार्थक हो सकती है।[8]

जब भारतीय संस्कृति की अभिव्यक्ति के लिए साधन एक बन जाए। यह जरूरी हो गया था कि भारतीय संस्कृति के सिद्धान्तानुसार पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने बताया कि इसके पहली विशेषता भारतीय संस्कृति थी कि यह पूरे जीवन को एकीकृत के रूप में देखता था। उनके शब्दों में हम मानते हैं कि विविधता है और जीवन में बहुता भी है, लेकिन हमारे पास हमेशा से ही उनके पीछे एकता को खोजने का प्रयास किया। यह प्रयास पूरी तरह से वैज्ञानिक है। वैज्ञानिक हमेशा आदेश की खोज करने की कोशिश करते हैं ब्रह्मांड में स्पष्ट विचार के लिए, सिद्धान्तों का पता लगाना ब्रह्मांड और फ्रेम पर व्यावहारिक नियम इन सिद्धान्तों के आधार पर पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने माना कि जीवन में विविधता महज थी आंतरिक एकता की अभिव्यक्ति पूरक थी। उनका मानना था कि विविधता में एकता और विभिन्न रूपों में एकता की अभिव्यक्ति भारतीय संस्कृति का केंन्द्रीय विचार बनी हुई थी।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने सामाजिक जीवन में संघर्ष को दृढ़ता से खारिज कर दिया। उन्होंने बताया कि "सघर्ष संस्कृति या प्रकृति का संकेत नहीं है। वह आपसी सहयोग को महत्वपूर्ण मानते थे भारतीय संस्कृति और सभ्यता की विशेषता जो आकर्षित हुई पोषण और विश्वास तथा आपसी सहयोग से प्रेरणा इस पृथ्वी पर निरन्तर जीवन ही नहीं बल्कि यह विकृति का एक लक्षण है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार, उनके बीच आपसी निर्वाह के इस तत्व को मान्यता जीवन के विभिन्न रूप और मानव जीवन बनाने का प्रयास पारस्परिक रूप से सभ्यता निरंतरता की प्रमुख विशेषता प्रतीत हुई थी। पंडित दीनदयाल उपाध्याय के शब्दों में "समाज में हम दोनों के उदाहरण पाते हैं स्नेह और साथ ही दुश्मन भाई लेकिन, हम मानते हैं स्नेह अच्छा है और भाईचारे को बढ़ाने के उद्देश्य से सम्बन्धों के विपरीत प्रवृत्ति है इसलिए यह अस्वीकृत हो गया। पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने सोचा कि मानव प्रकृत का प्रदर्शन करता हैदोनों की प्रवृत्ति, क्रोध, लालचतथा एक तरफ प्यार दूसरे पर बलिदान है। उनका मत था कि सत्यता मानव प्रजातियों का एक अंतर्निहित गुण था। यह बच्चा स्वभाव से असत्य नहीं बोलता है। अक्सर, माता-पिता अपने बच्चे को बोलने सिखाते हैं असत्य ऐसा लगता है कि, उनके अस्वीकरण के बावजूद, पंडित दीनदयाल उपाध्याय प्रकृतिवादी थें पश्चिम दार्शनिकों से कुछ हद तक प्रभावित है विशेष रूप से उपरोक्त कथन में हम पाते हैं एक महान

दार्शनिक के रूप में रूसों की अवधारणा का प्रभाव है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय का मानना था कि ये सभी उपरोक्त सिद्धान्त भारत में धर्म की मूल विशेषताएं थीं। ये जीवन के नियम थे। उन्होंने कहा मैं उन सभी सिद्धान्तों का समर्थन किया जो जीवन में सद्भाव शांति और प्रगति लाए इसमें मानव जको शामिल किया गया था। पंडित दीनदयाल उपाध्याय के शब्दों में एक एकीकृत जीवन ही नहीं है नींव और अंतर्निहित सिद्धान्त हमारी संस्कृति, बल्कि इसके उद्देश्य और आदर्श भी है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने जीवन को केवल एकीकृत नहीं माना था सामूहिक या सामाजिक जीवन के मामले में भी व्यक्तिगत रूप से जीवन के बारे में उन्होंने कहा हालांकि शारीरिक आराम शारीरिक प्रसन्नता और विलासिता को खुशी माना जाता है, मानसिक चिंताएं व्यक्ति को नष्ट कर सकती है।

मानव समाज की स्थापना एवं पं0 दीनदयाल उपाध्याय - मानव समाज की स्थापना के बाद से एक समृद्ध जीवन जीने और दूसरों (समाज) को समृद्ध समृद्धिबनाने की शैली पर चर्चा शुरू हुई। इन सम्बन्ध में कई दार्शनिकों, बुद्धिजीवियों, नेताओं और धार्मिक गुरूओं ने अपने विचारों को समय दिया और अवधारणा में मूल्य जोड़ा। पंडित दीनदयाल उपाध्याय, जो प्रमुख भारतीय दार्शनिक अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, इतिहासकार, पत्रकार और राजनीतिक वैज्ञानिक थे, एकात्म मानववाद की अवधारणा दी, जिसने एकात्म मानववाद का सिद्धान्त विकसित किया। उनके अनुसार "मानव जाति के शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा के चार पदानुक्रमित गुण थे जो चार सार्वभौमिक लक्ष्यों, काम या इच्छा के अनुरूप थे। संतुष्टि, अर्थ (धन), धर्म (नैतिक कर्त्तव्य) और मोक्ष (कुल मुक्ति या मोक्ष) जबकि किसी को भी नजर अंदाज नहीं किया जा सकता है, धर्म बुनियादी है, और मानव जाति और समाज का अंतिम उद्देश्य है। उन्होंने दावा किया कि पूँजीवादी और समाजवादी विचारधारा दोनों के साथ मुख्य समस्या यह है कि वे केवल शरीर और मन की जरूरतों पर विचार करते हैं, ओर इसलिए इच्छा और धन के भौतिकवादी उद्देश्यों पर आधारित थे। इस सिद्धान्त के पीछे मुख्य उद्देश्य व्यक्तिवाद के सिद्धान्त को खारिज करना और अविभाजित समाज के निर्माण के लिए परिवार और समाज के महत्व को बढ़ावा देना है। उन्होंने आगे चलकर सामाजिक व्यवस्थाओं को खारिज कर दिया जिसमें व्यक्तिवाद ने सर्वोच्च शासन किया।

राजनीति और स्वदेशी-राजनीति और स्वदेशी में नैतिकता और अर्थव्यवस्थाओं में छोटे पैमाने पर औद्योगिकरण, उनके सामान्य विषयगत विशिष्ट हिन्दू राष्ट्रवादी यें सभी गांधीवादी धारणाएं सद्भाव के मूल विषयों, सांस्कृतिक राष्ट्रीय मूल्यों की प्रधानता और अनुशासन के इर्द-गिर्द घूमती हैं। हम यह भी कह सकते हैं कि पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने गांधीवादी स्वदेश क्रांति को एक नई सोच दी थी, जिसमें कहा गया था कि स्वदेशी एक प्रतिबद्धता और समर्पण के साथ जीवन का एक तरीका है जो सामान्य रूप से और ग्रामीण जनता के लिए भारत के लोगों के लाभ के लिए प्रस्तावित और अभ्यास किया जाता है। विशेष रूप से जो छह लाख गाँवों में रहते हैं। स्वदेशी हमें अपने तत्काल परिवेश का उपयोग करने और सेवा करने की माँग करता हैं इसलिए, पड़ोसियों को प्रोत्साहित करना हर किसी की जिम्मेदारी है जो हमारी जरूरतों को पूरा कर सकता है। उनके अनुसार स्वदेशी की अवधारणा, राष्ट्रीय अस्तित्व के लिए एक आवश्यकता है और आज भी बहुत हद तक सही है। गाँधी द्वारा हमारी ग्रामीण अर्थव्यवस्था को जीवंत और जीवंत बनाने के लिए दिया गया यह दृष्टिकोण उनकी आँखों के सामने भी ठिकाने लगा दिया गया था।

निष्कर्ष -आज देश को आजाद हुये सत्तर साल से ज्यादा हो गये है। फिर भी हमारी व्यवस्था समाजवादी नीतियों के चक्र में इतनी उलझ गई है कि उससे बाहर निकालना यापीछे हटना बहुत मुश्किल हो गया हैं। पं0 दीनदयाल का मानना हैं कि समाजवादी नीति ने हमें इन सत्तर सालों में अपंग बना दिया है। दीनदयाल जी का कहना है कि हम सभी भारतीयों को भारत को विकसित राष्ट्र बनाने के लिए एक प्रण लेने की आवश्कता है। हमारा राष्ट्र तभी विकसित हो सकता है जब हम सभी लोग सबसे कमजोर और गरीब व्यक्ति का उत्थान के लिए प्रयास करें जिससे एक बेहतर राष्ट्र का निमार्ण हो सके। इसके अलावा भारतीय संस्कृति और राष्ट्रवाद को अपनी एक पहचान बनाने की जरूरत है जिससे हमारी संस्कृति बची भी रहें।इसके बाद उन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद का आधार भारतीय संस्कृति को मानते थें। उनका मानना था कि भारत की आत्मा उसकी संस्कृति में है न कि केवल भौगोलिक सीमा में। राष्ट्र को वे 'भारत माता' के रूप में देखते थें। दीनदयाल ने एकात्म मानववाद के विचार को आगे बढ़ाने के लिए उन्होंने एकात्म मानववाद की परिभाषा को परिभाषित किया। उनका यह मानना था कि मानव का विकास शारीरिक मानसिक बुद्धिगत और आध्यात्मिक रूप से समन्वित (एकात्म) होना चाहिए। मनुष्य को केवल आर्थिक प्राणी न मानकर शरीर मन बुद्धि और आत्मा का योग माना जाय। इस प्रकार से दीनदयाल जी ने अपने विचार को राष्ट्रनिमार्ण, स्वदेशी, शिक्षा, भारतीय संस्कृति, को आगे ले जाने के लिए हमेशा से प्रयास किया था जो आज भी उनके विचार पूर्ण रूप से प्रंसागिक है।

सन्दर्भ सूची:

1. शर्मा, डॉ0 महेश चन्द्र, दीनदयाल उपाध्याय, कृतित्व एवं विचार, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2018, पृ0 133
2. वही, पृ0 135
3. वही, पृ0 138
4. बघेल, अंजू, पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी के विचारों का दर्शन, स्वरांजलि प्रकाशन, दिल्ली, 2018, पृ0 96
5. वही, पृ0 98
6. वही, पृ0 107
7. गोविन्दाचार्य, के0एन0, आर्थिक स्वतंत्रता से जरूरी, पात्रवनजय, भारत प्रकाशन, दिल्ली, वर्ष 67, अंक 46, 10 अप्रैल 2016, पृ0 13
8. वही, पृ0 14
9. वही, पृ0 16
10. उपाध्याय, दीनदयाल, एकात्म मानववाद तत्व मीमांसा सिद्धान्त विवेचन, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2016, पृ0 63
11. उपाध्याय, दीनदयाल, एकात्म मानववाद, जागृति प्रकाशन, नोएडा, 1994, पृ0 24।
12. मिश्र, कमल किशोर, प्राचीन भारत की अर्थव्यवस्था, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली 2004, पृ0 03, पृ0 24
13. उपाध्याय, दीनदयाल: इंटीग्रल ह्यूमनिज्म ऐन एनालिसिस ऑफ सम बेसिक ऐलिमेन्ट प्रभात प्रकाशन वर्ष 2016 पृ0 स0 89

मराठा राजस्व प्रशासनिक प्रणाली का विश्लेषणात्मक अध्ययन

दीपेन्द्र कुमार

अनूप कुमार

सारांश- भारत में ऐतिहासिक राजस्व प्रणालियों ने कृषि आधारित अर्थव्यवस्था की संरचना एवं समाज पर व्यापक प्रभाव डाला है। मराठा प्रशासन में अपनायी गयी राजस्व प्रणालियां प्रशासनिक एवं सामाजिक रूप से अति महत्वपूर्ण थीं। यह शोध पत्र मराठा राजस्व नीतियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करता है। शोध पत्र में उपलब्ध ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर राजस्व प्रशासन की संरचना, कार्यप्रणाली, कर व्यवस्था एवं उनके प्रभावों का अध्ययन किया गया है।

महत्वपूर्ण शब्द- मराठा राजस्व प्रणाली, चौथ-सरदेशमुखी, ग्रामीण आर्थिक संरचना।

परिचय- प्राचीन काल से लेकर मुगल कालीन राजस्व प्रणाली शासन-प्रजा के सम्बंधों पर आधारित होती थी। आदिकाल से ही भारतीय उपमहाद्वीप में अर्थव्यवस्था कृषि आधारित रही है जिनका उद्देश्य राज्य की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के साथ-साथ व्यापारियों, किसानों एवं विभिन्न प्रकार के कारीगरों की आर्थिक स्थिति को भी मजबूती देना होता था। भारतीय उपमहाद्वीप में विभिन्न काल एवं क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न कर प्रणालियां आवश्यकतानुसार अपनायी गयी। मराठा काल में क्षेत्रीय प्रभावों एवं सैन्य अभियानों के खर्च के लिए चौथ-सरदेशमुखी जैसे नयी कर प्रणाली को अपनाया।

मराठा राजस्व प्रणाली- मराठा कालीन राजस्व प्रणाली तत्कालीन भारत में प्रचलित मुगल कर प्रणाली से अधिक विकेंद्रीकृत थी। मराठा राजस्व व्यवस्था में विभिन्न प्रकार के कर वसूले जाते थे जिनमें भूमि कर, सीमा शुल्क, स्थानीय कर एवं चौथ-सरदेशमुखी प्रमुख थे। भूमि कर को श्आटाश कहा जाता था एवं यह किसानों द्वारा नकद रूप में सीधे राज्य को दिया जाता था। ग्रामों के समृद्धि के स्तर अलग-अलग होने के कारण विभिन्न ग्राम पंचायतों के लिए भूमि कर की दरें अलग-अलग होती थी। यदि किसान नकद रूप में कर भुगतान करने में सक्षम नहीं हो पाते थे तो वह उपज के रूप में भुगतान कर सकते थे। सैन्य अभियानों के खर्च के उद्देश्य से लगाये चौथ की दर उपज के एक चौथाई भाग के बराबर होती थी। वहीं सरदेशमुखी, मराठा राजा को सर्वोच्च रूप में स्वीकार करने के लिए लगाया जाता था जिसकी दर उपज की दस प्रतिशत भाग के बराबर होती थी। चौथ-सरदेशमुखी, मराठा राजा के अप्रत्यक्ष रूप से नियंत्रण में रहने वाले क्षेत्रों से वसूला जाता था।

स्थानीय राजस्व प्रशासन- राजस्व निर्धारण के लिए मराठा राज्य 16 प्रांतों में विभाजित था। प्रांतों को तरफ एवं मौजों में विभाजित किया गया था। राजस्व प्रशासन के स्थानीय स्तर पर ग्राम पंचायतों में कर संग्रहण के लिए कुछ प्रमुख वंशानुगत अधिकारियों की नियुक्ति होती थी। जिनमें देशपांडे एवं देशमुख जिले स्तर के राजस्व अधिकारी होते थे। पाटिल, गांव में राजस्व अधिकारी होते थे। मीरासदार, वंशानुगत जमींदार होते थे। अन्य राजस्व अधिकारियों में कुलकर्णी होता था जो कि ग्राम पंचायत की भूमि का लेखा-जोखा रखता था।

मराठा राजस्व प्रणाली का विश्लेषणात्मक अध्ययनख्र मराठा राजस्व प्रशासनिक संरचना, राजस्व नीतियां एवं कार्यप्रणाली का विभिन्न इतिहासकारों द्वारा विश्लेषण किया है। जी.एस. सरदेसाई (1948) की पुस्तक "A History of the Marathas" में मराठा शासन की राजस्व प्रणालियों जैसे चौथ-सरदेशमुखी का अध्ययन किया गया है। उनके अनुसार, मराठा राजस्व कर व्यवस्था श्चौथ-सरदेशमुखीश का उपयोग सैन्य अभियानों एवं प्रशासनिक खर्चों के लिए किया गया था एवं इनकी वजह से गैर मराठा क्षेत्रों में असंतोष उत्पन्न हुआ। एम.जी. रानाडे(1900) की पुस्तक "Rise of the Maratha Power" ने मराठा शासन के आर्थिक एवं राजस्व नीतियों में किसानों की भूमिका को रेखांकित किया। एम.जी.रानाडे के अनुसार मराठा राजस्व प्रणाली में स्थानीय स्तर पर किसानों और ग्राम पंचायतों की भागीदारी ने मराठा राजस्व प्रशासन को अधिक सफल बनाया। अत: विभिन्न इतिहासकारों के विश्लेषणात्मक अध्ययन के आधार पर यह ज्ञात होता है कि मराठा राजस्व प्रशासनिक प्रणाली विकेंद्रीकरण, ग्राम पंचायतों की भागीदारी एवं सुव्यवस्थित प्रशासनिक संरचना पर आधारित थी।

निष्कर्ष- मराठा राजस्व प्रशासनिक प्रणाली भारत के प्रशासनिक और आर्थिक इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। यह प्रणाली तत्कालीन प्राथमिकताओं एवं आवश्यकता अनुसार थी। मराठा शासन ने विकेन्द्रीकरण और स्थानीय स्तर पर ग्राम पंचायतों के माध्यम से कर संग्रहण प्रणाली को अपनाया, लेकिन चौथ और सरदेशमुखी जैसे करों ने गैर-मराठा क्षेत्रों में विद्रोह की स्थिति उत्पन्न की जिसका राजनीतिक नुकसान मराठा राज्य को विपरीत परिस्थितियों में उठाना पड़ा था। मराठा राजस्व प्रणाली का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि धन समृद्धि के साथ-साथ प्रशासनिक सुदृढ़ता एवं कल्याणकारी आर्थिक नीतियां भी आवश्यक होती है। इस निष्कर्ष के आधार पर वर्तमान शासन-प्रशासन को भी नीति निर्माण के समय समावेशी विकास, सामाजिक-आर्थिक विकास, सामाजिक न्याय, किसान कल्याण आदि प्रमुख बिंदुओं को ध्यान में रखना चाहिए।

संदर्भ (REFERENCES)

1. कुलकर्णी, ए.आर., (1993). शिवाजी के युग में महाराष्ट्र। देशमुख पब्लिकेशन्स।
2. सरदेसाई, जी.एस., (1948). ए हिस्ट्री ऑफ द मराठाज, फीनिक्स पब्लिकेशन्स।
3. रानाडे, महादेव गोविंद, (1900). मराठा साम्राज्य का उदय, मैकमिलन।
4. जोशी, वी.डी., (1970). ग्रामीण क्षेत्रों में मराठा शासन की आर्थिक उपलब्धियां, वर्ल्ड प्रेस।

भारत के नियमित बाजारों में कृषि विपणन की संरचना

डॉ० प्रमोद कुमार यादव

एसोसिएट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, पी.के. विश्वविद्यालय, शिवपुरी, मध्य प्रदेश

शोध सार

विपणन सही अर्थ में आधुनिक युग की देन एवं आवश्यकता है। मानव सभ्यता के प्रारम्भ में विपणन का अस्तित्व नाम मात्र का था। उस समय मनुष्य की आवश्यकताएँ सीमित थीं। सभ्यता के विकास के साथ तथा बढ़ती हुई आवश्यकताओं के फलस्वरूप अदल-बदल के स्थान पर वस्तु विनिमय का प्रयोग किया जाने लगा। मुद्रा के आविष्कार तथा विशिष्टीकरण के फलस्वरूप विपणन जीवन का अभिन्न अंग बन गया है।

सीमित अर्थ में विपणन किसी वस्तु का क्रय-विक्रय होता है किन्तु वास्तव में विपणन कार्य बहुत ही विस्तृत है। विपणन की क्रिया किसी वस्तु के उत्पादन से ही आरम्भ हो जाती है। विस्तृत अर्थ में विपणन प्रक्रिया में किसी वस्तु को उत्पादक में उपभोक्ता तक पहुंचाने में सहायक सभी प्रकार के कार्यों को शामिल किया गया है। विपणन इस प्रकार एक प्रक्रिया है जिसमें निम्न कार्य सम्मिलित हैं एकीकरण, परिष्करण, श्रेणीकरण, स्तरीकरण, संग्रहण, माप व तौल, क्रय-विक्रय, यातायात एवं गरिवहन, मूल्य समाचार, जोखिम उठाना, वितरण, वित्त प्रबनध, श्रीमा, बाजार सर्वेक्षण।

प्रस्तावना

औद्योगिक वस्तुओं के विपणन से कृषि विपणन का कार्य अधिक जटिल एवं विस्तृत है। इसका प्रमुख कारण कृषि उत्पादनों एवं औद्योगिक उत्पादनों के उत्पादन करने की परिस्थितियों एवं विधियों में भिन्नता है। कृषि उत्पादन औद्योगिक उत्पादन की तरह किसी एक स्थान पर केन्द्रित नहीं होता है, वरन इसका उत्पादन पूरे देश में किया जाता है। औद्योगिक उत्पादन पर मनुष्य का अधिकार होता है वह माँग के अनुसार उत्पादन घटा-बढ़ा सकता है जबकि कृषि उत्पादन के लिए विशेष मौसम एवं समयावधि तथा प्राकृतिक प्रभाव अधिक होता है।

भारतीय अर्थव्यवस्था में कृषि की स्थिति व महत्व, विपणन का अर्थ एवं परिभाषा, विपणन क्रियाओं का वर्गीकरण, कृषि विपणन का महन्य, कृषि विपणन में आने वाली कठिनाइयाँ आदि का वर्णन किया गया है. साथ ही अध्ययन का उद्देश्य, शोध प्रविधि तथा साहित्य अवलोकन का विवरण दिया गया है। भारत जैसे कृषि प्रधान विकासशील देश में कृषि विपणन का महत्त्वपूर्ण स्थान है, यहाँ जनसंख्या का एक बड़ा भाग कृषि कार्य में संलग्न है, उद्योगों के लिए कच्चा माल कृषि से ही प्राप्त होता है, मनुष्य की आधारभूत खाद्य पदार्थों की आवश्यकता की पूर्ति कृषि से होती है। राष्ट्रीय आय में कृषि का प्रतिशत 28. 8 है। कृषि विपणन उत्पादन के समान ही महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। अधिक मात्रा में उत्पादन करने से ही किसी देश का विकास नहीं हो सकता है। उत्पादकता वृद्धि का प्रतिफल उचित विपणन के द्वारा ही कृषकों को प्राप्त हो सकता है। साथ ही उचित विपणन कृषि विनियोग और फलस्वरूप उत्पादकता में वृद्धि को प्रोत्साहित कर सकती है।

हमारे देश में कृषि वस्तुओं को विपणन में अनेक कठिनाइयाँ हैं। उपज को उत्पादक से उपभोक्ता तक पहुँचाने की प्रक्रिया में अनेक प्रकार के मध्यस्थों की उपस्थिति रहती है। ये मध्यस्थ अपनी सेवा के बदले उत्पादक एवं उपभोक्ता दोनों से कुछ राशि लेते हैं। भारतीय कृषकों में संगठन का अभाव कृषकों के लिए अत्यन्त हानिकारक सिद्ध होता है, जिसका अधिक लाभ व्यापारी वर्ग उठाते हैं। प्राचीन विधि से आधुनिक युग में कृषि का भण्डारण एवं शीतगृहों की कमी के कारण भी अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। अव्यवस्थित एवं खराब यातायात व्यवस्था तथा विपणन कार्य में प्रयोग लाये जाने वाले बाँटों एवं मापों में असमानता भी विपणन की गम्भीर समस्या है। कृषि उपज में श्रेणीकरण व स्तरीकरण का अभाव एवं मंडियों में प्रयोग की जाने वाली अधिक विक्रय विधि एवं अवैध कटौती भी कृषि विपणन में कृषक को हानि पहुँचाती है। कृषकों की निर्धनता एवं ऋणग्रस्तता तथा प्रशिक्षित विपणन कर्मचारियों का अभाव तथा कृषकों की अशिक्षा विपणन क्रिया में अनेक समस्याओं

को जन्म देती है।

कृषि विपणन की संरचना का उल्लेख है, जिसमें सम्मिलित विभिन्न तथ्यों, इकाइयों, कड़ियों, स्थितियों इत्याति का वर्णन है, जैसे- विपणन के प्रकार, विपणन कार्यक्रमों, विपणन का क्षेत्र, मंडी के प्रकार, विपणन माध्यम, कृषि विपणन के अन्तर्गत मूल्य, विपणन में नियमित मण्डियों का तथा नियमित बाजार की कार्यप्रणाली इत्यादि का उल्लेख है।

कृषि विपणन में वे समस्त क्रियायें सम्मिलित होती है जिनके द्वारा कृषि उपज को खेतों से कृषकों द्वारा मध्यस्थों व अन्तिम उपभोक्ताओं को या मध्यस्थों द्वारा अन्तिम उपभोक्ताओं को विक्रय हेतु प्रस्तुत किया जाता है। प्रत्यक्ष विपणन में सारे विपणन कार्य उत्पादक या उपभोक्ता तक माल कई हाथों से गुजरने लगा, माल को सर्वप्रथम मंडियों में खरीदना, कच्चे आढ़तिये, गाँव के व्यापारियों आदि के द्वारा किया जाने लगा, साथ ही संग्रह करने, यातायात की सुविधाएँ जुटाने के लिए कई स्वतन्त्र संस्थाएँ उत्पन्न हुई है। इससे माल कई स्वतन्त्र इकाइयों के हाथ से होकर अन्तिम उपभोक्ता तक पहुँचता है।

मंडियाँ दो प्रकार की होती हैं- नियमित मंडी एवं अनियमित मंडी। नियमित मंडियों की स्थापना राज्य सरकार के द्वारा अधिनियम बनाकर जाती है। इसमें उपज विक्रय के निश्चित नियम होते हैं। कृशक से किसी भी प्रकार का व्यय नहीं लिया जाता, सारे व्यय क्रेता से ही वसूल किये जाते हैं। अनियमित मंडियों में बिक्री के निश्चित नियम नहीं होते हैं इन मंडियों में नियन्त्रण न रहने के कारण कृषकों का अनेक प्रकार से शोषण होता है। बाजार विनियमन ने कृषि उपज के विपणन सम्बन्धी कुप्रथाओं को दूर करने में सहायता की है।

सरकार द्वारा बनाये गये आयोग, अधिनियम, निगम एवं विपणन और निरीक्षण निदेशालय की स्थापना नियमित बाजारों को ओर उपयोगी बनाने के लिए की गयी, जिसका उल्लेख किया गया है।

सरकार ने कृषि उपज के विपणन से सम्बन्धित व्यवस्था का सर्वेक्षण करने के लिए शाही कृषि आयोग की स्थापना की। शाही कृषि आयोग ने 1928 में प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट में विपणन व्यवस्था में व्याप्त दोषों की व्याख्या की तथा इनको समाप्त करने के लिए नियमित बाजारों की स्थापना का सुझाव दिया और उनके लाभों से अवगत कराया।

सरकार ने कृषि उपज के मूल्यों के उन्नावचन को रोकने के लिए कृषि मूल्य आयोग की स्थापना की (इसका नया नाम कृषि लागत एवं मूल्य आयोग है)। इस आयोग द्वारा न्यूनतम समर्थन मूल्य इस प्रकार निर्धारित किये जाते हैं, जिससे कृषि उत्पादन की लागत निकलने के साथ-साथ कृषकों को उचित लाभांश भी मिले।

सरकार ने इसके साथ ही कृषि उत्पाद श्रेणीकरण एवं विपणन अधिनियम, भार और माप मानक अधिनियम, कृषि उपज विकास एवं गोदाम निर्माण अधिनियम तथा सड़क विकास अधिनियम पारित किये। साथ ही कंन्द्रीय भण्डार निगम, भारतीय खाद्य निगम की स्थापना की। विपणन एवं निरीक्षण निदेशालय की स्थापना केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों को कृषि विपणन से सम्बन्धित नीतियों और कार्यक्रमों तथा उनके अन्तर्गत विभिन्न योजनाओं के क्रियान्वयन के बारे में सलाह देने के लिए की गयी है।

स्वतन्त्रता से पूर्व एवं विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान नियमित बाजारों की स्थिति एवं प्रगति, थोक बाजारों एवं नियमित बाजारों की तुलनात्मक स्थिति का वर्णन किया गया है। नियमित बाजारों की स्थापना का कार्य स्वतन्त्रता से पहले उन्नीसवीं शताब्दी में आरम्भ हो गया था। स्वतन्त्रता के बाद कृषि विपणन नियमन अधिनियम राज्यों एवं केन्द्रशासित प्रदेश में पारित किये गये। नियमित बाजारों की संख्या में वृद्धि हो रही है। इससे इसका महत्त्व एवं उपयोगिता स्पष्ट होती है। स्वतन्त्रता के बाद कृषि विपणन नियमन अधिनियम राज्यों एवं केन्द्रशासित प्रदेश में पारित किये गये। नियमित बाजारों की संख्या में वृद्धि हो रही है इससे इसका महत्त्व एवं उपयोगिता स्पष्ट होती है। स्वतन्त्रता के बाद विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के दौरान नियमित बाजारों की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है। प्रथम योजना के प्रारम्भ में 285 नियमित बाजार थे। नवीं योजना के प्रारम्भ में यह संख्या 7062 हो गयी है।

नियमित बाजारों में कौन-कौन सी वस्तुएँ विक्रय के लिए आती है यह एक महत्त्वपूर्ण बात है। कुछ राज्यों में किसी वस्तु विशेष के लिए ही नियमित बाजारों की स्थापना की गयी है। उदाहरण के लिए त्रिपुरा में धान और जूट तथा केरल में तिलहन एवं नारियल व सुपारी के लिए ही नियमित बाजार हैं। वहाँ अन्य वस्तुओं के लिए नियमित बाजार नहीं है। इसलिए यह आवश्यक है कि सभी राज्यों एवं केन्द्रशासित प्रदेशों में सभी प्रकार के कृषि उत्पादों के लिए नियमित बाजारों की स्थापना की जाये।

नियमित बाजार के विभिन्न पहलुओं का राज्यवार अध्ययन किया है। इसके अन्तर्गत नियमित बाजार सम्बन्धी पारित अधिनियमों का उल्लेख नियमित बाजारों की संख्या, नियमित बाजार में विपणन के लिए आने वाली वस्तुओं, बाजार समिति के सदस्यों की संख्या, इत्यादि का विश्लेषण किया गया है। स्वतन्त्रता से पूर्व बम्बई, मध्य प्रदेश, मद्रास, पंजाब में ही नियमित बाजारों का विधान बनाया गया था। यद्यपि मैसूर प्रान्त में भी बाजारों को नियमित करने का विधान 1939 में पारित किया गया था किन्तु बाजारों के नियमन का कार्य अधिनियम के तहत 1948 से आरम्भ हुआ। इसी प्रकार से बिहार में भी स्वतन्त्रता से पूर्व विधान बनाकर विधानसभा के समक्ष रखा गया, किन्तु इस अधिनियम को प्रान्तीय सरकार ने पारित नहीं किया।

मेघालय और नागालैण्ड में कृषि उपज विपणन अधिनियम लागू हो चुके हैं लेकिन वहाँ अभी तक एक भी नियमित बाजार नहीं है। जम्मू-कश्मीर, सिक्किम, अण्डमान निकोबार, अरुणाचल प्रदेश, दादर और नगर हवेली, लक्षद्वीप और मिजोरम, मणिपुर में अभी तक कृषि उपज विपणन से सम्बन्धित अधिनियम लागू नहीं हुए हैं।

उत्तर प्रदेश में नियमित बाजारों की स्थिति का विश्लेषण किया गया है, जिसमें नियमित बाजारों के संचालन से सम्बन्धित व्यवस्था, नियमित बाजारों का वर्गीकरण, कृषि उत्पादों के बाजार में आवक, जिलानुसार नियमित बाजारों की स्थिति कुल उत्पादन में से बाजार में कुल आवक का हिस्सा, मंडी समिति की आय, मंडी समिति की सफलता, समस्याओं इत्यादि का विश्लेषण किया गया है।

महासमितियों के द्वारा कृषकों के हितों के लिए विभिन्न कार्य किये जाते है ताकि कृशकों को अपनी उपज का उचित मूल्य प्राप्त हो सकें। नियमित मंडियों में विपणन प्रणाली तथा व्यवहार वैज्ञानिक एवं सुसंगठित होते हैं तथा इनमें एकरूपता पायी जाती है। इन मंडियों में जितने भी मध्यस्थ कार्य करते हैं उनको मंडी समिति से अनुज्ञा-पत्र लेना पड़ता है। यदि मध्यस्थ किसी भी प्रकार की अनियमितता करते हैं तो उनका अनुज्ञा-पत्र निरस्त कर दिया जाता है।

भारतीय कृषि विपणन की संरचना का अवलोकन करने से यह स्पष्ट होता है कि वस्तुओं को उत्पादक से उपभोक्ता तक पहुँचाने में विभिन्न विपणन मध्यस्थों के बीच से गुजरना पड़ता है। विभिन्न विपणन मध्यस्थों की अधिकता के कारण वस्तुओं की विपणन लागत (मूल्य) में वृद्धि हो जाती है। फलतः उपभोक्ता वस्तु का जो मूल्य देता है उसका छोटा भाग ही उत्पादक/कृशक को प्राप्त होता है। इससे स्पष्ट है कि वस्तु के विपणन में पाये जाने वाले मध्यस्थों की संख्या एवं वस्तु की विपणन लागत (मूल्य) में धनात्मक सम्बन्ध पाया जाता है। इसके अतिरिक्त कृषकों को मूल्य का कितना भाग प्राप्त होगा वह कुछ अन्य बातों पर भी निर्भर करता है, जैसे वस्तु की प्रकृति क्या है? विक्रय की शर्तें क्या हैं? क्रय-विक्रय का उद्देश्य क्या है? तथा विक्रय का स्थान कितनी दूर है?

भारत सरकार के द्वारा बाजारों की संख्या में वृद्धि के लिए, कृषकों को अपनी उपज का उचित मूल्य दिलाने के लिए, वस्तुओं के श्रेणीकरण, प्रमाणीकरण की व्यवस्था करने, न्यूनतम समर्थन मूल्य निर्धारित करने, भार व माँग का मानक निर्धारित करने, विपणन में सहायक सभी क्रियाओं जैसे- सड़कों के निर्माण को बढ़ावा देना, गोदामों की संख्या व क्षमता में वृद्धि कृषि वित्त को प्रोत्साहन इत्यादि के सम्बन्ध में समय-समय पर अधिनियम पारित किये गये, निगमों की स्थापना की गयी, निदेशालय एवं संस्थाएँ बनायी गयी हैं, जिससे कृषि विपणन में अत्यधिक सुधार हुआ है जो कि उल्लेखनीय है।

विभिन्न राज्यों में बाजार शुल्क, वार्षिक आय में राज्य कृषि उत्पादन मंडी बोर्ड का हिस्सा तथा कृषि विपणन विभाग अलग से किन-किन राज्यों में स्थापित है या किन राज्यों में नहीं है साथ ही किस राज्य में कृषि बाजार समिति की स्थिति कानूनी है या सलाहकारी की इस स्थिति को स्पष्ट किया गया है। हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश में अन्य राज्यों की तुलना में बाजार शुल्क सबसे ज्यादा 2 प्रतिशत है। वार्षिक आय में राज्य कृषि उत्पादन मंडी का सबसे ज्यादा हिस्सा उत्तर प्रदेश में प्राप्त होता है। यह 10 से 50 प्रतिशत तक है। असम, बिहार, हरियाणा, उड़ीसा, पंजाब, हिमाचल प्रदेश में अलग में कृषि विपणन बोर्ड स्थापित नहीं है। आन्ध्र प्रदेश, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान, तमिलनाडु, उळार प्रदेश और पश्चिम बंगाल में अलग से कृषि विपणन विभाग स्थापित है। कृषि बाजार समिति की स्थिति दो राज्यों आन्ध्र प्रदेश एवं तमिलनाडु में सलाहकारी की है जबकि अन्य राज्यों में स्थिति कानूनी है।

निष्कर्ष

किसी भी अर्थव्यवस्था में कृषि उत्पादों की मात्रा में वृद्धि होने के साथ ही उनके विपणन की समस्या भी बढ़ती जाती है तथा यह आवश्यक हो जाता है कि बढ़ते उत्पादन के साथ बाजारों की संख्या में भी वृद्धि हो। इस सम्बन्ध में कपास व जूट

के उत्पादन में प्रतिशत वृद्धि की तुलना करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि नियमित बाजारों की संख्या में प्रतिशत वृद्धि धीमी परन्तु निरन्तर रूप से हुई है जबकि कपास व जूट के उत्पादन में प्रतिशत वृद्धि में अत्यधिक उतार-चढ़ाव आया है।

किसी राज्य में बाजारों की संख्या अधिक हो तो नियमित बाजारों की संख्या भी अधिक होगी तथा कुल बाजारों में नियमित बाजार का प्रतिशत भी अधिक होगा। उदाहरण के लिए बाजारों की संख्या की दृष्टि से उत्तर प्रदेश की श्रेणी पाँचवीं है और कुल बाजारों में नियमित बाजार का प्रतिशत रैंकिंग के हिसाब से पन्द्रहवाँ है। इसी प्रकार की प्रवृत्ति लगभग सभी राज्यों के साथ पायी जा रही हैं केवल बिहार व महाराष्ट्र दो ऐसे राज्य हैं जिनका स्थान संख्या की दृष्टि से महाराष्ट्र का प्रथम तथा बिहार का दूसरा स्थान है परन्तु कुल बाजारों में नियमित बाजार के प्रतिशत के रूप में प्रथम और द्वितीय नहीं है वह क्रमशः बारहवाँ एवं सोलहवाँ है।

सन्दर्भ सूची

1. डी.पी. गर्ग भारत एवं विदेशों में सहकारिता, सुशील प्रकाशन, मेरठ, 1974
2. अनुलेखा बसु भारत में नियोजन के सन्दर्भ में समाजवादी अर्थव्यवस्था, मित्तल पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1989
3. डॉ. बी. एस. माथुर सहकारिता, साहित्य भवन, आगरा, 1980
4. शर्मा एवं जैन, बाजार व्यवस्था, साहित्य भवन, आगग, 1986
5. करुणा राय भारतीय कृषि विपणन नियमित बाजारों के सन्दर्भ में, मित्तल पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1992
6. डॉ. हरिश्चन्द्र मालवीय सरकार, समाज एवं विपणन, किताब महल, इलाहावाद, 1990
7. डॉ. देवदन शुक्ला एवं रमेश चन्द्र गुप्ता कृषि औद्योगिक विपणन व्यवस्था, आगरा बुक स्टोर, आगरा
8. केशव पाण्डेय, स्वातंत्र्योत्तर भारत में ग्राम्य विकास एवं गाँधी दर्शन, मित्तल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1992
9. डॉ. चतुर्भुज मामारिया भारत की आर्थिक समस्याएँ साहित्य भवन पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लि., आगरा, 1998
10. डॉ. बद्री विशाल त्रिपाठी भारतीय अर्थव्यवस्था, नियोजन एवं विकास, किताब महल, इलाहाबाद, 1997

डिजिटल भारत में महिलाओं की भूमिका: एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

डॉ० रजनीता कुमारी

स्वतंत्र शोधार्थी, राजनीति विज्ञान, बोधगया, बिहार

शोध सार

डिजिटल भारत कार्यक्रम केवल एक तकनीकी पहल नहीं है, बल्कि यह इक्कीसवीं सदी के भारत में सामाजिक-आर्थिक रूपांतरण का एक महाकाव्य है। इस रूपांतरण के केंद्र में भारतीय महिलाएं हैं, जो पारंपरिक सामाजिक बेड़ियों को तोड़कर सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से अपनी नई पहचान गढ़ रही हैं। डिजिटल इंडिया के विजन, 'पावर टू एम्पॉवर', का सबसे गहरा प्रभाव महिलाओं पर पड़ा है, क्योंकि इसने उन्हें सूचना, संसाधन और अवसरों तक वह पहुंच प्रदान की है जो पहले केवल विशेषाधिकार प्राप्त समूहों तक सीमित थी। यह शोध आलेख डिजिटल परिदृश्य में महिलाओं की बदलती भूमिका का एक समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करती है, जिसमें सांख्यिकीय वास्तविकताओं, आर्थिक प्रवृत्तियों, उद्यमिता के नए आयामों और उभरती चुनौतियों का गहन अध्ययन शामिल है।

मूल शब्द- डिजिटल, सामाजिक, आर्थिक, समानता, क्रांति, परिवार, स्वास्थ्य।

प्रस्तावना

भारत में डिजिटल क्रांति की सफलता का सबसे बुनियादी मापदंड इंटरनेट की पहुंच और उसके उपयोग में लैंगिक समानता है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS-5) के आंकड़े इस दिशा में हुई प्रगति और शेष चुनौतियों का एक विस्तृत खाका प्रस्तुत करते हैं। आंकड़ों के विश्लेषण से पता चलता है कि यद्यपि भारत एक वैश्विक डेटा महाशक्ति के रूप में उभरा है, लेकिन घरेलू स्तर पर डिजिटल विभाजन (Digital Divide) अभी भी मौजूद है।

भारत की लगभग 33.3 प्रतिशत महिलाओं ने कभी न कभी इंटरनेट का उपयोग किया है, जबकि पुरुषों के लिए यह आंकड़ा 57.1 प्रतिशत है। यह अंतराल न केवल सूचना तक पहुंच को प्रभावित करता है, बल्कि यह महिलाओं की आर्थिक स्वायत्तता और नागरिक भागीदारी को भी सीमित करता है। शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के बीच का डिजिटल विभाजन इस स्थिति को और अधिक जटिल बनाता है। जहां शहरी क्षेत्रों में 51.8 प्रतिशत महिलाएं इंटरनेट का उपयोग करती हैं, वहीं ग्रामीण क्षेत्रों में यह संख्या गिरकर मात्र 24.6 प्रतिशत रह जाती है।

राज्यवार इंटरनेट उपयोग और क्षेत्रीय विषमताएं

इंटरनेट उपयोग के मामले में भारतीय राज्यों के बीच भारी असमानता देखी गई है। सिक्किम और गोवा जैसे राज्यों ने डिजिटल समावेशन में उत्कृष्ट प्रदर्शन किया है, जबकि हिंदी भाषी राज्यों और विशेष रूप से बिहार जैसे राज्यों में स्थिति अभी भी चिंताजनक है।

दक्षिण और पूर्वोत्तर भारत के राज्यों ने महिलाओं को डिजिटल रूप से सक्षम बनाने में अधिक सफलता प्राप्त की है। तेलंगाना में सबसे बड़ा लिंग अंतराल (30.9 अंक) देखा गया है, जो यह संकेत देता है कि उच्च तकनीकी विकास के बावजूद सामाजिक पहुंच अभी भी असमान हो सकती है। इसके विपरीत, सिक्किम ने लगभग पूर्ण डिजिटल लैंगिक समानता हासिल कर ली है।

मोबाइल फोन स्वामित्व और स्वायत्तता के नए आयाम

मोबाइल फोन केवल एक उपकरण नहीं रह गया है, बल्कि यह महिलाओं के लिए 'स्वायत्तता का एक महत्वपूर्ण मार्कर' (Marker of Autonomy) बन गया है। NFHS.5 के अनुसार, भारत में लगभग 54 प्रतिशत महिलाओं के पास अपना मोबाइल फोन है, जिसका वे स्वयं उपयोग करती हैं। यह 2015-16 की तुलना में 8 प्रतिशत अंकों की वृद्धि दर्शाता है।

मोबाइल फोन का स्वामित्व महिलाओं को केवल संवाद करने की सुविधा नहीं देता, बल्कि यह उन्हें स्वास्थ्य, शिक्षा और वित्तीय सेवाओं पर स्वतंत्र निर्णय लेने की शक्ति भी प्रदान करता है। अध्ययनों से पता चलता है कि जिन महिलाओं के पास अपना मोबाइल फोन है, वे व्यक्तिगत स्वच्छता, गर्भनिरोधक विधियों और लिंग भेदभाव के प्रति अधिक जागरूक हैं। हालांकि, ग्रामीण भारत में केवल 46.6 प्रतिशत महिलाओं के पास ही अपना फोन है, जबकि शहरी क्षेत्रों में यह आंकड़ा 69.4 प्रतिशत है। यह विसंगति ग्रामीण महिलाओं को ई-कॉमर्स और डिजिटल बैंकिंग के लाभों से दूर रखती है।

सूचना प्रौद्योगिकी क्षेत्र में महिलाओं का कार्यबल और नेतृत्व

डिजिटल इंडिया का एक सबसे उज्ज्वल पक्ष भारत के आईटी और टेक क्षेत्र में महिलाओं की बढ़ती भागीदारी है। टीमलीज डिजिटल की 2024-25 की रिपोर्ट 'जेंडर पैरिटी-शेपिंग वर्कफोर्स इक्विटी' के अनुसार, तकनीकी अनुबंध कार्यबल में महिला भागीदारी 2020 में 9.51 प्रतिशत से बढ़कर 2024 में 27.98 प्रतिशत हो गई है।

वैश्विक क्षमता केंद्र (GCCs) और आईटी सेवाओं में प्रतिनिधित्व

भारत में वैश्विक क्षमता केंद्र (GCCs) लैंगिक विविधता और समावेशिता (DEI) के मामले में रोल मॉडल के रूप में उभरे हैं। इन केंद्रों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व 2020 में 31.4 प्रतिशत था, जो 2024 में बढ़कर 38.3 प्रतिशत हो गया है। यह वृद्धि मुख्य रूप से वैश्विक कार्यबल रणनीतियों और रिमोट वर्क के अवसरों के कारण संभव हुई है।

यद्यपि प्रवेश स्तर (Entry-level) पर महिलाओं की संख्या बढ़ रही है, लेकिन वरिष्ठ नेतृत्व की स्थिति में प्रगति अभी भी धीमी है। ळब्ब् में वरिष्ठ नेतृत्व में महिलाओं की हिस्सेदारी केवल 13.60 प्रतिशत है। आईटी सेवाओं में स्थिति और भी चुनौतीपूर्ण है, जहां वरिष्ठ नेतृत्व में महिलाओं का प्रतिनिधित्व 2023 में 7.39 प्रतिशत से गिरकर 2024 में 6.91 प्रतिशत रह गया है। यह गिरावट करियर के मध्य में आने वाली बाधाओं और पारिवारिक जिम्मेदारियों के बोझ को दर्शाती है।

वेतन अंतराल और पदोन्नति की चुनौतियां

तकनीकी क्षेत्र में वेतन विसंगति (Gender Pay Gap) एक बड़ी संरचनात्मक समस्या बनी हुई है। GCCs में कुल लिंग वेतन अंतराल 16.10 प्रतिशत है, जो वरिष्ठ स्तरों पर बढ़कर 16.4 प्रतिशत हो जाता है। उच्च मांग वाली विशिष्ट तकनीकी भूमिकाओं में यह अंतर आश्चर्यजनक रूप से 22.2 प्रतिशत तक पहुंच जाता है। इसके विपरीत, आईटी सेवाओं के गैर-तकनीकी पदों पर वेतन अंतराल 18.3 प्रतिशत है।

यह डेटा इंगित करता है कि महिलाओं को न केवल कार्यबल में शामिल करने की आवश्यकता है, बल्कि उन्हें उच्च-वेतन वाली विशेष भूमिकाओं के लिए कौशल प्रदान करना और पदोन्नति में अचेतन पूर्वाग्रहों (Unconscious Bias) को दूर करना भी आवश्यक है।

डिजिटल उद्यमिता: सोशल कॉमर्स और सूक्ष्म-उद्यमों का उदय

डिजिटल इंडिया ने महिलाओं के लिए उद्यमिता के पारंपरिक मॉडल को बदल दिया है। अब एक महिला को व्यवसाय शुरू करने के लिए महंगी दुकान या बड़े कार्यालय की आवश्यकता नहीं है; उसका स्मार्टफोन ही उसका शोरूम बन गया है।

सोशल कॉमर्स प्लेटफॉर्म: मीशो और ग्लोरोड का प्रभाव

मीशो (Meesho) जैसे सोशल कॉमर्स प्लेटफॉर्म ने भारत के टियर 2 और टियर 3 शहरों की महिलाओं के लिए उद्यमिता का लोकतंत्रीकरण किया है। मीशो के लगभग 70 प्रतिशत पुनर्विक्रेता (Resellers) महिलाएं हैं। यह प्लेटफॉर्म महिलाओं को 'शून्य निवेश' (Zero Investment) के साथ अपना ऑनलाइन व्यवसाय शुरू करने की अनुमति देता है।

- कार्य तंत्र: महिलाएं मीशो के कैटलॉग से उत्पादों का चयन करती हैं और उन्हें व्हाट्सएप, फेसबुक और इंस्टाग्राम के माध्यम से अपने सामाजिक संपर्कों के साथ साझा करती हैं।
- आर्थिक लाभ: यह मॉडल महिलाओं को घरेलू काम के साथ-साथ लचीले घंटों में आय अर्जित करने का अवसर देता है। 2025 तक के आंकड़ों के अनुसार, भारत में लगभग 37 प्रतिशत सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों (SMEs) का स्वामित्व महिलाओं के पास है।

- सामाजिक प्रभाव: सोशल कॉमर्स ने उन महिलाओं के लिए बाधाओं को कम किया है जिनके पास न तो व्यवसाय नेटवर्क था और न ही वित्तीय संसाधन।

यूनिलीवर शक्ति और तकनीकी एकीकरण

2001 में शुरू हुआ 'शक्ति' (Shakti) कार्यक्रम अब डिजिटल युग में प्रवेश कर चुका है। 22 राज्यों में सक्रिय 2,00,000 से अधिक 'शक्ति अम्मा' अब एआई और डिजिटल उपकरणों का उपयोग कर रही हैं।

- शिखर ऐप: लगभग 85 प्रतिशत शक्ति उद्यमी 'शिखर' (Shikhar) ऐप का उपयोग करती हैं, जो उन्हें इन्वेंट्री प्रबंधन और ऑर्डर देने में मदद करता है।
- एआई का उपयोग: वॉयस कमांड और एआई-आधारित 'स्मार्ट बास्केट' सुविधा उन महिलाओं को सशक्त बना रही है जो कम डिजिटल साक्षर हैं।
- आय में वृद्धि: इस डिजिटल सशक्तिकरण के परिणामस्वरूप, शक्ति उद्यमियों की घरेलू आय में पहले वर्ष में 30-40 प्रतिशत की वृद्धि देखी गई है।
- वित्तीय समावेशन: यूपीआई और डिजिटल सार्वजनिक बुनियादी ढांचा

भारत के डिजिटल सार्वजनिक बुनियादी ढांचे (DPI), विशेष रूप से 'इंडिया स्टैक' ने महिलाओं के वित्तीय सशक्तिकरण को अभूतपूर्व गति प्रदान की है। आधार-सक्षम भुगतान प्रणाली (AePS) और प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण (DBT) ने यह सुनिश्चित किया है कि सरकारी सहायता सीधे महिलाओं के खातों में पहुंचे।

"यूपीआई फॉर हर" (UPI for Her) के व्यवहारिक निष्कर्ष

एनपीसीआई और विमेन वर्ल्ड बैंकिंग के शोध ने भारतीय महिलाओं के डिजिटल भुगतान व्यवहार में महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्रदान की है। भारत में 200 मिलियन महिलाओं के पास स्मार्टफोन हैं, लेकिन उनमें से केवल एक-तिहाई ही आर्थिक रूप से सक्रिय हैं।

शोध ने महिलाओं को चार श्रेणियों में विभाजित किया है:

- सतर्क संतुलनकर्ता (Cautious Balancer): ये महिलाएं स्मार्टफोन का उपयोग करती हैं लेकिन मुख्य बचत खाते को डिजिटल ऐप्स से जोड़ने में असुरक्षित महसूस करती हैं। वे नकदी को परिवार के खर्चों पर नियंत्रण का माध्यम मानती हैं।
- बाड़ पर बैठे लोग (Fence Sitters): ये अक्सर सूक्ष्म उद्यमी होती हैं जो डिजिटल भुगतान को जानती हैं लेकिन लेनदेन विफलता और सामाजिक शर्मिंदगी के डर से इसका उपयोग करने से बचती हैं।
- खोजकर्ता (Explorers): यह श्रेणी यूपीआई को जल्दी अपनाने वाली महिलाओं की है जो डिजिटल बचत और निवेश (जैसे सोना या म्यूचुअल फंड) की ओर बढ़ रही हैं।
- भयंकर रूढ़िवादी (Fierce Conservatives): जिन्हें डिजिटल तकनीक तक पहुंच और विश्वास दोनों की भारी कमी है।

अध्ययन से पता चलता है कि 90 प्रतिशत महिलाएं डिजिटल लेनदेन शुरू करने के लिए तैयार हैं यदि उन्हें भौतिक रूप से सहायता (Phygital Onboarding) प्रदान की जाए।

संपत्ति का स्वामित्व और सामाजिक सुरक्षा

डिजिटल इंडिया ने संपत्ति के स्वामित्व में महिलाओं की भूमिका को भी मजबूत किया है। प्रधानमंत्री आवास योजना (PMAY) के तहत निर्मित अधिकांश घरों का पंजीकरण महिलाओं के नाम पर है। इसके अलावा, प्रत्यक्ष लाभ हस्तांतरण (DBT) ने महिलाओं को बिचौलियों के शोषण से बचाया है और उन्हें परिवार के वित्तीय निर्णयों में अधिक शक्ति दी है।

डिजिटल स्वास्थ्य और शिक्षा में क्रांति

स्वास्थ्य और शिक्षा सशक्तिकरण के दो महत्वपूर्ण स्तंभ हैं। डिजिटल इंडिया ने इन दोनों क्षेत्रों में पहुंच और गुणवत्ता के बीच की खाई को पाटने का काम किया है।

- ई-संजीवनी और टेलीमेडिसिन का प्रभाव
- ई-संजीवनी (eSanjeevani) दुनिया का सबसे बड़ा सरकारी टेलीमेडिसिन प्लेटफॉर्म बनकर उभरा है। अप्रैल 2025 तक, इस सेवा ने 36 करोड़ से अधिक परामर्श प्रदान किए हैं।
- मातृ स्वास्थ्य: ई-संजीवनी का उपयोग करने वालों में महिलाओं की संख्या सबसे अधिक है, जो इसे प्रसवपूर्व और प्रसवोत्तर देखभाल के लिए एक सुरक्षित माध्यम मानती हैं।
- शिशु स्वास्थ्य: नवजात मृत्यु दर (NMR) में गिरावट (26 से 20) और पांच वर्ष से कम उम्र के बच्चों की मृत्यु दर (U5MR) में कमी (45 से 32) के पीछे डिजिटल निगरानी प्रणालियों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है।
- टेली-मानस: मानसिक स्वास्थ्य सहायता के लिए टेली-मानस ने 20 लाख से अधिक कॉल हैंडल किए हैं, जिससे ग्रामीण महिलाओं को गोपनीयता के साथ परामर्श प्राप्त करने में मदद मिली है।

स्टेम (STEM) शिक्षा और डिजिटल साक्षरता

भारत STEM (विज्ञान, प्रौद्योगिकी, इंजीनियरिंग और गणित) शिक्षा में महिलाओं के नामांकन के मामले में दुनिया के अग्रणी देशों में से एक है। STEM पाठ्यक्रमों में महिलाओं का नामांकन 2014-15 में 38 प्रतिशत से बढ़कर 2021-22 में 43 प्रतिशत हो गया है। हालांकि, यह नामांकन कार्यबल में पूरी तरह प्रतिबिंबित नहीं होता है। भारत में 40 प्रतिशत से अधिक STEM स्नातक महिलाएं हैं, लेकिन कार्यबल में उनकी हिस्सेदारी केवल 20-30 प्रतिशत ही है। उच्च शिक्षा और शोध संस्थानों में महिला वैज्ञानिकों की संख्या 20 प्रतिशत से भी कम है। यह अंतर महिलाओं की शैक्षणिक उपलब्धि और पेशेवर अवसरों के बीच की बाधाओं को उजागर करता है।

साइबर सुरक्षा और डिजिटल न्याय की चुनौतियां

डिजिटल प्रगति के साथ-साथ महिलाओं के खिलाफ साइबर अपराधों का खतरा भी बढ़ा है। जैसे-जैसे महिलाओं की ऑनलाइन उपस्थिति बढ़ रही है, वे साइबर स्टॉकिंग, उत्पीड़न और वित्तीय धोखाधड़ी का लक्ष्य बन रही हैं।

साइबर अपराध की सांख्यिकीय वास्तविकता

एनसीआरबी (NCRB) के आंकड़ों के अनुसार, भारत में साइबर अपराध के मामले 2017 में 21,796 से बढ़कर 2022 में 60,123 हो गए हैं। इनमें से 22 प्रतिशत पीड़ित महिलाएं थी। इसमें बड़ी चुनौती यह है कि केवल 2 प्रतिशत शिकायतों को ही एफआईआर (FIR) में बदला जाता है। 65 प्रतिशत रिपोर्ट किए गए अपराध केवल वित्तीय धोखाधड़ी से संबंधित हैं, जबकि स्टॉकिंग और बुलिंग जैसे गंभीर अपराधों को केवल 5 प्रतिशत से कम मामलों में दर्ज किया जाता है। दोषसिद्धि की दर 3 प्रतिशत से कम होना कानून प्रवर्तन की विफलता को दर्शाता है।

विधिक सुधार और सुरक्षा तंत्र

भारतीय न्याय संहिता (BNS) 2023 ने इन चुनौतियों का समाधान करने की कोशिश की है। धारा 354क् के तहत साइबर स्टॉकिंग को अब अधिक व्यापक रूप से कवर किया गया है। इसके अलावा, 'प्रतिबिम्ब' (Pratibimb) मॉड्यूल जैसे तकनीकी उपकरण अपराधियों के स्थान का पता लगाने और उन्हें गिरफ्तार करने में मदद कर रहे हैं, जिससे अब तक 12,000 से अधिक गिरफ्तारियां हुई हैं।

बिहार में डिजिटल अंतराल और सामाजिक बाधाएं

बिहार का अध्ययन यह समझने के लिए आवश्यक है कि डिजिटल इंडिया के लाभ जमीनी स्तर पर कितनी असमानता के साथ पहुंच रहे हैं। बिहार में इंटरनेट उपयोग के मामले में महिलाओं की स्थिति देश में सबसे नीचे (20.6%) है ।

डिजिटल पिछड़ेपन के अंतर्निहित कारण

- तीव्र गरीबी: बिहार की प्रति व्यक्ति आय राष्ट्रीय औसत का केवल एक-तिहाई है। गरीबी महिलाओं के लिए स्मार्टफोन और डेटा को एक विलासिता बना देती है।

- साक्षरता का विशाल अंतराल: बिहार में पुरुष साक्षरता (78.5%) और महिला साक्षरता (57.8%) के बीच 20 प्रतिशत अंकों का अंतर है। बिना बुनियादी शिक्षा के डिजिटल साक्षरता असंभव है।
- रूढ़िवादी सामाजिक मानदंड: ग्रामीण बिहार में लड़कियों द्वारा इंटरनेट का उपयोग "पवित्रता" (Purity) और विवाह की संभावनाओं के लिए खतरा माना जाता है। तकनीक के उपयोग को अक्सर एक पुरुष प्रधान क्षेत्र के रूप में देखा जाता है।
- लैंगिक पूर्वाग्रह: किशोर लड़कों (80%) की तुलना में किशोर लड़कियों (18%) के पास फोन तक पहुंच की कमी यह दर्शाती है कि घरों के भीतर संसाधनों का वितरण कितना पक्षपाती है।

बिहार सरकार की 'मुख्यमंत्री कन्या उत्थान योजना' और आईसीटी/स्कूल (ICT/School) जैसी पहलें इन बाधाओं को दूर करने की कोशिश कर रही हैं, लेकिन अभी भी एक व्यापक और सघन हस्तक्षेप की आवश्यकता है।

सरकारी नीतियां और भविष्य की योजनाएं

भारत सरकार ने 2025-26 के बजट और नीति आयोग की रिपोर्टों के माध्यम से महिलाओं के डिजिटल सशक्तिकरण को 'विकसित भारत 2047' का आधार बनाया है।

नीति आयोग ने सिफारिश की है कि संगठनों को 'ब्लाइंड स्क्रीनिंग' (Blind Screening) और जेंडर-न्यूट्रल जॉब विवरण अपनाना चाहिए ताकि कार्यबल में महिलाओं की भागीदारी बढ़ सके। इसके अलावा, 2025-26 के बजट में पहली बार उद्यमियों के लिए 2 करोड़ रुपये तक के टर्म लोन का प्रावधान किया गया है, जो महिलाओं के नेतृत्व वाले व्यवसायों के लिए एक बड़ी राहत है।

डिजिटल भारत में महिलाओं की भूमिका को सुदृढ़ करने के लिए विशेषज्ञों ने निम्नलिखित महत्वपूर्ण सिफारिशें की हैं:

- मानव पूंजी का विकास: शिक्षा, स्वास्थ्य और कौशल विकास में निवेश को आवास सब्सिडी जैसे खर्चों पर प्राथमिकता दी जानी चाहिए।
- सुरक्षित डिजिटल वातावरण: साइबर अपराधों के लिए 'जीरो टॉलरेंस' (Zero Tolerance) की नीति और पॉश (PoSH) प्रणालियों को मजबूत करना आवश्यक है।
- एआई और उभरती प्रौद्योगिकियां: एआई सिस्टम को इस तरह से डिजाइन किया जाना चाहिए कि वे पुराने पूर्वाग्रहों को न दोहराएं। महिलाओं को एआई विकास और शोध में शामिल करना अनिवार्य है।
- जेंडर बजटिंग एक्ट: जेंडर बजटिंग को संस्थागत बनाने के लिए एक वैधानिक कानून की आवश्यकता है ताकि धन का आवंटन वास्तविक परिणामों में बदल सके।
- सामाजिक जागरूकता: माता-पिता और समुदायों को लड़कियों के लिए इंटरनेट के लाभों के प्रति संवेदनशील बनाना होगा ताकि सामाजिक बाधाओं को तोड़ा जा सके।

निष्कर्ष

डिजिटल भारत में महिलाओं की भूमिका केवल एक उपयोगकर्ता या लाभार्थी की नहीं है, बल्कि वे इस क्रांति की प्रेरक शक्ति हैं। आंकड़ों से स्पष्ट है कि भारत ने डिजिटल बुनियादी ढांचे और वित्तीय समावेशन में वैश्विक मिसाल कायम की है, लेकिन डिजिटल लैंगिक अंतराल और कार्यबल में 'लीकी पाइपलाइन' जैसे मुद्दे अभी भी मौजूद हैं। बिहार जैसे राज्यों की स्थिति यह याद दिलाती है कि डिजिटल प्रगति तब तक अधूरी है जब तक कि यह समाज के सबसे निचले पायदान पर खड़ी महिला तक नहीं पहुंचती। 2047 तक भारत को एक विकसित राष्ट्र बनाने के लिए 145 मिलियन अतिरिक्त महिलाओं को कार्यबल में शामिल करना होगा। यह केवल तभी संभव होगा जब हम डिजिटल तकनीक को 'महिला-नेतृत्व वाले विकास' के एक उपकरण के रूप में उपयोग करेंगे। डिजिटल भारत ने महिलाओं को वह 'रेल की पटरियां' प्रदान कर दी हैं जिन पर चलकर वे अपनी मंजिल पा सकती हैं, अब समाज और सरकार का दायित्व है कि वे उन पटरियों को सुरक्षित, सुलभ और न्यायसंगत बनाए रखें।

अंतत:, डिजिटल सशक्तिकरण एक तकनीकी यात्रा नहीं, बल्कि एक सामाजिक न्याय की यात्रा है, जिसका उद्देश्य भारत की आधी आबादी को आधुनिक वैश्विक अर्थव्यवस्था का बराबर का हिस्सेदार बनाना है।

संदर्भ सूची

1. अग्रहरि ढींगरा, वी. (2022). पावर विमेन: भारत की राजनीतिक विजेता (एस. मेहरा, अनु.). मंजुल पब्लिशिंग हाउस.
2. कुमार, आर., एवं सिंह, एस. (2021). डिजिटल साक्षरता और महिला सशक्तिकरण: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन. भारतीय सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका, 12(3), 45-58.
3. प्रसाद, ए., एवं कुमार चौधरी, आर. (2016). नारी सशक्तिकरण: राजनीतिक सहभागिता के संदर्भ में. आइबीपी बुक्स.
4. शर्मा, वी. के. (2025). डिजिटल युग में महिला सशक्तिकरण: अवसर और चुनौतियाँ. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मल्टीडिसिप्लिनरी रिसर्च, 7(1), 134-138.
5. सिंह, आर. पी., एवं सिंह, एस. (2025). डिजिटल इंडिया में महिला सशक्तिकरण. ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय प्रकाशन.
6. शर्मा, एल. के. (2024). आधुनिक भारत में महिलाओं की भूमिका. मातृभारती पब्लिकेशंस.
7. शर्मा, पी. डी. (2024). महिला सशक्तिकरण और नारीवाद. आइबीपी बुक्स.
8. Gurumurthy, A., & Chami, N. (2018). Digital India through a gender lens. IT for Change & Heinrich Böll Stiftung.
9. Jatana, R., & Nahar, M. (2023). A study of role of National Education Policy 2020 for promoting women empowerment. International Journal of Research and Analytical Reviews, 10(2), 1-12.
10. Soni, D. (2024). Impact of digital inclusion on women's economic growth in India. Journal of Economic Studies, 15(4), 88-102.
11. Darji, D. (2025). Women and digital empowerment in India: The role of technology in advancing gender equality. Journal of East-West Thought, 15(1), 22-35
12. इलेक्ट्रॉनिकी और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय. (2023). डिजिटल इंडिया: सशक्तिकरण की एक नई दिशा. भारत सरकार.
13. नीति आयोग. (2024). सतत विकास लक्ष्य और भारतीय महिलाएँ: एक प्रगति रिपोर्ट. भारत सरकार.
14. Ministry of Electronics and Information Technology (MeitY). (2025). Annual Report 2024-25: Digital infrastructure and inclusion. Government of India.
15. National Sample Survey Office (NSSO). (2023). Key indicators of household social consumption on education and digital access in India. Ministry of Statistics and Programme Implementation.

"अमृतलाल नागर के उपन्यास-साहित्य में मध्यम वर्गीय आर्थिक चेतना और सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रश्न"

मांडवी जायसवाल

(शोधार्थी) एम.ए. हिंदी, यू.जी.सी. नेट एवं एम.पी सेट

डॉ० उर्मिला शिरीष शर्मा

(शोधनिदेशिका) (सेवानि०) प्राध्यापिका हिंदी, महारानी लक्ष्मी बाई कन्या स्नातकोत्तर (स्वशासी) महविद्यालय, भोपाल

डॉ० सुधीर कुमार शर्मा

(सह शोधनिदे०) प्राध्यापक हिंदी, महारानी लक्ष्मी बाई कन्या स्नातकोत्तर (स्वशासी) महविद्यालय, भोपाल

शोध-सारांश

हिंदी उपन्यास परंपरा में सामाजिक यथार्थ का सूक्ष्म और बहुआयामी चित्रण जिस संवेदनात्मक गहराई के साथ मिलता है, उसमें अमृतलाल नागर का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। नागर के उपन्यास भारतीय समाज की संरचना, उसकी मानसिक प्रवृत्तियों तथा जीवन-संघर्षों को ऐतिहासिक और सामाजिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करते हैं। विशेष रूप से मध्यम वर्ग उनके कथा-विन्यास का केंद्रीय आधार बनकर उभरता है। यह वर्ग आर्थिक सीमाओं, सामाजिक आकांक्षाओं तथा प्रतिष्ठा-चेतना के मध्य निरंतर संतुलन स्थापित करने का प्रयास करता दिखाई देता है।

मध्यम वर्ग आधुनिक समाज की वह जटिल सामाजिक इकाई है जिसकी पहचान केवल आय अथवा व्यवसाय के आधार पर नहीं, बल्कि उसकी मानसिकता, सांस्कृतिक मूल्यों तथा सामाजिक आकांक्षाओं से भी निर्मित होती है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से वर्ग उस श्रेणी को कहा जाता है जिसमें समान आर्थिक अथवा सामाजिक स्थिति वाले व्यक्ति सम्मिलित होते हैं[1]। वसंतुत: वर्ग समाज के उन समूहों को इंगित करता है जिनमें आर्थिक आधार पर स्तर-भेद विद्यमान रहता है।[2] उत्पादन संबंधों और सामाजिक संरचना के आधार पर वर्गों की भिन्नता को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि, समाज में वर्ग बड़े-बड़े समूहों के रूप में विद्यमान रहते हैं, जिनकी स्थिति उत्पादन संबंधों तथा सामाजिक संपदा के अर्जन के तरीकों से निर्धारित होती है[3]।

नागर के उपन्यासों में मध्यम वर्ग का जीवन केवल आर्थिक संघर्षों का द्योतक नहीं है, बल्कि उसमें सामाजिक मान्यता, प्रतिष्ठा-रक्षा और सांस्कृतिक मूल्यबोध की जटिल प्रक्रियाएँ भी अंतर्निहित हैं। अस्तु मेरा उद्देश्य इस तथ्य को रेखांकित करने का प्रयास है कि, नागर के उपन्यासों में मध्यम वर्गीय व्यक्ति अपनी सीमित आर्थिक परिस्थितियों के बावजूद सामाजिक पहचान और प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए निरंतर संघर्षरत दिखाई देता है। इस प्रकार नागर का उपन्यास-साहित्य भारतीय समाज के मध्यवर्गीय मानस, उसकी आकांक्षाओं और अंतर्विरोधों का सशक्त दस्तावेज बनकर सामने आता है।

शब्दसंग्रह: अमृतलाल नागर, हिंदी उपन्यास, मध्यम वर्ग, आर्थिक चेतना, सामाजिक प्रतिष्ठा, वर्ग-संरचना, सामाजिक यथार्थ

प्रस्तावना

भारतीय समाज की संरचना को समझने के लिए 'वर्ग' की अवधारणा अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती है। अत: समाज में व्यक्तियों की सामाजिक स्थिति, आर्थिक साधन तथा जीवन-शैली में जो विविधताएँ पाई जाती हैं, वही वर्ग-निर्धारण का आधार बनती हैं।

वर्ग केवल आर्थिक स्थिति का संकेतक नहीं है, बल्कि वह सामाजिक संरचना और मानवीय संबंधों की जटिलताओं को भी अभिव्यक्त करता है। आधुनिक समाज में वर्ग-संरचना के भीतर 'मध्यम वर्ग' एक अत्यंत महत्वपूर्ण सामाजिक श्रेणी के रूप में उभरता है। सामाजिक विज्ञान के विश्वकोश में मध्यम वर्ग को उस सामाजिक समूह के रूप में परिभाषित किया गया है जिसमें छोटे व्यापारी, लघु उत्पादक, शिल्पकार, कृषक, कार्यालयों के कर्मचारी तथा वेतनभोगी वर्ग सम्मिलित होते हैं[4]। इसी प्रकार एक अन्य दृष्टिकोण के अनुसार मध्यम वर्ग ऐसे व्यक्तियों की स्थायी श्रेणी है जिनकी आय मध्यम स्तर की होती है और जो सामाजिक संरचना में उच्च वर्ग और श्रमिक वर्ग के बीच स्थित रहते हैं[5]। अंग्रेजी शब्दकोश में भी मध्यम वर्ग को समाज के उस वर्ग के रूप में माना गया है जो अभिजात्य वर्ग और श्रमिक वर्ग के मध्य स्थित होता है तथा जिसमें दुकानदार, शिक्षक, वकील, चिकित्सक और अन्य पेशेवर लोग सम्मिलित होते हैं [6]।

वास्तव में वर्ग-व्यवस्था सामाजिक स्तरीकरण की एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से समाज में व्यक्तियों की स्थिति का निर्धारण उनकी शिक्षा, आय, व्यवसाय तथा सामाजिक प्रतिष्ठा के आधार पर किया जाता है। सामाजिक असमानताएँ इस वर्ग-व्यवस्था के निर्माण का प्रमुख कारण मानी जाती हैं। जब समाज में धर्म, जाति, वंश, संस्कृति अथवा पेशे के आधार पर विभिन्न प्रकार की असमानताएँ उत्पन्न होती हैं, तब सामाजिक स्तरीकरण की प्रक्रिया और अधिक स्पष्ट हो जाती है। इसी संदर्भ में यह कहा गया है कि सामाजिक असमानता ही वर्ग के अस्तित्व का मूल कारण है, क्योंकि समाज में असमान परिस्थितियों के कारण ही विभिन्न वर्गों का निर्माण होता है[7]।

सामाजिक असमानताओं के साथ-साथ आर्थिक विषमताएँ भी वर्ग-संरचना को गहराई से प्रभावित करती हैं। जब समाज में विभिन्न कर्मों और व्यवसायों के आधार पर आय तथा संपत्ति का असमान वितरण होता है, तब आर्थिक असमानता उत्पन्न होती है और यही असमानता आगे चलकर वर्ग-भेद को सुदृढ़ करती है।

भारतीय समाज में मध्यम वर्ग का उद्भव और विकास ऐतिहासिक तथा सामाजिक परिस्थितियों से गहरे रूप में जुड़ा हुआ है। औपनिवेशिक काल से लेकर आधुनिक काल तक यह वर्ग सामाजिक परिवर्तन, आर्थिक आकांक्षाओं तथा सांस्कृतिक मूल्यों के मध्य निरंतर सक्रिय रहा है। साहित्य में भी इस वर्ग का चित्रण अत्यंत व्यापक रूप में मिलता है, क्योंकि यह वर्ग समाज के विभिन्न अंतर्विरोधों और संक्रमणों का प्रतिनिधि माना जाता है।

हिंदी उपन्यास साहित्य में अनेक रचनाकारों ने मध्यम वर्गीय जीवन की समस्याओं और संघर्षों का चित्रण किया है, किंतु अमृतलाल नागर का स्थान इस संदर्भ में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। नागर के उपन्यास भारतीय समाज के विविध पक्षों को अत्यंत यथार्थपरक दृष्टि से प्रस्तुत करते हैं। उनके उपन्यासों में मध्यम वर्ग केवल एक आर्थिक श्रेणी नहीं है, बल्कि वह सामाजिक आकांक्षाओं, सांस्कृतिक मूल्यों और मानवीय संबंधों की जटिलताओं का प्रतीक बनकर सामने आता है।

नागर ने अपने उपन्यासों में मध्यम वर्गीय जीवन के आर्थिक संघर्ष, सामाजिक प्रतिष्ठा की चिंता तथा पारिवारिक और सांस्कृतिक मूल्यों के द्वंद्व को अत्यंत संवेदनशीलता के साथ चित्रित किया है। उनके पात्र सीमित आर्थिक साधनों के बावजूद सामाजिक मान-सम्मान को बनाए रखने के लिए निरंतर प्रयत्नशील दिखाई देते हैं।

मध्यमवर्गीय सामाजिक चेतना और परम्परागत संरचनाओं के विरुद्ध संघर्ष

समाज व्यक्तियों के पारस्परिक संबंधों तथा अंत:क्रियाओं से निर्मित एक संगठित संरचना है। समाजशास्त्री जॉर्ज सिमैल के अनुसार समाज उन व्यक्तियों का समूह है जो आपसी अंत:क्रिया के माध्यम से एक-दूसरे से संबंधित रहते हैं[8]। फेयरचाइल्ड समाज को ऐसे व्यक्तियों के समूह के रूप में परिभाषित करते हैं जो अपने सामूहिक हितों की पूर्ति के लिए सहयोगात्मक रूप से कार्य करते हैं[9]। अत: समाज केवल व्यक्तियों का समूह नहीं बल्कि मान्यताओं, परम्पराओं और संस्थागत व्यवस्थाओं से निर्मित एक जीवंत संरचना है।

अमृतलाल नागर के उपन्यासों में मध्यम वर्ग इसी सामाजिक संरचना के भीतर अपने अस्तित्व और प्रतिष्ठा की खोज करता हुआ दिखाई देता है। विशेषत: 'बूँद और समुद्र' उपन्यास में जाति-व्यवस्था और परम्परागत सामाजिक नियंत्रण के विरुद्ध उभरती मध्यवर्गीय चेतना का यथार्थ चित्रण मिलता है। शिक्षित युवा वर्ग जातीय पंचायतों की रूढ़ियों से असंतुष्ट होकर

परिवर्तन की दिशा में अग्रसर होता है। उपन्यास में वर्णित है कि विदेश जाने वाले व्यक्तियों को सामाजिक बहिष्कार का सामना करना पड़ता था, किंतु नई पीढ़ी इस व्यवस्था को चुनौती देती दिखाई देती है–

> "विलायत जाने वाले लोग अक्सर इग्लैंड के अंग्रेजों से इस बात का सर्टिफिकेट लिखवा लाते थे कि उन्होंने उन्हें स्वयं रसोई बनाकर पवित्रता के साथ खाते देखा है। इतने पर भी लोग बिरादरी से निकाल दिए जाते थे. .. नया समय हर कठिनाई जीतकर आगे बढ़ता गया... पंचों का बल टूट गया, सब जातियों में विलायत आने-जाने की पूरी-पूरी छूट हो गई... सैकड़ों सदी पुराना किला नये मध्यवर्ग और सुधारकों के कारण ढहने लगा।[10]"

परिणामत: नागर के उपन्यासों में मध्यम वर्ग केवल सामाजिक व्यवस्था का अनुयायी नहीं है, बल्कि वह परिवर्तन का वाहक भी है।

सामाजिक प्रतिष्ठा और अंतर्जातीय-विवाह की चेतना

अमृतलाल नागर के उपन्यास सामाजिक प्रतिष्ठा को बनाए रखते हुए भी रूढ़िगत मान्यताओं के विरुद्ध परिवर्तन की दिशा में अग्रसर होते है। विशेष रूप से विवाह संस्था के संदर्भ में यह चेतना अधिक स्पष्ट रूप में दिखाई देती है।

'अमृत और विष' उपन्यास में रमेश नामक पात्र इस परिवर्तनशील मध्यवर्गीय मानसिकता का प्रतिनिधित्व करता है। वह समाज की जड़ होती परम्पराओं के विरुद्ध खड़ा होकर विधवा-विवाह तथा अंतर्जातीय विवाह जैसे प्रश्नों को स्वीकार करने का साहस दिखाता है। उसकी माँ स्वयं वैधव्य की सामाजिक मर्यादाओं में बंधी हुई है, जिसके कारण सामाजिक दबाव का वातावरण निर्मित होता है–

> "रमेश की माँ ने उसके वैधव्य की परवाह न कर उसे विवाह कार्य में सम्मिलित तो होने दिया था, पर ये भी समझा दिया था कि रस्मों के समय वह सामने न पड़े वरना उसे किसी पुरानी ढंग की बड़ी बूढ़ी के बोल-कुबोलों का सामना करना पड़ जायेगा।"[11]

'बिखरे तिनके' उपन्यास में नागर ने अंतर्जातीय प्रेम और विवाह को सामाजिक स्वीकृति दिलाने के प्रयास को भी रेखांकित किया है। हरसुख और चौहान जैसे युवा पात्र प्रेम-विवाह के समर्थन में खड़े होते हैं और सामाजिक बंधनों को चुनौती देते हुए कहते हैं–

> "दोनों जने ब्याह कर लो। दोनों ही बालिग हो अब तो साले ऊंची-ऊंची जातों वाले भी अंतर्जातीय ब्याह करते हैं... लव मैरिज में हम साले यंग मैन काम न आएंगे तो क्या बूढ़े खुर्राट काम आएंगे।"[12]

आर्थिक विषमता, पारिवारिक तनाव और सामाजिक प्रतिष्ठा का द्वंद्व

अमृतलाल नागर के उपन्यासों में मध्यम वर्गीय जीवन की आर्थिक सीमाएँ और उससे उत्पन्न पारिवारिक तनाव अत्यंत यथार्थपरक रूप में चित्रित हुए हैं। आर्थिक संसाधनों की कमी और सामाजिक प्रतिष्ठा को बनाए रखने की आकांक्षा के बीच यह वर्ग निरंतर संघर्ष करता हुआ दिखाई देता है।

'बूँद और समुद्र' उपन्यास में भभूती सुनार का संयुक्त परिवार मध्यम वर्गीय जीवन की इसी मानसिकता का प्रतिनिधित्व करता है। परिवार के भीतर स्वामित्व और अधिकार की इच्छा अनेक प्रकार के तनाव उत्पन्न करती है। नन्दो का चरित्र इसी मानसिकता का प्रतीक बनकर सामने आता है, जो घर की मालकिन बनने की आकांक्षा में अत्यधिक महत्वाकांक्षी हो उठती है। ताई का कथन इस मानसिकता को स्पष्ट करता हैख्न

> "क्यौरी, जो तेरी माँ मर जाय तौ तू इत्ती बखत घर की मालकिन हो जाय। है ना?"[13]

'अग्निगर्भा' उपन्यास में दहेज-प्रथा के कारण उत्पन्न आर्थिक और मानसिक तनाव का मार्मिक चित्रण मिलता है। सीता पाण्डेय जैसी शिक्षित स्त्री भी विवाह के पश्चात आर्थिक शोषण का शिकार बनती है। उसका पति उसकी आय को भी अपने अधिकार में मानता है–

"तुम्हारी कमाई का एक-एक पैसा मेरी कमाई का है... पैसे के मामले में, मैं अपने मां-बाप का सगा भी नहीं हूँ।"

नागर के उपन्यासों में शहरी मध्यवर्ग की मानसिकता भी विशिष्ट रूप से चित्रित हुई है। 'अमृत और विष' में शहरी जीवन की व्यावहारिकता और धार्मिक आस्था के क्षीण होते स्वरूप को दर्शाते हुए एक पात्र कहता है-[14]

"भाभी, मेरी भगवान में इतनी भगती नहीं जितनी कि बाबूजी में है।"[15]

अस्तु आर्थिक विषमता और सामाजिक मान-प्रतिष्ठा की आकांक्षा के बीच यह वर्ग निरंतर संघर्षरत दिखाई देता है, जो नागर के उपन्यास-साहित्य को सामाजिक यथार्थ का सशक्त दस्तावेज बनाता है।

आर्थिक अभाव और मध्यवर्गीय जीवन की त्रासदी

अमृतलाल नागर के उपन्यास-साहित्य में मध्यवर्गीय जीवन की सबसे बड़ी विडम्बना आर्थिक अभाव के रूप में सामने आती है। यह वर्ग सीमित आय, बढ़ती पारिवारिक आवश्यकताओं तथा सामाजिक अपेक्षाओं के दबाव के कारण निरंतर संघर्षपूर्ण जीवन जीने के लिए विवश रहता है। आर्थिक संसाधनों की कमी केवल भौतिक जीवन को ही प्रभावित नहीं करती, बल्कि मानसिक तनाव और असुरक्षा की भावना को भी जन्म देती है। नागर ने इस वर्ग की पीड़ा को अत्यंत मार्मिकता के साथ चित्रित किया है।

'भूख' उपन्यास में मुनीर का परिवार आर्थिक विपन्नता की भयावह स्थिति से गुजरता दिखाई देता है। परिवार में भोजन का अभाव इतना गहरा है कि कई दिनों तक अन्न का एक दाना भी उपलब्ध नहीं हो पाता। उपन्यास में यह स्थिति अत्यंत मार्मिक शब्दों में व्यक्त हुई है-

> "सात दिन से मुनीर के यहां किसी के मुँह में अन्न का एक दाना भी न पहुँचा था। दो छोटी-छोटी लड़कियाँ चाँद और रूकिया, भूख के साथ-साथ मलेरिया से भी लड़ रही थीं।" [16]

इसी उपन्यास में पाँचू गोपाल मुखर्जी का चरित्र भी आर्थिक संकट से जूझते मध्यवर्गीय व्यक्ति का प्रतिनिधित्व करता है। परिवार के अनेक सदस्यों की जिम्मेदारी और सीमित आय के कारण वह निरंतर चिंता और असहायता की स्थिति में रहता है। अपनी पुत्री के भविष्य को लेकर उसकी चिंता इस प्रकार व्यक्त होती है-

> "ये तुलसी, कनक कहाँ जायेंगी? दीनू परेश का क्या होगा? तुलसी अब सोलह बरस की हो गयी है... सात बरस में तार-तार जोड़कर इतने गहने बने थे कैसे बेड़ा पार लगेगा।" [17]

अत: नागर के उपन्यासों में मध्यवर्गीय आर्थिक चेतना केवल धन के अभाव की कथा नहीं है, बल्कि वह उस मानसिक पीड़ा और असुरक्षा का चित्रण भी है, जो आर्थिक संकट के कारण व्यक्ति के संपूर्ण जीवन को प्रभावित करती है।

सीमित आय, दायित्व और आर्थिक संघर्ष

मध्यवर्गीय आर्थिक जीवन का एक प्रमुख पक्ष यह है कि सीमित आय के बावजूद परिवार की आवश्यकताएँ निरंतर बढ़ती रहती हैं। इस स्थिति में व्यक्ति को अपनी आवश्यकताओं और दायित्वों के बीच संतुलन स्थापित करने के लिए निरंतर संघर्ष करना पड़ता है। अमृतलाल नागर ने अपने उपन्यासों में इस आर्थिक संघर्ष को अत्यंत यथार्थपरक रूप में चित्रित किया है।

'सेठ बांकेमल' उपन्यास में आर्थिक अस्थिरता के कारण उत्पन्न चिंता और असहायता का चित्रण मिलता है। व्यापार में मंदी के कारण आय के साधन समाप्त हो जाते हैं और व्यक्ति को अपनी जमा पूँजी खर्च करके जीवन यापन करना पड़ता है। इस स्थिति को उपन्यास में इस प्रकार व्यक्त किया गया है-

> "ऐसी खुसकैटी थी प्यारे कि कहीं से धेले की भी आमदनी नहीं थी। घर से निकाल निकाल कर खा रहे थे हम लोग।"[18]

'अमृत और विष' उपन्यास में रद्धसिंह के जीवन के माध्यम से आर्थिक संकट की तीव्रता को दिखाया गया है। पारिवारिक जिम्मेदारियों और सीमित साधनों के कारण वह गहरे मानसिक तनाव से गुजरता है। उसकी स्थिति का मार्मिक चित्रण इस प्रकार किया गया है-

> "दोनों छोटी बच्चियों को छोड़कर किसी ने अन्न का दाना भी मुँह से नहीं लगाया था। भूखे पेट और टूटे मन में घर भर की भूख करारे मुक्के सी लगी... आगे कैसे चलेगा? पेट भूख से कुडमुड़ा रहा था। मन चिंताओं के मारे उड़ा जा रहा था।" [19]

चेतना और द्वंद्व

अमृतलाल नागर के उपन्यास-साहित्य में मध्यवर्गीय जीवन का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष आर्थिक चेतना और सामाजिक प्रतिष्ठा के बीच उत्पन्न द्वंद्व है। मध्यवर्गीय व्यक्ति आर्थिक रूप से सीमित होते हुए भी समाज में अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान बनाए रखने की तीव्र आकांक्षा रखता है। यही आकांक्षा कई बार उसे ऐसे निर्णय लेने के लिए विवश कर देती है जो उसके नैतिक मूल्यों और मानसिक संतुलन को प्रभावित करते हैं।

'बूँद और समुद्र' उपन्यास में महिपाल का चरित्र इसी मानसिक द्वंद्व का प्रतिनिधित्व करता है। वह एक संवेदनशील साहित्यकार होते हुए भी अपनी भांजी के विवाह को सामाजिक प्रतिष्ठा के अनुरूप सम्पन्न करने के लिए चोरी करने तक को विवश हो जाता है। अपनी इस दुर्बलता को स्वीकार करते हुए वह लिखता है-

> "चोरी करते समय मेरी आत्मा बहुत कांपी थी, परंतु अभाव के तर्कों ने मेरी आत्मा को अपने सीकचों से जकड़ लिया। मैं अपनी मातृ-पित विहीन भांजी का विवाह शानदार करना चाहता था। मेरा आर्थिक जीवन संकटग्रस्त हो गया था।" [20]

'अमृत और विष' उपन्यास में आर्थिक अभाव के कारण उत्पन्न कुंठा और असफलता व्यक्ति को आत्मविनाश की स्थिति तक पहुँचा देती है। लेखक इस संदर्भ में लिखते हैं कि-

> "भाग्य की महिमा के आगे किसी की महिमा इनकी महत्वाकांक्षा को सफल न बना सकी... कुंठाओं का अन्त करने के लिए आत्महत्या कर ली।" [21]

स्पष्टत: नागर के उपन्यासों में मध्यवर्गीय आर्थिक चेतना केवल आर्थिक संघर्ष का प्रश्न नहीं है, बल्कि वह सामाजिक प्रतिष्ठा, मान-सम्मान और आत्मसम्मान की जटिल मानसिकता से भी जुड़ी हुई है। आर्थिक सीमाएँ और सामाजिक प्रतिष्ठा की आकांक्षा के बीच उत्पन्न यह द्वंद्व नागर के उपन्यास-साहित्य को गहरी सामाजिक संवेदना और यथार्थबोध प्रदान करता है।

निष्कर्ष

अमृतलाल नागर के उपन्यास-साहित्य का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि उनके साहित्य में मध्यम वर्गीय जीवन की आर्थिक समस्याएँ और सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रश्न अत्यंत संवेदनशील और यथार्थपरक रूप में चित्रित हुआ है। नागर ने अपने उपन्यासों में उस भारतीय मध्यमवर्ग की मानसिकता, संघर्ष और द्वंद्व को उकेरा है जो सीमित आर्थिक साधनों के बावजूद सामाजिक प्रतिष्ठा बनाए रखने की आकांक्षा से निरंतर जूझता रहता है। आर्थिक असुरक्षा, सामाजिक मान-मर्यादा की चिंता, पारिवारिक जिम्मेदारियाँ तथा परंपरा और आधुनिकता के बीच का संघर्ष उनके पात्रों के जीवन में बार-बार उभरता है।

नागर के उपन्यासों में मध्यम वर्ग केवल आर्थिक स्थिति का सूचक नहीं है, बल्कि वह एक विशिष्ट मानसिक और सामाजिक चेतना का भी प्रतिनिधित्व करता है। उनके पात्र आर्थिक कठिनाइयों के बीच भी अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा, नैतिक मूल्यों और सांस्कृतिक परंपराओं को बनाए रखने का प्रयास करते दिखाई देते हैं। यही कारण है कि नागर के उपन्यासों में मध्यम वर्गीय जीवन की जटिलताएँ, आकांक्षाएँ और विडंबनाएँ अत्यंत स्वाभाविक और जीवंत रूप में सामने आती हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि अमृतलाल नागर का उपन्यास-साहित्य भारतीय मध्यम वर्ग की आर्थिक चेतना, सामाजिक प्रतिष्ठा की आकांक्षा तथा उससे उत्पन्न अंतर्विरोधों का सशक्त दस्तावेज है। जो भारतीय समाज के मध्यम वर्गीय जीवन का महत्वपूर्ण और यथार्थपरक प्रतिबिंब प्रस्तुत करता है।

सन्दर्भ सूची

1 आर.एम. मैकाइवर, सी.एच. पेज, सोसाइटी मैकमिलन कम्पनी लिमिटेड, लन्दन, संस्करण 1959 ई०, पृष्ठ संख्या 348

2 डॉ. अमरनाथ, हिंदी आलोचना की परिभाषिक शब्दावली, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2012 ई०, पृष्ठ संख्या 464

3 आहूजा राम, समाजशास्त्र विवेचना एवं परिप्रेक्ष्य, रावत प्रकाशन, जयपुर, संस्करण 2008 ई०, पृष्ठ संख्या 187-188

4 इडविन आर.ए. सैलिगमैन, एंलविन जॉनसन, दि एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइंसेज, भाग 9-10, मैकमिलन कम्पनी, न्यूयार्क, संस्करण 1937 ३०. पृष्ठ संख्या 407

5 हॉलवॉश मौरिस, दि साइक्लोजी ऑफ सोशल क्लास, विलियम हेनीमेन, संस्करण 1958 ई०, पृष्ठ संख्या 101

6 डॉ. मूलचन्द गौतम, हिन्दी नाटक की भूमिका (मध्यवर्ग के सम्बंध में), जागृति प्रकाशन, संस्करण 1982 ई०, पृष्ठ संख्या 27

7 डॉ. हेमराज निर्मम, हिंदी उपन्यासों में मध्यवर्ग, विभू प्रकाशन, साहिबाबाद, संस्करण 1978 ई०, पृष्ठ संख्या 14
8 जार्ज सिमैल, सोशियोलॉजी, दा फ्री प्रेस, न्यूयार्क, संस्करण 1950 ई०. पृष्ठ संख्या 10
9 उद्धृत, एम.एल. गुप्ता, समाजशास्त्र, अर्जुन पब्लिकेशन, दिल्ली, संस्करण 1998 ई०, पृष्ठ संख्या 94
10 अमृतलाल नागर:बूंद और समुद्र; किताब महल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 1997ई०. पृष्ठ संख्या 524
11 अमृतलाल नागर, अमृत और विष, लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग इलाहाबाद संस्करण 1973 ई०, पृष्ठ संख्या 67
12 अमृतलाल नागर, नाच्यौ बहुत गोपाल, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, संस्करण 2015 ई०, पृष्ठ संख्या 301-302
13 अमृतलाल नागर, नाच्यौ बहुत गोपाल, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, संस्करण 2015 ई०, पृष्ठ संख्या 312
14 अमृतलाल नागर, अग्निगर्भा, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली संस्करण 2014 ई०, पृष्ठ संख्या 113
15 अमृतलाल नागर, अमृत और विष, लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी भार्ग, इलाहाबाद, संस्करण 2015 ई० पृष्ठ संख्या।
16 अमृतलाल नागर, भूख, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, संस्करण 2016 ई०, पृष्ठ संख्या 53
17 अमृतलाल नागर, भूख, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, संस्करण 2016 ई०, पृष्ठ संख्या 30
18 अमृतलाल नागर, सेठ बांकेमल, राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, संस्करण 2011 ई०, पृष्ठ86
19 अमृतलाल नागर, अमृत और विष, लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, संस्करण1972 ई०, पृष्ठ संख्या 92-93
20 अमृतलाल नागर, बूँद और समुद्र, किताब महल नई दिल्ली, संस्करण 1997 ई०, पृष्ठ संख्या 579
21 अमृतलाल नागर, अमृत और विष, लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, संस्करण1972 ई०, पृष्ठ संख्या 43

बिहार की ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास में मौजूद बाधाएँ: एक विश्लेषण

रजनीश कुमार

शोध छात्र, अर्थशास्त्र, स्नातकोत्तर विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

डॉ. शारदा नन्द सहनी

शोध-निर्देशक, सहायक प्राध्यापक, रामेश्वर महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर

सारांश

बिहार, भारत में सबसे तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्थाओं में से एक है। यह मुख्य रूप से सेवा-आधारित है, जिसमें कृषि और औद्योगिक क्षेत्रों की महत्वपूर्ण हिस्सेदारी है। वर्तमान बाजार मूल्य (2025-26) पर राज्य का सकल घरेलू उत्पाद घ10.97 लाख करोड़ (Û+130 बिलियन) था। इस राज्य में एक छोटा औद्योगिक क्षेत्र भी है। 2021 तक राज्य की अर्थव्यवस्था में कृषि का हिस्सा 19%, उद्योग का 21% और सेवा का 60% है। 2024-2025 की अवधि के दौरान राज्य में विनिर्माण की औसत वृद्धि दर 13.1% थी, जबकि राष्ट्रीय औसत 7.3% थी। बिहार में प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद भारत में सबसे कम है, लेकिन राज्य के दक्षिणी हिस्से और इसकी राजधानी पटना जैसे कुछ क्षेत्रों में प्रति व्यक्ति आय अधिक है।

जातिगत सर्वेक्षण 2023 के अनुसार राज्य की आबादी 13.07 करोड़ है। इसमें से 74 प्रतिशत आबादी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर है। जब तक कृषि क्षेत्र से लोगों को निकालकर औद्योगिक और सेवा क्षेत्र में संलग्न नहीं किया जाएगा तब तक प्रगति की सच्ची कहानी नहीं लिखी जा सकती है। राज्य में कैपिटल एक्सपेंडिचर 20.48 फीसदी है। बिहार को लो बेस इफेक्ट से निकलने के लिए इसे बढ़ाकर 30-35 परसेंट करना होगा। बिहार अपने स्रोत से कुल बजट 3.17 लाख करोड़ में से सिर्फ 21.3 फीसदी ही जुटा पाता है।

इस स्थिति से निकलने और आत्मनिर्भर बिहार की ओर बढ़ने के लिए राज्य को ग्रॉस फिक्स्ड कैपिटल फॉर्मेशन (जीएफसीएफ- निवेश में जाने वाली आय) की वर्तमान दर को 4.5 परसेंट से बढ़ाना होगा। विकासशील देशों में जीएफसीएफ की दर 30 से 40 परसेंट अच्छा माना जाता है। इन क्षेत्रों में सुधार कर बिहार खुद के विकास के साथ विकसित भारत /2047 के लक्ष्य को भी हासिल करने में अपनी सकारात्मक भूमिका निभा सकता है।

मूल शब्द: बिहार, ग्रामीण अर्थव्यवस्था, खेती, विकास, बाधाएँ

प्रस्तावना

खेती और उससे जुड़े काम बिहार की अर्थव्यवस्था की नींव हैं, राज्य के 54% वर्कफोर्स को रोजगार मिलता है और यह राज्य की ळक्च में 18% का योगदान देता है। फिर भी, खेती को मौसमी समस्याओं से जूझना पड़ रहा है, खासकर बाढ़ (उत्तर बिहार), सूखा (दक्षिण बिहार), और कई इलाकों में पानी जमा होना, बिजली की कमी, और सिंचाई और मशीनीकरण की कमी। हालांकि कुछ सुधार हो रहे हैं, लेकिन आधे हेक्टेयर से भी कम जमीन पर काम करने वाले छोटे या मामूली किसानों की बड़ी संख्या एक रुकावट बनी हुई है। बाहर जाने की चुनौती भी है, जिसमें कई युवा घर पर खेती के अलावा दूसरी नौकरियों की कमी के कारण दूसरे राज्यों में चले जाते हैं। इसलिए, खेती में सुधार गांवों की इनकम का आधार देते हैं, लेकिन उन्हें टिकाऊ बनाने के लिए ज्यादा वैल्यू एडिशन (फूड प्रोसेसिंग, एग्रो-इंडस्ट्रीज), बाजारों से बेहतर लिंकेज, ज्यादा एक्सपोर्ट ओरिएंटेशन और मशीनीकरण की जरूरत होती है।

पशुधन सेक्टर भी उम्मीद देता है: दूध और पोल्ट्री दोनों सब-सेगमेंट में, ग्रोथ बहुत ज्यादा हुई है। यह जमीन के छोटे आकार की रुकावट के बावजूद किसानों की इनकम बढ़ा सकता है। बिहार के पास अपनी बागवानी, खास फसलों (लीची,

मखाना, गन्ना) का फायदा उठाने और एग्रोप्रोसेसिंग हब बनाने की गुंजाइश है। अगर खेती-बाड़ी से अलग रोजगार रुका रहता है, तो सिर्फ खेती ही ग्रोथ का इंजन नहीं हो सकती। इंडस्ट्री और सर्विसेज की तरफ एक स्ट्रक्चरल बदलाव जरूरी है।[1]

गरीबी, मौसमी पलायन और कृषि आधारित उद्योगों पर तालाबंदी

बिहार, भारत का सबसे गरीब राज्य है, जहां की प्रति व्यक्ति आय राष्ट्रीय औसत से 77 प्रतिशत तक कम है और यह अब तक देखा गया सबसे बड़ा अंतर है। भारत व बिहार के प्रति व्यक्ति आय का अंतर छह दशकों में काफी अधिक बढ़ा है। गरीबी व स्थानीय स्तर पर रोजगार के अभाव में यहां से पलायन बहुत आम है। कृषि आधारित उद्योगों के सिकुड़न, डूब व सुखाड़ जैसी समस्याएं, गैर कृषि उद्योग में कम निवेश इस कृषि आधारित राज्य के लिए बड़ी मुश्किलें हैं।

बिहार का आर्थिक सर्वे सबसे गरीब जिलों की कैसी तस्वीर पेश करता है?

बिहार के नवीनतम आर्थिक सर्व[1](वर्ष 2023-24) के अनुसार, शिवहर, अररिया और सीतामढ़ी बिहार के तीन सबसे गरीब जिले हैं, जहां के लोगों का प्रति व्यक्ति सकल जिला घरेलू उत्पाद क्रमशः 18,980 रुपए (52 रुपए प्रतिदिन), 19,795 रुपए (54.23 रुपए प्रतिदिन) और 21,448 रुपए (58.76 रुपए प्रतिदिन) है।

शिवहर, अररिया, सीतामढ़ी से उलट पटना, बेगूसराय व मुंगेर प्रति व्यक्ति सकल जिला घरेलू उत्पाद की दृष्टि से बिहार के सबसे समृद्ध जिले हैं। पटना के लोगों का औसत सकल जिला घरेलू उत्पाद 1,14,541 रुपए (313.81 रुपए प्रतिदिन) है, बेगूसराय का 46,991 रुपए (128.74 रुपए प्रतिदिन) मुंगेर का 44,176 रुपए (121 रुपए प्रतिदिन) है। यानी शिवहर के प्रति व्यक्ति सकल जिला घरेलू उत्पाद से पटना का प्रति व्यक्ति सकल जिला घरेलू उत्पाद सात गुणा अधिक है।

बिहार के आर्थिक सर्वे के अनुसार, राज्य के 38 जिलों में सिर्फ छह जिलों पटना, रोहतास, मुजफ्फरपुर, बेगूसराय, मुंगेर व भागलपुर में प्रति व्यक्ति सकल जिला घरेलू उत्पाद 2021-22 में राज्य के औसत (28,679 रुपए) से अधिक था। दिलचस्प तथ्य यह है कि बिहार का सबसे कम उत्पादकता व आय वाला जिला शिवहर देश के 112 आकांक्षी जिलों की सूची में शामिल नहीं है और नीति आयोग के आंकड़ों में वहां तेजी से गरीबी उन्मूलन का दावा किया गया है। हालांकि इस सूची में बिहार से जो 13 जिले शामिल हैं, उसमें सीतामढ़ी और अररिया का नाम है।

आंकड़े बताते हैं कि बिहार के प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद देश के प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद का मोटे तौर पर एक तिहाई है। वर्ष 2022-23 के त्वरित आकलन के अनुसार, भारत का प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद 98, 374 रुपये रहा, जबकि बिहार का प्रति व्यक्ति सकल घरेलू उत्पाद 31,280 रुपये रहा। यानी बिहार के एक व्यक्ति से भारत के एक व्यक्ति का सकल घरेलू उत्पादन करीब तीन गुणा अधिक है। अमूमन इससे पूर्व के चार सालों का ट्रेंड भी ऐसा ही रहा है।[3]

आंकड़े यह भी बताते हैं कि भारत व बिहार में विभिन्न सेक्टर में रोजगार के हिस्से का ट्रेंड एक जैसा है, लेकिन उनकी संख्या या प्रतिशत में अंतर है।[2]

नीति आयोग के आंकड़े क्या कहते हैं?

नीति आयोग के नेशनल मल्टीडायमेंशनल प्रॉवर्टी इंडेक्स - 2023 के अनुसार, बिहार का अररिया ऐसा जिला है जहां बहुआयामी रूप से सबसे अधिक गरीब (52.07 प्रतिशत) लोग रहते हैं। इसके साथ ही पूर्णिया (50.70%) व सुपौल (50. 64%) दो और ऐसे जिले हैं जहां 50 प्रतिशत से अधिक लोग बहुआयामी रूप से गरीब हैं। शिवहर सहित राज्य में 18 ऐसे जिले हैं, जहां एक तिहाई यानी 33 प्रतिशत से अधिक लोग बहुआयामी रूप से गरीब हैं। ये आंकड़े एनएफएचएस - 5 (वर्ष 2019-21) के डेटा पर आधारित हैं।

इस रिपोर्ट के अनुसार, पूर्वी चंपारण (27.74%) व शिवहर (26.24%) दो ऐसे शीर्ष जिले हैं जहां बड़ी संख्या में लोगों को बहुआयामी गरीबी के दायरे से निकाला गया है। इस कड़ी में सीतामढ़ी का नंबर दसवां हैं जहां 20.64 प्रतिशत लोग गरीबी के दायरे से बाहर हो गये। ये अंतर एनएफएचएस - 4 (वर्ष 2015-16) व एनएएफएचएस - 5 (वर्ष 2019-21) के आंकड़ों की तुलना पर आधारित हैं। ध्यान रहे कि बिहार के आर्थिक सर्वे के अनुसार, शिवहर, अररिया, सीतामढ़ी व पूर्वी चंपारण चार सबसे कम प्रति व्यक्ति आय वाले जिले हैं।[3]

बिहार का औद्योगिक स्वरूप और सरकार के प्रयास

पिछली सदी तक (एकीकृत बिहार के दौरान), जब झारखंड एक अलग राज्य नहीं था, तो इस इलाके का उत्तरी हिस्सा(वर्तमान बिहार) ज्यादातर खेती वाला इलाका था, जहाँ ज्यादातर औद्योगिक इकाइयां खेती पर आधारित थीं। इंटीग्रेटेड बिहार का दक्षिणी हिस्सा, जहाँ खनिज भंडार और औद्योगिक इकाइयां थीं, अब झारखंड है। आज के बिहार में खनिज आधारित औद्योगिक इकाइयां हमेशा कम रही हैं। उपजाऊ खेती की जमीन और कई तरह की फसलों की वजह से, राज्य के इस इलाके में अभी भी अच्छी संभावनाएँ हैं।

हालांकि, खेती पर आधारित कई औद्योगिक इकाइयों बंद होने से कई लोगों को पलायन करना पड़ा है, वहीं किसानों को अपनी उपज बेचने और उसका सही दाम पाने में भी मुश्किलों का सामना करना पड़ रहा है।

2016 में, बिहार सरकार ने राज्य की औद्योगिक रफ्तार को बढ़ावा देने और इसकी सुस्त स्थिति को बदलने के लिए इंडस्ट्रियल इन्वेस्टमेंट पॉलिसी शुरू की।

इस पॉलिसी का मकसद 15% की सालाना औद्योगिक विकास वृद्धि दर हासिल करना और राज्य के राज्य के सकल घरेलू उत्पाद में सेकेंडरी सेक्टर का योगदान 25% तक बढ़ाना था। इस पॉलिसी में खाद्य प्रसंस्करण, पर्यटन, छोटी मशीनों का निर्माण, खासकर खेती की मशीनरी, इलेक्ट्रॉनिक्स हार्डवेयर मैन्युफैक्चरिंग, कपड़ा निर्माण, प्लास्टिक एवं रबर निर्माण, नवीनीकृत ऊर्जा क्षेत्र, चमड़ा उद्योग, स्वास्थ्य एवं तकनीकी शिक्षा जैसे खास सेक्टर पर जोर दिया गया। ये सेक्टर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तौर पर खेती से जुड़े हैं।

इसके बावजूद, वित्त वर्ष 2017–18 से 2021–22 तक, सेकेंडरी सेक्टर का योगदान लगभग 20% रहा, जो न सिर्फ पश्चिमी और दक्षिणी औद्योगिक राज्यों से कम है, बल्कि पड़ोसी और दूसरे बड़े पूर्वी राज्यों जैसे उत्तर प्रदेश (29.2), पश्चिम बंगाल (30.3), झारखंड (43.5), ओडिशा (48.6), असम (39.7), और छत्तीसगढ़ (49.9) से भी कम है। आर्थिक सर्वे के अनुसार, 2016 में औद्योगिक नीति लागू होने के बाद, 30 सितंबर, 2023 से राज्य में आने वाले या प्रस्तावित बड़े निवेश मुख्य रूप से खाद्य प्रसंस्करण, नवीनीकृत ऊर्जा, सामान्य निविर्माण, इथेनॉल, प्लास्टिक और रबर, और सीमेंट में हुए हैं। इससे पता चलता है कि बिहार में खेती और उससे जुड़े सेक्टर में इंडस्ट्रियल संभावनाओं की संभावनाएँ बेहतर हैं।

बिहार की ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास में मुख्य बाधाएं

बिहार की ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास में मुख्य बाधाएं बाढ़ और सूखे का दोहरा प्रकोप, छोटे भूमि जोत (औसतन 1 हेक्टेयर से कम), कृषि में कम निवेश, कमजोर बुनियादी ढांचा (सड़क, बिजली, भंडारण), औद्योगीकरण की कमी और व्यापक पलायन हैं। लगभग 80% आबादी कृषि पर निर्भर है, जहाँ निम्न उत्पादकता और विपणन (मार्केटिंग) सुविधाओं का अभाव ग्रामीण विकास को रोकता है।[4]

खप्राकृतिक आपदाएँ (बाढ़ और सूखा): उत्तरी बिहार हर साल बाढ़ से प्रभावित होता है, जिससे फसलों और संपत्ति का भारी नुकसान होता है, जबकि दक्षिण बिहार अक्सर सूखे की स्थिति का सामना करता है।

- कृषि आधारित अर्थव्यवस्था और कम उत्पादकता: अधिकांश ग्रामीण आबादी आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर है, लेकिन खेती पुराने तरीकों से होती है और कृषि इनपुट (जैसे बीज, खाद) की लागत अधिक है।
- भूमि का छोटे आकार में बँटना (Fragmentation): 91% से अधिक किसानों के पास 1 हेक्टेयर से कम भूमि (सीमांत जोत) है, जिससे बड़े पैमाने पर खेती और आधुनिक मशीनीकरण (mechanization) कठिन हो जाता है।
- बुनियादी ढांचे (Infrastructure) का अभाव: ग्रामीण क्षेत्रों में अच्छी सड़कों, बिजली और गोदामों (Storage) की भारी कमी है, जिससे फसल कटाई के बाद नुकसान होता है और किसानों को सही दाम नहीं मिलता।
- पलायन (Migration) और रोजगार की कमी: ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के गैर-कृषि अवसर बहुत कम हैं, जिसके कारण युवाओं का बड़े पैमाने पर अन्य राज्यों में पलायन होता है।
- तकनीकी और वित्तीय साक्षरता की कमी: आधुनिक खेती की तकनीक और सरकारी योजनाओं की जानकारी के अभाव में किसान अभी भी पारंपरिक खेती कर रहे हैं। साथ ही, संस्थागत ऋण (बैंक लोन) तक पहुंच सीमित है।

- औद्योगीकरण का अभाव: ग्रामीण आधारित लघु उद्योगों या कृषि-आधारित उद्योगों की कमी के कारण स्थानीय स्तर पर मूल्य संवर्धन (Value addition) नहीं हो पाता है।

इन चुनौतियों के कारण बिहार की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में विविधता (diversification) नहीं आ पाई है, जिससे ग्रामीण गरीबी बनी हुई है।

आर्थिक सर्वे डेटा

बिहार में 88.7 प्रतिशत लोग गांव में रहते हैं। राज्य सुखाड़ और बाढ़ दोनों का सामना करता है। बिहार को नोटबंदी, जीएसटी और कोविड लॉकडाउन ने भी नुकसान पहुंचाया है और आज भी बहुत से युवा गांव में बेरोजगार बैठे हैं। राज्य में शिक्षा का बेहतर इंतजाम नहीं है, इससे अर्द्ध शिक्षित व अकुशल लोग तैयार होते हैं।

वे आर्थिक सर्वे के डेटा को इंगित करते हुए कहते हैं कि बिहार में लगभग 15-16 ऐसे जिले हैं जहां के लोगों की औसत वार्षिक आय 25 हजार रुपये से कम है। ऐसे में क्षेत्रीय विकास परिषद (मिथिलांचल विकास परिषद, सीमांचल विकास परिषद आदि) का गठन कर और उसके अनुसार योजना तय कर आगे बढने से विकास में मदद मिल सकती है।

प्रधानमंत्री की आर्थिक मामलों की सलाहकार परिषद के वर्किंग पेपर 'रिलेटिव इकोनॉमिक परफॉरमेंस ऑफ इंडियन स्टेट्स: 1960-61 टू 2023-24' के अनुसार, बिहार की प्रति व्यक्ति आय देश में सबसे कम बनी हुई है और यह भारत के प्रति व्यक्ति आय की तुलना में 77 प्रतिशत कम है। यह देश में किसी राज्य का देखा गया अबतक का सबसे बड़ा अंतर है। आर्थिक सलाहकार परिषद ने अपने पेपर में कहा है कि यह अंतर काफी बड़ा है और इस अंतर को पाटने की दिशा में प्रगति के लिए बिहार को अपनी आर्थिक प्रगति में काफी तेजी लाने की आवश्यकता होगी। इस रिपोर्ट में देश की तुलना में बिहार की सापेक्ष प्रति व्यक्ति आय में 1960-61 से 2000-01 तक गिरावट को रेखांकित किया गया है।

हालांकि 2000-01 से 2010-11 के बीच इसमें मामूली सुधार हुआ और यह अब अपेक्षाकृत स्थिर बनी हुई है। इस अध्ययन के अनुसार, 1960-61 में एकीकृत बिहार की प्रति व्यक्ति आय देश की प्रति व्यक्ति आय की तुलना में 70.3 प्रतिशत थी। वर्ष 2000 में बिहार से अलग झारखंड का गठन हुआ, उस समय (वर्ष 2000-01) राष्ट्रीय औसत से विभाजित बिहार की आय 31.2 और नवगठित झारखंड की 52.8 प्रतिशत थी। जबकि वर्ष 2023-24 में बिहार की प्रति व्यक्ति आय देश की तुलना में 32.8 प्रतिशत और झारखंड की 57.2 प्रतिशत है।

हालांकि बिहार अपने आर्थिक पिछड़ेपन से निजात पाने के लिए केंद्र से स्पेशल स्टेटस (विशेष राज्य) का दर्जा मांगता रहा है और केंद्र उसकी इस मांग को खारिज करता रहा है।[5]

नाबार्ड (NABARD) की मदद से बिहार के ग्रामीण इलाकों में सड़कों का नया युग

राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) के सहयोग से बिहार में ग्रामीण सड़कों का नेटवर्क लगभग पूरा हो चुका है। राज्य में बड़ी संख्या में ग्रामीण सड़कों के निर्माण से गांवों और शहरों के बीच की दूरी लगातार कम हो रही है, जिससे ग्रामीण अर्थव्यवस्था को नई गति मिली है। इस योजना के अंतर्गत विभिन्न जिलों में स्वीकृत सड़कों के निर्माण की ग्रामीण कार्य विभाग ने जिलावार प्रगति रिपोर्ट जारी की है। रिपोर्ट के अनुसार, वर्ष 2023 में राज्य में कुल 2024 ग्रामीण सड़कों के निर्माण की प्रशासनिक मंजूरी दी गई थी, जिनमें से अब तक 1857 सड़कों का निर्माण पूरा हो चुका है। नाबार्ड के सहयोग से बनी इन सड़कों की कुल लंबाई 4,822 किलोमीटर से अधिक है। इसके अलावा, इन सड़कों के साथ कुल 1234 पुलों के निर्माण का लक्ष्य भी निर्धारित किया गया था, जिनमें से 900 पुलों का निर्माण कार्य सफलतापूर्वक पूरा हो चुका है और बाकी पुलों का निर्माण जारी है।

कई जिलों का प्रदर्शन रहा शानदार

नालंदा समेत कई जिलों का प्रदर्शन ग्रामीण सड़कों के निर्माण में शानदार रहा है। ग्रामीण कार्य विभाग की जानकारी के अनुसार, नालंदा जिला सबसे आगे है, जहां कुल 214 सड़कों की मंजूरी में से 199 सड़कों का निर्माण पूरा हो चुका है। नालंदा में अब तक 370.712 किलोमीटर से अधिक सड़कें बन चुकी हैं, जबकि कुल लक्ष्य 396.194 किलोमीटर था। इसके साथ ही नालंदा में 67 पुलों का निर्माण तय था, जिनमें से 59 पुल बनकर तैयार हो चुके हैं। वहीं गया जिले में कुल 129 सड़कों

के निर्माण की मंजूरी मिली थी, जिनमें से 120 सड़कों का निर्माण पूरा हो चुका है। गया में 395.245 किलोमीटर सड़कें बनाने का लक्ष्य था, जिसमें अब तक 365.782 किलोमीटर सड़क बन चुकी है। साथ ही गया में निर्माणाधीन 57 पुलों में से 46 पुल भी तैयार हो चुके हैं।

पटना जिले में 329.708 किलोमीटर, औरंगाबाद में 244.856 किलोमीटर, दरभंगा में 235.782 किलोमीटर, पूर्वी चंपारण में 230.772 किलोमीटर, मुंगेर में 202.814 किलोमीटर, रोहतास में 176.462 किलोमीटर, जहानाबाद में 169.606 किलोमीटर और सीतामढ़ी में 151.346 किलोमीटर सड़कों का निर्माण सफलतापूर्वक पूरा हो चुका है।[6]

वो क्षेत्र जो बदल सकते हैं बिहार की आर्थिक तस्वीर

बिहार की आर्थिक तस्वीर बदलने के लिए कृषि-आधारित उद्योग (खाद्य प्रसंस्करण), पर्यटन, कौशल विकास, ढांचागत विकास (सड़क, बिजली, और कनेक्टिविटी), और सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम (MSME) सबसे प्रमुख क्षेत्र हैं। प्दअमेज प्दकपं और ैच्त्थ् के अनुसार, कृषि (सब्जी और फल उत्पादन) में अपार संभावनाएं हैं, जबकि भागलपुर में सिल्क उद्योग और चीनी मिलों की पुनर्रचना से ग्रामीण अर्थव्यवस्था को बढ़ावा मिल सकता है।[7]

यहाँ उन प्रमुख क्षेत्रों का विवरण दिया गया है जो बिहार की आर्थिक स्थिति को बदल सकते हैं:

1. कृषि और खाद्य प्रसंस्करण (Agro&based Industries)

- कृषि उत्पादकता: बिहार की अर्थव्यवस्था की रीढ़ कृषि है। सब्जी उत्पादन (चौथा सबसे बड़ा उत्पादक) और फल उत्पादन को बढ़ावा देने की बहुत गुंजाइश है।
- खाद्य प्रसंस्करण (Food Processing): मक्का, मखाना, लीची, और आम जैसे फसलों के लिए प्रसंस्करण इकाइयां लगाने से किसानों की आय में काफी वृद्धि हो सकती है।
- चीनी मिलों का पुनरुद्धार: उत्तर बिहार में बंद हो रही चीनी मिलों को पुनर्जीवित करना, चीनी, इथेनॉल और बिजली उत्पादन को बढ़ावा दे सकता है।

2. पर्यटन और आतिथ्य (Tourism - Hospitality)

- धार्मिक और ऐतिहासिक पर्यटन: बोधगया, राजगीर, वैशाली, वाल्मीकि नगर और पटना जैसे स्थानों का विकास।
- आधारभूत ढांचे का विकास: हवाई अड्डों (जैसे दरभंगा और बिहटा) और बेहतर सड़कों की कनेक्टिविटी से पर्यटन में बड़ा उछाल संभव है।

3. एमएसएमई (MSME) और हस्तशिल्प (Handicraft)

- हस्तकरघा (Handloom): भागलपुर का सिल्क उद्योग, मधुबनी पेंटिंग और अन्य हस्तशिल्प क्षेत्रों में रोजगार के असीम अवसर हैं।
- स्थानीय लघु उद्योग: चप्पल, कपड़े और अन्य उपभोग की वस्तुओं का निर्माण करने वाले छोटे उद्योगों को प्रोत्साहन देकर स्थानीय स्तर पर रोजगार पैदा किया जा सकता है।

4. ढांचागत विकास (Infrastructure Development)

- बिजली: 2021 तक बिजली उत्पादन में वृद्धि (7700 मेगावाट) एक सकारात्मक संकेत है। छज्च्ब् की नई परियोजनाएं बिजली आपूर्ति में सुधार कर रही हैं।
- शहरीकरण: बिहार के कम शहरीकरण (11% आबादी) को बढ़ाकर और स्मार्ट शहरों के निर्माण से आर्थिक विकास तेज हो सकता है।

5. कौशल विकास और आईटी (Skill Development - IT)

- मानव संसाधन: युवाओं के कौशल विकास (Skills Development) के जरिए उन्हें स्थानीय और राष्ट्रीय स्तर पर रोजगार के लिए तैयार करना।

इसके अलावा यह भी आवश्यक है कि बिहार के दूसरे तमाम संस्थान बिहार से बाहर गए लोगों के संपर्क में रहें। वे बाहर में बसे बिहारियों से सामाजिक सुरक्षा, हुनर विकास, सूचना के प्रसार तथा व्यापार और वित्त के मामले में काफी कुछ हासिल कर सकते हैं।[8]

निष्कर्ष

बिहार की अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि, लघु उद्योगों और सेवा क्षेत्रों पर आधारित है जहाँ करीब 75 फीसदी लोग खेती पर निर्भर हैं। यहां खेती की तस्वीर बदल रही है। फसल की पैदावार बढ़ रही है, अलग-अलग तरह की फसलें उगाई जा रही हैं और महिलाएं खेती से जुड़े उद्यमी बन रही हैं। किसान अब मौसम के अनुकूल तकनीक, मशीनों और जैविक खेती को अपना रहे हैं।

हालांकि, अपर्याप्त बुनियादी ढांचे, धीमे औद्योगीकरण और सीमित मानव संसाधन विकास जैसी चुनौतियों के कारण राज्य की आर्थिक प्रगति अपेक्षाकृत धीमी रही है।

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि बिहार में ऊपरी सामाजिक पूंजी तथा संसाधनों की कमी राज्य के पिछड़ेपन का मुख्य कारण है। अगर सरकार संसाधनों पर खर्च करे और उचित नीति अपनाए तो निजी क्षेत्र में निवेश करने के लिए प्रेरित होंगे तथा रोजगार के अवसर यहाँ के बेरोजगार युवाओं को प्राप्त होंगे। गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रणाली अपनाने तथा उच्च शिक्षा के अच्छे संस्थानों के खुलने से शिक्षा के लिए यहाँ के युवाओं के पलायन उन पर रोक लगेगी। इसके लिए राज्य को काफी पैसे और निवेश की आवश्यकता पडेघ्गी। यदि इन बाधाओं को प्रभावी नीतियों और योजनाओं के माध्यम से दूर किया जाए, तो बिहार एक समृद्ध, औद्योगिक और आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था के रूप में उभरने की क्षमता रखता है।

सन्दर्भ

1. अर्जुन कुमार मौर्य, जय शंकर शुक्ल. ग्रामीण विकास में कौशल विकास की भूमिका एवं अपेक्षाओं का अवलोकनार्थ अध्ययन (फैजाबाद (अयोध्या) जिला के विशेष संदर्भ में).International Journal of Reviews and Research in Social Sciences- 2022 (2022; 10(4):145-2.
2. रवि प्रकाश पाण्डेय, रामजी बंशकार. भारतीय ग्रामीण विकास में स्व-सहायता समूह का योगदान-एक आर्थिक अध्ययन (रीवा जिले के विशेष संदर्भ में). International Journal of Reviews and Research in Social Sciences. 2024; 12(1):57-6. doi: 10.52711/2454-2687.2024.00011
3- Mr- Srinivasa-K-1]- & Challakumar J-A- Arul (2022) Regional Rural Banks and Rural Economic Development August 2022] IJIRT] Volume 9 Issue 3 | ISSN% 2349&6002
3. Mr. Srinivasa.K.1,. & Challakumar J.A. Arul (2022) Regional Rural Banks and Rural Economic Development August 2022, IJIRT , Volume 9 Issue 3 | ISSN: 2349-6002
4. Bihar Government. (n.d.). Retrieved from https://state.bihar.gov.in
5. Hospaccx Healthcare Business Consulting. (n.d.). Retrieved from http://www.hospaccxconsulting.com
6. India Brand Equity Foundation. (n.d.). Bihar. Retrieved from https://www.ibef.org/states/bihar
7. India Today. (n.d.). Retrieved from http://www.indiatoday.in
8. PRS Legislative Research. (2023). Bihar Budget Analysis 2023-24. Retrieved from https://prsindia.org/budgets/states/bihar-budget-analysis-2023-24

प्राचीन भारत की राजनीतिक स्थितिः एक ऐतिहासिक अध्ययन

डॉ० रोहित कुमार सिंह

प्राचीन इतिहास पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग

सारांश

प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास ईसा पूर्व तीसरी सहस्राब्दी से गुप्त साम्राज्य के पतन तक विस्तारित है, जिसमें विविध राजवंशों, शासन प्रणालियों और क्षेत्रीय शक्तियों का उदय और अस्त शामिल है। यह अध्ययन केवल राजाओं की सूची नहीं, बल्कि सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और भौगोलिक तत्वों के साथ उनके अंतर्संबंधों को समझने का प्रयास है। सिंधु घाटी सभ्यता के नगरीय प्रशासन से लेकर वैदिक काल के जनपदों, मौर्य साम्राज्य के केंद्रीकरण से क्षेत्रीय शक्तियों के उत्थान की यात्रा, भारत की शासन कला और सत्ता संरचना के विकास को दर्शाती है। यह चक्रीय परिवर्तनों और क्षेत्रीय अनुकूलन का परिणाम है, जिसमें वैदिक शासन से मौर्य की नौकरशाही और गुप्त काल की विकेंद्रीकृत सामंती संरचनाओं तक पहुँचना शामिल है। राजनीतिक स्थिरता ने सांस्कृतिक और आर्थिक समृद्धि को बढ़ावा दिया, जबकि विखंडन ने क्षेत्रीय शक्तियों को जन्म दिया। प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचार राजा के कर्तव्यों और शक्तियों के संतुलन को स्थापित करने का प्रयास करता रहा, जिससे एक परिपक्व प्राचीन राज्य प्रणाली की समझ मिलती है।

प्रस्तावना

प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास अत्यंत विस्तृत, विविधतापूर्ण और गतिशील रहा है। यह कालखंड ईसा पूर्व तीसरी सहस्राब्दी से लेकर गुप्त साम्राज्य के पतन (लगभग छठी शताब्दी ईस्वी) तक फैला हुआ है, जिसमें विभिन्न राजवंशों, शासन प्रणालियों और क्षेत्रीय शक्तियों का उदय और अस्त देखा गया। प्राचीन भारत की राजनीतिक स्थिति का अध्ययन केवल राजाओं और साम्राज्यों की सूची मात्र नहीं है, बल्कि यह सामाजिक संरचना, आर्थिक विकास, धार्मिक विचारों और भौगोलिक कारकों के साथ उनके जटिल अंतर्संबंधों को समझने का प्रयास है। सिंधु घाटी सभ्यता की नगरीय प्रशासनिक व्यवस्था से लेकर वैदिक काल के जनपदों और महाजनपदों की ओर संक्रमण, और फिर मौर्य साम्राज्य के विशाल केंद्रीकृत शासन से लेकर क्षेत्रीय शक्तियों के उत्थान तक, यह यात्रा भारत की शासन कला और सत्ता संरचना के विकास को दर्शाती है। इस अध्ययन का उद्देश्य प्राचीन भारतीय राजनीतिक परिदृश्य की प्रमुख विशेषताओं, विभिन्न युगों में आए महत्वपूर्ण परिवर्तनों और राजनीतिक विचारों के विकास का एक व्यापक विश्लेषण प्रस्तुत करना है।

सिंधु घाटी सभ्यता की प्रशासनिक संरचना

प्राचीनतम ज्ञात नगरीय सभ्यता, सिंधु घाटी सभ्यता (लगभग 2500 ईसा पूर्व से 1700 ईसा पूर्व), राजनीतिक संगठन के संबंध में आज भी कई रहस्यों से घिरी हुई है, मुख्यतः इसकी लिपि के अप्रभावित रहने के कारण। हालांकि, पुरातात्विक साक्ष्य मोहनजोदड़ो और हड़प्पा जैसे शहरों की सुनियोजित वास्तुकला, मानकीकृत मापों और भारों तथा उन्नत जल निकासी प्रणालियों की ओर संकेत करते हैं। यह उच्च स्तर की केंद्रीयकृत योजना और समन्वय की मांग करता है। विद्वानों का मानना है कि यहां संभवतः पुरोहित वर्ग या एक शक्तिशाली व्यापारी वर्ग का शासन रहा होगा, क्योंकि बड़े शाही स्मारकों या सैन्य गतिविधियों के स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलते हैं। प्रशासन का ध्यान मुख्य रूप से नागरिक व्यवस्था, व्यापार नियंत्रण और सार्वजनिक कार्यों के प्रबंधन पर केंद्रित प्रतीत होता है, जो एक प्रकार की नागरिक-केंद्रित प्रशासनिक व्यवस्था का संकेत देता है।

वैदिक काल, जन से जनपद और राजतंत्र का उदय

आर्यों के आगमन और वेदों की रचना के साथ भारत का राजनीतिक परिदृश्य बदलना शुरू हुआ। प्रारंभिक वैदिक काल (लगभग 1500 ईसा पूर्व से 1000 ईसा पूर्व) में राजनीतिक इकाई 'जन' थी, जिसका नेतृत्व एक मुखिया श्राजन करता था।

यह राजन प्रायः वंशानुगत नहीं होता था और उसकी शक्ति सभा और समिति नामक जनसभाओं द्वारा नियंत्रित होती थी। इस समय का शासन स्वरूप राजतंत्र और गणतंत्र के तत्वों का मिश्रण था।

उत्तर वैदिक काल (लगभग 1000 ईसा पूर्व से 600 ईसा पूर्व) में राजनीतिक विस्तार हुआ। 'जन' बड़े होकर 'जनपद' बन गए। राजन की शक्ति में वृद्धि हुई, और वंशानुगत उत्तराधिकार अधिक प्रचलित हो गया। कर्मकांडीय पुरोहितों का प्रभाव बढ़ा, जिन्होंने राजा के दैवीय अधिकारों को स्थापित करने में सहायता की। इस काल में भूमि पर अधिकार स्थापित करने की प्रवृत्ति बढ़ी, जिससे स्थायी सेनाएं और नौकरशाही की आवश्यकता महसूस हुई, जिसने धीरे-धीरे गणतंत्रात्मक तत्वों को कमजोर किया और राजतंत्र को मजबूत किया।

महाजनपदों का काल और राजनीतिक विखंडन

ईसा पूर्व छठी शताब्दी भारत के राजनीतिक इतिहास में एक महत्वपूर्ण मोड़ थी। इस समय छोटे जनपदों का स्थान बड़े क्षेत्रीय राज्यों ने ले लिया, जिन्हें 'महाजनपद' कहा गया। इनकी संख्या सोलह थी और ये गंगा-यमुना दोआब तथा विंध्य क्षेत्र में केंद्रित थे। ये महाजनपद दो मुख्य प्रकार के थेः राजतंत्रात्मक (जैसे मगध, कोसल, वत्स) और गणतांत्रिक या संघ (जैसे वज्जि, मल्लय)।

मगध साम्राज्य इस काल का सबसे शक्तिशाली राज्य बनकर उभरा, जिसकी शक्ति का आधार लौह संसाधनों की उपलब्धता, उपजाऊ भूमि और एक सुसंगठित सेना थी। बिम्बिसार और अजातशत्रु जैसे शासकों ने कूटनीति, वैवाहिक संबंधों और सैन्य शक्ति के माध्यम से अपना प्रभुत्व स्थापित किया। इन राज्यों के बीच निरंतर संघर्ष चलता रहा, जो अंततः भारत में बड़े साम्राज्यों के उदय के लिए पृष्ठभूमि तैयार करने वाला था। इस युग में राजनीतिक संगठन अधिक जटिल और प्रतिस्पर्धी बन गया।

मौर्य साम्राज्य, केंद्रीकृत प्रशासन का शिखर

चंद्रगुप्त मौर्य द्वारा स्थापित मौर्य साम्राज्य (लगभग 322 ईसा पूर्व से 185 ईसा पूर्व) प्राचीन भारत की राजनीतिक स्थिति का शिखर माना जाता है। यह पहला साम्राज्य था जिसने भारतीय उपमहाद्वीप के एक विशाल क्षेत्र को राजनीतिक रूप से एकीकृत किया। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इस साम्राज्य की प्रशासनिक संरचना का विस्तृत वर्णन मिलता है।

मौर्य प्रशासन अत्यधिक केंद्रीकृत था। सम्राट सर्वोच्च शासक होता था, जिसके अधीन एक विशाल मंत्रिपरिषद (अमात्य परिषद) कार्य करती थी। प्रांतीय प्रशासन को जिलों और फिर ग्रामों में विभाजित किया गया था। मेगास्थनीज के विवरण के अनुसार, पाटलिपुत्र में एक विस्तृत नौकरशाही थी, जिसमें राजस्व संग्रहण, न्याय वितरण, जासूसी (गुप्तचर विभाग), और सार्वजनिक निर्माण जैसे कार्य अत्यंत सुव्यवस्थित थे। अशोक के शिलालेख प्रशासन की सुदूर क्षेत्रों तक पहुँच और शासन में 'धर्म' के समावेश को दर्शाते हैं। मौर्यों का प्रशासनिक मॉडल प्राचीन भारतीय शासन कला के इतिहास में अभूतपूर्व था, जिसने शासन और कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को एक नया आयाम दिया।

मौर्योत्तर काल और क्षेत्रीय शक्तियों का उदय

मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद, राजनीतिक शक्ति का विकेंद्रीकरण हुआ। मौर्योत्तर काल (लगभग दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व से तीसरी शताब्दी ईस्वी) क्षेत्रीय शक्तियों के उदय का साक्षी रहा। उत्तर-पश्चिम में इंडो-ग्रीक (यवन), शक (सीथियन), पार्थियन (पह्लव) और कुषाण जैसी विदेशी शक्तियों ने शासन किया। इन शक्तियों ने भारतीय राजनीतिक ढांचे को प्रभावित किया, विशेषकर सैन्य प्रौद्योगिकी और प्रशासनिक समन्वय के संदर्भ में। उदाहरण के लिए, कुषाण शासक कनिष्क ने विशाल साम्राज्य पर शासन किया और श्देवराजश् की उपाधि धारण की, जो राजसत्ता के दैवीकरण की प्रवृत्ति को दर्शाता है।

इस काल में दक्षिण भारत में भी महत्वपूर्ण राजनीतिक विकास हुए। सातवाहन (आंध्रभृत्य) महाराष्ट्र और दक्कन क्षेत्र में प्रभावशाली बने, जिन्होंने भूमि अनुदान की प्रथा को बढ़ावा दिया, जिससे सामंती प्रवृत्तियों का उदय हुआ।

गुप्त काल, स्वर्ण युग और प्रशासनिक संतुलन

गुप्त काल (लगभग चौथी शताब्दी ईस्वी से छठी शताब्दी ईस्वी) को अक्सर प्राचीन भारत का स्वर्ण युग कहा जाता है, जिसमें राजनीतिक स्थिरता और सांस्कृतिक विकास चरम पर था। यद्यपि गुप्त साम्राज्य मौर्यों की तरह अत्यधिक केंद्रीकृत नहीं था, फिर भी इसकी प्रशासनिक व्यवस्था सुदृढ़ थी।

प्रारंभिक गुप्त शासक, जैसे चंद्रगुप्त प्रथम और समुद्रगुप्त, सीधे शासन करते थे, लेकिन धीरे-धीरे विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया शुरू हुई। गुप्त साम्राज्य सामंतवाद की ओर झुकाव रखता था, जहाँ अधीनस्थ शासकों को कुछ स्वायत्तता दी जाती थी, जिसके बदले में वे कर और सैन्य सहायता प्रदान करते थे। प्रशासन में भुक्ति (प्रांत), विषय (जिला) और ग्राम जैसी इकाइयाँ थीं। गुप्त राजाओं की उपाधियाँ (जैसे महाराजाधिराज, परमभट्टारक) उनकी बढ़ती हुई संप्रभुता को दर्शाती हैं। इस काल की राजनीतिक स्थिति यह दर्शाती है कि केंद्रीकरण और क्षेत्रीय स्वायत्तता के बीच एक संतुलन बनाने का प्रयास किया गया था।

प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचारों का आधार

प्राचीन भारत की राजनीतिक स्थिति केवल शासकों के भौतिक प्रभुत्व तक सीमित नहीं थी, बल्कि यह गहन राजनीतिक दर्शन से भी अनुप्राणित थी। धर्मशास्त्र (जैसे मनुस्मृति) और राजनीतिशास्त्र (जैसे अर्थशास्त्र) ने शासक के कर्तव्यों और अधिकारों की रूपरेखा प्रस्तुत की। 'दंडनीति' (शासन की कला) और राजा के दैवीय उत्तरदायित्व केंद्रीय विषय थे। राजा को धर्म (नैतिक और वैदिक कानून) के अनुसार शासन करना होता था, और उसका प्राथमिक कार्य प्रजा की रक्षा और 'धर्म' की स्थापना करना था। यह विचार तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्थाओं को एक नैतिक आधार प्रदान करता था, भले ही व्यवहार में अक्सर शक्ति ही अंतिम निर्णायक होती थी।

निष्कर्ष

प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास निरंतर परिवर्तन और अनुकूलन की गाथा है। यह एक रैखिक प्रगति नहीं थी, बल्कि चक्रीय उतार-चढ़ावों और विभिन्न मॉडलों के प्रयोग का परिणाम थी। सिंधु सभ्यता की संगठित नागरिकता से लेकर वैदिक जनपदों की अर्ध-जनतांत्रिक व्यवस्था तक, महाजनपदों की तीव्र प्रतिस्पर्धा से लेकर मौर्यों के अभूतपूर्व केंद्रीकरण तक, और अंत में गुप्तों के सामंतवादी संतुलन तक, प्राचीन भारत ने शासन कला के विविध रूपों को अपनाया। राजनीतिक स्थिरता प्रायः सांस्कृतिक और आर्थिक समृद्धि की ओर ले जाती थी, जबकि सत्ता संघर्ष और बाहरी आक्रमण राजनीतिक विखंडन का कारण बनते थे। इन विभिन्न चरणों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत की राजनीतिक स्थिति, क्षेत्रीय शक्तियों, सैन्य क्षमता, प्रशासनिक नवाचार और दार्शनिक सिद्धांतों के जटिल अंतर्संबंधों का परिणाम थी, जिसने बाद के भारतीय इतिहास की नींव रखी।

संदर्भ

1. A. L. Basham. (1954). The Wonder That Was India. Sidgwick and Jackson.
2. R. S. Sharma. (2005). India's Ancient Past. Oxford University Press.
3. Sharma, R. S. (2007). India's Ancient Past. Oxford University Press.
4. Thapar, R. (2015). The Penguin History of Early India: From the Earliest Times to AD 1300. Penguin Books.
5. Mookerji, R. K. (1959). Chandragupta Maurya and His Times. Motilal Banarsidass Publishers.
6. Misra, S. N. (2006). Ancient Indian Political Thought and Institutions. R.K. Publications.

डॉ० रामविलास शर्मा और हिन्दी भाषा के विकास में उनका योगदान

डॉ० तानाबाई पाटिल

शोलापुर, महाराष्ट्र

भाषा हमारे व्यक्तित्व का आईना है। यह हर किसी के लिए सुलभ है, व्यक्ति के पूरे व्यक्तित्व में हवा-पानी की तरह गहराई तक बसी हुई है, इसलिए इसके सहारे शिक्षित और अशिक्षित, स्त्री और पुरूष, उच्च की और निम्न वर्ग आदि समाज के सभी तबके के व्यक्तियों को छेड़ा और उकसाया जाना संभव है। 'छेड़ना' और 'उकसाने' की झलक 'हिंदी-उर्दू' विवाद के संदर्भ में, हमें इस लेख में भी मिलते हैं। रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव के शब्दों में, ''भाषा अगर दो दिलों को जोड़ने का काम करती है तो वह दो दिलों को तोड़ने का साधन भी बनती है। अगर भाषा के सहारे हम 'सच' को पकड़ने की क्षमता रखते हैं तो उसी के सहारे हम 'झूठ' को भी सच साबित करने का सामर्थ्य रखते हैं।'' [भाषाई अस्मिता और हिंदी, पृष्ठ-19] इस लेख में रामविलास शर्मा ने, हिन्दी भाषा की विकास प्रक्रिया को भारतेन्दु युग के तहत दिखाया है। पूरा लेख 21 खण्डों में है, जिसमें शर्माजी शुरूआत के 10 खण्डों में विशाल हिन्दी-भाषा जाति, हिन्दी की साहित्यिक विरासत और उसका भाषायी परिवेश, लल्लूजी लाल और उनके पहले के लेखकों की रचनाओं में 'भये','सुनाय' का प्रयोग', आवै'-' जावै की जगह आये', 'जाये की प्रतिष्ठा, पूर्वकालिक क्रियारूपों में कर और करके का प्रयोग, पंजाबी और राजस्थानी का प्रभाव, हिंदी-उर्दू के विकास में ब्रजभाषा की भूमिका, पुरानी हिन्दी में 'ने' का प्रयोग और लल्लूजी लाल और मीर अम्मन के गद्य की सामान्य विशेषमताएँ और भेद बतलायी गई हैं।

हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास और प्रसार की राह में जो कठिनाइयाँ थीं, उन्हें दूर करने के लिए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 1873 ई. में 'हरिश्चन्द्र मैग्जीन' नाम की पत्रिका निकाली। इस पत्रिका का गहरा असर हिन्दी भाषा के निखार और साहित्य के विकास पर पड़ा। यह हमारे लिए गर्व की बात है कि, जातीयता की दृष्टि से आज हिन्दी बोलने वालों की संख्या दुनिया में सबसे ज्यादा है। आधुनिक हिन्दी भाषा और साहित्य की प्रगति के सौ वर्ष पूरे हुए हैं और इन सौ वर्षों में हमने अपना एक अलग मुकाम बनाया है, जो हमारे लिए जातीय और राष्ट्रीय महत्व की घटना है। हम देखते हैं कि, जिस तरह हिन्दी का सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश है उसी तरह उसका एक भाषागत परिवेश भी है, जिसकी अपनी कुछ विशेषताएँ भी है:-

(1) 'हिन्दी के भाषागत परिवेश की पहली विशेषता यह है कि हिन्दी प्रदेश की बोलियों में सामान्य तत्वों के अलावा उनके व्याकरण और शब्द भण्डार की अपनी विशेषताएँ हैं। यह अन्तर्जनपदीय परिवेश हिन्दी भाषा को प्रभावित करता है और स्वयं भी उससे प्रभावित होता है।' [हिन्दी भाषा की विकास-परम्परा और भारतेंदु युग-पृष्ठ-141]

(2) 'हिन्दी-उर्दू का सह-अस्तित्व और परम्परा प्रभाव हिन्दी के भाषायी परिवेश की दूसरी विशेषता है।' [वही, पृष्ठ-142] यह भी तब जबकि विशिष्ट शब्द-भण्डार के विचार से (हिन्दी-उर्दू) दोनों में उतना फासला है जितना अंग्रेजी और लैटिन में नहीं है। यह और बात है कि संरचना और शब्द-भण्डार की दृष्टि से दोनों के रूप मिलते-जुलते हैं।

(3) 'हिन्दी के भाषागत परिवेश की तीसरी विशेषता इसके सब-स्टैण्डर्ड' रूप है, जो जनपदीय बोलियों के प्रभाव से बनते हैं। [वही, पृष्ठ, 143] जैसे महंगी आदि से प्रभावित पटना की हिन्दी, भोजपुरी से प्रभावित बनारसी और खड़ी बोली की राजधानी दिल्ली पर पंजाबी का असर।

(4) रामविलास शर्मा अरबी-फारसी के महत्व को दरकिनार करते हुए लिखते हैं कि ''किसी भारतीय भाषा के लिए अरबी या फारसी का वह महत्व नहीं हो सकता जो उसके लिए संस्कृत हमारे देश की ही नहीं हमारे प्रदेश की भी भाषा रह चुकी है। वे कहते हैं कि अगर उर्दु की शब्द उधार लेने की हैं तो वह तुर्की से ले क्योंकि दिल्ली की गद्दी पर तुर्क बैठे थे। 'तुर्की' भाषा से शब्द उधार लेने का है रामविलास शर्मा का यह कोण गले से नीचे नहीं उतरती।

लोकतांत्रिक परंपरा में भाषाओं के जायज हक को कुचला नहीं जा सकता है। यह किसी वर्ग विशेष पर अपना राय थोपने जैसा है। रामविलास शर्मा सारे विवाद की जड़ उर्दू में कोई बुनियादी फर्क देना चाहते हैं। उनका कहना है कि हिंदी उर्दू में कोई बुनियादी फर्क नहीं है। जबकि यह सैद्धांतिक रूप से माना भी जा सकता है किन्तु व्यवहारिक रूप से इसे हम नहीं मान सकते हैं। यह सही है कि 'दोनों ही खड़ी बोली को दो साहित्यिक शैलियां हैं।'[1] यह उदारता पूर्वक दिया गया बयान है। भाषा में उठे इन्हीं सब विवादों को देखकर प्रेमचंद ने कहा ''वह शब्द सरल है जो व्यवहार में आ रहा है। इसमें कोई बहस नहीं क्यों इतना सौतियाडाह है, मेरी समझ में नहीं आता। अगर एक समुदाय के लोगों को उर्दू नाम प्रिय है तों उन्हें इस्तेमाल करने दीजिए। जिसे हिंदी नाम से प्रेम है, वह हिंदी ही कहे। इसमें लड़ाई काहे की है।-[प्रेमचंद-'साहित्य का उद्देश्य, (पृष्ठ-106)]

इस तरह हम देखते हैं कि रामविलास शर्मा ने अरबी-फारसी हिंदी-उर्दू के संबंध में जिसे चौथी भाषाई विशेषता के रूप में इंगित किया है, उनका वह दृष्टिकोण एकांगी है।

(5) पाँचवी और अन्तिम विशेषता के रूप में वे हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं पर अंग्रेजी का प्रभाव मानते हैं।

पुरानी चाल की हिन्दी के बाद भारतेन्दु हरिचन्द्र ने उसे नयी चाल में कैसे ढ़ाला इस पर शुक्ल जी अपनी टिप्पणी इस प्रकार करते हैं:-''मुंशी सदासुख की भाषा साधु होते हुए भी पंडिताऊपन लिए भी-लल्लूजी लाल में ब्रजभाषापन और सदसि मिश्र में पूरबीपन था। राजा शिवप्रसाद का उर्दूपन शब्दों तक सीमित न था, वाक्य विन्यास तक में घुस गया था। राजा लक्ष्मण सिंट की भाषा विशुद्ध और मधुर तो अवश्य थी, पर आगरे की बोलचाल का पुट उसमें कम न था। भाषा का निखरा हुआ शिष्ट और सामान्य रूप भारतेन्दु की कला के साथ ही प्रकट हुआ।'' [हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ-246] स्पष्ट है राजा शिवप्रसाद की तरफ से बिल्कुल आँख- मूँदकर भारतेंदु हरिश्चन्द्र को आचार्य शुक्ल ने प्रतिष्ठित कर दिया। ''1873 ई. में भारतेंदु से हिंदी चाल में ढ़ली'' इस एक वाक्य में पर हिन्दी साहित्य में बहुत विवाद उत्पन्न हुए हैं। इस लेख में भी राम विलास शर्मा की ज्यादा कोशिश यही दिखाने में है कि हरिश्चन्द्र के द्वारा ही हिन्दी नए चाल में ढ़ली। अब सवाल यह उठाता है कि क्या सचमुच हिन्दी 1873 ई. में चाल में ढ़ली या इसके पीछे इसकी एक सुदृढ़ लंबी विरासत है? हलाँकि वो निष्कर्ष के रूप में स्वीकार करते हैं कि ''1873 ई. में हिन्दी नयी चाल में नहीं ढ़ली, यह कार्य इससे बहुत पहले सम्पन्न हो चुका था। 1857 ई. के आस-पास राजा शिवप्रसाद जैसी हिन्दी लिख रहे थे, उसी को भारतेन्दु ने अपनाया था। [हिन्दी भाषा की विकास परम्परा,-पृष्ठ-227]।

1. अमृत राय, आधुनिक भावबोध की संज्ञा। पृष्ठ-154

इस पर डॉ. तलवार अपनी पुस्तक रस्साकशी में लिखते हैं कि ''डॉ. शर्मा का बयान आधा सच है। उन्होंने अपने कथन का अधार 1857 ई. में छपे भूगोलहस्तामलक के दूसरे संस्करण को बनाया। भूगोल-हस्तामलक की भाषा शिवप्रसाद ने बैतालपच्चीसी की चाल पर रखी थी जो अरबी-फारसी के सरल और प्रचलित शब्दों से मिश्रित हिन्दी थी। यह हिन्दी भारतेंदु की पहचान नहीं है। भारतेंदु ने शिवप्रसाद की धार्मिक विषयों से संबंधित किताबों (मानव धर्म सार वगैरह) की हिन्दी को अपनाया था जिनमें संस्कृत के सरल और प्रचलित शब्दों से मिश्रित हिन्दी लिखी गई थी। वास्तव में शिव-प्रसाद की संस्कृतनिष्ठ हिन्दी भी भारतेन्दु के मुकाबले ज्यादा सरल साफ-सुथरी और प्रभावपूर्ण है। भारतेन्दु की संस्कृतनिष्ठ हिन्दी बेढंगी और उबड़-खाबड़ है। [रस्साकशी, पृष्ठ-84]।

इन दोनों (राजा शिवप्रसाद सिंह और भारतेन्दु) की हिंदी के साथ-साथ लल्लूजी लाल और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की हिन्दी में भी अंतर खोजा जा रहा था। रामविलास जी के अनुसार, लल्लूजी लाल और भारतेन्दु की हिन्दी में 'भये' का प्रयोग होता था, पुरानी चाल की हिन्दी में भी 'भये' का प्रयोग होता था। 'भया' रूप तो जनपदीय बोलियों में अब भी प्रयुक्त होता है। किन्तु उसे पंडिताऊ या गँवारू समझकर हिन्दी की टकसाल से निकाल दिया गया है। वस्तुत: 'भये' का बहिष्कार आधुनिक हिन्दी-उर्दू की विशेषता है। ''जनपदीय खड़ी बोली का रूप हिन्दी-उर्दू रूप आगरे की देन है। व्यापार की बहुत बड़ी मंडी होने से यहाँ अनेक बोलियों को इकट्ठे होने और एक-दूसरे को प्रभावित करने का अवसर मिला। आगरे के कुछ खास शब्द-रूप पुरानी हिन्दी-उर्दू में प्रचलित थे, वे पुराने व्याकरणों, शब्द-कोशों और पाठ्यपुस्तकों में मिलते हैं। [रामविलास शर्मा, भारतेन्दु और हिन्दी भाषा की विकास-परम्परा, पृष्ठ-277]। खड़ी बोली ब्रजभाषा से भी प्रभावित रही है। आगरा ब्रज जनपद

का नगर है, यही कारण है कि यहां जिस खड़ी बोली का विकास हुआ वह ब्रजभाषा से प्रभावित थी। पुरानी उर्दू अथवा मुसलमान लेखकों की हिन्दी पर जितना प्रभाव फारसी का है, उससे कहीं ज्यादा ब्रजभाषा का है। इस तथ्य को ठीक से नहीं समझ पाने के कारण ही यह भ्रम पैदा हो गया कि मुगलों के लश्कर में उर्दू का जन्म हुआ। ब्रजभाषा का यह प्रभाव दिल्ली-आगरे के साथ-साथ बीजापुर और हैदराबाद की हिन्दी पर भी है। हिन्दी-उर्दू एकता कायम में नजीर अकबराबादी का बहुत बड़ा योगदान है। वे कम्पोजीट कल्चर के हिमायती थे। ब्रजभाषा के 'य' रूप का दर्शन इनके यहां मिलते हैं। जैसे- महादेव जी का ब्याह कविता में:-

पहले नॉव गणेश का, लीजे सीस नवाय।

जासे कारण सिद्ध हों, सदा मुहूरत लाय।।

लेकिन क्रियारूपों के 'य' और 'व' वर्णों का प्रयोग अब सिर्फ जनपदीय बोलियों में ही रह गये हैं। इन वर्णों को हटाकर हिन्दी-उर्दू ने अपनी रचना-शक्ति में कुड कमी कर ली है। 'व' के स्थान पर 'य' और 'ए' के स्थान पर 'ए' की प्रतिष्ठा कर हिन्दी-उर्दू टकसाली बन गई है। जैसे- गालिब के इस शेर में 'य' वाले रूपों का प्रयोग किया गया है:-

''कभी नेकी भी-उसके जी में गर आ जाय है मुझ से।

जफायें करके अपनी याद शरमा जाय है मुझसे।।''

इसी तरह 'कर' के प्रयोग में भारतेन्दु सतर्क रहते हैं। वे लिखते हैं- ''यह प्रतिज्ञा करके बड़े क्रोध से राजभवन से चला गया'' (मुदाराक्षस')। इनसे पहले राजा लक्ष्मणसिंह भी अपने गद्य में ऐसी ही सतर्कता बरतते हैं, ''शकुन्तला सूरज निकलते ही शिरस्नान करके बैठे हैं'' (शकुन्तला नाटक)। हिन्दी में ऐसे अनेक क्रियारूप हैं जिनका प्रयोग पुरानी हिन्दी में होता था किन्तु आधुनिक हिन्दी में वे प्रयोग नहीं होते। 'आन' और 'पहिरना' ऐसे ही क्रिया रूप हैं गालिब ने भी आन का प्रयोग किया है। काम वह आन पड़ा है कि बनाये न बने,। पहिरना का आधुनिक रूप पहनना हो गया है। इसी तरह 'कारे' 'जहाँ' के साथ वहाँ का प्रयोग 'उस' की जगह 'विस' का प्रयोग आगरे की खड़ी बोली की विशेषता है। हिन्दी-उर्दू सीखने में एक कठिनाई 'ने' का प्रयोग है। राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद ने एक बार प्रस्ताव किया था कि हिन्दी से 'ने' का व्यवहार उठा दिया जाये।

इस तरह हम देखते हैं कि पुरानी हिन्दी-उर्दू के बहुत से रूप, बहुत से प्रयोग आपस में टकरा रहे हैं और भाषा की भागीदारी में बहते-टकराते अपना रूप संवार रहे हैं। [भारतेन्दु युग पृष्ठ-180]

भारतेन्दु-युग की हिन्दी में भदेस पन के कारण बड़ी शक्ति है। आधुनिक हिन्दी ने भाषा की एक प्रबल शक्ति (भदेसपन) की उपेक्षा कर अपने को परिनिष्ठित किया है। जिससे दोनों जहां पहले एक धरातल पर थे, वहीं अब एक ने अपना मुख संस्कृत की तरफ और दूसरे ने अपना मुख अरबी-फारसी की तरफ ली है। अलगाँव का यह सिलसिला कोर्टविलियम कॉलेज के हिन्दुस्तानी विभाग के अध्यक्ष गिलक्राइस्ट से शुरू होता है। इससे पहले मीर, गालिब, नजीर, आदि ने साझी-संस्कृति के विकास में अपनी अहम भूमिका निभायी थी। मीर ने अपनी भाषा को हिन्दी कहा था। उनकी हिंदी, हिंदी-उर्दू का बेइंतहा खूबसूरत रूप है। 'सिरहाने मीर के अहिस्ता बोली अभी टुक रोते-रोते सो गया है।''इस तरह हम देखते हैं कि ब्रजभाषा, अवधी और खड़ी बोली-तीनों में मुसलमान कवियों ने रचनाएं की हैं। इससे इस धारणा को खारिज किया जा सकता है कि उन्होंने केवल खड़ी बोली के उस रूप को अपनाया था, जिसे उर्दू कहते हैं। गिलक्राइस्ट ही वह शख्स था, जिसने हिन्दु-मुसलमानों के भाषाओं को जातीय आधार पर अलग करने की कोशिश की, और एक ही भाषा के दो रूप करने में सफलता प्राप्त की। उसने अपने यहाँ उर्दू और माखा के मुंशियों से कहा था कि जब हिंदी लिखों, तब उसमें अरबी-फारसी के शब्द न आने दो, और जब उर्दू लिखो तो उसमें संस्कृत के शब्द न आने दो। किन्तु उसके आदेश की अवहेलना कर वे लोग दोनों शैलियों को मिला देते थे।

राजा शिवप्रसाद को अंग्रेजपरस्त समझा जाता रहा है। जबकि उनके प्रति ऐसी धारणा रखना उनपर अन्याय करना है। वस्तुत: वे ऐसे भाषा पर जोर देते थे जो ज्यादा शाइस्ता न हो। लेकिन उसमें रोजमर्रा की जिंदगी का भोंडापन भी न हों, हिंदु या मुसलमान उसकी तारीफ न करें तो उससे बिदके भी नहीं। आम जनता के बीच दोनों भाषाओं में दरार नहीं थी, दरार थी उच्चवर्गों का यह दृष्टिकोण भाषा के परिष्कार के नाम पर उसे जनपदीय बोलियों से शहरी बोलचाल से, दूर ढकेल रहा था और यह सिलसिला अंग्रेजी राज खत्म होने के पच्चीस साल बाद भी जारी रही है। ''भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का यह युगान्तकारी

महत्व है कि वह जो भाषा लिखते थे वह जनपदीय बोलियों तथा शहरी बोलचाल के बहुत पास थी। [.....हरिश्चन्द्र युग, पृष्ठ-203]

1873 और 1973 तक पिछले सौ वर्षों में विज्ञान ने इतनी प्रगति कर ली कि, स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद संविधान बनाने वालों को यह सोचकर दुख हुआ कि हमारा राष्ट्र तो स्वाधीन हो गया किन्तु राष्ट्रभाषा अकिसित रह गयी है। इसलिए हिंदी पर दया करके उसे विकसित करने के लिए 15 वर्षों का समय दिया गया। शायद संसार के किसी भी भाषा के लिए उसी के देश में यह नहीं कहा गया होगा कि, यह भाषा अविकसित है और विकसित होने के लिए 15 वर्ष का समय दिया जाता है। तब-तक अंग्रेजी में इसके समकक्ष राजभाषा का कार्य होगा। फिर शुरू हुआ, कोश बनाने का सिलसिला। उसमें हजारों शब्द वही थे जो उन्नीसवीं सदी में प्रचलित थे। कुछ शब्द जॉन 'शेक्सपियर' की पुस्तक से, कुछ फैलन के कोश (1873 ई.) से और कुछ शब्द लल्लूजी लाल की शब्दसूची से लिये गये हैं। इससे निष्कर्ष यह निकलता है कि ''शब्द पुराने हैं, पुरानी पुस्तकों में मौजूद हैं किन्तु हवा यह बाँधी गयी कि हिन्दी निदेशालय हजारों नये शब्द गढ़ने में लगा है। शब्द गढ़ना और बात है, शब्द संग्रह करना और बात।'' [हिन्दी.....भारतेन्दु युग पृष्ठ-209]

उन्नीसवीं सदी में लल्लू जी लाल ने साढ़े तीन हजार से ऊपर हिन्दी की सूची बनायी थी और उनके फारसी और अंग्रेजी प्रतिरूप दिये थे। फैलन का शब्दकोश 1879 ई. में प्रकाशित हुआ। फैलन ने अपना कोश हिन्दी उर्दू के साधारण जानकारों के लिए बनाया था। जो पारिभाषिक शब्द उन्होंने दिये हैं, वे चालू हिन्दुस्तानी या हिन्दी के हैं। फैलन ने अपने शब्दकोश में पहली बार और बहुत ही स्पष्ट रूप से जातीय भाषा हिन्दी और जनपदीय बोलियों के संबंध की सही व्याख्या की। उनका शब्दकोश 19वीं सदी की भाषायी स्थिति का दर्पण है। जो पारिभाषिक शब्द उन्होंने दिये हैं वे चालू हिन्दुस्तानी या हिन्दी के है। ये गणित, भौतिक, विद्युत, ज्योतिष और वनस्पति शास्त्रों के हैं। फैलन के सामने तीन तरह के पारिभाषिक शब्द थे- अरबी, संस्कृत और हिन्दुस्तानी। फैलन ने पहली बार अपने कोश में आम जनता की बोलचाल और ग्रामीण माहभाषा को महत्व दिया। यहाँ तक कि ''अभी विद्यालयों में गँवारी बोली के लिए प्रोफेसर पद नहीं है लेकिन एक दिन आयेगा जब जनता की भाषा के लिए ऐसे पद होगें। '' [वही, पृष्ठ-257]

फैलन का शब्दकोश उन्नीसवीं सदी की भाषायी स्थिति का वह दर्पण है जिससे हमें पता चलता है कि हिन्दी में पारिभाषिक शब्दों की कमी का रोना भ्रामक था, जिसे गढ़ने का काम केन्द्रीय निदेशालय ने किया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतेन्दु हरिशचन्द्र और उनके सहयोगियों ने हिन्दी भाषा की प्रकृति पहचानकर उसे साहित्यिक ब्रजभाषा और तत्कालीन जनपदीय बोलियों की भाषा संपदा से वंचित न होने दिया। उनकी नयी चाल की हिन्दी पुरानी चाल की हिन्दी के बहुत निकट है किन्तु आधुनिक हिन्दी उनकी भाषा से दूर जा रही है। इस पर अंग्रेजी का प्रभाव व्यापक रूप से पड़ रहा है। हिन्दी में अंग्रेजी मुहावरों, शब्दों और वाक्यांशों का अनुवाद करने की प्रवृत्ति बढ़ी है। जिससे हिन्दी का अपना रूप विकृत हुआ है और उसकी आन्तरिक क्षमता में भी कमी आयी है। भारतेन्दु युगीन हिन्दी, राजा शिवप्रसाद एवं फैलन के उत्कृष्ट योगदान को ध्यान में रखते हुए हमें हिन्दी को अंग्रेजी के प्रभाव से मुक्त कराने की जरूरत है। क्योंकि अपनी समस्याओं को जितनी अच्छी तरह से हम अपनी भाषा में समझ सकते हैं। उतनी अच्छी तरह से हम विदेशी चश्मों से नहीं समझ सकते हैं।

संदर्भ ग्रंथ

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास [नागरी प्रचारिणी समा, वाराणसी], - रामचंद्र शुक्ल।
2. 'साहित्य का उद्देश्य' - प्रेमचंद।
3. भारत की भाषा समस्या - डा. रामविलास शर्मा।
4. आधुनिक भावबोध की संज्ञा - अमृत राय।
5. 'हिन्दी भाषा का समाजशास्त्र' - रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव।
6. भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा [राजकमल प्रकाशन, पटना], 1975- रामविलास शर्मा।
7. रस्साकशी [सारांश प्रकाशन, दिल्ली, हैदराबाद], 2002-डा. वीरभारत तलवार।

योग दर्शन और मानव व्यक्तित्व- एक अनुशीलन

डॉ० स्नेहलता

सहायक प्राध्यापक, दर्शनशास्त्र विभाग, रामदयालु सिंह कॉलेज, मुजफ्फरपुर, बिहार

सारांशः

भारतीय दर्शन में योग दर्शन को व्यावहारिक दर्शन माना जाता है। जो मूल रूप से सांख्य दर्शन के सिद्धांतों का अनुगमन करता है। इसलिए इसे संयुक्त रूप से सांख्य-योग भी कहा जाता है। पतंजलि ने योग सूत्र में 'योग' शब्द का प्रयोग व्यापक रूप में किया है जिसमें सैद्धांतिक रूप से पुरुष का प्रकृति से वियोग हो जाना योग है, तो जीव का स्वयं का साक्षात्कार आत्मीय रूप में होना या परम तत्व से मिलना भी या संयेाग हो जाना भी योग है। इसके साथ-साथ प्रयत्न करने या योग के साधनों के संदर्भ में भी योग शब्द का प्रयेाग किया गया है। पतंजलि ने इन तीनों ही अर्थों के समायोजित रूप में ही योग को स्वीकार किया है।

मानव व्यक्तित्व शरीर और आत्मा के योग अर्थात् आंतरिक चौतन्य जिसे 'मन' या योग में 'चित्त' की संज्ञा दी गई है उनका समुच्चय है। इन दोनों का एक हो जाना अर्थात् संतुलित रूप में रहना ही व्यक्तित्व की पूर्णता है। मनोविज्ञान चेतना और शरीर के संतुलन और समरूप विकसित स्वरूप को संतुलित व्यक्तित्व के रूप में स्वीकार करता है परंतु भारतीय दर्शन और योग व्यक्तित्व की पूर्णता आत्म साक्षात्कार या कैवल्य के रूप में स्वीकार किया है, जिसके बाद व्यक्ति शुभसंकल्प युक्त स्थितप्रज्ञ या बुद्धत्व की अवस्था प्राप्त कर लेता है। सांख्य दर्शन में मन या चेतना को बुद्धि, अहंकार और मन के रूप में तो योग दर्शन में इसमें चित्त को छोड़कर मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त के समुच्चय को चित्त के रूप में स्वीकार किया। इस चित्त में तमोगुण और रजोगुण द्वारा उत्पन्न वृत्तियों का निषेध कर सत् गुण से युक्त विवेक स्वरूप को प्राप्त कर लेना ही योग है और यही योग तथा व्यक्तित्व की पूर्णता भी है।

योगसूत्र इसे प्राप्त करने के लिए 'साधन पक्ष' का प्रावधान करता है जिसमें तीन तरह के व्यक्तित्व और उनके साधना की विधि स्पष्ट करता है। इसमें उत्तम कोटि के व्यक्तित्व अर्थात् सतोगुणी के लिए अभ्यास, वैराग्य और ईश्वर प्रणिधान तो मध्यम या रजोगुणी के लिए क्रिया योग और तमोगुणी के लिए अष्टांग योग के बहिरंग साधन की बात करते हैं।

योग दर्शन इसमें व्यक्तित्व के सत्, रज और तम् गुणों से युक्त व्यक्तित्व को रेखांकित करता है तो साथ ही उसके निर्माण का भी प्रशस्त करता है।

कुंजी शब्दः व्यक्तित्व, स्थितप्रज्ञ, मनोशारीरिक तंत्र, चेतन, अवचेतन।

परिचयः

मानव व्यक्तित्व जीवन और जगत् के समायोजन और सहअस्तित्व को स्पष्ट करता है साथ ही उसे विकसित और संरक्षित भी करता है। वैश्विक संदर्भ में इसका स्वरूप सामाजिक, वैयक्तिक तथा मानसिक होता है। अतः मनोविज्ञान व्यक्तित्व को शारीरिक और मानसिक क्रियाओं के संतुलन और परिणाम के रूप में परिभाषित करता है।

इसलिए व्यक्तित्व प्रकृति और मनुष्य का संतुलन है तो मनुष्य का मनुष्य से संतुलन है तो इसके साथ-साथ मनुष्य को स्वयं का अपने में भी एक संतुलन है। दर्शन में व्यक्तित्व का संदर्भ इसी व्यापक परिप्रेक्ष्य में है। जबकि मनोविज्ञान मनुष्य के आंतरिक और बाह्य स्वरूप के संतुलन और क्रियात्मक परिणाम को व्यक्तित्व मानता है।

वर्तमान में विश्व की प्राकृतिक, सामाजिक और मानवीय आपदाएँ, समस्याएँ सभी मानवीय व्यक्तित्व के इसी असंतुलन का परिणाम है। इस समस्याओं के समाधान के लिए केवल मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व का परीक्षण ही सार्थक नहीं होगा बल्कि व्यक्तित्व के उस व्यापक दार्शनिक फलन का आश्रय लेना होगा जो जीवन और जगत, अंतः एवं बाह्य के साथ-साथ संपूर्ण विश्व को स्वयं में और स्वयं को संपूर्ण विश्व के पर्याय के रूप में भी स्थापित करता है। 'सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः' का यह व्यापक दृष्टिकोण ही दार्शनिक व्यक्तित्व की पहचान है, जो विश्व की समस्याओं का निराकरण करने में समर्थ है। योग में व्यक्तिगत रूप में समाधि की अवस्था सामाजिक रूप से जिसे गीता कर्मयोग में लोकसंग्रह या भावरूप में स्थितप्रज्ञ की अवस्था मानती है ये सभी इसी व्यक्तित्व के व्यापक आयाम है।

अत: हमारा इस आलेख में यह प्रयास है कि व्यक्तित्व के इस दार्शनिक परिप्रेक्ष्य को योग दर्शन के संदर्भ में संक्षेपत: स्पष्ट करे।

व्यक्तित्व का मनोवैज्ञानिक दार्शनिक अध्ययन:

आधुनिक विज्ञान में व्यक्तित्व की अवधारणा का वैज्ञानिक अध्ययन मनोविज्ञान प्रस्तुत करता है, जिसमें व्यक्तित्व मन और चेतना के साथ-साथ मानसिक प्रक्रियाओं, शारीरिक संगठन जैसे मस्तिष्कीय क्षमता, तंत्रिका तंत्र, हार्मोनिक और वैद्यूत स्थितिकी प्रभाव, संवेग आदि होते हैं के समुच्चय के रूप में स्थापित किया गया है। अत: मनोविज्ञान में व्यक्तित्व मनुष्य के आंतरिक और बाह्य गुणों का समन्वय है। इसे मनोविज्ञान मनोशारीरिक तंत्र (Psychological system) कहता है। इसमें मानसिक गुण जैसे भावना, बुद्धि, संवेग, आवेग, आदत, चरित्र आदि होते हैं जिसका आधार शरीर है। ये दोनों अंत: क्रिया करके व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। इसी संदर्भ में मनोवैज्ञानिक आइजेंक (म्लेमदबा) का मानना है कि "व्यक्तित्व व्यक्ति के चरित्र, चित्त प्रकृति, ज्ञान शक्ति तथा शरीर गठन का करीब-करीब एक स्थायी और टिकाऊ संगठन है जो वातावरण में उसके सम्पूर्ण समायोजन का निर्धारण करता है।"[1] इसमें यह तथ्य तो स्पष्ट हो जाता है कि मन शरीर और इसकी क्रियाओं से अलग कोई तथ्य नहीं है। परंतु इसके बावजूद मनोविज्ञान यह मानता है कि मन शरीर से अभिन्न तो है परंतु बाह्य कारणों से मानसिक प्रक्रियाओं में परिवर्तन भी संभव है। यह परिवर्तन ही व्यक्तित्व को गति प्रदान करता है इसे मनोविज्ञान में गत्यात्मक संगठन (Dynamic Organçation) कहा जाता है। यह गत्यात्मक संगठन ही प्रत्येक व्यक्ति के व्यवहारों और व्यक्तित्व को भिन्न-भिन्न बनाता है। परंतु प्रत्येक व्यक्ति में एक ही वातावरण में उसके व्यवहार और व्यक्तित्व में एक संगतता (consistency) बना रहता है। ऑल पोर्ट (All Port) ने इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि 'व्यक्तित्व व्यक्ति के भीतर उन मनोशारीरिक तंत्रों का गत्यात्मक संगठन है जो वातावरण में इसके अपूर्व समायोजन को निर्धारित करता है।'[2] परंतु आधुनिक मनोविज्ञान ने मन के इस तथ्य को व्यक्तित्व के संदर्भ में उसके मानसिक क्रिया व्यापार और व्यवहार से भी जोड़ दिया। इसमें व्यवहार भी व्यक्तित्व को स्पष्ट करता है बेरोन (Baron) ने इसी परिप्रेक्ष्य में यह माना कि "व्यक्तित्व व्यक्ति के अनूठे संवेग चिंतन और व्यवहारों का सापेक्ष रूप से एक स्थायी प्रारूप है।"[3] मनोविज्ञान में व्यक्तित्व की सभी धारणाएँ चाहे सिगमड फ्रायड की ईड इगो या सुपर इगो की हो या जो चेतन, अर्द्धचेतन या अवचेतन की अवस्था हो या युंग की अंर्तमुखी या बाह्यमुखी अवधारणा हो सभ में मन, मानसिक क्रियाएँ और शारीरिक व्यवहार ही इसके आधार माने गए हैं। उल्लेखनीय है कि पाश्चात्य मनोविज्ञान में मन पाश्चात्य दर्शन का अनुसरण करता है जो शरीर तथा मस्तिष्क और उसकी संवेदी क्रियाओं से अलग कोई तत्व नहीं स्वीकार करता है।

अत: यहाँ व्यक्तित्व के मूल निर्मायक तत्व है मन, शरीर, मानसिक प्रक्रियाएँ और उसकी अंत:क्रियाएँ। परंतु भारतीय दर्शन में व्यक्तित्व का संदर्भ इससे ज्यादा विस्तार लिए हुए है। यहाँ व्यक्तित्व अपने पूर्णता में आध्यात्मिक पूर्णता या आत्मबोध है। मन का संदर्भ भी यहाँ आत्मा के साथ ही जुड़ा है जिसमें यह माना गया कि आत्मा, मन और शरीर तीनों मिलकर जीव का स्वरूप स्पष्ट करते हैं जिसके आलोक में व्यक्तित्व का निर्माण होता है। सतोगुणी-आत्मतत्व या साक्षात्कार विवेक या बुद्धत्व की प्राप्ति है और यही यहाँ व्यक्तित्व की पूर्णता है।

इस प्रकार भारतीय दर्शन में व्यक्तित्व, आत्मा, मन, शरीर, जीव और उसके जागतिक संदर्भों से जुड़ा हुआ है। अत: यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि आत्मतत्त्व के साक्षात्कार या विवेक से ही व्यक्तित्व को पूर्ण अभिव्यक्ति कैसे संभव है? इस संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि आत्म तत्व उस परम तत्त्व की अभिव्यक्ति या अंश है और संपूर्ण विश्व उस ब्रह्म रूपी शक्ति से ही उद्भूत है, प्रकृति की जो शक्ति आत्मतत्व को स्पष्ट करती है वही संपूर्ण ब्रह्मांड को निर्मित करती है या वह उसी का स्वरूप है इसलिए उस आत्मतत्व को जान लेने पर व्यावहारिक या पारमार्थिक कोई भी तत्व अनजान नहीं रह जाता फिर दूसरा तथ्य यह है कि इससे व्यक्ति में बाह्य और आंतरिक चौतन्य और क्रिया में समन्वय आ जाता है। ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक तत्व का समन्वय उस आत्मतत्व की पूर्णता है, यह पूर्णता ही व्यक्तित्व की पूर्णता है। अत: भारतीय दर्शन यह स्वीकार करता है कि केवल शारीरिक क्रियाएँ या उसका ज्ञान व्यक्तित्व नहीं है, व्यक्तित्व मन, जीव, आत्मा और साक्षी चौतन्य से जुड़ा हुआ तत्व है। चार पुरूषार्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस व्यक्तित्व को स्पष्ट करते हैं। इसमें चारों एक साथ तो चारो अलग-अलग भी अपनी पूर्णता में व्यक्तित्व के आयाम को विशिष्ट अर्थों में सिद्ध करने का सामर्थ्य रखते हैं। उल्लेखनीय है कि धर्म, अर्थ और काम सामान्य और विशिष्ट दो अर्थ रखते हैं परंतु इसकी विशेषता यह है कि दोनों ही अर्थों में वह व्यक्तित्व के आयाम को कभी व्यावहारिक तो कभी पारलौकिक संदर्भ में स्पष्ट करते हैं और सामाजिक स्थिति में लोकसंग्रह की धारणा से युक्त होकर वह व्यक्तित्व की पूर्ण सार्थकता सिद्ध करता है। अत: व्यवहारिक व्यक्तित्व भी पारमार्थिक स्वरूप

को स्पष्ट करने में समर्थ है। व्यक्तित्व मनुष्य के चेतना अर्थात् मनस प्रकृत्ति और शारीरिक चौतन्य का समन्वय है। यह अनुभूति और क्रियात्मक संदर्भ का विवेकशील समायोजन भी है। इसलिए मनुष्य के व्यक्तित्व में आंतरिक मनस प्रवृत्तियाँ और शारीरिक सुघटता दोनों का स्थान महत्वपूर्ण माना गया है। परंतु भारतीय दर्शन में व्यक्तित्व शारीरिक या आनुवंशिक क्षमता के परिप्रेक्ष्य से अलग कर्म के आध्यात्मिक चौतन्य से जुड़ा हुआ है। इसलिए व्यक्तिगत रूप में गीता में जिस स्थितप्रज्ञ की अवस्था की विवेचना की गई है वह आदर्श व्यक्तित्व माना गया है। गीता में स्थितप्रज्ञ उसे माना गया है जिसकी बुद्धि स्थिर हो गई हो और जो मन की सभी कामनाओं से रहित हो गया हो या उससे संचालित नहीं होता हो। 'आत्मन्यवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्चते।'[4] अर्थात् यह कहा जा सकता है कि त्वरित आवेग आदि से प्रभावित नहीं होता और कोई भी इच्छा या कामना उसे अन्यत्र कोई कर्म करने के लिए बाध्य नहीं करती है उसकी बुद्धि स्थिर है अर्थात् वह स्थितप्रज्ञ है। उसी तरह उपनिषदों में जिन पंच कोष अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय की अवस्था की बात की गई है। उसमें आंनदमय को व्यक्तित्व की सर्वोच्च अवस्था माना गया है। जिसमें व्यक्ति आनंद की अवस्था में रहता है सभी कर्मों के प्रेरणा और प्रमाद से रहित होकर। योग दर्शन की संप्रज्ञात समाधि की अवस्था भी इसी तरह की अवस्था है। मूलरूप से यहाँ इन सभी तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय दर्शन में व्यक्तित्व में मन की आंतरिक अवस्था को प्रधानतः स्वीकार किया गया है जिसमें शारीरिक क्षमता या संरचना एक सहायक का कार्य करती है।

योग दर्शन में व्यक्तित्व का स्वरूपः

महर्षि पतंजलि द्वारा स्थापित योगदर्शन एक व्यवहारिक दर्शन है जो सांख्य दर्शन के सैद्धांतिक संप्रत्ययों का अनुगमन करता है। इसलिए इसे 'संख्या-योग' के नाम से भी जाना जाता है। यहाँ व्यवहारिक कहने का संदर्भ यह है कि सांख्य के वास्तविक सिद्धांतों को मानवीय व्यवहार और आचरण द्वारा प्रमाणित और अनकूलित कर सर्वोच्च सत्ता की प्राप्ति करना। तत्वशास्त्रीय दृष्टिकोण से सांख्य दर्शन दो मूल तत्व प्रकृति और पुरूष को स्वीकार करता है। ये दोनों परस्पर विरूद्ध धर्मी है। पुरूष आत्मत्व है और सतोगुणः रजोगुण और तमोगुण से रहित है तो प्रकृति त्रिगुणात्मक अर्थात् सत, रज और तम से युक्त है।[5] प्रकृति को इन गुणों से पृथक नहीं किया जा सकता है अर्थात् इन गुणों की साम्यावस्था ही प्रकृति है।[6] इसलिए सांख्य-योग दर्शन में प्रकृति कहीं गुण के रूप में तो कहीं गुण प्रकृति के रूप में प्रयुक्त किए गए हैं।[7] प्रकृति सृष्टि की स्थिति में जब होती है तो उसमें किसी एक गुण की प्रधानता होती है, इसे विरूप परिवर्तन माना गया। इसमें पुरूष के संयोग से प्रकृति ने गुण-क्षोभ उत्पन्न होता है और उसमें क्रिया-प्रतिक्रिया के द्वारा सृष्टि का विकास प्रारंभ होता है। सृष्टि के संपूर्ण चेतन अचेतन में प्रकृति इन गुणों के रूप में रहती है। इसलिए सांख्य यह मानता है कि पुरूष रूपी आत्मा की जब इन आत्म तत्व का विवेक हो जाता है वह प्रकृति के युगों की वास्तविकता समझ लेता है। इसलिए यह माना जाता है कि मूल रूप से प्रकृति मुक्त होती है और आत्मतत्व तो अपने स्वरूप में ही स्थित रहता है। सांख्य दर्शन इसे ही विवेक ख्याती कहता है। इसमें प्रकृति में स्थित सभी गुणों का ज्ञान होता है तो उससे निर्मित समस्त जगत का भी ज्ञान स्वयं ही हो जाता है। इसके साथ-साथ सांख्य यह भी स्वीकार करता है कि ये गुण ही व्यक्ति के आंतरिक और बाह्य स्वरूप का निर्धारण करके उसके व्यक्तित्व को सुनिश्चित करते हैं।

योग दर्शन इसी परिप्रेक्ष्य में यह मानता है कि गुण जीवात्मा के लिए संयोग-वियोग धर्म से युक्त होते हैं। संयेाग-वियेाग से यहाँ तात्पर्य है कि पुरूष के स्वरूप अर्थात् व्यक्तित्व जो चित् की अवस्था है अर्थात् चित् की पांच अवस्थाएँ क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरूद्ध8 इसमें क्षिप्त, मुढ़ और विक्षिप्त, चित् वाले पुरूष या व्यक्ति अविवेकी होता है। यहाँ तीनों गुण संयोग धर्म अर्थात् संयुक्त हो जाते हैं जबकि एकाग्र और निरूद्ध जिसमें व्यक्ति का चित् स्थिर होता है। वह विवेकी पुरूष कहा जाता है। यहाँ पुरूष के सतोगुण से रज् और तमोगुण वियोग स्थापित करते हैं और वहाँ सत्व गुण ही प्रधान हो जाता है इसलिए इस अवस्था में यह वियोग धर्म से युक्त हो जाता है।[9] इन तथ्यों से यह स्पष्ट है कि सांख्य में प्रकृति के गुण योग दर्शन में पुरूष के व्यक्तित्व का निर्धारण करते हैं। इसमें सत्वगुण सूक्ष्म बुद्धि से युक्त स्वप्रकाशक और स्वतः चौतन्य होता है, विवेक इसकी प्रधानता है। रजोगुण गतिशील होता है और तमोगुण आलस्य और भोग की प्रवृत्ति से युक्त गतिहीन या जड़ अवस्था से युक्त होता है।[10] परंतु व्यक्तित्व के संदर्भ में योग दर्शन व्यक्तित्व के साध्य पक्ष का जहाँ निर्धारण करता है वहीं उस साध्य को पाने के साधन की भी व्याख्या करता है और यह व्यवहरात्मक साधन ही योग दर्शन की विशेषता है।

योग दर्शन का मूल विषय है 'योग'। योग शब्द 'युज्ज' धातु से बना है जिसका अर्थ है समाधि (योगः समाधिः)।[11] सामान्य संदर्भ में योग शब्द का अर्थ होता है जुड़ना अर्थात् दो तत्वों का तथ्यों का मिलना योग है।[12] परंतु पतंजलि ने अपने योगसूत्र में 'योग' शब्द का इसमें व्यापक अर्थ स्वीकार करते हैं। इसमें ये योग के तीन अर्थ स्वीकार करते हैं।

1. उद्योग – योग प्रयत्न या चेष्टा है। व्यवहारात्मक संदर्भ में जिन साधनों या प्रयत्नों द्वारा परम की प्राप्ति होती है वह योग है। रेवती रमण पांडेय ने स्पष्ट करते हुए कहा है कि, भारतीय दर्शन जीवन दर्शन है, जिसका साक्षात्कार अधिकार भेदानुसार अन्यान्य साधनों के माध्यम से होता है। इन साधनों की व्यापक संज्ञा ही योग है।[13] अतः जिस युक्ति या प्रयत्न से आत्मा दर्शन हो जाए वह योग है। वह युक्ति ही परम धर्म है।
2. वियोग – पुरूष का प्रकृति से वियोग हो जाना ही योग है जैसा कि गीता में स्पष्ट किया गया है। त्रिविधा दुःखों से मुक्ति योग का लक्ष्या है। आत्म तत्व का प्रकृति से वियोग होकर स्थितप्रज्ञ हो जाना ही योग है। अतः योग का एक स्वरूप वियोगात्मक भी है।
3. संयोग आत्मा का परमात्मा से मिल जाना ही योग है। याज्ञवल्क्य कहते हैं कि 'संयोगो योगः इत्युक्त जीवात्म परमात्मनोः'[15] अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा का संयोग ही योग है।

योग इन तीन अर्थों में किसी एक के अभाव से भी पूर्णता नहीं पा सकता। अतः योग दर्शन में 'योग' व्यापक अर्थ रखता है। योग दर्शन अपने लक्ष्य कैवल्य को पाने के लिए योग सूत्र में साधना पक्ष की व्याख्या करता है। इस साधना पक्ष में ही पतंजलि ने व्यक्तित्व के आयाम को स्पष्ट किया है।

पतंजलि ने योग दर्शन में योग को परिभाषित करते हुए कहा कि 'योगश्चितवृति निरोधः'[16] अर्थात् चित् की वृतियों का निरोध ही योग है। योग में चित का संदर्भ अंतःकरण से है, यह अंतः करण चेतना से संबंधित होता है। सांख्य दर्शन में अंतःकरण में तीन तत्व आते हैं बुद्धि, अहंकार और मन। योग में यही अंतःकरण चित्त हो जाता है जिसका क्रम है मन, चित, बुद्धि और अहंकार। अतः यहाँ एक तथ्य स्पष्ट है कि मनोविज्ञान में जिस मन का संदर्भ है योग दर्शन में चित् उससे व्यापक है। मनोविज्ञान में मन (mind, soul) को स्वतः चेतना माना गया है परंतु योग दर्शन में मन, चित्, बुद्धि और अहंकार के द्वारा ही अपना स्वरूप जीव के रूप में स्पष्ट कर सकता है।

पतंजलि ने योगसूत्र को चार पादों या भागों में विभाजित किया है। समाधि पाद, साधना पाद, विभूति पाद और कैवल्य पाद। साधना पाद उसका दूसरा पाद है। इसमें अष्टांग योग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि) के पाँच बहिरंग साधन यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार का विवेचन है जो नियम के तीन अंग तप, स्वध्याय और ईश्वर प्रणिधान के रूप में क्रिया योग के द्वारा पूर्णता प्राप्त करता है। उल्लेखनीय है कि पतंजलि का योग मूलतः अष्टांग योग है जो राजयोग की संज्ञा से भी विभूषित है।

योग के इस साधना पक्ष का मूल लक्ष्य है समाधि की उपलब्धि को पहुँचना। इस परिप्रेक्ष्य में साधना पक्ष में तीन विभाग किया जा सकता है जो मूलतः अध्ययन और साधना के व्यवस्थित क्रम में है।

1. अष्टांग योग के बहिरंग साधनः

अष्टांग योग में यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार इन्हें बहिरंग साधन कहा गया। बहिरंग साधन का अर्थ है जो समाधि की स्थिति से दूर होते हैं।

(क) यमः

यह निषेधात्मक होता है इसलिए इसका अर्थ सर्वतः नियंत्रण के रूप में होता है। इसके पाँच रूप हैं – अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह।[17] ये सभी नियंत्रित करने या दूर रहने की प्रवृत्ति से जुड़े हैं। जैसे– मनसा, कर्मणा और ताया हिंसा से दूर रहना या हिंसा पर नियंत्रण रखना ही अहिंसा है। अन्य सभी में भी यही भाव समझना चाहिए।

(ख) नियमः

यह भावात्मक सद्गुण है जो साधक को योग आलंबितम करता है। इसके पांच भाग हैं[18]–

शौच – आंतरिक और शारीरिक शुद्धि।

संतोष – जो प्राप्त है उसमें प्रसन्नता।

तप – सभी परिस्थिति में सम बने रहने का प्रयास

स्वाध्याय – श्रवण, मनन और निदिध्यासन ही स्वध्याय है।

ईश्वर प्राणिधान – ईश्वर या ओंकार का ध्यान। योग मानता है कि समाधि की सिद्धि इसी से होती है।19

(ग) आसनः

शरीर का संयम आसन है। यम, नियम के बिना आसन शारीरिक व्यायाम से अलग कोई तत्व नहीं है। जिसमें शरीर सुख या बिना चेष्टा के बैठ सके वह आसन है।[20] इसका प्रमुख लक्षण अनंत सभापति[21] है अर्थात् असीम सत्ता का स्मरण।

(घ) प्राणायाम् - स्वांस की गति को नियंत्रित करना प्राणायामह [२]।

(ड़) प्रत्याहारः

इन्द्रियों का बाह्य विषयों से हट कर मन की ओर उन्मुख हो जाना ही प्रत्याहार है। अर्थात् इन्द्रिद्रयों को अंर्तमुखी बनाने की प्रक्रिया ही प्रत्याहार है।

पतंजलि ने यह स्वीकार किया कि जो साधक पहली बार योग मार्ग में प्रवेश करते हैं वे भव अधिकारी होते हैं अर्थात् उनका व्यक्तित्व इस मार्ग से पूर्णतः अनभिज्ञ है। इनका विस्तार सतोगुण या समाधि की ओर धीरे-धीरे होता है।

2. क्रियायोगः

नियम के अंतिम तीन भाग को क्रिया योग कहा गया इसमें तप, स्वध्याय और ईश्वर प्राणिधन आता है। योग के ये अधिकारी मध्यम अधिकारी होते हैं। सद्गृहस्थ जो होते हैं तो इसमें प्रयुक्त है।

3. अभ्यास, वैराग्य, ईश्वर प्राणिधानः

जिन अधिकारियों का चित् एकाग्र होता है वे उत्तम अधिकारी माने जाते हैं इसलिए कि इनकी चेतना सहज समाधि के अभ्यास से युक्त होकर वैराग्य की प्रवृति प्राप्त कर चुकी है। यहाँ ईश्वर प्राणिधान ईश्वरीय स्वरूप का सहज ही समावेशन है, साधक को कोई प्रयास नहीं करना होता है। वह स्वतः स्वरूपतः हो जाता है।

साधना पक्ष के इन तीनों पक्षों से व्यक्तित्व का जो तीन स्वरूप उभरा है वह समाधि की उपलब्धि की ओर उत्तरोत्तर विकसित होती हुई अवस्था है। यह निश्चित रूप से आंतरिक गुणों का चित्रण है परंतु अष्टांग योग के बहिरंग साधन द्वारा द्वितीयक रूप में ही सही शारीरिक आधार को भी स्वीकार किया गया है। यदि हम योग दर्शन के व्यक्तित्व के आयाम का सूक्ष्म विश्लेषण करें तो व्यक्तित्व का मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य इसमें समाहित हो जाता है।

योग दर्शन का मंद अधिकारी निश्चित रूप से तमोगुण का अधिक्य लिए होता है जिसे सदकर्म और विवेक तथा योग्य प्रशिक्षक उसके सत्गुणी आत्मा की ओर प्रेरित करता है। क्रिया योग, तप, स्वध्याय और निरंतर ईश्वर स्मरण के द्वारा समाधि की ओर गतिशील होता है, यह रजोगुण की गतिशीलता है और जो सत्व गुण से युक्त हो जाते हैं वे उच्च अधिकारी होते हैं उनका हरेक कृत्य, लोक संग्रह या वैराग्य से युक्त अभ्यास होता है। वे ईश्वर प्रणिधान से युक्त अपने स्वरूप में स्थित होते हैं। सांख्य योग यह मानता है कि सतोगुण आत्मा का मुक्त स्वरूप होता है और यही व्यक्तित्व की उच्चतम अवस्था है। जो विश्व को स्वयं में समाहित करने की क्षमता रखती है अर्थात् सार्वभौम व्यक्तित्व।

अतः हम यह कह सकते हैं कि योग दर्शन में व्यक्तित्व समाधि की ओर बढ़ने वाली प्रवृति और प्रकृति के गुणों से निर्धारित होती है। यदि हम मनुष्य के व्यक्तित्व और उसके निर्माण की इन प्रवृतियों को व्यवहार में ले आते हैं तो मनुष्य के वर्तमान शारीरिक और मानसिक समस्याओं का निदान आसानी से किया जा सकता है।

निष्कर्षः

इस प्रकार व्यक्तित्व का जो मनोवैज्ञानिक संदर्भ है- योग दर्शन उससे व्यापक रूप में उसे स्वीकार करता है। इसमें व्यक्तित्व के तीन गुण सत, रज और तम पर आधारित सामाान्य या मंद अधिकारी तो अपने कर्मों का धर्म पूर्वक निर्वहन करने वाला क्रिया योग का साधक सद्गृहस्थ मध्यम अधिकारी और अभ्यास, वैराग्य और ईश्वर की चेतना से युक्त उच्चतम् व्यक्तित्व की परिकल्पना है। इसके साथ ही योग व्यक्तित्व के इन प्रारूप को तीनों में से किसी भी अवस्था द्वारा उच्चतम पद प्राप्त करने का साधन भी स्पष्ट है। साथ ही आध्यात्मिक चौतन्य के साथ शारीरिक शुचिता के सिद्धांत द्वारा मन और आत्मा तक पहुँचने का मार्ग योग द्वारा प्रतिपादित है और यही व्यक्तित्व की पूर्णता है।

इसलिए योग दर्शन व्यक्तित्व के विभिन्न आयाम उसके गुणों के साथ सुनिश्चित करता है तो व्यक्तित्व के परम आदर्श को भी स्पष्ट करता है साथ ही इसे प्राप्त करने का व्यावहारिक और सैद्धांतिक मार्ग प्रशस्त करता है। जो वर्तमान समय में मानवीय प्रकृति, सभ्यता और संस्कृति को बेहतर बनाने में सहायक हो सकता है।

संदर्भ सूची:

1- Eysenck, H.J. The Seientific study of personality, Greenwood Press, Publishers, West Port, Connecticut, 1952, p, 16
2. Allport, W. Gordon, Persoanlity : A Psychological Interpretation, Henry Hott & Co., New York, 1937, p. 48
3. Baron, A Robert, Psychology, Pearson Publication, 2006, p. 450
4. श्रीमद्भगद्गीता, चौखम्भा प्रकाशन, वाराणसी, 2015-2/55
5. गौड़पाद, सांख्यकारिका भाष्य, (संपादक) हरदत्त शर्मा, पूना प्रेस, पूणा, पृ० 16
6. वही
7. डॉ० राधाकृष्णन, सर्वपल्ली, भारतीय दर्शन, भाग-2, राजपाल एंड संस (संपादक नंदकिशोर गोमिका), नई दिल्ली संस्करण, 2024, पृ० 262
8. व्यास, योगसूत्र भाष्य 1/1, संपादक वेदांत चुंजु, कलकत्ता
9. प्रो० सिंह महेश, योग के आयाम, निर्मल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2019, पृ०18
10. शर्मा, डॉ० चंद्रधर, भारतीय दर्शन, आलोचना और अनुशीलन, मोतीलाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 1998, पृ० 145
11. व्यास, योग सूत्र पर भाष्य, संपादक वेदांत चुञ्चु, कलकत्ता, पृ० 2
12. योगविद्या, बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, वर्ष-1, अक-6, जून 2012
13. पांडेय, रेवती रमण, समग्र योग, सुरेशोन्मेष प्रकाशन, वाराणसी, 1985, पृ०11
14. मनुस्मृति, 1/157
15. याज्ञवल्क्य स्मृति, 1/44
16. योग सूत्र 1/2 मोती लाल बनारसीदास, नई दिल्ली, 1980
17. वही, 2/30
18. वही, 2/32
19. वही, 2/45
20. वही, 2/46
21. वही, 2/47

डॉ. ब्रह्मानन्द के नाटकों में मूल्य-दृष्टि और नैतिक चेतना का विश्लेषण

शान देवी

शोधार्थी, पीएच.डी. (हिन्दी), हिंदी विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक (हरियाणा)

डॉ० संजीव कुमार

शोध निर्देशक, प्रोफेसर, हिंदी विभाग, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक (हरियाणा)

शोध-सार

यह शोध-पत्र डॉ. ब्रह्मानन्द के नाटकों में निहित मूल्य-दृष्टि और नैतिक चेतना का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करता है। इस शोध पत्र में डॉ० ब्रह्मानंद के प्रमुख नाटकों- अज्ञातवास, श्रीकृष्ण सन्देश, भर्तृहरि और महाबलिदान का बहुआयामी परीक्षण किया गया है। इस शोध-पत्र का मूल उद्देश्य यह स्थापित करना है कि डॉ. ब्रह्मानन्द के नाटक केवल पौराणिक या ऐतिहासिक कथाओं का पुनर्प्रस्तुतीकरण नहीं हैं, बल्कि वे समकालीन समाज के नैतिक संकट, सांस्कृतिक विघटन और मानवीय मूल्यों की पुनर्स्थापना का सशक्त माध्यम हैं।

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि डॉ. ब्रह्मानन्द की मूल्य-दृष्टि धर्म, न्याय, आत्मसंयम, लोकमंगल और प्रकृति-संरक्षण जैसे आधारभूत तत्त्वों पर निर्मित है। अज्ञातवास में धैर्य, मर्यादा और स्त्री-अस्मिता; श्रीकृष्ण सन्देश में न्यायोन्मुख शांति और धर्म-संकट; भर्तृहरि में भोग से वैराग्य की ओर संक्रमण; तथा महाबलिदान में पर्यावरणीय चेतना और सामूहिक त्याग ये सभी उनके नाटकों की केंद्रीय मूल्य-रेखाएँ हैं। इन नाटकों में नैतिक चेतना किसी उपदेशात्मक रूप में नहीं, बल्कि पात्रों के संघर्ष, संवाद और नाटकीय परिस्थितियों के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। डॉ. ब्रह्मानन्द अतीत की कथाओं को वर्तमान संदर्भों से जोड़कर प्रस्तुत करते हैं, जिससे उनके नाटक आधुनिक समाज के लिए भी प्रासंगिक बन जाते हैं। उनके यहाँ नैतिकता अमूर्त अवधारणा न होकर जीवन-व्यवहार का सक्रिय अंग है। साथ ही, उनकी भाषा-शैली की सरलता, संवादों की प्रभावशीलता और रंगमंचीयता की सशक्तता इन मूल्यों को व्यापक जनसमुदाय तक पहुँचाने में सहायक सिद्ध होती है।

मुख्य शब्दः मूल्य-दृष्टि, नैतिक चेतना, डॉ. ब्रह्मानन्द, हिंदी नाटक, धर्म और न्याय, वैराग्य, पर्यावरण चेतना, सामाजिक मूल्य, रंगमंचीयता

प्रस्तावना

डॉ. ब्रह्मानन्द के नाटकों का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि उनके यहाँ नाटक केवल दृश्य-रचना या मनोरंजन का माध्यम नहीं रह जाता, बल्कि वह मानवीय मूल्यों, सांस्कृतिक स्मृति और नैतिक संघर्ष का सशक्त विधान बन जाता है। डॉ. ब्रह्मानन्द के यहाँ नाटक "दृश्य-माध्यम होने के साथ-साथ मूल्य-माध्यम भी है"; अर्थात् कथा का प्रयोजन केवल घटनाओं का चित्रण नहीं, बल्कि मनुष्य को न्याय, धर्म, आत्मसंयम, लोकमंगल और प्रकृति-संबंधी उत्तरदायित्व की ओर उन्मुख करना है। यही कारण है कि अज्ञातवास में धैर्य और अस्मिता, श्रीकृष्ण सन्देश में न्याय और शांति, भर्तृहरि में वैराग्य और आत्मबोध, तथा महाबलिदान में प्रकृति-रक्षा और लोकधर्म, एक व्यापक मूल्य-दृष्टि के विविध आयाम बनकर सामने आते हैं।

डॉ. ब्रह्मानन्द का नाट्य-संसार इस अर्थ में विशिष्ट है कि वह अतीत को ज्यों-का-त्यों दोहराता नहीं, बल्कि उसकी पुनर्व्याख्या करता है। उनके नाटक मिथकीय, ऐतिहासिक और लोक-आधारित सामग्री को आधुनिक जीवन-संदर्भों से जोड़ते हैं; इसलिए उनके यहाँ कथा स्मृति नहीं, चेतना है, और प्रसंग इतिहास नहीं, वर्तमान का आत्मालोचन भी है। इसीलिए मूल्य-दृष्टि और नैतिक चेतना का अध्ययन उनके नाटकों के भीतर से ही सबसे सशक्त रूप में संभव होता है।

(1) मूल्य-दृष्टि

'मूल्य-दृष्टि' से आशय उस वैचारिक-नैतिक परिप्रेक्ष्य से है जिसके आधार पर कोई रचनाकार जीवन, समाज, सत्ता, धर्म, प्रकृति, संबंध और संघर्ष का मूल्यांकन करता है। यह केवल उपदेश नहीं, बल्कि रचना के भीतर निहित वह निर्णायक दृष्टि है जो सत्य-असत्य, न्याय-अन्याय, भोग-वैराग्य, लोकमंगल-स्वार्थ, करुणा-क्रूरता और संरक्षण-विनाश के बीच भेद स्थापित करती है। डॉ. ब्रह्मानन्द के नाटकों से स्पष्ट है कि उनके यहाँ नाटक "मूल्य-माध्यम" है और उनकी कृतियों का उद्देश्य मनुष्य को केवल मनोरंजन नहीं, बल्कि नैतिक बोध और जीवन-दृष्टि देना है। इस अर्थ में मूल्य-दृष्टि उनके समूचे नाट्य-साहित्य की आधारशिला है।

(2) नैतिक चेतना

'नैतिक चेतना' वह सक्रिय मानवीय संवेदना है जो मनुष्य को केवल घटना के स्तर पर नहीं, उसके नैतिक अर्थ के स्तर पर भी जागरूक बनाती है। यह चेतना न्याय, करुणा, आत्मसंयम, नारी-गरिमा, प्रजाहित, पर्यावरण-सुरक्षा और लोकहित जैसे मूल्यों को व्यवहार से जोड़ती है। डॉ. ब्रह्मानन्द के यहाँ "धर्म" का अर्थ केवल अनुष्ठान नहीं, बल्कि न्याय, संयम, प्रजा-रक्षा, नारी-गरिमा, प्रकृति-संरक्षण और आत्मानुशासन से है; अर्थात् नैतिकता उनके नाटकों में विचार का विषय नहीं, बल्कि नाटकीय क्रिया का आधार है। इसलिए उनकी नैतिक चेतना अमूर्त नहीं, क्रियाशील है।

(3) मूल्य-दृष्टि और नैतिक चेतना का अंतर्संबंध

इन दोनों पदों में सूक्ष्म अंतर है। मूल्य-दृष्टि रचनाकार की व्यापक जीवन-दृष्टि है; नैतिक चेतना उस दृष्टि का सक्रिय, व्यवहारिक और नाटकीय रूप है। सरल शब्दों में कहें तो मूल्य-दृष्टि बताती है कि लेखक किसे सही, सार्थक और आवश्यक मानता है; नैतिक चेतना दिखाती है कि पात्र संकट की घड़ी में उन्हीं मूल्यों को कैसे जीते हैं। डॉ. ब्रह्मानन्द के नाटकों में यह संबंध अत्यंत घनिष्ठ है उनकी मूल्य-दृष्टि धर्म, न्याय, लोकमंगल, आत्मसंयम और प्रकृति-सम्मान पर आधारित है; और नैतिक चेतना इन्हीं तत्त्वों को संघर्ष-स्थितियों में सक्रिय करती है।

डॉ. ब्रह्मानन्द की समग्र मूल्य-दृष्टि

डॉ. ब्रह्मानन्द की समग्र मूल्य-दृष्टि चार मुख्य केन्द्रों में विकसित होती है- धर्म, न्याय, आत्मसंयम और लोकमंगल। उनके नाटकों में धर्म जड़ रूढ़ि नहीं, बल्कि न्यायपूर्ण आचरण है; शांति पलायन नहीं, बल्कि न्याय-आधारित संतुलन है; वैराग्य निष्क्रियता नहीं, बल्कि अनुभवजन्य आत्मबोध है; और प्रकृति-रक्षा भावुकता नहीं, बल्कि मनुष्य के अस्तित्व की अनिवार्य शर्त है। यही कारण है कि उनके नाटकों में नारी-गरिमा, राजधर्म, सज्जनों की रक्षा, दुष्ट-दमन, पर्यावरण-संरक्षण और सांस्कृतिक मर्यादा जैसे विषय अलग-अलग नहीं, बल्कि एक समेकित मूल्य-दृष्टि के अंग बन जाते हैं।

यह समग्रता उनके व्यक्तित्व-विवेचन में भी दिखाई देती है। उन्हें ऐसा साहित्यकार माना गया है जो साहित्य को "शिल्प का खेल" नहीं, बल्कि जीवन-मूल्यों का सक्रिय माध्यम मानता है। उनके लिए महाभारत, भर्तृहरि और खेजड़ली केवल सांस्कृतिक प्रसंग नहीं, बल्कि आज के मनुष्य के नैतिक पुनर्विचार के आधार हैं। इसलिए उनकी मूल्य-दृष्टि पुनरुत्थानवादी नहीं, पुनर्व्याख्यात्मक है।

अज्ञातवास

अज्ञातवास में डॉ. ब्रह्मानन्द की मूल्य-दृष्टि का केन्द्र संकट में भी धर्म और आत्मसंयम को बनाए रखना है। इस नाटक का उद्देश्य "शांति, धैर्य, धर्म और निष्काम कर्म की प्रतिष्ठा" है। पाण्डवों की स्थिति यहाँ केवल राजनीतिक पराजय की नहीं, बल्कि गरिमा, पहचान और अस्तित्व की परीक्षा की स्थिति है। इसीलिए अज्ञातवास केवल छद्मवेश का नाटक नहीं, बल्कि नैतिक धैर्य का नाटक बन जाता है।

इस मूल्य-दृष्टि का सबसे मार्मिक रूप द्रौपदी-प्रसंगों में दिखाई देता है। युधिष्ठिर का यह कथन "यह पुष्प के समान कोमल सुकुमारी पांचाली असहाय है" और द्रौपदी का उत्तर "मेरे रक्षक तो गोपाल हैं" करुणा और आस्था के बीच एक गहरे नैतिक संतुलन को व्यक्त करते हैं। यहाँ द्रौपदी केवल संरक्षण की अपेक्षा करने वाली पात्र नहीं है; वह आस्था, धैर्य और आत्मनिर्णय की सशक्त वाहक है। ब्रह्मानन्द की स्त्री-पात्र "केवल दया की पात्र नहीं, बल्कि संकट में निर्णय लेने वाली सशक्त उपस्थिति" हैं।

कीचक-प्रसंग में यही नैतिक चेतना प्रतिरोधात्मक रूप ग्रहण करती है। द्रौपदी की दृष्टि में राजसत्ता का धर्म आश्रित की रक्षा करना है; इसलिए जब वह पूछती है "नारी सांत्वना से क्या लाभ होगा?" तो यह वाक्य न केवल उसके अपमान का प्रतिवाद है, बल्कि उस सामाजिक संरचना पर भी प्रश्नचिह्न है जहाँ सत्ता अपराध को रोकने में असफल रहती है। यहाँ नैतिक चेतना करुणा तक सीमित नहीं रहती; वह न्याय की मांग में बदल जाती है। यही अज्ञातवास की केन्द्रीय नैतिक शक्ति है।

श्रीकृष्ण सन्देश

श्रीकृष्ण सन्देश में डॉ. ब्रह्मानन्द की मूल्य-दृष्टि न्याय, शांति और धर्म के जटिल संतुलन के रूप में सामने आती है। श्रीकृष्ण के लिए शांति निष्क्रियता नहीं, बल्कि न्याय पर आधारित व्यवस्था है; यदि न्याय न हो, तो शांति अन्याय की स्थिरता बन जाती है। यह मूल्य-दृष्टि सीधे उस कथन में व्यक्त है "श्रीकृष्ण ने मानवजाति को यही संदेश दिया है कि धर्म का पालन करो और सज्जनों की रक्षा करो और अधर्म-दुष्टों का दमन और विनाश करो तभी संसार में सुख शांति और प्रगति संभव है"। यह पंक्ति नाटक की नैतिक रीढ़ है।

इसी दृष्टि का दूसरा पक्ष तब उभरता है जब श्रीकृष्ण कहते हैं "युद्ध एक भयंकर नारकीय विभीषिका है और सर्वनाश की जड़ है। पाण्डवों और कौरवों में संधि और समझौता से ही शांति संभव है"; किन्तु साथ ही वे यह भी स्वीकार करते हैं कि "जब न्यायोचित अधिकार प्राप्त करने की सब नीतियाँ और उपाय असफल हो जायें तब भयानक युद्ध का विकल्प ही शेष रहता है"। यहाँ नैतिक चेतना का स्वरूप अत्यंत परिपक्व है, क्योंकि नाटककार न युद्धोन्माद का समर्थन करता है, न पलायनवादी शांति का; वह न्यायोन्मुख शांति की स्थापना चाहता है।

इस नाटक में धर्म की संकल्पना भी अत्यंत व्यावहारिक है। डॉ. ब्रह्मानन्द के यहाँ धर्म का अर्थ अनुष्ठान नहीं, बल्कि सज्जनों की रक्षा, अन्याय का प्रतिरोध और लोकमंगलकारी निर्णय है। इसलिए श्रीकृष्ण सन्देश की नैतिक चेतना मूलतः विवेकशील राजनीति की चेतना है। यहाँ कृष्ण नीति और धर्म दोनों के प्रतिनिधि हैं; वे करुणा से शांति चाहते हैं, पर न्याय के बिना शांति स्वीकार नहीं करते। इसीलिए यह नाटक आधुनिक राजनीतिक नैतिकता की दृष्टि से भी अत्यंत प्रासंगिक बन जाता है।

भर्तृहरि

भर्तृहरि डॉ. ब्रह्मानन्द की मूल्य-दृष्टि का सबसे आत्मगर्भित और दार्शनिक रूप प्रस्तुत करता है। यहाँ केंद्रीय प्रश्न बाहरी संघर्ष का नहीं, बल्कि आंतरिक परिवर्तन का है। आधुनिक भोगवादी सभ्यता की आलोचना करते हुए नाटक यह स्थापित करता है कि "आज की मानव जाति के लिए कल्याण का यही मार्ग है कि वह भोगवादी प्रवृत्ति मार्ग को छोड़कर त्याग और वैराग्य की ओर उन्मुख हो जाए"। यह कथन केवल उपदेश नहीं, बल्कि नाटक की संपूर्ण संरचना का मूल्य-सूत्र है।

भर्तृहरि की नैतिक चेतना अनुभवजन्य है। अमरफल-प्रसंग नाटक का केवल कथानक-चरम नहीं, बल्कि नैतिक विस्फोट है- विश्वास, भोग, भ्रम और मोहभंग के बीच से वैराग्य जन्म लेता है। भोग, विश्वासघात, मोहभंग और आत्मग्लानि के बीच से ही वैराग्य का जन्म होता है; इसलिए भर्तृहरि केवल एक ऐतिहासिक चरित्र नहीं, बल्कि आधुनिक मनुष्य की अंतरात्मा के प्रश्न का उत्तर हैं। यहाँ मूल्य-दृष्टि का केन्द्र यह है कि सुख का बाहरी विस्तार मनुष्य को संतोष नहीं देता; आत्मबोध के बिना वैभव भीतर से रिक्त रहता है।

इसी मूल्य-दृष्टि का संक्षिप्त और दार्शनिक निचोड़ उस कथन में मिलता है "वैराग्य ही अमृतपथ है"। इस वाक्य का महत्त्व केवल आध्यात्मिक नहीं, नैतिक भी है। यहाँ वैराग्य का आशय पलायन नहीं, बल्कि विवेक है भोग से ऊपर उठकर जीवन के सत्य को देखना। भर्तृहरि का चरित्र भारतीय संस्कृति का "सच्चा प्रतिनिधि" है, क्योंकि उसमें प्रवृत्ति और निवृत्ति का संतुलन है। इस प्रकार भर्तृहरि में नैतिक चेतना अनुभव की अग्नि से निखरी हुई चेतना है।

नीतिशतक का श्लोक "निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु..." डॉ. ब्रह्मानन्द की कृतित्व-दृष्टि से जोड़ा गया है। यह श्लोक स्थिर नैतिकता, न्याय और धैर्य का प्रतीक है। इसलिए भर्तृहरि के भीतर नैतिक चेतना का अंतिम रूप आत्मानुशासन, न्यायप्रियता और वैराग्यपूर्ण विवेक है।

महाबलिदान

महाबलिदान में डॉ. ब्रह्मानन्द की मूल्य-दृष्टि सामूहिकता और लोकधर्म के रूप में सामने आती है। डॉ. ब्रह्मानन्द के नाटकों की सबसे बड़ी विशेषता यह बताई गई है कि यहाँ पर्यावरण का प्रश्न आधुनिक नारे की तरह नहीं, बल्कि लोकधर्म और

जीवन-मूल्य के रूप में आता है। नाटककार स्वयं लिखते हैं "वर्तमान विश्व के समक्ष पर्यावरण-प्रदूषण एक ज्वलन्त समस्या है"। यह कथन नाटक की समकालीनता को सीधे स्थापित करता है।

किन्तु महाबलिदान की वास्तविक नैतिक शक्ति केवल समस्या-उद्घाटन में नहीं, बल्कि समाधान-चेतना में निहित है। खेजड़ली के बलिदानी पात्र वृक्षों की रक्षा के लिए अपने प्राण न्योछावर करते हैं; इस प्रकार प्रकृति-रक्षा यहाँ जीवन-मूल्य, धर्म और सामुदायिक उत्तरदायित्व तीनों का संयुक्त रूप बन जाती है। उनके अनुसार यदि धरती पर जीवित रहना है, तो पर्यावरण की रक्षा करनी होगी; यही इस नाटक का सनातन संदेश है। यहाँ मूल्य-दृष्टि का केन्द्र 'सह-अस्तित्व' है, मनुष्य और प्रकृति परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि एक-दूसरे के जीवनाधार हैं।

इस नाटक में नैतिक चेतना का एक महत्त्वपूर्ण रूप राजधर्म के माध्यम से उभरता है। अभयसिंह का यह संवाद "मुझे निर्दोष मस्तकों की हत्या के बारे में सुनकर मर्मान्तक पीड़ा हुई... मैं आप लोगों के सामने जोधपुर नरेश न होकर एक अपराधी की तरह खड़ा हूँ..." राजसत्ता की नैतिक आत्मालोचना का उत्कृष्ट उदाहरण है। यहाँ राजा शक्ति का प्रतिनिधि होते हुए भी अपराध-बोध से गुजरता है और प्रजाहित को सर्वोपरि मानता है। उनके अनुसार यही राजधर्म का वास्तविक स्वरूप है, जहाँ शासक अपने अधिकार से अधिक अपने उत्तरदायित्व को महत्त्व देता है।

अत: महाबलिदान में मूल्य-दृष्टि तीन स्तरों पर विकसित होती है, प्रकृति-सम्मान, सामूहिक लोकनिष्ठा और उत्तरदायी राजधर्म। इन तीनों के कारण यह नाटक केवल ऐतिहासिक पुनर्रचना नहीं, बल्कि आधुनिक नैतिक चेतना का दस्तावेज बन जाता है।

डॉ. ब्रह्मानन्द के नाटकों की समेकित नैतिक संरचना

यदि अज्ञातवास, श्रीकृष्ण सन्देश, भर्तृहरि और महाबलिदान को एक साथ देखा जाए, तो स्पष्ट होता है कि डॉ. ब्रह्मानन्द के नाटकों की मूल्य-दृष्टि मूलत: पाँच आधारों पर टिकी है- धर्म, न्याय, आत्मसंयम, लोकमंगल और प्रकृति-संरक्षण। अज्ञातवास में धैर्य और मर्यादा, श्रीकृष्ण सन्देश में न्याय-आधारित शांति, भर्तृहरि में आत्मबोधमूलक वैराग्य और महाबलिदान में पर्यावरणीय लोकधर्म ये सब अलग-अलग मूल्य नहीं, बल्कि एक ही नैतिक दृष्टि के विविध रूप हैं।

डॉ. ब्रह्मानन्द की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि वे इन मूल्यों को बाहर से आरोपित नहीं करते। उनके यहाँ नैतिकता "विचार का विषय नहीं, बल्कि नाटकीय क्रिया का आधार" है। यही कारण है कि उनके पात्र उपदेश नहीं देते, बल्कि संघर्ष के बीच मूल्यों को जीते हैं। द्रौपदी आत्मसम्मान जीती है, कृष्ण न्यायपूर्ण शांति जीते हैं, भर्तृहरि अनुभवजन्य वैराग्य जीते हैं और विश्नोई समाज प्रकृति-रक्षा को प्राणों से बड़ा मूल्य सिद्ध करता है। यही ब्रह्मानन्दीय नैतिक चेतना का प्राणतत्त्व है।

डॉ. ब्रह्मानन्द की उद्देश्य-प्रधानता संवादों को अत्यधिक स्पष्ट बना देती है, जिससे कलात्मक सूक्ष्मता थोड़ी सीमित हो सकती है; फिर भी यह उनकी कमजोरी नहीं, बल्कि उनकी मूल्य-सचेत रचना-दृष्टि का परिणाम है। इस दृष्टि से उनकी नैतिकता अमूर्त, दुरूह या अस्पष्ट नहीं है; वह पाठक तक साफ, सजीव और प्रभावी रूप में पहुँचती है।

उपसंहार

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि डॉ. ब्रह्मानन्द के नाटकों में मूल्य-दृष्टि और नैतिक चेतना का संबंध आधार और अभिव्यक्ति का संबंध है। उनकी मूल्य-दृष्टि जीवन को धर्म, न्याय, आत्मसंयम, लोकमंगल और प्रकृति-सम्मान के धरातल पर देखने की दृष्टि है; और नैतिक चेतना इन्हीं मूल्यों को संकट, संघर्ष, अपमान, मोहभंग और राजनीतिक तनाव की स्थितियों में सक्रिय करती है। इसीलिए उनके नाटक केवल पौराणिक, ऐतिहासिक या लोक-आधारित आख्यान नहीं रह जाते, बल्कि वे आधुनिक मनुष्य के लिए नैतिक पुनर्विचार के दस्तावेज बन जाते हैं।

डॉ. ब्रह्मानन्द की प्रासंगिकता इसी बात में निहित है कि वे अतीत को वर्तमान की आलोचना का उपकरण बनाते हैं। वे दिखाते हैं कि धर्म जड़ रूढ़ि नहीं, न्यायपूर्ण आचरण है; शांति पलायन नहीं, विवेकपूर्ण संतुलन है; वैराग्य निष्क्रियता नहीं, आत्मबोध है; और प्रकृति-रक्षा भावुकता नहीं, मानव-अस्तित्व की अनिवार्य शर्त है। इसलिए उनके नाटकों में मूल्य-दृष्टि और नैतिक चेतना केवल साहित्यिक गुण नहीं, बल्कि सांस्कृतिक पुनर्निर्माण की शक्ति है। यही उनके नाट्य-साहित्य की स्थायी उपलब्धि है।

संदर्भ ग्रंथ

1. डॉ. ब्रह्मानन्द एवं डॉ. बाबूराम, अज्ञातवास (नाटक), निर्मल पब्लिशिंग हाउस, कुरुक्षेत्र, प्रथम संस्करण, 2015
2. डॉ. ब्रह्मानन्द, श्रीकृष्ण सन्देश (नाटक), निर्मल पब्लिशिंग हाउस, कुरुक्षेत्र, प्रथम संस्करण, 2016
3. डॉ. ब्रह्मानन्द एवं डॉ. बाबूराम, भर्तृहरि (नाटक) (डॉ. ब्रह्मानन्द), नवभारत प्रकाशन, शाहदरा, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2014
4. डॉ. ब्रह्मानन्द, महाबलिदान (नाटक), ब्राह्माणी साहित्य अकादमी, बीकानेर, प्रथम संस्करण, 2013
5. इन्द्रनाथ मदान, हिन्दी नाटक और रंगमंचः पहचान और परख, लिपि प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1993
6. बच्चन सिंह, हिन्दी नाटक, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 1997
7. द. भि. कुलकर्णी, नाट्य स्वरूप व समीक्षा, पद्मगंधा प्रकाशन, पुणे, प्रथम संस्करण, 2015
8. पं. आनन्द शंकर व्यास, श्रीकृष्ण सन्देश (नाटक), निर्मल पब्लिशिंग हाउस, कुरुक्षेत्र, प्रथम संस्करण, 2016
9. डॉ. पी. एल. चतुर्वेदी, अज्ञातवास (नाटक), निर्मल पब्लिशिंग हाउस, कुरुक्षेत्र, प्रथम संस्करण, 2015

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी का विकासः यथार्थ, संवेदना और शिल्प की बदलती दिशाएँ

अंशु कुमारी

शोधार्थी, बी.एड., स्पेशल एजुकेशन, (दृष्टिबाधित), एन.आई.वी.एच. देहरादून, श्री देव सुमन उत्तराखंड विश्वविद्यालय, बादशाहीथौल, टेहरी गढ़वाल, उत्तराखंड

सारांश

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी आधुनिक भारतीय समाज के परिवर्तनशील यथार्थ की सबसे सघन, तीक्ष्ण और बहुरंगी साहित्यिक अभिव्यक्तियों में से एक है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भारतीय समाज में राजनीतिक स्वाधीनता के साथ-साथ विभाजन, विस्थापन, सांप्रदायिक तनाव, लोकतांत्रिक संस्थाओं का निर्माण, मध्यवर्गीय जीवन की जटिलताएँ, ग्रामीण संकट, शहरी अलगाव, स्त्री-अस्मिता, दलित चेतना, आदिवासी प्रश्न, बाजारवाद और वैश्वीकरण जैसी अनेक प्रक्रियाएँ एक साथ सक्रिय हुई। हिंदी कहानी ने इन प्रक्रियाओं को केवल विषय के रूप में ग्रहण नहीं किया, बल्कि अपनी भाषा, संरचना, कथन-शैली, प्रतीक-योजना और संवेदनात्मक दृष्टि को भी इनके अनुरूप बदला। प्रेमचंदोत्तर सामाजिक यथार्थवाद से आगे बढ़कर नई कहानी ने व्यक्ति के आंतरिक तनाव, संबंधों की टूटन और मध्यवर्गीय विडंबना को केंद्र में रखा। इसके बाद साठोत्तरी कहानी, समानांतर कहानी, जनवादी कहानी, स्त्रीवादी कहानी, दलित कहानी और भूमंडलीकरणोत्तर कहानी ने हिंदी कथा-साहित्य को नए सामाजिक आधार और वैचारिक विस्तार प्रदान किए। प्रस्तुत शोध-लेख स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी के इसी विकास-क्रम का विश्लेषण करता है और यह प्रतिपादित करता है कि हिंदी कहानी का विकास किसी एकरेखीय साहित्यिक आंदोलन का परिणाम नहीं, बल्कि भारतीय समाज की बहुस्तरीय ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक गतियों का रचनात्मक प्रतिफल है।

मुख्य शब्दः स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी, नई कहानी, साठोत्तरी कहानी, जनवादी कहानी, स्त्रीवादी कहानी, दलित कहानी, भूमंडलीकरण, हिंदी कथा-साहित्य

भूमिका

हिंदी कहानी का आधुनिक विकास प्रेमचंद से आरंभ होकर स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद एक निर्णायक मोड़ पर पहुँचता है। प्रेमचंद ने हिंदी कहानी को सामाजिक यथार्थ, वर्गीय विषमता, ग्रामीण जीवन, नैतिक संघर्ष और मनुष्य की करुणा से जोड़ा। किंतु 1947 के बाद भारतीय समाज की ऐतिहासिक परिस्थिति इतनी तेजी से बदली कि कहानी को नए अनुभवों और नई अभिव्यक्ति-पद्धतियों की आवश्यकता महसूस हुई। स्वतंत्रता केवल राजनीतिक घटना नहीं थी; वह सामूहिक कल्पना, आशा, विस्थापन, मोहभंग और पुनर्निर्माण की जटिल प्रक्रिया थी। इसी कारण स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी में उत्सव की जगह प्रश्न अधिक हैं, नारे की जगह अनुभव अधिक है, और आदर्श की जगह विडंबनात्मक यथार्थ अधिक है।

स्वतंत्रता के तुरंत बाद हिंदी कहानी के सामने दो बड़े प्रश्न थे। पहला, क्या स्वतंत्रता के बाद भारतीय समाज सचमुच न्यायपूर्ण और समतामूलक दिशा में आगे बढ़ रहा है? दूसरा, बदलते हुए समाज में व्यक्ति की स्थिति क्या है? यह वही समय था जब औपनिवेशिक सत्ता समाप्त हो चुकी थी, किंतु गरीबी, सामंती मानसिकता, जातिगत असमानता, स्त्री-दमन, नौकरशाही, विस्थापन और आर्थिक विषमता बनी हुई थी। कहानीकारों ने पाया कि राष्ट्रीय मुक्ति की भाषा आम आदमी के जीवन में स्वतः मुक्ति में परिवर्तित नहीं हुई। इसलिए स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी का प्रमुख स्वर केवल राष्ट्र-निर्माण का उत्साह नहीं, बल्कि राष्ट्र-निर्माण की अधूरी परियोजना का आलोचनात्मक परीक्षण भी है।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी का विकास कई चरणों में देखा जा सकता है-स्वतंत्रता और विभाजन का यथार्थ, नई कहानी आंदोलन, साठोत्तरी कहानी, समानांतर और जनवादी कहानी, स्त्रीवादी कथा-लेखन, दलित और आदिवासी कथा-दृष्टि, तथा उदारीकरणोत्तर कहानी। इन चरणों को कठोर काल-खंडों में बाँटना आसान है, किंतु साहित्यिक दृष्टि से वे परस्पर अंतःसंबद्ध हैं। उदाहरण के लिए, नई कहानी में मध्यवर्गीय व्यक्ति का अकेलापन है, लेकिन उसमें सामाजिक संरचनाओं का दबाव भी

उपस्थित है। जनवादी कहानी में वर्ग-संघर्ष है, लेकिन उसके भीतर व्यक्ति की पीड़ा और अस्मिता भी है। दलित कहानी में जाति-अनुभव है, लेकिन वह लोकतंत्र, नैतिकता और आधुनिकता की सीमाओं का भी प्रश्न उठाती है। इसी प्रकार स्त्रीवादी कहानी केवल स्त्री-विषयक कहानी नहीं, बल्कि भाषा, शरीर, परिवार, श्रम, प्रेम और सत्ता के पुनर्पाठ का साहित्यिक हस्तक्षेप है।

नई कहानी को प्रायः हिंदी कहानी के इतिहास में निर्णायक मोड़ माना जाता है। इसके केंद्र में मोहन राकेश, कमलेश्वर और राजेंद्र यादव जैसे कहानीकारों की त्रयी का उल्लेख बार-बार किया जाता है; कई आलोचनात्मक स्रोत नई कहानी को 1950 के दशक में विकसित हुई उस साहित्यिक प्रवृत्ति के रूप में देखते हैं जिसने प्रेमचंदोत्तर कहानी की स्थापित छवि से भिन्न आधुनिक व्यक्ति की जटिलता को व्यक्त किया।

स्वातंत्र्योत्तर सामाजिक संदर्भ और हिंदी कहानी की नई जमीन

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद भारत एक नए लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में निर्मित हो रहा था। संविधान, सार्वभौमिक मताधिकार, पंचवर्षीय योजनाएँ, भूमि-सुधार, औद्योगीकरण, शिक्षा-विस्तार और शहरीकरण जैसी प्रक्रियाएँ समाज को बदल रही थीं। किंतु इसी दौर में विभाजन की त्रासदी, शरणार्थी जीवन, सांप्रदायिक हिंसा, नौकरशाही का विस्तार, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी और नए मध्यवर्ग का द्वंद्व भी सामने आया। कहानी इस संपूर्ण परिवर्तन को सीधे घोषणात्मक रूप में नहीं, बल्कि जीवन के छोटे-छोटे प्रसंगों, संबंधों और मनोस्थितियों के माध्यम से व्यक्त करती है।

प्रेमचंद की परंपरा में कहानी का सामाजिक यथार्थ मुख्यतः सामूहिक जीवन, ग्रामीण संरचना, शोषण और नैतिक संघर्ष के रूप में उपस्थित था। स्वातंत्र्योत्तर समय में कहानीकारों ने यह अनुभव किया कि शोषण केवल खेत-खलिहान या जमींदार-किसान संबंध तक सीमित नहीं है; वह दांपत्य, परिवार, कार्यालय, शहर, शिक्षा, राजनीति, भाषा, शरीर और स्मृति तक फैला हुआ है। इसलिए कहानी का यथार्थ अधिक सूक्ष्म, अधिक मनोवैज्ञानिक और अधिक बहुविध हुआ।

विभाजन-जनित कहानियों में मनुष्य की क्रूरता, विस्थापन और सांप्रदायिकता का प्रश्न तीखे रूप में उपस्थित हुआ। भीष्म साहनी, यशपाल, कृष्णा सोबती और अन्य रचनाकारों ने विभाजन को केवल ऐतिहासिक दुर्घटना नहीं, बल्कि मनुष्यता की परीक्षा के रूप में देखा। इन कहानियों में धर्म, राष्ट्र और पहचान के नाम पर मनुष्य की संवेदना कैसे क्षतिग्रस्त होती है, यह गहरी कलात्मकता से सामने आता है। विभाजन का प्रभाव यह भी था कि कहानी में 'घर' का अर्थ बदल गया। घर केवल भौतिक स्थान नहीं रहा; वह स्मृति, असुरक्षा, खोई हुई पहचान और नए जीवन की अनिश्चितता का प्रतीक बन गया।

स्वतंत्रता के बाद का ग्रामीण जीवन भी हिंदी कहानी का महत्वपूर्ण क्षेत्र बना रहा। फणीश्वरनाथ रेणु, अमरकांत, मार्कण्डेय, शेखर जोशी, शिवप्रसाद सिंह आदि ने ग्रामीण समाज को किसी रोमानी दृष्टि से नहीं, बल्कि बदलती आर्थिक-सामाजिक संरचनाओं के बीच देखा। रेणु की आंचलिकता केवल लोक-रंग नहीं है; वह भारतीय समाज की बहुभाषिकता, क्षेत्रीय जीवन-धारा, जातिगत संबंधों और ग्रामीण मनुष्य की जीवंतता का कलात्मक रूप है। पुस्तक-सूचनाओं और आलोचनात्मक टिप्पणियों में स्वातंत्र्योत्तर कहानियों को स्वतंत्रता के बाद के समाज की विविध चिंताओं और दारुण परिस्थितियों की रचनात्मक साक्षी माना गया है।

नई कहानी: आधुनिक व्यक्ति, मध्यवर्ग और संबंधों की विडंबना

1950 और 1960 के दशक में विकसित नई कहानी स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी का सबसे चर्चित चरण है। यह कोई औपचारिक घोषणापत्र-आधारित आंदोलन भर नहीं था, बल्कि जीवन-अनुभव की नई संरचना का साहित्यिक नाम था। मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेंद्र यादव, निर्मल वर्मा, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, भीष्म साहनी, अमरकांत, मार्कण्डेय आदि लेखकों ने कहानी को नए मनोवैज्ञानिक और सामाजिक धरातल पर रखा।

नई कहानी की केंद्रीय विशेषता यह है कि उसने बाह्य घटना की अपेक्षा आंतरिक तनाव को महत्व दिया। कहानी का नायक अब केवल किसान, मजदूर या संघर्षशील आदर्शवादी पात्र नहीं रहा; वह शहरी मध्यवर्गीय मनुष्य भी है, जो अपनी नौकरी, संबंधों, दांपत्य, यौन-संकोच, असफलताओं, अकेलेपन और आत्महीनता से जूझ रहा है। नई कहानी में व्यक्ति की स्थिति अनिश्चित है-वह स्वतंत्र भी है और असहाय भी; आधुनिक भी है और परंपरा से बँधा भी; प्रेम चाहता है, लेकिन संबंधों की प्रामाणिकता खोता जा रहा है।

मोहन राकेश की कहानियाँ आधुनिक संबंधों की अस्थिरता और मनुष्य की आंतरिक रिक्तता को तीक्ष्णता से पकड़ती हैं। उनके यहाँ संवाद जितना महत्वपूर्ण है, मौन उससे अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। संबंधों में अर्थ की कमी, आत्मीयता का क्षरण और अस्तित्वगत बेचैनी नई कहानी की पहचान बनती है। कमलेश्वर ने मध्यवर्गीय जीवन, शहर, राजनीति और बदलते समाज की विडंबनाओं को अधिक व्यापक सामाजिक संदर्भ में देखा। राजेंद्र यादव ने दांपत्य, यौन-नैतिकता, स्त्री-पुरुष संबंध और मध्यवर्गीय पाखंड पर प्रश्न उठाए।

नई कहानी की एक बड़ी उपलब्धि यह रही कि उसने कहानी को 'उपदेश' से मुक्त किया। प्रेमचंदीय परंपरा में भी कलात्मकता थी, किंतु कई बाद की कहानियों में सामाजिक संदेश प्रधान हो गया था। नई कहानी ने कहा कि कहानी का सत्य जीवन की जटिलता में है, न कि तैयार नैतिक निष्कर्ष में। इसलिए इसकी संरचना अधिक खुली, अंत अधिक अनिश्चित और भाषा अधिक सांकेतिक हुई। यह आधुनिकतावादी प्रभाव का भी समय था; यूरोपीय अस्तित्ववाद, मनोविश्लेषण और आधुनिक शहरी अनुभव ने अप्रत्यक्ष रूप से हिंदी कहानी के शिल्प को प्रभावित किया।

निर्मल वर्मा की कहानियों ने हिंदी कहानी को एक अलग संवेदनात्मक परिष्कार दिया। उनके यहाँ स्मृति, निर्वासन, अकेलापन, संबंधों की धुंध और आत्म-अन्वेषण का विशिष्ट संसार है। वे बाहरी सामाजिक यथार्थ को भी अत्यंत सूक्ष्म आंतरिक बिंबों के माध्यम से रचते हैं। इस दृष्टि से नई कहानी केवल सामाजिक यथार्थ की कहानी नहीं, बल्कि अनुभव की गहनता और भाषा की आंतरिक लय की भी कहानी है।

मन्नू भंडारी और उषा प्रियंवदा जैसी लेखिकाओं ने नई कहानी में स्त्री-अनुभव को नई दृष्टि से रखा। मन्नू भंडारी की कहानियों में मध्यवर्गीय स्त्री की आकांक्षा, घुटन और आत्मसम्मान का प्रश्न उभरता है। उषा प्रियंवदा ने अकेली स्त्री, प्रवासी जीवन, भावनात्मक रिक्तता और आत्मनिर्णय की समस्या को संवेदनशीलता से अभिव्यक्त किया। यह बात महत्वपूर्ण है कि नई कहानी में स्त्री केवल पुरुष की प्रेमिका या पत्नी के रूप में नहीं, बल्कि अनुभवशील, निर्णयक्षम और द्वंद्वग्रस्त व्यक्ति के रूप में सामने आती है।

नई कहानी की आलोचना भी हुई। उस पर मध्यवर्गीय सीमाबद्धता, ग्रामीण और श्रमिक जीवन से दूरी, यौन-संबंधों की अधिकता और सामाजिक संघर्ष से कटाव के आरोप लगाए गए। किंतु यह आलोचना पूर्णतः न्यायसंगत नहीं है। नई कहानी ने समाज को सीधे राजनीतिक नारों में नहीं, बल्कि व्यक्ति के टूटते हुए आंतरिक संसार में देखा। यह टूटन स्वयं स्वातंत्र्योत्तर समाज के अधूरे लोकतांत्रिक और नैतिक विकास का संकेत थी।

साठोत्तरी कहानी: मोहभंग, विखंडन और व्यवस्था-समीक्षा

1960 के बाद हिंदी कहानी का स्वर और अधिक तीखा, विडंबनात्मक और संशयपूर्ण होता है। यह वह समय था जब स्वतंत्रता के आदर्शों के प्रति मोहभंग तेज हो रहा था। 1962 का भारत-चीन युद्ध, 1965 का भारत-पाक युद्ध, खाद्यान्न संकट, बेरोजगारी, राजनीतिक अस्थिरता, शहरी भीड़, भ्रष्टाचार और प्रशासनिक जड़ता ने समाज में असंतोष पैदा किया। इस दौर की कहानी में न केवल व्यक्ति का अकेलापन है, बल्कि व्यवस्था की अमानवीयता भी अधिक स्पष्ट है।

साठोत्तरी कहानी नई कहानी की आत्मकेंद्रितता से आगे बढ़कर सामाजिक संरचनाओं की क्रूरता को पहचानती है। इसमें भाषा अधिक तीखी, व्यंग्यात्मक और कभी-कभी विखंडित हो जाती है। पात्रों में असंतोष है, लेकिन उनके पास कोई सुनिश्चित वैकल्पिक मार्ग नहीं है। यह अनिश्चितता उस समय की सामाजिक-राजनीतिक अनिश्चितता का साहित्यिक रूप है।

ज्ञानरंजन, दूधनाथ सिंह, रवींद्र कालिया, काशीनाथ सिंह, ममता कालिया, गिरिराज किशोर, हिमांशु जोशी आदि लेखकों ने कहानी को नए सामाजिक अनुभवों से जोड़ा। ज्ञानरंजन की कहानियों में मध्यवर्गीय जीवन की विसंगतियाँ और आत्म-विद्रूप एक विशिष्ट शैली में व्यक्त होते हैं। दूधनाथ सिंह में विद्रोह और विडंबना का तीखा स्वर है। रवींद्र कालिया और काशीनाथ सिंह ने छोटे शहरों, कस्बों, विश्वविद्यालयी जीवन, युवा पीढ़ी और सामाजिक संक्रमण को जीवंत भाषा में व्यक्त किया।

इस दौर की कहानी में 'कस्बा' एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक स्थल के रूप में उभरता है। कस्बा न पूर्णतः गाँव है, न पूरी तरह शहर। वहाँ परंपरा और आधुनिकता, आकांक्षा और अभाव, शिक्षा और बेरोजगारी, नैतिकता और व्यावहारिकता का विचित्र संघर्ष है। हिंदी पट्टी का सामाजिक मानस समझने के लिए साठोत्तरी कहानी में कस्बाई जीवन का चित्रण अत्यंत महत्वपूर्ण है।

साठोत्तरी कहानी का एक दूसरा पहलू यह है कि इसमें राजनीतिक-सामाजिक संस्थाओं के प्रति विश्वास कम होता जाता है। व्यवस्था केवल पृष्ठभूमि नहीं रहती; वह पात्रों के जीवन को नियंत्रित करने वाली शक्ति बन जाती है। कार्यालय, विश्वविद्यालय, अस्पताल, पुलिस, अदालत, राजनीति-ये सब जीवन की विडंबनाओं के सक्रिय स्थल बनते हैं।

समानांतर कहानी और जनवादी कहानी: आम आदमी की वापसी

1970 के दशक में हिंदी कहानी में 'समानांतर कहानी' और 'जनवादी कहानी' जैसे शब्दों का प्रचलन बढ़ा। कमलेश्वर ने समानांतर कहानी की अवधारणा को आगे बढ़ाते हुए कहानी को आम आदमी के जीवन-संघर्ष से जोड़ने पर बल दिया। इस दौर में यह अनुभव तीखा हुआ कि नई कहानी और साठोत्तरी कहानी का मध्यवर्गीय आत्मद्वंद्व पर्याप्त नहीं है; कहानी को श्रमजीवी समाज, वर्गीय शोषण, ग्रामीण संकट, राजनीतिक दमन और सामाजिक असमानता की ओर लौटना चाहिए।

जनवादी कहानी का संबंध व्यापक रूप से प्रगतिशील साहित्यिक परंपरा से है, किंतु वह प्रेमचंदीय सामाजिक यथार्थवाद की पुनरावृत्ति नहीं है। इसमें वर्ग-संबंध, किसान-मजदूर जीवन, सत्ता-तंत्र, आपातकालीन दमन, सांप्रदायिकता, पूँजीवादी शोषण और जनता की प्रतिरोधी चेतना प्रमुख होती है। इस धारा में काशीनाथ सिंह, रमेश उपाध्याय, स्वयं प्रकाश, उदय प्रकाश, संजीव, शिवमूर्ति, असगर वजाहत, अब्दुल बिस्मिल्लाह आदि लेखकों ने अलग-अलग रूपों में महत्त्वपूर्ण योगदान किया।

शिवमूर्ति की कहानियाँ ग्रामीण समाज, स्त्री, जाति, गरीबी और सत्ता-संबंधों को अत्यंत सघनता से अभिव्यक्त करती हैं। उनके यहाँ ग्रामीण जीवन किसी लोक-राग में डूबा हुआ संसार नहीं, बल्कि संघर्ष, शोषण, श्रम और जीवट का क्षेत्र है। संजीव की कहानियों में समाज का विस्तृत परिदृश्य, प्रशासनिक संरचनाएँ, श्रम और हाशिये के समुदायों का यथार्थ मिलता है। स्वयं प्रकाश ने आम आदमी की जीवन-स्थितियों, साम्प्रदायिकता-विरोध और मानवीयता की रक्षा को अपनी कहानी का नैतिक आधार बनाया।

जनवादी कहानी की शक्ति यह है कि उसने कहानी को सामाजिक संघर्षों से जोड़ा। किंतु इसकी सीमा तब दिखाई देती है जब कहानी केवल वैचारिक घोषणा में बदल जाती है। श्रेष्ठ जनवादी कहानी वह है जिसमें विचार जीवन-अनुभव से पैदा होता है, ऊपर से आरोपित नहीं होता। प्रेमचंद की परंपरा इसी अर्थ में जीवित रहती है कि कहानी मनुष्य की पीड़ा और सामाजिक न्याय के प्रश्न को साथ लेकर चलती है।

स्त्रीवादी कहानी: देह, आत्मसम्मान और सत्ता-संबंधों का पुनर्पाठ

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी का एक अत्यंत महत्वपूर्ण विकास स्त्रीवादी कथा-दृष्टि का उभार है। यद्यपि स्त्री-लेखन पहले भी था, किंतु स्वतंत्रता के बाद शिक्षा, नौकरी, शहर, मध्यवर्गीय परिवार, विवाह संस्था और स्त्री-अस्मिता के प्रश्नों ने नए रूप ग्रहण किए। मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती, उषा प्रियंवदा, मृदुला गर्ग, ममता कालिया, चित्रा मुद्गल, मैत्रेयी पुष्पा, नासिरा शर्मा, गीतांजलि श्री, अलका सरावगी, अनामिका आदि लेखिकाओं ने स्त्री-अनुभव को केंद्रीय साहित्यिक प्रश्न बनाया।

स्त्रीवादी कहानी ने यह दिखाया कि स्त्री का जीवन केवल निजी जीवन नहीं है; निजी भी राजनीतिक है। विवाह, प्रेम, मातृत्व, देह, कामना, घरेलू श्रम, सामाजिक प्रतिष्ठा और नैतिकता-ये सभी सत्ता-संबंधों से निर्मित हैं। हिंदी कहानी में स्त्री अब त्याग की मूर्ति या पुरुष-जीवन की सहायक पात्र नहीं रह जाती; वह अपनी इच्छा, असहमति, स्मृति, देह और भाषा के साथ उपस्थित होती है।

कृष्णा सोबती की रचनात्मकता ने हिंदी कथा-भाषा को देह, लोक और स्त्री-स्वर की नई ऊर्जा दी। मृदुला गर्ग ने स्त्री-स्वतंत्रता, नैतिकता और सामाजिक पाखंड पर तीखे प्रश्न उठाए। ममता कालिया ने मध्यमवर्गीय स्त्री के रोजमर्रा जीवन, नौकरी, परिवार और आत्मसम्मान की समस्याओं को व्यंग्य और सहजता के साथ लिखा। चित्रा मुद्गल ने स्त्री, श्रम और सामाजिक संघर्षों को व्यापक संदर्भ में देखा। मैत्रेयी पुष्पा ने ग्रामीण स्त्री, देह और पितृसत्ता की हिंसा को बोल्ड कथाभाषा दी।

स्त्रीवादी कहानी का महत्त्व केवल विषयगत नहीं है। उसने भाषा और कथन-शैली को भी बदला। स्त्री के अनुभव को व्यक्त करने के लिए घरेलू स्थान, शरीर, मौन, स्मृति, वस्त्र, श्रम, रसोई, आँगन, दफ्तर और सड़क-सब कथा-संरचना के हिस्से बने। इसने हिंदी कहानी के 'सार्वभौम मनुष्य' की अवधारणा को चुनौती दी और पूछा कि यह सार्वभौम मनुष्य दरअसल किसका अनुभव बोलता है-पुरुष का, मध्यवर्ग का, सवर्ण का या सचमुच समूचे समाज का?

दलित कहानी: जाति-यथार्थ और साहित्यिक लोकतंत्र

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी का सबसे क्रांतिकारी विस्तार दलित कहानी के रूप में सामने आया। भारतीय लोकतंत्र ने समान नागरिकता की घोषणा की, किंतु सामाजिक जीवन में जाति-आधारित अपमान, हिंसा और बहिष्कार जारी रहे। दलित कहानी ने इसी विरोधाभास को साहित्य के केंद्र में रखा।

ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, सूरजपाल चौहान, जयप्रकाश कर्दम, शरणकुमार लिंबाले के वैचारिक प्रभाव, कौशल्या बैसंत्री, सुशीला टाकभौरे आदि लेखकों ने दलित अनुभव को आत्मानुभूत सत्य के रूप में प्रस्तुत किया। दलित कहानी की मूल विशेषता यह है कि वह जाति को केवल सामाजिक समस्या नहीं, बल्कि मनुष्य की गरिमा और लोकतंत्र की कसौटी के रूप में देखती है।

मुख्यधारा की अनेक कहानियों में दलित पात्र करुणा के पात्र के रूप में आते थे; दलित कहानी में वे बोलते हुए, प्रतिरोध करते हुए और अपनी स्मृति के साथ उपस्थित होते हैं। यह प्रतिनिधित्व का बड़ा परिवर्तन है। दलित कहानी ने हिंदी साहित्य की भाषा को भी चुनौती दी। उसने शुद्धतावादी, सौंदर्यवादी और सवर्ण-केंद्रित भाषा-बोध के स्थान पर अनुभव की प्रामाणिकता, आक्रोश, व्यंग्य और प्रतिरोध की भाषा को महत्व दिया।

दलित कहानी का उभार हिंदी कहानी के लोकतांत्रिक विस्तार का प्रमाण है। इससे पहले जो अनुभव साहित्य के हाशिये पर था, वह केंद्र में आया। इससे कहानी की नैतिकता भी बदली। अब साहित्यिक प्रश्न केवल यह नहीं रहा कि कहानी सुंदर है या नहीं; प्रश्न यह भी हुआ कि वह किसके अनुभव को बोलने देती है, किसकी चुप्पी को कायम रखती है और किस सत्ता-संरचना को चुनौती देती है।

आदिवासी और क्षेत्रीय अनुभव: केंद्र के बाहर की कथा

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी में आदिवासी जीवन, क्षेत्रीय समाज और हाशिये के भूगोल का प्रश्न धीरे-धीरे अधिक स्पष्ट हुआ। आदिवासी समाज को लंबे समय तक या तो लोक-रोमांस के रूप में देखा गया या विकास की मुख्यधारा से पिछड़ा हुआ समुदाय मानकर चित्रित किया गया। बाद की कहानियों ने यह दिखाया कि आदिवासी प्रश्न केवल गरीबी का प्रश्न नहीं है; वह जल, जंगल, जमीन, संस्कृति, विस्थापन और राज्य-पूँजी गठजोड़ का प्रश्न है।

इस धारा में महाश्वेता देवी का प्रभाव भारतीय भाषाओं पर व्यापक रहा, यद्यपि वे बांग्ला की लेखिका थीं। हिंदी में संजीव, रणेंद्र, हरिराम मीणा, रोज केरकेट्टा, वंदना टेटे आदि लेखकों और चिंतकों ने आदिवासी जीवन को नए ढंग से प्रस्तुत किया। आदिवासी कथा-दृष्टि विकास की उस अवधारणा पर प्रश्न उठाती है जिसमें बांध, खदान, उद्योग और वन-नीति के नाम पर समुदायों को उनके जीवन-आधार से अलग किया जाता है।

क्षेत्रीयता भी स्वातंत्र्योत्तर कहानी की बड़ी उपलब्धि है। रेणु ने आंचलिकता को साहित्यिक गरिमा दी। बाद के लेखकों ने भोजपुरी, मगही, मैथिली, अवधी, बुंदेली, राजस्थानी, पहाड़ी, कस्बाई और लोक-भाषिक तत्त्वों को हिंदी कहानी की मुख्यधारा में शामिल किया। इससे हिंदी कहानी अधिक बहुस्तरीय और भारतीय बनी।

उदारीकरणोत्तर कहानी: बाजार, उपभोक्तावाद और नई असुरक्षाएँ

1991 के बाद भारत में आर्थिक उदारीकरण, निजीकरण, वैश्वीकरण, मीडिया-विस्फोट और उपभोक्तावादी संस्कृति ने सामाजिक जीवन को गहराई से बदला। हिंदी कहानी ने इन परिवर्तनों को तीक्ष्णता से दर्ज किया। अब कहानी का संसार केवल गाँव, कस्बा और पारंपरिक शहर तक सीमित नहीं रहा; महानगर, कॉरपोरेट दफ्तर, मॉल, कॉल-सेंटर, प्रवास, मीडिया, विज्ञापन, तकनीक और डिजिटल जीवन भी कथा के क्षेत्र बने।

उदारीकरणोत्तर कहानी में व्यक्ति की आकांक्षाएँ बढ़ी हैं, लेकिन असुरक्षाएँ भी बढ़ी हैं। नौकरी है, पर स्थायित्व नहीं; उपभोग है, पर आत्मीयता नहीं; सूचना है, पर संवाद नहीं; चमक है, पर भीतर अकेलापन है। उदय प्रकाश की कहानियाँ इस दौर की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धियों में गिनी जाती हैं। वे व्यवस्था, बाजार, जाति, ज्ञान, सत्ता और हाशिये के मनुष्य की

विडंबना को एक साथ पकड़ते हैं। उनकी कहानियों में व्यंग्य, मिथकीय संकेत, दस्तावेजीयता और करुणा का अद्‌भुत संयोग मिलता है।

नई सदी की हिंदी कहानी में युवा कथाकारों ने शहर, लैंगिकता, प्रवास, स्मृति, डिजिटल जीवन, सांप्रदायिकता, नई राजनीति, पर्यावरणीय संकट और छोटे शहरों के बदलते मानस को विषय बनाया। इंटरनेट और पत्रिकाओं के डिजिटल रूपों ने कहानी के प्रसार को भी बदला। अब कहानी केवल मुद्रित पत्रिका की वस्तु नहीं रही; वह वेब-पत्रिकाओं, ब्लॉगों, सोशल मीडिया और डिजिटल मंचों पर भी पढ़ी जा रही है। इससे कहानी का पाठक-वर्ग विस्तृत हुआ है, लेकिन तात्कालिकता और सतहीपन का खतरा भी बढ़ा है।

भूमंडलीकरणोत्तर कहानी का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि उसने 'विकास' की भाषा पर प्रश्न उठाए। बड़े शहरों की चमक के पीछे विस्थापित मजदूर, अस्थायी श्रमिक, घरेलू कामगार, किसान संकट, पर्यावरणीय विनाश और मानसिक अवसाद भी हैं। महामारी के बाद के समय ने भी श्रम, शहर, प्रवास और सामाजिक असमानता के प्रश्नों को कहानी में नई तीव्रता दी है।

शिल्पगत विकास: कथानक से संरचना तक

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी का विकास केवल विषय-विस्तार में नहीं, शिल्पगत प्रयोगों में भी दिखाई देता है। आरंभिक सामाजिक यथार्थवादी कहानी में कथानक अपेक्षाकृत स्पष्ट और रैखिक होता था। नई कहानी ने कथानक की जगह मन:स्थिति, वातावरण और संकेत को महत्व दिया। साठोत्तरी कहानी में विखंडित संरचना, व्यंग्यात्मक कथन और आत्म-संदर्भ बढ़े। जनवादी कहानी ने जीवन-स्थितियों को अधिक प्रत्यक्ष कथात्मकता से व्यक्त किया। स्त्रीवादी और दलित कहानी ने अनुभव की प्रामाणिकता के आधार पर भाषा और संरचना को बदला।

स्वातंत्र्योत्तर कहानी में अंत का स्वरूप भी बदला। पहले कहानी अक्सर किसी नैतिक निष्कर्ष या निर्णायक घटना पर समाप्त होती थी। नई कहानी में अंत खुला हो गया-वह पाठक को प्रश्नों के साथ छोड़ती है। आधुनिक कहानी में 'कहना' कम और 'संकेत करना' अधिक महत्वपूर्ण हो गया।

भाषा के स्तर पर भी बड़ा परिवर्तन हुआ। हिंदी कहानी ने खड़ीबोली की मानक भाषा से आगे बढ़कर बोलियों, लोक-प्रयोगों, शहरी मुहावरों, प्रशासनिक भाषा, बाजार की भाषा, मीडिया-भाषा और जाति-समुदाय-विशेष की अभिव्यक्तियों को अपनाया। इससे कहानी की भाषा अधिक जीवंत और बहुध्वन्यात्मक बनी।

कहानी में प्रतीक और बिंब का उपयोग भी बदला। नई कहानी में कमरे, खिड़की, सड़क, धुंध, बारिश, खालीपन आदि आंतरिक मन:स्थितियों के प्रतीक बनते हैं। जनवादी कहानी में खेत, कारखाना, चौराहा, पुलिस-थाना, अदालत और बस-स्टैंड सामाजिक संरचनाओं के प्रतीक बन जाते हैं। स्त्रीवादी कहानी में रसोई, देह, आईना, वस्त्र और घर सत्ता-संबंधों की व्याख्या करते हैं। दलित कहानी में कुआँ, स्कूल, मंदिर, बस्ती, नाम और भाषा अपमान तथा प्रतिरोध के प्रतीक बनते हैं।

आलोचनात्मक मूल्यांकन

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी का सबसे बड़ा योगदान यह है कि उसने भारतीय समाज के बदलते यथार्थ को निरंतर नए रूपों में अभिव्यक्त किया। उसने स्वतंत्रता की उपलब्धि का उत्सव मनाते हुए भी उसकी सीमाओं को छिपाया नहीं। उसने लोकतंत्र की संभावनाओं को स्वीकार किया, लेकिन लोकतंत्र के भीतर मौजूद जाति, वर्ग, लिंग और सत्ता की असमानताओं को भी उजागर किया।

नई कहानी ने व्यक्ति के आंतरिक संसार को साहित्यिक वैधता दी। यह आधुनिक हिंदी कहानी की बड़ी उपलब्धि है। उसने यह सिद्ध किया कि सामाजिक यथार्थ केवल बाहरी घटना नहीं, बल्कि मनुष्य की आत्मा पर पड़ने वाला दबाव भी है। परंतु नई कहानी की सीमा यह रही कि वह कई बार मध्यवर्गीय संवेदना तक सीमित दिखाई देती है।

जनवादी कहानी ने इस सीमा को तोड़ा और कहानी को व्यापक सामाजिक संघर्षों से जोड़ा। किंतु उसकी सीमा तब सामने आई जब वैचारिक आग्रह कलात्मक जटिलता पर हावी हुआ। श्रेष्ठ जनवादी कहानी वह है जिसमें विचार जीवन के भीतर से आता है।

स्त्रीवादी और दलित कहानी ने हिंदी कहानी के लोकतंत्रीकरण को गहरा किया। इन धाराओं ने केवल नए विषय नहीं दिए, बल्कि साहित्यिक दृष्टि को बदला। उन्होंने पूछा कि साहित्य में 'मनुष्य' की परिभाषा किसने बनाई और किन अनुभवों को

अब तक हाशिये पर रखा गया। इसी कारण इन धाराओं को स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी की परिधीय उपलब्धि नहीं, बल्कि केंद्रीय उपलब्धि मानना चाहिए।

भूमंडलीकरणोत्तर कहानी ने बाजार, मीडिया और तकनीक के युग में मनुष्य की नई विडंबनाओं को पकड़ा। लेकिन इस दौर की चुनौती यह है कि कहानी तात्कालिक विषयों की सूचना-प्रधानता में न फँस जाए। साहित्य का कार्य केवल समय की खबर देना नहीं, बल्कि समय की गहरी मानवीय अर्थ-रचना करना है।

निष्कर्ष

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी का विकास भारतीय समाज के विकास, विघटन और संघर्षों का साहित्यिक इतिहास है। इसमें स्वतंत्रता का स्वप्न है, विभाजन की पीड़ा है, मध्यवर्ग का अकेलापन है, व्यवस्था का मोहभंग है, आम आदमी का संघर्ष है, स्त्री की अस्मिता है, दलित का प्रतिरोध है, आदिवासी का विस्थापन है और बाजार-युग की नई असुरक्षाएँ हैं।

इस विकास-क्रम को किसी एक आंदोलन या एक पीढ़ी में सीमित नहीं किया जा सकता। नई कहानी ने हिंदी कहानी को आधुनिक संवेदना दी; साठोत्तरी कहानी ने विखंडित समाज का व्यंग्यात्मक यथार्थ सामने रखा; जनवादी कहानी ने सामाजिक संघर्षों की जमीन मजबूत की; स्त्रीवादी और दलित कहानी ने साहित्यिक लोकतंत्र का विस्तार किया; और नई सदी की कहानी ने वैश्विक पूँजी, मीडिया और डिजिटल जीवन की जटिलताओं को कथा का विषय बनाया।

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी की शक्ति उसकी निरंतर बदलती हुई संवेदना में है। वह परंपरा से संवाद करती है, परंपरा को दोहराती नहीं। वह आधुनिकता को स्वीकार करती है, पर उसकी आलोचना भी करती है। वह मनुष्य को केंद्र में रखती है, पर अब मनुष्य को अमूर्त नहीं मानती; वह जाति, वर्ग, लिंग, क्षेत्र, भाषा और इतिहास से निर्मित मनुष्य को पहचानती है। यही स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी की सबसे बड़ी उपलब्धि है।

अंततः कहा जा सकता है कि स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी भारतीय लोकतंत्र की साहित्यिक आत्मकथा है-एक ऐसी आत्मकथा जिसमें उपलब्धियाँ भी हैं, असफलताएँ भी; संघर्ष भी है, करुणा भी; और सबसे बढ़कर वह बेचैन मानवीय खोज है जो साहित्य को जीवित रखती है।

संदर्भ-सूची / Bibliography

1. कमलेश्वर. नई कहानी की भूमिका. नई दिल्ली: राजपाल एंड संस, विभिन्न संस्करण।
2. कमलेश्वर, संपा. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानियाँ. नई दिल्ली: राजकमल/अन्य संस्करण।
3. नामवर सिंह. कहानी: नई कहानी. नई दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन।
4. नामवर सिंह. हिंदी साहित्य की आधुनिक प्रवृत्तियाँ. नई दिल्ली: लोकभारती प्रकाशन।
5. राजेंद्र यादव. कहानी: स्वरूप और संवेदना. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
6. मोहन राकेश. प्रतिनिधि कहानियाँ. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
7. निर्मल वर्मा. परिंदे तथा अन्य कहानियाँ. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
8. मन्नू भंडारी. यही सच है तथा अन्य कहानियाँ. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
9. भीष्म साहनी. पाली तथा अन्य कहानियाँ. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
10. अमरकांत. जिंदगी और जोंक तथा अन्य कहानियाँ. नई क्मसीप: राजकमल प्रकाशन।
11. फणीश्वरनाथ रेणु. ठुमरी तथा अन्य कहानियाँ. नई दिल्ली: राजकमल प्रकाशन।
12. शिवमूर्ति. तिरिया चरित्तर तथा अन्य कहानियाँ. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
13. उदय प्रकाश. तिरिछ और अन्य कहानियाँ. नई दिल्ली: वाणी/राजकमल प्रकाशन।
14. ओमप्रकाश वाल्मीकि. सलाम तथा अन्य कहानियाँ. नई दिल्ली: राधाकृष्ण/वाणी प्रकाशन।
15. मैनेजर पांडेय. साहित्य और इतिहास-दृष्टि. नई दिल्ली: वाणी प्रकाशन।
16. विश्वनाथ त्रिपाठी. हिंदी साहित्य का सरल इतिहास. नई दिल्ली: Orient Blackswan/अन्य संस्करण।
17. बच्चन सिंह. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास. नई दिल्ली: राधाकृष्ण प्रकाशन।
18. IGNOU eGyanKosh. "स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी." अध्ययन-सामग्री, Unit 3.
19. Business Standard/PTI. "'Nai Kahani* was not started as a movement% Mohan Rakesh." 14 June 2018.
20. च्नेजां.वतह. स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानियाँ - कमलेश्वर, पुस्तक-विवरण।

समकालीन जनवादी हिन्दी कहानी के विविध सरोकार और उसकी साहित्यिक उपलब्धियाँ

दीपक कुमार

मुजफ्फरपुर

सार:

प्रस्तुत शोध-आलेख समकालीन जनवादी हिन्दी कहानी के व्यापक परिदृश्य, उसकी युगांतरकारी उपलब्धियों, दार्शनिक पृष्ठभूमि और सामाजिक-राजनैतिक सरोकारों का एक विस्तृत और आलोचनात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत करता है। जनवादी कहानी केवल एक साहित्यिक विधा नहीं है, बल्कि यह मुंशी प्रेमचंद की युगीन यथार्थवादी चेतना और प्रगतिशील आंदोलन की उस अविच्छिन्न परंपरा का जीवंत विस्तार है, जो मार्क्सवादी वैचारिकी और द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के ठोस सिद्धांतों पर आधारित है। इस कथाधारा ने स्वातंत्र्योत्तर भारत में पनपने वाले कलावादी, अस्तित्ववादी, अमूर्त और रूमानी भटकावों का पुरजोर विरोध करते हुए साहित्य को सीधे जनता की व्यापक समस्याओं से जोड़ा है। इस साहित्य आंदोलन की सबसे महान संवेदनात्मक और व्यावहारिक उपलब्धि यह रही है कि इसने समाज के सुदूर हाशिए पर रहने वाले शोषित, वंचित, पीड़ित और निम्न-मध्यम वर्ग को रचनात्मकता के केंद्र में लाकर प्रतिष्ठित किया है। प्रस्तुत शोध-पत्र इस तथ्य की गहन पड़ताल करता है कि किस प्रकार जनवादी कथाकारों ने पूर्ववर्ती 'नई कहानी' या 'आंचलिक कहानी' के कुंठित, कुहरे में भटके, नियतिवादी और आत्मसमर्पण करने वाले 'थके-टूटे' चरित्रों के रूढ़ ढाँचे को सिरे से खारिज किया है। उनके स्थान पर एक ऐसी नई नायकत्व की संकल्पना की गई जो सक्रिय, ऊर्जस्वित, आत्मसम्मान से युक्त और अपने अधिकारों के लिए व्यवस्था से सीधे टकराने वाली जुझारू चेतना से ओत-प्रोत है। यह आलेख जनवादी कहानी के शिल्पगत वैशिष्ट्य, उसकी सहज और लोक-संवेद्य भाषा, वर्गहीन और समतामूलक समाज की स्थापना के स्वप्न तथा इस धारा के शीर्षस्थ कहानीकारों के ऐतिहासिक अवदान का सविस्तार विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

प्रमुख शब्द: जनवादी कहानी, मार्क्सवादी वैचारिकी, द्वंद्वात्मक भौतिकवाद, यथार्थवादी परंपरा, सर्वहारा वर्ग, हाशिए का समाज, जुझारू चेतना, वर्ग-संघर्ष, समतामूलक समाज, व्यवस्था-विरोध।

हिन्दी कथा-साहित्य के विकास क्रम में समकालीन जनवादी हिन्दी कहानी का उद्‌भव और विकास एक युगांतरकारी घटना के रूप में रेखांकित किया जाता है। वैचारिक रूप से यह विधा कथा-सम्राट मुंशी प्रेमचंद की उस महान और ठोस यथार्थवादी परंपरा की वाहिका है, जिसने साहित्य को महज दरबारी विलास या कौतुक से निकालकर सीधे जीवन के धरातल पर उतारा था। जनवादी कहानी इसी प्रेमचंदयी चेतना को आगे बढ़ाते हुए मार्क्सवादी और साम्यवादी विचारधारा से गहरे स्तर पर अनुप्राणित हुई है। इस प्रगतिशील कथाधारा का वैचारिक आधार स्तंभ द्वंद्वात्मक भौतिकवाद का वह दर्शन है, जिसमें मानव जीवन के अस्तित्व में 'अर्थ' यानी आर्थिक कारकों को सर्वोच्च महत्व प्रदान किया जाता है। यही कारण है कि जनवादी कहानीकारों ने अपने समय के समाज में व्याप्त भीषण आर्थिक विषमताओं, पूंजीवादी शोषण के क्रूर तंत्र और सामाजिक अन्याय के विरुद्ध एक प्रखर और सुसंगत विद्रोह को अपनी कहानियों में वाणी दी है। इसने साहित्य के सामाजिक दायित्व को नए सिरे से परिभाषित करते हुए कलावादी सिद्धांतों और विचारशून्यता के दौर को समाप्त किया और साहित्य को सामाजिक व आर्थिक क्रांति का एक अनिवार्य औजार स्वीकार किया।

जनवादी कहानी की सबसे पहली और सर्वप्रमुख संवेदनागत उपलब्धि यह मानी जानी चाहिए कि इसने सामाजिक संपृक्ति की ठोस आधारभूमि पर खड़े होकर समाज के सबसे निचले पायदान पर रहने वाले 'आम आदमी' या 'साधारण जन' को कथानक के केंद्र में स्थापित किया। इससे पूर्व की कहानियों में इस वर्ग को प्राय: उपेक्षित रखा गया था या फिर उसे केवल दया और सहानुभूति के पात्र के रूप में ही चित्रित किया जाता था। परंतु जनवादी कहानी ने सदियों से प्रताड़ित, उपेक्षित और शोषित सर्वहारा वर्ग के जीवन की रोजमर्रा की तकलीफों, महानगरीय व ग्रामीण अंचलों के तीखे अंतर्विरोधों और उनकी वास्तविक सामाजार्थिक पीड़ाओं को गरिमा के साथ उकेरा है। समाज का यह वंचित वर्ग जो लंबे समय से शोषण को सहते

रहने को ही अपनी अंतिम नियति मानकर भाग्यवादी बन चुका था, जनवादी कहानी ने उसके भीतर एक अभूतपूर्व वैचारिक चेतना का संचार किया। इन रचनाओं ने समाज की विसंगतियों की न केवल सतही पहचान की, बल्कि उनके मूल कारणों की गहरी आर्थिक पड़ताल करते हुए शोषित वर्ग को यह समझाया कि उसकी विपन्नता का कारण कोई पूर्वजन्म का कर्म या अमूर्त भाग्य नहीं है, बल्कि यह शोषक व्यवस्था का निर्मित किया हुआ कुचक्र है, जिसे केवल सामूहिक संघर्ष के द्वारा ही तोड़ा जा सकता है।

इस विधा की एक अन्य अत्यंत महत्वपूर्ण और मौलिक उपलब्धि इसकी अनूठी पात्र-सृष्टि और नायकत्व की अवधारणा में क्रांतिकारी परिवर्तन लाना है। जनवादी दौर से पहले की कहानियों, विशेषकर स्वातंत्र्योत्तर काल की कुछ विशिष्ट धाराओं में, ऐसे चरित्रों की भरमार थी जो जीवन की परिस्थितियों से थके-हारे, कुंठित, अकेलेपन के शिकार, एकाकी और पराजित मनोदशा से ग्रस्त थे। वे अपनी नियति पर रोने वाले और व्यवस्था के सामने घुटने टेकने वाले 'मिमियाते' और 'रिरियाते' हुए पात्र हुआ करते थे। जनवादी रचनाकारों ने चरित्र-चित्रण के इस हताशवादी ढांचे को पूरी तरह से विखंडित कर दिया। उन्होंने इन मृतप्राय पात्रों के स्थान पर अत्यंत सक्रिय, ऊर्जावान, जीवंत और जुझारू चेतना से संपन्न ऐसे चरित्रों का निर्माण किया, जो अपने मानवीय अधिकारों को हासिल करने के लिए और व्यवस्था की शोषक ताकतों के खिलाफ सीना तानकर खड़े होने का साहस रखते हैं। ये नए नायक संघर्ष की नियति में अटूट विश्वास रखते हैं और हालात को केवल सहन नहीं करते, बल्कि उसे बदलने के लिए सक्रिय रूप से तत्पर दिखाई देते हैं, जिससे व्यवस्था-विरोध का एक प्रखर युगस्वर इन कहानियों में गूंज उठता है।

साम्यवादी चेतना से सराबोर इन समकालीन कहानियों का अंतिम लक्ष्य एक ऐसे वर्गहीन, शोषित-मुक्त और समतामूलक समाज की परिकल्पना को साकार करना है, जहाँ मानवीय मूल्य पूरी तरह सुरक्षित हों और मनुष्य द्वारा मनुष्य का आर्थिक व सामाजिक उत्पीड़न पूरी तरह समाप्त हो जाए। जनवादी कहानी एक सुस्पष्ट वैचारिक दृष्टि है जो अनुभववादी भटकावों का विरोध करती है और रचनाकार को उसके सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति निरंतर सचेत रखती है। ये कहानियाँ पाठक वर्ग को भी वैचारिक रूप से उद्वेलित और आंदोलित करती हैं, उन्हें केवल एक तटस्थ दर्शक या पाठक नहीं रहने देतीं, बल्कि समाज के भीतर चल रहे वर्ग-द्वंद्व के प्रति सोचने और उसमें अपनी वैचारिक हिस्सेदारी तय करने के लिए विवश करती हैं। स्वतंत्रता के बाद पश्चिमी देशों के अंधानुकरण और सांस्कृतिक दबावों के कारण जो भारतीयता और 'आदमियत' कहीं खोती जा रही थी, जनवादी कहानीकारों ने आधुनिकता की उस बंद चारदीवारी को तोड़कर आम आदमी को उसकी संपूर्ण निजता, सहजता और वास्तविक भारतीय परिवेश के नक्शे पर पूरी प्रामाणिकता के साथ उभारा है।

समकालीन जनवादी हिन्दी कहानी के इस अत्यंत विस्तृत और यथार्थवादी फलक को समृद्ध करने में हिन्दी के अनेक यशस्वी और प्रतिबद्ध कथाकारों ने अपनी महती भूमिका निभाई है। अमरकांत, शेखर जोशी, विजयकांत, सतीश जमाली, भैरवप्रसाद गुप्त, हिमांशु जोशी, मधुकर सिंह, स्वयं प्रकाश, रमेश उपाध्याय और दिनेश पालीवाल आदि ऐसे महत्वपूर्ण नाम हैं, जिनकी कहानियों में जीवन के वास्तविक यथार्थ का सीधा, अनावरणकारी और सघन साक्षात्कार देखने को मिलता है। इन कहानीकारों ने किसी भी प्रकार की काल्पनिक या रूमानी धुंध पैदा किए बिना, व्यवस्था के दोहरे और शोषक चरित्र से उत्पन्न भुखमरी, तंगहाली, गरीबी और तंग गलियों के त्रासद यथार्थ को अपनी रचनाओं का विषय बनाया। इसके साथ ही, उन्होंने अपनी कहानियों में निम्न और मध्यम वर्ग के ऐसे पात्रों को प्रमुखता से उभारा जिनमें सामाजिक व्यवस्था को बदल डालने की एक तीव्र छटपटाहट और ललक साफ दिखाई देती है। इन रचनाकारों का सामूहिक प्रयास समाज में एक न्यायपूर्ण और समतावादी व्यवस्था के स्वप्न को मूर्त रूप देने का रहा है।

शिल्प और भाषा के स्तर पर भी जनवादी कहानी की उपलब्धियाँ बेजोड़ और अनुकरणीय हैं। इन रचनाकारों ने नई कहानी के दौर के अमूर्त, दुरूह, बिम्बवादी और अत्यधिक प्रतीकात्मक रुझानों से कहानी को बाहर निकाला, क्योंकि वैसा भाषा-शिल्प आम जनता की समझ से परे था। इसके विपरीत, जनवादी कहानीकारों ने लोक-जीवन के सन्निकट, अत्यंत सहज, संवेद्य, सुबोध और सीधे संवाद कायम करने वाली यथार्थवादी भाषा को अपनाया। जीवन के कटु और नग्न यथार्थ को उसकी समग्रता में अभिव्यक्त करने वाली यह सहज भाषा शैली ही इस विधा की एक अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रभावी कलात्मक उपलब्धि सिद्ध हुई। इसी भाषा के बल पर ये कहानियाँ हाशिए के लोगों के दिलों तक उतर सकीं और उनके भीतर अपने अस्तित्व के प्रति एक नया आत्मसम्मान, आत्मविश्वास और आत्मगौरव जगाने में कामयाब रहीं।

निष्कर्ष रूप में यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि समकालीन जनवादी हिन्दी कहानी केवल युगीन विसंगतियों का दस्तावेजीकरण या कोरा विलाप नहीं है, बल्कि यह सामाजिक यथार्थ के विविध परिप्रेक्ष्यों, नए युगीन प्रश्नों और सामान्य जन की गहरी संवेदनात्मक धड़कनों से निर्मित एक अत्यंत जीवंत और व्यावहारिक आंदोलन है। अपनी वैचारिक सक्रियता और रचनात्मक हिस्सेदारी के कारण इस कथाधारा ने परिस्थितियों को बदलने के लिए एक सुदृढ़ और व्यापक धरातल तैयार किया है। समाज के वंचित और उपेक्षित वर्ग को केंद्र में प्रतिष्ठित कर, उन्हें अपने हक के लिए संघर्षरत दिखाना और साहित्य को सामाजिक परिवर्तन के एक व्यावहारिक माध्यम के रूप में स्थापित करना ही समकालीन जनवादी कहानी की वह कालजयी और अद्वितीय उपलब्धि है, जो इसे हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक अत्यंत महत्वपूर्ण और अमर अध्याय बनाती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सिंह, डॉ. पुष्पपाल: समकालीन हिन्दी कहानी, पृष्ठ 231-232।
2. कौल, डॉ. सोमनाथ: स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी, विकास एवं मूल्यांकन, पृष्ठ 15।
3. अरोरा, डॉ. ज्ञानवती: समकालीन हिन्दी कहानी यथार्थ के विविध आयाम, पृष्ठ 151।
4. मधुरेश: हिन्दी कहानी, 'अस्मिता की तलाश', पृष्ठ 100।
5. कमलेश्वर: 'नई कहानी' की भूमिका, पृष्ठ 17।
6. तिवारी, डॉ. विश्वनाथ प्रसाद: 'बीसवीं शताब्दी का हिन्दी साहित्य', पृष्ठ 135।
7. शुक्ल, विद्याधर: 'जनवादी' कहानी की भूमिका, पृष्ठ 24।
8. पाण्डेय, डॉ. गणेश: 'आठवें दशक की हिन्दी कहानी में ग्रामीण जीवन', पृष्ठ 119।
9. उप्रेती, मधुर: हिन्दी कहानी: 'आठवाँ दशक'।
10. रजनीश, डॉ. गोविन्द: सक्रिय कहानी, बदलते तेवर और फौलादी संकल्प, पृष्ठ 88-89।
11. गर्ग, डॉ. भैरूलाल:, 'आज की हिन्दी कहानी', पृष्ठ 104।

बिहार में बाल श्रम: सामाजिक-आर्थिक प्रगति के बीच की चुनौती

प्रीति कुमारी

(स्नातकोत्तर अर्थशास्त्र विभाग), तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

सारांश

कल्याणकारी योजनाओं के वितरण, शिक्षा के विस्तार और लक्षित सामाजिक सुरक्षा योजनाओं में महत्वपूर्ण प्रगति के बावजूद, बिहार में बाल श्रम सबसे लगातार बनी रहने वाली सामाजिक-आर्थिक चुनौतियों में से एक है। जहाँ मुख्यमंत्री कन्या उत्थान योजना (CMKUY) जैसी पहलों ने बच्चों के लिए विकासात्मक माहौल को मजबूत किया है, वहीं बिहार की बाल आबादी का एक बड़ा हिस्सा अभी भी खतरनाक और शोषणकारी श्रम में लगा हुआ है। 2024-25 के अद्यतन आँकड़े बताते हैं कि भारत के कुल अनुमानवत बाल श्रमिकों में बिहार का हिस्सा लगभग 12% है, और ग्रामीण, हाशिए पर पड़े और प्रवासियों पर निर्भर जिलों में इसकी व्यापकता बहुत अधिक है। सरकारी प्रयासों-जिनमें राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना (NCLP), राज्य कार्य योजना 2025, और समन्वित बचाव अभियान शामिल हैं-ने बचाव और मुख्यधारा में लाने के प्रयासों को बढ़ाया है, फिर भी गरीबी, जाति-आधारित बहिष्कार, कमजोर प्रवर्तन और महामारी के बाद के आर्थिक झटकों जैसी संरचनात्मक बाधाएँ इस संकट को बनाए रखे हुए हैं। यह लेख अद्यतन डेटासेट, NGO रिपोर्ट, सरकारी दस्तावेजों और राष्ट्रीय सर्वेक्षणों से प्राप्त साक्ष्यों का उपयोग करते हुए, बिहार में बाल श्रम के विस्तार, कारणों, प्रभावों और इससे संबंधित नीतिगत प्रयासों का विश्लेषण करता है। अध्ययन का निष्कर्ष है कि प्रवर्तन में प्रगति के बावजूद,SDG लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए बिहार को बहु-क्षेत्रीय समन्वय, सामुदायिक भागीदारी और पुनर्वास उपायों को और अधिक मजबूत करना होगा।

मूल शब्दः बाल श्रम, बिहार, संवेदनशीलता, शिक्षा,SDG 8.7,NCLP, सामाजिक नीति

परिचय

बिहार, जो भारत के सबसे अधिक आबादी वाले राज्यों में से एक है, ने आर्थिक विकास और सामाजिक कल्याण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति की है। इसका प्रमाण 'मुख्यमंत्री कन्या उत्थान योजना' (CMKUY) जैसी पहलें हैं, जो जन्म से लेकर स्नातक होने तक जीवनचक्र के विभिन्न चरणों में वित्तीय सहायता प्रदान करके बालिकाओं को सशक्त बनाती हैं। हालाँकि, इस प्रगति के पीछे एक कड़वी सच्चाई भी छिपी है: बाल श्रम अभी भी एक गहरी जड़ जमाई हुई समस्या बनी हुई है, जो लाखों बच्चों को शिक्षा, स्वास्थ्य और एक सुरक्षित बचपन के उनके अधिकार से वंचित कर रही है। सतत विकास लक्ष्य (SDG) 8.7-जिसका उद्देश्य 2025 तक बाल श्रम के सभी रूपों को समाप्त करना है-के अनुरूप राष्ट्रीय और राज्य-स्तरीय प्रयासों के बावजूद, बिहार अभी भी इस समस्या की उच्च घटनाओं से जूझ रहा है, विशेष रूप से ग्रामीण और वंचित समुदायों में। यह लेख बिहार में बाल श्रम की वर्तमान स्थिति की पड़ताल करता है, जिसके लिए अद्यतन डेटा, सरकारी पहलों, उनके प्रभावों और इस बुराई को रोकने के लिए व्यावहारिक सुझावों का सहारा लिया गया है।[1]

साहित्य समीक्षा

- UNICEF (2024-25) की रिपोर्टें भारत के सामाजिक-आर्थिक रूप से पिछड़े राज्यों में बाल श्रम के जमावड़े को उजागर करती हैं, और यह बताती हैं कि बिहार, उत्तर प्रदेश, राजस्थान और झारखंड मिलकर भारत की बाल श्रमिक आबादी का एक बड़ा हिस्सा बनाते हैं। यह संगठन इस बात पर जोर देता है कि सामाजिक-आर्थिक पिछड़ापन और जाति-आधारित भेदभाव बिहार में बाल श्रम के लिए मुख्य सहायक परिस्थितियाँ बनी हुई हैं।[2]
- अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (ILO) भी यह देखता है कि बाल श्रम उन क्षेत्रों में सबसे अधिक है जहाँ अनौपचारिक क्षेत्र का रोजगार हावी है और जहाँ कृषि पर निर्भरता अधिक है-ये ऐसी परिस्थितियाँ हैं जो बिहार में प्रचलित हैं।

- EPW (2024) और UNICEF यह बताते हैं कि बिहार में बाल श्रम जातिगत संरचनाओं के साथ गहराई से जुड़ा हुआ है। दलित और महादलित समुदाय, विशेष रूप से मुसहर, पुरानी गरीबी, सीमित भूमि स्वामित्व, कम साक्षरता और औपचारिक रोजगार से बहिष्कार का अनुभव करते हैं, जिससे बाल श्रम उनके लिए जीवित रहने की एक रणनीति बन जाता है। इन समुदायों के कई बच्चे परिवार की आय में मदद करने के लिए 6–10 वर्ष की आयु के बीच ही श्रम कार्य में लग जाते हैं।[3]
- CACL (2025) यह संकेत देता है कि आर्थिक संकट, स्कूलों के बंद होने और पलायन के कारण बाल श्रम में भारी वृद्धि हुई है। कई बच्चे कृषि श्रम, छोटी दुकानों, निर्माण कार्यों और घरेलू काम जैसे कार्यों में लग गए। धीमी आर्थिक सुधार के कारण यह प्रवृत्ति 2024–25 में भी जारी रही।
- 'Children' (2024–25) रिपोर्ट में बिहार में बड़ी संख्या में बच्चों को बचाए जाने के मामले दर्ज किए गए हैं–ताजा आकलन में 3,974 बच्चों को बचाया गया और यौन शोषण के 454 मामले सामने आए। खतरनाक काम वाले क्षेत्रों में अभ्रक (mica) इकट्ठा करना, ईंट–भट्ठे और बिना किसी नियम–कानून वाली सेवा इंडस्ट्रीज शामिल हैं।[4]
- UDISE+ और शिक्षा पर काम करने वाले NGOs की रिसर्च से पता चलता है कि बाल श्रम और स्कूल छोड़ने की दर के बीच गहरा संबंध है। जिन जिलों में बच्चों के स्कूल में टिके रहने की दर कम है, वहाँ बाल श्रम भी ज्यादा पाया जाता है। घरेलू जिम्मेदारियों, कम उम्र में शादी और लैंगिक रूढ़ियों की वजह से लड़कियों पर इसका ज्यादा बुरा असर पड़ता है।
- U.S. Department of Labor (2023–24) और भारतीय श्रम आयोगों ने कुछ समस्याओं की पहचान की है, जैसे कि कमजोर निगरानी, जागरूकता की कमी, बच्चों के पुनर्वास के लिए अपर्याप्त उपाय और अलग–अलग विभागों के बीच तालमेल की कमी।

मौजूदा स्थिति: बिहार में बाल श्रम पर ताजा डेटा

बिहार में बाल श्रम की एक खास बात यह है कि यह असंगठित क्षेत्रों में अक्सर नजर नहीं आता; ऐसे क्षेत्रों में खेती–बाड़ी, ईंट–भट्ठे, घरेलू काम और अभ्रक खनन जैसे खतरनाक उद्योग शामिल हैं। मौसमी पलायन, अनौपचारिक रोजगार और सामाजिक–आर्थिक कमजोरियों की वजह से सरकारी आँकड़ों में अक्सर बाल श्रम की असली व्यापकता कम करके दिखाई जाती है। 2024–2025 के हालिया डेटा से पता चलता है कि यह समस्या अभी भी बनी हुई है और चिंताजनक रूप से जारी है। बाल श्रम से बच्चों को बचाने के मामलों में बिहार देश के शीर्ष राज्यों में से एक है, जो एक तरफ तो कानून लागू करने के प्रयासों को दिखाता है, वहीं दूसरी तरफ इस समस्या की गंभीरता को भी उजागर करता है।[5]

बाल श्रम से निपटने के लिए सरकारी पहलें

बिहार सरकार ने राष्ट्रीय नीतियों के अनुरूप, रोकथाम, बचाव और पुनर्वास पर जोर देते हुए कई तरह की पहलें शुरू की हैं।[6] मुख्य प्रयासों में शामिल हैं:

- बाल और किशोर श्रम उन्मूलन के लिए राज्य रणनीति और कार्य योजना – 2025: सितंबर 2025 में शुरू की गई यह व्यापक योजना, भारतीय दंड संहिता 2023 और बिहार बाल और किशोर श्रम नियम 2024 को एकीकृत करती है। यह बचाव कार्यों के लिए विभिन्न विभागों (जैसे रेलवे, सीमा सुरक्षा बल, परिवहन) के बीच तालमेल को बढ़ावा देती है और जिला–स्तरीय कार्य बलों का गठन अनिवार्य करती है। एक षरिपोर्ट कार्डष प्रगति पर नजर रखता है, जिसमें UNICEF का सहयोग निगरानी को और बेहतर बनाता है।
- राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना (NCLP) योजना: 1988 से कार्यरत और बिहार में मजबूत की गई यह योजना, पटना और मुजफ्फरपुर जैसे उन जिलों को कवर करती है जहाँ बाल श्रम की घटनाएँ ज्यादा होती हैं। NCLP बचाए गए बच्चों (9–14 वर्ष की आयु) को ब्रिज शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण, वजीफा, मध्याह्न भोजन और स्वास्थ्य सेवाएँ प्रदान करती है, जिससे उन्हें मुख्यधारा की स्कूली शिक्षा से जुड़ने में मदद मिलती है। 2024 में, इसने लक्षित ब्लॉकों में 7,000 से अधिक बच्चों को मुख्यधारा से जोड़ा।

- बिहार राज्य बाल श्रम आयोग: इस संस्था ने 2023-24 में 795 बच्चों को बचाया, और 13 ऐसे जिलों में जागरूकता फैलाने के लिए NGOs के साथ साझेदारी की जहाँ बाल श्रम की समस्या ज्यादा है (इन जिलों में 55% मामले सामने आते हैं)। यह एक चाइल्डलाइन हेल्पलाइन (9471229133) संचालित करता है और शिकायतों के लिए PENCIL पोर्टल के साथ एकीकृत है।
- एकीकृत कल्याण योजनाएँ: एकीकृत बाल विकास सेवाएँ (ICDS), RTE अधिनियम और मध्याह्न भोजन योजना के साथ जुड़ाव पोषण और शैक्षिक प्रोत्साहन प्रदान करता है। ब्व्टप्ब्-19 के दौरान श्मुक्ति कारवाँश पहल ने प्रवासी बच्चों को बचाया, जबकि डट फाउंडेशन के पाँच जिलों (जैसे, शिवहर, जमुई) में सामुदायिक मंचों ने 2020 तक 7,787 बच्चों को बचाया, और ये प्रयास अभी भी जारी हैं।
- राष्ट्रीय-स्तर का सहयोग: बाल एवं किशोर श्रम (प्रतिषेध एवं विनियमन) अधिनियम, 2016, 14 वर्ष से कम उम्र के बच्चों के रोजगार और 14-18 वर्ष के किशोरों के लिए खतरनाक कामों पर प्रतिबंध लगाता है; इसे थ्प्त और गिरफ्तारियों के माध्यम से लागू किया जाता है।

बिहार का श्रम संसाधन विभाग कमजोर समूहों के लिए सामाजिक सुरक्षा लागू करता है, जिसमें बंधुआ मजदूरों का पुनर्वास भी शामिल है। ये पहलें दंडात्मक दृष्टिकोण से निवारक दृष्टिकोण की ओर बदलाव को दर्शाती हैं, जिसमें बिहार की 2025 की योजना का लक्ष्य जनभागीदारी के माध्यम से बाल श्रम को पूरी तरह खत्म करना है।

बिहार में बाल श्रम का प्रभाव बिहार में बाल श्रम के परिणाम बहुत गहरे हैं, जो गरीबी और असमानता के दुष्चक्र को बनाए रखते हैं। आर्थिक रूप से, यह परिवारों को कम वेतन वाले, अनौपचारिक क्षेत्रों में फँसा देता है, जहाँ बच्चे बहुत कम आय (जैसे, ईंट भट्ठों में रू. 50-100/दिन) का योगदान करते हैं, जबकि अपनी शिक्षा छोड़ देते हैं; इससे पीढ़ी-दर-पीढ़ी अकुशल श्रम का सिलसिला चलता रहता है। सामाजिक रूप से, यह जातिगत भेदभाव को और बढ़ाता है; दलित और मुसहर बच्चों को पूर्वाग्रह के कारण स्कूलों से बाहर रखा जाता है, जिसके परिणामस्वरूप SC/ST परिवारों में गरीबी दर 51-56% तक पहुँच जाती है और साक्षरता दर कम (मुसहरों के लिए 29%) रहती है। स्वास्थ्य के लिहाज से, खतरनाक काम शारीरिक तनाव, कुपोषण और मानसिक आघात का कारण बनते हैं-उदाहरण के लिए, बचाए गए 454 बच्चों के मामलों में यौन शोषण के मामले सामने आए-साथ ही यह बच्चों के खेलने और विकास के अवसरों को भी छीन लेता है। शैक्षिक रूप से, यह स्कूल छोड़ने की दर को बढ़ाता है (2005 के सर्वेक्षणों के अनुसार 5.6 लाख बच्चे स्कूल से बाहर थे और काम से जुड़े थे, और COVID के बाद भी यह स्थिति बनी हुई है), जिससे बिहार की मानव पूंजी के विकास में बाधा आती है। सकारात्मक पहलू यह है कि बचाए गए हजारों बच्चों का स्कूलों में दाखिला कराया गया है, जिससे CMKUY जैसी योजनाओं के माध्यम से लड़कियों की भागीदारी बढ़ी है; लेकिन पुनर्वास में कमियों के कारण, बचाए गए 90% बच्चों पर पर्याप्त और निरंतर सहयोग न मिलने की स्थिति में दोबारा शोषण का खतरा बना रहता है।[7]

बाल श्रम पर रोक लगाने के सुझाव

2025 तक और उसके बाद भी बाल श्रम को पूरी तरह खत्म करने के लिए, बिहार को समग्र और समुदाय-आधारित रणनीतियाँ अपनानी होंगी:[8]

- प्रवर्तन और अभियोजन को मजबूत करें: 2025 की योजना के तहत जिला टास्क फोर्स को मजबूत करें, और FIR दर्ज करने तथा गिरफ्तारियाँ करने में तेजी लाने के लिए विशेष फंड उपलब्ध कराएँ। आपूर्ति श्रृंखलाओं (जैसे कृषि, खनन) में 'जीरो-टॉलरेंस' (बिल्कुल भी बर्दाश्त न करने की नीति) लागू करें; इसके लिए, बाल श्रम से जुड़े सामानों की सरकारी खरीद पर प्रतिबंध लगाएँ।
- विभिन्न योजनाओं के तालमेल से मूल कारणों का समाधान करें: NCLP को MGNREG। और ICDS जैसी गरीबी-उन्मूलन योजनाओं के साथ एकीकृत करें, और कमजोर परिवारों को राशन कार्ड जारी करें। 13 'हाई-रिस्क' (ज्यादा जोखिम वाले) जिलों में स्कूलों और पंचायतों के माध्यम से जागरूकता बढ़ाएँ, और जातिगत पूर्वाग्रहों को दूर करने पर विशेष ध्यान दें।
- पुनर्वास और शिक्षा पर जोर: वजीफे, व्यावसायिक प्रशिक्षण और मानसिक स्वास्थ्य सहायता प्रदान करने के लिए एक 'बाल श्रम पुनर्वास कोष' स्थापित करें। बचाए गए बच्चों को RTE के तहत मुख्यधारा में शामिल करें; इसके लिए 'ब्रिज

कोर्स' (विशेष पढ़ाई के सत्र) और 'मध्याह्न भोजन' की व्यवस्था करें, और PENCIL जैसे डिजिटल पोर्टलों के माध्यम से उनकी प्रगति की निगरानी करें।

इस लेख में प्रस्तुत आँकड़े-चाहे वे कृषि क्षेत्र में बच्चों की भारी संख्या (56.9%) हो, ब्ब्टप्क के बाद चुने हुए क्षेत्रों में काम करने वाले बच्चों की संख्या में लगभग 80% की वृद्धि हो, या सीमावर्ती और ईंट-भट्ठा वाले जिलों पर पड़ने वाला असमान बोझ हो-यह स्पष्ट करते हैं कि बिहार में बाल श्रम मुख्य रूप से ग्रामीण, अनौपचारिक, जाति-आधारित और प्रवासी प्रकृति का है। यह उन जगहों पर ज्यादा पनपता है जहाँ गरीबी, स्कूलों के ठीक से काम न करने, ग्रामीण आजीविका के अपर्याप्त साधनों और कमजोर सामाजिक सुरक्षा कवरेज के साथ जुड़ी होती है। 2021 में महामारी के चरम पर काम करने वाले बच्चों के प्रतिशत में आई भारी गिरावट से लेकर 2024 तक की स्थिति उत्साहजनक है; फिर भी, यह तथ्य कि चुने हुए बच्चों में से आधे से ज्यादा बच्चे अभी भी काम कर रहे हैं, यह संकेत देता है कि सुधार की प्रक्रिया असमान और नाजुक रही है।

बाल श्रम को पूरी तरह खत्म करने के लिए केवल छापेमारी और पुनर्वास केंद्रों से कहीं ज्यादा प्रयासों की आवश्यकता है। इसके लिए प्रयासों के एक निर्णायक और बहु-आयामी तालमेल की जरूरत है:[9]

- ग्रामीण रोजगार की गारंटी, वयस्कों के लिए कौशल-आधारित आजीविका कार्यक्रम, और कृषि के कम काम वाले मौसमों के दौरान MGNREG। कार्यों के विस्तार के माध्यम से आर्थिक बदलाव लाना;
- आवासीय 'ब्रिज कोर्स' (सीखने के अंतराल को भरने वाले पाठ्यक्रम), जाति और लिंग के प्रति संवेदनशील स्कूली शिक्षा, तथा शिक्षकों की अनुपस्थिति या कक्षा में होने वाले भेदभाव के प्रति 'शून्य सहनशीलता' (zero tolerance) के साथ एक सार्वभौतिक, समावेशी और आनंददायक शिक्षा व्यवस्था सुनिश्चित करना;
- सामाजिक सुरक्षा को मजबूत किया गया, यह सुनिश्चित करके कि हर कमजोर परिवार को राशन कार्ड, पेंशन और सीधे नकद हस्तांतरण मिलें, जिससे बच्चों को काम पर भेजने की मजबूरी कम हो;
- 'मुक्ति कारवां' और 'डट फाउंडेशन' जैसे मंचों के जरिए सामुदायिक स्वामित्व को बढ़ावा दिया गया, जिससे ग्राम सभाओं को सशक्त बनाया जा सके...
- लड़कियों के लिए विशेष उपाय किए गए, जैसे CMKUY जैसी योजनाओं का लाभ उठाकर उन्हें ज्यादा समय तक स्कूल में बनाए रखना, और बाल श्रम, घरेलू गुलामी और कम उम्र में शादी के दुष्चक्र को तोड़ना;
- टेक्नोलॉजी की मदद से पारदर्शिता सुनिश्चित की गई, जिसमें PENCIL पोर्टल को रीयल-टाइम अपडेट करना, ज्यादा जोखिम वाली जगहों की जियोटैगिंग करना, और बाल श्रम की निगरानी को U.DISE+ और श्रम विभाग के डेटाबेस के साथ जोड़ना शामिल है।[10]

निष्कर्ष

आज बिहार एक अहम मोड़ पर खड़ा है। अगर राजनीतिक इच्छाशक्ति हो, अलग-अलग विभागों के बीच तालमेल हो, और नागरिक समाज का लगातार सहयोग मिले, तो यह राज्य अपनी छवि को बदल सकता है-बाल श्रम के सबसे ज्यादा बोझ वाले राज्य से बदलकर, बाल श्रम को पूरी तरह खत्म करने का एक राष्ट्रीय आदर्श बन सकता है। 2025 तक SDG 8.7 के लक्ष्य को हासिल करना एक बड़ा लक्ष्य है, लेकिन नामुमकिन नहीं-बशर्ते वही ऊर्जा और संसाधन, जिनसे एक ही साल में पूरे देश में 53,000 से ज्यादा बच्चों को बचाया गया था, अब रोकथाम, पुनर्वास और व्यवस्था में बदलाव लाने की दिशा में लगाए जाएँ।

आखिरकार, बाल श्रम को खत्म करने का मतलब है बचपन को वापस लाना: खेलने, सीखने, सपने देखने और बिना किसी डर या शोषण के बड़े होने का अधिकार। जब पूर्वी चंपारण के किसी सबसे दूरदराज के गाँव या रोहतास की ईंट-भट्ठियों में काम करने वाला आखिरी बच्चा भी काम से मुक्त होकर स्कूल में दाखिला ले लेगा, तो बिहार न केवल अपनी कानूनी और नैतिक जिम्मेदारी पूरी करेगा-बल्कि वह अपने सबसे कम उम्र के नागरिकों की असली क्षमता को भी उजागर करेगा और आने वाली पीढ़ियों के लिए एक ज्यादा न्यायसंगत, समृद्ध और गरिमापूर्ण भविष्य सुनिश्चित करेगा। निर्णायक कदम उठाने का समय अभी है; हर साल की देरी हजारों और बच्चों के भविष्य को बर्बाद कर देती है और राज्य को एक कमजोर कल की ओर धकेल देती है।

संदर्भ-

1. UNICEF. (2024-2025). उत्तरी भारतीय राज्यों में बाल श्रम और कमजोरी के पैटर्न: क्षेत्रीय अनुमान और जोखिम प्रोफाइल (पृष्ठ 12-18). UNICEF भारत क्षेत्रीय कार्यालय.
2. बाल श्रम के खिलाफ अभियान (CACL). (2025). पूर्वी भारत में महामारी के बाद बाल श्रम का आकलन (2018-2024): घरेलू सर्वेक्षण और रुझान विश्लेषण (पृष्ठ 21-34). CACL राष्ट्रीय रिपोर्ट.
3. Just Rights for Children (JRC) Network. (2024-2025). बिहार में बाल श्रम के हॉटस्पॉट की जिला-स्तरीय मैपिंग: बचाव डेटा, प्रवासन के पैटर्न, और जोखिम विश्लेषण (पृष्ठ 40-55). JRC वार्षिक दस्तावेजीकरण रिपोर्ट.
4. U.S. Department of Labor. (2023). बाल श्रम के सबसे बुरे रूपों पर निष्कर्ष: भारत (पृष्ठ 87-94). Bureau of International Labor Affairs.
5. EPW Research Foundation. (2024). बिहार में बाल श्रम और जातिगत गतिशीलता. Economic and Political Weekly, 59(4), 22-28.
6. Ministry of Labour & Employment] Government of India. (2024). राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना (NCLP): वार्षिक रिपोर्ट 2023-24 (पृष्ठ 13-20). भारत सरकार.
7. Bihar Labour Resources Department. (2024). बाल और किशोर श्रम उन्मूलन के लिए राज्य रणनीति और कार्य योजना - 2025 (पृष्ठ 5-16). बिहार सरकार.
8. UDISE+. (2023). भारत में स्कूली शिक्षा: UDISE+ 2022-23 (पृष्ठ 102-115). शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार.
9. MV Foundation. (2020). बिहार में बाल श्रम समाप्त करने के लिए समुदाय-आधारित दृष्टिकोण: फील्ड रिपोर्ट 2018-2020 (पृष्ठ 30-43). MVF Publications.
10. UNICEF Innocenti. (2024). बिहार में बाल गरीबी, सामाजिक बहिष्कार और श्रम संबंधी कमजोरियाँ (पृष्ठ 51-63). UNICEF Innocenti Research Brief.

विभाजन की त्रासदी और 'तमस' : सांप्रदायिकता, मानवीय पीड़ा और सामाजिक यथार्थ का आलोचनात्मक अध्ययन

सोनाली कुमारी

शोधार्थी (हिंदी विभाग) ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

डॉ० अखिलेश कुमार

शोध निर्देशक, वरीय सहायक प्राध्यापक, (डॉ. एल.के.भी.डी .कॉलेज ताजपुर समस्तीपुर)

शोध-सारांश :

हिंदी साहित्य में भीष्म साहनी का नाम उन साहित्यकारों में लिया जाता है जिन्होंने समाज, राजनीति और मानवीय संवेदनाओं को अत्यंत यथार्थवादी दृष्टि से अभिव्यक्त किया। उनका प्रसिद्ध उपन्यास 'तमस' भारत-पाक विभाजन की त्रासदी, सांप्रदायिकता और मानवीय विघटन का महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। यह केवल एक साहित्यिक कृति नहीं, बल्कि भारतीय समाज के उस भयावह दौर का जीवंत चित्रण है जब धर्म और राजनीति के नाम पर मनुष्यता का विनाश हुआ। प्रस्तुत शोधपत्र में 'तमस' के माध्यम से विभाजन की त्रासदी, सांप्रदायिक तनाव, अंग्रेजों की 'फूट डालों और राज करो' नीति, सामाजिक विघटन तथा मानवीय संवेदनाओं का विश्लेषण किया गया है।

भीष्म साहनी ने उपन्यास में यह स्पष्ट किया है कि सांप्रदायिकता केवल राजनीतिक समस्या नहीं, बल्कि मानवीय संवेदनाओं को नष्ट करने वाली सामाजिक बीमारी है। उपन्यास का प्रारंभ नथू चमार द्वारा सूअर मारने की घटना से होता है, जो आगे चलकर हिंदू-मुस्लिम दंगों का कारण बनती है। इस छोटी-सी घटना के माध्यम से लेखक यह दिखाते हैं कि किस प्रकार सत्ता और स्वार्थी शक्तियाँ आम जनता की भावनाओं का उपयोग कर समाज में हिंसा और विभाजन पैदा करती हैं।

'तमस' में हिंदू, मुस्लिम और सिख समुदायों के बीच उत्पन्न अविश्वास, भय, हिंसा, विस्थापन और स्त्री-पीड़ा का मार्मिक चित्रण हुआ है। हरनाम सिंह, बंतो, कश्मीरी लाल, मुराद अली और रिचर्ड जैसे पात्र समाज की विभिन्न मानसिकताओं और राजनीतिक शक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। उपन्यास में अंग्रेज अधिकारी रिचर्ड का चरित्र औपनिवेशिक सत्ता की विभाजनकारी नीति को उजागर करता है। वहीं दूसरी ओर सामान्य जनता शांति और भाईचारे की आकांक्षा रखती दिखाई देती है

'तमस' केवल विभाजन की कहानी नहीं, बल्कि मनुष्य की संवेदनहीनता, राजनीति के स्वार्थ और सांप्रदायिकता के अंधकार की कहानी है। साथ ही यह उपन्यास मानवता, शांति और सह-अस्तित्व की आवश्यकता का भी महत्वपूर्ण संदेश देता है। वर्तमान समय में जब सांप्रदायिक तनाव और सामाजिक विभाजन की घटनाएँ पुनः सामने आती हैं, तब 'तमस' की प्रासंगिकता और अधिक बढ़ जाती है।

प्रस्तावना :

हिंदी उपन्यास साहित्य में भीष्म साहनी का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने हिंदी कथा-साहित्य को यथार्थवादी दृष्टि, सामाजिक चेतना और मानवीय संवेदनाओं से समृद्ध किया। प्रेमचंद की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने अपने साहित्य में समाज के संघर्षशील वर्ग, सांप्रदायिक तनाव, राजनीतिक स्वार्थ और मानवीय संबंधों की जटिलताओं को अभिव्यक्त किया। भीष्म साहनी केवल कथाकार ही नहीं, बल्कि चिंतक और संवेदनशील सामाजिक लेखक भी थे। उनका साहित्य जीवन की वास्तविकताओं से गहरे स्तर पर जुड़ा हुआ है।

भीष्म साहनी का उपन्यास 'तमस' हिंदी साहित्य की ऐसी कृति है जिसने विभाजन की त्रासदी को अत्यंत मार्मिक और यथार्थपूर्ण ढंग से प्रस्तुत किया। यह उपन्यास भारत-पाक विभाजन के दौरान उत्पन्न सांप्रदायिक हिंसा, भय, विस्थापन और सामाजिक विघटन का जीवंत दस्तावेज है। 'तमस' शब्द का अर्थ है - अंधकार। यहाँ अंधकार केवल बाहरी स्थिति का नहीं, बल्कि मनुष्य के भीतर फैलती संवेदनहीनता, घृणा और हिंसा का प्रतीक है।

भारत का विभाजन केवल राजनीतिक घटना नहीं था, बल्कि करोड़ों लोगों के जीवन को प्रभावित करने वाली मानवीय त्रासदी थी। लाखों लोग विस्थापित हुए, हजारों की हत्या हुई और स्त्रियों को अमानवीय यातनाओं का सामना करना पड़ा। विभाजन ने भारतीय समाज की सांस्कृतिक एकता और सामाजिक संरचना को गहरे स्तर पर प्रभावित किया। इसी त्रासदी को भीष्म साहनी ने 'तमस' में अत्यंत संवेदनशीलता और यथार्थवादी शैली में चित्रित किया है।

उपन्यास का कथानक पंजाब के एक नगर में घटित होता है, जहाँ सांप्रदायिक तनाव धीरे-धीरे हिंसा का रूप ले लेता है। लेखक ने यह दिखाया है कि किस प्रकार राजनीतिक स्वार्थ और औपनिवेशिक सत्ता की नीतियाँ समाज को बाँट देती हैं। अंग्रेज अधिकारी रिचर्ड का चरित्र 'फूट डालो और राज करो' की नीति का प्रतिनिधित्व करता है। दूसरी ओर सामान्य जनता शांति और भाईचारे की आकांक्षा रखती है, किंतु परिस्थितियाँ उन्हें हिंसा और भय के वातावरण में धकेल देती हैं।

'तमस' में केवल दंगों का चित्रण नहीं है, बल्कि मनुष्य के भीतर चल रहे भय, असुरक्षा और अस्मिता के संघर्ष को भी अभिव्यक्ति मिली है। हरनाम सिंह और उसकी पत्नी बंतो का घर छोड़कर भागना, सिख स्त्रियों का अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए कुओं में कूद जाना, और राहत शिविरों में शरण लेने वाले लोगों की पीड़ा - ये सभी घटनाएँ विभाजन की भयावहता को गहराई से व्यक्त करती हैं।

यह उपन्यास आज भी इसलिए प्रासंगिक है क्योंकि सांप्रदायिकता की समस्या आज भी समाज के सामने चुनौती के रूप में मौजूद है। भीष्म साहनी ने अपने साहित्य के माध्यम से यह संदेश दिया कि धर्म और राजनीति के नाम पर फैलाया गया घृणा का वातावरण अंततः मानवता का विनाश करता है। 'तमस' हमें इतिहास की उस त्रासदी से सीख लेने और सामाजिक सद्भाव बनाए रखने की प्रेरणा देता है।

उपलब्ध साहित्य :

भीष्म साहनी और उनके उपन्यास 'तमस' पर अनेक आलोचकों और साहित्यकारों ने विचार व्यक्त किए हैं। हिंदी साहित्य में 'तमस' को विभाजन साहित्य की सबसे महत्वपूर्ण कृतियों में माना जाता है। विभाजन की त्रासदी पर हिंदी, उर्दू और पंजाबी साहित्य में अनेक रचनाएँ लिखी गई, किंतु 'तमस' अपनी संवेदनशीलता, यथार्थवाद और सामाजिक दृष्टि के कारण विशेष महत्व रखता है।

डॉ. गोपाल राय ने 'तमस' को सांप्रदायिकता के अंधकार का प्रतीक बताते हुए लिखा है कि यह उपन्यास उस मानसिकता को उजागर करता है जो मनुष्य को हैवान बना देती है। उनके अनुसार 'तमस' में विभाजन की राजनीति का वास्तविक चेहरा सामने आता है। उपन्यास यह दिखाता है कि सांप्रदायिक हिंसा केवल धार्मिक संघर्ष नहीं, बल्कि राजनीतिक स्वार्थ का परिणाम है।

नामवर सिंह ने भीष्म साहनी की रचनात्मकता की चर्चा करते हुए कहा है कि उनका साहित्य जनजीवन और सामाजिक यथार्थ से जुड़ा हुआ है। वे मानते हैं कि 'तमस' में लेखक ने इतिहास को केवल घटनाओं के रूप में प्रस्तुत नहीं किया, बल्कि उसमें मानवीय संवेदना और सामाजिक मनोविज्ञान को भी अभिव्यक्त किया है।

डॉ. रामविलास शर्मा ने भीष्म साहनी की यथार्थवादी दृष्टि की प्रशंसा करते हुए कहा कि उनका साहित्य भारतीय समाज की जटिलताओं को समझने में सहायक है। 'तमस' में सांप्रदायिकता के कारण उत्पन्न सामाजिक विघटन और वर्गीय संघर्ष का गहरा चित्रण मिलता है।

विभाजन साहित्य के संदर्भ में खुशवंत सिंह के उपन्यास 'ट्रेन टू पाकिस्तान' तथा यशपाल के 'झूठा सच' का भी उल्लेख महत्वपूर्ण है। इन रचनाओं में भी विभाजन की पीड़ा और हिंसा का चित्रण हुआ है। किंतु 'तमस' की विशेषता यह है कि इसमें आम जनता की मानसिक स्थिति, भय और असुरक्षा को अत्यंत मार्मिक रूप में प्रस्तुत किया गया है।

भीष्म साहनी ने स्वयं स्वीकार किया था कि भिवंडी दंगों की स्मृति और रावलपिंडी के अनुभवों ने उन्हें 'तमस' लिखने के लिए प्रेरित किया। इससे स्पष्ट होता है कि यह उपन्यास केवल कल्पना पर आधारित नहीं, बल्कि लेखक के व्यक्तिगत अनुभवों और सामाजिक यथार्थ का परिणाम है।

आलोचक विजय मोहन सिंह के अनुसार 'तमस' में सांप्रदायिकता का चित्रण किसी एक समुदाय के विरोध में नहीं है, बल्कि यह मनुष्य की संवेदनहीनता और सत्ता की राजनीति की आलोचना है। उपन्यास का उद्देश्य किसी धर्म या समुदाय को दोषी ठहराना नहीं, बल्कि उन परिस्थितियों को समझना है जिनके कारण समाज हिंसा की ओर बढ़ता है।

इस प्रकार उपलब्ध साहित्य से स्पष्ट होता है कि 'तमस' केवल साहित्यिक दृष्टि से ही महत्वपूर्ण नहीं, बल्कि सामाजिक, ऐतिहासिक और राजनीतिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण कृति है। यह उपन्यास विभाजन की त्रासदी को समझने का एक प्रभावशाली माध्यम है।

शोध-प्रविधि :

प्रस्तुत शोधपत्र में विश्लेषणात्मक एवं व्याख्यात्मक शोध-पद्धति का प्रयोग किया गया है। अध्ययन का मुख्य आधार भीष्म साहनी का उपन्यास 'तमस' है। इसके अतिरिक्त विभाजन साहित्य, सांप्रदायिकता, हिंदी उपन्यास और भीष्म साहनी के साहित्य पर उपलब्ध आलोचनात्मक पुस्तकों, शोध आलेखों तथा साहित्यिक समीक्षाओं का सहारा लिया गया है।

शोधकार्य में प्राथमिक तथा द्वितीयक दोनों प्रकार के स्रोतों का उपयोग किया गया है। प्राथमिक स्रोत के रूप में 'तमस' उपन्यास का अध्ययन किया गया, जबकि द्वितीयक स्रोतों में आलोचनात्मक ग्रंथ, साहित्यिक पत्रिकाएँ, शोध-पत्र और विद्वानों के विचार सम्मिलित किए गए हैं।

इस शोधपत्र में निम्नलिखित बिंदुओं को आधार बनाकर अध्ययन किया गया है-

1. विभाजन की त्रासदी और उसका सामाजिक प्रभाव।
2. सांप्रदायिकता और राजनीतिक स्वार्थ।
3. अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' नीति।
4. उपन्यास में मानवीय पीड़ा और विस्थापन।
5. स्त्री-जीवन और अस्मिता का प्रश्न।
6. सांप्रदायिक सद्भाव और मानवता का संदेश।

शोध की प्रक्रिया में उपन्यास के पात्रों, घटनाओं और संवादों का विश्लेषण करते हुए यह समझने का प्रयास किया गया है कि भीष्म साहनी ने विभाजन की समस्या को किस प्रकार प्रस्तुत किया है। साथ ही यह भी देखा गया है कि 'तमस' वर्तमान समय में किस प्रकार प्रासंगिक बना हुआ है।

परिणाम एवं विमर्श :

1. विभाजन की त्रासदी का यथार्थ चित्रण

'तमस' का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष विभाजन की त्रासदी का यथार्थपूर्ण चित्रण है। भारत-पाक विभाजन केवल राजनीतिक निर्णय नहीं था, बल्कि करोड़ों लोगों के जीवन को प्रभावित करने वाली मानवीय दुर्घटना थी। भीष्म साहनी ने उपन्यास में यह दिखाया है कि किस प्रकार सांप्रदायिक तनाव धीरे-धीरे हिंसा और विनाश का रूप ले लेता है।

उपन्यास की शुरुआत नथू चमार द्वारा सूअर मारने की घटना से होती है। मुराद अली उसे पाँच रुपए का लालच देकर सूअर मरवाता है और बाद में वही सूअर मस्जिद के बाहर फेंक दिया जाता है। इस घटना से हिंदू-मुस्लिम तनाव भड़क उठता है। लेखक यह स्पष्ट करते हैं कि दंगे अचानक नहीं होते, बल्कि उन्हें योजनाबद्ध ढंग से उत्पन्न किया जाता है।

भीष्म साहनी ने दंगों के भयावह दृश्य अत्यंत मार्मिकता से प्रस्तुत किए हैं। जगह-जगह आगजनी, हत्या, लूटपाट और चीख-पुकार का वातावरण दिखाई देता है। लोग अपने घर छोड़कर भागने को मजबूर हो जाते हैं। यह चित्रण विभाजन की वास्तविकता को सामने लाता है।

2. सांप्रदायिकता और राजनीतिक स्वार्थ

उपन्यास में सांप्रदायिकता को केवल धार्मिक समस्या के रूप में नहीं, बल्कि राजनीतिक स्वार्थ के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अंग्रेज अधिकारी रिचर्ड का चरित्र इस बात का प्रतीक है कि औपनिवेशिक सत्ता हिंदू-मुस्लिम एकता को समाप्त कर अपने शासन को बनाए रखना चाहती थी।

रिचर्ड और उसकी पत्नी लीजा के संवादों से यह स्पष्ट होता है कि अंग्रेज भारतीय समाज की कमजोरियों का लाभ उठाकर सत्ता बनाए रखना चाहते थे। वे जानते थे कि यदि हिंदू और मुस्लिम एकजुट हो गए, तो अंग्रेजी शासन टिक नहीं पाएगा। इसलिए सांप्रदायिक तनाव को बढ़ावा दिया गया।

यह स्थिति आज भी प्रासंगिक है। वर्तमान समय में भी राजनीति में धर्म और जाति का उपयोग वोट बैंक के रूप में किया जाता है। 'तमस' हमें चेतावनी देता है कि सांप्रदायिकता समाज को केवल विनाश की ओर ले जाती है।

3. मानवीय संवेदनाओं का विघटन

उपन्यास में दंगों के कारण मनुष्य की संवेदनाओं के विघटन का मार्मिक चित्रण हुआ है। सामान्य परिस्थितियों में जो लोग एक-दूसरे के साथ रहते थे, वही लोग सांप्रदायिक उन्माद में एक-दूसरे के शत्रु बन जाते हैं।

गोपाल राय ने ठीक ही कहा है कि 'तमस' उस अंधकार का प्रतीक है जो मनुष्य की संवेदनाओं को नष्ट कर देता है। दंगों के दौरान लोग धर्म के नाम पर हत्या और हिंसा करने लगते हैं। यह स्थिति मनुष्य की नैतिकता और मानवता पर प्रश्नचिह्न लगाती है।

नथू का चरित्र विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वह एक गरीब व्यक्ति है जो पैसों के लिए सूअर मार देता है, लेकिन बाद में उसे एहसास होता है कि उसकी छोटी-सी कार्रवाई ने कितनी बड़ी त्रासदी को जन्म दे दिया। उसके भीतर अपराधबोध और भय उत्पन्न होता है। यह चरित्र उस आम आदमी का प्रतिनिधित्व करता है जो राजनीतिक षड्यंत्रों का शिकार बनता है।

4. विस्थापन और शरणार्थी जीवन

विभाजन के दौरान लाखों लोगों को अपना घर छोड़ना पड़ा। 'तमस' में विस्थापन की पीड़ा को अत्यंत मार्मिक ढंग से चित्रित किया गया है। हरनाम सिंह और उसकी पत्नी बंतो को अपना घर छोड़कर भागना पड़ता है। वे असुरक्षा और भय के वातावरण में जीवन बिताते हैं।

शरणार्थी शिविरों में रहने वाले लोगों की स्थिति अत्यंत दयनीय दिखाई गई है। लोग अपने परिवार, घर और संपत्ति से बिछड़ जाते हैं। उनके भीतर भविष्य को लेकर अनिश्चितता और भय है। भीष्म साहनी ने इस पीड़ा को अत्यंत संवेदनशीलता से प्रस्तुत किया है।

विस्थापन केवल भौतिक नहीं होता, बल्कि मानसिक और सांस्कृतिक स्तर पर भी मनुष्य को तोड़ देता है। अपने गाँव, घर और स्मृतियों से दूर होना किसी भी व्यक्ति के लिए अत्यंत पीड़ादायक अनुभव है। 'तमस' में यह पीड़ा गहराई से व्यक्त हुई है।

5. स्त्री-जीवन और अस्मिता का प्रश्न

विभाजन की त्रासदी का सबसे अधिक प्रभाव स्त्रियों पर पड़ा। 'तमस' में स्त्री-पीड़ा और अस्मिता के प्रश्न को अत्यंत मार्मिक रूप में प्रस्तुत किया गया है। दंगों के दौरान स्त्रियाँ हिंसा, अपमान और असुरक्षा का शिकार बनती हैं।

सिख स्त्रियों द्वारा अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए कुओं में कूद जाना विभाजन की भयावहता को व्यक्त करता है। यह घटना केवल आत्महत्या नहीं, बल्कि उस सामाजिक परिस्थिति का प्रतीक है जहाँ स्त्रियों के सामने सम्मान बचाने के लिए मृत्यु को चुनने की मजबूरी थी।

बंतो का चरित्र भी महत्वपूर्ण है। वह भय और असुरक्षा के बीच अपने परिवार को बचाने का प्रयास करती है। स्त्रियाँ केवल पीड़ित नहीं हैं, बल्कि संघर्ष और साहस का भी प्रतीक हैं।

6. सामाजिक सद्भाव और मानवता का संदेश

यद्यपि 'तमस' में हिंसा और विभाजन का चित्रण है, फिर भी उपन्यास का मूल संदेश मानवता और शांति है। सामान्य जनता दंगों से परेशान होकर शांति चाहती है। लोग डिप्टी कमिश्नर से मिलकर दंगे रोकने की अपील करते हैं। राहत समितियाँ बनाई जाती हैं और दंगा-पीड़ितों की सहायता की जाती है।

उपन्यास के अंत में "अमन की बस" का प्रतीकात्मक उल्लेख यह दर्शाता है कि तमाम हिंसा और अंधकार के बाद भी शांति और भाईचारे की संभावना समाप्त नहीं होती। भीष्म साहनी का दृष्टिकोण निराशावादी नहीं, बल्कि मानवीय आशा से जुड़ा हुआ है।

'तमस' हमें यह संदेश देता है कि धर्म, जाति और राजनीति से ऊपर उठकर मानवता को प्राथमिकता देनी चाहिए। यदि समाज में पारस्परिक विश्वास और संवेदना बनी रहे, तो सांप्रदायिक शक्तियाँ सफल नहीं हो सकतीं।

7. 'तमस' की वर्तमान प्रासंगिकता

आज के समय में 'तमस' की प्रासंगिकता और अधिक बढ़ गई है। वर्तमान समाज में भी सांप्रदायिक तनाव, धार्मिक कट्टरता और राजनीतिक स्वार्थ के कारण सामाजिक विभाजन की घटनाएँ सामने आती रहती हैं। ऐसे समय में यह उपन्यास हमें इतिहास की गलतियों से सीख लेने की प्रेरणा देता है।

'तमस' केवल अतीत का दस्तावेज नहीं, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए चेतावनी है। यह उपन्यास हमें बताता है कि यदि समाज में घृणा और अविश्वास का वातावरण फैलता है, तो उसका परिणाम विनाशकारी होता है। इसलिए सामाजिक सद्भाव, सहिष्णुता और मानवीय संवेदनाओं को बनाए रखना अत्यंत आवश्यक है।

निष्कर्ष :

उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भीष्म साहनी का 'तमस' हिंदी साहित्य की अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रासंगिक कृति है। यह उपन्यास भारत-पाक विभाजन की त्रासदी, सांप्रदायिक हिंसा और मानवीय पीड़ा का सशक्त दस्तावेज है। लेखक ने अत्यंत यथार्थवादी शैली में यह दिखाया है कि राजनीतिक स्वार्थ और सांप्रदायिकता किस प्रकार समाज को विनाश की ओर ले जाते हैं।

उपन्यास में विभाजन की भयावहता केवल ऐतिहासिक घटना के रूप में नहीं, बल्कि मानवीय संवेदनाओं के विघटन के रूप में प्रस्तुत हुई है। नथू, हरनाम सिंह, बंतो, रिचर्ड और अन्य पात्रों के माध्यम से भीष्म साहनी ने समाज के विभिन्न वर्गों और मानसिकताओं को अभिव्यक्ति दी है।

'तमस' यह सिद्ध करता है कि दंगे और हिंसा किसी समस्या का समाधान नहीं हैं। उनका परिणाम केवल भय, अविश्वास, विस्थापन और विनाश होता है। उपन्यास का सबसे महत्वपूर्ण संदेश मानवता, शांति और सामाजिक सद्भाव की आवश्यकता है।

भीष्म साहनी ने यह स्पष्ट किया है कि धर्म और राजनीति के नाम पर फैलाया गया अंधकार अंततः पूरे समाज को प्रभावित करता है। इसलिए समाज को सांप्रदायिकता और घृणा से बचाने के लिए मानवीय मूल्यों, सहिष्णुता और भाईचारे को मजबूत करना आवश्यक है।

वर्तमान समय में जब सामाजिक और धार्मिक तनाव की घटनाएँ सामने आती हैं, तब 'तमस' की प्रासंगिकता और अधिक बढ़ जाती है। यह उपन्यास हमें इतिहास की त्रासदी से सीख लेकर एक बेहतर और मानवीय समाज के निर्माण की प्रेरणा देता है।

उपसंहार :

भीष्म साहनी का 'तमस' केवल विभाजन पर लिखा गया उपन्यास नहीं, बल्कि भारतीय समाज की सामूहिक स्मृति और मानवीय चेतना का दस्तावेज है। इसमें इतिहास, राजनीति, समाज और मनुष्य की संवेदनाओं का गहरा समन्वय दिखाई देता है। लेखक ने यह सिद्ध किया है कि साहित्य केवल मनोरंजन का माध्यम नहीं, बल्कि समाज को दिशा देने वाली शक्ति भी है।

'तमस' के माध्यम से भीष्म साहनी ने सांप्रदायिकता की भयावहता को उजागर करते हुए मानवता की रक्षा का संदेश दिया है। यह उपन्यास हमें यह सोचने पर विवश करता है कि धर्म और राजनीति के नाम पर फैलाया गया घृणा का वातावरण किस प्रकार मनुष्य की संवेदनाओं को नष्ट कर देता है।

विभाजन की त्रासदी ने भारतीय समाज को गहरे स्तर पर प्रभावित किया, किंतु इस अंधकार के बीच भी मानवता और शांति की संभावना समाप्त नहीं हुई। उपन्यास का "अमन की बस" वाला प्रतीक इसी आशा का प्रतिनिधित्व करता है।

इस प्रकार 'तमस' हिंदी साहित्य की ऐसी कालजयी कृति है जो न केवल विभाजन के इतिहास को समझने में सहायक है, बल्कि वर्तमान और भविष्य के लिए भी सामाजिक सद्भाव, सहिष्णुता और मानवता का महत्वपूर्ण संदेश देती है।

संदर्भ :

1. साहनी, भीष्म – तमस, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
2. राय, गोपाल – हिंदी उपन्यास का इतिहास, राजकमल प्रकाशन।
3. शर्मा, रामविलास – हिंदी साहित्य और समाज, राजकमल प्रकाशन।
4. सिंह, नामवर – कहानी नई कहानी, लोकभारती प्रकाशन।
5. सिंह, विजय मोहन – समकालीन हिंदी उपन्यास और समाज, वाणी प्रकाशन।
6. यशपाल – झूठा सच, लोकभारती प्रकाशन।
7. खुशवंत सिंह – ट्रेन टू पाकिस्तान, पेंगुइन प्रकाशन।
8. भीष्म साहनी – आज के अतीत, आत्मकथात्मक संस्मरण।
9. हिंदी साहित्य कोश, ज्ञानमंडल प्रकाशन।
10. विभिन्न शोध-पत्र एवं आलोचनात्मक लेख।